ऋग्वेद - संहिता

* * *

॥ अथ प्रथमं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि- मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता - अग्नि । छन्द -गायत्री]

१. ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

हम अग्निदेव की स्तुति करते हैं । (कैसे अग्निदेव ?) जो यज्ञ (श्रेष्ठतम पारमार्थिक कर्म) के पुरोहित (आगे बढ़ाने वाले), देवता (अनुदान देने वाले), ऋत्विज् (समयानुकूल यज्ञ का सम्पादन करने वाले), होता (देवों का आवाहन करने वाले) और याजकों को रत्नों से (यज्ञ के लाभों से) विभूषित करने वाले हैं ॥१ ॥

२. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

जो अग्निदेव पूर्वकालीन ऋषियों (भृगु, अंगिरादि) द्वारा प्रशंसित हैं । जो आधुनिक काल में भी ऋषि कल्प वेदज्ञ विद्वानों द्वारा स्तुत्य हैं, वे अग्निदेव इस यज्ञ में देवों का आवाहन करें ॥२ ॥

३. अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

(स्तोता द्वारा स्तुति किये जाने पर) ये बढ़ाने वाले अग्निदेव मनुष्यों (यजमानों) को प्रतिदिन विवर्धमान (बढ़ने वाला) धन, यश एवं पुत्र-पौत्रादि वीर पुरुष प्रदान करने वाले हैं ॥३ ॥

४. अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबका रक्षण करने में समर्थ हैं । आप जिस अध्वर (हिंसारहित यज्ञ) को सभी ओर से आवृत किये रहते हैं, वही यज्ञ देवताओं तक पहुँचता है ॥४ ॥

५. अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हवि -प्रदाता, ज्ञान और कर्म की संयुक्त शक्ति के प्रेरक, सत्यरूप एवं विलक्षण रूप युक्त हैं । आप देवों के साथ इस यज्ञ में पधारें ॥५ ॥

६. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ करने वाले यजमान का धन, आवास, संतान एवं पशुओं की समृद्धि करके जो भी कल्याण करते हैं, वह भविष्य में किये जाने वाले यज्ञों के माध्यम से आपको ही प्राप्त होता है ।

७. उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

हे जाज्वल्यमान अग्निदेव ! हम आपके सच्चे उपासक हैं । श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा आपकी स्तुति करते हैं और दिन-रात, आपका सतत गुणगान करते हैं । हे देव ! हमें आपका सान्निध्य प्राप्त हो ॥७ ॥

८. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

हम गृहस्थ लोग दीप्तिमान् , यज्ञों के रक्षक, सत्यवचनरूप व्रत को आलोकित करने वाले, यज्ञस्थल में वृद्धि को प्राप्त करने वाले अग्निदेव के निकट स्तुतिपूर्वक आते हैं ॥८ ॥

९. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! जिस प्रकार पुत्र को पिता (बिना बाधा के) सहज ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार आप भी (हम यजमानों के लिये) बाधारहित होकर सुखपूर्वक प्राप्त हों । आप हमारे कल्याण के लिये हमारे निकट रहें ॥९ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** -मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । **देवता**-१-३ वायु, ४-६-इन्द्र-वायु ; ७-९ मित्रावरुण । **छन्द**-गायत्री ।]

१०. वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥

हे प्रियदर्शी वायुदेव ! हमारी प्रार्थना को सुनकर आप यज्ञस्थल पर आयें । आपके निमित्त सोमरस प्रस्तुत है, इसका पान करें ॥१ ॥

११. वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

हे वायुदेव ! सोमरस तैयार करके रखने वाले, उसके गुणों को जानने वाले स्तोतागण स्तोत्रों से आपकी उत्तम प्रकार से स्तुति करते हैं ॥२ ॥

१२. वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे। उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

हे वायुदेव ! आपकी प्रभावोत्पादक वाणी, सोमयाग करने वाले सभी यजमानों की प्रशंसा करती हुई एवं सोमरस का विशेष गुण-गान करती हुई, सोमरस पान करने की अभिलाषा से दाता (यजमान) के पास पहुँचती है ॥३ ॥

१३. इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे वायुदेव ! यह सोमरस आपके लिये अभिषुत किया (निचोड़ा) गया है । आप अन्नादि पदार्थों के साथ यहाँ पधारें, क्योंकि यह सोमरस आप दोनों की कामना करता है ॥४ ॥

१४. वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥

हे वायुदेव ! हे इन्द्रदेव ! आप दोनों अन्नादि पदार्थों और धन से परिपूर्ण हैं एवं अभिषुत सोमरस की विशेषता को जानते हैं । अतः आप दोनों शीघ्र ही इस यज्ञ में पदार्पण करें ॥५ ॥

१५. वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥

हे वायुदेव ! हे इन्द्रदेव ! आप दोनों बड़े सामर्थ्यशाली हैं । आप यजमान द्वारा बुद्धिपूर्वक निष्पादित सोम के पास अति शीघ्र पधारें ॥६ ॥

१६. मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥

घृत के समान प्राणप्रद वृष्टि-सम्पन्न कराने वाले मित्र और वरुण देवों का हम आवाहन करते हैं। मित्र हमें बलशाली बनायें तथा वरुणदेव हमारे हिंसक शत्रुओं का नाश करें ॥७॥

१७. ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

सत्य को फलितार्थ करने वाले सत्ययज्ञ के पुष्टिकारक देव मित्रावरुणो ! आप दोनों हमारे पुण्यदायी कार्यों (प्रवर्तमान सोमयाग) को सत्य से परिपूर्ण करें ॥८॥

१८. कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अनेक कर्मों को सम्पन्न कराने वाले विवेकशील तथा अनेक स्थलों में निवास करने वाले मित्रावरुण हमारी क्षमताओं और कार्यों को पुष्ट बनाते हैं ॥९॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि**-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। **देवता**-१-३ अश्विनीकुमार, ४-६ इन्द्र, ७-९ विश्वेदेवा, १०-१२ सरस्वती। छन्द-गायत्री।]

१९. अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती। पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥

हे विशालबाहो ! शुभ कर्मपालक, द्रुतगति से कार्य सम्पन्न करने वाले अश्विनीकुमारो ! हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्नों से आप भली प्रकार सन्तुष्ट हों ॥१॥

२०. अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया। धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥

असंख्य कर्मों को सम्पादित करने वाले, धैर्य धारण करने वाले, बुद्धिमान् हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी उत्तम बुद्धि से हमारी वाणियों (प्रार्थनाओं) को स्वीकार करें ॥२॥

२१. दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

रोगों को विनष्ट करने वाले, सदा सत्य बोलने वाले रुद्रदेव के समान (शत्रु संहारक) प्रवृत्ति वाले, दर्शनीय हे अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ आयें और बिछी हुई कुशाओं पर विराजमान होकर प्रस्तुत संस्कारित सोमरस का पान करें ॥३॥

२२. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

हे अद्भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! अँगुलियों द्वारा स्रवित, श्रेष्ठ पवित्रतायुक्त यह सोमरस आपके निमित्त है। आप आयें और सोमरस का पान करें ॥४॥

२३. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा जानने योग्य आप, सोमरस प्रस्तुत करते हुये ऋत्विजों के द्वारा बुलाये गये हैं। उनकी स्तुति के आधार पर आप यज्ञशाला में पधारें ॥५॥

२४. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आप स्तवनों के श्रवणार्थ एवं इस यज्ञ में हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों का सेवन करने के लिये यज्ञशाला में शीघ्र ही पधारें ॥६॥

२५. ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥७॥

हे विश्वेदेवो ! आप सबकी रक्षा करने वाले, सभी प्राणियों के आधारभूत और सभी को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। अतः आप इस सोम युक्त हवि देने वाले यजमान के यज्ञ में पधारें ॥७॥

२६. विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्रा इव स्वसराणि ॥८॥

समय-समय पर वर्षा करने वाले हे विश्वेदेवो ! आप कर्म - कुशल और द्रुतगति से कार्य करने वाले हैं। आप सूर्य-रश्मियों के सदृश गतिशील होकर हमें प्राप्त हों ॥८॥

२७. विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥९॥

हे विश्वेदेवो ! आप किसी के द्वारा वध न किये जाने वाले, कर्म-कुशल, द्रोहरहित और सुखप्रद हैं। आप हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर हवि का सेवन करें ॥९॥

२८. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥१०॥

पवित्र बनाने वाली, पोषण देने वाली, बुद्धिमतापूर्वक ऐश्वर्य प्रदान करने वाली देवी सरस्वती ज्ञान और कर्म से हमारे यज्ञ को सफल बनायें ॥१०॥

२९. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥११॥

सत्यप्रिय (वचन) बोलने की प्रेरणा देने वाली, मेधावी जनों को यज्ञानुष्ठान की प्रेरणा (मति) प्रदान करने वाली देवी सरस्वती हमारे इस यज्ञ को स्वीकार करके हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करें ॥११॥

३०. महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति ॥१२॥

जो देवी सरस्वती नदी-रूप में प्रभूत जल को प्रवाहित करती हैं। वे सुमति को जगाने वाली देवी सरस्वती सभी याजकों की प्रज्ञा को प्रखर बनाती हैं ॥१२॥

[सूक्त - ४]

[ऋषि-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। देवता-इन्द्र। छन्द-गायत्री।]

३१. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥१॥

(गो दोहन करने वाले के द्वारा) प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को जिस प्रकार बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिये सौन्दर्यपूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१॥

३२. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥२॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन-यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥२॥

३३. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥३॥

सोमपान कर लेने के अनन्तर हे इन्द्रदेव ! हम आपके अत्यन्त समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें। आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें (अर्थात् अपने विषय में न बताएँ) ॥३॥

३४. परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

हे ज्ञानवानो ! आप उन विशिष्ट बुद्धि वाले, अपराजेय इन्द्रदेव के पास जाकर मित्रों-बन्धुओं के लिये धन-ऐश्वर्य के निमित्त प्रार्थना करें ॥४ ॥

३५. उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव की उपासना करने वाले उपासक उन (इन्द्रदेव) के निन्दकों को यहाँ से अन्यत्र निकल जाने को कहें; ताकि वे यहाँ से दूर हो जायें ॥५ ॥

३६. उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुग्रह से समस्त वैभव प्राप्त करें, जिससे देखने वाले सभी शत्रु और मित्र हमें सौभाग्यशाली समझे ॥६ ॥

३७. एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत् सखम् ॥ ७ ॥

(हे याजको !) यज्ञ को श्रीसम्पन्न बनाने वाले, प्रसन्नता प्रदान करने वाले, मित्रों को आनन्द देने वाले इस सोमरस को शीघ्रगामी इन्द्रदेव के लिये भरें (अर्पित करें) ॥ ७ ॥

३८. अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! इस सोमरस को पीकर आप वृत्र-प्रमुख शत्रुओं के संहारक सिद्ध हुए है, अतः आप संग्राम-भूमि में वीर योद्धाओं की रक्षा करें ॥८ ॥

३९. तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्धों में बल प्रदान करने वाले आपको हम धनों की प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ हविष्यान्न अर्पित करते हैं ॥९ ॥

४०. यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

हे याजको ! आप उन इन्द्रदेव के लिये स्तोत्रों का गान करें,जो धनों के महान् रक्षक, दुःखों को दूर करने वाले और याज्ञिको से मित्रवत् भाव रखने वाले हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ५]

[ऋषि - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। देवता-इन्द्र। छन्द -गायत्री]

४१. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

हे याज्ञिक मित्रो ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना करने हेतु शीघ्र आकर बैठो और हर प्रकार से उनकी स्तुति करो ॥१ ॥

४२. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

(हे याजक मित्रो ! सोम के अभिषुत होने पर) एकत्रित होकर संयुक्तरूप से सोमयज्ञ में शत्रुओं को पराजित करने वाले ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्रदेव की अभ्यर्थना करो ॥२ ॥

४३. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर बनाने में सहायक हों, धन-धान्य से हमें परिपूर्ण करें तथा ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुये पोषक अन्न सहित हमारे निकट आयें ॥३ ॥

४४. यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

(हे याजको !) संग्राम में जिनके अश्वों से युक्त रथों के सम्मुख शत्रु टिक नहीं सकते, उन इन्द्रदेव के गुणों का आप गान करें ॥४ ॥

४५. सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥

यह निचोड़ा और शुद्ध किया हुआ दही मिश्रित सोमरस, सोमपान की इच्छा करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त प्राप्त हो ॥५ ॥

४६. त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

हे उत्तम कर्मवाले इन्द्रदेव ! आप सोमरस पीने के लिये देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होने के लिये तत्काल वृद्ध रूप हो जाते हैं ॥६ ॥

४७. आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! तीनों सवनों में व्याप्त रहने वाला यह सोम, आपके सम्मुख उपस्थित रहे एवं आपके ज्ञान को सुखपूर्वक समृद्ध करे ॥ ७ ॥

४८. त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ करने वाले इन्द्रदेव ! स्तोत्र आपकी वृद्धि करें। यह उक्थ (स्तोत्र) वचन और हमारी वाणी आपकी महत्ता बढ़ायें ॥८ ॥

४९. अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥

रक्षणीय की सर्वथा रक्षा करने वाले इन्द्रदेव बल-पराक्रम प्रदान करने वाले विविध रूपों में विद्यमान सोम रूप अन्न का सेवन करें ॥९ ॥

५०. मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे शरीर को कोई भी शत्रु क्षति न पहुँचाये। हमें कोई भी हिंसित न करे, आप हमारे संरक्षक रहें ॥१० ॥

[सूक्त - ६]

[ऋषि - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-१-३ इन्द्र ; ४, ६, ८, ९ मरुद्गण; ५-७ मरुद्गण और इन्द्र ; १० इन्द्र । छन्द-गायत्री ।]

५१. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

(वे इन्द्रदेव) द्युलोक में आदित्य रूप में,भूमि पर अहिंसक अग्नि रूप में, अन्तरिक्ष में सर्वत्र प्रसरणशील वायु रूप में उपस्थित हैं। उन्हें उक्त तीनों लोकों के प्राणी अपने कार्यों में देवलरूप से सम्बद्ध मानते हैं।

द्युलोक में प्रकाशित होने वाले नक्षत्र-ग्रह आदि उन्हीं (इन्द्रदेव) के ही स्वरूपांश हैं। (अर्थात् तीनों लोकों को प्रकाशमयी- प्राणमयी शक्तियों के वे ही एक मात्र संगठक हैं।) ॥१ ॥

५२. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

इन्द्रदेव के रथ में दोनों ओर रक्तवर्ण, संघर्षशील, मनुष्यों को गति देने वाले दो घोड़े नियोजित रहते हैं ॥२ ॥

५३. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानो प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो। (प्रति-दिन जन्म लेते हो) ॥३ ॥

५४. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

यज्ञीय नाम वाले,धारण करने में समर्थ मरुत् वास्तव में अन्न की (वृद्धि की) कामना से बार-बार (मेघ आदि) गर्भ को प्राप्त होते हैं ॥४ ॥

[यज्ञ में वायुभूत पदार्थ मेघ आदि के गर्भ में स्थापित होकर उर्वरता को बढ़ाते हैं।]

५५. वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ किले बन्दी को ध्वस्त करने में समर्थ, तेजस्वी मरुद्गणों के सहयोग से आपने गुफा में अवरुद्ध गौओं (किरणों) को खोजकर प्राप्त किया ॥५ ॥

५६. देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

देवत्व प्राप्ति की कामना वाले ज्ञानी ऋत्विज् , महान् यशस्वी, ऐश्वर्यवान् वीर मरुद्गणों की बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥६ ॥

५७. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, समान तेज वाले मरुद्गण निर्भय रहने वाले इन्द्रदेव के साथ (संगठित हुए) अच्छे लगते हैं ॥ ७ ॥

[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा - सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है।]

५८. अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

इस यज्ञ में निर्दोष , दीप्तिमान् , इष्ट प्रदायक, सामर्थ्यवान् मरुद्गणों के साथी इन्द्रदेव के सामर्थ्य की पूजा की जाती है ॥८ ॥

५९. अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

हे सर्वत्र गमनशील मरुद्गणो ! आप अन्तरिक्ष से, आकाश से अथवा प्रकाशमान द्युलोक से यहाँ पर आयें, क्योंकि इस यज्ञ में हमारी वाणियाँ आपकी स्तुति कर रही हैं ॥९ ॥

६०. इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

इस पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक अथवा द्युलोक से - कहीं से भी प्रभूत धन प्राप्त कराने के लिये, हम इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ७]

[ऋषि- मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

६१. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किण: । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

सामगान के साधकों ने गाये जाने योग्य बृहत्साम की स्तुतियों (* गाथा) से देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया है । इसी तरह याज्ञिकों ने भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की प्रार्थना की है ॥१ ॥

[* गाथा शब्द गान या पद्य के अर्थ में आया है, इसे मंत्र या ऋक् के स्तर का नहीं माना जाता ।]

६२. इन्द्र इद्धर्यो: सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्यय: ॥ २ ॥

संयुक्त करने की क्षमता वाले, वज्रधारी, स्वर्ण-मण्डित इन्द्रदेव , वचन मात्र के इशारे से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥२ ॥

['वीर्यं वा अश्व: ' के अनुसार पराक्रम ही अश्व है । जो पराक्रमी समय पर संकेत मात्र से संगठित हो जाये, इन्द्र देवता उनके साथी हैं, जो अहंकारवश बिखरे रहते हैं, वे इन्द्रदेव के प्रिय नहीं हैं ।]

६३. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्थापित किया, जिनने अपनी किरणों से पर्वत आदि समस्त विश्व को दर्शनार्थ प्रेरित किया ॥३ ॥

६४. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभि: ॥ ४ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सहस्रों प्रकार के धन - लाभ वाले छोटे-बड़े संग्रामों में वीरतापूर्वक हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

६५. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥

हम छोटे - बड़े सभी (जीवन) संग्रामों में वृत्रासुर के संहारक, वज्रपाणि इन्द्रदेव को सहायतार्थ बुलाते हैं ॥५ ॥

६६. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुत: ॥ ६ ॥

सतत दानशील, सदैव अपराजित हे इन्द्रदेव ! आप हमारे लिये मेघ से जल की वृष्टि करें ॥६ ॥

६७. तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिण: । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

प्रत्येक दान के समय , वज्रधारी इन्द्रदेव के सदृश दान की (दानी की) उपमा कहीं अन्यत्र नहीं मिलती । इन्द्रदेव की इससे अधिक उत्तम स्तुति करने मे हम समर्थ नहीं हैं ॥ ७ ॥

६८. वृषा यूथेव वंसग: कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुत: ॥ ८ ॥

सबके स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करने वाले, शक्तिमान् इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य के अनुसार , अनुदान बाँटने के लिये मनुष्यों के पास उसी प्रकार जाते हैं, जैसे वृषभ गायों के समूह में जाता है ॥८ ॥

६९. य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्र: पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

इन्द्रदेव, पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) और सब ऐश्वर्यों- सम्पदाओं के अद्वितीय स्वामी हैं ॥९ ॥

७०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

हे ऋत्विजो ! हे यजमानो ! सभी लोगों में उत्तम, इन्द्रदेव को, आप सब के कल्याण के लिये हम आमंत्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥१०॥

[सूक्त - ८]

[ऋषि- मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

७१. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे जीवन संरक्षण के लिये तथा शत्रुओं को पराभूत करने के निमित्त हमें ऐश्वर्य से पूर्ण करें ॥१॥

७२. नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै। त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

उस ऐश्वर्य के प्रभाव और आपके द्वारा रक्षित अश्वों के सहयोग से हम मुक्के का प्रहार करके (शक्ति प्रयोग द्वारा) शत्रुओं को भगा दें ॥२॥

७३. इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर तीक्ष्ण वज्रों को धारण कर हम युद्ध में स्पर्धा करने वाले शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥३॥

७४. वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित कुशल शस्त्र-चालक वीरों के साथ हम अपने शत्रुओं को पराजित करें ॥४॥

७५. महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे। द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥

हमारे इन्द्रदेव श्रेष्ठ और महान् हैं। वज्रधारी इन्द्रदेव का यश द्युलोक के समान व्यापक होकर फैले तथा इनके बल की प्रशंसा चतुर्दिक् हो ॥५॥

७६. समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ। विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥

जो संग्राम में जुटते हैं, जो पुत्र के निर्माण में जुटते हैं और बुद्धिपूर्वक ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं, वे सब इन्द्रदेव की स्तुति से इष्टफल पाते हैं ॥६॥

७७. यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

अत्यधिक सोमपान करने वाले इन्द्रदेव का उदर समुद्र की तरह विशाल हो जाता है। वह (सोमरस) जीभ से प्रवाहित होने वाले रसों की तरह सतत द्रवित होता रहता है। (सदा आर्द्र बनाये रहता है।) ॥७॥

७८. एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव की अति मधुर और सत्यवाणी उसी प्रकार सुख देती है, जिस प्रकार गो धन के दाता और पके फल वाली शाखाओं से युक्त वृक्ष यजमानों (हविदाता) को सुख देते हैं ॥८॥

७९. एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे लिये इष्टदात्री और संरक्षण प्रदान करने वाली जो आपकी विभूतियाँ हैं, वे सभी दान देने (श्रेष्ठ कार्य में नियोजन करने) वालों को भी तत्काल प्राप्त होती हैं ॥९॥

८०. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

दाता की स्तुतियाँ और उक्थ वचन अति मनोरम एवं प्रशंसनीय हैं। ये सब सोमपान करने वाले इन्द्रदेव के लिये हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ९]

[ऋषि - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

८१. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरूपी अन्नों से आप प्रफुल्लित होते हैं, अतः अपनी शक्ति से दुर्दान्त शत्रुओं पर विजय श्री वरण करने की क्षमता प्राप्त करने हेतु आप (यज्ञशाला में) पधारें ॥१ ॥

८२. एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

(हे याजको !) प्रसन्नता देने वाले सोमरस को (निचोड़कर) तैयार करो तथा सम्पूर्ण कार्यों के कर्ता इन्द्र देव के लिये सामर्थ्य बढ़ाने वाले इस सोम को अर्पित करो ॥२ ॥

८३. मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥

हे उत्तम शस्त्रों से सुसज्जित (अथवा शोभन नासिका वाले), सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव ! हमारे इन यज्ञों में आकर प्रफुल्लता प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आप आनन्दित हों ॥३ ॥

८४. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति के लिये हमने स्तोत्रों की रचना की है। हे बलशाली और पालनकर्त्ता इन्द्रदेव ! इन स्तुतियों द्वारा की गई प्रार्थना को आप स्वीकार करें ॥४ ॥

८५. सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ही विपुल ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, अतः विविध प्रकार के श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को हमारे पास प्रेरित करें; अर्थात् हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

८६. अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

हे प्रभूत ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप वैभव की प्राप्ति के लिये हमें श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें, जिससे हम परिश्रमी और यशस्वी हो सकें ॥६ ॥

८७. सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौओं, धन-धान्यों से युक्त अपार वैभव एवं अक्षय पूर्णायु प्रदान करें ॥ ७ ॥

८८. अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रभूत यश एवं विपुल ऐश्वर्य प्रदान करें तथा बहुत से रथों में भरकर अन्नादि प्रदान करें ॥८ ॥

८९. वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

धनों के अधिपति, ऐश्वर्यों के स्वामी, ऋचाओं से स्तुत्य इन्द्रदेव का हम स्तुतिपूर्वक आवाहन करते हैं। वे हमारे यज्ञ में पधार कर, हमारे ऐश्वर्य की रक्षा करें ॥९ ॥

९०. सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

सोम को सिद्ध (तैयार) करने के स्थान यज्ञस्थल पर यज्ञकर्ता, इन्द्रदेव के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - १०]

[ऋषि -मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप्]

९१. गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः। ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१ ॥

हे शतक्रतो (सौ यज्ञ या श्रेष्ठ कर्म करने वाले) इन्द्रदेव ! उद्‌गातागण (उच्च स्वर से गान करने वाले) आपका आवाहन करते हैं। स्तोतागण पूज्य इन्द्रदेव का मंत्रोच्चारण द्वारा आदर करते हैं। बाँस के ऊपर कला प्रदर्शन करने वाले नट के समान, ब्रह्मा नामक ऋत्विज् श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा इन्द्रदेव को प्रोत्साहित करते हैं ॥१ ॥

९२. यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्। तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२ ॥

जब यजमान सोमवल्ली, समिधादि के निमित्त एक पर्वत शिखर से दूसरे पर्वत शिखर पर जाते हैं और यजन कर्म करते हैं, तब उनके मनोरथ को जानने वाले इष्टप्रदायक इन्द्रदेव यज्ञ में जाने को उद्यत होते हैं ॥२ ॥

९३. युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३ ॥

हे सोमरस ग्रहीता इन्द्रदेव ! आप लम्बे केशयुक्त, शक्तिमान्, गन्तव्य तक ले जाने वाले दोनों घोड़ों को रथ में नियोजित करें। तत्पश्चात् सोमपान से तृप्त होकर हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाएँ सुनें ॥३ ॥

९४. एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव। ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥४ ॥

हे सर्वनिवासक इन्द्रदेव ! हमारी स्तुतियों का श्रवण कर आप उद्‌गाताओं, होताओं एवं अध्वर्युओं को प्रशंसा से प्रोत्साहित करें ॥४ ॥

९५. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे। शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! आप शत्रुसंहारक, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव के लिये (उनके) यश को बढ़ाने वाले उत्तम स्तोत्रों का पाठ करें, जिससे उनकी कृपा हमारी सन्तानों एवं मित्रों पर सदैव बनी रहे ॥५ ॥

९६. तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये। स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥६ ॥

हम उन इन्द्रदेव के पास मित्रता के लिये, धन -प्राप्ति और उत्तमबल - वृद्धि के लिये स्तुति करने जाते हैं। वे इन्द्रदेव बल एवं धन प्रदान करते हुए हमें संरक्षित करते हैं ॥६ ॥

९७. सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः। गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त यश सब दिशाओं में सुविस्तृत हुआ है। हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! गौओं को बाड़े से छोड़ने के समान हमारे लिये धन को प्रसारित करें ॥७ ॥

९८. नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः। जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध के समय आप के यश का विस्तार पृथ्वी और द्युलोक तक होता है। दिव्य जल - प्रवाहों पर आपका ही अधिकार है। उनसे अभिषिक्त कर हमें तृप्त करें ॥८ ॥

९९. आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥

भक्तों की स्तुति सुनने वाले हे इन्द्रदेव ! हमारे आवाहन को सुनें । हमारी वाणियों को चित्त में धारण करें । हमारे स्तोत्रों को अपने मित्र के वचनों से भी अधिक प्रीतिपूर्वक धारण करें ॥९ ॥

१००. विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् । वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! हम जानते हैं कि आप बल - सम्पन्न हैं तथा युद्धों में हमारे आवाहन को आप सुनते हैं । हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपके सहस्रों प्रकार के धन के साथ हम आपका संरक्षण भी चाहते हैं ॥१० ॥

१०१. आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

हे कुशिक के पुत्र *इन्द्रदेव ! आप इस निष्पादित सोम का पान करने के लिये हमारे पास शीघ्र आयें । हमें कर्म करने की सामर्थ्य के साथ नवीन आयु भी दें । इस ऋषि को सहस्र धनों से पूर्ण करें ॥११ ॥

[* कुशिक पुत्र विश्वामित्र के समान ही उत्पत्ति के कारण इन्द्रदेव को कुशिक पुत्र सम्बोधन दिया गया है । (विशेष द्रष्टव्य म० अनु०]

१०२. परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा की गई स्तुतियाँ सब ओर से आपकी आयु को बढ़ाती हुई आपको यशस्वी बनायें । आपके द्वारा स्वीकृत ये (स्तुतियाँ) हमारे आनन्द को बढ़ाने वाली सिद्ध हों ॥१२ ॥

[सूक्त - ११]

[ऋषि- जेतामाधुच्छन्दस । देवता - इन्द्र । छन्द - अनुष्टुप् ।]

१०३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१ ॥

समुद्र के तुल्य व्यापक, सब रथियों में महानतम, अन्नों के स्वामी और सत्प्रवृत्तियों के पालक इन्द्रदेव को समस्त स्तुतियां अभिवृद्धि प्रदान करती हैं ॥१ ॥

१०४. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते । त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२ ॥

हे बलरक्षक इन्द्रदेव ! आपकी मित्रता से हम बलशाली होकर किसी से न डरें । हे अपराजेय - विजयी इन्द्रदेव ! हम साधकगण आपको प्रणाम करते हैं ॥२ ॥

१०५. पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

देवराज इन्द्र की दानशीलता सनातन है । ऐसी स्थिति में आज के यजमान भी यदि स्तोताओं को गवादि सहित अन्न दान करते हैं, तो इन्द्रदेव द्वारा की गई सुरक्षा अक्षुण्ण रहती है ॥३ ॥

१०६. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

शत्रु के नगरों को विनष्ट करने वाले वे इन्द्रदेव युवा , ज्ञाता , अतिशक्तिशाली , शुभ कार्यों के आश्रयदाता तथा सर्वाधिक कीर्ति -युक्त होकर विविधगुण सम्पन्न हुए हैं ॥४ ॥

' त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने गौओं (सूर्य-किरणों) को चुराने वाले असुरों के व्यूह को नष्ट किया , तब असुरों से पराजित हुए देवगण आपके साथ आकर संगठित हुए ॥५ ॥

१०८. तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।

उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

संग्रामशूर हे इन्द्रदेव ! आपकी दानशीलता से आकृष्ट होकर हम होतागण पुनः आपके पास आये हैं । हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! सोमयाग में आपकी प्रशंसा करते हुए ये ऋत्विज् एवं यजमान आपकी दानशीलता को जानते हैं ॥६ ॥

१०९. मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः । विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी माया द्वारा आपने 'शुष्ण' (एक राक्षस) को पराजित किया । जो बुद्धिमान् आपकी इस माया को जानते हैं, उन्हें यश और बल देकर वृद्धि प्रदान करें ॥ ७ ॥

११०. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत । सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८ ॥

स्तोतागण, असंख्यों अनुदान देने वाले , ओजस् (बल-पराक्रम) के कारण जगत् के नियन्ता इन्द्रदेव की स्तुति करने लगे ॥८ ॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता- अग्नि,(छठवीं ऋचा के प्रथम पाद के देवता-निर्मथ्य अग्नि और आहवनीय अग्नि) । छन्द-गायत्री ।]

१११. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप यज्ञ के विधाता हैं, समस्त देवशक्तियों को तुष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं । आप यज्ञ की विधि-व्यवस्था के स्वामी हैं । ऐसे समर्थ आपको हम देव-दूत रूप में स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

११२. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२ ॥

प्रजापालक, देवों तक हवि पहुँचाने वाले, परमप्रिय, कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! हम याजकगण हवनीय मंत्रों से आपको सदा बुलाते हैं ॥२ ॥

११३. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥३ ॥

हे स्तुत्य अग्निदेव ! आप अरणि मन्थन से उत्पन्न हुए हैं । आस्तीर्ण (बिछे हुए) कुशाओं पर बैठे हुए यजमान पर अनुग्रह करने हेतु आप (यज्ञ की) हवि ग्रहण करने वाले देवताओं को इस यज्ञ में बुलाएँ ॥३ ॥

११४. ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम् । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप हवि की कामना करने वाले देवों को यहाँ बुलाएँ और इन कुशा के आसनों पर देवों के साथ प्रतिष्ठित हों ॥४ ॥

११५. घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह। अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥५ ॥

घृत आहुतियों से प्रदीप्त हे अग्निदेव ! आप राक्षसी प्रवृत्तियों वाले शत्रुओं को सम्यक् रूप से भस्म करें ॥५ ॥

११६. अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥६ ॥

यज्ञ स्थल के रक्षक, दूरदर्शी, चिरयुवा, आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले, ज्वालायुक्त आहवनीय यज्ञाग्नि को अरणि मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि से प्रज्वलित किया जाता है ॥६ ॥

११७. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम् ॥७ ॥

हे ऋत्विजो ! लोक हितकारी यज्ञ में रोगों को नष्ट करने वाले, ज्ञानवान् अग्निदेव की स्तुति आप सब विशेष रूप से करें ॥७ ॥

११८. यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति। तस्य स्म प्राविता भव ॥८ ॥

देवगणों तक हविष्यान्न पहुँचाने वाले हे अग्निदेव ! जो याजक, आप (देवदूत) की उत्तम विधि से अर्चना करते हैं, आप उनकी भली-भाँति रक्षा करें ॥८ ॥

११९. यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति। तस्मै पावक मृळय ॥९ ॥

हे शोधक अग्निदेव ! देवों के लिए हवि प्रदान करने वाले जो यजमान आपकी प्रार्थना करते हैं, आप उन्हें सुखी बनायें ॥९ ॥

१२०. स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह। उप यज्ञं हविश्च नः ॥१० ॥

हे पवित्र, दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप देवों को हमारे यज्ञ में हवि ग्रहण करने के निमित्त ले आएँ ॥१० ॥

१२१. स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा। रयिं वीरवतीमिषम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! नवीनतम गायत्री छन्द वाले सूक्त से स्तुति किये जाते हुए आप हमारे लिए पुत्रादि ऐश्वर्य और बलयुक्त अन्नों को भरपूर प्रदान करें ॥११ ॥

१२२. अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः। इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! अपनी कान्तिमान् दीप्तियों से देवों को बुलाने के निमित्त हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें ॥१२ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व । **देवता**-१-इध्म अथवा समिद्ध अग्नि, २ - तनूनपात, ३- नराशंस, ४- इळा, ५- बर्हि, ६- दिव्यद्वार, ७-उषासानक्ता, ८-दिव्यहोता प्रचेतस, ९- तीन देवियाँ - सरस्वती, इळा, भारती, १०- त्वष्टा, ११-वनस्पति, १२-स्वाहाकृति । **छन्द** -गायत्री]

१२३. सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते। होतः पावक यक्षि च ॥१ ॥

पवित्रकर्त्ता, यज्ञ सम्पादनकर्त्ता हे अग्निदेव ! आप अच्छी तरह प्रज्वलित होकर यजमान के कल्याण के लिए देवताओं का आवाहन करें और उनको लक्ष्य करके यज्ञ सम्पन्न करें अर्थात् देवों के पोषण के लिए हविष्यान्न ग्रहण करें ॥१ ॥

१२४. मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे। अद्या कृणुहि वीतये ॥२॥

ऊर्ध्वगामी, मेधावी हे अग्निदेव ! हमारी रक्षा के लिए प्राणवर्द्धक-मधुर हवियों को देवों के निमित्त प्राप्त करें और उन तक पहुँचाएँ ॥२॥

१२५. नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये। मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३॥

हम इस यज्ञ में देवताओं के प्रिय और आह्लादक (मधुजिह्व) अग्निदेव का आवाहन करते हैं। वह हमारी हवियों को देवताओं तक पहुँचाने वाले हैं, अस्तु, वे स्तुत्य हैं ॥३॥

१२६. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह। असि होता मनुर्हितः ॥४॥

मानवमात्र के हितैषी हे अग्निदेव ! आप अपने श्रेष्ठ - सुखदायी रथ से देवताओं को लेकर (यज्ञस्थल पर) पधारें। हम आपकी वन्दना करते हैं ॥४॥

१२७. स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः। यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥५॥

हे मेधावी पुरुषो ! आप इस यज्ञ में कुशा के आसनों को परस्पर मिलाकर इस तरह बिछाएँ कि उस पर घृत-पात्र को भली प्रकार रखा जा सके, जिससे अमृततुल्य घृत का सम्यक् दर्शन हो सके ॥५॥

१२८. वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः। अद्या नूनं च यष्टवे ॥६॥

आज यज्ञ करने के लिए निश्चित रूप से ऋत (यज्ञीय वातावरण) की वृद्धि करने वाले अविनाशी दिव्य-द्वार खुल जाएँ ॥६॥

१२९. नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये। इदं नो बर्हिरासदे ॥७॥

सुन्दर रूपवती रात्रि और उषा का हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं। हमारी ओर से आसन रूप में यह बर्हि (कुश) प्रस्तुत है ॥७॥

१३०. ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी। यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥८॥

उन उत्तम वचन वाले और मेधावी दोनों (अग्नियों) दिव्य होताओं को यज्ञ में यजन के निमित्त हम बुलाते हैं ॥८॥

१३१. इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥९॥

इळा, सरस्वती और मही ये तीनों देवियाँ सुखकारी और क्षयरहित हैं। ये तीनों बिछे हुए दीप्तिमान् कुश के आसनों पर विराजमान हों ॥९॥

१३२. इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये। अस्माकमस्तु केवलः ॥१०॥

प्रथम पूज्य, विविध रूप वाले त्वष्टादेव का इस यज्ञ में आवाहन करते हैं, वे देव केवल हमारे ही हों ॥१०॥

१३३. अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः। प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥११॥

हे वनस्पतिदेव ! आप देवों के लिए नित्य हविष्यान्न प्रदान करने वाले दाता को प्राणरूप उत्साह प्रदान करें ॥११॥

१३४. स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे। तत्र देवाँ उप ह्वये ॥१२॥

(हे अध्वर्यु !) आप याजकों के घर में इन्द्रदेव की तुष्टि के लिये आहुतियाँ समर्पित करें। हम होता वहाँ देवों को आमन्त्रित करते हैं ॥१२॥

[सूक्त - १४]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-गायत्री ।]

१३५. ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप समस्त देवों के साथ इस यज्ञ में सोम पीने के लिए आएँ एवं हमारी परिचर्या और स्तुतियों को ग्रहण करके यज्ञ कार्य सम्पन्न करें ॥१ ॥

१३६. आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ॥२ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! कण्वऋषि आपको बुला रहे हैं, वे आपके कार्यों की प्रशंसा करते हैं । अतः आप देवों के साथ यहाँ पधारें ॥२ ॥

१३७. इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥३ ॥

यज्ञशाला में हम इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्यगण और मरुद्गण आदि देवों का आवाहन करते हैं ॥३ ॥

१३८. प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥४ ॥

कूट-पीसकर तैयार किया हुआ, आनन्द और हर्ष बढ़ाने वाला यह मधुर सोमरस अग्निदेव के लिए चमसादि पात्रों में भरा हुआ है ॥४ ॥

१३९. ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरङ्कृतः ॥५ ॥

कण्व ऋषि के वंशज अपनी सुरक्षा की कामना से, कुश-आसन बिछाकर हविष्यान्न व अलंकारों से युक्त होकर अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१४०. घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥६ ॥

अतिदीप्तिमान् पृष्ठ भाग वाले, मन के संकल्प मात्र से ही रथ में नियोजित हो जाने वाले अश्वों (से खींचे गये रथ) द्वारा आप सोमपान के निमित देवों को ले आएँ ॥६ ॥

१४१. तान् यजत्राँ ऋतावृधो ऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ की समृद्धि एवं शोभा बढ़ाने वाले पूजनीय इन्द्रादि देव को सपत्नीक इस यज्ञ में बुलाएँ तथा उन्हें मधुर सोमरस का पान कराएँ ॥७ ॥

१४२. ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! यजन किये जाने योग्य और स्तुति किये जाने योग्य जो देवगण हैं, वे यज्ञ में आपकी जिह्वा से आनन्दपूर्वक मधुर सोमरस का पान करें ॥८ ॥

१४३. आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥९ ॥

हे मेधावी होतारूप अग्निदेव ! आप प्रातःकाल में जागने वाले विश्वेदेवों को सूर्य-रश्मियों से युक्त करके हमारे पास लाते हैं ॥९ ॥

१४४. विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्र, वायु, मित्र आदि देवों के सम्पूर्ण तेजों के साथ मधुर सोमरस का पान करें ॥१० ॥

१४५. त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि । सेमं नो अध्वरं यज ॥११ ॥

हे मनुष्यों के हितैषी अग्निदेव ! आप होता के रूप में यज्ञ में प्रतिष्ठित हों और हमारे इस हिंसारहित यज्ञ को सम्पन्न करें ॥११ ॥

१४६. युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः । ताभिर्देवाँ इहा वह ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप रोहित नामक रथ को ले जाने में सक्षम, तेजगति वाली घोड़ियों को रथ में जोतें एवं उनके द्वारा देवताओं को इस यज्ञ में लाएँ ॥१२ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व । **देवता**-(प्रतिदेवता ऋतु सहित) १,५ इन्द्र, २ मरुद्गण, ३ त्वष्टा, ४, १२ अग्नि, ६ मित्रावरुण, ७, १० द्रविणोदा, ११ अश्विनीकुमार । छन्द-गायत्री ।]

१४७. इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः । मत्सरासस्तदोकसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋतुओं के अनुकूल सोमरस का पान करें, ये सोमरस आपके शरीर में प्रविष्ट हों; क्योंकि आपकी तृप्ति का आश्रयभूत साधन यही सोम है ॥१ ॥

१४८. मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन । यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥२ ॥

दानियों में श्रेष्ठ हे मरुतो ! आप पोता नामक ऋत्विज् के पात्र से ऋतु के अनुकूल सोमरस का पान करें एवं हमारे इस यज्ञ को पवित्रता प्रदान करें ॥२ ॥

१४९. अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वं हि रत्नधा असि ॥३ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप पत्नी सहित हमारे यज्ञ की प्रशंसा करें, ऋतु के अनुकूल सोमरस का पान करें। आप निश्चय ही रत्नों को देने वाले हैं ॥३ ॥

१५०. अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु । परि भूष पिब ऋतुना ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों को यहाँ बुलाकर उन्हें यज्ञ के तीनों सवनों (प्रातः, माध्यन्दिन एवं सायं) में आसीन करें । उन्हें विभूषित करके ऋतु के अनुकूल सोम का पान करें ॥४ ॥

१५१. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु । तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ब्रह्म को जानने वाले साधक के पात्र से सोमरस का पान करें, क्योंकि उनके साथ आपकी अविच्छिन्न (अटूट) मित्रता है ॥५ ॥

१५२. युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् । ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥६ ॥

हे अटल व्रत वाले मित्रावरुण ! आप दोनों ऋतु के अनुसार बल प्रदान करने वाले हैं । आप कठिनाई से सिद्ध होने वाले इस यज्ञ को सम्पन्न करते हैं ॥६ ॥

१५३. द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे । यज्ञेषु देवमीळते ॥७ ॥

धन की कामना वाले याजक सोमरस तैयार करने के निमित्त हाथ में पत्थर धारण करके पवित्र यज्ञ में धनप्रदायक अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥७ ॥

१५४. द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे। देवेषु ता वनामहे ॥८ ॥

हे धनप्रदायक अग्निदेव ! हमें वे सभी धन प्रदान करें, जिनके विषय में हमने श्रवण किया है। वे समस्त धन हम देवगणों को ही अर्पित करते हैं ॥८ ॥

[देव-शक्तियों से प्राप्त विभूतियों का उपयोग देवकार्यों के लिये ही करने का भाव व्यक्त किया गया है।]

१५५. द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥९ ॥

धनप्रदायक अग्निदेव नेष्टापात्र (नेष्टृधिष्ण्या स्थान-यज्ञ कुण्ड) से ऋतु के अनुसार सोमरस पीने की इच्छा करते हैं। अतः हे याजकगण ! आप वहाँ जाकर यज्ञ करें और पुनः अपने निवास स्थान के लिये प्रस्थान करें ॥९ ॥

१५६. यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे। अध स्मा नो ददिर्भव ॥१० ॥

हे धनप्रदायक अग्निदेव ! ऋतुओं के अनुगत होकर हम आपके निमित सोम के चौथे भाग को अर्पित करते हैं, इसलिए आप हमारे लिये धन प्रदान करने वाले हों ॥१० ॥

१५७. अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता। ऋतुना यज्ञवाहसा ॥११ ॥

दीप्तिमान्, शुद्ध कर्म करने वाले, ऋतु के अनुसार यज्ञवाहक हे अश्विनीकुमारो ! आप इस मधुर सोमरस का पान करें ॥११ ॥

१५८. गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि। देवान् देवयते यज ॥१२ ॥

हे इष्टप्रद अग्निदेव ! आप गार्हपत्य के नियमन में ऋतुओं के अनुगत यज्ञ का निर्वाह करने वाले हैं, अतः देवत्व प्राप्ति की कामना वाले याजकों के निमित्त देवों का यजन करें ॥१२ ॥

[सूक्त - १६]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व। देवता-इन्द्र। छन्द-गायत्री।]

१५९. आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये। इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपके तेजस्वी घोड़े सोमरस पीने के लिए आपको यज्ञस्थल पर लाएँ तथा सूर्य के समान प्रकाशयुक्त ऋत्विज् मन्त्रों द्वारा आपकी स्तुति करें ॥१ ॥

१६०. इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे ॥२ ॥

अत्यन्त सुखकारी रथ में नियोजित इन्द्रदेव के दोनों हरि (घोड़े) उन्हें (इन्द्रदेव को) घृत से स्निग्ध हवि रूप धाना (भुने हुए जौ) ग्रहण करने के लिए यहाँ ले आएँ ॥२ ॥

१६१. इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥३ ॥

हम प्रातःकाल यज्ञ प्रारम्भ करते समय मध्याह्नकालीन सोमयाग प्रारम्भ होने पर तथा सायंकाल यज्ञ की समाप्ति पर भी सोमरस पीने के निमित इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥३ ॥

१६२. उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः। सुते हि त्वा हवामहे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने केसर युक्त अश्वों से सोम के अभिषव स्थान के पास आएँ। सोम के अभिषुत होने पर हम आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

१६३. सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्। गौरो न तृषितः पिब ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे स्तोत्रों का श्रवण कर आप यहाँ आएँ। प्यासे गौर मृग के सदृश व्याकुल मन से सोम के अभिषव स्थान के समीप आकर सोम का पान करें ॥५ ॥

१६४. इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि। ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह दीप्तिमान् सोम निष्पादित होकर कुश-आसन पर सुशोभित है। शक्ति - वर्द्धन के निमित्त आप इसका पान करें ॥६ ॥

१६५. अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः। अथा सोमं सुतं पिब ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह स्तोत्र श्रेष्ठ, मर्मस्पर्शी और अत्यन्त सुखकारी है। अब आप इसे सुनकर अभिषुत सोमरस का पान करें ॥ ७ ॥

१६६. विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति। वृत्रहा सोमपीतये ॥८ ॥

सोम के सभी अभिषव स्थानों की ओर इन्द्रदेव अवश्य जाते हैं। दुष्टों का हनन करने वाले इन्द्रदेव सोमरस पीकर अपना हर्ष बढ़ाते हैं ॥८ ॥

१६७. सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप हमारी गौओ और अश्वों सम्बन्धी कामनाये पूर्ण करें। हम मनोयोगपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - १७]

[ऋषि- मेधातिथि काण्व। देवता- इन्द्रावरुण। छन्द - गायत्री ४ पादनिचृत् गायत्री, ५ ह्रसीयसी गायत्री]

१६८. इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे ॥१ ॥

हम इन्द्र और वरुण दोनों प्रतापी देवों से अपनी सुरक्षा की कामना करते हैं। वे दोनों हम पर इस प्रकार अनुकम्पा करें, जिससे कि हम सुखी रहें ॥१ ॥

१६९. गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः। धर्तारा चर्षणीनाम् ॥२ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप दोनो, मनुष्यों के सम्राट्, धारक एवं पोषक हैं। हम जैसे ब्राह्मणों के आवाहन पर सुरक्षा के लिए आप निश्चय ही आने को उद्यत रहते हैं ॥२ ॥

१७०. अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ। ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥३ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! हमारी कामनाओं के अनुरूप धन देकर हमें संतुष्ट करें। आप दोनों के समीप पहुँचकर हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

१७१. युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम्। भूयाम वाजदाव्नाम् ॥४ ॥

हमारे कर्म संगठित हों, हमारी सद्‌बुद्धियाँ संगठित हों, हम अग्रगण्य होकर दान करने वाले बनें ॥४ ॥

१७२. इन्द्रःसहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥५ ॥

इन्द्रदेव सहस्रों दाताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं और वरुणदेव सहस्रों प्रशंसनीय देवों में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥५ ॥

१७३. तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि । स्यादुत प्ररेचनम् ॥६ ॥

आपके द्वारा सुरक्षित धन को प्राप्त कर हम उसका श्रेष्ठतम उपयोग करें । वह धन हमें विपुल मात्रा में प्राप्त हो ॥६ ॥

१७४. इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥७ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! विविध प्रकार के धन की कामना से हम आपका आवाहन करते हैं । आप हमें उत्तम विजय प्राप्त कराएँ ॥७ ॥

१७५. इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा । अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥८ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! हमारी बुद्धियाँ सम्यक् रूप से आपकी सेवा करने की इच्छा करती हैं, अत: हमें शीघ्र ही निश्चयपूर्वक सुख प्रदान करें ॥८ ॥

१७६. प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे । यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥९ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! जिन उत्तम स्तुतियों के लिए (प्रति) हम, आप दोनों का आवाहन करते हैं एवं जिन स्तुतियों को साथ-साथ प्राप्त करके आप दोनों पुष्ट होते हैं, वे स्तुतियाँ आपको प्राप्त हों ॥९ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि-** मेधातिथि काण्व । **देवता-** १ - ३ ब्रह्मणस्पति, ४ इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, सोम ५ ब्रह्मणस्पति, दक्षिणा, ६-८ सदसस्पति, ९ सदसस्पति या नराशंस । **छन्द** -गायत्री ।]

१७७. सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य औशिजः ॥१ ॥

हे सम्पूर्ण ज्ञान के अधिपति ब्रह्मणस्पति देव ! सोम का सेवन करने वाले यजमान को आप उशिज् के पुत्र कक्षीवान् की तरह श्रेष्ठ प्रकाश से युक्त करें ॥१ ॥

१७८. यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२ ॥

ऐश्वर्यवान्, रोगों का नाश करने वाले, धन प्रदाता और पुष्टिवर्धक तथा जो शीघ्र फलदायक हैं, वे ब्रह्मणस्पतिदेव , हम पर कृपा करें ॥२ ॥

१७९. मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥३ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! यज्ञ न करने वाले तथा अनिष्ट चिन्तन करने वाले दुष्ट शत्रु का हिंसक, दुष्ट प्रभाव हम पर न पड़े । आप हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१८०. स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः । सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥४ ॥

जिस मनुष्य को इन्द्रदेव, ब्रह्मणस्पतिदेव और सोमदेव प्रेरित करते हैं, वह वीर कभी नष्ट नहीं होता ॥४ ॥

[इन्द्र से संगठन की, ब्रह्मणस्पति से श्रेष्ठ मार्गदर्शन की एवं सोम से पोषण की प्राप्ति होती है । इनसे युक्त मनुष्य क्षीण नहीं होता । ये तीनों देव यज्ञ में एकत्रित होते हैं । यज्ञ से प्रेरित मनुष्य दु:खी नहीं होता वरन् देवत्व प्राप्त करता है ।]

१८१. त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् । दक्षिणा पात्वंहसः ॥५ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप सोमदेव , इन्द्रदेव और दक्षिणादेवी के साथ मिलकर यज्ञादि अनुष्ठान करने वाले मनुष्य की पापों से रक्षा करें ॥५ ॥

१८२. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम्॥६॥

इन्द्रदेव के प्रिय मित्र, अभीष्ट पदार्थों को देने में समर्थ, लोकों का मर्म समझने में सक्षम सदसस्पतिदेव (सत्प्रवृत्तियों के स्वामी) से हम अद्भुत मेधा प्राप्त करना चाहते हैं ॥६॥

१८३. यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति॥७॥

जिनकी कृपा के बिना ज्ञानी का भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता, वे सदसस्पतिदेव हमारी बुद्धि को उत्तम प्रेरणाओं से युक्त करते हैं ॥७॥

[सदाशयता जिनमें नहीं, ऐसे विद्वानों द्वारा यज्ञीय प्रयोजनों की पूर्ति नहीं होती।]

१८४. आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम्। होत्रा देवेषु गच्छति॥८॥

वे सदसस्पतिदेव हविष्यान्न तैयार करने वाले साधकों तथा यज्ञ को प्रवृद्ध करते हैं और वे ही हमारी स्तुतियों को देवों तक पहुँचाते हैं ॥८॥

१८५. नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्। दिवो न सद्ममखसम्॥९॥

द्युलोक के सदृश अतिदीप्तिमान्, तेजवान्, यशस्वी और मुनष्यों द्वारा प्रशंसित सदसस्पतिदेव को हमने देखा है ॥९॥

[सूक्त - १९]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व। देवता-अग्नि और मरुद्गण। छन्द-गायत्री।]

१८६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि॥१॥

हे अग्निदेव! श्रेष्ठ यज्ञों की गरिमा के संरक्षण के लिए हम आपका आवाहन करते हैं, आपको मरुतों के साथ आमंत्रित करते हैं, अतः देवताओं के इस यज्ञ में आप पधारें ॥१॥

१८७. नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः। मरुद्भिरग्न आ गहि॥२॥

हे अग्निदेव! ऐसा न कोई देव है, न ही कोई मनुष्य, जो आपके द्वारा सम्पादित महान् कर्म को कर सके। ऐसे समर्थ आप मरुद्गणों के साथ इस यज्ञ में पधारें ॥२॥

१८८. ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि॥३॥

जो मरुद्गण पृथ्वी पर श्रेष्ठ जल वृष्टि करने की (विधि जानते हैं या) क्षमता से सम्पन्न हैं। हे अग्निदेव! आप उन द्रोहरहित मरुद्गणों के साथ इस यज्ञ में पधारें ॥३॥

१८९. य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि॥४॥

हे अग्निदेव! जो अति बलशाली, अजेय और अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य के सदृश प्रकाशक हैं। आप उन मरुद्गणों के साथ यहाँ पधारें ॥४॥

१९०. ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि॥५॥

जो शुभ्र तेजों से युक्त, तीक्ष्ण, वेधक रूप वाले, श्रेष्ठ बल - सम्पन्न और शत्रु का संहार करने वाले हैं। हे अग्निदेव! आप उन मरुतों के साथ यहाँ पधारें ॥५॥

१९१. ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! ये जो मरुद्गण सबके ऊपर अधिष्ठित, प्रकाशक, द्युलोक के निवासी हैं, आप उन मरुद्गणों के साथ पधारें ॥६ ॥

१९२. य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जो पर्वत सदृश विशाल मेघों को एक स्थान से सुदूरस्थ दूसरे स्थान पर ले जाते हैं तथा जो शान्त समुद्रों में भी ज्वार पैदा कर देते हैं (हलचल पैदा कर देते हैं), ऐसे उन मरुद्गणों के साथ आप यज्ञ में पधारें ॥७ ॥

१९३. आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जो सूर्य की रश्मियों के साथ संव्याप्त होकर समुद्र को अपने ओज से प्रभावित करते हैं, उन मरुतों के साथ आप यहाँ पधारें ॥८ ॥

१९४. अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! सर्वप्रथम आपके सेवनार्थ यह मधुर सोमरस हम अर्पित करते हैं, अतः आप मरुतों के साथ यहाँ पधारें ॥९ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि**- मेधातिथि काण्व। **देवता**-ऋभुगण। **छन्द**-गायत्री।]

१९५. अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः ॥१ ॥

ऋभुदेवों के निमित्त ज्ञानियों ने अपने मुख से इन रमणीय स्तोत्रों की रचना की तथा उनका पाठ किया ॥१ ॥

१९६. य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत ॥२ ॥

जिन ऋभुदेवों ने अतिकुशलतापूर्वक इन्द्रदेव के लिए वचन मात्र से नियोजित होकर चलने वाले अश्वों की रचना की, वे शमी आदि (यज्ञ पात्र अथवा पाप शमन करने वाले देवों) के साथ यज्ञ में सुशोभित होते हैं ॥२ ॥

[चमस एक प्रकार के पात्र का नाम है, जिसे भी देव भाव से सम्बोधित किया गया है।]

१९७. तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम् ॥३ ॥

उन ऋभुदेवों ने अश्विनीकुमारों के लिए अति सुखप्रद, सर्वत्र गमनशील रथ का निर्माण किया और गौओं को उत्तम दूध देने वाली बनाया ॥३ ॥

१९८. युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥४ ॥

अमोघ मन्त्र सामर्थ्य से युक्त, सर्वत्र व्याप्त रहने वाले ऋभुदेवों ने माता-पिता में स्नेहभाव संचरित कर उन्हें पुनः जवान बनाया ॥४ ॥

[यहाँ जरावस्था दूर करने की मन्त्र - विद्या का संकेत है।]

१९९. सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता। आदित्येभिश्च राजभिः ॥५ ॥

हे ऋभुदेवो ! यह हर्षप्रद सोमरस इन्द्रदेव, मरुतों और दीप्तिमान् आदित्यों के साथ आपको अर्पित किया जाता है ॥५ ॥

२००. उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः ॥६ ॥

त्वष्टादेव के द्वारा एक ही चमस तैयार किया गया था, ऋभुदेवों ने उसे चार प्रकार का बनाकर प्रयुक्त किया ॥६ ॥

२०१. ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते। एकमेकं सुशस्तिभिः ॥७ ॥

वे उत्तम स्तुतियों से प्रशंसित होने वाले ऋभुदेव ! सोमयाग करने वाले प्रत्येक याजक को तीनों कोटि के सप्तरत्नों अर्थात् इक्कीस प्रकार के रत्नों (विशिष्ट यज्ञ कर्मों) को प्रदान करें । (यज्ञ के तीन विभाग हैं- हविर्यज्ञ, पाकयज्ञ एवं सोमयज्ञ । तीनों के सात-सात प्रकार हैं । इस प्रकार यज्ञ के इक्कीस प्रकार कहे गये हैं ।) ॥७ ॥

२०२. अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञियम् ॥८ ॥

तेजस्वी ऋभुदेवों ने अपने उत्तम कर्मों से देवों के स्थान पर अधिष्ठित होकर यज्ञ के भाग को धारण कर उसका सेवन किया ॥८ ॥

[सूक्त - २१]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-गायत्री ।]

२०३. इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि। ता सोमं सोमपातमा ॥१ ॥

इस यज्ञ स्थल पर हम इन्द्र एवं अग्निदेवों का आवाहन करते हैं, सोमपान के उन अभिलाषियों की स्तुति करते हुए सोमरस पीने का निवेदन करते हैं ॥१ ॥

२०४. ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः। ता गायत्रेषु गायत ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप यज्ञानुष्ठान करते हुए इन्द्र एवं अग्निदेवों की शस्त्रों (स्तोत्रों) से स्तुति करें, विविध अलंकारों से उन्हें विभूषित करें तथा गायत्री छन्दवाले सामगान (गायत्र साम) करते हुए उन्हें प्रसन्न करें ॥२ ॥

२०५. ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे। सोमपा सोमपीतये ॥३ ॥

सोमपान की इच्छा करने वाले मित्रता एवं प्रशंसा के योग्य उन इन्द्र एवं अग्निदेवों को हम सोमरस पीने के लिए बुलाते हैं ॥३ ॥

२०६. उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥४ ॥

अति उग्र देवगण इन्द्र एवं अग्निदेवों को सोम के अभिषव स्थान (यज्ञस्थल) पर आमन्त्रित करते हैं, वे यहाँ पधारें ॥४ ॥

२०७. ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्। अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥५ ॥

देवों में महान् वे इन्द्र-अग्निदेव सत्पुरुषों के स्वामी (रक्षक) हैं । वे राक्षसों को वशीभूत कर सरल स्वभाव वाला बनाएँ और मनुष्य भक्षक राक्षसों को मित्र - बांधवों से रहित करके निर्बल बनाएँ ॥५ ॥

२०८. तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! सत्य और चैतन्यरूप यज्ञस्थान पर आप संरक्षक के रूप में जागते रहें और हमें सुख प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - २२]

[ऋषि-मेधातिथि काण्व । देवता-१-४ अश्विनी कुमार, ५-८ सविता, ९-१० अग्नि, ११ देवियाँ, १२-इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, १३-१४ द्यावा - पृथिवी, १५ पृथिवी, १६ विष्णु अथवा देवगण, १७-२१ विष्णु । छन्द - गायत्री ।]

२०९. प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् । अस्य सोमस्य पीतये ॥१ ॥

(हे अध्वर्युगण !) प्रातःकाल चेतनता को प्राप्त होने वाले अश्विनीकुमारों को जगायें । वे हमारे इस यज्ञ में सोमपान करने के निमित्त पधारें ॥१ ॥

२१०. या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा । अश्विना ता हवामहे ॥२ ॥

ये दोनों अश्विनीकुमार सुसज्जित रथों से युक्त महान् रथी हैं । ये आकाश में गमन करते हैं । इन दोनों का हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

[यहाँ मंत्रशक्ति से चालित, आकाश मार्ग से चलने वाले यान (रथों) का उल्लेख किया गया है ।]

२११. या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी जो मधुर सत्यवचन युक्त कशा (चाबुक-वाणी) है, उससे यज्ञ को सिंचित करने की कृपा करें ॥ ३ ॥

[वाणी रूपी चाबुक से स्पष्ट होता है कि अश्विनी देवों के यान मंत्र चालित हैं । मधुर एवं सत्यवचन रूप वचनों से यज्ञ का भी सिंचन किया जाता है । कशा - चाबुक से यज्ञ के सिंचन का भाव अटपटा लगते हुए भी युक्ति संगत है ।]

२१२. नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः । अश्विना सोमिनो गृहम् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप रथ पर आरूढ़ होकर जिस मार्ग से जाते हैं, वहाँ से सोमयाग करने वाले याजक का घर दूर नहीं है ॥४ ॥

[पूर्वोक्त मंत्र में वर्णित यान के तीव्र वेग का वर्णन है ।]

२१३. हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेत्ता देवता पदम् ॥५ ॥

यजमान को (प्रकाश -ऊर्जा आदि) देने वाले हिरण्यगर्भ (हाथ में सुवर्ण धारण करने वाले या सुनहरी किरणों वाले) सवितादेव का हम अपनी रक्षा के लिये आवाहन करते हैं । वे ही यजमान के द्वारा प्राप्तव्य (गन्तव्य) स्थान को विज्ञापित (प्रकाशित) करने वाले हैं ॥५ ॥

२१४. अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि । तस्य व्रतान्युश्मसि ॥६ ॥

हे ऋत्विज् ! आप हमारी रक्षा के लिये सवितादेवता की स्तुति करें । हम उनके लिए सोमयागादि कर्म सम्पन्न करना चाहते हैं । वे सवितादेव जलों को सुखाकर पुनः सहस्रों गुना बरसाने वाले हैं ॥६ ॥

[सौर शक्ति से ही जल के शोधन, वर्षण एवं शोषण की प्रक्रिया चलाने की बात विज्ञान सम्मत है ।]

२१५. विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥७ ॥

समस्त प्राणियों के आश्रयभूत, विविध धनों के प्रदाता, मानवमात्र के प्रकाशक सूर्यदेव का हम आवाहन करते हैं ॥७ ॥

२१६. सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः । दाता राधांसि शुम्भति ॥८ ॥

हे मित्रो ! हम सब बैठकर सवितादेव की स्तुति करें । धन-ऐश्वर्य के दाता सूर्यदेव अत्यन्त शोभायमान हैं ॥८ ॥

२१७. अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये ॥९॥

हे अग्निदेव ! यहाँ आने की अभिलाषा रखने वाली देवों की पत्नियों को यहाँ ले आएँ और त्वष्टादेव को भी सोमपान के निमित्त बुलाएँ ॥९॥

२१८. आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्। वरूत्रीं धिषणां वह ॥१०॥

हे अग्निदेव ! देवपत्नियों को हमारी सुरक्षा के निमित्त यहाँ ले आएँ । आप हमारी रक्षा के लिए अग्निपत्नी होत्रा, आदित्यपत्नी भारती, वरणीय वाग्देवी धिषणा आदि देवियों को भी यहाँ ले आएँ ॥१०॥

२१९. अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥११॥

अनवरुद्ध मार्ग वाली देव-पत्नियाँ मनुष्यों को ऐश्वर्य देने में समर्थ हैं। वे महान् सुखों एवं रक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर हमारी ओर अभिमुख हों ॥११॥

२२०. इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये। अग्नायीं सोमपीतये ॥१२॥

अपने कल्याण के लिए एवं सोमपान के लिए हम इन्द्राणी, वरुणपत्नी (वरुणानी) और अग्निपत्नी (अग्नायी) का आवाहन करते हैं ॥१२॥

२२१. मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥१३॥

अति विस्तारयुक्त पृथ्वी और द्युलोक हमारे इस यज्ञकर्म को अपने-अपने अंशों द्वारा परिपूर्ण करें। वे भरण-पोषण करने वाली सामग्रियों (सुख - साधनों) से हम सभी को तृप्त करें ॥१३॥

२२२. तयोरिद्‌घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥१४॥

गंधर्वलोक के ध्रुव स्थान में - आकाश और पृथ्वी के मध्य में अवस्थित घृत के समान (सार रूप) जलों (पोषक प्रवाहों) को ज्ञानी जन अपने विवेकयुक्त कर्मों (प्रयासों) द्वारा प्राप्त करते हैं ॥१४॥

२२३. स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१५॥

हे पृथिवी देवि ! आप सुख देने वाली, बाधा हरने वाली और उत्तमवास देने वाली हैं। आप हमें विपुल परिमाण में सुख प्रदान करें ॥१५॥

२२४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥१६॥

जहाँ से (यज्ञ स्थल अथवा पृथ्वी से) विष्णुदेव ने (पोषण परक) पराक्रम दिखाया, वहाँ (उस यज्ञीय क्रम में) पृथ्वी के सप्तधामों से देवतागण हमारी रक्षा करें ॥१६॥

२२५. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥१७॥

यह सब विष्णुदेव का पराक्रम है, तीन प्रकार के (त्रिविध-त्रियामी) उनके चरण हैं। इसका मर्म धूलि भरे प्रदेश में निहित है ॥१७॥

[त्रिआयामी सृष्टि के पोषण का जो अद्‌भुत पराक्रम दिखाता है। उसका रहस्य अंतरिक्षधूलि - सूक्ष्मकणों, सबएटामिक पार्टिकल्स के प्रवाह में सन्निहित है। उसी प्रवाह से सभी प्रकार के पोषक पदार्थ बनते - बदलते रहते हैं।]

२२६. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥१८॥

विश्वरक्षक, अविनाशी विष्णुदेव तीनों लोकों में यज्ञादि कर्मों को पोषित करते हुए तीन चरणों से जगत् में व्याप्त हैं अर्थात् तीन शक्ति धाराओं (सृजन, पोषण और परिवर्तन) द्वारा विश्व का संचालन करते हैं ॥१८॥

२२७. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९ ॥

हे याजको ! सर्वव्यापक भगवान् विष्णु के सृष्टि संचालन सम्बन्धी कार्यों को (प्रजनन, पोषण और परिवर्तन की प्रक्रिया को) ध्यान से देखो । इसमें अनेकानेक व्रतों (नियमों - अनुशासनों) का दर्शन किया जा सकता है । इन्द्र (आत्मा) के योग्य मित्र उस परम सत्ता के अनुकूल बनकर रहें (ईश्वरीय अनुशासनों का पालन करें) ॥१९ ॥

२२८. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥२० ॥

जिस प्रकार सामान्य नेत्रों से आकाश में स्थित सूर्यदेव को सहजता से देखा जाता है, उसी प्रकार विद्वज्जन अपने ज्ञान-चक्षुओं से विष्णुदेव के (देवत्व के परमपद को) श्रेष्ठ स्थान को देखते (प्राप्त करते) हैं ॥२० ॥

[ईश्वर दृष्टिगम्य भले ही न हो , अनुभूतिजन्य अवश्य है ।]

२२९. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥२१ ॥

जागरूक विद्वान् स्तोतागण विष्णुदेव के उस परमपद को प्रकाशित करते हैं । (अर्थात् जन सामान्य के लिए प्रकट करते हैं) ॥२१ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व । **देवता**-१ वायु, २-३ इन्द्रवायु, ४-६ मित्रावरुण, ७-९ इन्द्र- मरुत्वान्, १०-१२ विश्वेदेवा, १३- १५ पूषा, १६-२२ तथा २३ का पूर्वार्द्ध - आपः देवता, २३ का उत्तरार्द्ध एवं २४ अग्नि । **छन्द** - १-१८ गायत्री, १९ पुर उष्णिक् , २१ प्रतिष्ठा, २० तथा २२-२४ अनुष्टुप् ।]

२३०. तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे। वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥१ ॥

हे वायुदेव ! अभिषुत सोमरस तीखा होने से दुग्ध मिश्रित करके तैयार किया गया है, आप आएँ और उत्तर वेदी के पास लाये गये इस सोमरस का पान करें ॥१ ॥

२३१. उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये ॥२ ॥

जिनका यश दिव्यलोक तक विस्तृत है, ऐसे इन्द्र और वायु देवों को हम सोमरस पीने के लिए आमंत्रित करते हैं ॥२ ॥

२३२. इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये। सहस्राक्षा धियस्पती ॥३ ॥

मन के तुल्य वेग वाले, सहस्र चक्षु वाले, बुद्धि के अधीश्वर इन्द्र एवं वायु देवों का ज्ञानीजन अपनी सुरक्षा के लिए आवाहन करते हैं । ॥३ ॥

२३३. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४ ॥

सोमरस पीने के लिए यज्ञस्थल पर प्रकट होने वाले परमपवित्र एवं बलशाली मित्र और वरुणदेवों का हम आवाहन करते हैं ॥४ ॥

२३४. ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती। ता मित्रावरुणा हुवे ॥५ ॥

सत्यमार्ग पर चलने वालों का उत्साह बढ़ाने वाले, तेजस्वी मित्रावरुणों का हम आवाहन करते हैं ॥५ ॥

२३५. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः ॥६ ॥

वरुण एवं मित्र देवता अपने समस्त रक्षा साधनों से हम सबकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं । वे हमें महान् वैभव सम्पन्न करें ॥६ ॥

२३६. मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये। सजूर्गणेन तृम्पतु ॥७॥

मरुद्‌गणों के सहित इन्द्रदेव को सोमरस पान के निमित्त बुलाते हैं। वे मरुद्‌गणों के साथ आकर तृप्त हों ॥७॥

२३७. इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥८॥

दानी पूषादेव के समान इन्द्रदेव दान देने में श्रेष्ठ हैं। वे सब मरुद्‌गणों के साथ हमारे आवाहन को सुनें ॥८॥

२३८. हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा। मा नो दुःशंस ईशत ॥९॥

हे उत्तम दानदाता मरुतो! आप अपने उत्तम साथी और बलवान् इन्द्रदेव के साथ दुष्टों का हनन करें। दुष्टता हमारा अतिक्रमण न कर सके ॥९॥

२३९. विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये। उग्रा हि पृश्निमातरः ॥१०॥

सभी मरुद्‌गणों को हम सोमपान के निमित्त बुलाते हैं। वे सभी अनेक रंगों वाली पृथ्वी के पुत्र महान् वीर एवं पराक्रमी हैं ॥१०॥

२४०. जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया। यच्छुभं याथना नरः ॥११॥

वेग से प्रवाहित होने वाले मरुतों का शब्द विजयनाद के सदृश गुंजित होता है, उससे सभी मनुष्यों का मंगल होता है ॥११॥

२४१. हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः। मरुतो मृळयन्तु नः ॥१२॥

चमकने वाली विद्युत् से उत्पन्न हुए मरुद्‌गण हमारी रक्षा करें और प्रसन्नता प्रदान करें ॥१२॥

[विज्ञान का मत है कि मेघों में बिजली चमकने से नाइट्रोजन आदि में उर्वरता बढ़ाने वाले यौगिक बनते हैं। वे निश्चित रूप से जीवन रक्षक एवं हितकारी होते हैं।]

२४२. आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः। आजा नष्टं यथा पशुम् ॥१३॥

हे दीप्तिमान् पूषादेव आप अद्‌भुत तेजों से युक्त एवं धारण - शक्ति से सम्पन्न हैं। अतः सोम को द्युलोक से वैसे ही लाएँ, जैसे खोये हुए पशु को ढूँढ़कर लाते हैं ॥१३॥

२४३. पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम्। अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥१४॥

दीप्तिमान् पूषादेव ने अंतरिक्ष गुहा में छिपे हुए शुभ्र तेजों से युक्त सोमराजा को प्राप्त किया ॥१४॥

२४४. उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत्। गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

वे पूषादेव हमारे लिए, याग के हेतुभूत सोमों के साथ वसंतादि षट्‌ऋतुओं को क्रमशः वैसे ही प्राप्त कराते हैं, जैसे यवों (अनाजों) के लिए कृषक बार-बार खेत जोतता है ॥१५॥

२४५. अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६॥

यज्ञ की इच्छा करने वालों के सहायक, मधुर रसरूप जल - प्रवाह, माताओं के सदृश पुष्टिप्रद हैं। वे दुग्ध को पुष्ट करते हुए यज्ञमार्ग से गमन करते हैं ॥१६॥

[यज्ञ द्वारा पुष्टि प्रदायक रस - प्रवाहों के विस्तार का उल्लेख है।]

२४६. अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७॥

जो ये जल सूर्य में (सूर्य किरणों में) समाहित हैं अथवा जिन जलों के साथ सूर्य का सान्निध्य है, ऐसे वे पवित्र जल हमारे यज्ञ को उपलब्ध हों ॥१७॥

[उक्त दो मंत्रों में अंतरिक्ष की कृषि का वर्णन है। खेत में अन्न दिखता नहीं, किन्तु उससे उत्पन्न होता है। पूषा-पोषण देने वाले देवों (यज्ञ एवं सूर्य आदि) द्वारा सोम (सूक्ष्म पोषक तत्त्व) बोया एवं उपजाया जाता है।]

२४७. अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥१८॥

हमारी गायें जिस जल का सेवन करती हैं, उन जलों का हम स्तुतिगान करते हैं। (अन्तरिक्ष एवं भूमि पर) प्रवहमान उन जलों के निमित्त हम हवि अर्पित करते हैं ॥१८॥

१९ से २३ तक के मंत्रों में जल के गुणों और उससे शारीरिक एवं मानसिक रोगों के शमन का उल्लेख है—

२४८. अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः ॥१९॥

जल में अमृतोपम गुण है, जल में ओषधीय गुण है। हे देवो! ऐसे जल की प्रशंसा से आप उत्साह प्राप्त करें ॥१९॥

२४९. अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥

मुझ (मंत्र द्रष्टा मुनि) से सोमदेव ने कहा है कि जल समूह में सभी ओषधियाँ समाहित हैं। जल में ही सर्व सुख प्रदायक अग्नितत्त्व समाहित है। सभी ओषधियाँ जलों से ही प्राप्त होती हैं ॥२०॥

२५०. आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम। ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१॥

हे जल समूह! जीवन रक्षक ओषधियों को हमारे शरीर में स्थित करें, जिससे हम नीरोग होकर चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करते रहें ॥२१॥

२५१. इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥२२॥

हे जल देवो! हम याजकों ने अज्ञानवश जो दुष्कृत्य किये हों, जान-बूझकर किसी से द्रोह किया हो, सत्पुरुषों पर आक्रोश किया हो या असत्य आचरण किया हो तथा इस प्रकार के हमारे जो भी दोष हों, उन सबको बहाकर दूर करें ॥२२॥

२५२. आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥२३॥

आज हमने जल में प्रविष्ट होकर अवभृथ स्नान किया है, इस प्रकार जल में प्रवेश करके हम रस से आप्लावित हुए हैं। हे पयस्वान्! हे अग्निदेव! आप हमें वर्चस्वी बनाएँ, हम आपका स्वागत करते हैं ॥२३॥

२५३. सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥२४॥

हे अग्निदेव! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें। हमें प्रजा और दीर्घ आयु से युक्त करें। देवगण हमारे अनुष्ठान को जानें और इन्द्रदेव ऋषियों के साथ इसे जानें ॥२४॥

[सूक्त - २४]

[ऋषि-शुन:शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । देवता-१ क (प्रजापति), २ अग्नि, ३-४ सविता, ५ सविता अथवा भग, ६-१५ वरुण । छन्द-१,२,६-१५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री ।]

२५४. **कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।**
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१ ॥

हम अमर देवों में से किस देव के सुन्दर नाम का स्मरण करें ? कौन से देव हमें महती अदिति - पृथिवी को प्राप्त करायेंगे ? जिससे हम अपने पिता और माता को देख सकेंगे ॥१ ॥

२५५. **अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।**
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥२ ॥

हम अमर देवों में प्रथम अग्निदेव के सुन्दर नाम का मनन करें । वह हमें महती अदिति को प्राप्त करायेंगे, जिससे हम अपने माता-पिता को देख सकेंगे ॥२ ॥

२५६. **अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन्भागमीमहे ॥३ ॥**

हे सर्वदा रक्षणशील सवितादेव ! आप वरण करने योग्य धनों के स्वामी हैं, अत: हम आपसे ऐश्वर्यों के उत्तम भाग को माँगते हैं ॥३ ॥

२५७. **यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥४ ॥**

हे सवितादेव ! आप तेजस्विता युक्त, निन्दा रहित, द्वेष रहित, वरण करने योग्य धनों को दोनों हाथों से धारण करने वाले हैं ॥४ ॥

२५८. **भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ॥५ ॥**

हे सवितादेव ! हम आपके ऐश्वर्य की छाया में रहकर संरक्षण को प्राप्त करें । उन्नति करते हुए सफलताओं के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचकर भी अपने कर्तव्यों को पूरा करते रहें ॥५ ॥

[उच्चपदों पर पहुँचकर भी मानवोचित सहज कर्तव्यों को न भूलने का संकल्प यहाँ व्यक्त हो रहा है ।]

२५९. **नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।**
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६ ॥

हे वरुणदेव ! ये उड़ने वाले पक्षी आपके पराक्रम, आपके बल और सुनीति युक्त क्रोध (मन्यु) को नहीं जान पाते । सतत गमनशील जलप्रवाह आपकी गति को नहीं जान सकते और प्रबल वायु के वेग भी आपको नहीं रोक सकते ॥६ ॥

२६०. **अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।**
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७ ॥

पवित्र पराक्रम युक्त राजा वरुण (सबको आच्छादित करने वाले) दिव्य तेज पुञ्ज (सूर्यदेव) को, आधाररहित आकाश में धारण करते हैं । इस तेज पुञ्ज (सूर्यदेव) का मुख नीचे की ओर और मूल ऊपर की ओर है । इसके मध्य में दिव्य किरणें विस्तीर्ण होती चलती हैं ॥ ७ ॥

२६१. उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ।

अपदे पादा प्रतिधातवे ऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥८ ॥

राजा वरुणदेव ने सूर्यगमन के लिए विस्तृत मार्ग निर्धारित किया है, जहाँ पैर भी स्थापित न हो, वे ऐसे अन्तरिक्ष स्थान पर भी चलने के लिए मार्ग विनिर्मित कर देते हैं और वे हृदय की पीड़ा का निवारण करने वाले हैं ॥८ ॥

२६२. शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।

बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९ ॥

हे वरुणदेव ! आपके पास असंख्य उपाय हैं । आपकी उत्तम बुद्धि अत्यन्त व्यापक और गम्भीर है । आप हमारी पाप वृत्तियों को हमसे दूर करें । किये हुए पापों से हमें विमुक्त करें ॥९ ॥

२६३. अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।

अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१० ॥

ये नक्षत्रगण आकाश मे रात्रि के समय दीखते हैं, परन्तु ये दिन मे कहाँ विलीन होते हैं ? विशेष प्रकाशित चन्द्रमा रात्रि में आता है । वरुणराजा के ये नियम कभी नष्ट नहीं होते ॥१० ॥

२६४. तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।

अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११ ॥

हे वरुणदेव ! मन्त्ररूप वाणी से आपकी स्तुति करते हुए आपसे याचना करते हैं । यजमान हविष्यान्न अर्पित करते हुए कहते हैं - हे बहु प्रशंसित देव ! हमारी उपेक्षा न करें, हमारी स्तुतियों को जानें । हमारी आयु को क्षीण न करें ॥११ ॥

२६५. तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे।

शुनः शेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२ ॥

रात-दिन में (अनवरत) ज्ञानियों के कहे अनुसार यही ज्ञान (चिन्तन) हमारे हृदय में होता रहा है कि बन्धन में पड़े शुनःशेप ने जिस वरुणदेव को बुलाकर मुक्ति को प्राप्त किया, वही वरुणदेव हमें भी बन्धनों से मुक्त करें ॥१२

२६६. शुनः शेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः।

अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥१३ ॥

तीन स्तम्भों में बँधे हुए शुनःशेप ने अदिति पुत्र वरुणदेव का आवाहन करके उनसे निवेदन किया कि वे ज्ञानी और अटल वरुणदेव हमारे पाशों को काटकर हमें मुक्त करें ॥१३ ॥

२६७. अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः।

क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४ ॥

हे वरुणदेव ! आपके क्रोध को शान्त करने के लिए हम स्तुति रूप वचनों को सुनाते हैं । हविर्द्रव्यों के द्वारा यज्ञ में सन्तुष्ट होकर हे प्रखर बुद्धि वाले राजन् ! आप हमारे यहाँ वास करते हुए हमें पापों के बन्धन से मुक्त करें ॥१४ ॥

२६८. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५ ॥

हे वरुणदेव ! आप तीनों तापों रूपी बन्धनों से हमें मुक्त करें । आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाश हमसे दूर हों तथा मध्य के एवं नीचे के बन्धन अलग करें । हे सूर्य पुत्र ! पापों से रहित होकर हम आपके कर्मफल सिद्धान्त में अनुशासित हों, दयनीय स्थिति में हम न रहें ॥१५ ॥

[सूक्त - २५]

[ऋषि -शुन:शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । **देवता** -वरुण । **छन्द-** गायत्री ।**]**

२६९. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥

हे वरुणदेव ! जैसे अन्य मनुष्य आपके व्रत-अनुष्ठान में प्रमाद करते हैं, वैसे ही हमसे भी आपके नियमों आदि में कभी-कभी प्रमाद हो जाता है । (कृपया इसे क्षमा करें ।) ॥१ ॥

२७०. मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः । मा हृणानस्य मन्यवे ॥२ ॥

हे वरुणदेव ! आप अपने निरादर करने वाले का वध करने के लिए धारण किये गये शस्त्र के सम्मुख हमें प्रस्तुत न करें । अपनी क्रुद्ध अवस्था में भी हम पर कृपा करके क्रोध न करें ॥२ ॥

२७१. वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥३ ॥

हे वरुणदेव ! जिस प्रकार रथी वीर अपने थके घोड़ों की परिचर्या करते हैं, उसी प्रकार आपके मन को हर्षित करने के लिए हम स्तुतियों का गान करते हैं ॥३ ॥

२७२. परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥४ ॥

(हे वरुणदेव !) जिस प्रकार पक्षी अपने घोसलों की ओर दौड़ते हुए गमन करते हैं, उसी प्रकार हमारी चंचल बुद्धियाँ धन प्राप्ति के लिए दूर- दूर दौड़ती हैं ॥४ ॥

२७३. कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥५ ॥

बल-ऐश्वर्य के अधिपति सर्वद्रष्टा वरुणदेव को कल्याण के निमित्त हम यहाँ (यज्ञस्थल में) कब बुलायेंगे ? (अर्थात् यह अवसर कब मिलेगा ?) ॥५ ॥

२७४. तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः । धृतव्रताय दाशुषे ॥६ ॥

व्रत धारण करने वाले (हविष्यान्न) दाता यजमान के मंगल के निमित्त ये मित्र और वरुण देव हविष्यान्न की इच्छा करते हैं, वे कभी उसका त्याग नहीं करते । वे हमें बन्धन से मुक्त करें ॥६ ॥

२७५. वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नावः समुद्रियः ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! अन्तरिक्ष में उड़ने वाले पक्षियों के मार्ग को और समुद्र में संचार करने वाली नौकाओं के मार्ग को भी आप जानते हैं ॥७ ॥

२७६. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः । वेदा य उपजायते ॥८ ॥

नियमधारक वरुणदेव प्रजा के उपयोगी बारह महीनों को जानते हैं और तेरहवें माह (अधिक मास) को भी जानते हैं ॥८ ॥

२७७. वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥९ ॥

वे वरुणदेव अत्यन्त विस्तृत, दर्शनीय और अधिक गुणवान् वायु के मार्ग को जानते हैं। वे ऊपर द्युलोक में रहने वाले देवों को भी जानते हैं ॥९ ॥

२७८. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१० ॥

प्रकृति के नियमों का विधिवत् पालन कराने वाले, श्रेष्ठ कर्मो मे सदैव निरत रहने वाले वरुणदेव प्रजाओं में साम्राज्य स्थापित करने के लिए बैठते हैं ॥१० ॥

२७९. अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा ॥११ ॥

सब अद्‌भुत कर्मो की क्रिया-विधि जानने वाले वरुणदेव, जो कर्म सम्पादित हो चुके हैं और जो किये जाने हैं, उन सबको भली-भाँति देखते हैं ॥११ ॥

२८०. स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१२ ॥

वे उत्तम कर्मशील अदिति पुत्र वरुणदेव हमें सदा श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रेरित करें और हमारी आयु को बढ़ाएँ ॥१२ ॥

२८१. बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे ॥१३ ॥

सुवर्णमय कवच धारण करके वरुणदेव अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर को सुसज्जित करते हैं। शुभ्र प्रकाश किरणे उनके चारों ओर विस्तीर्ण होती हैं ॥१३ ॥

२८२. न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः ॥१४ ॥

हिंसा करने की इच्छा वाले शत्रु-जन(भयाक्रान्त होकर) जिनकी हिंसा नहीं कर पाते, लोगों के प्रति द्वेष रखने वाले, जिनसे द्वेष नहीं कर पाते- ऐसे (वरुण) देव को पापीजन स्पर्श तक नहीं कर पाते ॥१४ ॥

२८३. उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा ॥१५ ॥

जिन वरुणदेव ने मनुष्यों के लिए विपुल अन्न - भंडार उत्पन्न किया है; उन्होंने ही हमारे उदर में पाचन सामर्थ्य भी स्थापित की है ॥१५ ॥

२८४. परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६ ॥

उस सर्वद्रष्टा वरुणदेव की कामना करने वाली हमारी बुद्धियाँ, वैसे ही उन तक पहुँचती हैं, जैसे गौएँ गोष्ठ (बाड़े) की ओर जाती हैं ॥१६ ॥

२८५. सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७ ॥

होता (अग्निदेव) के समान हमारे द्वारा लाकर समर्पित की गई हवियों का आप अग्निदेव के समान भक्षण करें, फिर हम दोनों वार्ता करेंगे ॥१७ ॥

२८६. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः ॥१८ ॥

दर्शन योग्य वरुणदेव को उनके रथ के साथ हमने भूमि पर देखा है। उन्होंने हमारी स्तुतियाँ स्वीकारी हैं ॥१८ ॥

२८७. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके ॥१९ ॥

हे वरुणदेव ! आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें, हमें सुखी बनायें । अपनी रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१९ ॥

२८८. त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि ॥२०॥

हे मेधावी वरुणदेव ! आप द्युलोक,भूलोक और सारे विश्वपर आधिपत्य रखते हैं, आप हमारे आवाहन को स्वीकार कर 'हम रक्षा करेंगे'- ऐसा प्रत्युत्तर प्रदान करें ॥२०॥

२८९. उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे ॥२१॥

हे वरुणदेव ! हमारे उत्तम (ऊपर के) पाश को खोल दें, हमारे मध्यम पाश को काट दें और हमारे नीचे के पाश को हटाकर हमें उत्तम जीवन प्रदान करें ॥२१॥

[सूक्त-२६]

[ऋषि -शुनःशेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र)। देवता-अग्नि। छन्द-गायत्री।]

२९०. वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते। सेमं नो अध्वरं यज ॥१॥

हे यज्ञ योग्य, (हवियोग्य) अन्नों के पालक अग्निदेव ! आप अपने तेजरूप वस्त्रों को पहनकर हमारे यज्ञ को सम्पादित करें ॥१॥

२९१. नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः। अग्ने दिवित्मता वचः ॥२॥

सदा तरुण रहने वाले हे अग्निदेव ! आप सर्वोत्तम होता (यज्ञ सम्पन्न कर्त्ता) के रूप में यज्ञकुण्ड में स्थापित होकर यजमान के स्तुति वचनों का श्रवण करें ॥२॥

२९२. आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्यः ॥३॥

हे वरण करने योग्य अग्निदेव ! जैसे पिता अपने पुत्र के, भाई अपने भाई के और मित्र अपने मित्र के सहायक होते हैं, वैसे ही आप हमारी सहायता करें ॥३॥

२९३. आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा। सीदन्तु मनुषो यथा ॥४॥

जिस प्रकार प्रजापति के यज्ञ में "मनु" आकर शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार शत्रुनाशक वरुणदेव, मित्र- देव एवं अर्यमादेव हमारे यज्ञ में आकर विराजमान हों ॥४॥

२९४. पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥५॥

पुरातन होता हे अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ से और हमारे मित्रभाव से प्रसन्न हों और हमारी स्तुतियों को भली प्रकार सुनें ॥५॥

२९५. यच्चिद्धि शश्वता तना देवन्देवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः ॥६॥

हे अग्निदेव ! इन्द्र, वरुण आदि अन्य देवताओं के लिए प्रतिदिन विस्तृत आहुतियाँ अर्पित करने पर भी सभी हविष्यान्न आपको ही प्राप्त होते हैं ॥६॥

२९६. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः। प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥७॥

यज्ञ सम्पन्न करने वाले प्रजापालक, आनन्दवर्धक, वरण करने योग्य हे अग्निदेव ! आप हमें प्रिय हों तथा श्रेष्ठ विधि से यज्ञाग्नि की रक्षा करते हुए हम सदैव आपके प्रिय रहें ॥७॥

२९७. स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः। स्वग्नयो मनामहे ॥८॥

उत्तम अग्नि से युक्त होकर देदीप्यमान ऋत्विजों ने हमारे लिए ऐश्वर्य को धारण किया है, वैसे ही हम उत्तम अग्नि से युक्त होकर इनका (ऋत्विज् का) स्मरण करते हैं ॥८॥

२९८. अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्। मिथ: सन्तु प्रशस्तय: ॥९ ॥

अमरत्व को धारण करने वाले हे अग्निदेव ! आपके और हम मरणशील मनुष्यों के बीच स्नेहयुक्त, प्रशंसनीय वाणियों का आदान - प्रदान होता रहे ॥९ ॥

२९९. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वच: । चनो धा: सहसो यहो ॥१० ॥

बल के पुत्र (अरणि मन्थन रूप शक्ति से उत्पन्न) हे अग्निदेव ! आप (आहवनीयादि) अग्नियों के साथ यज्ञ में पधारें और स्तुतियों को सुनते हुए हमें अन्न (पोषण) प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - शुन: शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । **देवता** - १-१२ अग्नि, १३ देवतागण । छन्द-१-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप्।]

३००. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभि: । सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१ ॥

तमोनाशक, यज्ञों के सम्राट् स्वरूप हे अग्निदेव ! हम स्तुतियों के द्वारा आपकी वन्दना करते हैं। जिस प्रकार अश्व अपनी पूँछ के बालों से मक्खी - मच्छरों को दूर भगाता है, उसी प्रकार आप भी अपनी ज्वालाओं से हमारे विरोधियों को दूर भगायें ॥१ ॥

३०१. स घा न: सूनु: शवसा पृथुप्रगामा सुशेव: । मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२ ॥

हम इन अग्निदेव की उत्तम विधि से उपासना करते हैं। वे बल से उत्पन्न, शीघ्र गतिशील अग्निदेव हमें अभीष्ट सुखों को प्रदान करें ॥२ ॥

३०२. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायो: । पाहि सदमिद्विश्वायु: ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! सब मनुष्यों के हितचिंतक आप दूर से और निकट से, अनिष्ट चिन्तकों से सदैव हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

३०३. इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोच: ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे गायत्री परक प्राण-पोषक स्तोत्रों एवं नवीन अन्न (हव्य) को देवों तक (देव वृत्तियों के पोषण हेतु) पहुँचायें ॥४ ॥

३०४. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठ (आध्यात्मिक), मध्यम (आधिदैविक) एवं कनिष्ठ (आधिभौतिक) अर्थात् सभी प्रकार की धन-सम्पदा प्रदान करें ॥५ ॥

३०५. विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥६ ॥

सात ज्वालाओं से दीप्तिमान् हे अग्निदेव ! आप धनदायक हैं। नदी के पास आने वाली जल तरंगों के सदृश आप हविष्यान्न-दाता को तत्क्षण (श्रेष्ठ) कर्मफल प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३०६. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुना: । स यन्ता शश्वतीरिष: ॥७ ॥

हे अग्नि देव ! आप जीवन - संग्राम में जिस पुरुष को प्रेरित करते हैं, उनकी रक्षा आप स्वयं करते हैं। साथ ही उनके लिए पोषक अन्नों की पूर्ति भी करते हैं ॥ ७ ॥

३०७. नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥८॥

हे शत्रु विजेता अग्निदेव ! आपके उपासक को कोई पराजित नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी (आपके द्वारा प्रदत्त) तेजस्विता प्रसिद्ध है ॥८॥

३०८. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ॥९॥

सब मनुष्यों के कल्याणकारक वे अग्निदेव जीवन - संग्राम में अश्व रूपी इन्द्रियों द्वारा विजयी बनाने वाले हों। मेधावी पुरुषों द्वारा प्रशंसित वे अग्निदेव हमें अभीष्ट फल प्रदान करें ॥९॥

३०९. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१०॥

स्तुतियों से देवों को प्रबोधित करने वाले हे अग्निदेव ! ये यजमान, पुनीत यज्ञ स्थल पर दुष्टता-विनाश हेतु आपका आवाहन करते हैं ॥१०॥

३१०. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ॥११॥

अपरिमित धूम्र-ध्वजा से युक्त, आनन्दप्रद, महान् वे अग्निदेव हमें ज्ञान और वैभव की ओर प्रेरित करें ॥११॥

३११. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥१२॥

विश्वपालक, अत्यन्त तेजस्वी और ध्वजा सदृश गुणों से युक्त दूरदर्शी वे अग्निदेव वैभवशाली राजा के समान हमारी स्तवन रूपी वाणियों को ग्रहण करें ॥१२॥

३१२. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥१३॥

बड़ों, छोटों, युवकों और वृद्धों को हम नमस्कार करते हैं। सामर्थ्य के अनुसार हम देवों का यजन करें। हे देवो ! अपने से बड़ों के सम्मान में हमारे द्वारा कोई त्रुटि न हो ॥१३॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र)। **देवता**- १-४ इन्द्र, ५-६ उलूखल, ७-८ उलूखल- मुसल, ९ प्रजापति, हरिश्चन्द्र; अधिषवणचर्म अथवा सोम। **छन्द**-१-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री।]

३१३. यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ (सोमवल्ली) कूटने के लिए बड़ा मूसल उठाया जाता है (अर्थात् सोमरस तैयार किया जाता है), वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न सोमरस का पान करें ॥१॥

३१४. यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ दो जंघाओं के समान विस्तृत, सोम कूटने के दो फलक रखे हैं, वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न सोम का पान करें ॥२॥

३१५. यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ गृहिणी सोमरस तैयार करने के लिए कूटने (मूसल चलाने) का अभ्यास करती है, वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न सोमरस का पान करें ॥३॥

३१६. यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ सारथी द्वारा घोड़े को लगाम लगाने के समान (मथानी को) रस्सी से बाँधकर मन्थन करते हैं, वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न हुए सोमरस का पान करें ॥४ ॥

३१७. यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५ ॥

हे उलूखल ! यद्यपि घर-घर में तुमसे काम लिया जाता है, फिर भी हमारे घर में विजय-दुन्दुभि के समान उच्च शब्द करो ॥५ ॥

३१८. उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्। अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥६ ॥

हे उलूखल- मूसल रूप वनस्पते ! तुम्हारे सामने वायु विशेष गति से बहती है। हे उलूखल ! अब इन्द्रदेव के सेवनार्थ सोमरस का निष्पादन करो ॥६ ॥

३१९. आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः। हरी इवान्धांसि बप्सता ॥७ ॥

यज्ञ के साधन रूप पूजन-योग्य वे उलूखल और मूसल दोनों, अन्न (चने) खाते हुए इन्द्रदेव के दोनों अश्वों के समान उच्च स्वर से शब्द करते हैं ॥७ ॥

३२०. ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः। इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥८ ॥

दर्शनीय उलूखल एवं मूसल रूप हे वनस्पते ! आप दोनों सोमयाग करने वालों के साथ इन्द्रदेव के लिए मधुर सोमरस का निष्पादन करें ॥८ ॥

३२१. उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज। नि धेहि गोरधि त्वचि ॥९ ॥

उलूखल और मूसल द्वारा निष्पादित सोम को पात्र से निकालकर पवित्र कुशा के आसन पर रखें और अवशिष्ट को छानने के लिए पवित्र चर्म पर रखें ॥९ ॥

[सूक्त - २९]

[ऋषि-शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र)। देवता-इन्द्र। छन्द-पंक्ति।]

३२२. यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१ ॥

हे सत्य स्वरूप सोमपायी इन्द्रदेव ! यद्यपि हम प्रशंसा पाने के पात्र तो नहीं हैं, तथापि हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और घोड़े प्रदान करके सम्पन्न बनायें ॥१ ॥

३२३. शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शक्तिशाली, शिरस्त्राण धारण करने वाले, बलों के अधीश्वर और ऐश्वर्यशाली हैं। आपका सदैव हम पर अनुग्रह बना रहे ॥२ ॥

३२४. नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! दोनों दुर्गतियाँ (विपत्ति और दरिद्रता) परस्पर एक दूसरे को देखती हुई सो जायें। वे कभी न

जागें, वे अचेत पड़ी रहें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनायें ॥३

[अश्व (पराक्रम) से विपत्ति तथा (पौष्टिक आहार उत्पादक) गौ से दरिद्रता प्रभावहीन होती है ।]

३२५. ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शत्रु सोते रहें और हमारे वीर मित्र जागते रहें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनायें ॥४ ॥

३२६. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! कपटपूर्ण वाणी बोलने वाले शत्रु रूप गधे को मार डालें । हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनायें ॥५ ॥

३२७. पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! विध्वंसकारी बवंडर वनों से दूर जाकर गिरे । हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनायें ॥६ ॥

३२८. सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम पर आक्रोश करने वाले सब शत्रुओं को विनष्ट करें । हिंसकों का नाश करें । हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनायें ॥७ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । देवता-१-१६ इन्द्र, १७-१९ अश्विनीकुमार, २०-२२ उषा । छन्द - १-१०, १२-१५ तथा १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृत् गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।]

३२९. आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥१ ॥

जिस प्रकार अन्न की इच्छा वाले, खेत में पानी सींचते हैं, उसी तरह हम बल की कामना वाले साधक उन महान् इन्द्रदेव को सोमरस से सींचते हैं ॥१ ॥

३३०. शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥२ ॥

नीचे की ओर जाने वाले जल के समान सैकड़ों कलश सोमरस, सहस्रों कलश दूध में मिश्रित होकर इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥२ ॥

३३१. सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥३ ॥

समुद्र में एकत्र हुए जल के सदृश सोमरस इन्द्रदेव के पेट में एकत्र होकर उन्हें हर्ष प्रदान करता है ॥३ ॥

२. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! कपोत जिस स्नेह के साथ गर्भवती कपोती के पास रहता है, उसी प्रकार (स्नेहपूर्वक) यह सोमरस पके लिये प्रस्तुत है । आप हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥४ ॥

३३३. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥५ ॥

जो (स्तोतागण), हे इन्द्र ! हे धनाधिपति ! हे स्तुतियों के आश्रयभूत ! हे वीर ! (इत्यादि) स्तुतियाँ करते हैं, उनके लिये आपकी विभूतियाँ प्रिय एवं सत्य सिद्ध हों ॥५ ॥

३३४. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये स्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥६ ॥

सैकड़ों यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! संघर्षो (जीवन - संग्राम) में हमारे संरक्षण के लिये आप प्रयत्नशील रहें । हम आप से अन्य (श्रेष्ठ) कार्यों के विषय में भी परस्पर विचार-विनिमय करते रहें ॥६ ॥

३३५. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥७ ॥

सत्कर्मों के शुभारम्भ में एवं हर प्रकार के संग्राम में बलशाली इन्द्रदेव का हम अपने संरक्षण के लिये मित्रवत् आवाहन करते हैं ॥७ ॥

३३६. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥८ ॥

हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वे इन्द्रदेव निश्चित ही सहस्रों रक्षा - साधनों तथा अन्न, ऐश्वर्य आदि सहित हमारे पास आयेंगे ॥८ ॥

३३७. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥९ ॥

हम सहायता के लिये स्वर्गधाम के वासी, बहुतों के पास पहुँचकर उन्हें नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । हमारे पिता ने भी ऐसा ही किया था ॥९ ॥

३३८. तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत । सखे वसो जरितृभ्यः ॥१० ॥

हे विश्ववरणीय इन्द्रदेव ! बहुतों द्वारा आवाहित किये जाने वाले आप स्तोताओं के आश्रय दाता और मित्र हैं । हम (ऋत्विग्गण) आप से उन (स्तोताओं) को अनुगृहीत करने की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥

३३९. अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् । सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥११ ॥

हे सोम पीने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ! सोम पीने के योग्य हमारे प्रियजनों और मित्रजनों में आप ही श्रेष्ठ सामर्थ्य वाले हैं ॥११ ॥

३४०. तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु । यथा त उश्मसीष्टये ॥१२ ॥

हे सोम पीने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ! हमारी इच्छा पूर्ण करें । हम इष्ट-प्राप्ति के निमित्त आपकी कामना करें और वह पूर्ण हो ॥१२ ॥

३४१. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१३ ॥

जिन (इन्द्रदेव) की कृपा से हम धन-धान्य से परिपूर्ण होकर प्रफुल्लित होते हैं । उन इन्द्रदेव के प्रभाव से हमारी गौएँ (भी) प्रचुर मात्रा में दुग्ध-घृतादि देने की सामर्थ्य वाली हों ॥१३ ॥

३४२. आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥१४ ॥

हे धैर्यशाली इन्द्रदेव ! आप कल्याणकारी बुद्धि से स्तुति करने वाले स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ अवश्य प्रदान करें । आप स्तोताओं को धन देने के लिए रथ के चक्रों को मिलाने वाली धुरी के समान ही सहायक हैं ॥१४ ॥

३४३. आ यहुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं द्वारा इच्छित धन उन्हें प्रदान करें । जिस प्रकार रथ की गति से उसके अक्ष (धुरे के आधार) को भी गति मिलती है, उसी प्रकार स्तुतिकर्ताओं को धन की प्राप्ति हो ॥१५ ॥

३४४. शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६ ॥

सदैव स्फूर्तिवान्, सदैव (शब्दवान्) हिनहिनाते हुए तीव्र गतिशील अश्वों के द्वारा जो इन्द्रदेव शत्रुओं के धन को जीतते हैं; उन पराक्रमशील इन्द्रदेव ने अपने स्नेह से हमें सोने का रथ (अकूत-वैभव) दिया है ॥१६ ॥

३४५. आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७ ॥

हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! आप बलशाली अश्वों के साथ अन्नों, गौओं और स्वर्णादि धनों को लेकर यहाँ पधारें ॥१७ ॥

३४६. समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥१८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए जुतने वाला एक ही रथ आकाश मार्ग से जाता है । उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥१८ ॥

३४७. न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥१९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप के रथ (पोषण प्रक्रिया) का एक चक्र पृथ्वी के मूर्धा भाग में (पर्यावरण चक्र के रूप में) स्थित है और दूसरा चक्र द्युलोक में सर्वत्र गतिशील है ॥१९ ॥

३४८. कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥२० ॥

हे स्तुति-प्रिय, अमर, तेजोमयी उषे ! कौन मनुष्य आपका अनुदान प्राप्त करता है ? किसे आप प्राप्त होती हैं ? (अर्थात् प्रायः सभी मनुष्य आलस्यादि दोषों के कारण आप का लाभ पूर्णतया नहीं प्राप्त कर पाते) ॥२० ॥

३४९. वयं हि ते अमन्मह्याऽन्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥२१ ॥

हे अश्व (किरणों) युक्त चित्र-विचित्र प्रकाश वाली उषे ! हम दूर अथवा पास से आपकी महिमा समझने में समर्थ नहीं हैं ॥२१ ॥

३५०. त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥२२ ॥

हे द्युलोक की पुत्री उषे ! आप उन (दिव्य) बलों के साथ यहाँ आयें और हमें उत्तम ऐश्वर्य धारण करायें ॥२२ ॥

[सूक्त - ३१]

[ऋषि-हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता-अग्नि । छन्द-जगती ८,१६,१८ त्रिष्टुप् ।]

३५१. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वप्रथम अंगिरा ऋषि के रूप में प्रकट हुए, तदनन्तर सर्वद्रष्टा, दिव्यतायुक्त, कल्याणकारी और देवों के सर्वश्रेष्ठ मित्र के रूप में प्रतिष्ठित हुए । आप के व्रतानुशासन से मरुद्‌गण क्रान्तदर्शी कर्मों के ज्ञाता और श्रेष्ठ तेज आयुधों से युक्त हुए हैं ॥१ ॥

३५२. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप अंगिराओं में आद्य और शिरोमणि हैं । आप देवताओं के नियमों को सुशोभित करते हैं । आप संसार में व्याप्त तथा दो माताओं वाले दो अरणियों से समुद्‌भूत होने से बुद्धिमान् हैं । आप मनुष्यों के हितार्थ सर्वत्र विद्यमान रहते हैं ॥२ ॥

३५३. त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ज्योतिर्मय सूर्यदेव के पूर्व और वायु के भी पूर्व आविर्भूत हुए । आपके बल से आकाश और पृथ्वी काँप गये । होता रूप में वरण किये जाने पर आपने यज्ञ के कार्य का सम्पादन किया । देवों का यजनकार्य पूर्ण करने के लिए आप यज्ञ वेदी पर स्थापित हुए ॥३ ॥

३५४. त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म वाले हैं । आपने मनु और सुकर्मा-पुरूरवा को स्वर्ग के आशय से अवगत कराया । जब आप मातृ-पितृ रूप दो काष्ठों के मंथन से उत्पन्न हुए, तो सूर्यदेव की तरह पूर्व से पश्चिम तक व्याप्त हो गये ॥४ ॥

३५५. त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप बड़े बलिष्ठ और पुष्टिवर्धक हैं । हविदाता, स्रुवा हाथ में लिये स्तुति को उद्यत हैं, जो वषट्कार युक्त आहुति देता है, उस याजक को आप अग्रणी पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं ॥५ ॥

३५६. त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥६ ॥

हे विशिष्ट द्रष्टा अग्निदेव ! आप पापकर्मियों का भी उद्धार करते हैं । बहुसंख्यक शत्रुओं का सब ओर से आक्रमण होने पर भी थोड़े से वीर पुरुषों को लेकर सब शत्रुओं को मार गिराते हैं ॥६ ॥

३५७. त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने अनुचर मनुष्यों को दिन-प्रतिदिन अमरपद का अधिकारी बनाते हैं, जिसे पाने की उत्कट अभिलाषा देवगण और मनुष्य दोनों ही करते रहते हैं । वीर पुरुषों को अन्न और धन द्वारा सुखी बनाते हैं ॥ ७ ॥

३५८. त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! प्रशंसित होने वाले आप हमें धन प्राप्त करने की सामर्थ्य दें । हमें यशस्वी पुत्र प्रदान करें । नये उत्साह के साथ हम यज्ञादि कर्म करें । द्यावा, पृथिवी और देवगण हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ॥८ ॥

३५९. त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥९ ॥

हे निर्दोष अग्निदेव ! सब देवों में चैतन्य रूप आप हमारे मातृ-पितृ रूप (उत्पन्न करने वाले) हैं । आप ने हमें बोध प्राप्त करने की सामर्थ्य दी, कर्म को प्रेरित करने वाली बुद्धि विकसित की । हे कल्याणरूप अग्निदेव ! हमें आप सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी प्रदान करें ॥९ ॥

३६०. त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम्।

सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप विशिष्ट बुद्धि-सम्पन्न, हमारे पिता रूप, आयु प्रदाता और बन्धु रूप हैं । आप उत्तमवीर, अटलगुण-सम्पन्न, नियम-पालक और असंख्यों धनों से सम्पन्न हैं ॥१०॥

३६१. त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम्।

इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥११॥

हे अग्निदेव ! देवताओं ने सर्वप्रथम आपको मनुष्यों के हित के लिये राजा रूप में स्थापित किया । तत्पश्चात जब हमारे (हिरण्यस्तूप ऋषि) पिता अंगिरा ऋषि ने आपको पुत्र रूप में आविर्भूत किया, तब देवताओं ने मनु की पुत्री इळा को शासन-अनुशासन (धर्मोपदेश) कर्त्री बनाया ॥११॥

३६२. त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।

त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥१२॥

हे अग्निदेव ! आप वन्दना के योग्य हैं । अपने रक्षण साधनों से धनयुक्त हमारी रक्षा करें । हमारी शारीरिक क्षमता को अपनी सामर्थ्य से पोषित करें । शीघ्रतापूर्वक संरक्षित करने वाले आप हमारे पुत्र-पौत्रादि और गवादि पशुओं के संरक्षक हों ॥१२॥

३६३. त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे।

यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥१३॥

हे अग्निदेव ! आप याजकों के पोषक हैं, जो सज्जन हविदाता आपको श्रेष्ठ, पोषक हविष्यान्न देते हैं, आप उनकी सभी प्रकार से रक्षा करते हैं । आप साधकों (उपासकों) की स्तुति हृदय से स्वीकार करते हैं ॥१३॥

३६४. त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत्।

आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्रदिशो विदुष्टरः ॥१४॥

हे अग्निदेव ! आप स्तुति करने वाले ऋत्विजों को धन प्रदान करते हैं । आप दुर्बलों को पिता रूप में पोषण देने वाले और अज्ञानी जनों को विशिष्ट ज्ञान प्रदान करने वाले मेधावी हैं ॥१४॥

३६५. त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।

स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥१५॥

हे अग्निदेव ! आप पुरुषार्थी यजमानों की कवच के रूप में सुरक्षा करते हैं । जो अपने घर में मधुर हविष्यान्न देकर सुखप्रद यज्ञ करता है, वह घर स्वर्ग की उपमा के योग्य होता है ॥१५॥

[यज्ञीय आचरण से घर में स्वर्गतुल्य वातावरण बनता है ।]

३६६. इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।

आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥१६॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ कर्म करते समय हुई हमारी भूलों को क्षमा करें, जो लोग यज्ञ मार्ग से भटक गये हैं, उन्हें भी क्षमा करें । आप सोमयाग करने वाले याजकों के बन्धु और पिता हैं । सद्बुद्धि प्रदान करने वाले और ऋषि-कर्म के कुशल प्रणेता हैं ॥१६॥

३६७. मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।

अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७ ॥

हे पवित्र अंगिरा अग्निदेव ! (अंगो में सव्याप्त अग्नि) आप मनु, अंगिरा (ऋषि), ययाति जैसे पुरुषों के साथ देवों को ले जाकर यज्ञ स्थल पर सुशोभित हों । उन्हें कुश के आसन पर प्रतिष्ठित करते हुए सम्मानित करें ॥१७ ॥

३६८. एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।

उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥१८ ॥

हे अग्निदेव ! इन मंत्र रूप स्तुतियों से आप वृद्धि को प्राप्त करें । अपनी शक्ति या ज्ञान से हमने जो यजन किया है, उससे हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । बल बढ़ाने वाले अन्नों के साथ शुभ मति से हमें सम्पन्न करें ॥१८ ॥

[सूक्त - ३२]

[ऋषि - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

३६९. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥१ ॥

मेघों को विदीर्ण कर पानी बरसाने वाले, पर्वतीय नदियों के तटों को निर्मित करने वाले, वज्रधारी, पराक्रमी इन्द्रदेव के कार्य वर्णनीय हैं । उन्होंने जो प्रमुख वीरतापूर्ण कार्य किये, वे ये ही हैं ॥१ ॥

३७०. अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।

वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२ ॥

इन्द्रदेव के लिये त्वष्टादेव ने शब्द चालित वज्र का निर्माण किया, उसी से इन्द्रदेव ने मेघों को विदीर्ण कर जल बरसाया । रँभाती हुई गौओं के समान वे जलप्रवाह वेग से समुद्र की ओर चले गये ॥२ ॥

३७१. वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।

आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३ ॥

अतिबलशाली इन्द्रदेव ने सोम को ग्रहण किया । यज्ञ में तीन विशिष्ट पात्रों में अभिषव किये हुए सोम का पान किया । ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ने बाण और वज्र को धारण कर मेघों में प्रमुख मेघ को विदीर्ण किया ॥३ ॥

३७२. यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।

आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मेघों में प्रथम उत्पन्न मेघ को वेध दिया । मेघरूप में छाए धुन्ध (मायावियों) को दूर किया, फिर आकाश में उषा और सूर्य को प्रकट किया । अब कोई भी अवरोधक शत्रु शेष न रहा ॥४ ॥

३७३. अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।

स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५ ॥

इन्द्रदेव ने घातक दिव्य वज्र से वृत्रासुर का वध किया । वृक्ष की शाखाओं को कुल्हाड़े से काटने के समान उसकी भुजाओं को काटा और तने की तरह उसे काटकर भूमि पर गिरा दिया ॥५ ॥

३७४. अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६ ॥

अपने को अप्रतिम योद्धा मानने वाले मिथ्या अभिमानी वृत्र ने महाबली, शत्रुबेधक, शत्रुनाशक इन्द्रदेव को ललकारा और इन्द्रदेव के आघातों को सहन न कर, गिरते हुए, नदियों के किनारों को तोड़ दिया ॥६ ॥

३७५. अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७ ॥

हाथ और पाँव के कट जाने पर भी वृत्र ने इन्द्रदेव से युद्ध करने का प्रयास किया। इन्द्रदेव ने उसके पर्वत सदृश कन्धों पर वज्र का प्रहार किया। इतने पर भी वर्षा करने में समर्थ इन्द्रदेव के सम्मुख वह डटा रहा। अन्ततः इन्द्रदेव के आघातों से ध्वस्त होकर वह भूमि पर गिर पड़ा ॥७ ॥

३७६. नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव ॥८ ॥

जैसे नदी की बाढ़ तटों को लाँघ जाती है, वैसे ही मन को प्रसन्न करने वाले जल (जल अवरोधक) वृत्र को लाँघ जाते हैं। जिन जलों को 'वृत्र' ने अपने बल से आबद्ध किया था, उन्हीं के नीचे 'वृत्र' मृत्यु-शैय्या पर पड़ा सो रहा है ॥८ ॥

३७७. नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९ ॥

वृत्र की माता झुककर वृत्र का संरक्षण करने लगीं, इन्द्रदेव के प्रहार से बचाव के लिये वह वृत्र पर सो गयीं, फिर भी इन्द्रदेव ने नीचे से उस पर प्रहार किया। उस समय माता ऊपर और पुत्र नीचे था, जैसे गाय अपने बछड़े के साथ सोती है ॥९ ॥

३७८. अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१० ॥

एक स्थान पर न रुकने वाले अविश्रान्त (मेघरूप) जल-प्रवाहों के मध्य वृत्र का अनाम शरीर छिपा रहता है। वह दीर्घ निद्रा में पड़ा रहता है, उसके ऊपर जल प्रवाह बना रहता है ॥१० ॥

[जल युक्त बादलों के नीचे निष्क्रिय बादलों को वृत्र का अनाम शरीर कहा गया प्रतीत होता है।]

३७९. दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११ ॥

'पणि' नामक असुर ने जिस प्रकार गौओं अथवा किरणों को अवरुद्ध कर रखा था, उसी प्रकार जल-प्रवाहों को अगतिशील वृत्र ने रोक रखा था। वृत्र का वध करके वे प्रवाह खोल दिये गये ॥११ ॥

३८०. अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब कुशल योद्धा वृत्र ने वज्र पर प्रहार किया, तब घोड़े की पूँछ हिलाने की तरह, बहुत आसानी से आपने अविचलित भाव से उसे दूर कर दिया। हे महाबली इन्द्रदेव ! सोम और गौओं को जीतकर आपने (वृत्र के अवरोध को नष्ट करके) गंगादि सातों सरिताओं को प्रवाहित किया ॥१२ ॥

३८१. नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।

इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

युद्ध में वृत्रद्वारा प्रेरित भीषण विद्युत्, भयंकर मेघ गर्जन, जल और हिम वर्षा भी इन्द्रदेव को नहीं रोक सके। वृत्र के प्रचण्ड घातक प्रयोग भी निरर्थक हुए। उस युद्ध में असुर के हर प्रहार को इन्द्रदेव ने निरस्त करके उसे जीत लिया ॥१३॥

३८२. अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।

नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र का वध करते समय यदि आपके हृदय में भय उत्पन्न होता, तो किस दूसरे वीर को असुर वध के लिये देखते ?(अर्थात् कोई दूसरा न मिलता)। (ऐसा करके) आपने निन्यानवे (लगभग सम्पूर्ण) जल - प्रवाहों को बाज पक्षी की तरह सहज ही पार कर लिया ॥१४॥

३८३. इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।

सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

हाथों में वज्रधारण करने वाले इन्द्रदेव मनुष्य, पशु आदि सभी स्थावर-जंगम प्राणियों के राजा हैं। शान्त एवं क्रूर प्रकृति के सभी प्राणी उनके चारों ओर उसी प्रकार रहते हैं, जैसे चक्र की नेमि के चारों ओर उसके 'अरे' होते हैं ॥१५॥

[सूक्त- ३३]

[**ऋषि** - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

३८४. एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति।

अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥१॥

गौओं को प्राप्त करने की कामना से युक्त मनुष्य इन्द्रदेव के पास जायें। ये अपराजेय इन्द्रदेव हमारे लिए गोरूप धनों को बढ़ाने की उत्तम बुद्धि देंगे। वे गौओं की प्राप्ति का उत्तम उपाय करेंगे ॥१॥

३८५. उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।

इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२॥

श्येन पक्षी के वेगपूर्वक घोसले में जाने के समान हम उन धन दाता इन्द्रदेव के समीप पहुँचकर, स्तोत्रों से उनका पूजन करते हैं। युद्ध में सहायता के लिए स्तोताओं द्वारा बुलाये जाने पर अपराजेय इन्द्रदेव अविलम्ब पहुँचते हैं ॥२॥

३८६. नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।

चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३॥

सब सेनाओं के सेनापति इन्द्रदेव तरकसों को धारण कर गौओं एवं धन को जीतते हैं। हे स्वामी इन्द्रदेव ! हमारी धन-प्राप्ति की इच्छा पूरी करने में आप वैश्य की तरह विनिमय जैसा व्यवहार न करें ॥३॥

३८७. वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अकेले ही अपने प्रचण्ड वज्र से धनवान् दस्यु 'वृत्र' का वध किया । जब उसके अनुचरों ने आप के ऊपर आक्रमण किया, तब यज्ञ विरोधी उन दानवों को आपने (दृढ़तापूर्वक) नष्ट कर दिया ॥४ ॥

३८८. परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! याजकों से स्पर्धा करने वाले अयाज्ञिक मुँह छिपाकर भाग गये । हे अश्व-अधिष्ठित इन्द्रदेव ! आप युद्ध में अटल और प्रचण्ड सामर्थ्य वाले हैं । आपने आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी से धर्म-व्रतहीनों को हटा दिया है ॥५ ॥

३८९. अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६ ॥

उन शत्रुओं ने इन्द्रदेव की निर्दोष सेना पर पूरी शक्ति के साथ प्रहार किया, फिर भी हार गये । उनकी वही स्थिति हो गयी, जो शक्तिशाली वीर से युद्ध करने पर नपुंसक की होती है । अपनी निर्बलता स्वीकार करते हुए वे सब इन्द्रदेव से दूर चले गये ॥६ ॥

३९०. त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने रोने या हँसने वाले इन शत्रुओं को युद्ध करके मार दिया, दस्यु वृत्र को ऊँचा उठाकर आकाश से नीचे गिराकर जला दिया । आपने सोमयज्ञ करने वालों और प्रशंसक स्तोताओं की रक्षा की ॥७ ॥

३९१. चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥८ ॥

उन शत्रुओं ने पृथ्वी के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित किया और स्वर्ण-रत्नादि से सम्पन्न हो गये, परन्तु वे इन्द्रदेव के साथ युद्ध में न ठहर सके । सूर्यदेव के द्वारा उन्हें दूर कर दिया गया ॥८ ॥

३९२. परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक और भूलोक का चारों ओर से उपयोग किया । हे इन्द्रदेव ! आपने अपने अनुचरों द्वारा विरोधियों पर विजय प्राप्त की । आपने मन्त्र-शक्ति से (ज्ञानपूर्वक किये गये प्रयासों से) शत्रु पर विजय प्राप्त की ॥९ ॥

३९३. न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१० ॥

मेघ रूप वृत्र के द्वारा रोक लिये जाने के कारण जो जल द्युलोक से पृथ्वी पर नहीं बरस सके एवं जलों के अभाव से भूमि शस्यश्यामला न हो सकी, तब इन्द्रदेव ने अपने जाज्वल्यमान वज्र से अन्धकार रूपी मेघ को भेदकर गौ के समान जल का दोहन किया ॥१० ॥

३९४. अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।

सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११ ॥

जल इन ब्रीहि यवादि रूप अन्न वृद्धि के लिए (मेघों से) बरसने लगे । उस समय नौकाओं के मार्ग पर (जलों में) वृत्र बढ़ता रहा । इन्द्रदेव ने अपने शक्ति-साधनों द्वारा एकाग्र मन से अल्प समयावधि में ही उस वृत्र को मार गिराया ॥११ ॥

३९५. न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळहा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।

यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥१२ ॥

इन्द्रदेव ने गुफा में सोये हुए वृत्र के किलों को ध्वस्त करके उस सींगवाले शोषक वृत्र को क्षत-विक्षत कर दिया । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपने सम्पूर्ण वेग और बल से शत्रु सेना का विनाश किया ॥१२ ॥

३९६. अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वितिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।

सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥१३ ॥

इन्द्रदेव का तीक्ष्ण और शक्तिशाली वज्र शत्रुओं को लक्ष्य बनाकर उनके किलों को ध्वस्त करता है । शत्रुओं को वज्र से मारकर इन्द्रदेव स्वयं अतीव उत्साहित हुए ॥१३ ॥

३९७. आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।

शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! 'कुत्स' ऋषि के प्रति स्नेह होने से आपने उनकी रक्षा की और अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले श्रेष्ठ गुणवान् 'दशद्यु' ऋषि की भी आपने रक्षा की । उस समय अश्वों के खुरों से धूल आकाश तक फैल गई, तब शत्रुभय से जल में छिपने वाले 'श्वैत्रेय' नामक पुरुष की रक्षाकर आपने उसे जल से बाहर निकाला ॥१४ ॥

३९८. आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।

ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! क्षेत्र प्राप्ति की इच्छा से सशक्त जल - प्रवाहों में घिरने वाले 'श्वित्र्य' (व्यक्तिविशेष) की आपने रक्षा की । वहां जलों में ठहरकर अधिक समय तक आप शत्रुओं से युद्ध करते रहे । उन शत्रुओं को जलों के नीचे गिराकर आपने मार्मिक पीड़ा पहुंचायी ॥१५ ॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि** - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । **देवता**-अश्विनीकुमार । **छन्द**-जगती, ९,१२ त्रिष्टुप् ।]

३९९. त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।

युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥१ ॥

हे ज्ञानी अश्विनीकुमारो ! आज आप दोनों यहाँ तीन बार (प्रातः, मध्याह्न,सायं) आयें । आप के रथ और दान बड़े महान् हैं । सर्दी की रात एवं आतपयुक्त दिन के समान आप दोनों का परस्पर नित्य सम्बन्ध है । विद्वानों के माध्यम से आप हमें प्राप्त हों ॥१ ॥

४००. त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२ ॥

मधुर सोम को वहन करने वाले रथ में वज्र के समान सुदृढ़ तीन पहिये लगे हैं । सभी लोग आपकी सोम के प्रति तीव्र उत्कंठा को जानते हैं । आपके रथ में अवलम्बन के लिये तीन खम्भे लगे हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप उस रथ से तीन बार रात्रि में और तीन बार दिन में गमन करते हैं ॥२ ॥

४०१. समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥३ ॥

हे दोषों को ढँकने वाले अश्विनीकुमारो ! आज हमारे यज्ञ में दिन में तीन बार मधुर रसों से सिंचन करें । प्रातः , मध्याह्न एवं सायं तीन प्रकार के पुष्टिवर्धक अन्न हमें प्रदान करें ॥३ ॥

४०२. त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे घर आप तीन बार आयें । अनुयायी जनों को तीन बार सुरक्षित करें, उन्हें तीन बार तीन विशिष्ट ज्ञान करायें । सुखप्रद पदार्थों को तीन बार इधर हमारी ओर पहुँचायें । बलप्रदायक अन्नों को प्रचुर परिमाण में देकर हमें सम्पन्न करें ॥४ ॥

४०३. त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहितारुहद्रथम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे लिए तीन बार धन इधर लायें । हमारी बुद्धि को तीन बार देवों की स्तुति में प्रेरित करें । हमें तीन बार सौभाग्य और तीन बार यश प्रदान करें । आपके रथ में सूर्य-पुत्री (उषा) विराजमान हैं ॥५ ॥

४०४. त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६ ॥

हे शुभ कर्मपालक अश्विनीकुमारो ! आपने तीन बार हमें (द्युस्थानीय) दिव्य ओषधियाँ, तीन बार पार्थिव ओषधियाँ तथा तीन बार जलौषधियाँ प्रदान की हैं । हमारे पुत्र को श्रेष्ठ सुख एवं संरक्षण दिया है और तीन धातुओं (वात-पित्त-कफ) से मिलने वाला सुख, आरोग्य एवं ऐश्वर्य भी प्रदान किया है ॥६ ॥

४०५. त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप नित्य तीन बार यजन योग्य हैं । पृथ्वी पर स्थापित वेदी के तीन ओर आसनों पर बैठें । हे असत्यरहित रथारूढ़ देवो ! प्राणवायु और आत्मा के समान दूर स्थान से हमारे यज्ञों में तीन बार आयें ॥७

४०६. त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! सात मातृभूत नदियों के जलों से तीन बार तीन पात्र भर दिये हैं । हवियों को भी तीन भागों में विभाजित किया है । आकाश में ऊपर गमन करते हुए आप तीनों लोकों की दिन और रात्रि में रक्षा करते हैं ॥८ ॥

४०७. क्व१त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥९ ॥

अश्विनीकुमारों के रहस्यमय रथ - यान का वर्णन करते हुए कहा गया है—

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आप जिस रथ द्वारा यज्ञ-स्थल में पहुँचते हैं, उस तीन छोर वाले रथ के तीन चक्र कहाँ हैं ? एक ही आधार पर स्थापित होने वाले तीन स्तम्भ कहाँ हैं ?और अति शब्द करने वाले बलशाली (अश्व या संचालक यंत्र) को रथ के साथ कब जोड़ा गया था ? ॥९ ॥

४०८. आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥१० ॥

हे सत्यशील अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ आएँ । यहाँ हवि की आहुतियाँ दी जा रही हैं । मधु पीने वाले मुखों से मधुर रसों का पान करें । आप के विचित्र पुष्ट रथ को सूर्यदेव उषाकाल से पूर्व, यज्ञ के लिये प्रेरित करते हैं ॥१० ॥

४०९. आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों तैंतीस देवताओं सहित हमारे इस यज्ञ में मधुपान के लिये पधारें । हमारी आयु बढ़ायें और हमारे पापों को भली-भाँति विनष्ट करें । हमारे प्रति द्वेष की भावना को समाप्त करके सभी कार्यों में सहायक बनें ॥११ ॥

४१०. आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! त्रिकोण रथ से हमारे लिये उत्तम धन-सामर्थ्यों को वहन करें । हमारी रक्षा के लिए आवाहनों को आप सुनें । युद्ध के अवसरों पर हमारी बल-वृद्धि का प्रयास करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि-** हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । **देवता-** प्रथम मन्त्र का प्रथम पाद- अग्नि, द्वितीय पाद-मित्रावरुण, तृतीय पाद- रात्रि, चतुर्थ पाद- सविता, २-११ सविता । **छन्द-** त्रिष्टुप् , १,९ जगती ।]

४११. ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥

कल्याण की कामना से हम सर्वप्रथम अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं । अपनी रक्षा के लिए हम मित्र और वरुण देवों को बुलाते हैं । जगत् को विश्राम देने वाली रात्रि और सूर्यदेव का हम अपनी रक्षा के लिए आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४१२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥

सवितादेव गहन तमिस्रा युक्त अन्तरिक्ष पथ में भ्रमण करते हुए, देवों और मनुष्यों को यज्ञादि श्रेष्ठ-कर्मों में नियोजित करते हैं । वे समस्त लोकों को देखते (प्रकाशित करते) हुए स्वर्णिम (किरणों से युक्त) रथ से आते हैं ॥२ ॥

४१३. याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥

स्तुत्य सवितादेव ऊपर चढ़ते हुए और फिर नीचे उतरते हुए निरन्तर गतिशील रहते हैं। वे सविता देव तमरूपी पापों को नष्ट करते हुए अतिदूर से इस यज्ञशाला में श्वेत अश्वों के रथ पर आसीन होकर आते हैं ॥३ ॥

४१४. अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४ ॥

सतत परिभ्रमणशील, विविध रूपों में सुशोभित, पूजनीय, अद्भुत रश्मि-युक्त सवितादेव गहन तमिस्रा को नष्ट करने के निमित्त प्रचण्ड सामर्थ्य को धारण करते हैं तथा स्वर्णिम रश्मियों से युक्त रथ पर प्रतिष्ठित होकर आते हैं ॥४ ॥

४१५. वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

सूर्यदेव के अश्व श्वेत पैर वाले हैं, वे स्वर्णरथ को वहन करते हैं और मानवों को प्रकाश देते हैं। सर्वदा सभी लोकों के प्राणी सवितादेव के अंक में स्थित हैं, अर्थात् उन्हीं पर आश्रित हैं ॥५ ॥

४१६. तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥

तीनों लोकों में द्यावा और पृथिवी ये दोनों लोक सूर्य के समीप हैं, अर्थात् सूर्य से प्रकाशित हैं। एक अंतरिक्ष लोक यमदेव का विशिष्ट द्वार रूप है। रथ के धुरे की कील के समान सूर्यदेव पर ही सब लोक (नक्षत्रादि) अवलम्बित हैं। जो यह रहस्य जानें, वे सबको बतायें ॥६ ॥

[द्युलोक में सूर्यदेव स्थित हैं, पृथ्वी पर उनके द्वारा विकिरित ऊर्जा का प्रभाव है, इसलिए यह दो लोक उनके पास कहे गये हैं। बीच में अंतरिक्ष उनसे दूर क्यों है ? विज्ञान का नियम है कि विकिरित किरणें जब पदार्थ पर पड़ती हैं, तभी अपनी ऊर्जा उसे देती हैं, बीच के वायुमण्डल को प्रभावित नहीं करतीं, इसलिए बीच का अन्तरिक्ष लोक सौर ऊर्जा से अप्रभावित रहता है, अन्यथा वायुमण्डल इतना गर्म हो जाता कि सहन करना सम्भव नहीं होता, इस अनुशासन के अन्तर्गत- अन्तरिक्ष यम (अनुशासन के देवता) का द्वार कहा गया है।]

४१७. वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेऽदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥

गम्भीर, गतियुक्त, प्राणरूप, उत्तम प्रेरक, सुन्दर, दीप्तिमान् सूर्यदेव अन्तरिक्षादि को प्रकाशित करते हैं। ये सूर्यदेव कहाँ रहते हैं ? उनकी रश्मियाँ किस आकाश में होंगी ? यह रहस्य कौन जानता है ? ॥७ ॥

४१८. अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

हिरण्य दृष्टि युक्त (सुनहली किरणों से युक्त) सवितादेव पृथ्वी की आठों दिशाओं (४प्रमुख ४ उपदिशाएँ) उनसे युक्त तीनों लोकों, सप्त सागरों आदि को आलोकित करते हुए दाता (हविदाता) के लिए वरणीय विभूतियाँ लेकर यहाँ आएँ ॥८ ॥

४१९. हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

स्वर्णिम रश्मियों रूपी हाथों से युक्त विलक्षण द्रष्टा सवितादेव द्यावा और पृथ्वी के बीच संचरित होते हैं। वे रोगादि बाधाओं को नष्ट कर अन्धकारनाशक दीप्तियों से आकाश को प्रकाशित करते हैं ॥९ ॥

४२०. हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

हिरण्य हस्त (स्वर्णिम तेजस्वी किरणों से युक्त) प्राणदाता, कल्याणकारक, उत्तम सुखदायक, दिव्यगुण सम्पन्न सूर्यदेव, सम्पूर्ण मनुष्यों के समस्त दोषों को, असुरों और दुष्कर्मियों को नष्ट करते (दूर भगाते) हुए उदित होते हैं। ऐसे सूर्यदेव हमारे लिये अनुकूल हो ॥१० ॥

४२१. ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

हे सवितादेव ! आकाश में आपके ये धूलरहित मार्ग पूर्व निश्चित हैं। उन सुगम मार्गों से आकर आज आप हमारी रक्षा करें तथा हम (यज्ञानुष्ठान करने वालों) को देवत्व से युक्त करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - कण्व घौर । **देवता** - अग्नि, १३-१४ यूप । **छन्द**- बार्हत प्रगाथ - विषमा बृहती, समासतो बृहती, १३ उपरिष्टाद् - बृहती ।]

४२२. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

हम ऋत्विज् अपने सूक्ष्म वाक्यों (मंत्र शक्ति) से व्यक्तियों में देवत्व का विकास करने वाली महानता का वर्णन करते हैं, जिस महानता का वर्णन (स्तवन) ऋषियों ने भली प्रकार किया था ॥१ ॥

४२३. जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

मनुष्यों ने बलवर्धक अग्निदेव का वरण किया। हम उन्हें हवियों से प्रवृद्ध करते हैं। अन्नों के दाता हे अग्निदेव ! आज आप प्रसन्न मन से हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

४२४. प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

देवों के दूत, होतारूप, सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आपका हम वरण करते हैं, आप महान् और सत्यरूप हैं। आपकी ज्वालाओं की दीप्ति फैलती हुई आकाश तक पहुँचती है ॥३ ॥

४२५. देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव आप जैसे पुरातन देवदूत को प्रदीप्त करते हैं। जो याजक आपके निमित्त हवि समर्पित करते हैं, वे आपकी कृपा से समस्त धनों को उपलब्ध करते हैं ॥४ ॥

४२६. मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रमुदित करने वाले, प्रजाओं के पालक, होतारूप, गृहस्वामी और देवदूत हैं । देवों के द्वारा सम्पादित सभी शुभ कर्म आपसे सम्पादित होते हैं ॥५ ॥

४२७. त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

हे चिरयुवा अग्निदेव ! यह आपका उत्तम सौभाग्य है कि सब हवियाँ आपके अन्दर अर्पित की जाती हैं । आप प्रसन्न होकर हमारे निमित्त आज और आगे भी सामर्थ्यवान् देवों का यजन किया करें । (अर्थात् देवों को हमारे अनुकूल बनायें ।) ॥६ ॥

४२८. तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥

नमस्कार करने वाले उपासक स्वप्रकाशित इन अग्निदेव की उपासना करते हैं । शत्रुओं को जीतने वाले मनुष्य हवन-साधनों और स्तुतियों से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ॥७ ॥

४२९. घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

देवों ने प्रहार कर वृत्र का वध किया । प्राणियों के निवासार्थ उन्होंने द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष का बहुत विस्तार किया । गौ, अश्व आदि की कामना से कण्व ने अग्नि को प्रकाशित कर आहुतियों द्वारा उन्हें बलिष्ठ बनाया ॥८ ॥

४३०. सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

यज्ञीय गुणों से युक्त प्रशंसनीय हे अग्निदेव ! आप देवताओं के प्रीतिपात्र और महान् गुणों के प्रेरक हैं । यहाँ उपयुक्त स्थान पर पधारें और प्रज्वलित हों । घृत की आहुतियों द्वारा दर्शन योग्य तेजस्वी होते हुए सघन धूम्र को विसर्जित करें ॥९ ॥

४३१. यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

हे हविवाहक अग्निदेव ! सभी देवों ने पूजने योग्य आपको मानव मात्र के कल्याण के लिए इस यज्ञ में धारण किया । मेध्यातिथि और कण्व ने तथा वृषा (इन्द्र) और उपस्तुत (अन्य यजमान) ने धन से संतुष्ट करने वाले आपका वरण किया ॥१० ॥

४३२. यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि ।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥११ ॥

जिन अग्निदेव को मेध्यातिथि और कण्व ने सत्यरूप कर्मों से प्रदीप्त किया, वे अग्निदेव देदीप्यमान हैं । उन्हीं को हमारी ऋचायें भी प्रवृद्ध करती हैं । हम भी उन अग्निदेव को संवर्धित करते हैं ॥११ ॥

४३३. रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।

त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥१२॥

हे अन्नवान् अग्ने ! आप हमें अन्न - सम्पदा से अभिपूरित करें । आप देवों के मित्र और प्रशंसनीय बलों के स्वामी हैं । आप महान् हैं । आप हमें सुखी बनाएँ ॥१२॥

४३४. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।

ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥१३॥

हे काष्ठ स्थित अग्निदेव ! सर्वोत्पादक सवितादेव जिस प्रकार अन्तरिक्ष से हम सबकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी ऊँचे उठकर, अन्न आदि पोषक पदार्थ देकर हमारे जीवन की रक्षा करें । मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवि प्रदान करने वाले याजक आपके उत्कृष्ट स्वरूप का आवाहन करते हैं ॥१३॥

४३५. ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।

कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४॥

हे यूपस्थ अग्ने ! आप ऊँचे उठकर अपने श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा पापों से हमारी रक्षा करें, मानवता के शत्रुओं का दहन करें, जीवन में प्रगति के लिए हमें ऊँचा उठाएँ तथा हमारी प्रार्थना देवों तक पहुँचाएँ ॥१४॥

४३६. पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।

पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१५॥

हे महान् दीप्तिवाले, चिरयुवा अग्निदेव ! आप हमें राक्षसों से रक्षित करें, कृपण धूर्तों से रक्षित करें तथा हिंसकों और जघन्यों से रक्षित करें ॥१५॥

४३७. घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।

यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥१६॥

अपने ताप से रोगादि कष्टों को मिटाने वाले हे अग्ने ! आप कृपणों को गदा से विनष्ट करें । जो हमसे द्रोह करते हैं, जो रात्रि में जागकर हमारे नाश का यत्न करते हैं, वे शत्रु हम पर आधिपत्य न कर पाएँ ॥१६॥

४३८. अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।

अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥१७॥

उत्तम पराक्रमी ये अग्निदेव, जिन्होंने कण्व को सौभाग्य प्रदान किया, हमारे मित्रों की रक्षा की तथा 'मेध्यातिथि' और 'उपस्तुत' (यजमान) की भी रक्षा की है ॥१७॥

४३९. अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।

अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥१८॥

अग्निदेव के साथ हम 'तुर्वश' 'यदु' और 'उग्रादेव' को बुलाते हैं । वे अग्निदेव 'नववास्तु', 'बृहद्रथ' और 'तुर्वीति' (आदि राजर्षियों) को भी ले चलें, जिससे हम दुष्टों के साथ संघर्ष कर सकें ॥१८॥

४४०. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।

दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१९॥

हे अग्निदेव ! विचारवान् व्यक्ति आपका वरण करते हैं । अनादिकाल से ही मानव जाति के लिए आपकी ज्योति प्रकाशित है । आपका प्रकाश आश्रमों के ज्ञानवान् ऋषियों में उत्पन्न होता है । यज्ञ में ही आपका प्रज्वलित स्वरूप प्रकट होता है । उस समय सभी मनुष्य आपको नमन-वन्दन करते हैं ॥१९ ॥

४४१. त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥

अग्निदेव की ज्वालाएँ प्रदीप्त होकर अत्यन्त बलवती और प्रचण्ड हुई हैं । कोई उनका सामना नहीं कर सकता । हे अग्ने ! आप समस्त राक्षसों, आततायियों और मानवता के शत्रुओं को नष्ट करें ॥२० ॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि - कण्व घौर । देवता - मरुद्‌गण । छन्द- गायत्री ।]

४४२. क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥१ ॥

हे कण्व गोत्रीय ऋषियो ! क्रीड़ा युक्त, बल सम्पन्न, अहिंसक वृत्तियों वाले मरुद्‌गण रथ पर शोभायमान हैं । आप उनके निमित्त स्तुतिगान करें ॥१ ॥

४४३. ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥२ ॥

ये मरुद्‌गण स्वदीप्ति से युक्त धब्बों वाले मृगों (वाहनों) सहित और आभूषणों से अलंकृत होकर गर्जना करते हुए प्रकट हुए हैं ॥२ ॥

४४४. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥३ ॥

मरुद्‌गणों के हाथों में स्थित चाबुकों से होने वाली ध्वनियाँ हमें सुनाई देती हैं, जैसे वे यहीं हो रही हों । वे ध्वनियाँ संघर्ष के समय असामान्य शक्ति प्रदर्शित करती हैं ॥३ ॥

४४५. प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥४ ॥

(हे याजको ! आप) बल बढ़ाने वाले, शत्रु नाशक, दीप्तिमान् मरुद्‌गणों की सामर्थ्य और यश का मंत्रों से विशिष्ट गान करें ॥४ ॥

४४६. प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥५ ॥

(हे याजको ! आप) किरणों द्वारा संचरित दिव्य रसों का पर्याप्त सेवन कर बलिष्ठ हुए उन मरुद्‌गणों के अविनाशी बल की प्रशंसा करें ॥५ ॥

४४७. को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥६ ॥

द्युलोक और भूलोक को कम्पित करने वाले हे मरुतो ! आप में वरिष्ठ कौन है ? जो सदा वृक्ष के अग्रभाग को हिलाने के समान शत्रुओं को प्रकम्पित कर दे ॥६ ॥

४४८. नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥७ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपके प्रचण्ड संघर्षक आवेश से भयभीत मनुष्य सुदृढ़ सहारा ढूँढ़ता है, क्योंकि आप बड़े पर्वतों और टीलों को भी कँपा देते हैं ॥७ ॥

४४९. येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥८ ॥

उन मरुद्‌गणों के आक्रमणकारी बलों से यह पृथ्वी जरा-जीर्ण नृपति की भाँति भयभीत होकर प्रकम्पित हो उठती है ॥८ ॥

४५०. स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः ॥९ ॥

इन वीर मरुतों की मातृभूमि आकाश स्थिर है। ये मातृभूमि से पक्षी के वेग के समान निर्बाधित होकर चलते हैं। उनका बल दुगुना होकर व्याप्त होता है ॥९ ॥

४५१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१० ॥

शब्द नाद करने वाले मरुतों ने यज्ञार्थ जलों को निःसृत किया। प्रवाहित जल का पान करने के लिये रँभाती हुई गौएँ घुटने तक पानी में जाने के लिए बाध्य होती हैं ॥१० ॥

४५२. त्यं चिद्धा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्रच्यावयन्ति यामभिः ॥११ ॥

विशाल और व्यापक, न विध सकने वाले, जल वृष्टि न करने वाले मेघों को भी वीर मरुद्गण अपनी तेजगति से उड़ा ले जाते हैं ॥११ ॥

४५३. मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन ॥१२ ॥

हे मरुतो ! आप अपने बल से लोगों को विचलित करते हैं, आप पर्वतों को भी विचलित करने में समर्थ हैं ॥१२ ॥

४५४. यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३ ॥

जिस समय मरुद्गण गमन करते हैं, तब वे मध्य मार्ग में ही परस्पर वार्ता करने लगते हैं। उनके शब्द को भला कौन नहीं सुन लेता है ? (सभी सुन लेते हैं।) ॥१३ ॥

४५५. प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४ ॥

हे मरुतो ! आप तीव्र वेग वाले वाहन से शीघ्र आएँ। कण्ववंशी आपके सत्कार के लिए उपस्थित हैं। वहाँ आप उत्साह के साथ तृप्ति को प्राप्त हों ॥१४ ॥

४५६. अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्। विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥१५ ॥

हे मरुतो ! आपकी प्रसन्नता के लिए यह हवि- द्रव्य तैयार है। हम सम्पूर्ण आयु सुखद जीवन प्राप्त करने के लिए आपका स्मरण करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि** - कण्व घौर । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - गायत्री ।]

४५७. कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥१ ॥

हे स्तुति प्रिय मरुतो ! आप कुश के आसनों पर विराजमान हों। पुत्र को पिता द्वारा स्नेहपूर्वक गोद में उठाने के समान, आप हमें कब धारण करेंगे ? ॥१ ॥

४५८. क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥२ ॥

हे मरुतो ! आप कहाँ हैं ? किस उद्देश्य से आप द्युलोक में गमन करते हैं ? पृथ्वी में क्यों नहीं घूमते ? आपकी गौएँ आपके लिए नहीं रँभाती क्या ? (अर्थात् आप पृथ्वी रूपी गौ के समीप ही रहें।) ॥२ ॥

४५९. क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो३विश्वानि सौभगा ॥३ ॥

हे मरुद्गणो ! आपके नवीन संरक्षण साधन कहाँ हैं ? आपके सुख - ऐश्वर्य के साधन कहाँ हैं ? आपके सौभाग्यप्रद साधन कहाँ हैं ? आप अपने समस्त वैभव के साथ इस यज्ञ में आएँ ॥३ ॥

४६०. यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥४॥

हे मातृभूमि की सेवा करने वाले आकाशपुत्र मरुतो ! यद्यपि आप मरणशील हैं, फिर भी आपकी स्तुति करने वाला अमरता को प्राप्त करता है ॥४॥

[प्राणियों के अंगों में रूपान्तरित हो जाने के कारण वायु को मरणशील कहा है, किन्तु वायु सेवन करने वाला मृत्यु से बच जाता है।]

४६१. मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ॥५॥

जैसे मृग, तृण को असेव्य नहीं समझता, उसी प्रकार आपकी स्तुति करने वाला आपके लिये अप्रिय न हो (अर्थात् उस पर कृपालु रहें), जिससे उसे यमलोक के मार्ग पर न जाना पड़े ॥५॥

४६२. मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ॥६॥

अति बलिष्ठ पापवृत्तियाँ हमारी दुर्दशा कर हमारा विनाश न करें, प्यास (अतृप्ति) से वे ही नष्ट हो जायें ॥६॥

४६३. सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥७॥

यह सत्य ही है कि कान्तिमान्, बलिष्ठ रुद्रदेव के पुत्र वे मरुद्गण, मरुभूमि में भी अवात (वायु शून्य) स्थिति से वर्षा करते हैं ॥७॥

[मौसम विशेषज्ञों के अनुसार जहाँ वायु का कम दबाव वाला (लो प्रेशर) क्षेत्र बन जाता है, वहाँ बादल इकट्ठे होकर बरस जाते हैं।]

४६४. वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥८॥

जब वह मरुद्गण वर्षा का सृजन करते हैं, तो विद्युत् रँभाने वाली गाय की तरह शब्द करती है (और जिस प्रकार) गाय बछड़ों को पोषण देती है, (उसी प्रकार) वह विद्युत् सिंचन करती है ॥८॥

[वायु द्वारा बादलों में घर्षण होने पर रगड़ से विद्युत् पैदा होती है, उसी से गर्जन ध्वनि पैदा होती है। विद्युत् के चमकने से नाइट्रोजन आदि गैसें कृषि पोषक रसायनों में बदल जाती हैं। इस तरह विद्युत् पोषक सिंचन करती है।]

४६५. दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥९॥

मरुद्गण जल प्रवाहक मेघों द्वारा दिन में भी अँधेरा कर देते हैं, तब वे वर्षा द्वारा भूमि को आर्द्र करते हैं ॥९॥

४६६. अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः ॥१०॥

मरुतों की गर्जना से पृथ्वी के निम्न भाग में अवस्थित सम्पूर्ण स्थान प्रकम्पित हो उठते हैं। उस कम्पन से समस्त मानव भी प्रभावित होते हैं ॥१०॥

४६७. मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेमखिद्रयामभिः ॥११॥

हे मरुतो ! (अश्वों को नियन्त्रित करने वाले) आप बलशाली बाहुओं से, अविच्छिन्न गति से शुभ्र नदियों की ओर गमन करें ॥११॥

४६८. स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्। सुसंस्कृता अभीशवः ॥१२॥

हे मरुतो ! आपके रथ बलिष्ठ घोड़ों, उत्तम धुरी और चंचल लगाम से भली प्रकार अलंकृत हों ॥१२॥

४६९. अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्। अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥१३॥

हे याजको ! आप दर्शनीय मित्र के समान ज्ञान के अधिपति अग्निदेव की, स्तुति युक्त वाणियों द्वारा प्रशंसा करें ॥१३॥

४७०. मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४॥

हे याजको ! आप अपने मुख से श्लोक रचना कर मेघ के समान इसे विस्तारित करें। गायत्री छन्द में रचे हुए काव्य का गायन करें ॥१४॥

४७१. वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥

हे ऋत्विजो ! आप कान्तिमान्, स्तुत्य, अर्चन योग्य मरुद्‌गणों का अभिवादन करें। यहाँ हमारे पास इनका वास रहे ॥१५॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - कण्व घौर। देवता - मरुद्‌गण। छन्द - बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

४७२. प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥१॥

हे कँपाने वाले मरुतो ! आप अपना बल दूरस्थ स्थान से विद्युत् के समान यहाँ पर फेंकते हैं, तो आप (किसके यज्ञ की ओर) किसके पास जाते हैं ? किस उद्देश्य से आप कहाँ जाना चाहते हैं ? उस समय आपका क्या लक्ष्य होता है ? ॥१॥

४७३. स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥२॥

आपके हथियार शत्रु को हटाने में नियोजित हों। आप अपनी दृढ़ शक्ति से उनका प्रतिरोध करें। आपकी शक्ति प्रशंसनीय हो। आप छद्म वेषधारी मनुष्यों को आगे न बढ़ायें ॥२॥

४७४. परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥३॥

हे मरुतो ! आप स्थिर वृक्षों को गिराते, दृढ़ चट्टानों को प्रकम्पित करते, भूमि के वनों को जड़ विहीन करते हुए पर्वतों के पार निकल जाते हैं ॥३॥

४७५. नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४॥

हे शत्रुनाशक मरुतो ! न द्युलोक में और न पृथ्वी पर ही, आपके शत्रुओं का अस्तित्व है। हे रुद्र पुत्रो ! शत्रुओं को क्षत-विक्षत करने के लिए आप सब मिलकर अपनी शक्ति विस्तृत करें ॥४॥

४७६. प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥५॥

हे मरुतो ! मदमत्त हुए लोगों के समान आप पर्वतों को प्रकम्पित करते हैं और पेड़ों को उखाड़ कर फेंकते हैं, अतः आप प्रजाओं के आगे-आगे उन्नति करते हुए चलें ॥५॥

४७७. उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

हे मरुतो ! आपके रथ को चित्र-विचित्र चिह्नों युक्त (पशु आदि) गति देते हैं, (उनमें) लाल रंग वाला अश्व

धुरी को खींचता है। तुम्हारी गति से उत्पन्न शब्द भूमि सुनती है, मनुष्यगण उस ध्वनि से भयभीत हो जाते हैं ॥६ ॥

[वायु मण्डल की गति आकाश में दिखाई देने वाले चित्र-विचित्र नक्षत्रों से प्रभावित होती है। उनमें से लोहित वर्ण का सूर्य मुख्य भूमिका निभाता है।]

४७८. आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।

गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७ ॥

हे रुद्रपुत्रो ! अपनी संतानों की रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं। जैसे पूर्व समय में आप भययुक्त कण्वों की ओर रक्षा के निमित्त शीघ्र गये थे, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा के निमित्त शीघ्र पधारें ॥७ ॥

४७९. युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।

वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८ ॥

हे मरुतो ! आपके द्वारा प्रेरित या अन्य किसी मनुष्य द्वारा प्रेरित शत्रु हम पर प्रभुत्व जमाने आये, तो आप अपने बल से, अपने तेज से और रक्षण साधनों से उन्हें दूर हटा दें ॥८ ॥

४८०. असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः।

असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥९ ॥

हे विशिष्ट पूज्य, ज्ञाता मरुतो ! कण्व को जैसे आपने सम्पूर्ण आश्रय दिया था, वैसे ही चमकने वाली बिजलियों के साथ वेग से आने वाली वृष्टि की तरह आप सम्पूर्ण रक्षा साधनों को लेकर हमारे पास आयें ॥९ ॥

४८१. असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः।

ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥१० ॥

हे उत्तम दानशील मरुतो ! आप सम्पूर्ण पराक्रम और सम्पूर्ण बलों को धारण करते हैं। हे शत्रु को प्रकम्पित करने वाले मरुद्गणो ! ऋषियों से द्वेष करने वाले शत्रुओं को नष्ट करने वाले बाण के समान आप शत्रुघातक (शक्ति) का सृजन करें ॥१० ॥

[सूक्त - ४०]

[ऋषि- कण्व घौर। देवता- ब्रह्मणस्पति। छन्द-बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतोबृहती)।]

४८२. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।

उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥१ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप उठें, देवों की कामना करने वाले हम आप की स्तुति करते हैं। कल्याणकारी मरुद्गण हमारे पास आयें। हे इन्द्रदेव ! आप ब्रह्मणस्पति के साथ मिलकर सोमपान करें ॥१ ॥

४८३. त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते।

सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥२ ॥

साहसिक कार्यों के लिये समर्पित हे ब्रह्मणस्पते ! युद्ध में मनुष्य आपका आवाहन करते हैं। हे मरुतो! जो धनार्थी मनुष्य ब्रह्मणस्पति सहित आपकी स्तुति करता है, वह उत्तम अश्वों के साथ श्रेष्ठ पराक्रम एवं वैभव से सम्पन्न हो ॥२ ॥

४८४. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥३ ॥

ब्रह्मणस्पति हमारे अनुकूल होकर यज्ञ में आगमन करें । हमें सत्यरूप दिव्यवाणी प्राप्त हो । मनुष्यों के हितकारी देवगण हमारे यज्ञ में पंक्तिबद्ध होकर अधिष्ठित हों तथा शत्रुओं का विनाश करें ॥३ ॥

४८५. यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥४ ॥

जो यजमान ऋत्विजों को उत्तम धन देते हैं, वे अक्षय यश को पाते हैं । उनके निमित्त हम (ऋत्विग्गण) उत्तम पराक्रमी, शत्रु-नाशक, अपराजेय मातृभूमि की वन्दना करते हैं ॥४ ॥

४८६. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५ ॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय ही स्तुति योग्य (उन) मंत्रों को विधि से उच्चारित कराते हैं, जिन मंत्रों में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा आदि देवगण निवास करते हैं ॥५ ॥

४८७. तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥६ ॥

हे नेतृत्व करने वालो ! (देवताओ !) हम सुखप्रद, विघ्ननाशक मंत्र का यज्ञ में उच्चारण करते हैं । हे नेतृत्व करने वाले देवो ! यदि आप इस मन्त्र रूप वाणी की कामना करते हैं, (सम्मानपूर्वक अपनाते हैं) तो ये सभी सुन्दर स्तोत्र आपको निश्चय ही प्राप्त हों ॥६ ॥

४८८. को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥७ ॥

देवत्व की कामना करने वालों के पास भला कौन आयेंगे ? (ब्रह्मणस्पति आयेंगे ।) कुश-आसन बिछाने वाले के पास कौन आयेंगे ? (ब्रह्मणस्पति आयेंगे ।) आपके द्वारा हविदाता याजक अपनी संतानों, पशुओं आदि के निमित्त उत्तम घर का आश्रय पाते हैं ॥७ ॥

४८९. उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥८ ॥

ब्रह्मणस्पतिदेव, क्षात्रबल की अभिवृद्धि कर राजाओं की सहायता से शत्रुओं को मारते हैं । भय के सम्मुख वे उत्तम धैर्य को धारण करते हैं । ये वज्रधारी बड़े युद्धों या छोटे युद्धों में किसी से पराजित नहीं होते ॥८ ॥

[सूक्त - ४१]

[ऋषि-कण्व घौर । देवता- वरुण, मित्र एवं अर्यमा ; ४-६ आदित्यगण । छन्द-गायत्री ।]

४९०. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ॥१ ॥

जिस याजक को, ज्ञान सम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा आदि देवों का संरक्षण प्राप्त है, उसे कोई भी नहीं दबा सकता ॥१ ॥

४९१. यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते ॥२॥

अपने बाहुओं से विविध धनों को देते हुए, वरुणादि देवगण जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, शत्रुओं से अहिंसित होता हुआ वह वृद्धि पाता है ॥२॥

[जब देवगण साधक को सत्पात्र मानकर उसे दैवी सम्पदा प्रदान करते हैं, तो अहितकर प्रवृत्तियों से वह अप्रभावित रहकर सतत प्रगतिशील रहता है।]

४९२. वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः ॥३॥

राजा के सदृश वरुणादि देवगण, शत्रुओं के नगरों और किलों को विशेष रूप से नष्ट करते हैं। वे याजकों को दुःख के मूलभूत कारणों (पापों) से दूर ले जाते हैं ॥३॥

४९३. सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः ॥४॥

हे आदित्यो ! आप के यज्ञ में आने के मार्ग अतिसुगम और कण्टकहीन हैं। इस यज्ञ में आपके लिए श्रेष्ठ हविष्यान्न समर्पित है ॥४॥

४९४. यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत् ॥५॥

हे आदित्यो ! जिस यज्ञ को आप सरल मार्ग से सम्पादित करते हैं, वह यज्ञ आपके ध्यान में विशेष रूप से रहता है। वह भला कैसे विस्मृत हो सकता है ? ॥५॥

४९५. स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥६॥

हे आदित्यो ! आपका याजक किसी से पराजित नहीं होता। वह धनादि रत्न और सन्तानों को प्राप्त करता हुआ प्रगति करता है ॥६॥

४९६. कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य ॥७॥

हे मित्रो ! मित्र, अर्यमा और वरुण देवों के महान् ऐश्वर्य साधनों का किस प्रकार वर्णन करें ? अर्थात् इनकी महिमा अपार है ॥७॥

४९७. मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥८॥

हे देवो ! देवत्व प्राप्ति की कामना वाले साधकों को कोई कटुवचनों से और क्रोधयुक्त वचनों से प्रताड़ित न करने पाये। हम स्तुति वचनों द्वारा आपको प्रसन्न करते हैं ॥८॥

४९८. चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥९॥

जैसे जुआ खेलने में चार पाँसे गिरने तक (हार-जीत का) भय रहता है, उसी प्रकार बुरे वचन कहने से भी डरना चाहिये। उससे स्नेह नहीं करना चाहिए ॥९॥

[सूक्त - ४२]

[ऋषि- कण्वघौर। देवता- पूषा। छन्द- गायत्री।]

४९९. सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥१॥

हे पूषादेव ! हम पर सुखों को न्योछावर करें। पाप मार्गों से हमें पार लगाएँ। हे देव ! हमें आगे बढ़ाएँ ॥१॥

५००. यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि ॥२॥

हे पूषादेव ! जो हिंसक, चोर, जुआ खेलने वाले हम पर शासन करना चाहते हैं, उन्हें हम से दूर करें ॥२॥

५०१. अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज ॥३ ॥

हे पूषादेव ! मार्ग में घात लगाने वाले तथा लूटनेवाले कुटिल चोर को हमारे मार्ग से दूर करके विनष्ट करें ॥३ ॥

५०२. त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥४ ॥

आप हर किसी दुहरी चाल चलने वाले कुटिल हिंसकों के शरीर को पैरों से कुचलकर खड़े हों, अर्थात् उन्हें दबाकर रखें, उन्हें बढ़ने न दें ॥४ ॥

५०३. आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः ॥५ ॥

हे दुष्ट-नाशक, मनीषी पूषादेव ! हम अपनी रक्षा के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं। आपके संरक्षण ने ही हमारे पितरों को प्रवृद्ध किया था ॥५ ॥

५०४. अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम। धनानि सुषणा कृधि ॥६ ॥

हे सम्पूर्ण सौभाग्ययुक्त और स्वर्ण - आभूषणों से युक्त पूषादेव ! हमारे लिए सभी उत्तम धन एवं सामर्थ्यों को प्रदान करें ॥६ ॥

५०५. अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७ ॥

हे पूषादेव ! कुटिल दुष्टों से हमें दूर ले चलें। हमें सुगम-सुपथ का अवलम्बन प्रदान करें एवं अपने कर्त्तव्यों का बोध करायें ॥७ ॥

५०६. अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥८ ॥

हे पूषादेव ! हमें उत्तम जौ (अन्न) वाले देश की ओर ले चलें। मार्ग में नवीन संकट न आने पायें। हमें अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान करायें। (हम इन कर्त्तव्यों को जानें।) ॥८ ॥

५०७. शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥९ ॥

हे पूषादेव ! हमें सामर्थ्य दें। हमें धनों से युक्त करें। हमें साधनों से सम्पन्न करें। हमें तेजस्वी बनाएँ। हमारी उदरपूर्ति करें। हम अपने इन कर्त्तव्यों को जानें ॥९ ॥

५०८. न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि। वसूनि दस्ममीमहे ॥१० ॥

हम पूषादेव को नहीं भूलते। सूक्तों से उनकी स्तुति करते हैं। प्रकाशमान सम्पदा हम उनसे माँगते हैं ॥१० ॥

[ऐसी सम्पदा, जो प्रकाशित की जा सके और जो जीवन को प्रकाशित करे, कलंकित न करे। ऐसी सम्पदा की ही कामना की जानी चाहिए।]

[सूक्त - ४३]

[**ऋषि-** कण्व घौर। **देवता-** रुद्र- ३ रुद्र, मित्रावरुण, ७-९ सोम। **छन्द-** गायत्री,९ अनुष्टुप्।]

५०९. कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे ॥१ ॥

विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न, सुखी एवं बलशाली रुद्रदेव के निमित्त किन सुखप्रद स्तोत्रों का पाठ करें ? ॥१ ॥

५१०. यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे। यथा तोकाय रुद्रियम् ॥२ ॥

अदिति हमारे लिये और हमारे पशुओं, सम्बन्धियों, गौओं और सन्तानों के लिये आरोग्य -वर्धक ओषधियों का उपाय (अन्वेषण-व्यवस्था) करें ॥२ ॥

५११. यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः ॥३ ॥

मित्र, वरुण और रुद्रदेव जिस प्रकार हमारे हितार्थ प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार अन्य समस्त देवगण भी हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

५१२. गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥४ ॥

हम सुखद जल एवं ओषधियों से युक्त, स्तुतियों के स्वामी तथा यज्ञ के स्वामी, रुद्रदेव से आरोग्य सुख की कामना करते हैं ॥४ ॥

[स्तुत्य विचार, श्रेष्ठकर्म एवं रस से पुष्ट ओषधियों के संयोग से आरोग्य सुख प्राप्त हो सकता है।]

५१३. यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥५ ॥

सूर्य सदृश सामर्थ्यवान् और स्वर्ण सदृश दीप्तिमान् रुद्रदेव सभी देवों में श्रेष्ठ और ऐश्वर्यवान् हैं ॥५ ॥

५१४. शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥६ ॥

हमारे अश्वों, मेढ़ों, भेड़ों, पुरुषों, नारियों और गौओं के लिये वे रुद्रदेव सब प्रकार से मंगलकारी हैं ॥६ ॥

५१५. अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम्। महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥७ ॥

हे सोमदेव ! हम मनुष्यों को सैकड़ों प्रकार का ऐश्वर्य, तेजयुक्त अन्न, बल और महान् यश प्रदान करें ॥७ ॥

५१६. मा नः सोम परिबाधो मारातयो जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज ॥८ ॥

सोमयाग में बाधा देने वाले शत्रु हमें प्रताड़ित न करें। कृपण और दुष्टों से हम पीड़ित न हों। हे सोमदेव ! आप हमारे बल में वृद्धि करें ॥८ ॥

५१७. यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥९ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ के श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित आप अमृत से युक्त हैं। यजन कार्य में सर्वोच्च स्थान पर विभूषित प्रजा को आप जानें ॥९ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि**-प्रस्कण्व काण्व । देवता-अग्नि,१-२अग्नि, अश्विनीकुमार, उषा। **छन्द**-बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

५१८. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१ ॥

हे अमर अग्निदेव ! उषा काल में विलक्षण शक्तियाँ प्रवाहित होती हैं, यह दैवी सम्पदा नित्यदान करने वाले व्यक्ति को दें। हे सर्वज्ञ ! उषाकाल में जाग्रत् हुए देवताओं को भी यहां लायें ॥१ ॥

५१९. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सेवा के योग्य देवों तक हवि पहुँचाने वाले दूत और यज्ञ में देवों को लाने वाले रथ के समान हैं। आप अश्विनीकुमारों और देवी उषा के साथ हमें श्रेष्ठ, पराक्रमी एवं यशस्वी बनायें ॥२ ॥

५२०. **अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम्।**

धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥३॥

उषाकाल में सम्पन्न होने वाले यज्ञ, जो धूम्र की पताका एवं ज्वालाओं से सुशोभित हैं, ऐसे सर्वप्रिय देवदूत, सबके आश्रय एवं महान् अग्निदेव को हम ग्रहण करते हैं और श्री सम्पन्न बनते हैं ॥३॥

५२१. **श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे।**

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥४॥

हम सर्वश्रेष्ठ, अतियुवा, अतिथिरूप, वन्दनीय, हविदाता, यजमान द्वारा पूजनीय, आहवनीय, सर्वज्ञ अग्निदेव की प्रतिदिन स्तुति करते हैं। वे हमें देवत्व की ओर ले चलें ॥४॥

५२२. **स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।**

अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥५॥

अविनाशी, सबको जीवन (भोजन) देने वाले, हविवाहक, विश्व का त्राण करने वाले, सबके आराध्य, युवा हे अग्निदेव! हम आपकी स्तुति करते हैं ॥५॥

५२३. **सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः।**

प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥६॥

मधुर जिह्वावाले, याजकों की स्तुति के पात्र, हे तरुण अग्निदेव! भली प्रकार आहुतियाँ प्राप्त करते हुए आप याजकों की आकांक्षा को जानें। प्रस्कण्व (ज्ञानियों) को दीर्घ जीवन प्रदान करते हुए आप देवगणों को सम्मानित करें ॥६॥

५२४. **होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते।**

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥७॥

होता रूप सर्वभूतों के ज्ञाता, हे अग्निदेव! आपको मनुष्यगण सम्यक् रूप से प्रज्वलित करते हैं। बहुतों द्वारा आहूत किये जाने वाले हे अग्निदेव! प्रकृष्ट ज्ञान सम्पन्न देवों को तीव्र गति से यज्ञ में लायें ॥७॥

५२५. **सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः।**

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥८॥

श्रेष्ठ यज्ञों को सम्पन्न करने वाले हे अग्निदेव! रात्रि के पश्चात् उषाकाल में आप सविता, उषा, दोनों अश्विनीकुमारों, भग और अन्य देवों के साथ यहाँ आयें। सोम को अभिषुत करने वाले तथा हवियों को पहुँचाने वाले ऋत्विग्गण आपको प्रज्वलित करते हैं ॥८॥

५२६. **पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।**

उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥९॥

हे अग्निदेव! आप साधकों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञों के अधिपति और देवों के दूत हैं। उषाकाल में जाग्रत् देव आत्माओं को आज सोमपान के निमित्त यहाँ यज्ञस्थल पर लायें ॥९॥

५२७. अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
अ‍सि ग्रामेष्ववित पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥१०॥

हे विशिष्ट दीप्तिमान् अग्निदेव ! विश्वदर्शनीय आप उषाकाल के पूर्व ही प्रदीप्त होते हैं । आप ग्रामों की रक्षा करने वाले तथा यज्ञों, मानवों के अग्रणी नेता के समान पूजनीय हैं ॥१०॥

५२८. नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥११॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यों की भाँति आप को यज्ञ के साधन रूप, होता रूप, ऋत्विज् रूप, प्रकृष्ट ज्ञानी रूप, चिर-पुरातन और अविनाशी रूप में स्थापित करते हैं ॥११॥

५२९. यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥१२॥

हे मित्रों में महान् अग्निदेव ! आप जब यज्ञ के पुरोहित रूप में देवों के बीच दूत कर्म के निमित्त जाते हैं, तब आपकी ज्वालायें समुद्र की प्रचण्ड लहरों के समान शब्द करती हुई प्रदीप्त होती हैं ॥१२॥

५३०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥१३॥

प्रार्थना पर ध्यान देने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारी स्तुति स्वीकार करें । दिव्य अग्निदेव के साथ समान गति से चलने वाले, मित्र और अर्यमा आदि देवगण भी प्रातःकालीन यज्ञ में आसीन हों ॥१३॥

५३१. शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥१४॥

उत्तम दानशील, अग्निरूप जिह्वा से यज्ञ को प्रवृद्ध करने वाले मरुद्गण इन स्तोत्रों का श्रवण करें । नियमपालक वरुणदेव, अश्विनीकुमारों और देवी उषा के साथ सोम-रस का पान करें ॥१४॥

[सूक्त - ४५]

[ऋषि- प्रस्कण्व काण्व । देवता-अग्नि,१० उत्तरार्द्ध-देवगण । छन्द- अनुष्टुप् ।]

५३२. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥१॥

वसु, रुद्र और आदित्य आदि देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ करने वाले हे अग्निदेव ! आप घृताहुति से श्रेष्ठ यज्ञ सम्पन्न करने वाले मनु - संतानों (मनुष्यों) का (अनुदानादि द्वारा) सत्कार करें ॥१॥

५३३. श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥२॥

हे अग्निदेव ! विशिष्ट ज्ञान - सम्पन्न देवगण, हविदाता के लिए उत्तम सुख देते हैं । हे रोहित वर्ण अश्व वाले (अर्थात् रक्तवर्ण की ज्वालाओं से सुशोभित) स्तुत्य अग्निदेव ! उन तैंतीस कोटि देवों को यहाँ यज्ञस्थल पर लेकर आयें ॥२॥

५३४. प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥३॥

हे श्रेष्ठकर्मा, ज्ञान - सम्पन्न अग्निदेव ! जैसे आपने प्रियमेधा, अत्रि, विरूप और अंगिरा के आवाहनों को सुना था, वैसे ही अब प्रस्कण्व के आवाहन को भी सुनें ॥३॥

५३५. महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत। राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥४॥

दिव्य प्रकाश से युक्त अग्निदेव यज्ञ में तेजस्वी रूप में प्रदीप्त हुए। महान् कर्मवाले प्रियमेधा ऋषियों ने अपनी रक्षा के निमित्त अग्निदेव का आवाहन किया ॥४॥

५३६. घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः। याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥५॥

घृत - आहुति - भक्षक हेअग्निदेव ! कण्व के वंशज, अपनी रक्षा के लिये जो स्तुतियाँ करते हैं, उन्हीं स्तुतियों को आप सम्यक् प्रकार से सुने ॥५॥

५३७. त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥६॥

प्रेमपूर्वक हविष्य को ग्रहण करने वाले हे यशस्वी अग्निदेव ! आप आश्चर्यजनक वैभव से सम्पन्न हैं। सम्पूर्ण मनुष्य एवं ऋत्विग्गण यज्ञ सम्पादन के निमित आपका आवाहन करते हुए हवि समर्पित करते हैं ॥६॥

५३८. नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥७॥

हे अग्निदेव ! होता रूप, ऋत्विज्रूप, धन को धारण करने वाले, स्तुति सुनने वाले, महान् यशस्वी आपको विद्वज्जन स्वर्ग की कामना से, यज्ञों मे स्थापित करते हैं ॥७॥

५३९. आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥८॥

हे अग्निदेव ! हविष्यान्न और सोम को तैयार करके रखने वाले विद्वान्, दानशील याजक के लिये महान् तेजस्वी आपको स्थापित करते हैं ॥८॥

५४०. प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य। इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥९॥

हे बल उत्पादक अग्निदेव ! आप धनों के स्वामी और दानशील हैं। आज प्रातःकाल सोमपान के निमित्त यहाँ यज्ञस्थल पर आने को उद्यत देवों को बुलाकर कुश के आसनों पर बिठायें ॥९॥

५४१. अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥१०॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ के समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थित देवगणों का उत्तम वचनों से अभिवादन कर यजन करें। हे श्रेष्ठ देवो ! यह सोम आपके लिए प्रस्तुत है, इसका पान करें ॥१०॥

[सूक्त - ४६]

[ऋषि- प्रस्कण्व काण्व। देवता- अश्विनीकुमार। छन्द-गायत्री।]

५४२. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

यह प्रिय अपूर्व (अलौकिक) देवी उषा आकाश के तम का नाश करती है। देवी उषा के कार्य में सहयोगी हे अश्विनीकुमारो ! हम महान् स्तोत्रो द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥१॥

५४३. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप शत्रुओ के नाशक एवं नदियों के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। आप विवेकपूर्वक कर्म करने वालों को अपार सम्पति देने वाले हैं ॥२॥

५४४. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब आपका रथ पक्षियों की तरह आकाश में पहुँचता है, तब प्रशंसनीय स्वर्गलोक में भी आप के लिये स्तोत्रों का पाठ किया जाता है ॥३ ॥

५४५. हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा। पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४ ॥

हे देवपुरुषो ! जलों को सुखाने वाले, पिता रूप, पोषणकर्ता, कार्यद्रष्टा सूर्यदेव (हमारे द्वारा प्रदत्त) हवि से आपको संतुष्ट करते हैं, अर्थात् सूर्यदेव प्राणिमात्र के पोषण के लिये अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करके प्रकृति के विराट् यज्ञ में आहुति दे रहे हैं ॥४ ॥

५४६. आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा। पातं सोमस्य धृष्णुया ॥५ ॥

असत्यहीन, मननपूर्वक वचन बोलने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी बुद्धि को प्रेरित करने वाले एवं संघर्ष शक्ति बढ़ाने वाले इस सोमरस का पान करें ॥५ ॥

५४७. या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो पोषक अन्न हमारे जीवन के अन्धकार को दूर कर प्रकाशित करने वाला हो, वह हमें प्रदान करें ॥६ ॥

[अन्न में दो गुण होते हैं। १-शारीरिक पोषण २-प्रवृत्तियों का पोषण। कहावत है-'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन'। कुसंस्कार युक्त अन्न से, कुसंस्कारी मन बनने से जीवन अंधकारमय बनता है। इसलिये पोषण के साथ यज्ञीयभाव - सम्पन्न सुसंस्कार युक्त अन्न के लिये कामना की गयी है।]

५४८. आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अपना रथ नियोजितकर हमारे पास आयें। अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से हमें दुःखों के सागर से पार ले चलें ॥७ ॥

५४९. अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके आवागमन के साधन द्युलोक (की सीमा) से भी विस्तृत हैं। (तीनों लोकों में आपकी गति है।) नदियों, तीर्थ प्रदेशों में भी आपके साधन हैं, (पृथ्वी पर भी) आपके लिये रथ तैयार है। (आप किसी भी साधन से पहुंचने में समर्थ हैं।) आप के लिये यहाँ विचारयुक्त कर्म द्वारा सोमरस तैयार किया गया है ॥८ ॥

५५०. दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे। स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥९ ॥

कण्व वंशजों द्वारा तैयार सोम दिव्यता से परिपूर्ण है। नदियों के तट पर ऐश्वर्य रखा है। हे अश्विनीकुमारो ! अब आप अपना स्वरूप कहाँ प्रदर्शित करना चाहते हैं ? ॥९ ॥

५५१. अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥१० ॥

अमृतमयी किरणों वाले ये सूर्यदेव ! अपनी आभा से स्वर्णतुल्य प्रकट हो रहे हैं। इसी समय श्यामल अग्निदेव, ज्वालारूप जिह्वा से विशेष प्रकाशित हो चुके हैं। हे अश्विनीकुमारो ! यही आपके शुभागमन का समय है ॥१० ॥

५५२. अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥११ ॥

द्युलोक से अंधकार को पार करती हुई, विशिष्ट प्रभा प्रकट होने लगी है, जिससे यज्ञ के मार्ग अच्छी तरह से प्रकाशित हुए हैं। अतः हे अश्विनीकुमारो ! आपको आना चाहिये ॥११ ॥

५५३. तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२॥

सोम के हर्ष से पूर्ण होने वाले अश्विनीकुमारों के उत्तम संरक्षण का स्तोतागण भली प्रकार वर्णन करते हैं ॥१२॥

५५४. वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥१३॥

हे दीप्तिमान् (यजमानों के) मनों में निवास करने वाले, सुखदायक अश्विनीकुमारो ! मनु के समान श्रेष्ठ परिचर्या करने वाले यजमान के समीप निवास करने वाले (सुखप्रदान करने वाले हे अश्विनीकुमारो !) आप दोनों सोमपान के निमित्त एवं स्तुतियों के निमित्त इस याग में पधारें ॥१३॥

५५५. युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋता वनथो अक्तुभिः ॥१४॥

हे अश्विनीकुमारो ! चारों ओर गमन करने वाले आप दोनों की शोभा के पीछे-पीछे देवी उषा अनुगमन कर रही हैं। आप रात्रि में भी यज्ञों का सेवन करते हैं ॥१४॥

५५६. उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः ॥१५॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सोमरस का पान करें। आलस्य न करते हुए हमारी रक्षा करें तथा हमें सुख प्रदान करें ॥१५॥

[सूक्त - ४७]

[ऋषि- प्रस्कण्व काण्व। देवता- अश्विनीकुमार। छन्द - बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

५५७. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१॥

हे यज्ञ कर्म का विस्तार करने वाले अश्विनीकुमारो ! अपने इस यज्ञ में अत्यन्त मधुर तथा एक दिन पूर्व शोधित सोमरस का आप सेवन करें। यज्ञकर्त्ता यजमान को रत्न एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१॥

५५८. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! तीन वृत्त युक्त (त्रिकोण), तीन अवलम्बनवाले अति सुशोभित रथ से यहाँ आयें। यज्ञ में कण्व वंशज आप दोनों के लिये मंत्र-युक्त स्तुतियाँ करते हैं, उनके आवाहन को सुनें ॥२॥

५५९. अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥३॥

हे शत्रुनाशक, यज्ञ-वर्द्धक अश्विनीकुमारो ! अत्यन्त मीठे सोमरस का पान करें। आज रथ में धनों को धारण कर हविदाता यजमान के समीप आयें ॥३॥

५६०. त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥४॥

हे सर्वज्ञ अश्विनीकुमारो ! तीन स्थानों पर रखे हुए कुश-आसन पर अधिष्ठित होकर आप यज्ञ का सिंचन करें। स्वर्ग की कामना वाले कण्व वंशज सोम को अभिषुत कर आप दोनों को बुलाते हैं ॥४॥

५६१. याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५ ॥

यज्ञ को बढ़ाने वाले शुभ कर्मों के पोषक हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिन इच्छित रक्षण-साधनों से कण्व की भली प्रकार रक्षा की, उन साधनों से हमारी भी भली प्रकार रक्षा करें और प्रस्तुत सोमरस का पान करें ॥५ ॥

५६२. सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥६ ॥

शत्रुओं के लिए उग्ररूप धारण करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! रथ में धनों को धारण कर आपने सुदास को अन्न पहुँचाया । उसी प्रकार अन्तरिक्ष या सागरों से लाकर बहुतों द्वारा वाञ्छित धन हमारे लिए प्रदान करें ॥६ ॥

५६३. यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७ ॥

हे सत्य-समर्थक अश्विनीकुमारो ! आप दूर हों या पास हों, वहाँ से उत्तम गतिमान् रथ से सूर्य रश्मियों के साथ हमारे पास आयें ॥७ ॥

५६४. अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥८ ॥

हे देवपुरुषो अश्विनीकुमारो ! यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाले आपके अश्व आप दोनों को सोमयाग के समीप ले आयें । उत्तम कर्म करने वाले और दान देने वाले याजकों के लिये अन्नों की पूर्ति करते हुए आप दोनों कुश के आसनों पर बैठें ॥८ ॥

५६५. तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥९ ॥

हे सत्य - समर्थक अश्विनीकुमारो ! सूर्य सदृश तेजस्वी जिस रथ से दाता याजकों के लिए सदैव धन लाकर देते रहे हैं, उसी रथ से आप मीठे सोमरस पान के लिये पधारें ॥९ ॥

५६६. उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१० ॥

हे विपुल धन वाले अश्विनीकुमारो ! अपनी रक्षा के निमित्त हम स्तोत्रों और पूजा-अर्चनाओं से बार-बार आपका आवाहन करते हैं । कण्व वंशजों की यज्ञ सभा में आप सर्वदा सोमपान करते रहे हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ४८]

[ऋषि -प्रस्कण्व काण्व । देवता- उषा । छन्द- बार्हत प्रगाथ (विषमाबृहती, समासतोबृहती) ।]

५६७. सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥१ ॥

हे आकाशपुत्री उषे ! उत्तम तेजस्वी, दान देने वाली, धनों और महान् ऐश्वर्यों से युक्त होकर आप हमारे सम्मुख प्रकट हों, अर्थात् हमें आपका अनुदान - अनुग्रह प्राप्त होता रहे ॥१ ॥

५६८. अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२ ॥

अश्व, गौ आदि (पशुओं अथवा संचरित होने वाली एवं पोषक किरणों) से सम्पन्न धन-धान्यों को प्रदान करने वाली उषाएँ प्राणिमात्र के कल्याण के लिए प्रकाशित हुई हैं । हे उषे ! कल्याणकारी वचनों के साथ आप हमारे लिए उपयुक्त धन - वैभव प्रदान करें ॥२ ॥

५६९. उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३ ॥

जो देवी उषा पहले भी निवास कर चुकी हैं, वह रथों को चलाती हुई अब भी प्रकट हों । जैसे रत्नों की कामना वाले मनुष्य समुद्र की ओर मन लगाये रहते हैं; वैसे ही हम देवी उषा के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं ॥३ ॥

५७०. उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥४ ॥

हे उषे ! आपके आने के समय जो स्तोता अपना मन, धनादि दान करने में लगाते हैं , उसी समय अत्यन्त मेधावी कण्व उन मनुष्यों के प्रशंसात्मक स्तोत्र गाते हैं ॥४ ॥

५७१. आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५ ॥

उत्तम गृहिणी स्त्री के समान सभी का भलीप्रकार पालन करने वाली देवी उषा जब आती हैं, तो निर्बलों को शक्तिशाली बना देती हैं, पाँव वाले जीवों को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं और पक्षियों को सक्रिय होने की प्रेरणा देती हैं ॥५ ॥

५७२. वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥६ ॥

देवी उषा सबके मन को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं तथा धन-इच्छुकों को पुरुषार्थ के लिए भी प्रेरणा देती हैं । ये जीवन दात्री देवी उषा निरन्तर गतिशील रहती हैं । हे अन्नदात्री उषे ! आपके प्रकाशित होने पर पक्षी अपने घोंसलों में बैठे नहीं रहते (अर्थात् वे भी सक्रिय होकर गतिशील हो जाते हैं) ॥६ ॥

५७३. एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७ ॥

ये देवी उषा सूर्य के उदयस्थान से दूरस्थ देशों को भी जोड़ देती हैं । ये सौभाग्यशालिनी देवी उषा मनुष्य लोक की ओर सैकड़ों रथों द्वारा गमन करती हैं ॥७ ॥

५७४. विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥८ ॥

सम्पूर्ण जगत् इन देवी उषा के दर्शन करके झुककर उन्हें नमन करता है । प्रकाशिका, उत्तम मार्गदर्शिका, ऐश्वर्य - सम्पन्न आकाश पुत्री देवी उषा, पीड़ा पहुंचाने वाले हमारे वैरियों को दूर हटाती हैं ॥८ ॥

५७५. उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥९ ॥

हे आकाशपुत्री उषे ! आप आह्लादप्रद दीप्ति से सर्वत्र प्रकाशित हों । हमारे इच्छित स्वर्ग-सुख युक्त उत्तम सौभाग्य को ले आयें और दुर्भाग्य रूपी तमिस्रा को दूर करें ॥९ ॥

५७६. विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१० ॥

हे सुमार्ग प्रेरक उषे ! उदित होने पर आप ही विश्व के प्राणियों का जीवन आधार बनती हैं । विलक्षण धन वाली, कान्तिमती हे उषे ! आप अपने बृहत् रथ से आकर हमारा आवाहन सुनें ॥१० ॥

५७७. उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११ ॥

हे उषादेवि ! मनुष्यों के लिये विविध अन्न-साधनों की वृद्धि करें । जो याजक आपकी स्तुतियाँ करते हैं, उनके इन उत्तम कर्मों से संतुष्ट होकर उन्हें यज्ञीय कर्मों की ओर प्रेरित करें ॥११ ॥

५७८. विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्ववदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२ ॥

हे उषे ! सोमपान के लिए अंतरिक्ष से सब देवों को यहाँ ले आयें । आप हमें अश्वों, गौओं से युक्त धन और पुष्टिप्रद अन्न प्रदान करें ॥१२ ॥

५७९. यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३ ॥

जिन देवी उषा की दीप्तिमान् किरणें मंगलकारी प्रतिलक्षित होती हैं, वे देवी उषा हम सबके लिए वरणीय, श्रेष्ठ, सुखप्रद धनों को प्राप्त करायें ॥१३ ॥

५८०. ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४ ॥

हे श्रेष्ठ उषादेवि ! प्राचीन ऋषि आपको अन्न और संरक्षण प्राप्ति के लिये बुलाते थे । आप यश और तेजस्विता से युक्त होकर हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥१४ ॥

५८१. उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५ ॥

हे देवी उषे ! आपने अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोल दिया है । अब आप हमें हिंसकों से रक्षित, विशाल आवास और दुग्धादि युक्त अन्नों को प्रदान करें ॥१५ ॥

५८२. सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६ ॥

हे देवी उषे ! आप हमें सम्पूर्ण पुष्टिप्रद महान् धनों से युक्त करें, गौओं से युक्त करें । अन्न प्रदान करने वाली, श्रेष्ठ हे देवी उषे ! आप हमें शत्रुओं का संहार करने वाला बल देकर अन्नों से संयुक्त करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ४९]

[ऋषि - प्रस्कण्व काण्व । देवता-उषा । छन्द - अनुष्टुप् ।]

५८३. उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१ ॥

हे देवी उषे ! द्युलोक के दीप्तिमान् स्थान से कल्याणकारी मार्गों द्वारा आप यहाँ आयें । अरुणिम वर्ण के अश्व आपको सोमयाग करने वाले के घर पहुँचाएँ ॥१ ॥

५८४. सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२ ॥

हे आकाशपुत्री उषे ! आप जिस सुन्दर सुखप्रद रथ पर आरूढ़ हैं, उसी रथ से उत्तम हवि देने वाले याजक की सब प्रकार से रक्षा करें ॥२ ॥

५८५. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३ ॥

हे देदीप्यमान उषादेवि ! आपके (आकाशमण्डल पर) उदित होने के बाद मानव, पशु एवं पक्षी अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक स्वेच्छानुसार विचरण करते हुए दिखाई देते हैं ॥३ ॥

५८६. व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥४ ॥

हे उषादेवी ! उदित होते हुए आप अपनी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करती हैं । धन की कामना करने वाले कण्व वंशज आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि- प्रस्कण्व काण्व । देवता- सूर्य (११-१३ रोगघ्न उपनिषद्) । छन्द-गायत्री , १०-१३ अनुष्टुप् ।]

५८७. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१ ॥

ये ज्योतिर्मयी रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणियों के ज्ञाता सूर्यदेव को एवं समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं ॥१ ॥

५८८. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥२ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के साथ तारा मण्डल वैसे ही छिप जाते हैं , जैसे चोर छिप जाते हैं ॥२ ॥

५८९. अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३ ॥

प्रज्वलित हुई अग्नि की किरणों के समान सूर्यदेव की प्रकाश रश्मियाँ सम्पूर्ण जीव - जगत् को प्रकाशित करती हैं ॥३ ॥

५९०. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥४ ॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले हैं, समस्त संसार मे एक मात्र दर्शनीय प्रकाशक हैं तथा आप ही विस्तृत अन्तरिक्ष को सभी ओर से प्रकाशित करते हैं ॥४ ॥

५९१. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥५॥

हे सूर्यदेव ! मरुद्गणों, देवगणों, मनुष्यों और स्वर्गलोक वासियों के सामने आप नियमित रूप से उदित होते हैं, ताकि तीनों लोकों के निवासी आपका दर्शन कर सकें ॥५॥

५९२. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

जिस दृष्टि अर्थात् प्रकाश से आप प्राणियों को धारण-पोषण करने वाले इस लोक को प्रकाशित करते हैं, हम उस प्रकाश की स्तुति करते हैं ॥६॥

५९३. वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥७॥

हे सूर्यदेव ! आप दिन एवं रात में समय को विभाजित करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में भ्रमण करते हैं, जिससे सभी प्राणियों को लाभ प्राप्त होता है ॥७॥

५९४. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण ॥८॥

हे सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ! आप तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त दिव्यता को धारण करते हुये सप्तवर्णी किरणोंरूपी अश्वों के रथ में सुशोभित होते हैं ॥८॥

५९५. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥९॥

पवित्रता प्रदान करने वाले ज्ञानसम्पन्न ऊर्ध्वगामी सूर्यदेव अपने सप्तवर्णी अश्वों से (किरणों से) सुशोभित रथ में शोभायमान होते हैं ॥९॥

[यहाँ सप्तवर्णी का तात्पर्य सात रंगों से है, जिसे विज्ञान ने बाद में 'बैनीआहपीनाला' के क्रम से दर्शाया है।]

५९६. उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१०॥

तमिस्रा से दूर श्रेष्ठतम ज्योति को देखते हुए हम ज्योति स्वरूप और देवों में उत्कृष्टतम ज्योति (सूर्य) को प्राप्त हों ॥१०॥

५९७. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥११॥

हे मित्रों के मित्र सूर्यदेव !आप उदित होकर आकाश में उठते हुए हृदयरोग, शरीर की कान्ति का हरण करने वाले रोगों को नष्ट करें ॥११॥

[सूर्य किरणों की रोगनाशक शक्ति का उल्लेख किया गया है।]

५९८. शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥१२॥

हम अपने हरिमाण (शरीर को क्षीण करने वाले रोग) को शुकों (तोतों), रोपणाका (वृक्षों) एवं हरिद्रवों (हरी वनस्पतियों) में स्थापित करते हैं ॥१२॥

[शुक, रोपणाका तथा हरिद्रव ओषधियों के वर्ग विशेष भी कहे गये हैं।]

५९९. उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह। द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥१३॥

ये सूर्यदेव अपने सम्पूर्ण तेजों से उदित होकर हमारे सभी रोगों को वशवर्ती करें। हम उन रोगों के वश में कभी न आयें ॥१३॥

[सूक्त - ५१]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द -जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।]

६००. अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१ ॥

हे याजको ! शत्रु को पराजित करने वाले, अनेकों द्वारा प्रशंसित, वैदिक ऋचाओं से स्तुति किये जाने योग्य, धन के सागर इन्द्रदेव की प्रार्थना करो । द्युलोक के विस्तार के समान जिनके कल्याणकारी कार्य चतुर्दिक् संव्याप्त हैं, ऐसे ज्ञानवान् इन्द्रदेव की सुखों की प्राप्ति के लिए अर्चना करो ॥१ ॥

६०१. अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२ ॥

सहायता करने वाले, कर्मों में कुशल मरुत्देवों ने शत्रु के मद को चूर करने वाले, शतकर्मा, अभीष्ट पदार्थ देने वाले, अंतरिक्ष को तेज से पूर्ण करने वाले तथा अत्यन्त बलवान् इन्द्रदेव की स्तुति की । स्तोताओं की मधुर वाणी से इन्द्रदेव के उत्साह में अभिवृद्धि हुई ॥२ ॥

६०२. त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अंगिरा ऋषि के लिए गौ समूह को छुड़ाया । अत्रि ऋषि के लिए शतद्वार वाली गुफा से मार्ग ढूँढ़ निकाला । विमद ऋषि के लिए अन्न से युक्त धन प्राप्त कराया और वज्र के द्वारा युद्धों में लोगों की रक्षा की, अतः आपकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ ३ ॥

६०३. त्वमपामपिधानाऽवृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जलों से भरे हुए मेघों को मुक्त कराया । पर्वत के दस्यु वृत्र से धन को (अपहृत करके) धारण किया । बल से वृत्र और अहिरूप मेघों को विदीर्ण किया, जिससे सूर्यदेव आकाश में स्पष्ट दृष्टिगत होकर प्रकाशित हो सकें ॥४ ॥

६०४. त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो राक्षस यज्ञ की हवियों को अपने मुँह में डाल लेते थे, उन प्रपंचियों को आपने अपनी माया से मार गिराया । हे मनुष्यों द्वारा स्तुत्य इन्द्रदेव ! आपने अपना ही पेट भरने वाले पिप्रु नामक राक्षस के नगरों को ध्वस्त करके युद्ध में राक्षसों को विनष्ट करके 'ऋजिश्वा' ऋषि की रक्षा की ॥५ ॥

[यहाँ परमार्थ में लगने योग्य साधनों को भी स्वार्थ के लिए प्रयुक्त करने वालों का नाश करके लोक - मंगल का पथ प्रशस्त करने का भाव है ।]

६०५. त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने युद्ध में 'शुष्ण' का नाश कर 'कुत्स' की रक्षा की । 'अतिथिग्व' ऋषि के लिये शम्बरासुर

को पराजित किया । महान् बलशाली अर्बुद को अपने पैरों से कुचल डाला । आप चिरकाल से ही असुरों का नाश करने के लिए उत्पन्न हुए हैं ॥६ ॥

६०६. त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपमें सम्पूर्ण बल समाविष्ट है । आपका मन सोमपान करने के लिए सदा हर्षित रहता है । आपकी बाहों में धारण किया हुआ वज्र सर्वत्र प्रसिद्ध है, जिससे आप शत्रुओं के सम्पूर्ण बलों को काट डालते हैं ॥७ ॥

६०७. वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप आर्यों को जाने और अनार्यों को भी जानें । व्रतहीनों को वशीभूत करके यज्ञ कर्म करने वालों के लिये उन्हें नष्ट करें । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप सभी यज्ञों में यजमान को प्रेरणा प्रदान करें, ऐसा हम चाहते हैं ॥८ ॥

६०८. अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥९ ॥

ये इन्द्रदेव व्रतवानों के निमित्त व्रतहीनों को प्रताड़ित करते तथा आस्तिकों के निमित्त नास्तिकों को विनष्ट करते हैं । वे द्युलोक को क्षति पहुँचाने वाले असुरों को मार डालते हैं । ऐसे प्राचीन पुरुष इन्द्रदेव के बढ़ते हुए यश की 'वम्रऋषि' ने स्तुति की ॥९ ॥

६०९. तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! 'उशना' ऋषि ने अपनी स्तुतियों से आपके बल को तीक्ष्ण किया । आपके उस बल की प्रचण्डता से द्युलोक और पृथ्वी भय से युक्त हुए । मनुष्यों से स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! इच्छा मात्र से योजित होने वाले अश्वों द्वारा हमारे निमित्त अन्नादि से पूर्ण होकर यशस्वी होने यहाँ आएँ ॥१० ॥

६१०. मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११ ॥

'उशना' की स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्रदेव अति वेग वाले अश्वों पर आरूढ़ हुए । तदनन्तर मेघ से जलप्रवाहों को बहाया और 'शुष्ण' (शोषण करने वाले) असुर के दृढ़ नगरों को ध्वस्त किया ॥११ ॥

६११. आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमरसों को पीने के निमित्त रथ पर अधिष्ठित होकर जाते हैं । जिन सोमरसों से आप प्रसन्न होते हैं, वे शार्य्यात द्वारा निष्पन्न हुए थे । आप जैसे ही सोमयज्ञों की कामना करते हैं, वैसे ही आपका उज्ज्वल यश वृद्धि को प्राप्त करता है ॥१२ ॥

६१२. अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने महान् स्तुति करने एवं सोम अभिषव करने वाले कक्षीवान् राजा के लिए अल्प विवेचन योग्य विद्याओं को अभिव्यक्त किया । हे उत्तम कर्मा इन्द्रदेव ! आपने वृषणश्व राजा के निमित्त प्रेरक वाणियाँ प्रकट कीं । आपके ये सभी कर्म सोम सवनों मे बताने योग्य हैं ॥१३ ॥

६१३. इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४ ॥

निराश्रितो के लिए एकमात्र इन्द्रदेव ही आश्रय देने वाले हैं । द्वार मे स्थिर स्तम्भ की भाँति इन्द्रदेव के आश्रय के लिए प्रजाओं में इन्द्रदेव की स्तुति अनवरत स्थिर रहती है । अश्वों, गायों, रथों और धनों के शासक इन्द्रदेव ही प्रजाओं को अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते रहते हैं ॥१४ ॥

६१४. इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५ ॥

हम बलशाली, स्वप्रकाशित, सत्यरूप सामर्थ्यवाले, श्रेष्ठ इन्द्रदेव का स्तुतियो सहित अभिवादन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! इस संग्राम में हम सभी शूरवीरो सहित आपके आश्रय में उपस्थित हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ५२]

[ऋषि- सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती,१३,१५ त्रिष्टुप् ।]

६१५. त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१ ॥

हे अध्वर्यु ! उन शत्रुओं से स्पर्धा करने वाले, धनदान के निमित्त अभीष्ट स्थल पर जाने वाले इन्द्रदेव का विधिवत् पूजन करो । अश्व के समान शीघ्रता से यज्ञ स्थल पर पहुँचने वाले इन्द्रदेव के श्रेष्ठ यश को, अपनी रक्षा के लिए स्तुति करते हुए हम उन्हें रथ की ओर लौटा रहे हैं ॥१ ॥

६१६. स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२ ॥

सोमयुक्त हविष्यान्न पाकर हर्षित होते हुए इन्द्रदेव ने जल प्रवाहों के अवरोधक वृत्र को मारकर पानी में बहाया । जल प्रवाहों को संरक्षण प्रदान करने के निमित्त इन्द्रदेव अपने बलो को बढ़ाकर जलों में पर्वत की भाँति अविचल स्थिर हो गये ॥२ ॥

६१७. स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव शत्रुओं के लिए विकराल शत्रुरूप हैं । वे आकाश में व्याप्त आह्लादरूप हैं । विद्वानों द्वारा प्रदत्त सोम से वृद्धि को पाते हैं । महान् ऐश्वर्यदाता इन्द्रदेव को हविष्यान्न से तृप्त करने के निमित्त हम उत्तम स्तुतिरूपी वाणी द्वारा बुलाते हैं ॥३ ॥

[illegible] वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥४॥

जैसे नदियां समुद्र को पूर्ण करती हैं, वैसे ही कुश के आसन पर प्रतिष्ठित हुए द्युलोक निवासक इन्द्रदेव को तृप्त करते हैं। अपनी इच्छा से सुखपूर्वक, बलवान्, संरक्षक, शत्रुरहित, शुभ्र कान्ति वाले मरुद्‌गण वृत्र हनन करने में उन इन्द्रदेव की सहायता करते हैं ॥४॥

६१९. अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।

इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥५॥

सोमपान से हर्षित हुए इन्द्रदेव उत्तम वृष्टि न करने वाले असुर से युद्ध हेतु उद्यत हुए। संरक्षक मरुद्‌गण भी नदियों के प्रवाह की तरह उनकी ओर अभिमुख हुए। सोम से वृद्धि पाने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ने उस असुर को बलपूर्वक मारकर तीनों सीमाओं को मुक्त किया ॥५॥

६२०. परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।

वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

जब वृत्र - असुर जलों को बाधित कर अंतरिक्ष के गर्भ में सो गया था, तब जलों को मुक्त करने के लिए हे इन्द्रदेव! आपने कठिनता से वश में आने वाले वृत्र की ठोड़ी पर वज्र से प्रहार किया। इससे आपकी कीर्ति सर्वत्र फैली और बल प्रकाशित हुआ ॥६॥

६२१. ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना।

त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव! जैसे जलप्रवाह जलाशय को प्राप्त होते हैं, वैसे आपकी वृद्धि करने वाले हमारे मन्त्र रूप स्तोत्र आपको प्राप्त होते हैं। त्वष्टादेव ने अपने बल को नियोजित कर आपके बल को बढ़ाया और शत्रु को पराभूत करने में समर्थ आपके वज्र को तीक्ष्ण किया ॥७॥

६२२. जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।

अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८॥

हे श्रेष्ठ कर्म सम्पादक इन्द्रदेव! आपने घोड़ों पर चढ़कर, फौलादी वज्र को बाहुओं में धारण कर मनुष्यों के हितों के लिए वृत्र को मारा, जल मार्गों को खोला और दर्शन के लिए सूर्यदेव को द्युलोक में प्रतिष्ठित किया ॥८॥

६२३. बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः।

यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९॥

वृत्र के भय से मनुष्यों ने आनन्ददायक, बलप्रद, आह्लादक और स्वर्गिक उक्तियों की रचना की। तब मनुष्यों के हितार्थ युद्ध करने वाले, उनके निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले, आकाश - रक्षक इन्द्रदेव की मरुद्‌गणों ने आकर सहायता की ॥९॥

६२४. द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते।

वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥

हे इन्द्रदेव! सोमपान जनित हर्ष से आपने द्युलोक और पृथ्वी को प्रताड़ित करने वाले वृत्र के सिर को अपने वज्र के बलपूर्वक आघात द्वारा काट दिया। व्यापक आकाश भी उस वृत्र के विकराल शब्द से प्रकम्पित हुआ ॥१०॥

६२५. यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।

अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब पृथ्वी दस गुने साधनों से युक्त हो जाय और मनुष्य भी दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त होते रहें, तब हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपका बल और पराक्रम भी पृथ्वी से द्युलोक तक सर्वत्र फैलकर प्रसिद्ध हो ॥११॥

६२६. त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।

चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२ ॥

हे संघर्षक मनवाले इन्द्रदेव ! इस अंतरिक्ष के ऊपर रहते हुए आपने अपने ज्योतिर्मय स्वरूप के संरक्षण के लिए इस पृथ्वी को बनाया । स्वयं अन्तरिक्ष और द्युलोक को व्याप्त करके बल की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं ॥१२ ॥

६२७. त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।

विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप विस्तृत भूमि के प्रतिरूप हैं । आप महान् बलों से युक्त व्यापक आकाश लोक के भी स्वामी हैं और अपनी महत्ता से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को पूर्ण करते हैं । निःसन्देह आपके समान अन्य कोई नहीं है ।१३ ॥

६२८. न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।

नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४ ॥

जिनके विस्तार को द्यावा और पृथिवी नहीं पा सकते । अन्तरिक्ष का जल भी जिनके अन्त को नहीं पा सकते । उत्तम वृष्टि में बाधक वृत्र के साथ युद्ध करते हुए जिनके उत्साह की तुलना नहीं की जा सकती, ऐसे हे इन्द्रदेव ! आप अकेले ही सब में व्याप्त होकर अन्यान्य विश्वों को भी प्रकट करते हैं ॥१४ ॥

६२९. आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।

वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र के साथ सभी युद्धों में मरुतों ने आपकी अर्चना की तथा सभी देवों ने आपको उत्साहित किया, तब आपने वृत्र के मुख पर, दुष्ट बुद्धि वालों को मारने वाले वज्र का प्रहार किया ॥१५ ॥

[सूक्त - ५३]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस । देवता - इन्द्र । छन्द - जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

६३०. न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।

नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१ ॥

हम विवस्वान् के यज्ञ में महान् इन्द्रदेव की उत्तम वचनों से स्तुति करते हैं । जिस प्रकार सोने वालों का धन चोर सहजता से ले जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव ने (असुरों के) रत्नों को प्राप्त किया । धन दान करने वालों की निन्दा करना सराहनीय नहीं है ॥१ ॥

६३१. दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अश्वों, गौवों, धन-धान्यों के देने वाले हैं । आप, सबका पालन-पोषण करते हुए उन्हें उत्तम कर्म की प्रेरणा प्रदान करने वाले तेजस्वी वीर हैं । आप संकल्पों को नष्ट न करने वाले तथा मित्रों के भी मित्र हैं । इस प्रकार हम आपकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

६३२. शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३ ॥

शक्तिशाली, बहु-कर्मा, दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! सम्पूर्ण धन आपका ही है - यह सर्वज्ञात है । वृत्र का पराभव करके उसका धन लेकर, हमें उससे अभिपूरित करें । आप अपने प्रशंसकों की कामना को अवश्य पूर्ण करें ॥३ ॥

६३३. एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४ ॥

इन तेजस्वी हवियों और तेजस्वी सोमरसों द्वारा तृप्त होकर हे इन्द्रदेव ! हमें गौओं और घोड़ों (पोषण और प्रगति) से युक्त धनों को देकर हमारी दरिद्रता का निवारण करें । सोमरसों से तृप्त होने वाले, उत्तम मन वाले, इन्द्रदेव के द्वारा हम शत्रुओं को नष्ट करते हुए द्वेषरहित होकर अन्नों से सम्यक् रूप से हर्षित हों ॥४ ॥

६३४. समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम धन-धान्यों से सम्पन्न हों, बहुतों को हर्ष प्रदान करने वाली सम्पूर्ण तेजस्विता तथा बलों से सम्पन्न हों । हम वीर पुत्रों, श्रेष्ठ गौवों एवं अश्वों को प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से युक्त हों ॥५ ॥

६३५. ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६ ॥

हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! वृत्र को मारने वाले संग्राम में आपने बलवर्द्धक सोमरस का पान करके आनन्द एवं उत्साह को प्राप्त किया और तब आपने संकल्प लेकर याजकों के निमित्त दस हजार असुरों का संहार किया ॥ ६ ॥

६३६. युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७ ॥

हे संघर्षशील शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप शत्रु योद्धाओं से सर्वदा युद्ध करते रहे हैं, इनके अनेकों नगरों को आपने अपने बल से ध्वस्त किया है । उन नमनशील, योग्य मित्र, मरुतों के सहयोग से आपने प्रपंची असुर 'नमुचि' को मार दिया है ॥७ ॥

६३७. त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठ यातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने 'अतिथिग्व' को प्रताड़ित करने वाले 'करंज' और 'पर्णय' नामक असुरों का तेजस्वी अस्त्रों से वध किया । सहायकों के बिना ही 'वंगृद' के सैकड़ों नगरों को गिराकर घिरे हुए 'ऋजिश्वा' को मुक्त किया ॥८ ॥

६३८. त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।

षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९ ॥

हे प्रसिद्ध इन्द्रदेव ! आपने बन्धु-रहित 'सुश्रवस' राजा के सम्मुख लड़ने के लिये खड़े हुए बीस राजाओं को तथा उनके साठ हजार निन्यानवे सैनिकों को अपने दुष्प्राप्य चक्र (व्यूह- अथवा गतिशील प्रक्रिया) द्वारा नष्ट कर दिया ॥९ ॥

६३९. त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।

त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपने रक्षण - साधनों से 'सुश्रवस' की और पोषण साधनों से 'तूर्वयाण' की रक्षा की। आपने इस महान् तरुण राजा के लिये 'कुत्स', ' अतिथिग्व' और 'आयु' नामक राजाओं को वश में किया ॥१० ॥

६४०. य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११ ॥

यज्ञ में स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! देवों द्वारा रक्षित , हम आपके मित्र है । हम सर्वदा सुखी हों । आपकी कृपा से हम उत्तम बलो से युक्त ,दीर्घ आयु को भली प्रकार धारण करते है तथा आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ५४]

[ऋषि-सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती, ६,८,९,११ त्रिष्टुप् ।]

६४१. मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।

अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥१ ॥

जल एवं नदियो को गतिशील बनाने वाले हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप महान् शक्ति सम्पन्न हैं । हमें युद्ध जन्य दुःखों से बचाये एवं हम सबको भय मुक्त करें ॥१ ॥

६४२. अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।

यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! सर्वशक्तिमान्, साधनों से सम्पन्न, तेजस्वी इन्द्रदेव का आप पूजन करें । स्तुतियों को सुनने वाले इन्द्रदेव की महत्ता का गान करें । प्रचण्ड शक्ति से वर्षा करने वाले इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य से युक्त होकर सबके अभीष्ट की वर्षा करते हैं । अपने बल से 'पृथ्वी ' और 'द्युलोक' को समायोजित करते हैं ॥२ ॥

६४३. अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।

बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३ ॥

इन्द्रदेव शत्रुओं के विनाश के लिये शारीरिक एवं मानसिक शक्ति से सम्पन्न हैं । ऐसे तेजस्वी और महान् आत्मबल सम्पन्न इन्द्रदेव का आदरयुक्त वचनों द्वारा पूजन करें । वे इन्द्रदेव महान् यशस्वी प्राणशक्ति को बढ़ाने वाले शत्रु-नाशक, अश्वयोजित रथ पर अधिष्ठित हैं ॥३ ॥

६४४. त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आपने प्रपंची असुर के सैन्य दल को उत्साहपूर्वक तीक्ष्ण वज्र के प्रहार से नष्ट कर दिया है। आप विशाल द्युलोक के उच्च स्थान को प्रकम्पित करते हैं और अपने बल से असुर 'शम्बर' को मार गिराते हैं ॥४॥

६४५. नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपने गर्जना करते हुए, जलों को वृष्टि के लिये प्रेरित करने के निमित्त 'शुष्ण' का वध किया। प्राचीन काल से आज तक आप सामर्थ्यवान् मन से यही काम करते आये हैं। आपके ऊपर कौन है, जो आप को रोक सके ? ॥५॥

६४६. त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६॥

सैकड़ों यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपने युद्ध जन्य कठिन परिस्थितियों में नर्य, तुर्वश, यदु तथा वय्य कुलोत्पन्न तुर्वीति की रक्षा की। आपने शत्रुओं के निन्यानवे (अर्थात् अनेकों) नगरों को ध्वस्त करके रथ और एतश नामक ऋषि को संरक्षित किया है ॥६॥

६४७. स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

जो राजा सत्कर्मों का पोषक और समृद्धिशाली है, उसके शासन में रहने वाले मनुष्य उत्तम हवि को देने वाले होते हैं। वे हविष्यान्न के साथ उत्तम वचनों द्वारा स्तुतियाँ करते हैं। उसी राज्य के लिये दानशील इन्द्रदेव द्युलोक से मेघों द्वारा वृष्टि करते हैं ॥७॥

६४८. असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥८॥

सोम पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके बल की, बुद्धि की और हर्षदायक कर्मों की तुलना नहीं की जा सकती। हवि समर्पित करने वाले मनुष्यों को दिये गये आपके अनुदान, महान् पराक्रम की महत्ता और सामर्थ्य को बढ़ाने वाले हैं ॥८॥

६४९. तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥९॥

हे इन्द्रदेव! पाषाणों से कूटकर और छानकर बहुत से पात्रों में पेय सोम रखा हुआ है। यह सोम आपके निमित्त है। आप इसे पानकर अपनी इच्छा को तृप्त करें, तत्पश्चात् उत्साहपूर्वक हमें अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥९॥

६५०. अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥

जल - प्रवाहों को रोकने वाले पर्वत रूप वृत्र ने अपने उदर में जलों को स्थिर कर लिया, जिससे तमिस्रा व्याप्त हुई, तब इन्द्रदेव ने वृत्र द्वारा रोके हुए जल-प्रवाहों को मुक्त करके नीचे की ओर बहाया ॥१०॥

६५१. स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम्।

रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! आप सुख, यश, सभी लोगों को वशीभूत करने वाला राज्य और प्रशंसित सामर्थ्य हममें स्थापित करें। हमारे धनों की रक्षा करते हुए हमें उत्तम संतान एवं अधिकाधिक धन-धान्य प्रदान कर ऐश्वर्यवान् बनायें ॥११॥

[सूक्त - ५५]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस। देवता-इन्द्र। छन्द - जगती]

६५२. दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।

भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१॥

इन्द्रदेव की श्रेष्ठता पृथ्वी से द्युलोक तक विस्तृत है। अपने बल से उन्हें पराजित करने वाला कोई नहीं है। शत्रुओं के प्रति अत्यन्त विकराल, बलवान् शत्रुओं को संतप्त करने वाले इन्द्रदेव अपने वज्र का प्रहार करने के लिये उसे उसी प्रकार तीक्ष्ण करते हैं, जैसे बैल लड़ने के लिये अपने सींगों को तेज करता है ॥१॥

६५३. सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।

इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२॥

वे इन्द्रदेव अपनी उत्कृष्टता से अन्तरिक्ष में व्याप्त जल - प्रवाहों को, समुद्र द्वारा नदियों को धारण करने के समान धारण करते हैं। वे इन्द्रदेव सोम पीने की तीव्र अभिलाषा रखते हैं। चिरकाल से वे युद्धों में अपनी सामर्थ्य के बल पर प्रशंसा को प्राप्त होते रहे हैं ॥२॥

६५४. त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।

प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् बलों के धारणकर्त्ता हैं। अपने बल से पर्वत के समान दृढ़, शत्रुओं (मेघों) को विदीर्ण कर, प्रजाओं के भोग के लिये जल देकर उन पर शासन करते हैं। आप सभी कर्मों में अग्रणी और बलों के कारण देवों में श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥३॥

६५५. स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।

वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४॥

मनुष्यों में अपनी सामर्थ्य को प्रकट करते हुए सुन्दर रूप वाले वे धनवान् और बलवान् इन्द्रदेव, विनयशीलों की स्तुतियों को सुनकर प्रसन्न होते हैं तथा धनादि की कामना करने वालों को अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं ॥४॥

६५६. स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।

अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥

वे वीर इन्द्रदेव मनुष्यों के हित के लिए अपने महान् बल से बड़े-बड़े युद्धों को जीतते हैं। अपने घातक वज्र से शत्रुओं का विनाश करते हैं, जिससे मनुष्य तेजस्वी इन्द्रदेव के आगे श्रद्धा से झुकते हैं ॥५॥

६५७. स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥६ ॥

वे यश की इच्छा वाले, उत्तमकर्मा इन्द्रदेव अपने तेजस्वी बलों से शत्रुओं के घरों को नष्ट करते हुए वृद्धि को प्राप्त हुए, सूर्यादि नक्षत्रों के प्रकाश को रोकने वाले आवरणों को दूर किया और याजक के लिए जलों के प्रवाह को खोल दिया ॥६ ॥

६५८. दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥७ ॥

सोमपान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपका मन दान के लिये प्रवृत्त हो। आप हमारी स्तुतियाँ सुनते हैं। अपने अश्वों को हमारे यज्ञ की ओर अभिमुख करें। हे इन्द्रदेव ! आपके ये सारथी नियंत्रण में पूर्ण कुशल हैं, जिससे ये प्रबल अवरोधों से भी विचलित नहीं होते ॥७ ॥

६५९. अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने दोनों हाथों में अक्षय धन को धारण करते हैं। आपके शरीर में प्रचण्ड बल स्थापित है। स्तुति करने वालो ने आप के शरीरो को बढ़ाया है। मनुष्यों से घिरे कुएँ के समान आपके शरीर प्रसिद्ध कर्मो से घिरे हुए हैं ॥८ ॥

[इस ऋचा में लिखा है कि श्रेष्ठ कर्मों से इन्द्रदेव के शरीर घिरे रहते हैं। संगठक सत्ता को वेद में इन्द्रदेव कहा गया है। जिन शरीरों में इन्द्रदेव का आधिपत्य है, उनकी शक्तियाँ संगठित रहती हैं। बिखरी हुई शक्ति वाले शरीरों से कर्मों की सिद्धि नहीं होती, संगठित शक्ति युक्त शरीरों से कर्म सिद्ध होते हैं, अतः वे शरीर कर्मों से घिरे रहते हैं।]

[सूक्त - ५६]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस। देवता- इन्द्र। छन्द -जगती।]

६६०. एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥१ ॥

जगत् का पोषण करने वाले इन्द्रदेव यजमान के बहुसंख्यक सोमपात्रों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारते हैं। वे यजमान, सुन्दर अश्वों से योजित, दीप्तिमान् स्वर्णिम रथ में घिरे बैठे महान् बलवान् इन्द्रदेव को सोम पिलाते हैं ॥१ ॥

६६१. तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥२ ॥

जिस प्रकार धन के इच्छुक समुद्र की ओर प्रस्थान करते हैं, उसी प्रकार हविदाता यजमान इन्द्रदेव की ओर हवि ले जाते हुए विचरण करते हैं। हे स्तोता ! जैसे नदियाँ पहाड़ को घेरती हुई चलती हैं, वैसे ही आपकी स्तुतियाँ महान् बलों के स्वामी, यज्ञ के स्वामी, संघर्षक इन्द्रदेव को अपनी तेजस्विता से आवृत कर लें ॥२ ॥

[वैदिक युग में समुद्र से रत्न आदि प्राप्त करने की विद्या का ज्ञान था।]

६६२. स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥

वे महान् इन्द्रदेव शत्रुओं का नाश करने वाले और फौलादी कवच को धारण करने वाले हैं । वे मायावी असुर "शुष्ण" को कारागार में रस्सियों से बाँधकर रखते हैं । उनका निन्दारहित बल संग्राम में पर्वत-शिखर तुल्य प्रतिभासित होता है ॥३ ॥

६६३. देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४ ॥

हे स्तोता ! सूर्यदेव के द्वारा देवी उषा को प्राप्त करने के समान आपके स्तवन द्वारा प्रवृद्ध बल इन्द्रदेव को प्राप्त होता है; तब वे अपने संघर्षशील बल से दुष्कर्म रूपी तमिस्रा का निवारण करते हैं । शत्रुओं को रुलाने में समर्थ इन्द्रदेव संग्राम में (सेना के माध्यम से) बहुत धूलि उड़ाते हैं ॥४ ॥

६६४. वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने बादलों द्वारा धारण किये हुए जलों को आकाश की दिशाओं में स्थापित किया । सोम से हर्षित होकर संघर्षक बल से वृत्र को युद्ध में मारा, तब वृत्र द्वारा ढके जलों को नीचे की ओर प्रवाहित किया ॥५ ॥

६६५. त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपने महान् बल से जलों को अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर स्थापित किया । आपने सोम पीकर उत्साहपूर्वक संघर्षक बल से वृत्र को मारा और पृथ्वी के सब स्थानों को जलों से तृप्त किया ॥६ ॥

[सूक्त - ५७]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस । देवता - इन्द्र । छन्द - जगती ।]

६६६. प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१ ॥

अत्यन्त दानी, महान् ऐश्वर्यशाली, सत्य-स्वरूप, पराक्रमी इन्द्रदेव की हम बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं । नीचे की ओर प्रवाहित जल - प्रवाहों के समान इनके बलों को कोई भी धारण नहीं कर सकता । जिस बल से प्राप्य ऐश्वर्य को मनुष्यों के लिये जीवन भर प्रदान करने का उनका व्रत खुला हुआ है ॥१ ॥

६६७. अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्वर्ण सदृश दीप्तिमान् मारक वज्र मेघों को विदीर्ण करने में तत्पर हुआ, तब हे इन्द्रदेव ! सारा जगत् आपके लिए यज्ञ-कर्मों में संलग्न हुआ । जल के नीचे की ओर प्रवाहित होने के समान याजकों के द्वारा समर्पित सोम आपकी ओर प्रवाहित हुआ ॥२ ॥

६६८. अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३ ॥

हे दीप्तिमति उषे ! शत्रुओं के प्रति विकराल और प्रशंसनीय उन इन्द्रदेव के लिये नमस्कार के साथ यज्ञ सम्पादन करें, जिनका धाम (स्थान) अन्नादि दान के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिनकी सामर्थ्य और कीर्ति अश्व के सदृश सर्वत्र संचरित होती है ॥३ ॥

६६९. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।

नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥४ ॥

हे सम्पत्तिवान् एवं बहुप्रशंसित इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में कार्य करते हुए, निष्ठापूर्वक रहते हुए, आपके समान अन्य स्तुत्य देवता के न रहने के कारण, हम आपकी स्तुति करते हैं । सभी पदार्थों को स्वीकार करने वाली पृथ्वी के समान आप भी हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥४ ॥

६७०. भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।

अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! स्तुति करने वाले इन साधकों की कामनायें पूर्ण करें । आप अत्यन्त बलवान् हैं । यह महान् द्युलोक भी आपके बल पर ही स्थित है और यह पृथ्वी भी आपके बल के आगे झुकती है ॥५ ॥

६७१. त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।

अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने महान् बलशाली मेघों को अपने वज्र से खण्ड-खण्ड किया और रुके जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया । केवल आप ही सब संघर्षक शक्तियों को धारण करते हैं, यही सत्य है ॥६ ॥

[सूक्त - ५८]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - अग्नि । छन्द - जगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।]

६७२. नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।

वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१ ॥

निश्चित रूप से बलों से उत्पन्न (अरणि - मन्थन द्वारा उत्पन्न) यह अमर अग्निदेव कभी संतप्त नहीं होते । वे यजमान के दूत रूप में सहायक होते हैं । वे अपने उत्तम मार्गों से अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हुए गमन करते हैं । देवों को समर्पित हविष्यान्न उन तक पहुँचाकर सम्मानित करते हैं ॥१ ॥

६७३. आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।

अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२ ॥

कभी जीर्णता को न प्राप्त होने वाले अग्निदेव, हवियों के साथ मिलकर इनका भक्षण करते हुए समिधाओं पर दीप्तिमान् होते हैं । घृत के सिंचन से ऊपर उठती हुई इनकी ज्वालायें सज्जित अश्व के सदृश सुशोभित होती हैं । ये आकाशस्थ मेघ के गर्जन के समान शब्द करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

६७४. क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३ ॥

यज्ञादि कर्मों के सम्पादन में कुशल, रुद्रों और वसुओं द्वारा अग्रिम रूप में स्थापित, होता रूप, अविनाशी, धन-प्रदाता, प्रतिष्ठित अग्निदेव, याजकों की स्तुतियों से, रथ के समान बढ़ती हुई प्रजाओं में क्रमशः वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनों को स्थापित करते हैं ॥३ ॥

६७५. वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥४ ॥

वायु के संयोग से समिधाओं पर प्रज्वलित अग्निदेव तेजस्वी ज्वालाओं के साथ शब्दायमान होते हुए सुशोभित हो रहे हैं । हे अजर, दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप अपनी प्रखर शक्ति से वनों को (समिधाओं को) प्रभावित करते हुए काले धूम्र के रूप में उठकर अपनी उपस्थिति का बोध करा रहे हैं ॥४ ॥

६७६. तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५ ॥

वायु द्वारा प्रेरित, प्रज्वलित तेजस्वी ज्वालाओं रूपी दाढ़ वाले अग्निदेव वनों में गो समूह के बीच स्वच्छन्द बैल की तरह घूमते हैं । जब ये अनन्त अन्तरिक्ष में पक्षी के समान वेग से घूमते हैं, तो सारे स्थावर- जंगम भयभीत हो उठते हैं ॥५ ॥

६७७. दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों द्वारा सुख प्राप्ति के निमित्त, आहवनीय, होतारूप, अतिथिरूप, पूज्य, वरण करने योग्य, मित्र तुल्य, सुखद, तेजस्वी, धन के सदृश सुन्दर रूप वाले आपको, भृगुओं ने मनुष्यों में देवत्व की प्राप्ति के लिए स्थापित किया ॥६ ॥

६७८. होतारं सप्त जुह्वो३यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७ ॥

आवाहन करने वाले सात ऋत्विज् और होतागण यज्ञों में श्रेष्ठ होता रूप अग्निदेव का वरण करते हैं । उन सम्पूर्ण धनों को देने वाले अग्निदेव की हविष्यान्न द्वारा सेवा करते हुए, हम उनसे रत्नों की याचना करते हैं ॥७ ॥

६७९. अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥८ ॥

बल के पुत्र, श्रेष्ठ मित्र रूप हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं को आज श्रेष्ठ सुख प्रदान करें । बलों को न क्षीण करने वाले हे अग्निदेव ! आप अपने फौलादी दुर्गों से जैसे हम स्तोताओं की रक्षा करते हैं, वैसे आप हमें पापों से रक्षित करें ॥८ ॥

६८०. भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९ ॥

हे देदीप्यमान् अग्निदेव ! स्तोता के लिये आप आश्रयरूप हों । हे ऐश्वर्यशालिन् अग्निदेव ! आप धन वाले याजक के लिये सुख प्रदायक हों । स्तोताओं को पापों से रक्षित करें । विचारपूर्वक वैभव देने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रातःकाल (यज्ञ में) शीघ्र पधारें ॥९ ॥

[सूक्त - ५९]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - अग्नि वैश्वानर । छन्द - त्रिष्टुप्]

६८१. वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! समस्त अग्नियाँ आपकी ज्वालाएँ हैं । सब देव आपसे आनन्द पाते हैं । हे वैश्वानर ! आप सब प्राणियो का पोषण करने वाले नाभि (केन्द्र) हैं । आप स्तम्भ (यूप) की तरह सभी लोगों के आधार रूप हैं ॥१ ॥

६८२. मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥२ ॥

ये अग्निदेव आकाश के शिर और पृथ्वी की नाभि हैं । (सूर्य रूप में आकाश के शीर्ष तथा यज्ञ रूप में पृथ्वी की नाभि हैं ।) ये आकाश-पृथ्वी के अधिपति हैं । इन देव को सभी देव प्रकट करते हैं । हे वैश्वानर अग्निदेव ! श्रेष्ठजनों के लिये भी आपने ज्योति रूप प्रकाश दिया है ॥२ ॥

६८३. आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।

या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥३ ॥

सूर्यदेव से सर्वदा प्रकाश किरणों के निःसृत होने के समान वैश्वानर अग्निदेव से सभी धन प्राप्त होते हैं । हे अग्निदेव ! आप सभी पर्वतों, ओषधियों, जलों और मानवों में स्थित धनों के राजा हैं ॥३ ॥

६८४. बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३न दक्षः ।

स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥४ ॥

द्यावा-पृथिवी इस पुत्र-रूप (गर्भ में रहने वाले) वैश्वानर अग्निदेव के लिये बृहत् स्वरूप को प्राप्त हुई हैं । मनुष्यों में श्रेष्ठ, ये होता प्रकाशित और सत्य बल से युक्त वैश्वानर अग्निदेव के लिये पुरातन स्तुतियों का गायन करते हैं ॥४ ॥

६८५. दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।

राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥५ ॥

हे प्राणियों के ज्ञाता, मनुष्यों में व्याप्त अग्निदेव ! आपकी महत्ता व्यापक एवं द्युलोक से भी अधिक बड़ी है । आप मानव मात्र के अधिपति हैं । संघर्षशील हमारा जीवन दैवी सम्पदाओं से अभिपूरित हो ॥५ ॥

६८६. प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।

वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥६ ॥

अब उन बलवान् अग्निदेव की महत्ता का वर्णन करते हैं । ये वैश्वानर अग्निदेव जलों के चोर वृत्र का वध करते हैं । सब मनुष्य उस वृत्र नाशक अग्निदेव का आश्रय लेते हैं । दिशाओं को कम्पित करने वाले वे 'शंबर' असुर का भेदन करते हैं ॥६ ॥

६८७. वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥७ ॥

ये वैश्वानर (विश्व पुरुष) अग्निदेव अपनी महिमा से सब मनुष्यों के स्वामी हैं । अन्नदाताओं में अतिपूजनीय और वैभवशाली हैं । 'शतवन' के पुत्र 'पुरुनीथ' के यज्ञ में सत्यवान् अग्निदेव की सैकड़ों स्तोत्रों से स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

[सूक्त - ६०]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप्]

६८८. वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥१ ॥

हविवाहक, यशस्वी, यज्ञ पताका सदृश लहराने वाले, उत्तम रक्षक, शीघ्र धन प्रदायक, देवताओं तक हवि पहुँचाने वाले, द्विज (अरणि मंथन और मंत्ररूप विद्या इन दो के द्वारा उद्‌भूत), धन के समान प्रशंसित अग्निदेव को वायुदेव ने भृगु का मित्र बनाया ॥१ ॥

६८९. अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥२ ॥

देवों को हवि समर्पित करते हुए समुन्नत जीवन जीने वाले तथा सामान्य जीवन जीने वाले मनुष्य दोनों अग्निदेव के शासन में ही रहते हैं । पूजनीय, जलवर्षक, प्रजापालक, होतारूप अग्निदेव सूर्योदय से पहले ही (याजकों द्वारा यज्ञवेदी पर यज्ञाग्नि के रूप में) प्रकट होते हैं ॥२ ॥

६९०. तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥३ ॥

जीवन-संग्राम में विजयी होते हुए, उन्नति की आकांक्षा करने वाले मनुष्य जिन अग्निदेव को उत्पन्न करते हैं, उन, प्रत्येक हृदय में विराजमान, मधुर वाणी वाले, उत्तम, यशस्वी अग्निदेव को हमारी नवीन स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥३ ॥

६९१. उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥४ ॥

धन-वैभव प्राप्त करने की कामना से पवित्रता प्रदान करने वाले ये अग्निदेव, याजकों द्वारा होतारूप में वरण किये जाते हैं । दोषों का दमन करने वाले, गृह पालक, श्रेष्ठ ऐश्वर्य के स्वामी, ये अग्निदेव यज्ञों में वेदी पर स्थापित किये जाते हैं ॥४ ॥

६९२. तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम गौतम वंशज आपकी अपनी बुद्धि से प्रशंसा करते हैं । अन्न देने वाले, पवित्र करने वाले, अश्व की तरह बल, सम्पन्न आप, हमें धन प्राप्त करने का कौशल प्रदान करें और प्रातःकाल (यज्ञ में) शीघ्र ही पधारें ॥५ ॥

[सूक्त - ६१]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

६९३. अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१ ॥

शीघ्र कार्य करने वाले, मंत्रों द्वारा वर्णनीय, महान् कीर्ति वाले, अबाध गति वाले इन्द्रदेव के लिये हम प्रशंसात्मक मंत्रों का गान करते हुए हविष्यान्न अर्पित करते हैं ॥१ ॥

६९४. अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२ ॥

हम उन इन्द्रदेव के निमित्त हविष्य के समान स्तोत्र अर्पित करते हैं । शत्रुनाशक इन्द्रदेव के लिए हम उत्तम स्तुति गान करते हैं । ऋषिगण उन पुरातन इन्द्रदेव के लिए हृदय, मन और बुद्धि के द्वारा पवित्र स्तुति करते हैं ॥२ ॥

६९५. अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३ ॥

हम महान् विद्वान् इन्द्रदेव को आकृष्ट करने वाली, उनकी महिमा के अनुरूप उत्तम स्तुतियों को निर्मल बुद्धि से नादपूर्वक उच्चारित करते हैं ॥३ ॥

६९६. अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४ ॥

जैसे त्वष्टादेव रथ का निर्माण करके इन्द्रदेव को प्रदान करते हैं, वैसे ही हम समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले, स्तुत्य, मेधावी इन्द्रदेव के लिए अपनी वाणियों से सर्व प्रसिद्ध श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान करते हैं ॥४ ॥

६९७. अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५ ॥

अश्व को रथ से नियोजित करने के समान हम धन की कामना से इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्रों को वाणी से युक्त करते हैं । हम उन वीर, दानशील, विपुल यशस्वी, शत्रु के नगरों को ध्वस्त करने वाले इन्द्रदेव की वन्दना करते हैं ॥५ ॥

६९८. अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६ ॥

लक्ष्य को भली प्रकार बेधने वाले, शक्तिशाली वज्र को त्वष्टादेव ने युद्ध के निमित्त इन्द्रदेव के लिए तैयार किया । उसी वज्र से शत्रुनाशक, अतिबलवान् इन्द्रदेव ने वृत्र के मर्म स्थान पर प्रहार करके उसे मारा ॥६ ॥

६९९. अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७ ॥

वृष्टि के द्वारा माता की भाँति जगत् का श्रेष्ठ निर्माण करने वाले, महान् इन्द्रदेव ने यज्ञों में हवि का सेवन किया और सोम का शीघ्र पान किया । उन सर्व व्यापक इन्द्रदेव ने शत्रुओं के धन को जीता और वज्र का प्रहार करके मेघों का भेदन किया ॥७ ॥

७००. अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८ ॥

'अहि' (गति हीनों) का हनन करने पर देव-पत्नियों ने इन्द्रदेव की स्तुति की । इन्द्रदेव ने फिर पृथ्वीलोक और द्युलोक को वश में किया । दोनों लोकों में उनकी सामर्थ्य के सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥८ ॥

७०१. अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९ ॥

इन्द्रदेव की महत्ता आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष से भी विस्तृत है । स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, उत्तम योद्धा, असीमित बल वाले इन्द्रदेव युद्ध के लिए अपने वीरों को प्रेरित करते हैं ॥९ ॥

७०२. अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१० ॥

इन्द्रदेव ने अपने बल से शोषक वृत्र को वज्र से काट दिया और अपहृत गायों के समान रोके हुए जलों को मुक्त किया । हविदाताओं को अन्नों से पूर्ण किया ॥१० ॥

७०३. अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११ ॥

इन्द्रदेव के बल से ही नदियाँ प्रवाहित हुईं; क्योंकि इन्होंने ही वज्र से (पर्वतों- भूखण्डों को काटकर, प्रवाह-पथ बनाकर) इन्हें मर्यादित कर दिया है । शत्रुओं को मारकर सभी पर शासन करने वाले इन्द्रदेव हविदाता को धन देते हुए 'तुर्वणि' अर्थात् शत्रुओं से मोर्चा लेने वाले की सहायता करते हैं ॥११ ॥

७०४. अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अति वेगवान्, सबके स्वामी, महाबली आप इस वृत्र पर वज्र का प्रहार करें और इसके जोड़ों को तिरछे (वज्र के) प्रहार से भूमि के समान (समतल) काट दें । इस प्रकार जलों को मुक्त करके प्रवाहित करें ॥१२ ॥

[जल के प्रवाह में बाधक पर्वत आदि के जोड़ों को काटकर जल प्रवाह के लिए समतल मार्ग बनाने का भाव है ।]

७०५. अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३ ॥

हे मनुष्य ! इन्द्रदेव के पुरातन कर्मों की आप प्रशंसा करें । युद्ध में वे शीघ्रता से शस्त्रों का प्रहार करके समाज को हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं को विनष्ट करते हैं ॥१३ ॥

७०६. अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४ ॥

इन इन्द्रदेव के भय से दृढ़ पर्वत, आकाश, पृथ्वी और सभी प्राणी काँपते हैं । नोधा ऋषि इन्द्रदेव के श्रेष्ठ रक्षण सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए उनके अनुग्रह से बलशाली हुए थे ॥१४ ॥

७०७. अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५ ॥

बहुत से धनों के एकमात्र स्वामी इन्द्रदेव जो इच्छा करते हैं, वही स्तोताओं के द्वारा अर्पित किया जाता है। इन्द्रदेव ने स्वश्व के पुत्र 'सूर्य' के साथ स्पर्धा करने वाले तथा सोमयाग करने वाले 'एतश' ऋषि को सुरक्षा प्रदान की ॥१५ ॥

७०८. एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६ ॥

हरे रंग के अश्वों से योजित रथ वाले हे इन्द्रदेव ! गौतम वंशजों ने आपके निमित्त आकर्षक मंत्रयुक्त स्तोत्रों का गान किया है। इनका आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें। विचारपूर्वक अपार धन वैभव प्रदान करने वाले इन्द्रदेव हमें प्रातः (यज्ञ में) शीघ्र प्राप्त हों ॥१६ ॥

[सूक्त - ६२]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता- इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

७०९. प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१ ॥

हम इन्द्रदेव के शक्ति संवर्धक स्तवन से परिचित हैं। शक्ति की आकांक्षा युक्त, श्रेष्ठ वाणियों से सम्पन्न, ज्ञानवान्, शक्ति - पराक्रम से विख्यात इन्द्रदेव की अंगिरा के सदृश स्तुति मंत्रों से अर्चना करते हैं ॥१ ॥

७१०. प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप महान् पराक्रमी इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए स्तुति एवं सामगान करते हुए उनको नमन करें। हमारे पूर्वज ऋषियों - अंगिरा आदि ने इसी प्रकार अर्चना द्वारा तेजस्विता को प्राप्त किया था ॥२ ॥

७११. इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥३ ॥

इन्द्रदेव और अंगिराओं की इच्छा से 'सरमा' ने अपने पुत्र के निमित्त अन्नों को प्राप्त किया। महान् देवों के स्वामी इन्द्रदेव ने असुरों को मारा और जलधाराओं को मुक्त किया। जल प्रवाहों को पाकर सभी मनुष्य हर्षित हुए ॥३ ॥

७१२. स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥४ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! स्वर युक्त उत्तम स्तोत्रों से प्रशंसित, आपने तीव्र उत्कण्ठा से की गईं सप्तऋषियों की नवीन स्तुतियों को सुना। आपने ही बलशाली मेघों को मारा, जिससे दशों दिशाओं में घोर गर्जना हुई ॥४ ॥

७१३. गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अंगिरा ऋषियों द्वारा वर्णित स्तुतियों को प्राप्त किया। आपने दर्शनीय देवी उषा और सूर्यदेव की दीप्तिमान् रश्मियों द्वारा तमिस्रा को दूर किया। भूमि प्रदेश को विस्तृत किया। द्युलोक और अन्तरिक्ष को स्थिर किया ॥५ ॥

७१४. तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।

उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥६ ॥

इन्द्रदेव के अति प्रशंसनीय, सुन्दरतम और दर्शनीय कर्मों मे एक यह है कि उन्होंने भूमि के ऊपरी प्रदेश मे प्रवाहित चार नदियों को मधुर जल से पूर्ण किया ॥६ ॥

[यहाँ भूमि के ऊपरी भाग से हिमालय क्षेत्र का बोध होता है। उससे प्रवाहित चार मुख्य नदियाँ सिन्धु, यमुना, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र के प्रवाहों में बाधकों (अवरोधों) को वज्र से काटकर इन्द्रदेव ने उन्हें मधुर जल से भर दिया, ऐसा भाव परिलक्षित होता है।]

७१५. द्विताविं वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।

भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥७ ॥

'अयास्य' ऋषि के प्रशंसनीय स्तोत्रों से पूजित इन्द्रदेव ने समान रूप से मिले हुए द्युलोक को दो रूपों, पृथ्वी और आकाश में विभक्त किया। शतकर्मा इन्द्रदेव ने उत्तमरूप से व्याप्त आकाश द्वारा सूर्यदेव को धारण करने के सदृश पृथ्वी और आकाश को धारण किया ॥७ ॥

७१६. सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।

कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥८ ॥

विविध रूप वाली दो युवतियाँ उषा और रात्रि अपनी गतियों से आकाश में भूमि के चारों ओर सनातन काल से चलती आती हैं। ये कृष्ण वर्ण रात्रि और दीप्तिमती उषा पृथक्-पृथक् होकर चलती हैं, अर्थात् दोनों कभी एक साथ नहीं दिखाई देती हैं ॥८ ॥

७१७. सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।

आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९ ॥

उत्तम वृष्टिकारक, बल के पुत्र, उत्तमकर्मा, स्तोताओं से सर्वदा मित्रता करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप अपरिपक्व गौओं में भी पौष्टिक दूध को स्थापित करते हैं। कृष्ण वर्णा, रोहित वर्ण गौओं में भी श्वेत दूध को स्थापित करते हैं ॥९ ॥

७१८. सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।

पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१० ॥

सदैव साथ रहने वाली अंगुलियाँ अपने बल से अनेकों (सहस्रों) स्थिर और अविनाशी कर्मों को करती हैं। जैसे लोग पत्नी की इच्छा पूर्ण करते हैं, वैसी ही स्वयं संचालित अंगुलियाँ अबाधगति वाले इन्द्रदेव की इच्छा पूर्ति करती हैं ॥१० ॥

७१९. सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।

पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥११ ॥

हे दर्शनीय इन्द्रदेव ! यज्ञ और वैभव की इच्छा से ज्ञानी जन स्तोत्रों द्वारा आपका पूजन और नमन करते हैं। हे बलवान् इन्द्रदेव ! जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति को प्रसन्न रखती हैं, वैसे ही की गई स्तुतियाँ आपको प्रसन्नता प्रदान करती हैं ॥११ ॥

७२०. सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।

द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२ ॥

हे दर्शनीय इन्द्रदेव ! सनातन काल से आप अपने हाथों में कभी नष्ट न होने वाले अक्षय ऐश्वर्य को धारण करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप दीप्तिमान्, कर्मवान्, धैर्यवान् और सामर्थ्यवान् हैं । अपनी सामर्थ्यों से हमें धन प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करें ॥१२ ॥

७२१. सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।

सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सनातन काल से ही स्थित हैं, उत्तम मार्गों से गमन करने वाले तथा अश्वों को नियोजित करने वाले हैं । आपकी स्तुति के लिये गौतम ऋषि के पुत्र नोधा ऋषि ने नवीन स्तोत्रों की रचना की है । बलवान्, धन की प्रेरणा देने वाले हे इन्द्रदेव ! आप प्रातः काल हमारे पास शीघ्र ही आयें ॥१३ ॥

[सूक्त - ६३]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

७२२. त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।

यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं । आपने उत्पन्न होते ही इस द्यावा-पृथिवी को अपने बल से धारण किया । आपके भय से सुदृढ़ पर्वतों के समूह भी किरणों के सदृश काँपते हैं ॥१ ॥

७२३. आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।

येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥२ ॥

निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्म करने वाले तथा बहुतों के द्वारा स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! आप जब अपने रथ से विविध कर्म वाले अश्वों द्वारा आते हैं, तब स्तोता आपके हाथों में वज्र को स्थापित करते हैं । आप उसी वज्र से शत्रुओं के असंख्य नगरों को ध्वस्त करते हैं ॥२ ॥

७२४. त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।

त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३ ॥

हे सत्यवान् इन्द्रदेव ! आप ऋभुओं और मनुष्यों के कुशल नायक हैं । शत्रुओं को वश में करने वाले, विजेतारूप हैं । आपने महान् संग्राम में तेजस्वी, युवा कुत्स के सहायक होकर 'शुष्ण' को मारा ॥३ ॥

७२५. त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।

यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने कुत्स की सहायता कर, प्रसिद्ध विजयरूपी धन प्राप्त किया । जल वर्षण करने वाले, शत्रु विनाशक, वज्रधारी हे इन्द्रदेव ! आपने संग्राम में जब कुत्स के विरोधी वृत्र तथा अन्य शत्रुओं को मार भगाया, तब कुत्स को सम्पूर्ण यश प्राप्त हुआ ॥४ ॥

७२६. त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।

व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्धनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! मनुष्यों पर क्रोध करने वाले सुदृढ़ शत्रु भी आप पर प्रहार नहीं कर पाते । हे इन्द्रदेव ! जैसे हथौड़े से लोहे को पीटते हैं, वैसे ही आप हमारे शत्रुओं पर आघात कर उन्हें मारें । हमारे अश्वों के मार्ग को मुक्त करें अर्थात् हमारी प्रगति का मार्ग बाधाओं से रहित हो ॥५ ॥

७२७. त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।

तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव !धन-प्राप्ति और सुख-प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले युद्ध में मनुष्य अपनी सहायता के लिए आपका आवाहन करते हैं । हे बलों के धारक इन्द्रदेव !संग्राम में योद्धाओं को आपकी सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

७२८. त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।

बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥७ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने 'पुरुकुत्स' के लिए युद्ध करते हुये शत्रु के सात नगरों को तोड़ा और सुदास के लिए शत्रुओं को कुश के समान अनायास काट दिया । आपने ही पुरु के लिए धन प्रदान किया ॥७ ॥

७२९. त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।

यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥८ ॥

हे महान् बलशाली इन्द्रदेव ! जल को बढ़ाने के सदृश हमारी भूमि में चारों ओर अन्नों की वृद्धि करें । जलों को सर्वत्र बहाने के समान हमें अन्नों को प्रदान करें ॥८ ॥

७३०. अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।

सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौतम वंशजों ने अश्वों से सम्पन्न आपके निमित्त स्तुति मंत्रों की रचना की । इन श्रेष्ठ स्तोत्रों को गाकर आपका सत्कार किया । हे इन्द्रदेव ! आप हमें श्रेष्ठ बल दें और धनों को प्राप्त करने की बुद्धि दें । प्रातः (यज्ञ की वेला में) हमें आप शीघ्र प्राप्त हों ॥९ ॥

[सूक्त - ६४]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता- मरुद्‌गण । छन्द - जगती, १५ त्रिष्टुप् ।]

७३१. वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।

अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१ ॥

हे नोधा (शोधकर्ता) ऋषे ! बल पाने के लिए, बल वृद्धि के लिए, उत्तम यज्ञ - सम्पादन के निमित्त और मेधा प्राप्ति के निमित्त मरुद्‌गणों की श्रेष्ठ काव्यों से स्तुतियाँ करें । यज्ञों में हम होता हाथ जोड़कर हृदय से उनकी अभ्यर्थना करते हैं और जल सिंचन के सदृश उत्तम वाणियों से मंत्रों का गायन करते हैं ॥१ ॥

७३२. ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।

पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२ ॥

वे महान् सामर्थ्यवान् प्राणों की रक्षा करने वाले, जीवन में पवित्रता का संचार करने वाले, सूर्य सदृश तेजस्वी, सोम पीने वाले, विकराल शरीरधारी मरुद्गण, रुद्रदेव के मरणधर्मा गणों के समान मानो दिव्य लोक से ही प्रकट हुए हैं ॥२ ॥

७३३. युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।

दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥३ ॥

युवा शत्रुओं के लिए रुद्ररूप, अजर, कृपणहन्ता, अबाधगति से चलने वाले मरुद्गण पर्वत के सदृश अभेद्य हैं । पृथ्वी और द्युलोक के सभी प्राणियों को अपने बल से ये विचलित कर देते हैं ॥३ ॥

७३४. चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।

अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४ ॥

शरीर की शोभा बढ़ाने के उद्देश्य से विविध अलंकारों से सुसज्जित ये मरुद्गण विशेष रूप से आकर्षक हैं । वक्ष पर शोभा के निमित्त ये स्वर्णाभूषण धारण किये हैं । इन मरुतों के कन्धों पर रखे अस्त्रों की दीप्ति सर्वत्र प्रकाशित होती है । ये वीर पुरुष आकाश में अपने बल से उत्पन्न हुए हैं ॥४ ॥

७३५. ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।

दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥५ ॥

ऐश्वर्य देने वाले स्वामी, शत्रु को कम्पित करने वाले, हिंसकों का नाश करने वाले ये मरुद्गण अपनी सामर्थ्य द्वारा वायु और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं । सर्वत्र गमन कर शत्रुओं पर आघात करने वाले ये वीर आकाशीय मेघों को दुहकर भूमि को वर्षा के जलों से तृप्त करते हैं ॥५ ॥

[मरुद्गण वायु और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं, इससे स्पष्ट होता है कि मरुत् एक संकल्प युक्त सूक्ष्म प्रवाह है । विज्ञान के सूक्ष्मकणों (सब एटॉमिक पार्टिकल्स) के प्रवाह की अवधारणा वेद की इस उक्ति को कुछ स्पष्ट कर सकती है ।]

७३६. पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।

अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६ ॥

उत्तम दानी, सामर्थ्यवान् मरुद्गण यज्ञों में घृत-दुग्ध आदि रसों और जलों का सिंचन करते हैं । अश्वों को घुमाने के समान वे बलशाली मेघों का सम्यक् रूप से दोहन करते हैं ॥६ ॥

७३७. महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।

मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥७ ॥

हे मरुद्गण ! आप महिमावान् , विभिन्न दीप्तियाँ छोड़ने वाले प्रपंची पर्वतों के समान अभेद्य बल से वेगपूर्वक गमन करने वाले हैं । आप हाथियों और मृगों के समान वनों को खा जाने वाले हैं, क्योंकि अपने बल से लाल वर्ण वाली घोड़ियों (अग्नि ज्वालाओं) को रथ में (यज्ञ में) नियोजित (प्रकट) करते हैं ॥७ ॥

७३८. सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशाइव सुपिशो विश्ववेदसः ।

क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥८ ॥

ये वीर मरुद्‌गण , सिंहों के समान गर्जनशील, प्रकृष्ट ज्ञानी, उत्तम बलवान् पुरुषों के समान सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं । ये वीर शत्रु को क्षत-विक्षत करने वाले, पीड़ित जनों की रक्षा कर उन्हें सन्तुष्ट करने वाले धब्बेदार घोड़ियों और हथियारों से सुसज्जित होकर चलने वाले, अक्षय बल और उग्ररूप धारण करने वाले हैं ॥८ ॥

७३९. रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।

आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥९ ॥

सबकी रक्षा करने वाले, वीर, पराक्रमी, अक्षय उत्साह से सम्पन्न हे शोभायमान मरुद्‌गणो ! आप आकाश और पृथ्वी को अपनी गर्जना की गूंज से भर दें । रथ में विराजित होने से आपका तेजस्वी प्रकाश विद्युतवत् सर्वत्र फैल गया है ॥९ ॥

७४०. विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।

अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनंतशुष्मा वृषखादयो नरः ॥१० ॥

अनेक धनों से युक्त, सम्पूर्ण धनों के स्वामी, समान स्थान से उद्‌भूत, विविध बलों से युक्त, विशिष्ट सामर्थ्य वाले, अस्त्र - प्रहारक, अनन्त सामर्थ्यवान् तथा पुष्ट अन्नों के भक्षक वीर मरुद्‌गण अपने बाहुओं में विशिष्ट बल धारण करते हैं ॥१० ॥

७४१. हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।

मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११ ॥

जलों को बढ़ाने वाले पूजनीय, द्रुतगति वाले, स्पन्दनयुक्त, अडिग पदार्थों को हिलाने वाले, अबाधगति वाले, तीक्ष्ण अस्त्र धारक वीर मरुद्‌गण, स्वर्णिम रथ के चक्रों से (वात्याचक्र से) मार्ग में आये हुए मेघों को उड़ा देते हैं ॥११ ॥

७४२. घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सू नुं हवसा गृणीमसि ।

रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२ ॥

संघर्ष शक्ति वाले, पवित्रकर्त्ता, वनों में संचरित होने वाले, विशेष चक्षुवाले, रुद्र के पुत्र रूप मरुद्‌गणों की हम स्तुति करते हैं । हम सब अति वेगवान् धूल उड़ाने वाले, बलवान , वीर्यवान् तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाले मरुद्‌गणों के आश्रय को प्राप्त करें ॥१२ ॥

७४३. प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।

अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपकी रक्षण-सामर्थ्य द्वारा रक्षित मनुष्य सब लोगों से अधिक बल पाकर स्थिर होता है । वह अश्वों द्वारा अन्न और मनुष्यों द्वारा धनों को प्राप्त कर उत्तम यज्ञ द्वारा प्रशंसित होता है ॥१३ ॥

७४४. चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।

धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४ ॥

हे मरुद्‌गणो ! हम कार्यों में समर्थ, युद्धों में अजेय, दीप्तिमान् , बलों से युक्त तथा वैभवशाली हों । हम श्रेष्ठ धन - वैभव से सम्पन्न सर्व-हितकारी होकर सौ वर्षों तक जीवित रहें तथा पुत्र और पौत्रों के साथ सुख प्राप्त करें ॥१४ ॥

७४५. नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५ ॥

हे मरुद्गणो ! आप हमें शत्रुओं को जीतने वाली वीरोचित स्थाई सामर्थ्य प्रदान करें । हममें असंख्यों धनों को स्थापित करें । प्रात: काल (यज्ञ में) आप हमें शीघ्र प्राप्त हों ॥१५ ॥

[सूक्त - ६५]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७४६-४७. पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीरा: पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्रा: ॥१-२ ॥

हे अग्निदेव ! पशु चुराने वाले के पद चिह्नों के साथ जाने वाले मनुष्य के समान सभी बुद्धिमान् देवगण आपके अनुगामी हों । सभी याजकगण आपके चारों ओर बैठकर कुण्डरूप गुहा में स्तुतियों के साथ आपको प्रकट करते हैं । आप उनकी हवियों को देवों तक पहुंचाने वाले तथा देवों को उनसे नियोजित करने वाले के रूप में सम्मानित किये जाते हैं ॥१-२ ॥

७४८-४९. ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमाप: पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥३-४ ॥

देवगणों ने अग्निदेव को भूमि में चारों ओर खोजा । अग्निदेव जल प्रवाहों के गर्भ से उत्पन्न हुए, उत्तम स्तोत्रों से उनकी सम्यक् प्रकार से वृद्धि हुई । देवों ने अग्निदेव के कर्मों का, उनकी प्रेरणाओं का अनुगमन किया और भूमि को स्वर्ग के समान सुखकारी बनाया ॥३-४ ॥

[यह तथ्य सर्वमान्य है कि मनुष्य जब से अग्नि (ऊर्जा) को प्रकट कर उसका उपयोग सीखा, तभी से अनेक सुख-सुविधाओं का विकास क्रान्तिकारी ढंग से हुआ ।]

७५०-५१. पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्त: सिन्धुर्न क्षोद: क ईं वराते ॥५-६ ॥

ये अग्निदेव इष्ट फल प्राप्ति के समान रमणीय, भूमि के समान विस्तीर्ण, पर्वत के समान पोषक तत्त्व प्रदाता, जल के समान कल्याणकारी, अश्व के समान अग्रणी वाहक तथा समुद्र के समान विशाल हैं, इन्हें भला कौन रोक सकता है ? ॥५-६ ॥

७५२-५३. जामि: सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्या: ॥७-८ ॥

ये अग्निदेव बहिनों के लिए भाई के समान जलों के भ्राता रूप हैं । शत्रुओं का विनाश करने वाले राजा के समान ये वनों को नष्ट भी कर देते हैं । जब ये वायु से प्रेरित होकर वनों की ओर अभिमुख होते हैं, तो भूमि के बालों के सदृश वृक्ष वनस्पतियों का नाश कर देते हैं ॥७-८ ॥

७५४-५५. श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजात: पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभा: ॥९-१० ॥

ये अग्निदेव जल में बैठकर हंस के समान प्राण को धारण करते हैं । ये उषाकाल में उठकर अपने कर्मों से प्रजाओं को चैतन्य करते हैं । ये सोम की भाँति वृद्धि करने वाले, शिशु के समान चंचल तथा यज्ञ से उत्पन्न होकर दूर तक प्रकाश फैलाने वाले हैं ॥९-१० ॥

[जल में प्राणों को धारण करने की क्षमता है । जल के माध्यम से दिये गये शाप-वरदान में जल ही साधक के प्राण को आरोपित करता है । शरीर के प्रवाहों रक्त - रसों (हार्मोन्स) आदि के माध्यम से ही मनुष्य का प्राण सक्रिय होता है । यह क्षमता जल प्रवाहों में स्थित सूक्ष्म अग्नि के कारण ही है ।]

[सूक्त - ६६]

[**ऋषि** - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७५६-५७. रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥१-२ ॥

ये अग्निदेव स्पृहणीय धन के समान विलक्षण, ज्ञानी के समान सम्यक् द्रष्टा, जीवन के समान प्राण प्रदाता, पुत्र के समान हितकारी, अश्व के समान द्रुतगामी तथा गाय के समान उपकारी हैं । ये वन के काष्ठों को जलाकर विशेष प्रकाशयुक्त होते हैं ॥१-२ ॥

७५८-५९. दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥३-४ ॥

गृह के समान रमणीय, अन्न के समान परिपक्व, दुर्जनों पर प्रभुत्व स्थापित करने वाले, ऋषि के समान स्तुत्य तथा प्रजाओं द्वारा प्रशंसित अग्निदेव लोगों के कल्याण के लिए जीवन धारण करते हैं । उत्साहपूर्ण होता के समान प्रजा के हित में ही जीवन समर्पित करते हैं ॥३-४ ॥

७६०-६१. दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट्छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥५-६ ॥

असहनीय तेजों से युक्त, कर्मशील के समान नित्य शुभकर्मा, अद्भुत दीप्तियुक्त, शुभ्र प्रकाश से प्रकाशमान , प्रजाओं में रथ के समान शोभायमान ये अग्निदेव स्त्रियों द्वारा घर में सुख देने के समान सबके सुखदाता हैं । यज्ञों में स्वर्णिम तेजों से संयुक्त होते हैं ॥५-६ ॥

७६२-६३. सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥७-८ ॥

ये अग्निदेव आक्रामक सेना के समान बल धारक, विद्युत् अस्त्र के प्रहार के समान प्रचण्ड वेग और तेजों के धारक हैं । जो उत्पन्न हुए हैं या जो उत्पन्न होंगे,उनके नियन्ता अग्निदेव हैं । अग्निदेव कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने वाले और विवाहिता के पति हैं ॥७-८ ॥

[कन्या अग्निदेव की परिक्रमा करने के बाद विवाहिता स्त्री बनती है, इसीलिए अग्निदेव को कौमार्य हर्ता कहा गया है । स्त्रियाँ पति के साथ नित्य ही गार्हपत्य अग्नि का पूजन करती हैं , इस दृष्टि से उन्हें विवाहिता का पति कहा गया है ।]

७६४-६५. तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके ॥९-१० ॥

जैसे गौएँ सूर्यास्त होने पर पुनः अपने घर को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हम सन्तानों और पशुओं से युक्त होकर अग्निदेव को प्राप्त होते हैं । जल के प्रवाहित होने के सदृश अग्नि ज्वालाओं को प्रवाहित करते हैं । उनकी दर्शनीय किरणें आकाश में ऊँची उठती हैं ॥९-१० ॥

[सूक्त - ६७]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७६६-६७. **वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।**

क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥१-२ ॥

जैसे राजा सर्वगुण-सम्पन्न वीर पुरुष का वरण करते हैं, वैसे ही अग्निदेव यजमान का वरण करते हैं । जंगल में उत्पन्न, मनुष्यों के मित्र रूप, रक्षक सदृश कल्याण रूप,होता और हविवाहक ये अग्निदेव सम्यक् रूप से कल्याणप्रद हैं ॥१-२ ॥

७६८-६९. **हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।**

विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥३-४ ॥

ये अग्निदेव समस्त धनों को हाथ में धारण करते हैं । गुहा-प्रदेश (यज्ञ कुण्ड) में स्थित हुए इन्होंने देवों को शक्ति - सम्पन्न बनाया । मेधावी पुरुष हृदय से उत्पन्न मन्त्र युक्त स्तुतियों द्वारा इन अग्निदेव को प्रकट करते हैं ॥३-४ ॥

[मंत्रों को प्रभावशाली बनाने के लिए केवल वाणी ही पर्याप्त नहीं है, उनके साथ हृदय - अन्तःकरण की शक्ति जुड़नी चाहिए, जो तप साधना द्वारा जाग्रत् की जाती है ।]

७७०-७१. **अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।**

प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥५-६ ॥

ये अजन्मा अग्निदेव (सूर्य रूप में) पृथ्वी को धारण करते हैं । उन्होंने अन्तरिक्ष को धारण किया । अपने सत्संकल्पों से द्युलोक को भी स्तम्भ सदृश स्थिर किया है । हे अग्निदेव ! आप पशुओं के प्रिय स्थानों को संरक्षित करें । आप सम्पूर्ण प्राणियों के जीवन - आधार होकर गुह्य (अव्यक्त) प्रदेश में सुशोभित हैं ॥५-६ ॥

७७२-७३. **य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।**

वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥७-८ ॥

जो गुह्य अग्निदेव को जानते हैं, जो यज्ञ में अग्निदेव को प्रज्वलित कर धारण करते हैं और स्तुति करते हैं, उन स्तोताओं को अग्निदेव धन प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं ॥७-८ ॥

[जो विभिन्न पदार्थों (काष्ठ, कोयला, अणु आदि) में गुप्तरूप से विद्यमान अग्नि को जानकर प्रज्वलित कर प्रयुक्त कर सकते हैं, वे धन सम्पन्न बनते हैं - यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।]

७७४-७५. **वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।**

चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥९-१० ॥

जो अग्निदेव ओषधियों में अपनी महत्ता स्थापित करते हैं और लताओं से पुष्प-फलादि को प्रकट करते हैं । ज्ञानी पुरुष जलों में अन्तः स्थापित उन अग्निदेव की पूजा कर घर में आश्रय लेने की तरह उनका आश्रय प्राप्त करते हैं ॥९-१० ॥

[यह विज्ञान सम्मत है कि वनस्पतियों - वृक्षों में सूर्य ऊर्जा के प्रभाव से ही रस परिपक्व होता है, तभी उनके गुण (फूल-फल आदि) प्रकट होते हैं ।]

[सूक्त - ६८]

[ऋषि - पराशर । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७७६-७७. श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥१-२ ॥

सर्वपालक अग्निदेव स्थावर और जंगम वस्तुओं को परिपक्व करने के लिए आकाश को प्राप्त हुए हैं । उन्होंने रात्रियों को अपनी रश्मियों से प्रकाशित किया और सम्पूर्ण देवों की महत्ता को प्राप्त करके वे अग्रणी हुए ॥१-२ ॥

[सूर्यों (स्व प्रकाशित तारागणों) से उत्पन्न किरणें , ग्रहों, उपग्रहों पर स्थित जड़ - चेतन पदार्थों को परिपक्व करके, परावर्तित होकर आकाश में फैलती हैं । उस परावर्तित प्रकाश से रात्रि प्रकाशित होती है ।]

७७८-७९. आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥३-४ ॥

हे अग्निदेव जब आप सूखे काष्ठ के घर्षण से उत्पन्न हुए, तब सभी देवगणों ने यज्ञ कार्य सम्पन्न किये । हे अविनाशी देव ! आपका अनुगमन करके ही वे देवगण देवत्व को प्राप्त कर सके हैं ॥३-४ ॥

७८०-८१. ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥५-६ ॥

ये अग्निदेव यज्ञ की प्रेरणा प्रदान करने वाले और यज्ञ के रक्षक हैं । ये अग्निदेव ही आयु हैं ; इसीलिए सभी यज्ञ कर्म करते हैं । हे अग्निदेव ! जो आपको जानकर आपके निमित्त हवि देता है, उसे आप जानकर हवि प्रदान करें ॥५-६ ॥

७८२-८३. होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥७-८ ॥

मनुष्य में होतारूप में विद्यमान ये अग्निदेव ही प्रजाओं और धनों के स्वामी हैं । शरीरस्थ अग्नि का वीर्य से सम्बन्ध जानकर मनुष्य ने सन्तानोत्पत्ति की इच्छा प्रकट की और उन अग्निदेव की सामर्थ्य से सन्तान को प्राप्त किया ॥७-८ ॥

[आयुर्वेद में वीर्य से ओज की उत्पत्ति कही गई है । वीर्य में भ्रूण सृजन की प्राण ऊर्जा का रहस्य समझकर इच्छित सन्तान प्राप्त की जा सकती है ।]

७८४-८५. पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥९-१० ॥

पिता का आदेश मानने वाले पुत्रों के सदृश जिन मनुष्यों ने इन अग्निदेव की आज्ञा को सुनकर शीघ्र ही पालन कर कार्य सम्पन्न किया, उनके लिए अग्निदेव ने विपुल अन्न और धन के भण्डार खोल दिये । यज्ञ कर्मों में, मर्यादित अग्निदेव ने नक्षत्रों से आकाश को अलङ्कृत किया ॥९-१० ॥

[ऊर्जा के जड़-पदार्थ परक प्रयोगों में भी अग्नि - विद्युत् आदि के प्रयोग के कठोर अनुशासन हैं । उनका अनुपालन करने से ही लाभ होता है । उनका अनुपालन तुरंत करने का संकेत है । राकेट सचालन में सैकिण्ड के हजारवें भाग की भी देर असह्य होती है । यज्ञीय चेतन प्रयोगों में भी इसी प्रकार के अनुशासनों का अनुपालन अभीष्ट है ।]

[सूक्त - ६९]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट्]

७८६-८७. शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥१-२ ॥

हे अग्निदेव ! आप उषा प्रेमी सूर्यदेव के समान दीप्तिमान् हैं । प्रकाशमान सूर्यदेव की ज्योति के समान तेजस्वी होकर अपने तेज से आकाश और पृथ्वी को पूर्ण करते हैं । हे अग्निदेव ! उत्पन्न होकर आपने अपने कर्म से सारे विश्व को व्याप्त किया । आप देवों द्वारा उत्पन्न पुत्र रूप होकर भी उन्हें हवि आदि देकर उनके पिता रूप हो जाते हैं ॥१-२ ॥

७८८-८९. वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥३-४ ॥

अहंकाररहित बुद्धि से कर्त्तव्यों को जानने वाले, गौ दुग्ध के समान स्वादिष्ट अन्नों को देने वाले अग्निदेव यजमानों द्वारा बुलाने पर आकर, यज्ञ के मध्य में प्रतिष्ठित होकर शोभा पाते हैं और उन याजकों को सुख प्रदान करते हैं ॥३-४ ॥

७९०-९१. पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥५-६ ॥

घर में उत्पन्न हुए पुत्र के समान सुखदायक अग्निदेव हर्षान्वित अश्वों की तरह मनुष्यों को दुःख से पार लगाते हैं । जब मनुष्यों के साथ हम, देवों का आवाहन करते हैं, तब ये अग्निदेव दिव्य प्रेरणाओं से समन्वित होकर दिव्यता को धारण करते हैं ॥५-६ ॥

७९२-९३. नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥७-८ ॥

हे अग्निदेव ! जिन मनुष्यों के आप सहायक होते हैं, वे आपके नियमों को तोड़ नहीं सकते । आपने ही मनुष्यों से युक्त होकर पाप रूपी राक्षसों को मार गिराया, यह आपका श्रेष्ठ और प्रशंसनीय कार्य है ॥७-८ ॥

[दैवी शक्तियाँ अपनी ही शर्तों पर सहायता देती हैं, शिष्टाचार अथवा दबाववश उनके नियम बदलते नहीं हैं ।]

७९४-९५. उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१ र्दृशीके ॥९-१० ॥

उषा प्रेमी सूर्यदेव के समान देदीप्यमान्, प्रकाशित और प्रख्यात अग्निदेव इस हविदाता पुरुष को जानें । हवियुक्त होकर यज्ञ द्वार को खोलकर ये अग्निदेव सम्पूर्ण आकाश में, दशों-दिशाओं में व्याप्त होकर ऊर्ध्वगति प्राप्त करते हैं ॥९-१० ॥

[सूक्त - ७०]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७९६-९७. वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥१-२ ॥

हम अग्निदेव से अपार धन - वैभव की कामना करते हैं । उत्तम तथा प्रकाशित ये अग्निदेव देवों और मनुष्यों के कर्मों को तथा मनुष्य जन्म के रहस्य को जानकर सब में व्याप्त हैं ॥१-२ ॥

७९८-९९. गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥३-४ ॥

ये अग्निदेव जलों के गर्भ में, वनों के गर्भ में, जंगम और स्थावरों के गर्भ में विद्यमान हैं । ये उत्तमकर्मा और अविनाशी अग्निदेव सभी प्रजाओं को राजा के समान आधार देते हैं । अतः लोग अग्निदेव को घर में और पर्वतों में भी हवि प्रदान करते हैं ॥३-४ ॥

८००-८०१. स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥५-६ ॥

अग्निदेव की उत्तम मंत्रो से जो याजक स्तुति करते हैं, उन्हें वे निश्चय ही वैभव प्रदान करते हैं । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप देवों और मनुष्यों के जीवन रहस्यों को जानने वाले हैं । आप समस्त प्राणियों की रक्षा करें ॥५-६ ॥

८०२-३. वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।
अराधि होता स्व१र्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥७-८ ॥

विविध रूपों वाली देवी उषा और रात्रि जिन अग्निदेव को प्रवृद्ध करती हैं, स्थावर, वृक्षादि और जंगम मनुष्यादि भी यज्ञ रूप उन अग्निदेव को प्रवृद्ध करते हैं । अग्निदेव को होतारूप में प्रतिष्ठित कर लोग उन्हें यज्ञ-अनुष्ठानों द्वारा हवि समर्पित करके पूजते हैं ॥७-८ ॥

८०४-५. गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥९-१० ॥

हे अग्निदेव ! आप वनों और गौओं में पुष्टिकारक पदार्थों को भी स्थापित करें । सभी मनुष्यों को ग्रहण करने योग्य श्रेष्ठ अन्नों और धनों से पूर्ण करें । हम आपको विविध प्रकार से पूजते हैं । जैसे पिता पुत्र को धन से पूर्ण करता है, वैसे ही हम आपसे धन पाते रहे हैं ॥९-१० ॥

८०६. साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥११ ॥

ये अग्निदेव उत्तम देव पुरुष के सदृश पूज्य, अस्त्रों का प्रहार करने वाले के सदृश वीर, आक्रान्ता के सदृश विकराल और संग्राम काल में तेजस्विता की प्रतिमूर्ति होते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ७१]

[ऋषि- पराशर शाक्त्य । देवता- अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

८०७. उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥१ ॥

पतिव्रता स्त्रियां जिस प्रकार अपने पति को प्राप्तकर उन्हें प्रसन्न करती हैं, वैसे ही हमारी अँगुलियाँ मिलकर अग्निदेव को सम्यक् प्रकार से प्रसन्न करती हैं । श्यामवर्ण, पुनः पीतवर्ण और अरुणिम वर्ण वाली विलक्षण उषा की किरणें जैसे सेवा करती हैं, वैसे ही हमारी अँगुलियाँ अग्निदेव की सेवा करती हैं ॥१ ॥

८०८. वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।

चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥२॥

हमारे पितर अंगिरा ने मंत्रों द्वारा विकराल और सुदृढ़ पर्वताकार अज्ञानान्धकार रूपी असुर को शब्द मात्र से नष्ट किया; तब आकाश मार्ग में ज्योति रूप सूर्य और ध्वज रूप प्रकाश किरणों से सम्पन्न दिवस को हमने प्राप्त किया ॥२॥

८०९. दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः।

अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥३॥

शाश्वत सत्यरूप यज्ञ को धारण करने वाले अंगिरा ने उसकी तेजस्विता को धन के सदृश धारण किया। अनन्तर धन को, तेज और पुष्टि को धारण करने की इच्छुक प्रजाओं ने हवियों से देवों को पुष्ट करते हुए अग्निदेव को प्राप्त किया ॥३॥

८१०. मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।

आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥४॥

वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाले अग्निदेव शुभ्र ज्योति के रूप में प्रत्येक गृह अर्थात् शरीर में प्रतिष्ठित हुए। पुनः भृगुवंशीय ऋषि ने देवों तक हवि पहुँचाने वाले दूत (देवत्व प्राप्ति के माध्यम) के रूप में माना, जैसे कोई राजा, मित्र राजा के दूत द्वारा सम्पर्क करता है ॥४॥

[बाहर अग्नि के प्रज्वलन तथा शरीरों में रस परिपाक (मेटाबॉलिज्म) के लिए वायु के संयोग की अनिवार्यता पदार्थ विज्ञान भी मानता है)]

८११. महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान्।

सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥५॥

महान् और पोषण प्रदान करने वाले देवों के निमित्त कौन सज्जन और कौन ज्ञानी हव्यरूप सोमरसों को अग्नि में देने से पलायन कर सकता है? ये अस्त्र चलाने में कुशल अग्निदेव अपने धनुष से उन पर बाणों का प्रहार करते हैं और सूर्य रूप में अपनी पुत्री उषा को तेज धारण कराते हैं ॥५॥

८१२. स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।

वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥

हे अग्निदेव! जो याजक आपको घर में प्रदीप्त करता है और प्रतिदिन आपकी कामना करते हुए स्तुति युक्त हवि देता है, उसे आप दुगुने बल और आयु से बढ़ायें, जो आपकी प्रेरणा से रथ सहित युद्ध में जाता है (जीवन-संग्राम में संघर्ष करता है), वह धन से युक्त होता है ॥६॥

८१३. अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः।

न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥

जैसे सातों महान् नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही हमारा सम्पूर्ण हविष्यान्न अग्निदेव को प्राप्त होता है। अन्य महान् देवों के लिए यह हविष्यान्न पर्याप्त है या नहीं-हम यह नहीं जानते। अतः आप अन्नादि वैभव हमें प्रदान करें ॥७॥

८१४. आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥८ ॥

(अग्नि का) जो शुद्ध और प्रदीप्त तेज अन्नादि (के पाचन) के लिए यजमान आदि में व्याप्त है, उस तेज से युक्त रेतस् को (प्रकृति रूपी) उत्पत्ति स्थल में स्थापित करके अग्निदेव अभीष्ट पोषण रूप सन्तानों को जन्म दे और उस बलवान् अनिन्द्य तरुण शोभन कर्मा (सन्तान) को यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें ॥८ ॥

८१५. मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥९ ॥

मन के सदृश गति वाले सूर्यरूप मेधावी अग्निदेव एक सुनिश्चित मार्ग से गमन करते हैं और विविध धनों पर आधिपत्य रखते हैं। सुन्दर भुजाओं वाले मित्रावरुण गौओं में उत्तम और अमृत तुल्य दूध की रक्षा करते है ॥९ ॥

८१६. मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन्।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१० ॥

हे अग्निदेव! मेधावी और सर्वज्ञ रूप आप हमारी पितरों के समय से चली आई मित्रता को विस्मरण न करें। जैसे सूर्य रश्मियाँ अन्तरिक्ष को ढंक देती हैं, वैसे ही बुढ़ापा हमें नष्ट करना चाहता है, अतः हे अग्निदेव! वह बुढ़ापा हमारा विनाश करने के पूर्व ही समाप्त हो जाये (हमें अमृतत्व की प्राप्ति हो) ॥१० ॥

[सूक्त -७२]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य। देवता - अग्नि। छन्द - त्रिष्टुप्।]

८१७. नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१ ॥

मनुष्यों के हितैषी ये अग्निदेव बहुत से धनों को हाथ में धारण करते हैं। ये सदा काव्य रूप स्तोत्रों को प्राप्त होते हैं। धनों में श्रेष्ठ धन के स्वामी ये अग्निदेव स्तोताओं को सुखकारी सम्पूर्ण वैभव प्रदान करते हैं ॥१ ॥

८१८. अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥२ ॥

सम्पूर्ण मेधावी और अमर देवगण अग्नि की इच्छा करते हुए भी वे उन सर्वव्यापक अग्निदेव को नहीं पा सके। अन्त में वे बुद्धिमान् देवगण थके पैरों से अग्निदेव के उस सुन्दरतम स्थान को प्राप्त हुए ॥२ ॥

८१९. तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान्।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्व१ः सुजाताः ॥३ ॥

हे पवित्र अग्निदेव ! जब तेजस्वी मनुष्यों ने तीन वर्षों से घृत द्वारा आपका पूजन किया, तब उन्होंने यज्ञ के उपयुक्त नामों को धारण किया। अपने शरीरों का शोधन कर वे देवरूप में उत्पन्न हुए ॥३ ॥

८२०. आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४ ॥

याजकों ने महान् पृथिवी और आकाश का ज्ञान कराते हुए अग्निदेव के लिए उत्तम स्तोत्रों का पाठ किया। मनुष्यों ने उस सर्वोत्तम स्थान में अधिष्ठित अग्निदेव को जानकर ज्ञान प्राप्त किया ॥४॥

८२१. संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।

रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥५॥

देव मानवों ने पत्नियों के साथ घुटनों के बल बैठकर उन अग्निदेव को भली प्रकार से जानकर पूजन तथा उनका अभिवादन किया। उन्होंने अपने शरीरों को सुरक्षित करते हुए पवित्र किया और सखा अग्निदेव का मित्र भाव से क्षणिक दर्शन प्राप्त किया ॥५॥

८२२. त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः।

तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥६॥

हे अग्निदेव ! याजकों ने आपके २१ प्रकार के रहस्यों अर्थात् यज्ञ की विधियों को जानकर उनका प्रयोग किया। यज्ञ से अपनी जीवनी-शक्ति की रक्षा की। आप प्राणिमात्र के प्रति स्नेहयुक्त होकर सबकी रक्षा करें ॥६॥

८२३. विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।

अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों के व्यवहारों को जानने वाले विद्वान् हैं। जीवन धारण के लिए पोषक अन्नों की व्यवस्था करें। देवगण जिस मार्ग से गमन करते हैं, उसे जानकर आलस्यहीन होकर दूत रूप में हविष्यान्न ग्रहण करें ॥७॥

८२४. स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।

विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥८॥

हे अग्निदेव ! ध्यान से सृष्टि के सत्य को जानने वाले ऋषियों ने आकाश से बहती हुई सप्त-नदियों से ऐश्वर्य के द्वारों को खोलने की विधि जानी। आपकी प्रेरणा से सरमा ने गायों को ढूँढ़ लिया, जिससे सभी मानवी प्रजाएँ सुखपूर्वक पोषण पाती हैं ॥८॥

८२५. आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।

मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥९॥

जो देवगण सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन कर अमरत्व को प्राप्त करने का मार्ग बनाते हैं, उन सभी महान् कर्म करने वाले देवपुत्रों के सहित माता अदिति, सम्पूर्ण पृथ्वी (जगत्) को धारण - पोषण के लिए अपनी महिमा से अधिष्ठित हैं। हे अग्ने ! स्वयं आप उन देवगणों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले याग की हवियों को ग्रहण करें ॥९॥

८२६. अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।

अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१०॥

द्युलोक के अमर देवों ने जब इस विश्व में श्रेष्ठ सुन्दर तेज स्थापित किया और दो आँखें बनाईं, तब प्रेरित नदियों के विस्तार की तरह अवतरित होती देवी उषा को मनुष्य जान सके ॥१०॥

[प्रकाश और नेत्रों के संयोग से ही कोई दृश्य दिखाई दे सकता है - यह तथ्य विज्ञान सम्मत है।]

[सूक्त - ७३]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८२७. रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥१ ॥

ये अग्निदेव पैतृक सम्पत्ति की तरह अन्न देने वाले तथा ज्ञानी पुरुष के उपदेश की तरह उत्तम प्रेरणा देने वाले हैं । घर में आए अतिथि के समान प्रिय और होता के समान यजमान को घर (आवास) प्रदान करने वाले हैं ॥१ ॥

८२८. देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥२ ॥

देदीप्यमान सूर्यदेव के सदृश सत्यदर्शी ये अग्निदेव अपने श्रेष्ठ कर्मों से सभी को पापों से रक्षित करते हैं । असंख्यों द्वारा प्रशंसित होने वाले ये उन्नति करते हुए सत्यमार्ग पर चलते हैं । ये आत्मा के सदृश आनन्दप्रद और सबके द्वारा धारण किये जाने योग्य हैं ॥२ ॥

८२९. देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥३ ॥

दीप्तिमान् सूर्यदेव के सदृश सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाले, राजा के सदृश प्रजा के हितैषी, मित्र रूप अग्निदेव पृथिवी पर आसीन हैं । पिता के आश्रय में पुत्रों के रहने के समान लोग इनके आश्रय को पाते हैं । ये अग्निदेव पतिव्रता स्त्री की तरह पवित्र और वन्दनीय हैं ॥३ ॥

८३०. तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! उपद्रवरहित घरों में लोग नित्य समिधायें प्रज्वलित कर आपकी परिचर्या करते हैं । आकाशीय देवों ने आपको प्रचण्ड तेज से अभिपूरित किया है । आप सबके प्राणरूप हैं, हमारे लिये आप धन-वैभव प्रदान करें ॥४ ॥

८३१. वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! धन-सम्पन्न यजमान आपकी अनुकम्पा से अन्नों को प्राप्त करें । विद्वान् हविदाता दीर्घ आयु को प्राप्त करें । हम यश के निमित्त देवों को हवि का भाग देते हुए युद्धों में शत्रु के वैभव को जीतें ॥५ ॥

८३२. ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६ ॥

सतत दूध (पोषण) देने वाली तेजस्वी गौएँ (किरणें) यज्ञ को पयपान कराती हैं । सुदूर पर्वतों से प्रवाहित नदियाँ (रस प्रवाह) यज्ञ से सद्बुद्धि की याचना करती हैं ॥६ ॥

[प्रकृति यज्ञ में सभी प्रवाहों के यज्ञीय मर्यादा में उपयोग का भाव है ।]

८३३. त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियास: ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धु: ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ में कल्याणकारी बुद्धि की याचना करते हुए पूज्य देवों ने हवि समर्पित करके अन्न को धारण किया । अनन्तर रात्रि और विभिन्न रूपों वाली देवी उषा को स्थापित किया । रात्रि में कृष्ण वर्ण को तथा उषा में अरुणिम वर्ण को धारण कराया ॥७ ॥

८३४. यान्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जिन मनुष्यों को आपने धन प्राप्ति के निमित्त प्रेरित किया है, वे और हम धनवान् हों । आपने आकाश , पृथ्वी और अन्तरिक्ष को प्रकाश से अभिपूरित किया है । समस्त जगत् छाया के सदृश आपके साथ संयुक्त है ॥८ ॥

[दर्पण जब किसी व्यक्ति के शरीर के बिम्ब को परावर्तित करता है, तो उसमें व्यक्ति की छाया दिखाई देती है । अग्नि (सूर्य) का प्रकाश जब विश्व के पदार्थों द्वारा परावर्तित होता है, तभी वे दिखाई देते है, इसीलिए विश्व को अग्नि की छाया सदृश कहा है ।]

८३५. अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नृन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोता: ।
ईशानास: पितृवित्तस्य रायो वि सूरय: शतहिमा नो अश्यु: ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आपके संरक्षण में रहते हुए हम अपने अश्वों से शत्रुओं के अश्वों को, अपने योद्धाओं से शत्रु योद्धाओं को, अपने पुत्रों से शत्रु पुत्रों को दूर करें । पैतृक -सम्पदा को प्राप्त कर हम स्तोतागण शत वर्ष की आयु का पूर्ण उपयोग करें ॥९ ॥

८३६. एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम राय: सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधाना: ॥१० ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! ये हमारे स्तोत्र आपके मन और हृदय को भली प्रकार सन्तुष्ट करें । हम देवों द्वारा प्रदत्त धन, वैभव और यश को धारण करते हुए सुख को प्राप्त करें ॥१० ॥

[सूक्त - ७४]

[ऋषि-गोतम राहूगण । देवता -अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

८३७. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१ ॥

हमारे कथन (भाव) को सुनने वाले अग्निदेव के निमित्त हम यज्ञ के समीप तथा सुदूर स्थान से भी उपस्थित होते हुए स्तुति मंत्र समर्पित करते हैं ॥१ ॥

८३८. य: स्नीहितीषु पूर्व्य: संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२ ॥

सदैव जाज्वल्यमान वे अग्निदेव परस्पर स्नेह-सौजन्य युक्त प्रजाओं के एकत्र होने पर दाताओं के ऐश्वर्य की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

[यज्ञ की सार्थकता के लिए परस्पर स्नेह और सहयोग अनिवार्य है]

८३९. उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥३ ॥

शत्रुनाशक, युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर धन जीतने वाले अग्निदेव का प्राकट्य हुआ है, सभी लोग उनकी स्तुति करें ॥३ ॥

८४०. यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये। दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥४॥

हे अग्निदेव ! जिस यजमान के घर से दूत रूप में आप देवों के लिए हवि वहन करते हैं, उस घर (यज्ञशाला) को आप उत्तम प्रकार से दर्शनीय बनाते हैं ॥४॥

८४१. तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहुः सुबर्हिषम् ॥५॥

हे बल के पुत्र (अरणि मन्थन द्वारा बल पूर्वक उत्पन्न होने वाले) अग्निदेव ! आप यजमान को सुन्दर हवि द्रव्य से युक्त, सुन्दर देवों से और श्रेष्ठ यज्ञ से पूर्ण करते हैं, ऐसा लोगों का कथन है ॥५॥

८४२. आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥६॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! उन देवों को हमारे यज्ञ में स्तुतियाँ सुनने और हवि ग्रहण करने के लिए समीप ले आयें ॥६॥

८४३. न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदग्ने यासि दूत्यम् ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप जब कभी भी देवों के दूत बनकर जाते हैं, तब आपके गतिमान रथ के घोड़ों का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता ॥७॥

८४४. त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥८॥

हे अग्निदेव ! पहले असुरक्षित रहने वाला हविदाता यजमान आपकी सामर्थ्य द्वारा रक्षित होकर बल सम्पन्न बना तथा हीनता से मुक्त हुआ ॥८॥

८४५. उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे ॥९॥

हे महान् अग्निदेव ! आप देवों को हवि प्रदान करने वाले यजमान को अतिशय तेज और श्रेष्ठ बल प्राप्त कराते हैं ॥९॥

[सूक्त - ७५]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता - अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

८४६. जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥१॥

हे अग्निदेव ! मुख में हवियों को ग्रहण करते हुए हमारे द्वारा देवों को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले स्तुति वचनों को आप स्वीकार करें ॥१॥

८४७. अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२॥

अंगिरा (अंगों में स्थापित देवों) में श्रेष्ठ, मेधावियों में उत्कृष्ट हे अग्निदेव ! अब हम आपके निमित्त अति प्रिय मंत्र युक्त स्तोत्रों का पाठ करते हैं ॥२॥

८४८. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों में आपका बन्धु कौन है ? श्रेष्ठ दान से कौन आपका यजन करता है ? आपके स्वरूप को कौन जानता है ? आपका आश्रय स्थल कहाँ है ? ॥३॥

८४९. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों से भ्रातृभाव रखने वाले, यजमानों की रक्षा करने वाले, स्तोताओं के लिए प्रिय मित्र के तुल्य हैं ॥४॥

८५०. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे निमित्त मित्र और वरुण का यजन करें। विशाल यज्ञ सम्पादित करें तथा यज्ञशाला में पूजा योग्य भाव से रहें ॥५ ॥

[सूक्त - ७६]

[ऋषि - गोतम राहूगण। देवता - अग्नि। छन्द - त्रिष्टुप्।]

८५१. का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।

को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपके मन को सन्तुष्ट करने का हम क्या उपाय करें? किस यज्ञ से यजमान बल वृद्धि करें? कौन सी स्तुति आपके लिए सुखप्रद है? किस मन से हम आपको हवि प्रदान करें ॥१ ॥

८५२. एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।

अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में आकर होता रूप में अधिष्ठित हों। आप अविचलित होकर इसमें अग्रणी हों। सर्वव्यापक आकाश और पृथ्वी आपकी रक्षा करें। हमारे लिए अभीष्ट फल- प्राप्ति के निमित्त आप देवकार्य (यज्ञ) सम्पन्न करायें ॥२ ॥

८५३. प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।

अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ कार्यों में बाधा डालने वाले सम्पूर्ण राक्षसों का भली प्रकार दहन करें। हमारे यज्ञ की हिंसा करने वालों से रक्षा करें। अनन्तर सोम पीने वाले इन्द्रदेव को अपने अश्वों सहित यज्ञ में लायें, जिससे हम उन उत्तम दानदाता इन्द्रदेव का अतिथि सत्कार कर सकें ॥३ ॥

८५४. प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः।

वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥४ ॥

हवि भक्षक अग्निदेव का हम प्रजाजन स्तोत्रों से आवाहन करते हैं। यजन के योग्य हे अग्निदेव ! आप यज्ञ में प्रतिष्ठित और 'पोता' रूप में पोषित किये जाने वाले हैं। आप धनों को उत्पन्न करने वाले हैं। धन के निमित्त हमारी कामना को जानें और उसे पूर्ण करें ॥४ ॥

८५५. यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।

एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप होतारूप और सत्य-स्वरूप हैं। आप मेधावियों में श्रेष्ठ मेधावी रूप में ज्ञानी मनुष्यों की हवियों द्वारा देवों के साथ पूजे जाते हैं। आप प्रसन्नता देने वाली आहुतियों को ग्रहण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ७७]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८५६. **कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।**
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥१ ॥

इन अग्निदेव के लिए हम किस प्रकार हवि दें ? इन्हें कौन सी देव-प्रिय स्तुति से प्रकाशित करें ? जो मनुष्यों के बीच रहकर देवों को हविष्यान्न पहुँचाते हैं, ऐसे ये अग्निदेव अविनाशी, पूज्य , यज्ञकर्म सम्पादक और होता रूप हैं ॥१ ॥

८५७. **यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।**
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥२ ॥

ये अग्निदेव यज्ञों में अत्यन्त सुख प्रदान करने वाले तथा होता रूप में यज्ञ करने वाले हैं । हे मनुष्यो ! उन अग्निदेव का श्रेष्ठ स्तोत्रों से अभिवादन करें । ये अग्निदेव मनुष्यों के हित के लिए देवों के पास जाते हैं । देवों को जानने वाले ये अग्निदेव मन से देवों का यजन करते हैं ॥२ ॥

८५८. **स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।**
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥३ ॥

वे अग्निदेव निश्चय ही यज्ञ रूप हैं, वे ही साधु रूप पर हितकारी हैं । वे ही यजमान और मित्र के समान सहायक भी हैं । वे विलक्षण प्रकार के रथी वीर हैं । देवत्व प्राप्ति की कामना करने वाले लोग यज्ञों में उन दर्शनीय यज्ञदेव की सर्वप्रथम उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥३ ॥

८५९. **स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।**
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥४ ॥

ये अग्निदेव मनुष्यों में सर्वोत्कृष्ट और शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं । वे विचारपूर्वक की गई हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हुए रक्षण साधनों द्वारा हमारी रक्षा करें । ये अत्यन्त ऐश्वर्यशाली और बलशाली अग्निदेव हमारी हविष्यान्न युक्त स्तुतियों को प्राप्त हों ॥४ ॥

८६०. **एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।**
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥५ ॥

सत्य युक्त , सर्वज्ञ अग्निदेव की मेधा सम्पन्न गोतमों ने स्तुति की । यज्ञ में अग्निदेव ने हविष्यान्न को ग्रहण कर, दीप्तिमान् सोम का पान किया । ऋषियों की भक्ति को जानकर उन्होंने उन्हें भली प्रकार पुष्ट किया ॥५ ॥

[सूक्त - ७८]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता - अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

८६१. **अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥१ ॥**

सृष्टि के समस्त रहस्यों को देखने व जानने वाले हे अग्निदेव ! गोतमवंशी हम उत्तम वाणियों से तेजस्वी मंत्रों का गान करते हुए आपका अभिवादन करते हैं ॥१ ॥

८६२. तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! धन की कामना से गोतम-वंशी आपकी उत्तम वाणियों से परिचर्या करते हैं । तेजस्वी स्तोत्रों से हम भी आपका अभिवादन करते हैं ॥२ ॥

८६३. तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥३ ॥

विपुल अन्नों को देने वाले हे अग्निदेव ! हम अंगिराओं के समान आपका आवाहन करते हैं और तेजस्वी मंत्रों से आपको नमस्कार करते हैं ॥३ ॥

८६४. तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥४ ॥

हम तेजस्वी मंत्रों से राक्षसों को कँपाने वाले अंधकार रूपी असुर का संहार करने वाले अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥४ ॥

८६५. अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥५ ॥

रहूगण वंशी हम लोग अग्निदेव के लिए मधुर स्तुतियाँ प्रस्तुत करते हैं । तेजस्वी मंत्रों से आपको नमस्कार करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ७९]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण । **देवता**-१,३ अग्नि या मध्यम अग्नि,४-१२ अग्नि । **छन्द** - १-३ त्रिष्टुप्, ४-६ उष्णिक्, ७ - १२ गायत्री]

८६६. हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥१ ॥

ये अग्निदेव स्वर्णिम ज्वालाओं से युक्त लोकों के विस्तारक, मेघों को कँपाने वाले, वायु के समान वेग वाले हैं । शुभ्र कान्ति से युक्त ये अग्निदेव देवी उषा के लिए अन्तरिक्ष का विस्तार करते हैं । अपने कर्म में रत, सरल यशस्विनी देवी उषा इस बात से अनभिज्ञ हैं ॥१ ॥

८६७. आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी दीप्तिमान् रश्मियाँ नीचे आती हुई मेघों से टकराती हैं, तब वर्षण शील कृष्णवर्ण मेघ गरजने लगते हैं । ये मेघ विद्युत् से युक्त गर्जना करते हुए मानो हास्यमयी वृष्टि करते हैं ॥२ ॥

८६८. यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥३ ॥

ये अग्निदेव यज्ञ के रसों से चराचर जगत् का पोषण करते हैं, यज्ञ के प्रभाव को सरल मार्गों से अंतरिक्ष में पहुँचाते हैं । तब अर्यमा, मित्र, वरुण एवं मरुद्‌गण मेघों के उत्पत्ति स्थल पर इनकी त्वचा में जल को स्थापित करते हैं ॥३ ॥

[यज्ञ से पोषक तत्व अन्तरिक्ष में स्थापित करते हैं । प्रकृतिगत देवशक्तियाँ उन्हें जल से संयुक्त करके उर्वरक वर्षा करने वाले मेघों का सृजन करती हैं ।]

८६९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥४ ॥

बल से (अरणि मंथन से) उत्पन्न होने वाले हे जातवेदा अग्निदेव ! आप अन्न एवं गौ आदि पशु धन से सम्पन्न हैं । आप हमारे लिए भी अपार वैभव प्रदान करें ॥४ ॥

८७०. स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥५ ॥

ज्वालाओं के रूप में विभिन्न मुखों वाले जाज्वल्यमान हे अग्निदेव ! आप त्रिकालदर्शी एवं सभी के आश्रय स्थल हैं । दिव्य स्तुतियों से संतुष्ट हुए यज्ञ में सर्वप्रथम उपस्थित होने वाले आप हमें अपनी तेजस्विता से अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥५ ॥

८७१. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥६ ॥

लपटों के रूप में विकराल दाढ़ों वाले हे तेजस्वी अग्निदेव ! अपने तीक्ष्ण स्वभाव से आप असुरों का संहार करने वाले हैं, अतएव हमारे लिए हानिकारक रात्रि और दिन के तथा उषा काल के सभी असुरों (विकारों) को भस्म कर दें ॥६ ॥

८७२. अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप सभी यज्ञों में वन्दनीय हैं । गायत्री छन्द वाले सामगान से स्तुति करने पर प्रसन्न हुए आप, अपने संरक्षण-साधनों से हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

८७३. आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं । विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! दरिद्रता को नष्ट करने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले, वरण करने योग्य आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८ ॥

८७४. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् । मार्डीकं धेहि जीवसे ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम ज्ञान से युक्त जीवन भर पोषण-सामर्थ्य प्रदान करने वाला सुखदायक धन, हमारे दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥९ ॥

८७५. प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये । भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥१० ॥

हे गोतम (गोतम वंशीय याजक गण) ! आप सुख की इच्छा से तीक्ष्ण ज्वालाओं वाले अग्निदेव के लिए पवित्र वचनों वाली स्तुतियों का उच्चारण करें ॥१० ॥

८७६. यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः । अस्माकमिद्वृधे भव ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! समीपस्थ या दूरस्थ जो शत्रु हमें अपने वश में करके बन्धक बनाना चाहें,उनका पतन हो । आप हमारी वृद्धि करने वाले हों ॥११ ॥

८७७. सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति । होता गृणीत उक्थ्यः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सहस्रों ज्वालाओं रूपी नेत्रों से सबको देखने वाले हैं । आप प्रशंसनीय होता रूप में स्तुतियों से प्रशंसित होते हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - ८०]

[ऋषि- गोतम राहूगण । देवता-इन्द्र । छन्द-पंक्ति ।]

८७८. इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१ ॥

वज्र धारण करने वाले शक्तिशाली हे इन्द्रदेव ! आपने ब्रह्मनिष्ठों द्वारा प्रदत्त दिव्य गुणों से सम्पन्न सोमरस का पान करके अपने उत्साह को बढ़ाया है । अपनी सामर्थ्य से देव समुदाय को हानि पहुँचाने वाले दुराचारियों को पृथ्वी पर से मारकर भगा दिया ॥१ ॥

८७९. **स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।**
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! उस श्येन पक्षी द्वारा (तीव्रगति से) लाये हुए अभिषुत, बलवर्धक सोमरस ने आपके हर्ष को बढ़ाया । अनन्तर आपने अपने बल से वृत्र को मारकर जलों से दूर कर दिया । इस प्रकार अपने राज्य क्षेत्र अर्थात् देव समुदाय को सम्मानित किया ॥२ ॥

८८०. **प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।**
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं पर चारों ओर से आक्रमण कर उन्हें विनष्ट करें । आपका वज्र अनुपम शक्तिशाली और शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला है । अपने अनुकूल स्वराज्य की कामना करते हुए आप वृत्र का वध करें और विजय प्राप्त कर जल प्राप्त करायें ॥३ ॥

[वर्षा के अवरोध दूर कर वर्षा करायें ।]

८८१. **निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।**
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने वृत्र को पृथ्वी से खींचकर आकाश में उठाकर निःशेष होने तक नष्ट किया । आपने जीवन धारक इन मरुद्गणों से युक्त जलों को प्रवाहित होने के लिए छोड़ा और आत्म सामर्थ्य में प्रतिष्ठित हुए ॥४ ॥

८८२. **इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।**
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५ ॥

क्रोध में आकर इन्द्रदेव ने भय से काँपने वाले वृत्र की ठुड्डी पर वज्र से प्रहार किया । जल प्रवाहों को बहने के लिए प्रेरित किया । वे इन्द्रदेव इस प्रकार आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित हुए ॥५ ॥

८८३. **अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।**
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६ ॥

सोम से आनन्दित हुए इन्द्रदेव सौ तीक्ष्ण शूल वाले वज्र से, वृत्र की ठुड्डी पर आघात करते हैं । मित्रों के आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित होते हैं ॥६ ॥

८८४. **इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।**
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७ ॥

हे पर्वतवासी, स्वराज्य की अर्चना करने वालों के सहायक वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपकी शक्ति शत्रुओं से अपराजेय है । छल-छद्मी मृग का रूप धारण करने वाले, वृत्र का हनन करने के लिए आप कूटनीति का भी सहारा लेते हैं ॥७ ॥

[यदि शत्रु छल-छद्म करता है,तो उसके लिए कूटनीति का प्रयोग करना भी उचित ठहराया जाता है]

८८५. **वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्याः अनु ।**
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका वज्र नब्बे नावों से घिरे वृत्र को विचलित करने में समर्थ है । आपका पराक्रम अति महान् है । आपकी भुजाओं का बल भी अपरिमित है । आप आत्म-सामर्थ्य से प्रकाशित हों ॥८ ॥

८८६. सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।

शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! आप सहस्रों की संख्या में मिलकर इन्द्रदेव का स्तवन करें । बीसों स्तोत्रों का गान करें । सैकड़ों अनुनय-अर्चनाएँ उनके निमित्त करें । इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ मंत्रों का प्रयोग करें । वे इन्द्रदेव अपनी आत्म- सामर्थ्य से प्रकाशित हों ॥९ ॥

८८७. इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।

महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१० ॥

इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से वृत्र की सेना के साथ संघर्ष कर उनके बल को क्षीण किया । वृत्र को मारकर वे अपनी आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित हुए ॥१० ॥

८८८. इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।

यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने बलशाली मरुतों के सहयोग से वृत्र-असुर का वध किया । उस समय आपके मन्यु (दुष्टता के प्रति क्रोध) के सम्मुख व्यापक आकाश और पृथ्वी भय से प्रकम्पित हुए । आप अपनी आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित हुए ॥११ ॥

८८९. न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२ ॥

वह असुर वृत्र इन्द्रदेव को अपनी सामर्थ्य से न कंपा सका और न गर्जना से डरा सका । इन्द्रदेव ने उस वृत्र पर फौलादी, सहस्रों तीक्ष्ण धारों वाले वज्र से प्रहार किया । इस प्रकार इन्द्रदेव ने आत्म सामर्थ्य के अनुकूल कर्म सम्पन्न किया ॥१२ ॥

८९०. यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।

अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र द्वारा फेंके गये तीक्ष्ण शस्त्र का सामना आपने अपने वज्र से किया । उस वृत्र को मारने की आपकी इच्छा से आपका बल आकाश मे स्थापित हुआ । इस प्रकार आपने आत्म - सामर्थ्य के अनुरूप कर्तृत्व प्रदर्शित किया ॥१३ ॥

८९१. अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपकी गर्जना से जगत् के सभी स्थावर और जंगम काँप जाते हैं । आपके मन्यु (अनीति संघर्षक क्रोध) के आगे त्वष्टा देव भी काँपते हैं । अपनी सामर्थ्य के अनुकूल आप कर्तृत्व प्रस्तुत करते हैं ॥१४ ॥

८९२. नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५ ॥

उन इन्द्रदेव की सामर्थ्य को समझने में कोई समर्थ नहीं । उनके समान पराक्रम-पुरुषार्थ को करने वाला अन्यत्र कोई नहीं । देवों ने उनमें सभी बलों, ऐश्वर्यों और क्षमताओं को स्थापित किया है । अतः वे आत्मानुरूप सामर्थ्य से प्रकाशित हुए हैं ॥१५ ॥

८९३. यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत।

तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६ ॥

ऋषि अथर्वा, पालन कर्त्ता मनु और दध्यङ् ऋषि ने पूर्व की भाँति अपनी बुद्धि से उन इन्द्रदेव के निमित्त मंत्र - रूप स्तुतियों का गान किया। वे इन्द्रदेव आत्म - सामर्थ्य के प्रभाव से प्रकाशित (प्रसिद्ध) हुये ॥१६ ॥

[सूक्त - ८१]

[ऋषि --गोतम राहूगण । देवता- इन्द्र । छन्द -पंक्ति ।]

८९४. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः।

तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१ ॥

हर्ष और उत्साहवर्धन की कामना से स्तोताओं द्वारा इन्द्रदेव के यश का विस्तार किया जाता है, अतः छोटे और बड़े सभी युद्धों में हम रक्षक, इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

८९५. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिः।

असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सैन्यबलों से युक्त हैं। आप अनुचरों की वृद्धि करने वाले और उन्हें विपुल धन देने वाले हैं। आप सोमयाग करने वाले यजमान के लिये विपुल धन-प्राप्ति की प्रेरणा देने वाले हैं ॥२ ॥

८९६. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।

युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३ ॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर शत्रुजयी ही धन प्राप्त करते हैं। हे इन्द्रदेव ! युद्धारम्भ होने पर मद टपकाने वाले (उमंग में आने वाले) अश्वों को आप अपने रथ में जोड़े। आप किसका वध करें, किसे धन दें ? यह आपके ऊपर निर्भर है। अतः हे इन्द्रदेव ! हमें ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥३ ॥

८९७. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः।

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥४ ॥

भीषण शक्ति से युक्त इन्द्रदेव सोमरस पान कर अपने बल की वृद्धि करते हैं। तदनन्तर सौन्दर्यशाली, श्रेष्ठ शिरस्त्राण धारण करने वाले, रथ में अश्वों को नियोजित करने वाले, इन्द्रदेव दाहिने हाथ में लौह-निर्मित वज्र को अलंकार के रूप में धारण करते हैं ॥४ ॥

८९८. आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि।

न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपनी सामर्थ्य से पृथ्वी और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया है। आपने आकाश में प्रकाशमान नक्षत्रों को स्थापित किया है। हे इन्द्रदेव ! उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वालों में आपके समान अन्य कोई नहीं है। आप ही सम्पूर्ण विश्व के नियामक हैं ॥५ ॥

८९९. यो अर्यो मर्तभोजनं परादृदाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हविदाता के लिए जो उपयोगी पदार्थ देते हैं, वह हमें भी प्रदान करें । आपके पास जो विपुल धनों के भण्डार हैं, वह हमे भी बाँटें । हम उस भाग का उपयोग कर सकें ॥६ ॥

९००. मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ कार्यों में सोमरस से अत्यन्त प्रफुल्लित होकर आप हमें गौएँ आदि विपुल धनों को देने वाले हैं । आप हमें दोनों हाथों से सैकड़ों प्रकार का वैभव प्रदान करें । हम वीरता पूर्वक यश के भागीदार बनें ॥७ ॥

९०१. मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल वृद्धि के लिए, हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए और अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे यज्ञस्थल में पधारें तथा सोमपान करके हर्षित हों । आप विपुल सम्पदाओं के स्वामी माने गये हैं । आप कामनाओं को पूरा करके हमारी रक्षा करने वाले हैं ॥८ ॥

९०२. एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये सभी प्राणी आपके वरण करने योग्य पदार्थों की वृद्धि करने वाले हैं । हे स्वामी इन्द्रदेव ! आप कृपणों के गुप्त धन को जानते हैं, उस धन को प्राप्त कर हमें प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ८२]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता-इन्द्र । छन्द- पंक्ति , ६ जगती ।]

९०३. उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव !हमारे स्तोत्रों को निकट से भली प्रकार सुनें । आप हमें सत्यभाषी बनायें । हमारी स्तुतियों को ग्रहण करने वाले आप अश्वों को आगमन के निमित्त नियोजित करें ॥१ ॥

९०४. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अन्न से तृप्त हुए ब्राह्मणों ने अपने आनन्द को व्यक्त करते हुए सिर हिलाया और फिर उन्होंने अभिनव स्तोत्रों का पाठ किया । अब आप अपने अश्वों को यज्ञ में प्रस्थान के लिए नियोजित करें ॥२ ॥

९०५. सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हम सभी प्राणियों के प्रति अनुग्रह दृष्टि रखने वाले आपकी अर्चना करते हैं । स्तोताओं को देने वाले धन से परिपूर्ण रथ वाले, कामनायुक्त , यजमानों के पास शीघ्र ही आते हैं । हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! आप 'हरी' नामक अश्वों को रथ में नियोजित करें ॥३ ॥

९०६. **स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।**

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप-अन्न सोम आदि से पूर्ण गायों को देने में समर्थ और दृढ़ रथ को भली प्रकार जानते हैं तथा उसी पर आसीन होते हैं । अतः हे इन्द्रदेव !आप अपने घोड़ों को रथ में जोड़े ॥४ ॥

९०७. **युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।**

तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके दाहिनी और बायीं ओर दो अश्व रथ में जुते हैं । इन दोनो अश्वों से नियोजित रथ को लेकर प्रिय पत्नी के पास जायें । उसी रथ से आकर हमारे हविष्यान्न को ग्रहण करके हर्षित हों ॥५ ॥

९०८. **युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।**

उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपके केशयुक्त अश्वों को हम मन्त्रयुक्त स्तोत्रों से रथ में नियोजित करते हैं । आप अपने हाथों में रास (लगाम) धारण कर घर जायें । वेग पूर्वक प्रवाहित होने वाले सोमरस ने आपको हर्षित किया है । घर में पत्नी के साथ सोम से हर्षित होकर आप पुष्टि को प्राप्त हों ॥६ ॥

[सूक्त - ८३]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता -इन्द्र । छन्द-जगती ।]

९०९. **अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।**

तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सामर्थ्यों से रक्षित हुआ आपका उपासक अश्वों और गौओं से युक्त धनों को पाकर अग्रणी होता है । जैसे जल सब ओर से समुद्र को प्राप्त होता है,वैसे ही आपके सम्पूर्ण धन उस उपासक को पूर्ण करके उसे भली प्रकार सन्तुष्ट करते हैं ॥१ ॥

९१०. **आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।**

प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२ ॥

होता (के चमस पात्र) को जिस प्रकार जल धाराएँ प्राप्त होती हैं , उसी प्रकार देवगण अन्तरिक्ष से यज्ञ को देखकर अपने प्रिय स्तोताओं के निकट पहुँचकर उनकी मंत्र युक्त प्रिय स्तुतियों को ग्रहण करते हैं । वे उन स्तोताओं को पूर्व की ओर श्रेष्ठ मार्गों से ले जाते हैं ॥२ ॥

९११. **अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।**

असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! परस्पर संयुक्त दो अन्नपात्र आपके निमित्त समर्पित हैं । आपने उन पात्रों को स्तुति वचनों के साथ स्वीकार किया है । जो स्तोता आपके नियमों के अनुसार रहता है, उसकी आप रक्षा करते हैं और पुष्टि प्रदान करते हैं । सोमयाग करने वाले यजमान को आप कल्याणकारी शक्ति देते हैं ॥३ ॥

९१२. **आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।**

सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अंगिराओं ने अपने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रज्वलित करके सर्वप्रथम हविष्यान्न प्रदान किया है । अनन्तर उन श्रेष्ठ पुरुषों ने सभी अश्वों, गौओं से युक्त पशु रूप धनों और भोज्य पदार्थों को प्राप्त किया ॥४ ॥

९१३. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।

आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५ ॥

सर्वप्रथम 'अथर्वा' ने 'यज्ञ' के सम्पूर्ण मार्गों को विस्तृत किया । अनन्तर नियमों के दृढ़ पालक सूर्यदेव का प्राकट्य हुआ । फिर 'उशना' ने समस्त गौओं को बाहर निकाला । हम सब इस जगत् के नियामक अविनाशी देव इन्द्र की पूजा करते हैं ॥५ ॥

९१४. बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।

ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६ ॥

जिसके घर में उत्तम यज्ञादि कर्मों के निमित कुश काटे जाते हैं । सूर्योदय के पश्चात् आकाश मे जहाँ स्तोत्र पाठ गुंजरित होते हैं । जहाँ उक्ति वचनों सहित सोम कूटने के पाषाणों का शब्द गूंजता है, इन्द्रदेव उनके यहाँ ही हविद्रव (सोमरस) का पान कर आनन्द पाते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८४]

[ऋषि- गोतम राहूगण । देवता-इन्द्र । छन्द-१-६ अनुष्टुप् ७-९ उष्णिक्, १०-१२ पंक्ति , १३-१५ गायत्री, १६-१८ त्रिष्टुप् ,(प्रगाथ) - १९ बृहती , २० सतोबृहती ।]

९१५. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१ ॥

हे शक्तिशाली , शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष को अपनी किरणों से परिव्याप्त करने वाले सूर्यदेव के समान आप में भी सोमपान के बाद अपार शक्ति का संचार हो ॥१ ॥

९१६. इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।

ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥२ ॥

अपराजेय शक्ति से सम्पन्न इन्द्रदेव को उनके अश्व यज्ञशाला में पहुँचायें, जहाँ याजकों-ऋषियों द्वारा स्तुति गान हो रहा है ॥२ ॥

९१७. आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।

अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥३ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप मंत्रों के द्वारा जोड़े गये घोड़ों वाले अपने रथ पर बैठें । सोम कुचलते हुए पत्थर की ध्वनि आपके मन को उसकी ओर आकर्षित करे (अर्थात् सोमरस पीने की इच्छा से यहाँ आयें) ॥३ ॥

९१८. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अविनाशी , श्रेष्ठ , आनन्दवर्धक , सोमरस का पान करें । यज्ञस्थल में शोधित सोमरस आपकी ओर प्रवाहित हो रहा है (आपको समर्पित है ।) ॥४ ॥

९१९. इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।

सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! आनन्दवर्धक , पवित्र सोमरस समर्पित करके विभिन्न स्तोत्रों से गुणगान करते हुए , आप सभी इन्द्रदेव की ही पूजा करो । सामर्थ्यशाली उन इन्द्रदेव को नमस्कार करो ॥५ ॥

९२०. नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।

नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥६ ॥

अश्वशक्ति से चालित रथ में बैठने वाले हे इन्द्रदेव ! आपसे अधिक पराक्रमी कोई दूसरा वीर नहीं है। आप जैसा कोई अन्य शक्तिशाली अश्वपालक (घोड़े का स्वामी) नहीं है ॥६ ॥

९२१. य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥७ ॥

हे प्रिय याजको ! दानशील होने के कारण मनुष्यों को धन देने वाले, प्रतिकार न किये जाने वाले, वे अकेले इन्द्रदेव ही सभी (प्राणियों) के अधिपति हैं ॥७ ॥

९२२. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥८ ॥

वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को कब सुनेंगे ? और आराधना न करने वालों को क्षुद्र पौधे की भाँति कब नष्ट करेंगे ? ॥८ ॥

[श्रेष्ठ किसान-माली, निराई करके उन पौधों को उखाड़ देते हैं, जो फसल के स्तर के अनुरूप नहीं है। हीन मानस वाले व्यक्ति मनुष्यता को कलंकित न करें, इस हेतु इन्द्रदेव से क्षुद्रता के उन्मूलन की प्रार्थना की गई है।]

९२३. यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग॥९ ॥

असंख्यों में से जो यजमान सोमयज्ञ करके आपकी आराधना करता है, उसे हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्र बल सम्पन्न बना देते हैं ॥९ ॥

[सोम पोषक तत्व है। उसे यज्ञीय भाव से सभी तक पहुँचाना सोमयज्ञ कहा जाता है। इस प्रकार के यज्ञीय कार्यों में अपनी क्षमता का नियोजन करने वालों को ही शक्ति अनुदान दिये जाते हैं।]

९२४. स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१० ॥

भक्तों पर कृपावृष्टि करने वाले इन्द्र (सूर्य) देव के साथ आनन्दपूर्वक गौएँ (किरणें) शोभा पाती हैं। वे भूमि पर स्वराज्य की मर्यादा के अनुरूप उत्पन्न सुस्वादु मधुर रस का पान करती हैं ॥१० ॥

९२५. ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।

प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११ ॥

इन्द्रदेव (सूर्य) का स्पर्श करने वाली धवल गौएँ (किरणें) दूध (पोषण) प्रदान करती हुई, उनके वज्र को प्रेरणा देती हुई स्वराज्य में ही रहती हैं ॥११ ॥

९२६. ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।

व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२ ॥

ज्ञान युक्त वे (किरणें) उन (इन्द्रदेव) के प्रभाव का पूजन करती हैं, पूर्व में हो चुके को समझने वाली वे इन्द्रदेव द्वारा पहले किये गये कार्यों का स्मरण दिलाती हैं, और स्वराज्य के अनुशासन में ही रहती हैं ॥१२ ॥

[इस सूक्त की उक्त तीन ऋचाओं में इन्द्र की किरणों (प्रतिभाओं) के लिये स्वराज्य (अपने राज्य) में मर्यादित तीन क्रियात्मक अनुशासनों का उल्लेख किया गया है।

(१) स्वराज्य के अनुरूप मधुर रसों का पान करें, औसत नागरिकों का स्तर देखते हुए ही अपने निर्वाह के साधन स्वीकार करें।

(२) इन्द्र (प्रशासन) को पुष्ट बनाते हुए अपराधियों के लिए दण्ड व्यवस्था को प्रभाव पूर्ण बनायें।

(३) व्यवस्थाओं की प्रशंसा करते हुए पूर्व की जा चुकी व्यवस्थाओं का स्मरण दिलाकर जन-जन को नैष्ठिक बनायें।]

९२७. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥१३॥

अपराजित इन्द्रदेव ने दधीचि की हड्डियों से (बने हुए वज्र से) निन्यानवे (सैकड़ों-हजारों) राक्षसों का संहार किया ॥१३॥

९२८. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥

इन्द्रदेव ने इच्छा करने से यह जान लिया कि (उस) अश्व का सिर पर्वतों के पीछे शर्यणावत् सरोवर में है और पूर्व मंत्रानुसार उसका वज्र बनाकर असुरों का वध कर दिया ॥१४॥

[आचार्य सायण के मतानुसार शाट्यायन लिखित (वेद) इतिहास में यह कथा है। दधीचि के प्रभाव से असुर पराभूत रहते थे। दधीचि के स्वर्ग गमन के पश्चात् वे उद्दण्ड हो उठे। इन्द्र उन्हें जीतने में असमर्थ रहे, तब उन्होंने दधीचि के किसी अवशेष की कामना की, बतलाया कि जिस अश्वमुख से दधीचि ने अश्विनीकुमारों को विद्या दी थी,वह शर्यणावत् सरोवर में है। इन्द्र ने उसे प्राप्त कर वज्र बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की।]

९२९. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥१५॥

मनीषियों ने त्वष्टा (संसार को तुष्ट करने वाले सूर्यदेव) का दिव्यतेज,गतिमान् चन्द्रमण्डल में अनुभव किया ॥१५॥

[चन्द्रमा सूर्यतेज से ही प्रकाशित होता है, यह तथ्य ऋषियों को विदित था।]

९३०. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१६॥

सामर्थ्यवान्, शत्रुओं पर क्रोध करने वाले, बाण धारण करके लक्ष्य भेद करने वाले इन्द्रदेव के रथ, जिसकी धुरी ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) है, उसके साथ अश्वों को आज कौन योजित कर सकता है? जो इन (अश्वों) का पालन-पोषण करता है, वही जीवित (प्राणवान्) रहता है ॥१६॥

[जीवन के शत्रुओं-दोषों को पराजित करने के लिए जो व्यक्ति ऊर्जा (शक्ति) को ऋत के साथ जोड़ने में समर्थ होता है, वही प्राणवान् होकर जीवित रहता है।]

९३१. क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥१७॥

(इन्द्रदेव के सम्मुख युद्ध में) कौन भागता है? कौन मारा जाता है? कौन भयभीत होता है? कौन सहायक होता है? समीपस्थ इन्द्रदेव को कौन जानता है? कौन सन्तान के निमित्त, कौन पशुधन एवं ऐश्वर्य के निमित्त, कौन शारीरिक सुख के निमित्त और कौन सम्बन्धी जनों के हित के निमित्त इन्द्रदेव से उत्तम वचनों द्वारा स्तुति करता है? ॥१७॥

९३२. **को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।**

कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥१८ ॥

कौन अग्निदेव की स्तुति करते हैं ? कौन सर्वदा स्रुचि पात्र से घृत और हवि से यज्ञ करते हैं ? देवगण किसके निमित्त आहूत धन को लाते हैं ? कौन इन दाता, उत्तम याजक, श्रेष्ठ इन्द्रदेव को जानते हैं ? ॥१८ ॥

९३३. **त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।**

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१९ ॥

हे प्रशंसनीय बलवान् इन्द्रदेव ! आप अपने तेज से तेजस्वी होकर साधक की प्रशंसा करते हैं। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके अलावा अन्य कोई सुख प्रदान करने वाला नहीं है, अतः हम सभी आपका स्तवन कर रहे हैं ॥१९ ॥

९३४. **मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।**

विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२० ॥

हे विश्व के आश्रयदाता इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदान धन साधन हमारे लिए विनाशकारी न बने । रक्षा के लिए प्रेरित आपके द्वारा दी गई शक्तियाँ विध्वंस न करें । हे मानव हितैषी इन्द्रदेव ! हम सज्जन नागरिकों को सभी प्रकार की (लौकिक एवं दैवी) सम्पत्ति प्रदान करें ॥२० ॥

[सूक्त - ८५]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता- मरुद्‌गण । छन्द- जगती , ५ ,१२ त्रिष्टुप् ।]

९३५. **प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।**

रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१ ॥

लोकहित में तीव्रगति से श्रेष्ठ कार्य करने वाले रुद्रदेव के पुत्र मरुद्‌गण रमणियों के समान सुसज्जित होकर बाहर जाते हैं । ये मरुद्‌गण शत्रुओं के साथ संघर्ष कर युद्ध क्षेत्र में हर्षित होते हैं । उन्होंने ही आकाश, पृथ्वी को स्थापित कर इसकी वृद्धि की है ॥१ ॥

९३६. **त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।**

अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२ ॥

इन शोभावान् और महिमावान् रुद्रदेव के पुत्र मरुद्‌गणों ने आकाश में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाया है । इन्द्रदेव के लिये स्तोत्रों का उच्चारण कर बलों को प्रकट किया है । वे पृथिवीपुत्र मरुद्‌गण अलंकारों को धारण कर शोभायमान हुए हैं ॥२ ॥

९३७. **गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।**

बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥३ ॥

वे पृथिवीपुत्र मरुद्‌गण अलंकारों को शरीर पर विशेष रूप से धारण कर सुशोभित होते हैं । वे मार्ग के शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं, जिससे घृत (पोषक सारतत्व) की उपलब्धि के मार्ग खुल जाते हैं ॥३ ॥

९३८. **वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।**

मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४ ॥

उत्तम युद्ध करने वाले वीर मरुद्गण दीप्तिमान् अस्त्रों से सज्जित होकर अडिग शत्रुओं को भी अपनी सामर्थ्य से प्रकम्पित करते हैं । हे मरुद्गणो ! आप मन के समान वेग वाले रथों में धब्बेदार मृगों को योजित कर संघबद्ध होकर चलने वाले हैं ॥४ ॥

९३९. प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।

उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५ ॥

हे मरुद्गणो ! जब आप युद्ध में वज्र को प्रेरित करते हुए बिन्दुदार (चितकबरे) मृगों को रथ में योजित करते हैं, तब धूमिल (मटमैले) मेघों की जल-धाराएं वेग से नीचे प्रवाहित होती हैं । वे भूमि को त्वचा के समान आर्द्र (नम) कर देती हैं ॥५ ॥

९४०. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।

सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अंधसः ॥६ ॥

हे मरुद्गणो ! वेगवान् अश्व आपको इस यज्ञस्थल पर ले आये । आप शीघ्रता पूर्वक दोनों हाथों में धन को धारण कर इधर आये । आपके निमित्त यहाँ बड़ा स्थान विनिर्मित किया है । यहाँ कुश आसनों पर अधिष्ठित होकर मधुर हवि रूप अन्नों का सेवन कर हर्षित हों ॥६ ॥

९४१. तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।

विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७ ॥

वे मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से स्वयं वृद्धि को प्राप्त होते हैं । उन्होंने अपनी महत्ता के अनुरूप स्वर्ग में बड़े विस्तृत स्थान को तैयार किया है । इन इष्टवर्षक और हर्ष प्रदायक मरुतों की रक्षा स्वयं परमात्मा विष्णु करते हैं । हे मरुद्गणो ! हमारे प्रिय यज्ञ स्थान में पक्षियों की भाँति पंक्ति बद्ध होकर पधारें ॥७ ॥

९४२. शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।

भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८ ॥

वीरों के समान संघर्षशील, योद्धाओं के समान आक्रामक , यश के इच्छुक , वीरों के समान अग्रणी, युद्धों में अति प्रयत्नशील ये मरुद्गण राजाओं के समान विशेष तेजस्वी रूप में शोभायमान हैं । इनसे सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ॥८ ॥

९४३. त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।

धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९ ॥

अत्यन्त कुशल कर्मवाले त्वष्टादेव ने इन्द्रदेव के लिए स्वर्णमय सहस्र धारों से युक्त वज्र को बनाकर दिया । इन्द्रदेव ने उसे धारण कर मनुष्यों के हितार्थ उससे वीरोचित कर्मों को सम्पन्न किया । जल को बाधित करने वाले वृत्र को मारकर जलों को मुक्त किया ॥९ ॥

९४४. ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।

धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१० ॥

उन मरुद्गणों ने अपने बल से भूमि के जलों को ऊपर की ओर प्रेरित किया और दृढ़ मेघों का विशेष रूप से भेदन किया, तदनन्तर उत्तम दानी पुरुष मरुद्गणों ने सोमों से हर्षित होकर वाद्ययंत्रों से ध्वनि करते हुए उत्तम गान भी किया ॥१० ॥

[पृथ्वी के जल को सोखकर मेघों की उत्पत्ति मरुतों (वायु) के द्वारा ही होती है ।]

९४५. जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।

आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११ ॥

मरुद्गणो ने जलाशय के जल को तिरछा करके प्रवाहित किया । प्यास से व्याकुल गोतम ऋषि के वंशजो के लिए झरने से सिंचन किया । ये अद्‌भुत दीप्ति वाले संरक्षण साधनों से युक्त होकर उनकी रक्षा के लिये गये, और ऋषि की पिपासा को तृप्त किया ॥११ ॥

९४६. या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।

अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१२ ॥

हे मरुद्गणो ! स्तोताओं और दाताओं को जो आप उनकी कामना से तीन गुना अधिक देकर सुखी करते हैं, वह हमें भी दें । हे बलवान् वीरो ! आप उत्तम सन्तान से युक्त धन हमें प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ८६]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता- मरुद्गण । छन्द-गायत्री ।]

९४७. मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥१ ॥

दिव्य लोक के वासी, विशिष्ट तेजस्विता सम्पन्न हे मरुद्गण ! आपके द्वारा जिस यजमान के यज्ञस्थल पर सोमपान किया गया, निश्चित ही वे चिरकाल पर्यन्त आपके द्वारा संरक्षित रहते हैं ॥१ ॥

९४८. यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥२ ॥

हे यज्ञ को वहन करने वाले मरुद्गणो ! हमारे यज्ञों मे ऋषियों द्वारा प्रणीत स्तुतियों का श्रवण करें ॥२ ॥

९४९. उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥३ ॥

जिस यज्ञ के यजमान को आपने ऋषियों के अनुकूल श्रेष्ठमार्गी बनाया, वह यजमान गौ समूह को प्राप्त करने वाला होता है ॥३ ॥

९५० अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥४ ॥

स्वर्ग सुख प्राप्ति के इच्छुक लोग इन मरुद्गणों के लिए यज्ञो मे कुश के आसन पर अभिषुत सोम रखते हैं और स्तोत्रों का गान करते हैं । उससे वे मरुद्गण हर्षित होते हुए प्रशंसा प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

९५१. अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥५ ॥

हे सर्वद्रष्टा शत्रुविजेता मरुद्गण ! आप इस यजमान का निवेदन सुनें । इनके साथ हम स्तोता भी अन्नो को प्राप्त करें ॥५ ॥

९५२. पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६ ॥

हे मरुद्गणो ! आपके रक्षण सामर्थ्यो से युक्त होकर हम लोग पूर्व के अनेक वर्षों से हव्यादि दान करते आये हैं ॥६ ॥

९५३. सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥७ ॥

हे पूज्य मरुद्गणो ! वे मनुष्य सौभाग्यशाली हैं,जिनके हविष्यान्न का सेवन आप करते हैं ॥७ ॥

९५४. **शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः। विदा कामस्य वेनतः ॥८॥**

हे सत्यबल सम्पन्न पराक्रमी मरुद्‌गणो ! स्तुति करने वाले (श्रम से) पसीने से भीगे हुए याजकों को आप अभीष्ट फल प्रदान करें ॥८॥

९५५. **यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः ॥९॥**

हे सत्यबल युक्त मरुतो ! आप अपनी तेजस्वी सामर्थ्य से राक्षसों को मारने वाले बल को प्रकट करें ॥९॥

९५६. **गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥१०॥**

हे मरुद्‌गण ! गहन तमिस्रा को आप दूर करें। सभी राक्षसों को हमसे दूर भगायें। हम आपसे ज्योति रूप ज्ञान की याचना करते हैं ॥१०॥

[सूक्त - ८७]

[ऋषि - गोतम राहूगण। देवता-मरुद्‌गण। छन्द-जगती।]

९५७. **प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः।**
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१॥

शत्रु संहारक, महान बलशाली वक्ता, अडिग, अविच्छिन्न रहने वाले, सरल व्यवहार वाले जनों के अतिप्रिय, मनुष्यों के शिरोमणि ये मरुद्‌गण देवी उषा के समान अलंकारों से युक्त होकर विशेष प्रकाशित होते हैं ॥१॥

९५८. **उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा।**
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२॥

हे मरुद्‌गणो ! आप पक्षी की भाँति किसी भी पथ से आकर हमारे यज्ञ के समीप एकत्र हों। अपने रथों में विद्यमान धनों के कोश हम पर बरसायें और याजक पर मधुर घृत युक्त अन्नों का वर्षण करें। (अर्थात् जल के साथ पोषक पर्जन्य की वर्षा करें।) ॥२॥

९५९. **प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।**
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३॥

ये मंगलकारी वीर मरुद्‌गण एकत्र होकर युद्ध स्थल पर आक्रमण की मुद्रा में वेग से जाते हैं, तो पृथ्वी भी अनाथ नारी की भाँति काँपने लगती है। ये क्रीड़ायुक्त, गर्जनयुक्त, चमकीले अस्त्रों से युक्त होकर शत्रुओं को विचलित करके अपनी महत्ता को प्रकट करते हैं ॥३॥

९६०. **स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ या ईशानस्तविषीभिरावृतः।**
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

ये मरुद्‌गण स्वचालित बिन्दुओं से चिह्नित अश्व वाले विविध बलों से युक्त सब पर प्रभुत्व करने में समर्थ हैं। ये सत्यरूप, पापनाशक, अनिन्दनीय, बलशाली, बुद्धि को प्रेरित करने वाले और रक्षा करने वाले हैं ॥४॥

९६१. **पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।**
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५॥

मरुद्गणों के जन्म की कथा हमारे पूर्वज कहते हैं । सोम को देखकर हमारी वाणी उन मरुद्गणों की स्तुतियाँ करती है । जब ये मरुद्गण संग्राम में इन्द्रदेव के सहायक हुए,तो याज्ञिकों ने उन्हें (मरुद्गणों को) प्रशंसनीय (यज्ञार्ह) नामों से विभूषित किया ॥५ ॥

९६२. श्रियसे कं भानुभि: सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभि: सुखादय: ।

ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्न: ॥६ ॥

उत्तम अलंकारों और अस्त्रों से सज्जित होकर ये मरुद्गण ऋषियों की वाणी से भली प्रकार सुशोभित होते हैं । ये स्तोताओं के निमित्त वृष्टि करने की इच्छा करते हैं, अतएव वेग से जाने वाले ये निडर वीर अपने प्रिय स्थान पर पहुँचते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८८]

[ऋषि- गोतम राहूगण । देवता- मरुद्गण । छन्द - त्रिष्टुप्, १, ६,प्रस्तार पंक्ति, ५ विराड्रूपा ।]

९६३. आ विद्युन्मद्भिर्मरुत: स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णै: ।

आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमाया: ॥१ ॥

हे मरुद्गणो ! विद्युत् की भाँति अत्यन्त दीप्तिवाले, अतिशय गति सम्पन्न, अस्त्रों से सज्जित उड़ने वाले, अश्वों से योजित रथों द्वारा यहाँ आयें । आपकी बुद्धि कल्याण करने वाली है । आप श्रेष्ठ अन्नों के साथ पक्षियों के सदृश वेग से हमारे पास आयें ॥१ ॥

[उड़ने वाले अश्वों से युक्त रथ से, उड़ने में समर्थ अश्व शक्ति युक्त यानों का बोध होता है]

९६४. तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गै: शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वै: ।

रुक्मो न चित्र: स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥२ ॥

वे मरुद्गण अरुणिम आभा वाले, भूरे वर्ण वाले अश्वों से नियोजित स्वर्णमय रथों से कल्याणकारी कर्म सम्पादन करने के लिए त्वरित गति से आते हैं । अद्भुत आयुधों से युक्त होकर रथ पर विराजित ये रथ के पहियों की लौह पट्टिकाओं से भूमि को उखाड़ते जाते हैं ॥२ ॥

९६५. श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।

युष्मभ्यं कं मरुत: सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥३ ॥

हे मरुद्गण ! आप अपने शरीरों को आयुधों से सुशोभित करते हैं । वनों में वृक्षों के बढ़ने के समान उपासक अपनी बुद्धि को उच्चकोटि की बनाते हैं । हे भली प्रकार उत्पन्न मरुद्गणो ! अति उत्साह से युक्त यजमान आपको हर्षित करने के निमित्त, सोम कूटने के पाषाणों की ध्वनि करते हैं अर्थात् सोमरस तैयार करते हैं ॥३ ॥

९६६. अहानि गृध्रा: पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! जल की इच्छा वाले आपके शुभ दिन अब आ चुके हैं । गोतमों ने दिव्य बुद्धि से मन्त्र युक्त स्तोत्रों से स्तुतियाँ की हैं, पीने के लिए ऊपर स्थित 'मेघरूप' कुण्ड को आपकी ओर प्रेरित किया है ॥४ ॥

९६७. **एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।**
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ।५ ॥

हे मरुद्‌गणो ! स्वर्णमय रथ पर अधिष्ठित होकर, तीक्ष्ण धार वाले आयुधों से युक्त होकर विविध भाँति शत्रु पर वार करने वाले, उनका नाश करने वाले, आपको देखकर गोतम ऋषि ने जो छन्दयुक्त स्तुतियाँ वर्णित की हैं, उनका वर्णन सम्भव नहीं था ॥५ ॥

९६८. **एषा स्या वो मरुतो ऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।**
अस्तोभयद्‌वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥६ ॥

हे मरुतो ! आपके बाहुओं की धारक शक्ति का यशोगान करने वाली ऋषियों की वाणी का अनुकरण कर हम आपकी स्तुति करते हैं । यह स्तुति हमारे द्वारा पूर्व की भाँति सहज स्वभाव से ही की जा रही है ॥६ ॥

[सूक्त - ८९]

[**ऋषि-** गोतम राहूगण । **देवता-** विश्वेदेवा (१-२, ८, ९देवगण, १० अदिति ।) **छन्द** -जगती, ६ विराट् स्थाना, ८-१० त्रिष्टुप् ।]

९६९. **आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्‌भिदः ।**
देवा नो यथा सदमिद्‌वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१ ॥

कल्याणकारी, किसी के दबाव में न आने वाले, अपराजित, समुन्नतिकारक शुभ कर्मों को हम सभी ओर से प्राप्त करें । प्रतिदिन सुरक्षा करने वाले सम्पूर्ण देवगण हमारा सम्वर्द्धन करते हुए हमारी रक्षा करने में उद्यत हों ॥१ ॥

९७०. **देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।**
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२ ॥

सन्मार्ग की प्रेरणा देने वाले देवों की कल्याणकारी सुबुद्धि तथा उनका उदार अनुदान हमें प्राप्त होता रहे । हम देवों की मित्रता प्राप्त कर उनके समीपस्थ हों । वे हमारे जीवन को दीर्घ आयु से युक्त करें ॥२ ॥

९७१. **तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।**
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३ ॥

हम उन देवगणों भग, मित्र, अदिति, दक्ष, मरुद्‌गण, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार और सौभाग्यशालिनी सरस्वती की प्राचीन स्तुतियाँ करते हैं । वे हमें सुख देने वाले हों ॥३ ॥

९७२. **तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।**
तद्‌ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४ ॥

वायुदेव हमें सुखप्रद ओषधियाँ प्रदान करें । माता पृथिवी, आकाश पिता और सोम निष्पादित करने वाले पाषाण, हमें वह ओषधि दें । तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारी प्रार्थना सुनें ॥४ ॥

९७३. **तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।**
पूषा नो यथा वेदसामसद्‌वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५ ॥

स्थावर जंगम जगत् के पालक, बुद्धि को प्रेरणा देने वाले विश्वेदेवों को हम अपनी सुरक्षा के लिये बुलाते हैं । वह अविचलित पूषादेव हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि और सुरक्षा में सहायक हों । वे हमारा कल्याण करें ॥५ ॥

९७४. **स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।**
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६ ॥

अति यशस्वी इन्द्रदेव हमारा कल्याण करने वाले हों । सर्वज्ञाता पूषादेव हमारा मंगल करें । अप्रतिहतगति वाले गरुड हमारे हित कारक हों । ज्ञान के अधीश्वर बृहस्पति देव हमारा कल्याण करें ॥६ ॥

९७५. **पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।**
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७ ॥

बिन्दुयत् चिह्न वाले चितकबरे अश्वों से युक्त भूमिपुत्र, शुभकर्मा, युद्धों में गमनशील, अग्नि की ज्वालाओं के समान तेज सम्पन्न, मननशील ज्ञान सम्पन्न, मरुद्गण अपनी रक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर यहाँ आयें ॥७ ॥

९७६. **भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।**
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥८ ॥

हे यजन योग्य देवो ! कानों से हम मंगलमय वचनों का ही श्रवण करें । नेत्रों से कल्याणकारी दृश्यों को ही देखें । स्थिर -पुष्ट अंगों से आपकी स्तुति करते हुए, देवों के द्वारा नियत आयु को प्राप्त करके, हम देवहितकारी कार्यों में इसका उपयोग करें ॥८ ॥

९७७. **शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।**
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९ ॥

हे देवो ! सौ वर्ष तक हमारी आयु की सीमा है । हमारे इस शरीर में बुढ़ापा भी आपने दिया है, उस समय हमारे पुत्र भी पिता बन जाते हैं, अतः हमारी आयु मध्य में ही टूट न जाये, ऐसा प्रयत्न करें ॥९ ॥

९७८. **अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।**
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१० ॥

अदिति ही द्युलोक है । अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवगण, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) नव उत्पन्न और भावी आगे उत्पन्न होने वाले जो भी हैं, वे अदिति के ही रूप हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ९०]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - गायत्री, ९. अनुष्टुप् ।]

९७९. **ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१ ॥**

ज्ञानी देव मित्र और वरुण हमें सरल नीति पथ पर बढ़ाते हैं । देवों के सहचर अर्यमा हमें सरल मार्ग से उन्नतिशील बनायें ॥१ ॥

९८०. **ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥२ ॥**

वे धनों के धारणकर्ता धनपति, प्रकृष्ट बुद्धि सम्पन्न, महान् सामर्थ्यों से सम्पूर्ण शत्रुओं के नाशक नियमों में अटल हैं ॥२ ॥

९८१. **ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥३ ॥**

वे अविनाशी देवगण हमारे शत्रुओं का नाश करके हम मनुष्यों को सब भाँति सुख देते हैं ॥३ ॥

९८२. वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः ॥४ ॥

ये वन्दनीय देवगण इन्द्र, मरुत्, पूषा और भग हमें कल्याणकारी पथ पर प्रेरित करें ॥४ ॥

९८३. उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥५ ॥

हे पूषन् ! हे विष्णो ! हे गतिशील मरुतो ! आप हमारी बुद्धि को गो सदृश (पोषक विचार स्रवित करने वाली) बनायें। (इस प्रकार) हमारा कल्याण करें ॥५ ॥

९८४. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥६ ॥

यज्ञ कर्म करने वालों के लिये वायु एवं नदियाँ मधुर प्रवाह पैदा करें। सभी ओषधियाँ मधुर रस से सम्पन्न हों ॥६ ॥

९८५. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७ ॥

पिता की तरह पोषणकर्ता दिव्यलोक हमारे लिए माधुर्य युक्त हो। मातृवत् रक्षक पृथ्वी की रज भी मधु के समान आनन्दप्रद हो। रात्रि और देवी उषा भी हमारे लिये माधुर्ययुक्त हों ॥७ ॥

९८६. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८ ॥

सम्पूर्ण वनस्पतियाँ हमारे लिये मधुर सुख प्रदायक हों। सूर्यदेव हमें अपने माधुर्य (तेजस्वी किरणों) से परिपुष्ट करें तथा गौएँ भी हमारे लिये अमृत स्वरूप मधुर दुग्ध रस प्रदान करने में सक्षम हों ॥८ ॥

९८७. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९ ॥

मित्रदेव, श्रेष्ठ वरुणदेव, न्यायकारी अर्यमादेव, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव, वाणी के स्वामी बृहस्पतिदेव, संसार के पालन करने वाले विष्णुदेव हम सबके लिये कल्याणकारी हों ॥९ ॥

[सूक्त - ९१]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण। **देवता**- सोम। **छन्द** - त्रिष्टुप्, ५-१६ गायत्री, १७ उष्णिक्।]

९८८. त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! हम अपनी बुद्धि से आपको जान सकें। आप हमें उत्तम मार्ग पर चलाते हैं। आपके नेतृत्व में आपका अनुगमन करके हमारे पूर्वज, देवों से रमणीय सुख प्राप्त करने में सफल हुए थे ॥१ ॥

९८९. त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप अनेक कर्मों का सम्पादन करने वाले होने से सुकर्मा रूप में प्रसिद्ध हैं। सबको जानने वाले आप अनेक कर्मों में कुशल होने से उत्तम दक्ष हैं। आप अनेक बलों के युक्त होने से महाबली हैं। आप अनेकों तेजस्वी धनों से युक्त वैभव सम्पन्न हैं ॥२ ॥

९९०. राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप अत्यन्त पवित्र हैं। आपका धाम बड़ा विस्तृत और भव्य है। राजा वरुण के सभी नियमों

से आप मुक्त हैं । आप मित्र के समान प्रीति-कारक और अर्यमा के समान अति कुशल हैं ॥३ ॥

९९१. या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥४ ॥

हे राजा सोम ! आपके उत्तम स्थान आकाश में,पृथ्वी के ऊपर पर्वतों में,ओषधियों में और जलों में हैं । आप उन सम्पूर्ण स्थानों से द्वेष रहित प्रसन्न मन से यहाँ आकर हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥४ ॥

९९२. त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप श्रेष्ठ अधिपति हैं । आप सबके नेतृत्वकर्त्ता और पोषक हैं । आप वृत्र-नाशक और कल्याणकारी बल के प्रकट रूप हैं ॥५ ॥

९९३. त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारे दीर्घजीवन के लिए प्रशंसनीय ओषधिरूप हैं । आपकी अनुकूलता से हम मृत्यु से बच सकेंगे ॥६ ॥

९९४. त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप महान् यज्ञ का सम्पादन करने वाले, तरुण उपासकों को उत्तम जीवन के लिए बल और सौभाग्य प्रदान करते हैं ॥७ ॥

९९५. त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥८ ॥

हे राजा सोमदेव ! आप जिसकी रक्षा करते हैं,वह कभी भी नष्ट नहीं होता । आप दुष्ट पापियों से सब प्रकार हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

९९६. सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥९ ॥

हे सोमदेव ! हविदाता के सुखद जीवन के लिए अपने रक्षण-सामर्थ्यों से उसकी रक्षा करें ॥९ ॥

९९७. इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आप इस यज्ञ में हमारी इन स्तुतियों को स्वीकार करें । हमारे पास आयें और हमारी वृद्धि करें ॥१० ॥

९९८. सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥११ ॥

स्तुति वचनों के ज्ञाता हे सोमदेव ! हम अपनी वाणियों से आपको बढ़ाते हैं । आप हमारे बीच सुख-साधनों को लेकर प्रविष्ट हों ॥११ ॥

९९९. गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारी वृद्धि करने वाले,रोगों का नाश करने वाले, धन देने वाले, पुष्टि वर्धक और उत्तम मित्र बनें ॥१२ ॥

१०००. सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥१३ ॥

हे सोमदेव ! गौएँ जैसे जौ के खेत में और मनुष्य जैसे अपने घर में रमण करता है, वैसे आप हमारे हृदय में रमण करें ॥१३ ॥

१००१. यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥१४ ॥

हे सोमदेव ! जो याजक आपकी मित्रता से युक्त रहता है,वही मेधावी और कुशल ज्ञानी हो जाता है ॥१४ ॥

१००२. उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः ॥१५ ॥

हे सोमदेव ! हमें अपयश से बचायें । पापों से हमें रक्षित करें और हमारे निमित्त सुखकारी मित्र बनें ॥१५ ॥

१००३. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥१६ ॥

हे सोमदेव ! आप वृद्धि को प्राप्त हों । आप सभी ओर से बलों से युक्त हों । संग्राम में आप हमारे सहायक रूप हों ॥१६ ॥

१००४. आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥१७ ॥

हे अति आह्लादक सोमदेव ! अपने दिव्य गुणों की यश गाथाओं से चतुर्दिक् विस्तार को प्राप्त करें । हमारे विकास के निमित्त मित्र रूप में आप सहयोग करें ॥१७ ॥

१००५. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८ ॥

हे शत्रु , संहारक सोमदेव ! आप दूध, अन्न बल को धारण करें । अपने अमरत्व के लिए द्युलोक में श्रेष्ठ अन्नों (दिव्य पोषक तत्वों) को प्राप्त करें ॥१८ ॥

१००६. या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥१९ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ करने वाले आपके जिन तेजों के लिए हवियाँ प्रदान करते हैं, वे सभी प्रखर यज्ञ क्षेत्र के चारों ओर रहें । घरों की अभिवृद्धि करने वाले, विपत्तियों से पार करने वाले, पुत्र पौत्रादि श्रेष्ठ वीरों से युक्त करने वाले, शत्रुओं के विनाशक, हे सोमदेव ! आप हमारी ओर आयें ॥१९ ॥

१००७. सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२० ॥

जो हवि (द्रव्य) का दान करता है, उसे सोमदेव गौ और अश्व देते हैं । कर्म कुशल, गृह व्यवस्था कुशल, यज्ञाधिकारी, सभा में प्रतिष्ठित, पिता का यश बढ़ाने वाला पुत्र भी सोमदेव के अनुग्रह से प्राप्त होता है ॥२० ॥

१००८. अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२१ ॥

हे सोमदेव ! संग्रामों में असहनीय दिखाई देने वाले, शत्रुओं पर विजय पाने वाले, विशाल सेनाओं के पालक, जलदाता, शक्ति संरक्षक, संग्रामों के विजेता, श्रेष्ठ निवास युक्त तथा कीर्तिवान् आपका हम अनुसरण करते हैं ॥२१ ॥

१००९. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्व१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२ ॥

अपने तेज से अंधकार को नष्ट करने वाले एवं अंतरिक्ष को विस्तार देने वाले हे दिव्य सोमदेव ! आपने ही पृथ्वी पर सभी ओषधियों, गौओं एवं जल को उत्पन्न किया ॥२२ ॥

[अंतरिक्षीय पोषक प्रवाह से ही सोम-ओषधियों, जलों, सूर्य रश्मियों और गोदुग्ध आदि को शक्ति प्राप्त होती है]

१०१०. देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३॥

हे दिव्य शक्ति सम्पन्न सोमदेव ! विचारपूर्वक श्रेष्ठ धन का भाग हमें प्रदान करें। दान के लिये प्रवृत्त हुए आपको कोई प्रतिबंधित नहीं करेगा, क्योंकि आप ही अति समर्थ कार्यों के साधक हैं। स्वर्ग की कामना से युक्त हमें दोनों लोकों मे सुख प्रदान करें ॥२३॥

[सूक्त - ९२]

[ऋषि - गोतम राहूगण। देवता-उषा, १६, १८ अश्विनी-देवता। छन्द-५-१२ त्रिष्टुप्, १३-१८ उष्णिक्, १-४ जगती।]

१०११. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

नित्यप्रति ये उषायें उजाला लाती हैं। (इस समय) आकाश के पूर्वार्द्ध में प्रकाश फैल जाता है। जैसे वीर शस्त्रों को पैना करते हैं (चमकाते हैं), उसी प्रकार अपने प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करती हुई वे गमनशील और तेजस्वी लालवर्ण की गौएँ (किरणें) आगे बढ़ती हैं ॥१॥

१०१२. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

(उषा काल में) अरुणाभ किरणें स्वाभाविक रूप में (क्षितिज के) ऊपर आ गई हैं। स्वयं जुते हुए बैलों (किरणों) के रथ से देवी उषा ने पहले ज्ञान का (चेतना का) संचार किया, फिर प्रकाश दाता तेजस्वी सूर्यदेव की सेवा (सहायता) करने लगी ॥२॥

१०१३. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३॥

(यज्ञादि) श्रेष्ठ कर्म और श्रेष्ठ प्रयोजन हेतु दान देने वाले, सोमरस को संस्कारित करने वाले, यजमान को अपनी किरणों (के प्रभाव) से प्रचुर मात्रा में अन्नादि देती हुईं (उषा) आकाश को अपने तेज से परिपूर्ण करती हैं। रण में शस्त्रों से सज्जित वीर के तुल्य देवी उषा आकाश को सुन्दर दीप्तिमान् बना देती हैं ॥३॥

१०१४. अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु१षा आवर्तमः ॥४॥

ये देवी उषा नर्तकी के समान विविध-रूपों को धारण कर उतरती हैं। ये देवी उषा गौ के समान (दूध की तरह) पोषक प्रवाह प्रदान करने के लिए अपना वक्ष खोल देती हैं। ये देवी उषा सम्पूर्ण लोकों को प्रकाश से व्याप्त करती हैं और तमिस्रा को मिटाकर सबकी रक्षा करती हैं ॥४॥

१०१५. प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५॥

इन देवी उषा की दीप्तियाँ उदित होकर सर्वत्र फैल रही हैं और व्यापक तमिस्रा को दूर करती हैं। यज्ञों में जैसे यूप को घृत से लीपकर सुन्दर बनाते हैं, वैसे ही आकाश पुत्री देवी उषा विलक्षण प्रकाश को धारण करती हैं ॥५ ॥

१०१६. अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥६ ॥

हम उस अंधकार से पार हो गये। प्रकाशवती देवी उषा सब कुछ स्पष्ट कर देती हैं। कवि द्वारा छन्दों से अलंकृत करने के समान और पति को प्रसन्न करने के लिए अलंकारों से सुसज्जित सुन्दर स्त्री के समान दिव्य प्रकाश से अलंकृत देवी उषा मुस्कराती हैं ॥६ ॥

१०१७. भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७ ॥

ये प्रकाशमती, सत्यवाणी को प्रेरित करने वाली, आकाशपुत्री उषा गोतम ऋषि द्वारा स्तुत्य हैं। हे उषे ! आप हमें पुत्र-पौत्रों, अश्वों, गौओं तथा विविध प्रकार के धन-धान्यों से सम्पन्न करें ॥७ ॥

१०१८. उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८ ॥

हे सौभाग्य शालिनि उषे ! हमें सुन्दर पुत्रों, सेवकों, अश्वों से युक्त उस यशस्वी धन को प्राप्त करायें। आप उत्तम कर्म वाली, यशस्विनी, अन्न उत्पन्न करने वाली हैं। अपने ऐश्वर्यों से हमें भी प्रकाशित करें ॥८ ॥

१०१९. विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥९ ॥

ये देवी उषा सभी लोकों को देखती हुई पश्चिम की ओर मुख करके विशिष्ट प्रकाश से प्रतिभासित होती हैं। यह सब जीवों को जगाकर गतिवान् बनाती हैं। विश्व के मननशील मानवों की वाणी को प्रेरणा देती हैं ॥९ ॥

[भावना शीलों के मन में उठी उमंग स्तोत्रों, काव्य आदि के रूप में प्रकट होती है।]

१०२०. पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥१० ॥

पुनः-पुनः प्रकट होने वाली पुरातन देवी उषा प्रतिदिन एक समान वर्ण को प्राप्त कर अति सुशोभित होती हैं। ये देवी उषा मनुष्य की आयु को उसी प्रकार क्षीण करती जाती हैं, जैसे व्याधिनी पक्षियों की संख्या क्षीण करती जाती है ॥१० ॥

[नित्य प्रातःकाल मनुष्य अपना एक दिन का जीवन पूर्ण करता है अर्थात् आयु घटती है]

१०२१. व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११ ॥

ये देवी उषा आकाश के विस्तृत प्रदेशों को प्रकाशित करने के लिए जाग उठी हैं। वे अपनी बहिन रात्रि को दूर छिपाती हैं। ये मानवी युगों को विनष्ट करती हुई (अर्थात् नित्यप्रति मनुष्य की आयु को कम करती) सूर्यदेव के दर्शन से विशेष प्रकाशित होती हैं ॥११ ॥

१०२२. पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२ ॥

उज्ज्वल वर्णवाली, सौभाग्यशालिनी देवी उषा गौशाला से निकले हुए पशुओं के समान विस्तार को प्राप्त होती हैं । नदियों में बढ़ते जल के समान फैलती हुई जाती है । ये देवी उषा देवों के श्रेष्ठ कर्मों से विचलित नहीं होतीं और सूर्य की रश्मियों सी दीखती हुई प्रतीत होती है ॥१२ ॥

१०२३. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१३ ॥

हवनों को प्रारम्भ करने वाली हे उषे ! हमें वह विलक्षण ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे हम सन्तानादि का पोषण कर सकें ॥१३ ॥

१०२४. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि । रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥१४ ॥

गौओं (पोषक तत्त्वों) और अश्वों (पराक्रम) से युक्त यज्ञ कर्मों की प्रेरक हे उषे ! आप आज हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें ॥१४ ॥

१०२५. युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः । अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥१५॥

हवनों को प्रारम्भ करने वाली हे उषे ! अरुणाभ अश्वों (किरणों) को अपने रथ से युक्त करें और हमें विश्व के सब सौभाग्य प्रदान करें ॥१५ ॥

१०२६. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६ ॥

शत्रुओं का नाश करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप गौओं और स्वर्णमय रथ को मनोयोग पूर्वक हमारी ओर प्रेरित करें ॥१६ ॥

१०२७. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप द्युलोक से प्रशंसा योग्य प्रकाश लाकर लोगों का हित करते हैं, ऐसे आप हमें अन्न से पुष्ट करें ॥१७ ॥

१०२८. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी । उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८ ॥

देवी उषा के साथ जाग्रत् अश्व (शक्तिप्रवाह) स्वर्णिम प्रकाश में स्थित दुःख निवारक एवं सुखदायी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ में सोमपान के लिये लायें ॥१८ ॥

[सूक्त - ९३]

[ऋषि-गोतम राहूगण । देवता-अग्नी-षोम देवता । छन्द -१-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्; ८ जगती अथवा त्रिष्टुप्; ९-११ गायत्री ।]

१०२९. अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१ ॥

हे शक्तिवान् अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारे आवाहन को सुनें और हमारे उत्तम वचनों से आप हर्षित हों । हम हविदाताओं के लिये सुखकारी हों ॥१ ॥

१०३०. अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! हम आज आपके निमित्त उत्तम वचनों को अर्पित करते हैं । आप उत्तम पराक्रम धारण कर हमारे निमित्त उत्तम अश्वों और उत्तम गौओं की वृद्धि करें ॥२ ॥

१०३१. अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥३ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! जो आपके निमित्त आहुतियाँ देकर हवन सम्पादित करता है, उसे आप सन्तान सुख के साथ उत्तम बलों और पूर्ण आयु से सम्पन्न करें ॥३ ॥

१०३२. अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥४ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आपका वह पराक्रम उस समय ज्ञात हुआ,जब आपने 'पणि' से गौओं का हरण किया और 'बृसय' के शेष रक्षकों को क्षत-विक्षत किया । असंख्यों के लिये सूर्य प्रकाश का प्राकट्य किया ॥४ ॥
['पणि' अंधकार का प्रतीक असुर, जो गौ अर्थात् किरणों का हरण करता है]

१०३३. युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥५ ॥

हे सोमदेव और अग्निदेव ! आप दोनों समान कर्म करने वाले हैं । हे अग्नि और सोमदेवो ! आपने आकाश में प्रकाशित नक्षत्रों को स्थापित किया है और हिंसक वृत्र द्वारा प्रतिबन्धित नदियों को मुक्त किया है ॥५ ॥

१०३४. आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आप में से अग्निदेव को मातरिश्वा वायु द्युलोक से यहाँ (भृगुऋषि के लिए) ले आये और दूसरे सोम को श्येन पक्षी पर्वत शिखर से उखाड़कर लाया, इस प्रकार आपने स्तोत्रों से वृद्धि पाकर व्यापक क्षेत्र में यज्ञों का विस्तार किया ॥६ ॥

१०३५. अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥७ ॥

हे बलवान् अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारी हवियों को ग्रहण करके हर्षयुक्त हों । आप हमें उत्तम सुख देने वाले और हमारी रक्षा करने वाले हों । इस यजमान के कष्टों को दूर कर सुख प्रदान करें ॥७ ॥

१०३६. यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! जो साधक देवों के लिये भक्ति और मनोयोग पूर्वक घृतयुक्त हवियों को समर्पित करता है, उसके व्रत की आप रक्षा करें । उसे पापों से बचाये और उसके सम्बन्धी जनों को विपुल सुखों से युक्त करें ॥८ ॥

१०३७. अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः। सं देवत्रा बभूवथुः ॥९॥

हे अग्निदेव ! हे सोमदेव ! आप दोनों ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। यज्ञस्थल पर संयुक्त रूप से बुलाये जाते हैं। आप दोनों देवत्व से युक्त हैं। हमारे द्वारा संयुक्त रूप से की गई स्तुतियों को स्वीकार करें ॥९॥

१०३८. अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति। तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१०॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! जो आपको घृतयुक्त हविष्यान्न देते हैं, उनके लिये आप भरपूर अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१०॥

१०३९. अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्। आ यातमुप नः सचा ॥११॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारी इन हवियों को स्वीकार करें। आप दोनों संयुक्त रूप से हमारे निकट आयें ॥११॥

१०४०. अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारे अश्वों को पुष्ट करें। दुग्ध-घृत रूप हवि देने वाली हमारी गौओं को पुष्ट करें। हे धनवान् ! आप हम याजकों को विविध बल धारण करायें। हमारे यज्ञों के यश को विस्तृत करें ॥१२॥

[सूक्त - ९४]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस। देवता-अग्नि (जातवेद अग्नि) ८ तीन पाद के देव, १६ उत्तरार्द्ध का अग्नि अथवा मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, द्यावा पृथिवी। छन्द-जगती, १५, १६ त्रिष्टुप्।]

१०४१. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१॥

पूजनीय जातवेद (अग्नि) को यज्ञ में प्रकट करने के लिए स्तुति को विचार पूर्वक रथ की तरह प्रयुक्त करते हैं। इस यज्ञाग्नि के सान्निध्य से हमारी बुद्धि कल्याणकारी बनती है। हे अग्निदेव ! हम आपकी मित्रता से सन्ताप रहित रहें ॥१॥

[मनीषा (विचार शक्ति) युक्त स्तोत्रों के माध्यम से अग्नि का आवाहन किया जाता है, इसलिये स्तुतियों को रथ कहा है। यज्ञाग्नि के संसर्ग से बुद्धि कल्याणकारी बनती है। मित्रभाव से यज्ञाग्नि के सान्निध्य से जीवन दुःख रहित बनता है]

१०४२. यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप जिस साधक की सहायता करते हैं, वह शक्ति से सम्पन्न होकर एवं शत्रुओं से निर्भय होकर निवास करता है। धन-बल से सम्पन्न वह प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है। आपकी मित्रता से हमें कभी कोई कष्ट न हो ॥२॥

१०४३. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु१ श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३॥

हे अग्निदेव ! आपको समिधाओं आदि से भली-भाँति प्रज्वलित कर हम देवताओं के लिए आहुतियाँ

प्रदान करते हैं । हवि ग्रहण करने हेतु देवो को बुलायें और हमारा यज्ञ भली-भाँति सम्पन्न करें । यहाँ हम उनके आगमन के लिए उत्सुक हैं । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता से हम कल्याण युक्त हों ॥३ ॥

१०४४. भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।

जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! प्रत्येक शुभ अवसर पर हम समिधाएँ एकत्र कर आपको प्रज्वलित करते हैं तथा आहुतियाँ प्रदान करते हैं । आप हमारे दीर्घायुष्य की कामना से यज्ञ को सफल करें । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट न पायें ॥४ ॥

१०४५. विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।

चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥५ ॥

इन अग्निदेव से उत्पन्न किरणें समस्त प्राणियों की रक्षा करती हुई विचरण करती हैं । इन अग्निदेव से रक्षित होकर दो पाये (मनुष्य) और चौपाये (पशु) भी विचरण करते हैं । हे अग्निदेव ! विलक्षण तेजों से युक्त होकर आप देवी उषा के सदृश महान् होते हैं । आपकी मित्रता से हम दुःखी न हों ॥५ ॥

१०४६. त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।

विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥६ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! आप अध्वर्यु और चिर पुरातन होता रूप हैं । आप प्रशासक, पोतारूप और प्रारम्भ से ही पुरोहित रूप हैं । आप ऋत्विजों और विद्वानों के सम्पूर्ण कर्मों को पुष्ट करने वाले हैं । आपकी मित्रता हमारे लिए कष्टकर न हो ॥६ ॥

१०४७. यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।

रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप अति उत्तम रूपवान् और सब ओर से दर्शनीय हैं । दूरस्थ होते हुए आप तड़ित् (विद्युत्) के समान अति दीप्तिमान् हैं । हे देव ! आप रात्रि के अंधकार को भी नष्ट कर प्रकाशित होते हैं । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट मे न रहें ॥७ ॥

१०४८. पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।

तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥८ ॥

हे देवो ! सोम-सवन करने वाले का रथ सदा अग्रणी हो । हमारे स्तोत्र पाप बुद्धि वाले दुष्टों का पराभव करें । आप हमारा निवेदन जानकर हमारे वचनों को पुष्ट करें । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता से हम कभी व्यथित न हों ॥८ ॥

१०४९. वधैर्दुः शंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।

अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप पाप बुद्धि वाले, दूरस्थ अथवा निकटस्थ दुष्टों और हिंसक शत्रुओं का, शस्त्रों से वध करें । तदनन्तर यज्ञ के स्तोता का मार्ग सुगम करें । हम आपकी मित्रता से कभी कष्ट न पायें ॥९ ॥

१०५०. यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रव: ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप तेजस्वी, रोहित वर्ण वाले, वायु के सदृश वेग वाले अश्वों को रथ में नियोजित करते हैं, तब गम्भीर ध्वनि उत्पन्न होती है । फिर वनों के सभी वृक्षों को आप धूम्र की पताका से ढक लेते हैं । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट न पायें ॥१० ॥

१०५१. अध स्वनादुत बिभ्यु: पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! जिस समय आपकी ज्वालाएं जंगल में फैलती हैं, तो आपके शब्द से पक्षी भयभीत हो उठते हैं । जब ये ज्वालाएँ तिनकों के समूह को जलाती हुई फैलती हैं, तब आपके अधीनस्थ रथ भी सुगमता पूर्वक गमन करते हैं । आपकी मित्रता में हम कभी पीड़ित न हों ॥११ ॥

१०५२. अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुत: ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मन: पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२ ॥

ये अग्निदेव मित्र और वरुण देवों को धारण करने में समर्थ हैं । उतरते हुए मरुतों का क्रोध भयंकर है । हे अग्निदेव ! इन मरुतों का मन हमारे लिये प्रसन्नता युक्त हो । हमें आप सुखी करें । आपकी मित्रता में हम कभी कष्ट न पायें ॥१२ ॥

१०५३. देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३ ॥

हे दिव्य अग्निदेव ! आप समस्त देवों के अद्भुत मित्र रूप हैं । आप यज्ञ में अति सुशोभित होने वाले और सम्पूर्ण धनों के परमधाम हैं । आपके व्यापक गृह में शरण लेकर हम संरक्षित हों । आपकी मित्रता में हम कभी पीड़ित न हों ॥१३ ॥

१०५४. तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तम: ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने स्थान (यज्ञ गृह) में प्रज्वलित होकर सोमयुक्त आहुतियों को ग्रहण करते हैं, और स्तोताओं को अत्युत्तम सुख प्रदान करते हैं । हविदाताओं को रत्नादि धन देने का आपका कार्य अति प्रशंसनीय है । आपकी मित्रता को प्राप्त होकर हम कभी पीड़ित न हों ॥१४ ॥

१०५५. यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५ ॥

हे सुन्दर ऐश्वर्यवान् अनन्त बलवान् अग्निदेव ! आप यज्ञों में जिस याजक को पाप-कर्मों से मुक्त करते हैं, तथा जिसे कल्याण, बल, वैभव के साथ पुत्र-पौत्रादि से युक्त करते हैं, उनमें हम भी शामिल हों ॥१५ ॥

१०५६. स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायु: प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ: ॥१६ ॥

हे दिव्य अग्निदेव ! सर्व सौभाग्य के ज्ञाता आप हमारी आयु में वृद्धि करें । मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, समुद्र और आकाश देव भी हमारी उस आयु की रक्षा करें ॥१६ ॥

[सूक्त -९५]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस । देवता-अग्नि अथवा औषस-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१०५७. द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१ ॥

भिन्न स्वरूप वाली, उत्तम प्रयोजनों में लगी हुई दो स्त्रियाँ (रात्रि और दिन रूप में) एक दूसरे के पुत्रों को पोषित करती हैं । एक का पुत्र हरि (रात्रि के गर्भ से उत्पन्न रसों का हरण करने वाला सूर्य) अन्य (दिन)के द्वारा पोषित होता है तथा दूसरी का पुत्र शुक्र (दिन में जाग्रत् तेजस्वी अग्नि) अन्य (रात्रि) के द्वारा पोषित होता है ॥१ ॥

१०५८. दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२ ॥

आलस्य रहित ये युवतियाँ (दस अंगुलियाँ) तेज के गर्भ रूप अग्निदेव को उत्पन्न करती हैं । ये भरण पोषण करने वाले, तीक्ष्ण मुखो (लपटों) वाले अपने यश से जनों में प्रकाशित अग्निदेव लोगों द्वारा चारों ओर ले जाये जाते हैं ॥२ ॥

१०५९. त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥३ ॥

इन अग्निदेव के तीन विशिष्ट रूप सर्वत्र विभूषित हैं । समुद्र में (बड़वानल रूप में)आकाश में (सूर्यरूप में) और अन्तरिक्ष में जलरूप में (जलों में विद्युत् रूप में), (सूर्यरूप) अग्नि ने ही ऋतु चक्र की व्यवस्था की है । पृथ्वी के प्राणियों की व्यवस्था के लिए पूर्वादि दिशाओं की स्थापना भी (सूर्यरूप) अग्नि ने ही की है ॥३ ॥

[सूर्य की क्रान्ति से ऋतुएँ बनती हैं । सूर्योदय को लक्ष्य करके ही दिशाएं निर्धारित होती हैं]

१०६०. क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥४ ॥

इन गुह्य अग्निदेव को कौन जानता है ? पुत्र होते हुए भी इनने अपनी माताओं को निज धारक सामर्थ्यों से प्रकट किया । निज-धारक सामर्थ्य से जलों के गर्भ में स्थित रहकर समुद्र में संचार करने वाले ये अग्निदेव कवि (क्रान्तदर्शी) हैं ॥४ ॥

[सूर्यदेव पूर्व दिशा से प्रकट होते हैं, किन्तु दिशाओं को उन्होंने ही स्वरूप दिया है । अग्निदेव काष्ठ अरणि से प्रकट होते हैं वही वनों की उत्पत्ति के कारण है ।]

१०६१. आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥५ ॥

जलों में प्रविष्ट हुए अग्निदेव यज्ञ के साथ प्रकाशित होकर बढ़ते हुए ऊपर उठते हैं । इनके उत्पन्न होने पर त्वष्टा देव की दोनों पुत्रियाँ (अग्नि उत्पादक काष्ठ या अरणियाँ) भयभीत होती हैं और सिंह रूप इन अग्निदेव की अनुचारिणी बनकर सेवा करती हैं ॥५ ॥

१०६२. उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥६ ॥

कल्याण करने वाली सुन्दर स्त्रियों के समान आकाश और पृथ्वी दोनों सूर्यरूप अग्निदेव की सेवा करती

हैं । रँभाने वाली गौओं की तरह ये अपनी चाल से इनके पास जाती हैं । ऋत्विग्गण दक्षिण की ओर मुख करके हवियों द्वारा अग्निदेव का यजन करते हैं । वे अग्निदेव बलवानों से भी अधिक बली हैं ॥६ ॥

१०६३. उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥७ ॥

अग्निदेव सवितादेव के समान अपनी भुजाओं रूपी रश्मियों को फैलाते हैं और विकराल होकर सिंचन करने वाली दोनों माताओं (द्यावा-पृथ्वी) को अलंकृत करते हैं । तदनन्तर प्रकाश का कवच हटाकर माताओं को नवीन वस्त्रों से आच्छादित कर देते हैं ॥७ ॥

[यज्ञाग्नि से उत्पन्न प्राण पर्जन्य प्रकाश रहित होता है और द्यावा-पृथिवी को पोषक आच्छादन प्रदान करता है ।]

१०६४. त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥८ ॥

ये मेधावी और ज्ञान सम्पन्न अग्निदेव अपने स्थान में गौ दुग्ध-घृत रूपी रसों से संयुक्त होकर उत्तरोत्तर तेजस्वी रूप को धारण करते हैं । वे मूल स्थान को परिशुद्ध कर दूर अन्तरिक्ष तक दिव्य तेजस्विता को विस्तृत कर देते हैं ॥८ ॥

१०६५. उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९ ॥

महाबली अग्निदेव का उज्ज्वल तेज अन्तरिक्ष के व्यापक स्थानों तक फैल गया है । हे अग्निदेव ! आप प्रदीप्त होकर सम्पूर्ण यशस्वी सामर्थ्यों और अटल रक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें ॥९ ॥

१०६६. धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१० ॥

ये अग्निदेव निर्जन स्थान में भी जल स्रोत फोड़कर मार्ग बनाते हैं । वर्षा करके पृथ्वी को जलों से पूर्ण कर देते हैं । सब अन्नों को प्राणियों के पेट में स्थापित करते हैं । ये नूतन वनस्पतियों-ओषधियों के गर्भ में शक्ति का संचार करते हैं ॥१० ।

१०६७. एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

हे पवित्र कर्ता अग्निदेव ! समिधाओं से संवर्धित होकर आप हमारे लिए धन देने वाले हों और अपने यश से प्रकाशित हों । हमारे इस निवेदन का मित्र, वरुण , अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक भी अनुमोदन करें ॥११ ॥

[सूक्त - ९६]

[**ऋषि**-कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- अग्नि अथवा द्रविणोदा- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१०६८. स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥१ ॥

बल (काष्ठों के बल पूर्वक घर्षण)से उत्पन्न अग्निदेव ने, पूर्व की भाँति सभी स्तुतियों को धारण किया । उन अग्निदेव ने जल समूह और पृथिवी को अपना मित्र बनाया । देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया ॥१ ॥

१०६९. स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२ ॥

उन अग्निदेव ने मनोयोग पूर्वक की गई प्राचीन स्तुति काव्यों से सन्तुष्ट होकर मनु की संतानों (प्रजाओं) को उत्पन्न किया । अपने तेजस्वी प्रकाश से सूर्य रूप में आकाश को और विद्युत् रूप में अन्तरिक्ष के जलों को व्याप्त किया । देवों ने धन प्रदाता अग्निदेव को दूत-रूप में धारण किया ॥२ ॥

१०७०. तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥३ ॥

हे बुद्धि सम्पन्न प्रजाजनो ! आप उन देवयज्ञ के साधक, आहुति प्रिय, इच्छित फल प्रदायक, बलोत्पन्न (अरणि मन्थन से प्रकट) भरण पोषण करने वाले , उत्तम दानशील अग्निदेव की सर्वप्रथम स्तुति करें । देवों ने ऐसे धन प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया है ॥३ ॥

१०७१. स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४ ॥

वे मातरिश्वा अग्निदेव विविध प्रकार से पुष्टि प्रदायक, आत्म प्रकाश के ज्ञाता, प्रजारक्षक, पृथ्वी और आकाश के उत्पादक हैं । उन्होंने अपनी सन्तानों की प्रगति के उत्तम मार्ग ढूँढ निकाले हैं । देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया है ॥४ ॥

१०७२. नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५ ॥

रात्रि और उषा एक दूसरे के वर्ण के अस्तित्व को नष्ट करने वाली स्त्रियाँ हैं, जो एक स्थान पर रहकर एक ही शिशु (अग्नि)को पालती हैं । ये प्रकाशक अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के मध्य विशेष रूप से प्रतिभासित होते हैं, देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को दूत रूप में धारण किया है ॥५ ॥

१०७३. रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥६ ॥

धन वैभव के मूल आधार ये अग्नि देव ऐश्वर्यों से युक्त करने वाले, यज्ञ की सूचक ध्वजा के समान तथा मनुष्य के निमित्त इष्टफल प्रदायक हैं । अमरत्व के रक्षक देवों ने ऐसे अग्निदेव को धारण किया है ॥६ ॥

१०७४. नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥७ ॥

ये अग्निदेव वर्तमान और पूर्व की सम्पदाओं के आधार हैं । जो उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वालों के आश्रय स्थान हैं । जो उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वालों के आश्रय स्थान हैं । जो विद्यमान और उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों के संरक्षक हैं । देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को धारण किया है ॥७ ॥

१०७५. द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥८ ॥

धन-प्रदाता अग्निदेव हमारे उपयोग के लिए जंगम ऐश्वर्य साधन (गवादि धन) और स्थावर ऐश्वर्य साधन (वानस्पतिक पदार्थ) भी दें वे सन्तान युक्त धन सम्पदा और दीर्घ आयु भी प्रदान करें ॥ ८ ॥

१०७६. एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९ ॥

हे पवित्रकर्मा अग्निदेव ! समिधाओं से सम्वर्धित होकर आप हमें धन देते हुए अपने यश से प्रकाशित हों । हमारे इस निवेदन का मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और द्युलोक भी अनुमोदन करें ॥९ ॥

[सूक्त - ९७]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस । देवता- अग्नि अथवा शुचि अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

१०७७. अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् । अप नः शोशुचदघम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे पापों को भस्म करें । हमारे चारों ओर ऐश्वर्य को प्रकाशित करें । हमारे पापों को विनष्ट करें ॥१ ॥

१०७८. सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे । अप नः शोशुचदघम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! उत्तम क्षेत्र, उत्तम मार्ग और उत्तम धन की इच्छा से हम आपका यजन करते हैं । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥२ ॥

१०७९. प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः । अप नः शोशुचदघम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हम सभी साधक वीरता और बुद्धि पूर्वक आपकी विशिष्ट प्रकार से भक्ति करते हैं । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥३ ॥

१०८०. प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् । अप नः शोशुचदघम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हम सभी और ये विद्वद्गण आपकी उपासना से आपके सदृश प्रकाशवान् हुए हैं, अतः आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४ ॥

१०८१. प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः । अप नः शोशुचदघम् ॥५ ॥

इन बल सम्पन्न अग्निदेव की देदीप्यमान किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, ऐसे वे अग्निदेव हमारे पापों को विनष्ट करें ॥५ ॥

१०८२. त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥६ ॥

हे सर्वतोमुखी अग्निदेव ! आप निश्चय ही सभी ओर व्याप्त होने वाले हैं, आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥६ ॥

१०८३. द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय । अप नः शोशुचदघम् ॥७ ॥

हे सर्वतोमुखी अग्निदेव ! आप नौका के सदृश सभी शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥७ ॥

१०८४. स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये । अप नः शोशुचदघम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप नौका द्वारा नदी के पार ले जाने के समान हिंसक शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ । आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥८ ॥

[सूक्त - ९८]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस । देवता - अग्नि अथवा वैश्वानर- अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

१०८५. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।

इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥१ ॥

हम वैश्वानर अग्निदेव की प्रसन्नता बढ़ाने वाले हों । वे ही सम्पूर्ण लोकों के पोषक और सबके द्रष्टा हैं । राजा के सदृश सामर्थ्यवान् ये वैश्वानर अग्निदेव सूर्य के समान ही यत्न करते हैं ॥१ ॥

१०८६. पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।

वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२ ॥

ये वैश्वानर अग्निदेव द्युलोक और पृथ्वी लोक में प्रशंसनीय हैं । ये सम्पूर्ण ओषधियों में व्याप्त होकर प्रशंसा के पात्र हैं । बलों के कारण प्रशंसनीय ये अग्निदेव दिन और रात्रि में हिंसक प्राणियों से हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

१०८७. वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! आपका कार्य सत्य हो । हे ऐश्वर्यवान् ! हमें धन युक्त ऐश्वर्य से अभिपूरित करें । हमारे इस निवेदन का मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ आदि देव अनुमोदन करें ॥३ ॥

[सूक्त - ९९]

[ऋषि-काश्यप मारीच । देवता-अग्नि अथवा-जातवेद अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१०८८. जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१ ॥

हम सर्वज्ञ अग्निदेव के लिए सोम - सवन करें । वे अग्निदेव हमारे शत्रुओं के सभी धनों को भस्मीभूत करें । नाव द्वारा नदी से पार कराने के समान वे अग्निदेव हमें सम्पूर्ण दुःखों से पार लगाएँ और पापों से रक्षित करें ॥१ ॥

[सूक्त - १००]

[ऋषि- वार्षागिर, ऋज्राश्वाम्बरीष, सहदेव, भयमान, सुराधस । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१०८९. स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।

सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१ ॥

जो बलशाली इन्द्रदेव बलवर्धक साधनों से संयुक्त रहने वाले, महान् आकाश और पृथ्वी के स्वामी हैं, जो जलों को प्राप्त कराने वाले, संग्राम में आवाहन के योग्य हैं, वे इन्द्रदेव मरुद्‌गणों सहित हमारे रक्षक हों ॥१ ॥

१०९०. यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥२ ॥

सूर्य की गति के समान दुर्लभ गति वाले वृत्रनाशक इन्द्रदेव प्रत्येक संग्राम में शत्रुओं को प्रकम्पित करने वाले हैं। ये मित्र रूप आक्रामक मरुतों के साथ मिलकर अतीव बलशाली हैं। ये इन्द्रदेव मरुद्गणों सहित हमारे रक्षक हों ॥२ ॥

१०९१. दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३ ॥

इन इन्द्रदेव के निर्विघ्न मार्ग सूर्य किरणों के सदृश अन्तरिक्ष के जलों का दोहन करने वाले हैं। ये अपने पराक्रम से द्वेषियों का नाश करने वाले, शत्रुओं का पराभव करने वाले और बलपूर्वक आगे-आगे गमन करने वाले हैं, ये इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥३ ॥

१०९२. सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव अंगिरा ऋषियों में अतिशय पूज्य, मित्रों में श्रेष्ठ मित्र, बलवानों में अतीव बलवान्, ज्ञानियों में अतिज्ञान सम्पन्न और सामादिगान करने वालों में वरिष्ठ हैं। वे इन्द्रदेव मदरुद्गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥४ ॥

१०९३. स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥५ ॥

महान् इन्द्रदेव ने पुत्रों के समान प्रिय सहायक मरुतों के साथ मिलकर शत्रुओं को पराजित किया। साथ रहने वाले मरुद्गणों के साथ मिलकर आपने अन्नों की वृद्धि के निमित जलों को नीचे प्रवाहित किया। वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥५ ॥

१०९४. स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६ ॥

शत्रुओं के प्रति मन्यु (क्रोध) प्रदर्शित करने वाले, हर्ष युक्त होकर युद्ध में प्रवृत्त रहने वाले, सत्प्रवृत्तियों के पालक, बहुतों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव आज के दिन हमारे वीरों को लेकर वृत्र का नाश करें। सूर्य देव को प्रकट करें। वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ मिलकर हमारे रक्षक हों ॥६ ॥

१०९५. तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥७ ॥

सहायक मरुतों ने इन्द्रदेव को युद्ध में उत्तेजित किया। प्रजाओं ने अपनी रक्षा के निमित्त उन वीर मरुद्गणों को रक्षक बनाया। वे इन्द्रदेव अकेले ही सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों के नियन्ता हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

१०९६. तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८ ॥

बलशाली वीरों द्वारा युद्धों में उन श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव को धन और रक्षा के निमित्त बुलाया जाता

है। उन इन्द्रदेव ने गहन तमिस्रा में भी प्रकाश को प्राप्त किया। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

१०९७. स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९ ॥

वे इन्द्रदेव बायें हाथ से हिंसक शत्रुओं को रोकते हैं और दाँयें हाथ से याजकों की हवियों को ग्रहण करते हैं। वे स्तुतियों से प्रसन्न होकर उन्हें धन देते हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्‌गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥९ ॥

१०९८. स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१० ॥

वे इन्द्रदेव मरुतों के सहयोग से रथों द्वारा धनों को देने वाले हैं, ऐसा सम्पूर्ण प्रजाजन जानते हैं। वे इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्यों से निन्दनीय शत्रुओं का पराभव करने वाले हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्‌गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१० ॥

१०९९. स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११ ॥

बहुतों के द्वारा बुलाये जाने वाले वे इन्द्रदेव जब बन्धु अथवा अबन्धु वीरों के साथ युद्ध में जाते हैं, तो वे उनके पुत्र-पौत्रादि की विजय के लिए यत्नशील रहते हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्‌गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥११ ॥

११००. स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२ ॥

वे वज्रधारी, दुष्ट नाशक, विकराल, पराक्रमी, सहस्र ज्ञान की धाराओं से युक्त, शतनीति युक्त, प्रकाशवान्, सोम के सदृश पूज्य इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य से पाँचजन्य (पाँचों प्रकार के मनुष्यों) के हितकारी हैं। ऐसे वे देव इन्द्र मरुद्‌गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१२ ॥

११०१. तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३ ॥

उन इन्द्रदेव का वज्र बहुत तीव्र गर्जना करता है। वह द्युलोक के सूर्यदेव की भाँति तेजस्विता सम्पन्न है। स्तोताओं की स्तुतियों से वे उन्हें उत्तम सुख और उत्तम धनादि दान देकर सन्तुष्ट करते हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१३ ॥

११०२. यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४ ॥

उन इन्द्रदेव का प्रशंसनीय बल आकाश और पृथिवी दोनों लोकों का सभी ओर से निरन्तर पोषण कर रहा है। वे हमारे यज्ञादि कर्मों से हर्षित होकर हमें दुःखों से दूर करें। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१४ ॥

११०३. न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।

स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१५ ॥

जिन इन्द्रदेव के बल का अन्त दान-प्रवृत्ति वाले देवगण, मनुष्य तथा जल भी नहीं पा सकते, वे इन्द्रदेव अपनी तेजस्वी सामर्थ्य से पृथ्वी और द्युलोक से भी महान् हैं । ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१५ ॥

११०४. रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।

वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६ ॥

रोहित और श्यामवर्ण के अश्व उत्तम तेजस्वी आभूषणों से सुशोभित इन्द्रदेव के रथ में नियोजित होकर प्रसन्नता पूर्वक गर्जना करते हुए चलते हैं । इन्द्रदेव 'ऋज्राश्व' को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । मानवी प्रजा भी धन के निमित्त निवेदन करती हुई दिखाई दे रही है ॥१६ ॥

११०५. एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।

ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! समीपस्थ ऋषियों के साथ 'ऋज्राश्व' अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस् ये सब वृषागिर् के पुत्र आप जैसे सामर्थ्यवान् के लिए प्रसिद्ध स्तोत्रों का गायन करते हैं ॥१७ ॥

११०६. दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।

सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८ ॥

बहुतों द्वारा बुलाये जाने पर इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुद्गणों के साथ मिलकर पृथ्वी के ऊपर दुष्टों और हिंसक शत्रुओं पर तीक्ष्ण वज्र से प्रहार करके उन्हें जड़ विहीन किया, तब उस उत्तम वज्रधारी ने श्वेत वस्त्रों और अलंकारों से विभूषित मरुद्गणों के साथ भूमि प्राप्त की । जल समूह को प्राप्त किया और सूर्य भी प्राप्त किया ॥१८ ॥

११०७. विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९ ॥

इन्द्रदेव प्रत्येक दिन हमारे लिए प्रेरक उपदेशक हों । कपट तजकर हम उन्हें अन्नादि अर्पित करें । मित्र वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्यौ हमारे इस निवेदन का अनुमोदन करें ॥१९ ॥

[सूक्त - १०१]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस । देवता- इन्द्र (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्) छन्द-जगती; ८-११ त्रिष्टुप् ।]

११०८. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१ ॥

हे ऋत्विग्गण ! श्रेष्ठ इन्द्रदेव की, हविष्यान्न देकर अर्चना करो । 'ऋजिश्व' * की सहायता से , कृष्णासुर की गर्भिणी स्त्रियों के साथ उसका वध करने वाले, दायें हाथ में वज्र धारण करने वाले, मरुद्गणों की सेना के साथ विद्यमान रहने वाले, शक्ति सम्पन्न, उन इन्द्रदेव का अपने संरक्षण की कामना करने वाले हम यजमान मित्रभाव से आवाहन करते हैं ॥१ ॥

[*राजा वृषागिर् के पुत्र एवं कहीं पर विदथिन् के पुत्र के रूप में इनकी गणना की गई है। सायण के अनुसार ये राजा या राजर्षि हैं। पिप्रु दानव तथा कृष्णगर्भा के विरुद्ध इन्द्रदेव की सहायता करने के कारण इन्हें इन्द्रदेव का सहायक भी माना गया है]

११०९. यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

जिन इन्द्रदेव ने सर्वप्रथम वृत्रासुर के कंधों को काटा, पश्चात् धर्म नियमों से विहीन पिप्रु का हनन किया। प्रजा के शोषक शम्बर और शुष्ण दोनों दैत्यों का वध किया, इस प्रकार सभी दैत्यों के नाशक वे इन्द्रदेव हैं। मित्रता के लिए मरुत् के सहयोगी ऐसे इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं ॥२॥

१११०. यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

जिनकी सामर्थ्यशक्ति से स्वर्गलोक, भूलोक, वरुण, सूर्य और सरिताएँ अपने-अपने व्रत नियमों में आरूढ़ हैं। मरुतों से युक्त ऐसे इन्द्रदेव को मैत्रीभाव की दृढ़ता हेतु आवाहित करते हैं ॥३॥

११११. यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४॥

जो इन्द्रदेव गौओं और अश्वों के पालक (स्वामी) हैं, सभी को अपने नियन्त्रण में रखकर प्रत्येक कार्य (कर्तव्य निर्वाह) में सुस्थिर रहकर प्रशंसित होते हैं। जो इन्द्रदेव विधि पूर्वक सोमयुक्त यज्ञीय कर्म से रहित शत्रुओं के नाशक हैं, ऐसे मरुद्युक्त इन्द्रदेव को मित्रता के लिए आवाहित करते हैं ॥४॥

१११२. यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५॥

विश्वाधिपति इन्द्रदेव जो सम्पूर्ण गतिमान् प्राणधारियों के स्वामी हैं, जिन्होंने ब्रह्मपरायण ज्ञानवानों को सर्वप्रथम गौएँ उपलब्ध करायीं, जिन्होंने अपने नीचे दुष्टों का दलन किया, ऐसे मरुद्युक्त इन्द्रदेव की मैत्री की स्थिरता हेतु हम उनका आवाहन करते हैं ॥५॥

१११३. यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥६॥

जो इन्द्रदेव शूरवीरों और भीरु मानवों, दोनों के द्वारा सहयोग हेतु आवाहित किए जाते हैं, जो संग्राम विजेताओं और पलायनकर्ताओं द्वारा भी बुलाये जाते हैं तथा सम्पूर्ण लोक जिनकी पराक्रम शक्ति के आश्रित हैं, ऐसे मरुतों से युक्त इन्द्रदेव को हम मैत्री के लिए आमंत्रित करते हैं ॥६॥

१११४. रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥७॥

जो विवेक सम्पन्न (बुद्धिमान्) इन्द्रदेव रुद्रपुत्र मरुतों की दिशा का अनुगमन करते हैं; मरुतों और देवी उषा के सामंजस्य से अपने विस्तृत प्रसिद्ध तेज को और अधिक विस्तारित करते हैं तथा जिन प्रख्यात इन्द्रदेव की अर्चना मनुष्यों की मेधा सम्पन्न प्रखर वाणी करती है; ऐसे मरुतों से संयुक्त इन्द्रदेव को मित्रता वृद्धि के लिए आमंत्रित करते हैं ॥७॥

११११५. यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥८ ॥

हे मरुतों से युक्त इन्द्रदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ दिव्य लोक अथवा अधर स्थित अन्तरिक्ष लोक में जहाँ कहीं भी आनन्द युक्त हों, हमारे इस यज्ञस्थल पर अतिशीघ्र पधारें । हे श्रेष्ठ ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपकी कृपा के आकांक्षी हम आपके निमित्त यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१११६. त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अथा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९ ॥

दक्षता सम्पन्न हे श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! आपके निमित्त ही हम सोम निष्पादित करते हैं । हे स्तोत्रों द्वारा प्राप्त होने योग्य इन्द्रदेव ! आपके लिए ही हम हवि प्रदान करते हैं । हे अश्वों से युक्त इन्द्रदेव ! मरुद्गणों सहित इस यज्ञ में आकर विराजमान हों और सोमपान से आनन्दित हों ॥९ ॥

१११७. मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! अश्वों के साथ प्रसन्नता को प्राप्त करें, अपने जबड़ों को खोलकर सुखद ध्वनि करें । हे श्रेष्ठ शिरस्त्राण धारण करने वाले इन्द्रदेव ! रथ खींचने वाले घोड़े आपको हमारे समीप ले आयें । अभीष्ट पूरक इन्द्रदेव आप हमारी आहुतियों को प्रेम पूर्वक ग्रहण करें ॥१० ॥

१११८. मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

मरुद्गणों की स्तुतियों से प्रशंसित, शत्रु संहारक इन्द्रदेव द्वारा संरक्षित हमें उनके (इन्द्रदेव के) सहयोग से अन्न की प्राप्ति हो । अतएव मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी हमें सहयोग प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त -१०२]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती, ११-त्रिष्टुप् ।]

१११९. इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्नु ॥१ ॥

हे महान् यशस्वी इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करके उन्नति को प्राप्त करने वाले हैं । हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । उत्साही देवगण अपने धनों की वृद्धि व रक्षा के लिए आपको प्रसन्न करते हैं ॥१ ॥

११२०. अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२ ॥

इन इन्द्रदेव के कर्तृत्व (जल वर्षण) की कीर्ति को सप्तसरितायें (नदियाँ) तथा मनोहारी रूप को पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक धारण करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी तेजस्विता से प्रकाशित होकर सूर्यदेव और चन्द्रमा प्राणिमात्र को श्रद्धा युक्त ज्ञान एवं आलोक देने के लिए नियमपूर्वक गतिमान होते हैं ॥२ ॥

११२१. तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३॥

हे वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमारी विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाओं से प्रसन्न हों। आपके जिस विजयी रथ को सेना के साथ, होने वाले संग्राम में देखकर हम आनन्दित होते हैं, उसी रथ को हमारी विजय के लिए प्रेरित करें। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप हमें सुख प्रदान करें ॥३॥

११२२. वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४॥

हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आपके सहयोग से हम घिरे हुए शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें। आप प्रत्येक संग्राम में हमारे पक्ष की सुरक्षा करें, आप हमारे शत्रुओं की सामर्थ्य को क्षीण करें, जिससे हम प्राप्त धन का निर्विघ्न होकर उपभोग करने में समर्थ हों ॥४॥

११२३. नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥५॥

धन को धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके आवाहनकर्त्ता और स्तोता अनेक मनुष्य हैं। अतएव आप सम्पत्ति प्रदान करने के लिए मात्र हमारे ही रथ पर आकर विराजमान हों। स्थिरतायुक्त आपका मन हमें विजयी बनाने में पूर्ण सक्षम हो ॥५॥

११२४. गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६॥

बलवान् इन्द्रदेव की भुजाएँ गौओं को जीतने में सक्षम हैं। वे श्रेष्ठ इन्द्रदेव प्रत्येक कर्म में संरक्षण साधनों से सम्पन्न हैं। वे अतुलित शक्ति सामर्थ्ययुक्त, संघर्षशील, अद्वितीय पराक्रम की प्रतिमूर्ति हैं। इसलिए धन की कामना से मनुष्य उनका आवाहन करते हैं ॥६॥

११२५. उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! मनुष्यों में आपकी कीर्ति सैकड़ों और हजारों रूपों से भी बढ़कर है। मनुष्यों की बृहत् प्रार्थनाएँ, अतुलित शक्तिशाली इन्द्रदेव की महिमा को प्रकट करती हैं। अभेद्य दुर्गों को तोड़ने में समर्थ हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रों (शत्रुओं) का हनन करने में समर्थ हैं ॥७॥

११२६. त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥८॥

हे मनुष्यों के सरक्षक इन्द्रदेव ! आप तीनों लोकों में तीन रूपों सूर्य, अग्नि और विद्युत् में स्थित हैं, आप अपनी शक्ति सामर्थ्य से तीन भूमियों, तीन तेजों तथा इन सम्पूर्ण लोकों को संचालित कर रहे हैं। आप प्राचीन काल से (जन्म के समय से) ही शत्रुरहित हैं ॥८॥

११२७. त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आप देवों में सर्वश्रेष्ठ - प्रधान रूप हैं, हम आपका आह्वान करते हैं। आप युद्धों में शत्रुओं

को पराजित करने वाले हैं, अति क्रोध युक्त शत्रुओं को भी पीछे धकेलने वाले इस कलापूर्ण रथ को आप सदैव आगे रखें ॥९ ॥

११२८. त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१० ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने पर, धनों को अपने तक सीमित नहीं रखते, (अर्थात् संग्रह नहीं करते , सत्पात्रों को बाँट देते हैं ।) छोटे और विशाल युद्धों में अपने संरक्षण हेतु योद्धागण इन्द्रदेव को ही बुलाते हैं । अतएव आप हमें उचित मार्गदर्शन प्रदान करें ॥१० ॥

११२९. विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सदैव हमारे पक्ष के अधिवक्ता हैं । हम भी द्वेष पूर्ण व्यवहार से रहित होकर अन्नादि प्राप्त करें, इसलिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी हमें वैभव सम्पदा प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त -१०३]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

११३०. तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी उस पराक्रम शक्ति को क्रांतदर्शी ज्ञानवानों ने प्राचीनकाल से ही शत्रुओं को पराजित करने वाले कर्मों के रूप में धारण किया था । आपकी दो-प्रकार की शक्तिधाराएँ हैं- एक धारा तो भूलोक में अग्नि रूप में है और दूसरी स्वर्गलोक में सूर्य प्रकाश के रूप में है । युद्ध स्थल पर उल्टी दिशाओं से आती हुई दो पताकाओं की तरह ये दोनों शक्तिधाराएँ अन्तरिक्ष लोक में परस्पर संयुक्त होती हैं ॥१ ॥

११३१. स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥२ ॥

उन इन्द्रदेव ने पृथ्वी को धारण करके उसका विस्तार किया । वज्र रूपी तीक्ष्ण शक्तिधाराओं से नदी के प्रवाह को अवरुद्ध किये हुए अहि, रौहिण और व्यंसादि दैत्यों का संहार किया, जिससे पुनः अवरुद्ध जलधाराएँ प्रवाहित हुईं ॥२ ॥

११३२. स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥३ ॥

विद्युत् के समान तीक्ष्ण धारवाले आयुधों से युक्त होकर, इन्द्रदेव आत्म-विश्वास के साथ आक्रमण द्वारा दस्युओं के नगरों को ध्वस्त करते हैं, तथा निर्विघ्न होकर विचरण करते हैं । हे ज्ञान सम्पन्न वज्रधारी इन्द्रदेव ! इस स्तोता के शत्रुओं पर भी आयुध फेंकें और आर्यों के बल तथा कीर्ति को बढ़ायें ॥३ ॥

११३३. तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥४ ॥

शक्ति पुत्र, वज्रधारी इन्द्रदेव ने शत्रु के संहार के लिए आगे बढ़कर जो नाम कमाया, उस प्रशंसनीय 'मघवा' नाम को उन्होंने युगों तक मनुष्यों के लिए धारण किया ॥४ ॥

११३४. तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५ ॥

उन इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से गौओं, अश्वों, ओषधियों, जलों और वनों को प्राप्त किया । अतः हे मनुष्यो ! आप इन्द्रदेव के इन अत्यन्त पराक्रमपूर्ण कार्यों को देखें और उनकी अद्भुत शक्ति के प्रति आत्मविश्वास जगायें ॥५ ॥

११३५. भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥६ ॥

जो शक्तिशाली इन्द्रदेव लालची दुष्टों, लुटेरों द्वारा एकत्रित किये गये धनों का तथा यज्ञीय कर्मों से रहित राक्षसी वृत्ति से युक्त दैत्यों के धनों का हस्तान्तरण करके ज्ञानियों को सम्मानित करते हैं, अर्थात् दुष्ट जनों से प्राप्त धन को श्रेष्ठ जनों में वितरित कर देते हैं, ऐसे श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करने वाले महान् दाता और सत्यबल सम्पन्न इन्द्रदेव के लिए हम सोम तैयार करें ॥६ ॥

११३६. तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सोते हुए वृत्र को वज्र के प्रहार से जगाया अर्थात् पराभूत किया । वस्तुतः यह आपका परमशौर्य है । ऐसे में आपको आनन्दित देखकर सभी देवताओं ने अपनी पत्नियों के साथ अतिहर्ष अनुभव किया ॥७ ॥

११३७. शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र का हनन किया और शम्बरासुर के गढ़ों को धूलिधूसरित किया (तोड़ा) तो मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और दिव्यलोक हमारे उत्साह को भी संवर्धित करें ॥८ ॥

[सूक्त - १०४]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

११३८. योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमने आपके लिए श्रेष्ठ स्थान निर्धारित किया है । रथ वाहक अश्वों को उनके बन्धनों से मुक्त करके, हिनहिनाते हुए घोड़ों के साथ रात-दिन चलकर यज्ञस्थल में निर्धारित आसन पर विराजमान हों ॥१ ॥

११३९. ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥२ ॥

सुरक्षा की भावना से प्रेरित होकर अपने समीप आये हुए मनुष्यों को इन्द्रदेव ने शीघ्र ही श्रेष्ठ मार्गदर्शन दिया । देवशक्तियाँ दुष्कर्मियों की क्रोध भावना को समाप्त करें । वे यज्ञीय कार्य के निमित्त वरण करने योग्य

इन्द्रदेव को हमारे यज्ञ स्थल में आने की प्रेरणा दें ॥२ ॥

११४०. अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३ ॥

कुयव राक्षस (कुधान्य-हीन संस्कार युक्त अन्न खाने से उत्पन्न बल) धन का मर्म समझकर अपने लिए ही उसका अपहरण करता है । फेनयुक्त जल (प्रवाहमान रसों) को भी अपने हीन उद्देश्यों के लिए रोकता है । ऐसे कुयव राक्षस की दोनों पत्नियाँ (विचार शक्ति एवं कार्य शक्ति) शिफा नाम की नदी की धार अथवा (कोड़ो की मार) से मर जायें ॥३ ॥

११४१. युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥४ ॥

इस कुयव राक्षस (कुधान्य से उत्पन्न प्रवृत्ति) की शक्ति जल की नाभि (रसानुभूति) में छिपी है । अपहृत जल (शोषण से मिलने वाले सुख) से यह वीर तेजस्वी बनता है । अञ्जसी (गुणवती) तथा कुलिशी (शस्त्र सम्पन्न) इसकी दोनों वीर पत्नियाँ (विचार और कार्यशक्ति) जलों (सुखकर प्रवाहों) से भरती—तृप्त करती रहती हैं ॥४ ॥

११४२. प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव !जैसे गौएँ अपने मार्ग से परिचित रहती हुई अपने गोष्ठ में पहुँच जाती हैं, वैसे ही दुष्टों (दुष्ट - प्रवृत्तियों) ने हमारे आवास को जान लिया, अतएव हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! राक्षसी उपद्रवों से हमारी सुरक्षा करें । जिस प्रकार व्यभिचारी पुरुष धन का अपव्यय करता है, उसी प्रकार आप हमें त्याग न दें ॥५ ॥

११४३. स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए सूर्यप्रकाश और जल उपलब्ध करायें । हम इन दोनों पदार्थों से कभी पृथक् न रहें । सम्पूर्ण प्राणियों के लिए कल्याणकारी पाप रहित मार्ग का हम सदैव अनुसरण करें । आप हमारी गर्भस्थ संतान को पीड़ित न करें । हमें आपकी सामर्थ्य-शक्ति पर पूर्ण विश्वास है ॥६ ॥

११४४. अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७ ॥

हे शक्ति सम्पन्न, अति स्तुत्य इन्द्रदेव ! हम आपके प्रति सम्मानास्पद भावना रखते हैं । आपके इस बल के प्रति हम श्रद्धावान् हैं । हमें आप वैभव प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान करें । हमें कभी ऐसे स्थानों पर न रखें जो धनों से रहित हों । अतः ऐश्वर्य सम्पन्न होकर भूख प्यास से पीड़ित लोगों को खाद्य और पेय प्रदान करें ॥७ ॥

११४५. मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८ ॥

हे ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्व समर्थ इन्द्रदेव ! आप हमारी हिंसा न करें और न हमारा त्याग करें । हमारे आहार के लिए उपयुक्त एवं प्रिय पदार्थों को विनष्ट न करें, हमारी गर्भस्थ संततियों को विनष्ट न करें तथा छोटे शिशुओं को भी अकाल मृत्यु से बचायें ॥८ ॥

११४६. अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥९ ॥

हे सोमाभिलाषी इन्द्रदेव ! आप हमारे सम्मुख प्रस्तुत हों, यह निष्पादित सोम आपके निमित्त है, इसे आनन्दपूर्वक सेवन करके स्वयं को तृप्त करें तथा आवाहन किये जाने पर हमारी प्रार्थनाओं को पिता के समान ही सुनने की कृपा करें ॥९ ॥

[सूक्त - १०५]

[ऋषि- त्रित आप्त्य अथवा कुत्स आङ्गिरस । देवता- विश्वेदेवा । छन्द -त्रिष्टुप् ।]

११४७. चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१ ॥

अन्तरिक्ष में चन्द्रमा तथा द्युलोक में सूर्य दौड़ रहे हैं। (हे विज्ञपुरुषो !) तुम्हारा स्तर सुनहरी धार वाली विद्युत् को जानने योग्य नहीं है। हे द्युलोक एवं भूलोक ! आप हमारे भावों को समझें। (हमें उनका बोध करने की सामर्थ्य प्रदान करें) ॥१ ॥

[(क) वेद ने अन्तरिक्ष को अप्सुअन्तः, जल क्षेत्र का अंत कहा है। वर्तमान विज्ञान के अनुसार पृथ्वी के वायु मण्डल की सीमा तक जलवाष्प है, उसी के कारण आकाश नीला दिखता है। वायुमण्डल के बाहर निकलने पर आकाश नीला नहीं दिखता है। पृथ्वी का प्रभाव क्षेत्र वायुमण्डल तक ही है, उसके बाद अन्तरिक्ष प्रारम्भ होता है। इसीलिए अन्तरिक्ष को अप्सुअन्तः कहा गया है। (ख) चन्द्रमा अन्तरिक्ष में है तथा सूर्य उससे ऊपर द्युलोक में है, यह तथ्य ऋषि देखते रहे हैं। (ग) द्युलोक एवं पृथ्वी से प्रार्थना की गयी है कि जिन सूक्ष्म प्रवाहों को हम नहीं जान पाते, उनका भी लाभ हमें प्रदान करें।]

११४८. अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम्।

तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२ ॥

उद्देश्य पूर्ण कार्य करने वाले अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लेते हैं। पत्नी उपयुक्त पति को पा लेती है। दोनों मिलकर (उद्देश्य पूर्वक) संतान प्राप्त कर लेते हैं। हे द्युलोक एवं पृथिवी देवि ! आप हमारी भावना समझें (हमारे लिए उत्कृष्ट उत्पादन बढ़ाएँ) ॥२ ॥

११४९. मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि।

मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥३ ॥

हे देवगण ! हमारी तेजस्विता कभी भी स्वर्गलोक से निम्नगामी न हो अर्थात् हमारा लक्ष्य सदा ऊँचा हो। आनन्द प्रदायक सोम से रहित स्थान पर कभी भी हमारा निवास न रहे। हे द्युलोक और भूलोक ! आप हमारी इस प्रार्थना के अभिप्राय को समझें ॥३ ॥

११५०. यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति।

क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥४ ॥

हम समुपस्थित यज्ञाग्नि से प्रश्न करते हैं, वे देवदूत अग्निदेव उत्तर दें, कि प्राचीन सरलभाव रूपी शाश्वत नियमों का कहाँ लोप हो गया ? नवीन पुरुष कौन उन प्राचीन नियमों का निर्वाह करते हैं ? हे पृथिवि और द्युलोक ! हमारी इस महत्वपूर्ण जिज्ञासा को जानें और शान्त करें ॥४ ॥

११५१. अमी ये देवा: स्थन त्रिष्वा रोचने दिव: ।

कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५ ॥

हे देवो ! तीनों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक) में से आपका वास द्युलोक में है । आपका ऋत वास्तविक रूप क्या है ? अनृत (माया युक्त) रूप कहाँ है ? आपने प्रारंभ में (सृजन यज्ञ में) जो आहुति डाली, वह कहाँ है ? द्युलोक एवं पृथ्वी हमारे भावों को समझें (और पूर्ति करें) ॥५ ॥

११५२. कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।

कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६ ॥

आपके श्रेष्ठ सत्य का निर्वाह करने वाले नियम कहाँ है ? वरुण की व्यवस्थादृष्टि कहाँ है ? सर्वश्रेष्ठ अर्यमा के मार्ग कौन-कौन से हैं ? जिससे हम दुष्टजनों से राहत पा सकें । हे द्युलोक और पृथिवि ! हमारी इस जिज्ञासा के अभिप्राय को समझें ॥६ ॥

११५३. अहं सो अस्मि य: पुरा सुते वदामि कानि चित् ।

तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७ ॥

पिछले यज्ञ में सोमनिष्पादन काल में स्तोत्रों का पाठ हमने किया था, लेकिन अब मानसिक व्यथाएँ भेड़िये द्वारा प्यासे हरिण को खाये जाने के समान हों, हमें व्यथित किये हुए हैं । हे द्यावापृथिवी देवि ! हमारी इन व्यथाओं को समझें और दूर करें ॥७ ॥

११५४. सं मा तपन्त्यभित: सपत्नीरिव पर्शव: ।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्य: स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८ ॥

दो सौतों (पत्नियों) की तरह हमारे पार्श्व (बाजू) में रहने वाली कामनाएँ हमें सता रही हैं । हे शतक्रतो ! जिस प्रकार चूहे माड़ी लगे धागों को खा जाते हैं, वैसे ही आपकी स्तुति करने वालों को भी मन की पीड़ाएँ सता रही हैं । हे द्यावापृथिवी देवि ! हमारी इन व्यथाओं को समझें और दूर करें ॥८ ॥

११५५. अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।

त्रितस्तद्वेदाप्त्य: स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९ ॥

ये सात रंगो वाली सूर्य की किरणें जहाँ तक हैं, वहाँ तक हमारा नाभि क्षेत्र (पैतृक प्रभाव) फैला है । इसका ज्ञान जल के पुत्र 'त्रित' को है । अतएव प्रीतियुक्त मैत्री भाव हेतु हम प्रार्थना करते हैं । हे द्यावापृथिवि! आप हमारी इन प्रार्थनाओं के अभिप्राय को समझें ॥९ ॥

११५६. अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिव: ।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१० ॥

(कामनाओं) की वर्षा करने वाले ये पाँच शक्तिशाली देव (अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा और विद्युत्) विस्तृत द्युलोक में स्थित हैं । देवों में प्रशंसनीय ये देवगण आवाहन करते ही पूजा ग्रहण करने के लिए उपस्थित हो जाते हैं । इसके बाद तृप्त होकर अपने स्थान पर लौट जाते हैं । अर्थात् मन के साथ ये इन्द्रियाँ भी उपासना में तल्लीन हो जाती हैं । हे द्युलोक और पृथिवि ! आप हमारी इस प्रार्थना के अभिप्राय को जानें ॥१० ॥

११५७. सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११ ॥

यह जो उत्तम पंख (किरणों) वाला पक्षी (सूर्य) दिव्यलोक के मध्य भाग में स्थित है, व्यापक जल रूपी रात्रि (अज्ञानान्धकार) में तैरने वाले (मनुष्य) को, प्रकाश (ज्ञान) का मार्ग प्रशस्त कर भेड़ियों (काम, क्रोध, लोभ आदि) से बचाये । हे द्यावापृथिवि !आप हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥११ ॥

[मनुष्य भव सागर में तैर रहा है । अज्ञान रूपी क्रूर भेड़िया उसे खा जाना चाहता है, ज्ञान रश्मियाँ क्रूर अज्ञान का निवारण करके मनुष्य को भयमुक्त करती हैं ।]

११५८. नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२ ॥

हे देवो ! ये नवीन स्तोत्र प्रशंसनीय, गाने योग्य और कल्याणकारक हैं । नदियाँ ऋत (दिव्य अनुशासन) के अनुरूप चलने के लिए प्रेरित करती हैं और सूर्य देव सत्य के उद्घोषक हैं । हे द्यावापृथिवी देवि ! हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को समझें ॥१२ ॥

११५९. अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! देवताओं के साथ आपका बन्धुत्व भाव प्रशंसनीय है । ऐसे विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न आप मनुष्यों के समान हमारे यज्ञ में पधारकर, देवताओं को हमारे यज्ञ में आवाहित करें । हे द्यावापृथिवी देवि ! आप हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को समझें ॥१३ ॥

११६०. सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४ ॥

मनुष्यों के समान यज्ञ में विराजमान, ज्ञानवान् होता और देवताओं में विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न वे अग्निदेव देवों के लिए हविष्यान्न पहुँचाते हैं । हे द्युलोक व पृथिवी देवि ! हमारे इस जिज्ञासा भाव को समझें ॥१४ ॥

११६१. ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५ ॥

मंत्र रूपी स्तोत्रों की रचना वरुणदेव करते हैं । हम स्तुति मंत्रों से मार्गदर्शक प्रभु की प्रार्थना करते हैं । वे हृदय से सद्बुद्धि को प्रकट कर देते हैं, जिससे नवीन सत्य का मार्ग प्रशस्त होता है । हे द्यावापृथिवी देवि ! आप हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥१५ ॥

११६२. असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६ ॥

हे देवो ! यह जो सूर्यदेव का प्रकाशरूपी मार्ग, दिव्य लोक में स्तुतियों के योग्य है, उसका उल्लंघन आपके लिए उपयुक्त नहीं । हे मनुष्यो ! वह मार्ग सर्व साधारण की पहुँच से बाहर है । हे पृथिवी देवि ! आप हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को समझें (उस मार्ग का बोध करायें) ॥ १६ ॥

११६३. त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७ ॥

पाप रूपी कुएँ में गिरे हुए 'त्रित' ने अपनी सुरक्षा के लिए देवताओं का आवाहन किया। ज्ञान रूपी बृहस्पतिदेव ने उसकी प्रार्थना को सुनकर, 'त्रित' को पाप रूपी कुएँ से निकालकर कष्टों से मुक्ति पाने का व्यापक मार्ग खोल दिया। हे द्युलोक और पृथिवी देवि ! आप हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥१७॥

११६४. अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥

पीठ के रोगी बढ़ई की तरह (टेढ़ा) चन्द्रमा अपने मार्ग पर चलता हुआ हमें नित्य देखता है। वह नीचे की ओर जाकर (अस्त होकर) पुनः उदित होता है। हे द्यावापृथिवी देवि ! आप हमारी इस स्थिति पर ध्यान दें ॥१८॥

११६५. एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

इन्द्रदेव तथा सभी वीर पुरुषों से युक्त होकर हम इस स्तोत्र से संग्राम में शत्रुओं को पराजित करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक सभी देव हमारे इस स्तोत्र का अनुमोदन करें ॥१९॥

[सूक्त - १०६]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस । देवता -विश्वेदेवा । छन्द-जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

११६६. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥१॥

हम सभी अपने संरक्षणार्थ इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुद्गण और अदिति का आवाहन करते हैं। हे श्रेष्ठ, धनदाता वसुओ ! आप जिस प्रकार रथ को दुर्गम मार्ग से निकालते हैं,वैसे ही सम्पूर्ण विपदाओं से हमें पार करें ॥१॥

११६७. त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥२॥

हे आदित्यगणो ! आप सभी हमारे अभीष्ट यज्ञ में आगमन करें। असुर संहारक युद्धों में हमारे लिए सुखप्रद हों। हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! सभी विपदाओं से हमें आप उसी प्रकार पार करें, जैसे दुर्गम मार्ग से रथ को सावधानी पूर्वक निकालते हैं ॥२॥

११६८. अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥३॥

श्रेष्ठ प्रशंसनीय सभी पितर और सत्य संवर्धक देवमाताएँ हमारी संरक्षक हों। हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! आप रथ को दुर्गम मार्ग से निकालने की तरह ही सभी संकटों से हमें बाहर निकालें ॥३॥

११६९. नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥४॥

मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, बलवान्-वीर की शक्ति को संवर्धित करने वाले, वीरों के स्वामी पूषादेव की हम श्रेष्ठ मनोभावनाओं द्वारा स्तुति करते हैं। हे श्रेष्ठदानदाता वसुदेवो ! आप रथ को दुर्गम मार्ग से निकालने के समान ही सभी संकटों से हमें सुरक्षित करें ॥४॥

११७०. बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥५ ॥

हे बृहस्पते !हमारे मार्ग सदैव सर्वसुलभ करें । आपके पास जो मनुष्यों के कल्याणकारी, श्रेष्ठ, सुखप्रदायक और दुःख निवारक साधन हैं, वही हमारी कामना है । हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! आप रथ को दुर्गम मार्ग से निकालने के समान ही सभी संकटों से हमें संरक्षित करें ॥ ५ ॥

११७१. इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।

रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६ ॥

पाप रूपी कुएँ में गिरे हुए कुत्स ऋषि ने शत्रु संहारक और सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव को आवाहित किया । हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! रथ को कठिन मार्ग से वहन करने की तरह ही आप सभी पापों से हमें निवृत्त करें ॥६ ॥

११७२. देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥७ ॥

देवमाता अदिति, देव समूह के साथ हमें संरक्षित करें । संरक्षण साधनों से युक्त अन्य देवगण भी आलस्य रहित होकर हमारी सुरक्षा करें । हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक आदि देवगण स्वीकार करें ॥७ ॥

[सूक्त- १०७]

[**ऋषि**- कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- विश्वेदेवा ।**छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

११७३. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।

आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥१ ॥

यज्ञ देवगणों के लिए सुखदायक है । हे आदित्यगण ! आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । आपकी श्रेष्ठ विवेकशील प्रेरणा हमें प्राप्त हो , जो हमें कष्टों से संरक्षित करते हुए श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करे ॥१ ॥

११७४. उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।

इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥२ ॥

अंगिराओं के सामों (गेय मंत्रों) से प्रशंसित हुए सभी देवता संरक्षण साधनों से युक्त होकर हमारे यहाँ आगमन करें । इन्द्रदेव अपनी शक्ति सामर्थ्यों, मरुत् अपने वीरों तथा अदिति अपनी आदित्य शक्तियों के सहित हमें सुख प्रदान करें ॥२ ॥

११७५. तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३ ॥

इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सूर्य देवगण हमारे लिए मधुर अन्न प्रदान करें । हमारी कामना को मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक आदि देव अनुमोदित करें ॥३ ॥

[सूक्त - १०८]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस । देवता- इन्द्राग्नी । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

११७६. य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आपका जो अद्‌भुत रथ सभी लोकों को देखता है । उस रथ में दोनों एक साथ बैठकर हमारे यहाँ पधारें और अभिषुत सोमरस का पान करें ॥१ ॥

११७७. यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२ ॥

यह सम्पूर्ण विश्व जितना विशाल, श्रेष्ठ और गाम्भीर्य युक्त है, हे इन्द्राग्नि ! आपके सेवन के लिए निष्पादित सोमरस उतना ही प्रभावशाली होकर प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो ॥२ ॥

११७८. चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥३ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आपकी संयुक्त शक्ति विशेष कल्याणकारी है । हे वृत्रहन्ताओ ! आप संयुक्त रूप में ही वास करते हैं । हे शक्ति सम्पन्न वीरो ! आप दोनों एक साथ बैठकर सोमरस पान द्वारा अपनी शक्ति को बढ़ायें ॥३ ॥

११७९. समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥४ ॥

यज्ञ में यज्ञाग्नि प्रज्वलित होने पर जिनके निमित्त आहुतियाँ प्रदान करने के लिए घृतयुक्त चमसों (पात्रों) को भरकर रखा गया है, तथा कुशाओं के आसन बिछाये गये हैं, ऐसे हे इन्द्राग्नि ! जो तीक्ष्ण सोमरस जल मिलाकर तैयार है,उसके सेवन हेतु आप हमारे यज्ञ में पधारें ॥४ ॥

११८०. यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥५ ॥

हे इन्द्राग्नि ! शक्ति के परिचायक जिन कर्मों को आपने सम्पादित किया, जिन रूपों को शक्ति के प्रदर्शन के समय आपने प्रकट किया तथा आपके जो प्राचीन समय से प्रचलित कल्याणकारी मित्र भावना के प्रेरक कर्म हैं, उनका ध्यान रखते हुए सोमरस पान के लिए यहाँ पधारें ॥५ ॥

११८१. यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो ३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥६ ॥

सर्वप्रथम आप दोनों की इच्छा को ध्यान में रखते हुए ही हमने कहा था कि याज्ञिकों ने ये हमारा सोमरस आपके निमित्त ही निष्पन्न किया है, इसलिए हमारी हार्दिक श्रद्धानुसार आप दोनों हमारे यज्ञ में आयें तथा निष्पन्न सोमरस का सेवन करें ॥६ ॥

११८२. यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव और यज्ञाग्ने ! यजमान के गृह, ज्ञान सम्पन्न साधक की वाणी अथवा राजगृह में जहाँ भी आप आनन्दयुक्त रहते हों, उन स्थानों से आप हमारे यज्ञ में आयें । इस अभिषुत सोमरस का पान करें ॥७ ॥

११८३. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥८॥

हे इन्द्राग्नि ! आप दोनों, यदुओं, तुर्वशों, द्रुह्यों, अनुओं और पुरुओं के यज्ञों में विद्यमान हों तो वहाँ से भी (हे सामर्थ्यवान् देवो !) हमारे यज्ञ में आएँ और निष्पादित सोमरस का पान करें ॥ ८ ॥

११८४. यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥९॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्राग्नि ! आप दोनों ऊपर, नीचे या मध्य में जहाँ भी पृथ्वी के जिस किसी भाग में भी स्थित हों, इस यज्ञ में आकर सोमरस का पान अवश्य करें ॥९ ॥

११८५. यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१०॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आप ऊपरी स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष लोक, मध्य लोक तथा नीचे के भूभाग में जहाँ भी हों, हमारे यज्ञ में आकर सोमरस का पान करें ॥१० ॥

११८६. यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥११॥

हे बलशाली इन्द्राग्नि ! आप दोनों द्युलोक, पृथ्वी ,पर्वतों, औषधियों अथवा जलों में भी जहाँ विद्यमान हों, वहाँ से हमारे यज्ञ में निष्पादित सोमपान के लिए आगमन करें ॥११ ॥

११८७. यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२॥

हे सामर्थ्य सम्पन्न इन्द्राग्नि ! आप दोनों स्वर्गलोक के बीच में, सूर्योदय की बेला में हों, अथवा अन्न सेवन (विश्राम) का आनन्द ले रहे हों, ऐसे में भी आप दोनों हमारे यज्ञ में आकर सोमरस का पान करें ॥ १२ ॥

११८८. एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१३॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्राग्नि ! आप दोनों सोमरस के पान से हर्षित होकर सभी प्रकार की सम्पदाओं को जीतकर हमें प्रदान करें। हमारी अभीष्ट कामना पूर्ति में मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, और दिव्यलोक के सभी देव सहायक हों ॥१३ ॥

[सूक्त - १०९]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस। देवता- इन्द्राग्नी। छन्द - त्रिष्टुप्।]

११८९. वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१॥

हे इन्द्राग्नि ! अभीष्ट कामना पूर्ति हेतु किन्हीं ज्ञानवान् एवं अनुकूल स्वभाव वाले बन्धुओं की खोज का हमारा विचार है। हमारे और आपके मध्य कोई विचार भिन्नता नहीं, अतएव आपकी सामर्थ्य, शक्ति, प्रभाव एवं क्षमता के परिचायक स्तोत्रों की हम रचना करते हैं ॥१ ॥

११९०. अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव !(श्वसुर द्वारा) जमाता और शाले (द्वारा बहनोई को दिये जाने वाले दान) से भी अधिक दान देने में आप समर्थ हैं, ऐसा हमें ज्ञात हुआ है ।अतएव आप दोनों के निमित्त सोमरस भेंट करते हुए नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं ॥२ ॥

११९१. मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥३ ॥

हमारी सन्तान रूपी गृहरश्मियों का हनन न करें । पितरों की शक्ति वंशानुगत (वंशजों में अनुकूलता युक्त) हो, ऐसी प्रार्थना से युक्त हमें, हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव और अग्निदेव ! कृपा दृष्टि से सुखप्रदायक आनन्द की प्राप्ति हो । इन देवों को सोमरस प्रदान करने के लिए दो पत्थर (सोमरस निकालने का साधन) सोमपात्रों के समीप स्थापित हों ॥३ ॥

११९२. युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आपकी प्रसन्नता के लिए सोमरस अभिषवण करके दिव्य सोमपात्र पूर्णरूप से भरे हुए स्थापित हैं । हे अश्विनीकुमारो ! उत्तम कल्याणकारी हाथों से युक्त आप दोनों शीघ्र आएँ और मधुर सोमरस को जलों से मिश्रित करें ॥४ ॥

११९३. युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आप दोनों धन को वितरित करते समय और वृत्र को मारने के समय अति शीघ्रता का परिचय देते हैं, ऐसा हमने सुना है । हे स्फूर्तिवान् देवो ! इस यज्ञ स्थल पर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होकर आप दोनों सोमरस से आनन्द की प्राप्ति करें ॥५ ॥

११९४. प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६ ॥

हे इन्द्राग्नि ! युद्ध के लिए बुलाए गये वीर पुरुषों की अपेक्षा आप अधिक बलशाली हैं । पृथ्वी, दिव्यलोक, पर्वत तथा अन्य समस्त लोकों से भी अधिक आप दोनों की प्रभाव क्षमता है ॥६ ॥

११९५. आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥७ ॥

वज्र के समान सशक्त भुजाओं से युक्त हे इन्द्राग्नि ! हमारे घरों को धन से भरपूर करें, हमें शिक्षित करें तथा अपने बलों से हमारी सुरक्षा करें । ये वही सूर्य रश्मियाँ हैं,जो हमारे पितरों को भी उपलब्ध थीं ॥७ ॥

११९६. पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८ ॥

वज्र से सुशोभित हाथ वाले, शत्रुओं के दुर्ग को ध्वस्त करने वाले हे इन्द्राग्नि ! आप हमें युद्ध विद्या में प्रशिक्षित करें और संग्रामों में हमारा संरक्षण करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथ्वी और द्युलोक सभी हमारी कामना पूर्ति में सहयोगी हों ॥८ ॥

[सूक्त - ११०]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस । देवता- ऋभुगण । छन्द -जगती, ५, ९ त्रिष्टुप् ।]

११९७. ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते ।

अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१ ॥

हे ऋभुदेवो ! जो पूजनकृत्य हमने पहले किया था, उसे फिर से सम्पन्न करते हैं । यह मधुर स्तुति देवताओं का गुणगान करती है । समुद्र की तरह विस्तृत गुणवाला सोमरस सम्पूर्ण देवताओं के निमित्त यहाँ स्थिर है । स्वाहा के साथ आप इसे ग्रहण कर संतुष्टि प्राप्त करें ॥१ ॥

११९८. आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।

सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥२ ॥

हे सुधन्वापुत्रो ! अधिक प्राचीन हमारे प्रिय आप्तबन्धु के समान आप जब सुखोपभोग की कामना से आगे बढ़े, तब आप अपने निर्मल चरित्र के प्रभाव से उदार दानी सवितादेव के आश्रय को प्राप्त हुए ॥२ ॥

११९९. तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।

त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥३ ॥

हे ऋभुदेवो ! कभी न छिपने योग्य सवितादेव की कीर्ति का गान करते हुए जब आप उनके समीप गये, तब तत्काल उन्होंने आपको अमरता प्रदान की । त्वष्टा द्वारा निर्मित चमस (सोमपान का पात्र) को उन्होंने चार प्रकार का बना दिया ॥३ ॥

१२००. विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।

सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥४ ॥

मरणधर्मा मानवों ने निरन्तर उपासना और कर्मयोग की साधना से अमर कीर्ति को प्राप्त किया । सुधन्वा के पुत्र ऋभु सूर्यदेव की तरह ही तेजस्विता सम्पन्न होकर एक वर्ष के अन्तराल में ही सबके द्वारा प्रशंसनीय स्तवनों से पूज्यभाव को प्राप्त हुए ।(अर्थात् पूजे जाने योग्य बन गये) ॥४ ॥

१२०१. क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥५ ॥

प्रशंसित ऋभुओं ने, अमर देवों की कीर्ति की उपमा के योग्य यश की इच्छा की और खेत तैयार करने की तरह तेजधार वाले शस्त्र से बार-बार प्रयुक्त होने वाले तीक्ष्ण-तेजस्वी संकल्प से देवों के समतुल्य पात्रता-व्यक्तित्व को विकसित किया ॥५ ॥

१२०२. आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।

तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥६ ॥

अन्तरिक्ष में विचरणशील इन मनुष्य रूप धारी ऋभुओं के निमित्त मनोयोगपूर्वक की गई प्रार्थना के साथ हम चमस पात्र से घृताहुति समर्पित करें । ये ऋभुदेव अपने पिता के साथ सतत क्रियाशील रहकर दिव्यलोक और अन्तरिक्ष लोक से अन्न का उत्पादन करने में समर्थ हुए ॥६ ॥

१२०३. ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७ ॥

सामर्थ्यवान् होने से ऋभुदेव सदा तरुण (नौजवान) जैसे ही दिखाई देते हैं और इन्द्रदेव की तरह ही सम्पन्न हैं । शक्तियों और धन सम्पदा से युक्त ये ऋभु हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । हे देवो !आपके स्मरणीय साधनों से संरक्षित हम किसी शुभ वेला में, यज्ञीय कर्मों से रहित रिपुदल पर विजय प्राप्त करें ॥७ ॥

१२०४. निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८ ॥

हे ऋभुदेवो ! आपने जिसके चर्म ही शेष रह गये थे, ऐसी कृषकाय (दुर्बल शरीर वाली) गौ को फिर से सुन्दर हृष्ट-पुष्ट बना दिया, तत्पश्चात् गोमाता को बछड़े से संयुक्त किया । हे सुधन्वा पुत्र वीरो ! आपने अपने सत्प्रयास से अति वृद्ध माता-पिता को भी युवा बना दिया ॥८ ॥

१२०५. वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९ ॥

हे ऋभुओं से युक्त इन्द्रदेव ! बलपूर्वक पराक्रम प्रधान समरक्षेत्र में अपने समर्थ साधनों के साथ आप प्रविष्ट हों । युद्ध से प्राप्त अद्‌भुत सम्पदाओं को हमें प्रदान करें । हमारी यह प्रिय कामना मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और द्युलोक आदि देवों द्वारा भी अनुमोदित हो ॥९ ॥

[सूक्त - १११]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस । देवता- ऋभुगण । छन्द-जगती, ५ त्रिष्टुप् ।]

१२०६. तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१ ॥

कुशल विज्ञानी ऋभुदेवों ने उत्तम रथ को अच्छी प्रकार से तैयार किया । इन्द्रदेव के रथ वाहक घोड़े भी भली प्रकार प्रशिक्षित किए । वृद्ध माता-पिता को श्रेष्ठ मार्गदर्शन देकर तरुणोचित उत्साह प्रदान किया तथा माता को बच्चे के साथ रहने के लिए तैयार किया ॥१ ॥

१२०७. आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२ ॥

हे ऋभु देवो ! हमें यज्ञीय सत्कर्मों के लिए तेजस्विता प्रधान जीवनी शक्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ कर्मों और बल संवर्धन हेतु प्रजा को समृद्ध करने वाले पौष्टिक अन्न हमें प्रदान करें । संगठन के लिए हममें पर्याप्त शारीरिक सामर्थ्य पैदा करें ॥२ ॥

१२०८. आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥३ ॥

नेतृत्व करने वाले हे ऋभुओ ! आप हमारे लिए वैभव, हमारे रथों के लिए सुन्दरता तथा अश्वों के लिए बल प्रदान करें । समर क्षेत्र में हमारे निकटस्थ सम्बन्धी या अपरिचित जो भी सम्मुख हों, हम उन्हें पराजित करें । हमें विजय योग्य विभूतियाँ प्रदान करें ॥३ ॥

१२०९. ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुत: सोमपीतये।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४ ॥

हम अपनी सुरक्षा के लिए ऋभुओं के साथ रहने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । ऋभु, वाज, मरुत्, दोनों मित्र और वरुण तथा अश्विनी कुमार इन सभी देवों को सोमपान के लिए आवाहित करते हैं । वे धन , श्रेष्ठ बुद्धि और विजय प्राप्ति के लिए हमें प्रेरित करें ॥४ ॥

१२१०. ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति: सिन्धु: पृथिवी उत द्यौ: ॥५ ॥

ऋभुगण हमें धन-धान्य से परिपूर्ण कर दें । युद्ध में विजय दिलाने वाले वाजादि देव हमारे संरक्षक हों । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक आदि देव हमारी कामना में सहायक हों ॥५ ॥

[सूक्त - ११२]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस । देवता - १ पूर्वार्द्ध प्रथम पाद - द्यावा पृथिवी, द्वितीय पाद - अग्नि, उत्तरार्द्ध - अश्विनी - कुमार, २-२५ अश्विनीकुमार । छन्द- जगती, २४-२५ त्रिष्टुप् ।]

१२११. ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१ ॥

द्युलोक, भूलोक तथा भली प्रकार प्रज्वलित-तापयुक्त अग्नि की हम सर्वप्रथम प्रार्थना करते हैं । हे अश्विनी-देवो ! जिनसे कर्मशील (पुरुषार्थी) व्यक्ति को समर क्षेत्र में अपना भाग ग्रहण करने के लिए आपका मार्गदर्शन मिलता है, उन संरक्षण-साधनों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥१ ॥

१२१२. युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथ: कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२ ॥

हे अश्विनीदेवो ! भरण-पोषण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति जिस प्रकार इधर-उधर न भटक कर ज्ञानी जनों के पास जाते हैं, उसी प्रकार आपके रथ के समीप दान ग्रहण करने के लिए साधक स्थित रहते हैं । जिन संरक्षण शक्तियों से आप लक्ष्य प्राप्ति के लिए उनकी बुद्धियों और कर्मों को प्रेरित करते है, उन्हीं शक्तियों के साथ आप दोनों भली प्रकार यहाँ पधारें ॥२ ॥

१२१३. युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३ ॥

हे नेतृत्व गुणयुक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों दिव्यलोक में उत्पन्न हुए सोमरस के पीने से अमर और बलशाली बने हैं तथा उसी बल से इन सभी प्रजाजनों पर शासन करते हैं । आपने जिन चिकित्सा प्रणालियों से वन्ध्या (प्रजनन क्षमता से रहित) गौओं को प्रजनन योग्य हृष्ट-पुष्ट और दुधारू बनाया, उन संरक्षण साधनों सहित आप निश्चित ही हमारे यहाँ पधारें ॥३ ॥

१२१४. याभि: परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४ ॥

सर्वत्र विचरणशील वायुदेव और अग्निदेव जिस बल से दो माताओं (अरणियों) से उत्पन्न होकर अति

गतिशील होकर विशेष शोभायमान होते हैं तथा कक्षीवान् ऋषि जिन तीन साधन रूपी यज्ञों से विशिष्ट ज्ञानवान् बने, हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों उन संरक्षण साधनों के साथ हमारे यहाँ पधारें ॥४ ॥

१२१५. याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने, जल में सम्पूर्ण स्थिति में डूबे और बन्धन युक्त रेभ तथा वन्दन को बाहर निकालकर प्रकाश के दर्शन योग्य बनाया । जिस प्रकार साधनारत कण्व को संरक्षण साधनों द्वारा उचित रीति से समर्थ बनाया, उन्हीं संरक्षण युक्त साधनों के साथ आप हमारे यहाँ पधारें ॥५ ॥

१२१६. याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६ ॥

हे अश्विनीदेवो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने कूप गर्त में पड़े और कष्ट पीड़ित राजर्षि अन्तक को बाहर निकाला, जिस कड़ी मेहनत से तुग्र पुत्र भुज्यु को सुरक्षित किया और कर्कन्धु तथा वय्य की जिन संरक्षण साधनों से युक्त होकर रक्षा की, उन संरक्षण साधनों से युक्त होकर आप हमारे यहाँ पधारें ॥६ ॥

१२१७. याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने धन वितरण कर्ता शुचन्ति को श्रेष्ठ निवास योग्य स्थान दिया । अत्रि ऋषि के लिए तप्त बन्दी गृह को शान्त किया तथा पृश्निगु और पुरुकुत्स को सुरक्षित किया । उन संरक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर आप हमारे यहाँ पधारें ॥७ ॥

१२१८. याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामभुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आपने पंगु परावृक् ऋषि को, नेत्र हीन ऋज्राश्व को और पैरों से लँगड़े श्रोण को, दृष्टि युक्त करके पाँवों से चलने-फिरने योग्य बनाया । भेड़िये द्वारा मुख में पकड़ी हुई, दाँतों से घायल चिड़िया को अपनी सामर्थ्य से मुक्त करके आरोग्य प्रदान किया, उन आरोग्य प्रद चिकित्सा साधनों के साथ आप हमारे यहाँ पधारें ॥८ ॥

१२१९. याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥९ ॥

हे चिरयुवा अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिस सामर्थ्य से मधुर जलरूप रसवाली नदियों को प्रवाहित किया, जिससे वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य और नर्य को शत्रुओं से सुरक्षित किया, उन्हीं संरक्षण साधनों के साथ हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥९ ॥

१२२०. याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने हजारों योद्धाओं द्वारा लड़े जा रहे समर-क्षेत्र में अथर्व वंश में उत्पन्न धनदात्री विश्पला का सहयोग किया तथा प्रेरणाप्रद, अश्वराज के पुत्र वश ऋषि को संरक्षित किया, उन्हीं संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आप हमारे यहाँ अवश्य पधारें ॥१० ॥

१२२१. याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥११ ॥

हे श्रेष्ठ दान दाता अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आपने उशिक् पुत्र दीर्घश्रवा नामक व्यापारी के लिए मधु के भण्डार प्रदान किये तथा स्तोत्र कर्ता 'कक्षीवान्' को सुरक्षित किया। उन्ही संरक्षण शक्तियों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥११ ॥

१२२२. याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्त्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने नदी के तटों को जलों से भरपूर किया, जिससे अश्वों से रहित रथ को तेजगति से चलाकर शत्रु को पराजित करके विजय उपलब्ध की तथा कण्वपुत्र 'त्रिशोक' के लिए दुधारू गौओं को प्रदान किया, उन्हीं संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आप हमारे यहाँ पदार्पण करें ॥१२ ॥

१२२३. याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों दूर स्थित सूर्यदेव के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। आप दोनों ने जिस प्रकार मान्धाता को क्षेत्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वाह करने की सामर्थ्य प्रदान की तथा ज्ञान-सम्पन्न भरद्वाज को, जिन श्रेष्ठ सुरक्षा-साधनों द्वारा बचाया, उन्हीं सामर्थ्ययुक्त साधनों के साथ हमारे यहाँ पधारें ॥१३ ॥

१२२४.याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से शम्बर का वध करने वाले संग्राम में अतिथिग्व, कशोजुव और महान् दिवोदास को आप दोनों ने संरक्षण प्रदान किया था। शत्रु नगरों को ध्वस्त करने वाले संग्राम में त्रसदस्यु (दस्युओं को संत्रस्त करने वाले राजा) को संरक्षित किया था, उन्हीं संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आप हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥१४ ॥

१२२५. याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से सोमरस पान करने वाले, निकटस्थ लोगों द्वारा प्रशंसनीय वम्र ऋषि को आप दोनों ने संरक्षित किया जिनसे धर्मपत्नी सहित कलि ऋषि को संरक्षित किया तथा अश्व रहित पृथि को संरक्षित किया था, उन सभी सुरक्षा-साधनों से आप यहाँ आएँ ॥१५ ॥

१२२६. याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१६ ॥

नेतृत्व क्षमता सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से शयु का सहयोग देने के लिए, जिनसे अत्रि ऋषि को कारागृह से मुक्त करने के लिए, जिनसे मनु को पुरातन समय में दुःख से निवृत्त होने का रास्ता आप दोनों ने बताया था तथा शत्रु सेना पर बाणों का प्रहार करके स्यूम-रश्मि की रक्षा की, उन्हीं समस्त संरक्षण-सामर्थ्यों से युक्त आप हमारे यहाँ पधारें ॥१६ ॥

१२२७. याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।

याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी जिन सामर्थ्यों का सहयोग पाकर समिधाओं से प्रदीप्त तेजस्विता युक्त अग्नि के समान ही 'पठर्वा राजा' युद्ध में अपनी शारीरिक शक्ति से अति तेजस्वी बना था, विशाल सम्पदा अर्जित करने वाले संग्राम में आप दोनो ने 'शर्यात' को जिनसे संरक्षित किया था, उन्हीं संरक्षण-सामर्थ्यों के साथ आप यहाँ पधारें ॥१७ ॥

१२२८. याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।

याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आङ्गिरसों द्वारा श्रद्धा - पूर्वक आप दोनों की स्तुति किये जाने पर जिस सामर्थ्य से आपने उन्हें सन्तुष्ट किया, चुराये गये गौ - समूह को प्राप्त करने के लिए गुफा के दरवाजे में आप दोनों ही आगे जाते हैं तथा जिस सामर्थ्य से शूरवीर मनु को संग्राम में प्रचुर अन्न सामग्री द्वारा सुरक्षित किया, उन्हीं सम्पूर्ण सामर्थ्यों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ आएँ ॥१८ ॥

१२२९. याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।

याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से आप दोनों ने विमद की धर्म पत्नियों को उनके निवास स्थान पर पहुँचाया । लालवर्ण की घोड़ियों को भली प्रकार प्रशिक्षित किया (अथवा लाल रंग की उषा कालीन किरणों को मनुष्यों के लिए प्रेरित किया) तथा पिजवन-पुत्र सुदास को दिव्य सम्पदा प्रदान की, उन्हीं प्रेरणाप्रद शक्तियों के साथ हमारे यहाँ पधारें ॥१९ ॥

१२३०. याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।

ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२० ॥

हे अश्विनीदेवो ! जिन सामर्थ्यों से आप दानी मनुष्यों के लिए सुखद बने, भुज्यु और अध्रिगु को आपने संरक्षित किया तथा ऋतस्तुभ को श्रेष्ठ पौष्टिक और आनन्दप्रद अन्न सामग्री प्रदान की, उन्हीं सुखदायक सामर्थ्यों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ पदार्पण करें ॥२० ॥

१२३१. याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।

मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनो ने जिन सामर्थ्यों से 'कृशानु' का संग्राम में सहयोग किया, नवयुवा 'पुरुकुत्स' के गतिशील अश्व को संरक्षित किया तथा मधुमक्खियों के लिए मधुर शहद उत्पन्न किया, उन्हीं संरक्षण साधनों के द्वारा आप हमारे यहाँ आएँ ॥२१ ॥

१२३२. याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।

याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से आप गौओं के संरक्षणार्थ संघर्षशील योद्धाओं को और कृषि उत्पादनों की वितरण वेला में कृषकों को पारस्परिक कलह से संरक्षित करते हैं तथा वीरों के रथों और अश्वों की सुरक्षा करते हैं, उन्हीं सामर्थ्यों सहित आप दोनों उत्तम रीति से यहाँ आएँ ॥२२ ॥

१२३३. याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३ ॥

सैकड़ों यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिन सामर्थ्यों से अर्जुन के पुत्र कुत्स, तुर्वीति एवं दभीति को तथा ध्वसन्ति और पुरुषन्ति ऋषियों को संरक्षण प्रदान किया, उन्हीं सुरक्षा-व्यवस्थाओं के साथ आप श्रेष्ठ विधि से यहाँ पदार्पण करें ॥२३ ॥

१२३४. अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२४ ॥

हे दर्शनयोग्य शक्तिसम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी वाणी और बुद्धि को सत्कर्मों में नियोजित करें । हम याजकगण सन्मार्ग से उपलब्ध होने वाले अन्न हेतु आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप दोनों ही यज्ञ में हमारी वृद्धि के कारण बनें ॥२४ ॥

१२३५. द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन-रात्रि अनश्वर श्रेष्ठ धनों से हमें सभी प्रकार से संरक्षित करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु और द्युलोक आपके द्वारा प्रदत्त धनों के संरक्षण में सहायक हों ॥२५ ॥

[इस सूक्त में अश्विनीकुमारों की अद्भुत शक्तियों का वर्णन है । सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने, मनुष्यों एवं पशुओं के दुर्लभ उपचार एवं कायाकल्प करने जैसे प्रकरणों के साथ जुड़े आलंकारिक सूत्र संकेत शोध के विषय हैं ।]

[सूक्त - ११३]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस । देवता - १ का पूर्वार्द्ध उषा, उत्तरार्द्ध उषा और रात्रि, २-२० उषा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

१२३६. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

सर्व दीप्तिमान् पदार्थों में ये देवी उषा सर्वाधिक तेजयुक्त हैं । इनका विलक्षण प्रकाश चारों ओर व्यापक होकर सभी पदार्थों को आच्छादित कर लेता है । सूर्यदेव के अस्त होने (के पश्चात्) से उत्पन्न हुई रात्रि, इन देवी उषा के उदय के लिए स्थान रिक्त कर देती है ॥१ ॥

१२३७. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२ ॥

तेजस्वी देवी उषा उज्ज्वल पुत्र (सूर्य) को लेकर प्रकट हुई और काले रंग की रात्रि ने उसे स्थान दिया है । देवी उषा और रात्रि दोनों सूर्यदेव के साथ समान सखा भाव से युक्त हैं । दोनों अविनाशी और क्रमशः एक के पीछे एक आकाश में विचरण करती हैं तथा एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट करने वाली हैं ॥२ ॥

१२३८. समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३ ॥

रात्रि और देवी उषा दोनों का बहिनों जैसा एक ही मार्ग है तथा वे अन्तहीन हैं । उस मार्ग से होकर देवी उषा और रात्रि द्योतमान सूर्य से अनुप्राणित होकर क्रमशः एक के पीछे एक चलती हैं । उत्तम कार्य करने वाली ये एक दूसरे के विपरीत रूप वाली होते हुए भी एक मनोभूमि की हैं । न कभी परस्पर विरुद्ध होती हैं, न ही कहीं रुकती हैं, अपितु अपने-अपने कार्यों में निरत रहती हैं ॥३ ॥

१२३९. भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४ ॥

अपने प्रकाश से लोगों को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाली दीप्तिमती देवी उषा का उदय हो गया है । वे अद्भुत मनोहारी किरणों से दरवाजे खोलने की प्रेरणा देती हैं । विश्व को ज्योतिर्मय (प्रकाशित) करके ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु मनुष्यों में प्रेरणा भरती हैं तथा अपनी किरणों से समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं ॥४ ॥

१२४०. जिह्मश्ये३चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५ ॥

धनेश्वरी देवी उषा सुषुप्तों (सोये हुओं) को जगाकर चलने के लिए, उपभोग, ऐश्वर्य एवं इष्टकर्म के लिए प्रेरित करती हैं । अन्धकार में भटके हुए लोगों को दृष्टि देने हेतु विस्तृत तेजस्विता से युक्त देवी उषा सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करती हैं ॥५ ॥

१२४१. क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥६ ॥

हे तेजस्वी देवी उषे ! रक्षापरक (क्षत्रियोचित) कर्म के लिए, श्रेय (कीर्ति) के लिए महायज्ञों हेतु प्रचुर धनोपार्जन तथा नानाविध जीवनोपयोगी कर्तव्य निर्वाह के लिए समस्त लोकों को आप ही जाग्रत् करती हैं ॥६ ॥

१२४२. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७ ॥

ये स्वर्ग कन्या देवी उषा अँधेरे को भगाती हुई उदित हो गई हैं । नवयुवती की तरह शुभ्र वस्त्र धारण करने वाली देवी उषा सम्पूर्ण धरती की सम्पदाओं की अधीश्वरी हैं । हे सौभाग्य प्रदात्री उषे ! आप यहाँ अपना आलोक प्रकट करें ॥७ ॥

१२४३. परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥८ ॥

ये देवी उषा पिछली आई हुई उषाओं के मार्ग का ही अनुसरण कर रही हैं तथा भविष्य में अनन्तकाल तक आने वाली अनेक उषाओं में सर्वप्रथम हैं । ये प्रकाशमयी देवी उषा जीवन्तों में प्रेरणा जगातीं तथा मृतक के समान सोये हुओं में प्राणतत्त्व का संचार करती हैं ॥८ ॥

१२४४. उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥९ ॥

हे उषे ! आपके उदय होते ही यज्ञ कर्मों का सम्पादन करने वाले जागकर अग्नि को प्रदीप्त करने लगे । सूर्योदय से पूर्व आपने ही प्रकाश फैलाया । विश्व के लिए मंगलकारी और देवताओं के लिए प्रिय उपासनादि सत्कर्मों की प्रेरणा आपने ही प्रदान की ॥९ ॥

१२४५. कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥१० ॥

कितने समय पर्यन्त ये देवी उषा यहाँ स्थित रहती हैं ? जो पूर्व में प्रकाशित हो चुकीं और जो भविष्य में आने वाली हैं, वे भी कहाँ अधिक समय तक स्थित रहेंगी ? पूर्व में आ चुकी उषाओं का स्मरण दिलाती

हुई वर्तमान में देवी उषा प्रकाश फैलाने में सक्षम होती हैं । प्रकाश फैलाने वाली देवी उषा अन्य उषाओं का ही अनुगमन करती हैं ॥१० ॥

१२४६. ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११ ॥

जो मनुष्य विगतकाल में प्रकट हुई उषाओं का दर्शन करते थे, वे दिवंगत हो गये । जो आज इन देवी उषा को देख रहे हैं, वे भी एक दिन यहाँ से प्रस्थान कर जायेंगे । जो भविष्य में उषाओं का दर्शन करेंगे, उनका भी स्थायित्व नहीं है, अर्थात् मात्र देवी उषा ही अकेली स्थायी रहने वाली है, जो बार-बार आती रहेगी ॥११ ॥

१२४७. यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२ ॥

अज्ञानान्धकार रूपी शत्रुओं का विनाश करने वाली, सत्य के विस्तार हेतु ही प्रकट होने वाली, सत्य का अनुपालन करने वाली, सुखप्रद वाणी की प्रेरक, श्रेष्ठ कल्याणकारी देवों की सन्तुष्टि हेतु यज्ञीय कर्मों की प्रेरक, अति श्रेष्ठ गुणों से युक्त हे उषे ! आप यहाँ प्रकाशमान हों ॥१२ ॥

१२४८. शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३ ॥

देवी उषा विगत काल में हमेशा प्रकाशित होती रही हैं । धनेश्वरी देवी उषा आज इस विश्व को प्रकाशमान कर रही हैं तथा भविष्य में भी प्रकाश देती रहेंगी, ऐसी ये देवी उषा तीनों कालों में प्रकाशमान होने से अजर-अमर हैं । अपनी धारण की गई क्षमताओं से ये देवी उषा सदा चलायमान हैं ॥१३ ॥

१२४९. व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ॥
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४ ॥

देवी उषा अपनी तेजस्वी रश्मियों से आकाश की सभी दिशाओं में प्रकाशित होती हैं । इन दिव्य देवी उषा ने कृष्णवर्ण (कालेरंग) के अन्धकार को दूर किया है । भली प्रकार रक्तवर्ण की किरणों रूपी अश्वों द्वारा खींचे गये रथ से ये देवी उषा आगमन करती हैं और सभी को जाग्रत् करती हैं ॥१४ ॥

१२५०. आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५ ॥

पौष्टिक और धारण करने योग्य उपयोगी धनों की प्रदात्री ये देवी उषा सबको प्रकाशित करती हुई अद्भुत मनोरम तेजस्विता को फैला रही हैं । वर्तमान देवी उषा विगत उषाओं में अन्तिम हैं और आगत उषाओं में सर्वप्रथम हैं, अतएव उत्तम रूप से प्रकाशित हो रही हैं ॥१५ ॥

१२५१. उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥१६ ॥

हे मनुष्यो ! उठो आलस्य त्यागकर उन्नति के मार्ग पर बढ़ चलो । प्रभात वेला में हमें प्राणरूपी जीवनी शक्ति का सघन संचार प्राप्त होता है । मोहरूपी अन्धकार हटता है । ज्योतिर्मान सूर्यदेव आगे बढ़ते जाते हैं । देवी उषा सूर्यदेव के आगमन के निमित्त मार्ग बनाती जाती हैं । हम सभी उस आयु (आरोग्यवर्धक जीवनी शक्ति) को प्राप्त करें ॥१६ ॥

१२५२. स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।

अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७ ॥

ज्ञान सम्पन्न साधक दीप्तिमान् उषाओं की प्रार्थना करते हुए शोभनीय तथा मनोरम स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । हे ऐश्वर्यशाली उषे ! स्तुति करने वालों के हृदय में आप ज्ञान रूपी प्रकाश भर दें । हमारे लिए सुसन्तति से युक्त जीवन और अन्नादि प्रदान करें ॥१७ ॥

१२५३. या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।

वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८ ॥

हविदाता मनुष्यों के लिए ये उषाएँ सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त, कान्तिमान् रश्मियों से सम्पन्न होकर प्रकाशमान हो रही हैं । वायु के तुल्य तीव्र गतिशील स्तोत्र रूपी श्रेष्ठ वाणियों से प्रशंसित होकर जीवनी शक्ति प्रदान करने वाली ये उषाएँ, सोमयज्ञ सम्पादित करने वाले साधकों के समीप जाती हैं ॥१८ ॥

१२५४. माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।

प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९ ॥

हे देवी उषे ! आप देवत्व का संचार करने से देवमाता हैं, अदिति के मुख के समान तेजस्वी हैं । यज्ञ की ध्वजा के समान हे विस्तृत उषे ! आप विशेष रूप से प्रकाशित हो रही हैं । हमारे सद्ज्ञान की प्रशंसा करती हुई आलोकित हों । हे विश्ववंद्य उषे ! हमें श्रेष्ठ मार्ग से उत्तम लोकों में ले चलें ॥१९ ॥

१२५५. यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२० ॥

जिन आश्चर्यजनक विभूतियों को उषाएँ धारण करती हैं, वही विभूतियाँ यज्ञ का निर्वाह करने वाले यजमान के लिए भी कल्याणप्रद हों । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और दिव्य लोक ये सभी देवत्व सम्वर्धक धाराएँ हमारी प्रार्थना को पूर्ण करें ॥२० ॥

[सूक्त - ११४]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस । देवता- रुद्र । छन्द- जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

१२५६. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।

यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१ ॥

हमारी प्रजाओं और गवादि पशुओं को सुख की प्राप्ति हो । इस गाँव के सभी प्राणी बलशाली और उपद्रव रहित हों । हम अपनी बुद्धि को दुष्टों का नाश करने वाले वीरों के प्रेरक जटाधारी रुद्रदेव को समर्पित करते हैं ॥१ ॥

१२५७. मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।

यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२ ॥

हे रुद्रदेव ! हम सभी को स्वस्थ व निरोग रखते हुए सुख प्रदान करें । शूरों को आश्रय प्रदान करने वाले आपको हम नमन करते हैं । आप मनुष्यों का पालन करते हुए शान्ति और रोग प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करते हैं । हे रुद्रदेव ! हम आपकी उत्तम नीतियों का अनुगमन करें ॥२ ॥

१२५८. अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३ ॥

हे कल्याणकारी रुद्रदेव ! वीरों को आश्रय प्रदान करने वाली आपकी श्रेष्ठ बुद्धि को हम सब अर्जित करें। हमारे प्रजाजनों को अपने देव यजन अर्थात् श्रेष्ठ कर्मों द्वारा सुख देते हुए आप हमारे लिए अनुकूलता प्रदान करें। हमारे वीर अक्षय बल को प्राप्त करें, हम आपके निमित्त आहुतियाँ समर्पित करें ॥३ ॥

१२५९. त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४ ॥

तेजस्विता सम्पन्न यज्ञीय सत्कर्मों के निर्वाहक स्फूर्तिवान्, ज्ञानवान् रुद्रदेव की हम सभी स्तुति करते हैं। वे हमें संरक्षण प्रदान करें। देव - शक्तियों के क्रोध के भागीदार हम न बन सकें, अपितु हम उनकी अनुकम्पा को प्राप्त करें ॥४ ॥

१२६०. दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५ ॥

सात्विक आहार ग्रहण करने वाले दीप्तियुक्त सुन्दर रूपवान् जटाधारी वीर का हम सादर आवाहन करते हैं। अपने हाथों में आरोग्य प्रदायक ओषधियों को धारण कर वे दिव्यलोक से अवतरित हों। हमें मानसिक शान्ति तथा बाहरी रोगों की प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करें। हमारे शरीरों में समाहित विषों को बाहर निकालें ॥५ ॥

१२६१. इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम्।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६ ॥

हम मरुद्‌गण के पिता रुद्रदेव के लिए यह अति मधुर और कीर्तिवर्धक स्तोत्रगान करते हैं। हे अमृतस्वरूप रुद्रदेव ! आप हम सभी के निमित्त उपभोग्य सामग्री प्रदान करें। हमें तथा हमारी सन्तानों को भी सुखी रखें ॥६ ॥

१२६२. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७ ॥

हे रुद्रदेव ! हमारे ज्ञान और बल में सम्पन्न वृद्धों को पीड़ित न करें। हमारे छोटे बालकों की हिंसा न करें। हमारे बलवान् युवा पुरुषों को हिंसित न करें। हमारी गर्भस्थ सन्तानों को हिंसित न करें और न ही हमारे माता-पिता को विनष्ट करें। इन सभी हमारे प्रिय जनों के शरीरों को कष्ट न पहुँचाएँ ॥७ ॥

१२६३. मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८ ॥

हे रुद्रदेव ! हमारी पुत्र-पौत्रादि सन्तति, हमारे जीवन को, गौओं और अश्वों को आघात न पहुँचाएँ। आप हमारे शूरवीरों के विनाश के लिए क्रोधित न हों। हविष्यान्न प्रदान करने के लिए यज्ञस्थल में हम आपका आवाहन करते हैं ॥८ ॥

१२६४. उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥९ ॥

हे मरुद्‌गणो के पिता रुद्रदेव ! जिस प्रकार पशुओं के पालनकर्ता गोपाल प्रातः ग्रहण किये गये पशुओं को सायंकाल उनके स्वामी को सौंप देते हैं, उसी प्रकार आपकी कृपा से प्राप्त मन्त्रों को स्तुति रूप में आपको ही समर्पित करते हैं । आप हमें सुख प्रदान करें, आपकी कल्याणकारी बुद्धि अत्यधिक सुख प्रदान करने वाली है, अतएव हम सभी आपके संरक्षण की कामना करते हैं ॥९ ॥

१२६५. आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥१० ॥

हे वीरों के आश्रयदाता रुद्रदेव ! पशुओं और मनुष्यों के लिए संहारक आपके शस्त्र हमें कोई कष्ट न पहुँचाएँ । हम सभी के लिए आपकी श्रेष्ठ प्रेरणाएँ प्राप्त हों तथा आप हम सभी को सुख-प्रदान करें । हे देव ! हमें विशेष मार्ग दर्शन दें तथा दो प्रकार की शक्तियों से युक्त आप हम सभी के निमित्त शान्ति प्रदान करें ॥१० ॥

१२६६. अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

सुरक्षा की कामना करने वाले हम सभी, रुद्रदेव को नमन हो, ऐसा उच्चारण करते हैं । मरुद्‌गणों के साथ वे रुद्रदेव हमारी प्रार्थना को सुनें । इस प्रकार हमारी अभीष्ट कामना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी स्वीकार करें ॥११ ॥

[सूक्त - ११५]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस । देवता- सूर्य । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१२६७. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१ ॥

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मा रूपी सूर्यदेव, दैवी शक्तियों के अद्भुत तेज के समूह के रूप में उदित हो गये हैं । मित्र, वरुण आदि के चक्षु रूप इन सूर्यदेव ने उदय होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ॥१ ॥

१२६८. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२ ॥

प्रथम दीप्तिमान् और तेजस्विता युक्त देवी उषा के पीछे सूर्यदेव उसी प्रकार अनुगमन करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य नारी का अनुगमन करते हैं । जहाँ देवत्व के उच्च लक्ष्य को पाने के लिए साधक यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करते हैं, वहाँ उन साधकों एवं कल्याणकारी यज्ञीय कर्मों को सूर्यदेव अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ॥२ ॥

१२६९. भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥३ ॥

सूर्यदेव की अश्वरूपी किरणें कल्याणकारी जलों को सुखाने वाली, तत्पश्चात् वृष्टि करने वाली आश्चर्यजनक, आनन्दकारी तथा निरन्तर गतिशील हैं । वे रश्मियाँ वन्दित होती हुई दिव्यलोक के (पृष्ठ भाग पर) सर्वोच्च विस्तृत भाग पर फैलती हैं । यही द्युलोक और भूलोक पर भी शीघ्र विस्तार युक्त होती हैं ॥३ ॥

१२७०. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥४॥

वह (पूर्वोक्त मन्त्र के महान् कार्य) सूर्यदेव के देवत्व का कारण है। जब वे सूर्यदेव अपनी हरणशील किरणों को आकाश से विलग कर केन्द्र में धारण करते हैं, तब रात्रि इस विश्व के ऊपर गहन तमिस्रा का आवरण डाल देती है ॥४॥

१२७१. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥५॥

द्युलोक की गोद में स्थित सूर्यदेव, मित्र और वरुणदेवों का वह रूप प्रकट करते हैं, जिससे वे मनुष्यों को सब ओर से देखते हैं। इनकी किरणें अनन्त विश्व में एक ओर प्रकाश और चेतना भर देती हैं, तो दूसरी ओर अन्धकार भर जाता है ॥५॥

[सूर्य की किरणों में दृश्य प्रकाश के साथ-साथ अदृश्य चेतना का प्रवाह भी रहता है।]

१२७२. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

हे देवो ! आप सूर्योदय काल से ही हमें आपत्तियों और दुष्कर्म रूपी पापों से संरक्षित करें। हमारी इस कामना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी देव भी अनुमोदित करें ॥६॥

[सूक्त - ११६]

[**ऋषि**- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। **देवता**- अश्विनीकुमार। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

इस सूक्त में अश्विनीकुमारों की स्तुति में उनकी अनेक विधाओं का वर्णन है। जैसे अंतरिक्ष यान, वायुयान, नौकाएँ, जल के अन्दर जाने वाली (पनडुब्बियाँ) नौकाएँ, रेगिस्तानों में जल पहुँचाने की विद्या, कायाकल्प, नेत्रदान, कृत्रिम अंगों का प्रत्यारोपण, वन्ध्या गाय को दुधारू बना देना आदि —

१२७३. नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१॥

सेना के साथ चलने वाले रथ से दोनों अश्विनीकुमार नौजवान विमद की धर्मपत्नी को उसके घर छोड़ आये थे। सत्यवान् अश्विनीकुमारों के निमित्त हम स्तोत्र वाणियों को वैसे ही प्रेरित करते हैं, जैसे वायु मेघमण्डल में स्थित जलों को वृष्टि हेतु प्रेरित करते हैं तथा यज्ञकर्त्ता कुश के आसनों को फैलाते हैं ॥१॥

१२७४. वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२॥

हे सत्ययुक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अतिवेग से आकाश में उड़ने वाले, तीव्र गति से जाने वाले, देवताओं की गति से चलने वाले यानों से भी अति तीव्र गति से गमनशील हैं। आपके यानों से संयुक्त हुए रासभ ने यम को आनन्दित करने वाले युद्ध में हजारों की संख्या वाले शत्रु सैनिकों पर विजय प्राप्त की थी ॥२॥

१२७५. तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥३॥

जैसे मरणासन्न मनुष्य अपने धन की इच्छा त्याग देते हैं, उसी प्रकार अपने पुत्र की आकांक्षा त्यागकर तुग्र

नरेश ने अपने भुज्यु नामक पुत्र को शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने हेतु अति गम्भीर महासागर में प्रवेश की आज्ञा दी । उसे आप दोनों अपनी सामर्थ्यों द्वारा अन्तरिक्ष यानों तथा पनडुब्बियों और नौकाओं के सहयोग से निकाल कर उसके पिता के समीप ले गये ॥३ ॥

१२७६. तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥४ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! अति गहन सागर से दूर जहां मरुस्थल है, वहाँ से तीन दिवस और तीन रात्रि निरन्तर चलते हुए, अतिवेग से गमनशील सौ चक्रों और छः अश्वों (अश्वशक्ति) सम्पन्न यन्त्रों वाले, पक्षी के समान आकाश मार्ग से जाते हुए तीन यानों द्वारा आप दोनों ने भुज्यु को उसके निवास पर पहुँचाया ॥४ ॥

१२७७. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! विश्राम से रहित, आश्रय रहित जहाँ (बचाव के लिए) हाथ में पकड़ने के लिए कोई भी पदार्थ नहीं, ऐसे अतिगहन महासमुद्र में से आप दोनों ने सौ पतवारों से चलने वाली नाव पर चढ़ाकर भुज्यु को उसके निवास स्थल पर पहुँचाया था । यह दुस्साहसिक कार्य निश्चित ही अति वीरता से युक्त था ॥५ ॥

१२७८. यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अघाश्व भूपति (नरेश) के लिए जिस सफेद अश्व को प्रदान किया, वह सदैव मंगलकारी है । ऐसा दान अति सराहनीय हुआ । शत्रुदल पर आक्रमणकारी "पेदु" के लिए दिया हुआ निपुण घोड़ा भी सदैव प्रशंसनीय है ॥६ ॥

१२७९. युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुंभाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७ ॥

हे नेतृत्व क्षमता सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने ऊँचे कुल में उत्पन्न स्तोता कक्षीवान् को नगर के संरक्षणार्थ श्रेष्ठ परामर्श दिया । बलशाली अश्व के खुर के समान आकृति वाले विशेष पात्र से स्वच्छ जल के सौ घड़े आप दोनों ने पूर्ण करके स्थापित किये ॥७ ॥

१२८०. हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने प्रचण्ड अग्निदेव को बर्फयुक्त शीतल जल से शान्त किया । असुरों द्वारा स्वराज्य के लिए संघर्षरत अन्धेरे कारावास में रखे गये अत्रि ऋषि को सहयोगियों के साथ कारावास तोड़कर आपने मुक्त किया तथा दुर्बल बने ऋषि अत्रि को पौष्टिक और शक्तिवर्धक आहार देकर हृष्ट-पुष्ट किया ॥८ ॥

१२८१. परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९ ॥

सत्य के प्रति स्थिर हे अश्विनीकुमारो ! आप कुएँ के पानी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक अति दूर ले गये । इस हेतु आपने कुएँ के आधार स्थल को ऊँचा किया और (नहर आदि) टेढ़े मार्ग से जल प्रवाहित किया । उसी जल को गौतम ऋषि के आश्रम तक ले जाकर आश्रम वासियों को पेय जल उपलब्ध कराया । आश्रम वासियों को सिंचाई के जल से सहस्रों तरह की धान्यादि सम्पदा भी प्राप्त हुई ॥९ ॥

१२८२. जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१० ॥

शत्रुओं का संहार करने वाले सत्यनिष्ठ हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने शरीर से जीर्ण च्यवन ऋषि को कवच उतारने के समान ही बुढ़ापे रूपी जीर्ण काया को उतारकर तरुण बना दिया । अतिवृद्ध होने से अशक्त च्यवन को दीर्घायुष्य प्रदान किया । तत्पश्चात् उन्हें आप दोनों ने सुन्दर स्त्रियों का पति बना दिया ॥१० ॥

१२८३. तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११ ॥

सत्य से युक्त नेतृत्व प्रदान करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के श्रेष्ठ सराहनीय कार्य स्तुति और आराधना के योग्य हैं । हे ज्ञानवान् अश्विनीकुमारो ! जो वन्दन ऋषि गहरे गर्त में पड़े थे, उन्हें आप दोनों ने गुप्त स्थल से धन को उठाने के समान ही गर्त से निकाला ॥११ ॥

१२८४. तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अथर्वकुल में जन्म लेने वाले दधीचि ऋषि ने अश्व मुख से आपको मधु विद्या का अभ्यास कराया । आपने इस प्रचण्ड पुरुषार्थ को सम्पन्न किया । जन सेवा की कामना से वर्षा के पूर्व घोषणा करने वाले मेघों की भाँति हम आपके इन कार्यों का प्रचार करते हैं ॥१२ ॥

१२८५. अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों असंख्यों के पालक, पोषक और कर्त्तव्यपरायण गुणों से युक्त हैं । लम्बी यात्रा के समय आप दोनों का कुशाग्र मति वाली स्त्री ने आवाहन किया था, उस स्त्री की प्रार्थना को राजा की आज्ञा जैसा मानकर आपने उसे हिरण्यहस्त नामक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया ॥१३ ॥

१२८६. आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने उपयुक्त वेला में भेड़ियों के मुख से चिड़िया को मुक्त किया । हे भोजन द्वारा असंख्यों के पालक ! दृढ़ निश्चय के सहित प्रार्थना करने पर आप दोनों ने कृपा पूर्वक एक नेत्रहीन कवि को श्रेष्ठ दर्शन हेतु दृष्टि प्रदान की ॥१४ ॥

१२८७. चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥१५ ॥

जिस प्रकार पक्षी का पंख गिर जाता है वैसे ही खेल राजा से सम्बन्धित विश्पला स्त्री का पैर युद्ध में कट गया था । ऐसे रात्रिकाल में ही उस विश्पला को युद्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् आक्रमण करने के लिए लोहे की जाँघ आप दोनों ने लगाकर तैयार किया ॥१५ ॥

१२८८. शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६ ॥

ऋज्राश्व ने अपने पिता की सौ भेड़ों को भेड़िये के भक्षण हेतु छोड़ने का अपराध किया । दण्डस्वरूप उसे

उसके पिता ने दृष्टि विहीन कर दिया । हे असत्य रहित, शत्रु संहारक वैद्यो ! (अश्विनीकुमारो !) उन नेत्रहीन (ऋज्राश्व) को कभी खराब न होने वाली आँखें देकर आप दोनों ने उसे दृष्टिहीन दोष से मुक्त किया ॥१६ ॥

१२८९. आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! सूर्य की पुत्री उषा घुड़सवारी प्रतिस्पर्धा (प्रतियोगिता) में विजयी होती हुई आपके रथ पर आकर विराजमान हो गई । सभी देवताओं ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया । बाद में आप दोनों भी सूर्य की पुत्री उषा से विशेष शोभायमान हुए ॥१७ ॥

१२९०. यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८ ॥

हे आवाहन योग्य अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों अन्नदाता दिवोदास के घर पर गये,तब उपभोग्य धन से परिपूर्ण रथ आपको ले गये थे । उस समय आपके रथ को शक्तिशाली और शत्रु विध्वंसक अश्व खींच रहे थे । यह आपकी ही विलक्षण सामर्थ्य है ॥१८ ॥

१२९१. रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९ ॥

हे असत्य रहित अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हविष्यान्नों द्वारा तीनों कालों में यजन करने वाली जह्नु की प्रजा को श्रेष्ठ क्षात्र बल, सुसंतति, उत्तम वैभव सम्पदा तथा श्रेष्ठ शौर्यमय जीवन स्वयं उनके समीप जाकर प्रदान करते हैं ॥१९ ॥

१२९२. परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२० ॥

अविनाशी, सत्य से युक्त हे अश्विनीकुमारो ! जाहुष राजा के चारों ओर से शत्रुसेना द्वारा घिरे होने पर आप दोनों ने रात्रिकाल में उस राजा को उस घेरे से उठाया और गुप्त लेकिन आसान मार्ग से उसे दूर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया । विशेष ढंग से शत्रु के घेरे को तोड़ने में सक्षम आप दोनों रथ पर बैठकर पर्वतों को लाँघकर अति दूर चले गये ॥२० ॥

१२९३. एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने वश नामक राजा को सहस्रों प्रकार के असंख्य धनों की प्राप्ति के लिए एक ही दिन में पूर्ण संरक्षणों से युक्त कर दिया । पृथुश्रवा के कष्टकर रिपुओं को इन्द्रदेव के सहयोग से आप दोनों ने पूर्णरूप से नष्ट कर दिया ॥२१ ॥

१२९४. शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥२२ ॥

हे सत्यपालक अश्विनीकुमारो ! प्यास से पीड़ित ऋचत्क के पुत्र शर के पीने हेतु आप दोनों जलस्तर को गहरे कुएँ से ऊपर ले आये । आप दोनों ने अपनी सामर्थ्यों से अत्यन्त कृषकाय शयु ऋषि के निमित्त वन्ध्या (प्रसूत न होने वाली) गाय को दुधारू बना दिया ॥२२ ॥

१२९५. अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।

पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥२३ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों की प्रार्थना करने वाले और अपनी रक्षा के इच्छुक सुगम मार्ग से जाने वाले, कृष्णपुत्र विश्वक के विनष्ट हुए पुत्र विष्णाप्व को, खोये हुए पशु के समान (खोजकर) आप दोनों ने अपनी सामर्थ्य शक्तियों से, दर्शनार्थ उपस्थित कर दिया ॥२३ ॥

१२९६. दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्व१न्तः ।

विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥२४ ॥

दुष्ट राक्षसों द्वारा पाश (रज्जु) से बाँधकर जलों के बीच दस रातों और नौ दिन तक फेंके हुए, भीगे, संत्रस्त और पीड़ित रेभ नामक ऋषि को आप दोनो उसी प्रकार बाहर निकालकर लाये, जिस प्रकार स्रुवा से सोमरस को ऊपर उठाते है ॥२४ ॥

१२९७. प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।

उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के कर्मों का हमने इस प्रकार से श्रेष्ठ वर्णन किया है, जिससे हम उत्तम गायों और शूरवीर पुत्रों से सम्पन्न इस राष्ट्र के शासक बन सकें । दीर्घ जीवन का लाभ लेकर दर्शनादि सामर्थ्यों से युक्त रहकर अपने घर में प्रविष्ट होने की तरह ही वृद्धावस्था में प्रवेश करें ॥२५ ॥

[सूक्त -११७]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में अश्विनीकुमारों के पास मन की गति से चलने वाले यान, अंधापन - बहरापन दूर करने की सामर्थ्य, अंग प्रत्यारोपण की क्षमताएँ होने का वर्णन है —

१२९८. मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।

बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥१ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! प्राचीन काल से आपकी सम्पूर्ण सेवा करने वाले आपके साधक, मधुर सोमरस के आनन्द को आपके लिए लाये हैं । हमारी प्रार्थनाएँ आप तक पहुँच गई हैं । इस कुशा के आसन पर आपके निमित्त सोमपात्र भरकर रखा है, अत: आप दोनों अपनी अन्न युक्त शक्तियों के साथ हमारे पास आयें और हमारा सहयोग करें ॥१ ॥

१२९९. यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।

येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥२ ॥

नेतृत्व की क्षमता से सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के रथ मन से भी तीव्र गतिशील, उत्तम अश्वों से युक्त रहते हैं । ऐसे रथ आपको प्रजाजनों के बीच ले जाते हैं, उसी से सत्कर्मरत साधकों के घर आप जाते हैं, उसी रथ पर आरूढ़ होकर आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥२ ॥

१३००. ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।

मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥३ ॥

नेतृत्व प्रदान करने वाले हे बलशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने पंचजनों के कल्याण के निमित्त

प्रयत्नशील अत्रि ऋषि को, पीड़ादायक कारावास से उनके सहयोगियों (अनुयायियों) के साथ मुक्त कराया। शत्रुओं का संहार करने वाले आप दोनों शत्रु की विनाशकारी मायावी चालों को पहले से ही ज्ञात करके क्रमश: दूर करते हैं ॥३॥

१३०१. अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥४॥

हे शक्तिशाली नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! दुष्कर्मियों द्वारा जलों के मध्य फेंके गए ऋषि रेभ की अति दुर्बल देह को, आप दोनों ने अपने औषधि आदि उपचारों से विशेष हृष्ट-पुष्ट बना दिया। घोड़े जैसी सुदृढ़ देह से युक्त कर दिया। आपके जो पूर्वकृत कार्य हैं वे अविस्मरणीय हैं ॥४॥

१३०२. सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥५॥

हे अरि विध्वंसक अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार आप अन्धकार में छिपे सूर्यदेव को उदय के पूर्व ऊपर लाते हैं, जिस प्रकार जमीन पर सोये पुरुष को ऊपर उठाते हैं अथवा भूमि के गर्त में पड़े हुए सुन्दर स्वर्ण के आभूषण को ऊपर धारण करते हैं, उसी प्रकार आप दोनो ने वन्दन को गर्त से बाहर निकाला ॥५॥

१३०३. तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

हे सत्य से युक्त नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! अंङ्गिरस गोत्र में पज्र कुलोत्पन्न कक्षीवान् ऋषि के निमित्त आपके कार्य अति प्रशंसनीय हैं, जो शक्तिशाली अश्व के खुर के समान महापात्र से आप दोनों ने मधु के सौ घड़ों को सभी मनुष्यों के पीने हेतु पूर्णरूप से भरकर तैयार रखा था ॥६॥

१३०४. युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥७॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने प्रार्थना करने वाले कृष्ण के पौत्र तथा विश्वक के पुत्र विष्णाप्व को उसके पिता के पास पहुँचाया। पिता के गृह में ही रोगी और वृद्धा के रूप में रहने वाली को रोग मुक्त करके नवयुवती बनाकर सुयोग्य वर आप दोनों ने ही प्रदान किया ॥७॥

१३०५. युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥८॥

हे शक्ति सामर्थ्य युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने ही श्याव ऋषि को उत्तम तेजस्विनी स्त्री प्रदान की। नेत्रहीन कण्व को उत्तम ज्योति दी। नृषद पुत्र जो बधिर था, उसे सुनने की शक्ति प्रदान की। आप दोनों के ये सभी कार्य अति प्रशंसनीय हैं ॥८॥

१३०६. पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं१ तरुत्रम् ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों विभिन्न रूप धारण करके रमण करते हैं। आपने पेदु को विजयशील, शत्रुओं का विनाश करने वाला, असंख्य धनों को प्रदान करने वाला, कीर्तिमान, संरक्षण कर्त्ता, बलशाली तथा तीव्र गतिमान् अश्व प्रदान किया ॥९॥

१३०७. एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥१० ॥

हे श्रेष्ठ दानदाता अश्विनीदेवो ! आप दोनों के ये कर्म श्रवणीय है । आपके निमित्त वेद मन्त्र रूपी स्तोत्र बने हैं तथा आप दोनों स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक दोनों स्थानों पर रहते हैं । हे अश्विनीदेवो ! क्योंकि आप दोनों को आङ्गिरस आवाहित करते हैं, अतएव अन्न के साथ आकर यजमान को भी अन्न बल प्रदान करें ॥१० ॥

१३०८. सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११ ॥

हे सर्व पोषणकर्त्ता, सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों से मान ने पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, उस यजमान को पुत्रोत्पत्ति की सामर्थ्य प्रदान की । अगस्त्य के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर आपने विश्पला के भग्न पाँव को ठीक किया ॥११ ॥

१३०९. कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों दिव्यलोक को स्थायित्व देने वाले और शयु के संरक्षक हैं । शुक्र की प्रार्थना स्वीकार करने के बाद आप दोनों किस ओर जाते हैं ? कुएं में पतित रेभ को दसवें दिन, गर्त में पड़े स्वर्ण कुम्भ के समान निकालने के पश्चात् आप दोनों कहाँ गये ? ॥१२ ॥

१३१०. युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३ ॥

हे सत्य पर दृढ़ अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपनी शक्ति सामर्थ्यों से अतिवृद्ध च्यवन ऋषि को पुनः तरुण बना दिया था । सूर्य की पुत्री ने अपने सौभाग्य सहित आप दोनों के रथ पर ही विराजमान होना स्वीकार किया था ॥१३ ॥

१३११. युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निःसमुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनो युवा तुग्र नरेश द्वारा पिछले समय में किये गये श्रेष्ठ कर्मों से पूजनीय थे ही; परन्तु अब जो उसके पुत्र भुज्यु को अथाह महासमुद्र से सुरक्षित करके पक्षी के समान उड़ने वाले अश्वों से युक्त यानों द्वारा उसके पिता के पास पहुँचाया, इससे तुग्र नरेश के लिए आप दोनो अत्यन्त सम्मानास्पद बन गये ॥१४ ॥

१३१२. अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! तुग्र नरेश के पुत्र भुज्यु को सागर यात्रा हेतु भेजा गया था । वे बिना किसी कष्ट के वहाँ चले गये । जब उनने सहयोग के लिए आप दोनों का आवाहन किया तब उसे मन के समान गतिशील तथा श्रेष्ठ ढंग से जोते गये रथ द्वारा आप दोनों ने पिता के घर सकुशल पहुँचा दिया ॥१५ ॥

१३१३. अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥१६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! वर्तिका के आवाहन पर वहाँ पहुँचकर भेड़िये के मुख से आप दोनों ने मुक्त किया, ऐसे

में वे अपने विजयी रथ से पर्वत के शिखर को पार करके पहुँचे । उसे घेरने वाले शत्रु के सैनिकों को आपने विष दग्ध वाणों से मार डाला ॥१६ ॥

१३१४. शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।

आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७ ॥

ऋज्राश्व ने सौ भेड़ें, भेड़िये को भक्षणार्थ दीं, इससे क्रुद्ध होकर उसके पिता ने दृष्टिहीन (अन्धा) कर दिया । हे अश्विनीकुमारो ! उस ऋज्राश्व की दोनों आँखों में आपने ज्योति प्रदान की । दृष्टिहीन को दृष्टि प्राप्त हो, इस उद्देश्य से आप दोनों ने उसकी आँखों का पुनर्निर्माण कर दिया ॥१७ ॥

१३१५. शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।

जारः कनीनइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥१८ ॥

ऋज्राश्व के दृष्टिहीन होने पर वृकी उसके सुख के लिए इस प्रकार प्रार्थना करने लगी कि हे सामर्थ्यशाली नेतृत्व प्रदान करने वाले देवो ! तरुण जार के द्वारा तरुणी को सर्वस्व सौंप देने के समान बेसमझी में एक सौ एक भेड़ें मेरे लिए भक्षण हेतु दी गई थीं ॥१८ ॥

१३१६. मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।

अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥१९ ॥

हे ज्ञान सम्पन्न सामर्थ्यशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों की संरक्षण शक्ति बड़ी कल्याणकारी है । आप अंग - भंग (वालों) को भली प्रकार ठीक कर देते हैं । आप दोनों का ही श्रेष्ठ बुद्धिमती स्त्री ने आवाहन किया है कि अपनी संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आयें ॥१९ ॥

१३१७. अधेनुं दस्रा स्तर्यं१ विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।

युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२० ॥

हे शत्रुनाशक अश्विनीकुमारो ! गर्भ धारण करने में असमर्थ, दुर्बल, दुग्धरहित गाय को शयु ऋषि के कल्याणार्थ आप दोनों ने दुधारू बना दिया । पुरु मित्र की पुत्री को विमद के लिए धर्मपत्नी रूप में आपने ही अपनी सामर्थ्यों से दिलवाया ॥२० ॥

१३१८. यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।

अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२१ ॥

हे शत्रु विनाशक अश्विनीकुमारो ! जौ आदि धान्य को हल से वपन करके मनुष्यों के लिए अन्न रस देते हुए और शत्रु को तेजधार वाले शस्त्र से विनष्ट करते हुए आप दोनों ही आर्यों के लिए विस्तृत प्रकाश दिखाते हैं ॥२१ ॥

१३१९. आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।

स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥२२ ॥

हे शत्रु संहारक अश्विनीकुमारो ! अथर्वकुल में उत्पन्न दधीचि ऋषि के अश्व का सिर आप दोनों ने लगाया, तब उस ऋषि ने यज्ञ मार्ग को प्रसारित करते हुए आप दोनों को मधु विद्या का उपदेश दिया तथा आप दोनों को शरीर के भग्न अङ्गों को जोड़ने की विद्या भी सिखाई ॥२२ ॥

१३२०. सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥२३ ॥

सत्य के प्रति स्थिर, कवि हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमें सदैव सद्बुद्धि की प्रेरणा प्रदान करें । हमें सत्कर्मों और सद्ज्ञान की ओर उत्तम रीति से प्रेरित करें । आप दोनों सुसन्तति से युक्त, श्रेष्ठ धनसम्पदा हमें प्रदान करें ॥२३ ॥

१३२१. हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥२४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों श्रेष्ठ दानदाता, औदार्यपूर्ण और नेतृत्व क्षमता से सम्पन्न हैं । बाँझ स्त्री को पुत्रदान देकर उसके हाथों को स्वर्ण सम्पदा को धारण करने योग्य बनाया । जो श्याव तीन स्थानों से घायलावस्था में पड़े थे, उन्हें जीवनदान देने हेतु आप दोनों के द्वारा उत्तम ढंग से परिचर्या की गयी ॥२४ ॥

१३२२. एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२५ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आपके शौर्ययुक्त कर्मों की प्राचीन समय से ही सभी मनुष्य प्रशंसा करते रहे हैं । आप दोनों के निमित्त ही हमने इस स्तोत्र की रचना की है । इससे हम श्रेष्ठ वीर बनकर, सभाओं में प्रखर प्रवक्ता बनें ॥२५ ॥

[सूक्त - ११८]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता-** अश्विनीकुमार । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१३२३. आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥१ ॥

हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों का रथ बैठने के लिए सुखप्रद, अपनी बनावट से सुदृढ़, मनुष्य के मन से भी अधिक गतिशील, वायु के समान गतिवान्, बाज़ पक्षी की तरह आकाश मार्ग में गमनशील तथा जो तीन स्थानों से सुदृढ़तायुक्त है, उस रथ से आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥१ ॥

१३२४. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने तीन पहियों से युक्त, तीन बन्धनों वाले, त्रिकोणाकृति तथा उत्तम गतिशील रथ पर चढ़ कर हमारे यहाँ पहुंचे । आप हमारे लिए दुधारू गौएँ, गतिशील अश्व तथा शूरवीर सन्तानें प्रदान करें ॥२ ॥

१३२५. प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३ ॥

हे अरि विनाशक अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अपने सुन्दर शीघ्र गतिशील रथ से यहाँ आकर सोमरस अभिषवण काल में स्तोत्रगान सुनें । आप दोनों के सम्बन्ध में पुरातन काल के ज्ञानवान् बार-बार कहते रहे हैं कि आप दरिद्रता और दुःखों का नाश करने के लिए ही विचरण करते हैं ॥३ ॥

१३२६. आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।

ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥४ ॥

सत्य का पालन करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! गिद्ध पक्षी की भाँति आकाश मार्ग में तीव्र गति से उड़ने वाले बाज़ पक्षी जिस रथ को खींचते हैं, वह रथ आप दोनों को अति शीघ्र यज्ञस्थल की ओर ले आये ॥४ ॥

१३२७. आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।

परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों से स्नेह करने वाली सूर्यदेव की तरुणी कन्या (उषा) आपके रथ पर चढ़कर बैठ गई । इस रथ में जोते गये लाल रंग के, शरीर एवं आकृति से पक्षी की तरह उड़ने वाले अश्व, आप दोनों को यज्ञस्थल के समीप ले आयें ॥५ ॥

१३२८. उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।

निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥६ ॥

सामर्थ्ययुक्त, शत्रु विनाशक हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपनी अद्भुत सामर्थ्य शक्ति से वन्दन को और रेभ को कुएँ से निकालकर बाहर किया । तुग्र नरेश के पुत्र भुज्यु को समुद्र से उठाकर घर पहुँचाया तथा वृद्ध च्यवन को पुनः युवा बनाया था ॥६ ॥

१३२९. युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।

युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! कारागृह के भीतर तलघर में स्थित अत्रि ऋषि के लिए आप दोनों ने जल से अग्नि को शान्त किया और उसे पौष्टिक तथा शक्तिवर्धक अन्न प्रदान किया । इसी प्रकार कण्व की आँखों को मार्ग देखने के लिए ज्योति युक्त किया । इसीलिए आप दोनों की सब ओर से प्रशंसा होती है ॥७ ॥

१३३०. युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।

अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने प्राचीन काल में स्तुति करने वाले शयु के निमित्त गाय को दुधारू बनाया, बटेर को भेड़िये के मुख से मुक्त किया तथा विश्पला की भग्न टाँग के स्थान पर उचित प्रक्रिया (शल्य क्रिया) से लोहे की टाँग लगा दी ॥८ ॥

१३३१. युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अहि (शत्रुओं) का नाश करने वाले सुदृढ़ एवं बलिष्ठ अंगों से युक्त, शत्रुओं को पराजित करने वाले सहस्रों प्रकार से धनों के विजेता, युद्धों में अति उपयोगी, इन्द्रदेव की प्रेरणा से युक्त, बलशाली, सफेद अश्व को पेदु के लिए प्रदान किया था ॥९ ॥

१३३२. ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।

आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१० ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए आप दोनों का अपने संरक्षणार्थ हम आवाहन करते हैं । आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें । हमारी प्रिय वाणियों को सुनते ही अपने रथ को धन सम्पदा से परिपूर्ण करके हमारे कल्याणार्थ यहाँ आयें ॥१० ॥

१३३३. आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।

हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥११ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीदेवो ! आप दोनों एकमत होकर अपने श्येन पक्षी को अतिवेग से गतिशील करके हमारे पास आयें । हे अश्विनीदेवो ! शाश्वत रहने वाली देवी उषा के उदय होते ही हम हविष्यान्न तैयार करके आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप आयें और हवि ग्रहण करें ॥११ ॥

[सूक्त - ११९]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता-** अश्विनीकुमार । **छन्द-** जगती ।]

१३३४. आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।

सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! विविध प्रकार की कलाकारिता से पूर्ण, मन के समान गतिमान् पावन, गतिशील अश्वों से युक्त, विविध पताकाओं से सुसज्जित, सुखदायक, सैकड़ों प्रकार के धनों से परिपूर्ण, शीघ्रगामी आपके रथ का हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए आवाहन करते हैं, वे आयें और हमें दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥१ ॥

१३३५. ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।

स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! इस रथ के अग्रसर होने पर हमारी बुद्धि आप दोनों की प्रशंसा करते हुए उच्चस्तरीय स्तोत्रों का गान कर रही है । सभी दिशाओं के लोग इसमें सम्मिलित होते हैं । घृतादि पदार्थ श्रेष्ठ बनाकर यज्ञ के निमित्त तैयार करते हैं । यज्ञ के प्रभाव से संरक्षण करने वाली शक्तियाँ चारों ओर फैल रही हैं । आप दोनों के रथ पर सूर्य देव की तेजस्वी पुत्री देवी उषा विराजमान हैं ॥२ ॥

१३३६. सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।

युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब जन साधारण के कल्याण के लिए युद्ध में अनेक विजेता महान् शूरवीर पारस्परिक स्पर्धा भाव से एकत्रित होते हैं, तब आप दोनों का रथ मन्द गति से नीचे आता हुआ दिखाई देता है । जिसमें याजकों के लिए श्रेष्ठ धन आप अपने साथ लेकर आते हैं ॥३ ॥

१३३७. युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।

यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१ दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥४ ॥

हे शक्तिमान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपने ही प्रयासों से, पक्षियों के समान उड़ने वाले यान द्वारा जीवन के प्रति संशयात्मक स्थिति में (भ्रम में) पहुँचे हुए तुग्रपुत्र भुज्यु को, उसके माता - पिता के निकट पहुँचाया था । आप दोनों का यह सहयोग-संरक्षण दिवोदास के लिए भी अति महत्वपूर्ण था ॥४ ॥

१३३८. युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों रथ पर बैठे हुए तथा स्वयं रथ को जोतते हुए अतिशय शोभायमान हो रहे थे । रथ आपके इशारे पर ही चल रहा था । मित्रता की इच्छुक, विजय से प्राप्त करने योग्य सूर्य पुत्री देवी उषा ने आप दोनो को पतिरूप में वरण किया है ॥५ ॥

१३३९. युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६ ॥

आप दोनों ने 'रेभ' को कष्ट से मुक्त किया । अत्रि ऋषि के कारागृह के अति गर्म स्थान को शीतल जल से शान्त किया । शयु के लिए गौओं को दुधारू बनाया तथा आप दोनों ने ही वन्दन को दीर्घ-जीवन प्रदान किया ॥६ ॥

१३४०. युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७ ॥

शत्रुओं का संहार करने वाले एवं कार्य मे कुशल हे अश्विनीकुमारो ! रथ का जीर्णोद्धार करने के समान आपने अतिवृद्ध 'वन्दन' को नवयुवक बना दिया । प्रार्थना द्वारा प्रशंसित होकर ज्ञानवान् को भूमि से (वृक्ष उगने के समान ही) उत्पन्न किया, अतएव आप दोनों के ये सहयोग पूर्ण कार्य यहाँ स्थित व्यक्तियों के लिए अतीव प्रभावपूर्ण रहे ॥ ७ ॥

१३४१. अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥८ ॥

तुग्र नामक अपने ही पिता द्वारा परित्यक्त किये जाने पर कष्ट से पीड़ित अवस्था में प्रार्थना करने वाले मन्यु के पास आप दोनों दूरवर्ती स्थान पर भी चले आये । ऐसे आप के ये संरक्षण युक्त कार्य बहुत ही अद्भुत, तेजस्वी और सबके लिए अनुकरणीय हैं ॥८ ॥

१३४२. उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे । सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९ ॥

जिस प्रकार मधुमक्खी मधुरस्वर में गुंजन करती है, वैसे ही सोमपान की प्रसन्नता में उशिक् के पुत्र कक्षीवान् आपका आवाहन करते हैं । जब दधीचि ऋषि के मन को आपने अपनी सेवा से प्रभावित किया, तब घोड़े के शिर से युक्त होकर उन्होंने आप दोनों (अश्विनीकुमार) के प्रति मधु विद्या का उपदेश दिया ॥९ ॥

१३४३. युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने सबके द्वारा प्रशंसनीय, तेजस्वी, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, शत्रु पक्ष से अजेय, इन्द्रदेव के सदृश शत्रुओं के पराभव कर्ता, चपल सफेद अश्व को पेदु नरेश के लिए प्रदान किया ॥१० ॥

[सूक्त - १२०]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । देवता- अश्विनीकुमार, ११२ दु:स्वप्ननाशक । छन्द- १ गायत्री, २ ककुप् उष्णिक्, ३ का- विराट् अनुष्टुप्, ४ नष्टरूपी अनुष्टुप्, ५ तनुशिरा उष्णिक्, ६ उष्णिक् (पादानुसार नहीं, केवल अक्षरानुसार) ७ विष्टारबृहती, ८ कृति, ९ विराट् अनुष्टुप्, १०-१२ गायत्री ।]

१३४४. का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयो: । कथा विधात्यप्रचेता: ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों को किस प्रकार की प्रार्थना प्रिय है, जिससे आप प्रसन्न होते हैं ? आप को सन्तुष्ट करने में कौन सक्षम हो सकता है ? अल्पज्ञ मनुष्य आपकी उपासना कैसे करें ? ॥१ ॥

१३४५. विद्वांसाविद्दुर: पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेता: । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥२ ॥

ज्ञान रहित और प्रतिभा रहित ये दोनों प्रकार के मनुष्य विद्वान अश्विनीकुमारों से ही उचित मार्गदर्शन प्राप्त कर लें । क्या वे मानव हित के सम्बन्ध में कुछ न कर पाने की असमर्थता प्रकट करेंगे ? ऐसा सम्भव नहीं, वे अवश्य ही मानवों के कल्याण के प्रति प्रेरित होंगे ॥२ ॥

१३४६. ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकु: ॥३ ॥

हम सहयोग के लिए आप अश्विनीकुमारों का आवाहन करते हैं, आप आज हमें यहाँ आकर चिंतन प्रधान मार्गदर्शन दें, आप दोनों के प्रति मित्रता के इच्छुक ये मनुष्य हवि समर्पित करते हुए आपकी अर्चना करते हैं ॥३ ॥

१३४७. वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो न: ॥४ ॥

हे शत्रु संहारक अश्विनीकुमारो ! हमारी प्रार्थना आप से ही है, अन्य के प्रति नहीं । अद्भुत शक्ति के उत्पादक, आदर पूर्वक दिये गये इस सोमरस को आप दोनों ग्रहण करें तथा हमें जिम्मेदारी पूर्ण कार्यों को वहन करने की सामर्थ्य प्रदान करें ॥४ ॥

१३४८. प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५ ॥

घोषा ऋषि के पुत्र, भृगु ऋषि तथा ज्ञान सम्पन्न एवं अन्न के इच्छुक पज्र कुल में उत्पन्न अंगिरा ऋषि जिस प्रकार की स्तुति रूप वाणी का प्रयोग आप दोनों के प्रति करते रहे वैसी ही प्रस्तुतीकरण की विधा हमारी वाणी में भी आये ॥५ ॥

१३४९. श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥६ ॥

हे कल्याण के स्वामी अश्विनीकुमारो ! प्रगति की इच्छा से प्रेरित ऋषि का यह गायत्री छन्द का स्तोत्र आप दोनों ने श्रवण किया । आप दोनों नेत्रहीनों को दृष्टि प्रदान करते हैं, इसके लिए हम आपका गुणगान करते हैं हमारा भी मनोरथ पूर्ण करें ॥६ ॥

१३५०. युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायो: ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों किसी साधक को प्रचुर दान भी देते हैं और किसी से धन शक्ति को पूर्णरूपेण अलग भी कर देते हैं । ऐसे आप दोनों हमारे श्रेष्ठ संरक्षक बनें । दुष्कर्मी तथा भेड़िये के समान क्रोधी शत्रुओं से हमें बचायें ॥७ ॥

१३५१. मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥८ ॥

किसी भी प्रकार के शत्रुओं से हमारा पराभव न हो । अपने दूध से भरण - पोषण करने वाली गौएँ बछड़ों से अलग होकर हमारे घरों का कभी त्याग न करें अर्थात् हमारे घर दुग्ध आदि पोषक रसों से सदैव परिपूर्ण बने रहें ॥८ ॥

१३५२. दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥९ ॥

आप से सहयोग पाने के इच्छुक हम लोग मित्रों के भरण-पोषण के लिए प्रचुर धन सम्पदा चाहते हैं । अतएव शक्ति से सम्पन्न धन और गोधन से भरपूर अन्न हमें प्रदान करें ॥९ ॥

१३५३. अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१० ॥

सैन्य शक्ति से सम्पन्न अश्विनीकुमारों से अश्वों के बिना चलने वाले इस रथ को हमने प्राप्त किया है । इससे हम प्रचुर यश प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं ॥१० ॥

[बिना अश्व शक्ति के मंत्र या संकल्प शक्ति से चलने वाले यान की उपलब्धि का संकेत यहाँ है ।]

१३५४. अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥११ ॥

यह सुखदायक रथ धनों से परिपूर्ण है । अश्विनीकुमार सोमपान के लिए याज्ञिक जनों के समीप इसी में सवार होकर जाते हैं । यह रथ हमें यशस्विता प्रदान करने वाला हो ॥११ ॥

१३५५. अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः ॥१२ ॥

असमर्थों को भोजन प्रदान करने तक की उदारता न रखने वाले धनवानों को और आलस्य-प्रमाद में पड़े रहने वाले व्यक्तियों को देखकर हमें बहुत खेद होता है; (क्योंकि) शीघ्र ही उनका विनाश सुनिश्चित है ॥१२ ॥

[सूक्त - १२१]

[**ऋषि**- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता**- इन्द्र अथवा विश्वेदेवा । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१३५६. कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥१ ॥

मनुष्यों को संरक्षण प्रदान करने वाले इन्द्रदेव शीघ्रता से देवत्व पद पाने के इच्छुक अंगिरसों की प्रार्थनाओं को इस प्रकार कब सुनते हैं ? इसका सुनिश्चित ज्ञान नहीं; लेकिन जब स्वीकार करते हैं, तब प्रजाजनों के घर में स्थित यज्ञ में शीघ्रता पूर्वक पहुँचकर उनकी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करते हैं ॥१ ॥

१३५७. स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥२ ॥

निश्चित ही उन्ही (सूर्य रूप इन्द्रदेव) ने द्युलोक को स्थिरता प्रदान की है । तेजस्वी रश्मियों के प्रकाशक ये इन्द्रदेव सर्वत्र अन्न उत्पादन के लिए जल को बरसाने के माध्यम हैं वे महान् सूर्यदेव अपनी

कन्या देवी उषा के पश्चात् प्रकाशित होते हैं तथा वे शीघ्र गतिशील चन्द्रमा की पत्नी रात्रि को प्रकाश किरणों की माता बनाते हैं ॥२ ॥

[रात्रि के गर्भ में प्रकाश रहता है । अंतरिक्ष में अनन्त सूर्यों का प्रकाश है, परावर्तित हुए बिना वह दिखता भर नहीं है । भू उपग्रह आदि रात्रि में उसी प्रकाश से तारे की तरह चमकते दिखते हैं ।]

१३५८. नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥३ ॥

श्रेष्ठ मनुष्यों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने वाले, आंगिरसों के ज्ञाता, सूर्यदेव (इन्द्रदेव) नित्य ही उषाओं को प्रकाशमान करते हुए श्रेष्ठ स्तुति रूप वाणियों से सम्मानित होते हैं (वन्दनीय होते हैं) । साथ ही वे इन्द्रदेव वज्र को तेजधार युक्त करते हैं तथा सम्पूर्ण प्राणि मात्र के कल्याण के निमित्त वे दिव्य लोक को स्थिरता प्रदान करते हैं ॥३ ॥

१३५९. अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्त्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! इन प्रार्थनाओं से प्रशंसित होकर आप रात्रि में छिपी हुई प्रकाशमय किरणों के समूह को यज्ञ सम्पादन के लिए प्रकट करते हैं । जब तीनों लोकों में सर्वोत्तम इन्द्रदेव युद्ध में तत्पर हो जाते हैं, तब वे द्रोहियों के लिए पतन का मार्ग खोल देते हैं ॥४ ॥

१३६०. तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्त्रियायाः ॥५ ॥

जब मनुष्य उत्तम दुधारू गौओं के पवित्र घृत-दुग्धादि से आपके लिए यज्ञ करते हैं, तब हे इन्द्रदेव ! शीघ्रतापूर्वक क्रियाशील आपके लिए भरण-पोषण कर्त्ता माता-पिता रूप द्यावापृथिवी, ऐश्वर्यप्रद और श्रेष्ठ उत्पादन क्षमता से युक्त वृष्टिरूप जल को बरसाते हैं ॥५ ॥

१३६१. अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥६ ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं, वैसे ही दुःखनाशक इन्द्रदेव भी उषाओं के निकट प्रकाशित होते हैं । श्रेष्ठ मधुर पदार्थों की हवि प्रदान करने वाले यजमानों द्वारा इन्द्रदेव के लिए यज्ञस्थल पर स्रुवा पात्र से सोमरस प्रदान किया जाता है । ऐसे सोम से अभिषिंचित होकर वे प्रसन्न हों ॥६ ॥

१३६२. स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥७ ॥

जब प्रकाशित सूर्य किरणों के माध्यम से मेघ जल वर्षण करते हैं, तब इन्द्रदेव यज्ञार्थ किरणों के अवरोध को दूर कर देते हैं । हे इन्द्रदेव ! जब आप (सूर्य रूप में) किरणों का संचार करते हैं, तब गाड़ीवान्, पशुपालक तथा गतिशील पुरुष अपने कार्यों की पूर्ति के लिए तत्पर होते हैं ॥७ ॥

१३६३. अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम् ।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब यज्ञकर्त्ता मनुष्य आपके संवर्धन के लिए उत्तम, आनन्दप्रद, गाय के दूध से मिश्रित और

शक्तिप्रद सोम को पत्थरों द्वारा कूटपीस कर बनाते हैं, तब विस्तृत दिव्यलोक को संव्याप्त करने वाली आपकी अश्वरूपी किरणें हविरूप सोमरस को यहाँ आकर ग्रहण करें । आप वृष्टि अवरोधक तत्वों को हटाकर तेजस्वी जलधाराओं को चारों ओर बरसायें ॥८ ॥

१३६४. त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।

कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥९ ॥

अनेकों द्वारा आवाहित हे इन्द्रदेव ! जब आप कुत्स के संरक्षण के लिए शुष्ण दानव को विभिन्न शस्त्रों का प्रहार करके नाश करते हैं, तब सभी निर्भय होकर चारों दिशाओं में विचरण करते हैं । उस आक्रान्ता के हनन के लिए आप ऋभु द्वारा स्वर्गलोक से लाये गये पत्थर और लोहे से निर्मित अस्त्रों-शस्त्रों का प्रहार करते हैं ॥९ ॥

१३६५. पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।

शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥१० ॥

जब वज्रधारी इन्द्रदेव ने बादलों को नष्ट करने वाले शस्त्र का प्रहार किया, तब सूर्यदेव मुक्त हुए । हे इन्द्रदेव ! आपने शुष्ण (शोषण करने वाले असुर) का जो बल द्युलोक को घेरे हुए था, उसे नष्ट कर दिया ॥१० ॥

१३६६. अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।

त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥११ ॥

महान् सामर्थ्य से युक्त, हे इन्द्रदेव ! सभी ओर संव्याप्त, द्युलोक और भूलोक ने आपके कार्य के प्रति आभार प्रकट किया, तब प्रोत्साहित होकर आपने विशाल वज्र द्वारा वृत्र को जल में ही सुला दिया ॥११ ॥

१३६७. त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।

यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! क्रान्तदर्शी के पुत्र 'उशना' ने आनन्दप्रद, वृत्रहन्ता तथा शत्रु आक्रान्ता वज्र आपके लिए प्रदान किया । आपने उसे तीक्ष्ण बनाया । तत्पश्चात् भार वहन में कुशल, रथ में भली प्रकार नियोजित होने वाले तथा वायु के समान वेगवान् घोड़ों से खींचे जाने वाले रथ पर बैठकर आप मनुष्यों के हित चिन्तकों को संरक्षण प्रदान करते हैं ॥१२ ॥

१३६८. त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।

प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रकाशमान सूर्यदेव के समान ही मनुष्यों की हितकारक और रसों को अवशोषित करने वाली रश्मियों को आलोकित करते हैं । आपके रथ का चक्र सदैव गतिमान् रहता है । नौकाओं से लाँघने योग्य नब्बे नदियों के पार यज्ञ विरोधियों को फेंककर आपने विलक्षण कार्य सम्पन्न किया ॥१३ ॥

१३६९. त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।

प्र नो वाजान्रथ्यो३ अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥१४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिन्हें अति प्रयास पूर्वक ही नष्ट किया जा सकता है ऐसे दुर्गति कारक पापकर्मों से हमें बचाकर संरक्षित करें । युद्ध भूमि में भली प्रकार से हमारी रक्षा करें । हमें यश, बल तथा श्रेष्ठ सत्य से युक्त व्यवहार के निमित्त रथ और अश्वों से युक्त ऐश्वर्य सम्पदा प्रदान करें ॥१४ ॥

१३७०. मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त ।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५ ॥

अपनी सामर्थ्यों से स्तुति योग्य हे इन्द्रदेव ! आपकी विवेक-युक्त बुद्धि का कभी हमारे जीवन में अभाव न हो । विवेक बुद्धि से हम सभी प्रकार के अन्न एवं धन को अर्जित करें । हे श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमें गोधन से परिपूर्ण करें तथा आपकी महिमा को बढ़ाने वाले हम सभी एक साथ रहकर आनन्दित हों ॥१५ ॥

[सूक्त - १२२]

[**ऋषि**- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता**- विश्वेदेवा । **छन्द**- त्रिष्टुप्, ५-६ विराड्रूपा त्रिष्टुप् ।]

१३७१. प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१ ॥

हे अक्रोधी ऋत्विजो ! आप हर्ष प्रदायक रुद्रदेव के निमित्त अन्नरूपी आहुति प्रदान करें । जिस प्रकार धनुर्धारी बाणों से शत्रु पक्ष का विनाश करते हैं, वैसे ही दिव्यलोक से आकर असुरता के संहारक, दिव्यलोक और भूलोक के मध्य शूरवीरों के साथ वास करने वाले मरुद्गणों की हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१३७२. पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२ ॥

जिस प्रकार धर्मपत्नी अपने पति का सदैव सहयोग करती है, उसी प्रकार देवी उषा और रात्रि हमारी पूर्व प्रार्थनाओं को जानकर हमें प्रगति मार्ग पर अग्रसर करें । अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्यदेव के समान स्वर्णिम वस्त्रों से सुसज्जित सूर्यदेव की सुषमा से सुशोभित तथा दर्शन में अति रूपवती देवी उषा हमें समुन्नति के शिखर पर पहुँचायें ॥२ ॥

१३७३. ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३ ॥

तिमिर नाशक और दिन लाने वाले, सर्वत्र विचरणशील सूर्यदेव हमें सभी सुखों को प्रदान करें । वायुदेव जलवृष्टि करके हमें आनन्दित करें । इन्द्रदेव और मेघ आप दोनों को एवं हमें (अथवा हमारी बुद्धि को) परिष्कृत करें तथा सभी देवगण हमें ऐश्वर्यों से सम्पन्न बनायें ॥३ ॥

१३७४. उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४ ॥

उशिक् पुत्र कक्षीवान् द्वारा अपनी यशस्विता और तेजस्विता उपलब्ध करने हेतु सर्वत्र गमनशील, पालनकर्त्ता अश्विनीकुमारों की प्रार्थना की जाती है । हे मनुष्यो ! आप सत्कर्मों के संरक्षक अग्निदेव के निमित्त श्रेष्ठ प्रार्थना करें तथा स्तुति करने वालों के माता-पिता के सदृश द्यावा-पृथिवी की भी प्रार्थना करें ॥४ ॥

१३७५. आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥५ ॥

हे देवो ! जिस प्रकार घोषा नामक स्त्री ने रोग निवारण के निमित्त अश्विनीकुमारों का आवाहन किया, उसी प्रकार उशिक् पुत्र कक्षीवान् अपने दुःखों की निवृत्ति के लिए आपके आवाहन हेतु सस्वर स्तोत्रों का उच्चारण

करते हैं। आपके साथ धनदाता पूषादेव की भी प्रार्थना करते हैं। अग्निदेव द्वारा प्रदत्त सम्पदाओं के लिए भी प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

१३७६. श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम्।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! आप दोनों हमारा निवेदन सुनें तथा यज्ञ मण्डप में चारों ओर से उच्चारित प्रार्थना को भी सुनें। सुविख्यात, दानशील जलवर्षक देव हमारी प्रार्थना को सुनकर जलराशि से हमारे खेतों को सिंचित करें ॥६ ॥

१३७७. स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७ ॥

हे वरुण और मित्र देवो ! हम आपकी प्रार्थना करते हैं। जहाँ अश्व तीव्र गति से चलाये जाते हैं, ऐसे संग्राम में शूरवीर ही असंख्य गौओं रूपी धन को उपलब्ध करते हैं। आप दोनों उस विख्यात एवं अपने प्रिय रथ में बैठकर शीघ्र यहाँ आकर हमें पुष्ट करें ॥७ ॥

१३७८. अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८ ॥

जो सामर्थ्यवान् मनुष्य घोड़ों और रथों से सुसज्जित योद्धाओं को हमारे संरक्षणार्थ प्रेरित करते हैं। ऐसे महान् वैभवशाली मनुष्यों का धन सभी जनों द्वारा सराहा जाता है। श्रेष्ठ शौर्यवान् हम सभी मनुष्य एक साथ संगठित हों ॥८ ॥

१३७९. जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक्।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥९ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! जो मनुष्य आपसे निष्कारण द्वेष करते हैं, जो सोमरस निष्पादित करने से वंचित हैं तथा यज्ञीय भावना से रहित हो कुमार्ग पर चलते हैं, वे अनेक प्रकार के मानसिक और हृदय सम्बन्धी रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। लेकिन जो मनुष्य सत्यमार्ग पर चलते हुए मन्त्रों द्वारा यज्ञ सम्पन्न करते हैं, वे सदैव आपकी कृपा को प्राप्त करते हैं ॥९ ॥

१३८०. स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१० ॥

हे देवो ! यजन करने वाले साधक अश्वों से युक्त होकर, शत्रुओं के भयंकर विनाशकर्त्ता, अति तेजस्वी, याचकों के प्रति उदारतायुक्त तथा महान् बलशाली होते हैं। वे सभी युद्धों में अति सामर्थ्यवान् शत्रुओं का भी विध्वंस करते हुए अग्रसर होते हैं ॥१० ॥

१३८१. अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११ ॥

हे आकाशव्यापी देवो ! आप अपनी सामर्थ्य से, अकल्याणकारी दुष्टों की सम्पदा को, प्रशंसा के योग्य श्रेष्ठ रथधारी शूरवीरों के लिए हस्तान्तरित करते हैं। तेजवान् हर्षदायक और अमृत स्वरूप यज्ञ की ओर प्रेरित करने वाले हे देवो ! मनुष्यों की स्तुतियों को सुनकर आप यहाँ पधारें ॥११ ॥

१३८२. एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२ ॥

"जिस स्तुतिकर्त्ता द्वारा दस चमस पात्रों में रखे गये सोम के लिए आपको बुलाया गया है, आप उसकी सामर्थ्यशक्ति को बढ़ायेंगे" ऐसा देवों का कथन है। जिन देवताओं में तेजस्विता युक्त ऐश्वर्य सुशोभित हो, ऐसे सभी देव हमारे यज्ञों में आकर हविष्यान्न का सेवन करें ॥१२ ॥

१३८३. मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥१३ ॥

याज्ञिक दस चमस पात्रों में रखे सोम रूपी हविष्यान्न को लेकर आते हैं। उन पात्रों में रखे सोमरस रूपी अन्न से हम प्रशंसित हैं। जो अश्वों को लगामों द्वारा भली प्रकार नियंत्रित करने की कला में निपुण है, ऐसे शत्रु संहारक (देवों) के होते हुए श्रद्धालु मनुष्यों को पीड़ित करने में भला कौन समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई भी उनका अहित करने में सक्षम नहीं ॥१३ ॥

१३८४. हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४ ॥

सम्पूर्ण देवता हमें कानों में स्वर्ण आभूषण तथा कण्ठ में मणियों को धारण किये हुए सुसन्तति प्रदान करें। ये श्रेष्ठ देवता हमारे द्वारा उच्चारित प्रार्थनाओं एवं घृतादि आहुतियों को दोनों प्रकार के यज्ञों में शीघ्र ही ग्रहण करें ॥१४ ॥

१३८५. चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥१५ ॥

विजयी तथा शत्रु संहारक "मशर्शार" राजा के चार (काम, क्रोध, लोभ, मोह) पुत्र और अन्नों के अधिपति "आयवस" नरेश के तीन पुत्र (त्रिताप- दैहिक, दैविक और भौतिक) हमें पीड़ित करते हैं। हे मित्र और वरुण देवो! आप दोनों का विशालकाय सुखकारी रश्मियों से युक्त रथ सूर्यदेव के सदृश आलोकित हो ॥१५ ॥

[सूक्त - १२३]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। देवता- उषा। छन्द- त्रिष्टुप्।]

१३८६. पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णा दुदस्थादर्या३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१ ॥

इन कुशलदेवी उषा का विस्तृत रथ जुत करके तैयार हो गया है और उस पर अमर देवगण आकर विराजमान हो गये हैं। ये विशेष रूप से प्रकाशित उत्तम देवी उषा मानवों के सुखदायी निवास के निमित्त प्रयत्नशील होकर भयंकर काले अन्धकार से ऊपर उठकर प्रकाशमान हुई हैं ॥१ ॥

१३८७. पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों से पहले देवी उषा जागती है, यह प्रचुर दानदात्री देवी उषा ऐश्वर्यों की जनयित्री हैं। यह बार-बार आने वाली चिर युवा देवी उषा सर्वप्रथम यज्ञ करने के निमित्त प्रथम स्थान पर विराजमान होती हैं और ऊँचे स्थान से सबको देखती हैं ॥२ ॥

१३८८. यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३ ॥

हे कुलीन उषा देवि ! मनुष्यों की पालनकर्त्री आप जिस समय मनुष्यों के लिए धन का, योग्य भाग प्रदान करती हैं, उस समय दान के प्रति प्रेरित करने वाले देव, सूर्य के अभिमुख हमें पापरहित बनाएँ ॥३ ॥

१३८९. गृहङ्गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४ ॥

हविर्भाग को ग्रहण करने के लिए ज्योतिर्मय देवी उषा प्रतिदिन आगमन करती हैं । कीर्ति को धारण करने वाली देवी उषा प्रतिदिन घर-घर जाती हैं (अर्थात् प्रकाश बाँटती हैं) तथा धनों के श्रेष्ठ अंश को ग्रहण करती हैं ॥४ ॥

१३९०. भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५ ॥

हे सुभाषिणि उषे ! आप भगदेव और वरुणदेव की बहिन हैं, ऐसी आप देवों में सर्वप्रथम स्तुति करने योग्य हैं । बाद में जो पापात्मा शत्रु हैं, उन्हें हम पकड़ें और आपके द्वारा दक्षता पूर्वक प्रेरित रथ से पराभूत करें ॥५ ॥

१३९१. उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६ ॥

हमारे मुख स्तोत्रगान करें । प्रखर विवेक बुद्धि सत्कर्मों की ओर प्रेरित करे । प्रज्वलित अग्नि ज्वलनशील रहे, तब उनके निमित्त तेजस्वी उषाएँ तमसाच्छादित (अन्धकार से छिपे) वाञ्छित धनों को प्रकट करें ॥६ ॥

१३९२. अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७ ॥

विपरीत रूप-रंग वाली रात्रि और देवी उषा क्रमशः आती और जाती हैं । एक के चले जाने पर दूसरी आती हैं । इन भ्रमणशीलों में से एक रात्रि अन्धकार से सबको आच्छादित कर देती है और दूसरी देवी उषा दीप्तिमान् तेजरूप रथ से सबको प्रकाशित करती हैं ॥६ ॥

१३९३. सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८ ॥

आज ही के समान कल भी ये उषाएँ यथावत् आएँगी । ये पवित्र उषाएँ वरुण देव के व्यापक स्थान में देर तक रहती हैं । एक-एक देवी उषा तीस-तीस योजनों की परिक्रमा करती हुईं नियत समय पर कर्म प्रेरक सूर्यदेव से आगे-आगे चलती हैं ॥८ ॥

१३९४. जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९ ॥

दिन के प्रारम्भिक काल को जानने वाली गौरवर्णा तेजस्विनी देवी उषा काली रात्रि के काले अन्धकार से उत्पन्न होती हैं, ये स्त्री रूपी देवी उषा सत्यव्रत को न त्यागती हुई प्रतिदिन निश्चित समय पर आतीं और नियमपूर्वक रहती हैं ॥९ ॥

१३९५. कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥

हे देवी उषे ! शरीर के स्वरूप को प्रकट करने वाली कन्या के समान ही आप भी अभीष्ट कामना पूरक पतिरूप सूर्यदेव के पास जाती हैं। पश्चात् नवयुवती के समान मुस्कराती हुई कान्तिमती होकर अपने प्रकाश किरणों रूपी वक्षस्थल को प्रकटरूप से प्रकाशित करती हैं ॥१०॥

१३९६. सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।

भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

माता द्वारा सुशोभित की गई नवयुवती के समान रूपवती ये देवी उषा अपने प्रकाश किरणों रूपी शारीरिक अंगों को मानो दिखाने के लिए प्रकट हो रही हों। हे उषे ! आप मनुष्यों का कल्याण करती हुई व्यापक क्षेत्र मे प्रकाशित रहें। अन्य उषाएँ आपकी तेजस्विता की समानता नहीं कर सकेंगी ॥११॥

१३९७. अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य।

परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥

अश्वों और गौओं से युक्त सबके द्वारा आदर-योग्य (वरण करने योग्य) सूर्यदेव की किरणों से अन्धकार को दूर भगाने में प्रयत्नशील, तथा कल्याणकारी यशस्विता को धारण करने वाली उषाएँ दूर जाती सी दीखती हैं, लेकिन फिर वहीं आ जाती हैं ॥१२॥

१३९८. ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।

उषो नो अद्य सुहवा व्युछास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३॥

हे देवि उषे ! सूर्यदेव की रश्मियों के अनुकूल रहते हुए आप हमारे अन्तरंग में कल्याणकारी कर्मों की प्रेरणा प्रदान करें। आप आवाहित किये जाने पर हमारे अभिमुख प्रकाशमान रहें। हमें और ऐश्वर्यवानों को प्रचुर मात्रा मे धन सम्पदा प्रदान करें ॥१३॥

[सूक्त - १२४]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। देवता- उषा। छन्द- त्रिष्टुप्।]

१३९९. उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्।

देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥

अग्नि के प्रदीप्त होने पर देवी उषा अन्धकार का नाश करती हैं और सूर्योदय के समान अति तेजस्विता को धारण करती हैं। ये सूर्यदेव हमें उपयोगी धन तथा मनुष्यों और मनुष्येत्तर प्राणियों को जाने के लिए मार्ग प्रशस्त करें। अर्थात् देवी उषा के आने के बाद हम मनुष्यों, गौ, अश्वादि पशुओं के लिए आने जाने के रास्ते खुल जायें ॥१॥

१४००. अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि।

ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२॥

ये देवी उषा अनुशासनात्मक नियमों का पालन करने वाली, मनुष्यों की आयु को लगातार कम करने वाली हैं। निरन्तर आने वाली विगत उषाओं के अन्त में तथा भविष्य में आने वाली उषाओं में यह सर्वप्रथम प्रकाशित होती हैं ॥२॥

१४०१. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३ ॥

स्वर्गलोक की कन्यारूपी ये देवी उषा प्रकाश रूप वस्त्र धारण करने वाली, श्रेष्ठ मनवाली तथा प्रतिदिन पूर्व दिशा से आती हुई दिखाई देती हैं। जिस प्रकार विदुषी नारी सत्य मार्ग से जाती हैं, उसी प्रकार दिशाओं में अवरोध न पहुँचाती हुई ये देवी उषा जाती हैं ॥३ ॥

१४०२. उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥४ ॥

शुद्ध पवित्र वक्षस्थल के समान देवी उषा समीप से ही दिखाई देती है। नई वस्तुओं का निर्माण करने वाले के समान ही देवी उषा ने अपने किरण रूपी अवयवों को प्रकट किया है। जिस प्रकार गृहस्थ महिलायें सोये हुए परिवारजनों को जगाती हैं, वैसे ही भविष्य में आनेवाली उषाओं में सर्वप्रथम ये देवी उषा दुबारा जगाने के लिए आ गई हैं ॥४ ॥

१४०३. पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५ ॥

विस्तृत अन्तरिक्ष लोक के पूर्व दिशा भाग में रश्मियों को उत्पन्न करने वाली देवी उषा ने प्रकाश रूपी ध्वजा को फहराया है। द्युलोक भूलोक रूपी माता-पिता के पास रहकर दोनों लोकों को प्रकाश से परिपूर्ण करती हुई ये देवी उषा विशिष्ट तेजस्वी प्रकाश से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करती हैं ॥५ ॥

१४०४. एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम्।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६ ॥

विस्तृत होने वाली ये देवी उषा सुख व आनन्द के लिए जिस प्रकार विरोधी का त्याग नहीं करतीं, उसी प्रकार आत्मीय जनों को भी अपने प्रकाश से वंचित नहीं करतीं (अर्थात् अपने पराये का भेद किये बिना अपने प्रकाश से सभी को लाभ देती हैं।) प्रकाश रूपी निर्दोष शरीर से प्रकाशित होने वाली देवी उषा जिस प्रकार छोटे से दूर नहीं होतीं, उसी प्रकार बड़े का त्याग नही करतीं, अपितु छोटे - बड़े का भेद किये बिना दोनों को प्रकाशित करती हैं ॥६ ॥

१४०५. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७ ॥

भ्रातृहीन बहिन जिस प्रकार निराश्रित होने पर वापस अपने माता-पिता के पास चली जाती है अथवा जिस प्रकार कोई विधवा धन में हिस्सा पाने के लिए न्यायालय में जाती है, उसी प्रकार उत्तम वस्त्रों को धारण करके सूर्य रूप पति से मिलने की इच्छुक ये देवी उषा मुस्कराती हुई अपने किरण रूपी सौन्दर्य को प्रकट करती हैं ॥७ ॥

[दिन रूपी भाई के होते ही यह माता-पिता (द्युलोक) के पास चली जाती है, कभी अपने भाई के साथ नही रहती।]

१४०६. स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥८ ॥

जिस प्रकार छोटी बहिन अपनी ज्येष्ठ बहिन के लिए स्थान रिक्त कर देती है, वैसे ही रात्रिरूपी छोटी बहिन अपनी ज्येष्ठ बहिन देवी उषा के लिए मानो अपने स्थान से हट जाती हैं। सूर्यदेव की रश्मियों से अन्धकार को

हटाती हुई ये देवी उषा उत्सव में जाने वाली स्त्रियों की तरह अच्छी प्रकार चलने वाली किरण समूह के समान अपने स्वरूप को प्रकट करती हैं ॥८ ॥

१४०७. आसां पूर्वासामहसु स्वसृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।

ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९ ॥

जो उषा रूपी बहिनें पहले चली गई हैं उन दिनों के बीच में अन्तिम देवी उषा के पीछे से एक-एक नवीन देवी उषा क्रम से जाती हैं । वे उषाएँ पूर्व की तरह नवीन दिन अर्थात् नयी उषाएँ भी हमारे लिए निश्चय ही प्रचुर धनयुक्त श्रेष्ठ दिवस को प्रकाशित करती रहें ॥९ ॥

१४०८. प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।

रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१० ॥

हे धनवति उषे ! आप दाताओं को जगायें । न जागने वाले लोभी व्यापारी सोते रहें । हे धनवती उषे ! धनवानों के निमित्त धन देने के साथ यज्ञीय भावना की प्रेरणा भी प्रदान करें । हे सुभाषिणि उषे ! सम्पूर्ण प्राणियों की आयु कम करने वाली आप स्तोताओं के निमित्त अपार वैभव से युक्त होकर प्रकाशमान हों ॥१० ॥

१४०९. अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।

वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥११ ॥

तरुणी स्त्री के समान ये देवी उषा पूर्व दिशा से प्रकाशित हो रही हैं । इन्होंने किरणों रूपी लाल वर्ण के अश्वों को अपने रथ में जोता हुआ है । ये देवी उषा निश्चित ही विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं । उसके प्रकाश रूपी ध्वजा रोहण के साथ ही घर-घर में यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है ॥११ ॥

१४१०. उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।

अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥१२ ॥

देवी उषा के प्रकाशित होते ही पक्षीगण अपना घोंसला त्याग देते हैं । मनुष्य भी अन्न की कामना के लिए प्रेरित होते हैं । हे देवी उषे ! आप गृहस्थ जीवन में रहकर यज्ञ और दानदाता मनुष्य के लिए प्रचुर धन सम्पदा प्रदान करें ॥१२ ॥

१४११. अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे ऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।

युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३ ॥

हे स्तुति योग्य उषाओ ! हमारे इस स्तवन से आपकी प्रार्थना सम्पन्न हो रही है । सभी उषाएँ प्रगति की कामना से हम सभी प्रजाजनों को समृद्ध करें । हे देवत्व सम्पन्न उषाओ ! आपके संरक्षण साधनों से हम सैकड़ों और हजारों प्रकार के धन-धान्य से सम्पन्न सामर्थ्य-शक्ति अर्जित करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १२५]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । देवता- स्वनय दानस्तुति । छन्द- त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।]

१४१२. प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।

तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥१ ॥

प्रभात कालीन सूर्यदेव स्वास्थ्यप्रद पोषक तत्त्वों (रत्नों) को लाकर मनुष्यों के लिए प्रदान करते हैं । ज्ञानी मनुष्य इस तथ्य से परिचित होते हुए सूर्योदय से पहले उठकर सूर्य रश्मियों में सन्निहित प्राणतत्त्व रूपी रत्नों के

लाभ से कृतकृत्य होते हैं । उससे मनुष्य दीर्घायुष्य प्राप्त करके संतानो के लाभ से युक्त होकर धन सम्पदा और स्वस्थ जीवन प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

१४१३. सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।

यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदि मुत्सिनाति ॥२ ॥

जो दानी मनुष्य प्रातः उठते ही किसी याचक को-रस्सी से पाँव को बाँधने के समान* -अपार धन प्रदान करते हैं, ऐसे दानी मनुष्य श्रेष्ठ गौओं, अश्वों और स्वर्ण से युक्त होते हैं । इन्हें इन्द्रदेव अतिश्रेष्ठ अन्न-धन आदि प्रदान करते हैं ॥२ ॥

[*यहाँ रस्सी से पाँव बाँधने का भाव है, बिना दान लिए न जाने देना ।]

१४१४. आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।

अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥३ ॥

हे देव ! आज प्रातः हम धन से सम्पन्न रथ द्वारा यज्ञ संरक्षक और श्रेष्ठ कर्तव्यों का निर्वाह करने वाले पुत्र प्राप्ति की कामना से आपके यहाँ आये हैं । आप सुखदायक अभिषुत सोमरस को ग्रहण करें तथा वीरो के आश्रयदाता आप, हमारा शुभ आशीषों से मंगल करें ॥३ ॥

१४१५. उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।

पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥४ ॥

इस समय यज्ञ कार्य करने वालों तथा भविष्य में भी यज्ञीय भाव को पोषित करने वालों के निमित्त सुखदायक नदियाँ प्रवाहित होती हैं । सबके लिए कल्याणकारक तथा सबको सम्पन्न बनाकर प्रसन्न होने वाले याजकों को, अन्न (पोषण) की समृद्धि में समर्थ गौएँ, घृत की धारायें प्रदान करती हैं ॥४ ॥

१४१६. नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।

तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५ ॥

जो अपने आश्रित मनुष्यों को धनधान्य से परिपूर्ण करते हैं, वे सभी प्रकार के स्वर्गीय आनन्द को उपलब्ध करते हैं । वे देवत्व को प्राप्त करके उसी श्रेणी में प्रतिष्ठित होते हैं । जल प्रवाह उस दानी के लिए प्राणस्वरूप जल को प्रवाहित करते हैं तथा यह पृथ्वी भी उसके निमित्त सदैव अन्नादि का पर्याप्त भण्डार प्रदान करती है ॥५ ॥

१४१७. दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।

दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥६ ॥

ये विलक्षण उपलब्धियाँ मात्र सार्थक दान दाताओं को प्राप्य हैं । दिव्य लोक में भी सूर्यदेव उनके लिए ही स्वास्थ्य प्रदान करते हैं । दानदाता ही अमरपद को प्राप्त करते हैं तथा प्रसन्नता में दानी के प्रति शुभ कामनाओं से दानदाता की आयु में वृद्धि होती है ॥६ ॥

१४१८. मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।

अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७ ॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने वाले तथा मनुष्यों को कल्याणरूप दान से संतुष्ट करने वाले, दुःखों और पापकर्मों से बचे रहें । ज्ञान साधक और यम नियमादि व्रतों को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करने वाले मनुष्यों को जल्दी बुढ़ापा नहीं घेरता । इसके विपरीत जो पापकर्मों में संलिप्त रहते हैं तथा जो देवताओं को हवियों द्वारा संतुष्टि प्रदान करने वाले यज्ञादि सत्कर्मों से रहित हैं, उन्हें मानसिक चिन्ताएँ और शोक संताप घेरे रहते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - १२६]

[ऋषि - १-५ कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज), ६ स्वनय भावयव्य ; ७ रोमशा । देवता- १-५, ७ स्वनय भावयव्य; ६ रोमशा । छन्द- त्रिष्टुप्; ६-७ अनुष्टुप् ।]

१४१९. अमन्दान्त्सोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥१ ॥

हिंसादि कष्टों से परे, जिस राजा 'भाव्य' ने कीर्ति की कामना से युक्त होकर हमारे लिए सहस्रों यज्ञों को सम्पन्न किया, उस सिन्धु नदी के किनारे वास करने वाले नरेश के लिए हम ज्ञान से भरे स्तवनों का विवेक बुद्धिपूर्वक उच्चारण करते हैं ॥१ ॥

१४२०. शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥२ ॥

कक्षीवान् ने स्तोता और धनदाता राजा से सौ स्वर्णमुद्राएँ, सौ वेगशील अश्व तथा सौ श्रेष्ठ वृषभ ग्रहण किये; इससे उस नरेश की स्वर्गलोक में चारों ओर अक्षुण्ण कीर्ति फैल रही है ॥२ ॥

१४२१. उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥३ ॥

स्वनय द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ वर्णों के अश्वों से युक्त और श्रेष्ठ स्त्रियों से युक्त दस रथ हमारे यहाँ आये हैं । दिन की प्रारम्भिक वेला में राजा से कक्षीवान् ने साठ हजार गौओ को प्राप्त किया ॥ ३ ॥

[उक्त ऋचाओं में ऐतिहासिक वर्णन के साथ-साथ सैद्धान्तिक - आध्यात्मिक अर्थ भी समाहित हैं । यज्ञ करने वाले राजा 'भाव्य' को स्वनय भी कहा है । भाव्य का अर्थ होता है, किसी रस विशेष से पूरी तरह अनुप्राणित । परमात्मचेतना से अनुप्राणित जीव ही भाव्य है, वही आत्म निर्देशित - स्वनय भी होता है । ऐसे भाव्य द्वारा किये गये यज्ञानुष्ठानों का लाभ कक्षीवान् (निर्धारित मार्ग पर अनुशासनों में चलने वाले कर्मकुशल) को प्राप्त होता है । साथ ही कक्षीवान् को स्वर्णमुद्राएँ (वैभव), बैलों-अश्वों (पुरुषार्थ - श्रम की क्षमता), गौओं (पोषक पदार्थों) तथा स्त्रियों (सत्-प्रवृत्तियों) की भी प्राप्ति होती है ।]

१४२२. चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥४ ॥

हजारों की पंक्ति के आगे दस रथों को चालीस घोड़े खींच ले जाते हैं । अन्नयुक्त घास खाकर पुष्ट हुए, स्वर्णालंकारों से युक्त, जिनसे मद टपकता है, ऐसे घोड़ों को कक्षीवन्त अपने वश में करते हैं (मार्जन-मालिश आदि के द्वारा थकान मुक्त करते हैं ।) ॥४ ॥

[पुष्ट दस इन्द्रियों को चार पुरुषार्थ खींच कर हजारों से आगे ले जाते हैं । कक्षीवान् (कर्मकुशल) तेजस्वी अश्वों (चार पुरुषार्थों) को अपने वश में तथा कार्य के लिए तत्पर रखते हैं ।]

१४२३. पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥५ ॥

हे अन्नादि से पुष्ट श्रेष्ठ आचरण युक्त बन्धुओ ! आपके लिए हमने चार-चार (अश्वों अथवा वैभवों से युक्त) आठ और तीन (ग्यारह अर्थात् दस इन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन) को, अगणित गौओं (पोषण देने वाली धाराओं) सहित प्रथम अनुदान के रूप में प्राप्त किया है । ये सब प्रेमपूर्वक रहनेवाली प्रजाओं-परिवारों की तरह रहकर, रथादियुक्त होकर श्रेय की कामना करें ॥५ ॥

१४२४. आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥६ ॥

(स्वनय राजा का कथन) मेरी सहधर्मिणी (नीतियुक्त मति-श्रेष्ठ बुद्धि) मेरे लिए अनेक ऐश्वर्य एवं भोग्य पदार्थ उपलब्ध कराती है । यह सदा साथ रहने वाली, गुणों को धारण करने वाली मेरी सह-स्वामिनी है ॥६ ॥

१४२५. उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७ ॥

(सहधर्मिणी का कथन) हे पतिदेव ! आप मेरे पास आकर बार-बार मेरा स्पर्श करें (प्रेरणा लें-परीक्षण करके देखें), मेरे कार्यों को अन्यथा न लें । जिस प्रकार गंधार की भेड़ रोमों से भरी होती है, उसी प्रकार मैं गुणों से युक्त-प्रौढ़ हूँ ॥७ ॥

[सूक्त - १२७]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- अग्नि । छन्द- अत्यष्टि, ६ अतिधृति ।]

१४२६. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१ ॥

दैवी गुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ कर्म के संपादक, जो अग्निदेव देवताओं के समीप जाने वाली ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारयुक्त होकर, अनवरत घृतपान की अभिलाषा करते हैं; उन देव आवाहनकर्त्ता, दानकर्त्ता, सबके आश्रयभूत , अरणि मन्थन से उत्पन्न, (अतएव) शक्ति के पुत्र, सर्वज्ञान-सम्पन्न, शास्त्रज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी के सदृश, अग्निदेव को हम स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

१४२७. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् । शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२ ॥

हे ज्ञानी और तेजस्वी अग्निदेव ! हम यजमान, उत्तम विचारकों के लिए मननीय मंत्रों द्वारा यज्ञ में आपका आवाहन करते हैं । ये प्रजाएँ अपनी रक्षा के लिए श्रेष्ठतम, तेजस्वी, सूर्य के सदृश गतिमान् , यज्ञ निर्वाहक एवं प्रदीप्त किरणों से युक्त अग्निदेव को तुष्ट-पुष्ट करती हैं ॥२ ॥

१४२८. स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः । वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् । निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३ ॥

वे अग्निदेव तेजोमयी सामर्थ्य से अत्यन्त दीप्तिमान् , शत्रुओं में भय का संचार करने वाले तथा फरसे के तुल्य द्रोहियों का नाश करने वाले हैं । धनुर्धारी अचल योद्धा की तरह जिनके प्रभाव से बलवान् शत्रु भी पराजित हो जाते हैं एवं अनुशासन स्वीकार करते हैं, उन अग्निदेव के संयोग से अत्यन्त कठोर पदार्थ भी खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥३ ॥

[अग्नि के विस्फोटक प्रयोग से शिलाओं को खंडित करने तथा वैल्डिंग जैसे प्रयोगों से लौह खण्डों को काटने की प्रणाली वर्तमान विज्ञान द्वारा खोजी जा चुकी है ।]

१४२९. दृळहा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा।
स्थिरा चिदन्ना निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

जैसे ज्ञानी पुरुषों को धन देने का विधान है, उसी प्रकार अति सुदृढ़ (शक्तिशाली) मनुष्यों द्वारा अपने संरक्षण के निमित्त अग्नि में हविष्यान्न देने पर, अरणिमन्थन से प्रकट होने वाले अग्निदेव अपनी प्रचण्ड ज्वाला से प्रदीप्त होकर उसे ऐश्वर्यों से परिपुष्ट करते हैं। जिस प्रकार अग्निदेव असंख्य वनों में प्रविष्ट होकर उन्हें जला डालते हैं तथा अपने तेज से अन्नों को पकाते हैं, वैसे ही वे अपनी तेजस्विता से सुदृढ़ वैरियों को भी धराशायी कर देते हैं ॥४॥

१४३०. तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात्।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५॥

हम अग्निदेव के निमित्त यज्ञीय हविष्यान्न अर्पित करते हैं, जो दिन की अपेक्षा रात्रि को अधिक रमणीय लगते हैं। जैसे पुत्र के लिए पिता द्वारा सुखदायक निवास दिया जाता है, वैसे ही दिन की अपेक्षा रात्रि में प्रखर तेजस्वी दिखाई देने वाले अग्निदेव के निमित्त हवियाँ समर्पित करें। ये अग्नि ज्वालाएँ भक्त या अभक्त दोनों का भेद किये बिना प्रदत्त आहुतियों को स्वीकार करती हैं। हविष्यान्न ग्रहण करने वाले अग्निदेव सदा जरारहित (चिरयुवा) रहते और यजमान को भी अजर (प्रखर) बना देते हैं ॥५॥

१४३१. स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥६॥

पूजनीय अग्निदेव यज्ञीय कर्मों, उपजाऊ क्षेत्रों और रणक्षेत्रों पर सभी जगह वेगवान् वायु की तरह ही ऊँचे स्वर से गर्जना करते हैं। यज्ञ की ध्वजारूप पूजनीय अग्निदेव हवियों को स्वीकार कर हविष्यान्न ग्रहण करते हैं। निज की प्रसन्नता के साथ दूसरों के लिए भी आनन्दप्रद इन अग्निदेव के मार्ग का सम्पूर्ण देव उसी प्रकार कल्याण प्राप्ति हेतु अनुसरण करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य कल्याण की इच्छा से सन्मार्गगामी होते हैं ॥६॥

१४३२. द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः। अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम्।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥७॥

जब भृगुवंश में उत्पन्न ऋषियों ने मन्थन द्वारा इन अग्निदेव को प्रकट किया और स्तोत्रकर्त्ता, तेजवान् तथा विनयशील भृगुओं ने दो प्रकार से उनकी प्रार्थनाएँ कीं; तब परम पावन, धारण करने योग्य, ज्ञानी, अग्निदेव ने प्रेम पूर्वक अर्पित की गई आहुतियों को ग्रहण किया। वे ज्ञानी अग्निदेव धनों पर प्रभुत्व स्थापित करते हुए निश्चित ही हमारी प्रार्थनाएँ स्वीकार करते हैं ॥७॥

१४३३. विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥८॥

हम सम्पूर्ण प्रजा के रक्षक, समदर्शी, गृहपालक, सत्यवादी, अतिथि रूप, अग्निदेव को उपभोग्य सामग्री के निमित्त आवाहित करते हैं। उन अग्निदेव के निकट हविष्यान्न पाने के लिए सम्पूर्ण देव उसी प्रकार आते हैं, जिस प्रकार पुत्र पिता के पास अन्न सामग्री की प्राप्ति हेतु जाते हैं। इसी भाव से मनुष्य भी देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥८॥

१४३४. त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी सामर्थ्य - शक्ति से शत्रुओं के पराभवकर्त्ता और अति तेजस्वी रूप में ही प्रकट हुए हैं। जैसे देवयज्ञों के निमित्त धन प्रकट होता है, वैसे ही अग्निदेव यज्ञीय संरक्षण के लिए प्रादुर्भूत हुए हैं। आप की प्रसन्नता अति बलप्रद और कर्म प्रखर-तेजस्वी हैं। हे अविनाशी अग्निदेव ! इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण सभी मनुष्य दूतरूप में आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं ॥९॥

१४३५. प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये।
प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥१०॥

हे साधको ! शत्रु पराभवकर्त्ता, प्रभातवेला में जागरणशील अग्निदेव को आपके महिमामय स्तुतिगान उसी प्रकार से प्रसन्नता प्रदान करें, जैसे उदारमना पशुधन आदि का दान देने वाले मनुष्य को मनुष्यों द्वारा की गई स्तुतियाँ प्रसन्नता देती हैं। यज्ञ सम्पादक सभी जगह इसी भाव को दृष्टिगत रखकर प्रार्थनाएँ करते हैं, स्तुतिगान में कुशल होता सभी देवों में सर्वप्रथम इन अग्निदेव को उसी प्रकार प्रशंसित करते हैं, जिस प्रकार चारणगण धनवानों की प्रशंसा करते हैं ॥१०॥

१४३६. स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना।
महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥११॥

हे अग्निदेव ! समीप से दीप्तिमान् दिखाई देने वाले आप देवताओं द्वारा पूज्य हैं। आप कृपापूर्वक श्रेष्ठ धन से हमें परिपूर्ण करें। हे सामर्थ्यवान् अग्निदेव ! आप दीर्घायुष्य के लिए उपभोग्य पदार्थों को प्रदान करके हमें यशस्वी बनायें। हे ऐश्वर्य-सम्पन्न अग्निदेव ! आप स्तोताओं को श्रेष्ठ शौर्य-सम्पन्न और पराक्रमी बनायें तथा अपनी सामर्थ्य- शक्ति से शत्रुओं का संहार करें ॥११॥

[सूक्त - १२८]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि। देवता- अग्नि। छन्द- अत्यष्टि।]

१४३७. अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम्।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥१॥

देवताओं का आवाहन करने वाले, यज्ञादिकर्मों का सम्पादन करने वाले ये अग्निदेव यज्ञादि कर्म, व्रतनियमों के निर्वाह को दृष्टि में रखकर मनुष्यों द्वारा अरणिमन्थन से प्रकट होते हैं। मित्रता की

भावना करने वालो को सर्वस्व तथा धनाकांक्षी के लिए धन का अगाध भण्डार प्रदान करते हैं। पीड़ा मुक्त, होतारूप में ऋत्विजों से घिरे हुए अग्निदेव यज्ञवेदी में स्थापित किये जाते हैं, वे निश्चित ही यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित होते हैं ॥१ ॥

१४३८. तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥२ ॥

हम सत्यमार्ग से अति विनम्रतापूर्वक, यज्ञीय कर्म में घृतादि से युक्त आहुतियाँ देते हुए अग्निदेव की अर्चना करते हैं। जिन अग्निदेव को मनु के निमित्त मातरिश्वा वायु ने सुदूर स्थान से लाकर प्रदीप्त किया; ऐसे अग्निदेव हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को ग्रहण करके भी अपनी ताप क्षमता में कमी न आने दें ॥२ ॥

१४३९. एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥३ ॥

सदा प्रशंसनीय सैकड़ों आँखों (असंख्य ज्वालाओं) से वनों को प्रकाशमान करते हुए समीपस्थ और दूरस्थ पर्वत शिखरों पर अपना स्थान निर्धारित करते हुए, शक्तिशाली, शक्ति के धारणकर्त्ता तथा गर्जनशील, शत्रुविनाशक ये अग्निदेव सुगम मार्ग द्वारा शीघ्रतापूर्वक पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं ॥३ ॥

१४४०. स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥४ ॥

सत्कर्मशील अग्रगामी अग्निदेव प्रत्येक घर में हिंसारहित यज्ञाग्नि के रूप में प्रज्वलित होते हैं, श्रेष्ठ कर्म द्वारा प्रदीप्त होते हैं तथा प्रखर कर्मों द्वारा अन्नादि के इच्छुकों को, ज्ञानी अग्निदेव सम्पूर्ण उपभोग्य पदार्थ प्रदान करते हैं; क्योंकि ये घृताहुति को ग्रहण करने के लिए पूजनीय अतिथि रूप में प्रकट हुए हैं। ये अग्निदेव हविवाहक तथा ज्ञान सम्पन्न हैं ॥४ ॥

१४४१. क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥५ ॥

जिस प्रकार मरुद्‌गण अग्नि को भोजन कराते हैं और जिस प्रकार (सत्पुरुष) भिक्षुकों को भोजन देते हैं, उसी प्रकार याजकगण विचारपूर्वक आदर सहित इन अग्नि ज्वालाओं के लिए आहुतियाँ प्रदान करते हैं। इसी प्रकार ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से धनों को हविदाता की ओर प्रेरित करते हुए उस को पाप कर्मों और पराजय से सुरक्षित करते हैं। वे (अग्निदेव) दैवी अभिशापों तथा जीवन संघर्ष में पराभव से बचाते हैं ॥५ ॥

१४४२. विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्। विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥६ ॥

विश्व व्यापक, महान् एवं सामर्थ्यशाली अग्निदेव सूर्यदेव के समान ही यजमान को देने के लिए दाहिने हाथ में धन धारण करते हैं। वे मुक्त हस्त से यशोभिलाषी सत्कर्मशीलों को धन देते हैं, दुष्टों और दुराचारियों को नहीं। हे अग्निदेव ! दिव्यता युक्त आप हविष्यान्न के अभिलाषी समस्त देवों के लिए हवि का वहन करते हैं तथा श्रेष्ठ कर्म करने वालों के निमित्त धन प्रदान करते हैं। आप उनके लिए धनकोष को पूर्ण रूप से खुला कर देते हैं ॥६ ॥

१४४३. स मानुषे वृजने शन्तमो हितो३ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिःप्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥७ ॥

वे अग्निदेव मनुष्यों के पाप निवारण के निमित्त यज्ञीय कर्मों में अतिसुखप्रद और कल्याणकारी हैं। विजेता नरेश के समान ही प्रजाजनों के पालक और स्नेह पात्र हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को अग्निदेव ग्रहण करते हैं। ऐसे अग्निदेव यज्ञकर्म के विरोधियों और धूर्तजनों से हमें सुरक्षित करें तथा महिमायुक्त देवताओं के कोपभाजन होने से हमें बचायें ॥७ ॥

१४४४. अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥८ ॥

धन- धारणकर्त्ता, अतिचैतन्य, प्रेरणायुक्त, सर्वप्रिय, होतारूप अग्निदेव की सभी मनुष्य प्रार्थना करते हुए उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उनके प्रयास से हविवाहक सबके प्राण स्वरूप, सर्वज्ञाता, देवावाहक, पूजनीय और क्रान्तदर्शी अग्निदेव भली प्रकार प्रज्वलित किये गये हैं। ऋत्विग्गण धन की कामना से प्रेरित होकर अपने संरक्षणार्थ उन मनोहारी अग्निदेव की स्तोत्र गान करते हुए अर्चना करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - १२९]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि। **देवता-** इन्द्र; ६ इन्दु। **छन्द-** अत्यष्टि, ८-९ अतिशक्वरी; ११ अष्टि।]

१४४५. यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्। सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥१ ॥

हे पापरहित प्रेरक इन्द्रदेव ! आप यज्ञ कार्य के लिए अपने रथ को आगे बढ़ाते हैं और अपरिपक्वों को भी शीघ्रता से अभीष्ट प्राप्ति के लिए उपयोगी बना देते हैं। अन्न (हवि) के प्रति आपका विशेष आकर्षण है। शीघ्रतापूर्वक श्रेष्ठकर्मों को सम्पन्न करने वाले पाप मुक्त हे इन्द्रदेव ! वेदज्ञों की इस स्तुति रूपी वाणी के समान ही इस हवि को भी आप स्वीकार करें ॥१ ॥

१४४६. स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः।
यः शूरैः स्व१: सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप संग्रामों में वीर पुरुषों के साथ शत्रु को नष्ट करने में कुशल हैं। भरण-पोषण के क्रम में जो स्वयं प्राप्त करने वाले तथा अन्नादि का वितरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष हैं, उन्हें आप शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। आप हमारी प्रार्थना सुनें। जिस प्रकार बलशाली लोग अश्व का सहारा लेते हैं, उसी प्रकार समर्थ लोग तेजस्वी इन्द्रदेव का आश्रय लेते हैं ॥२ ॥

१४४७. दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम्।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥३॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप मनोहारी रूप में मेघों के आवरण को जल से पूर्ण करते हैं । आप कष्टप्रद असुरों को दूर करते तथा शत्रुओं का संहार करते हैं । ये इन्द्रदेव शत्रुओं के विनाश के निमित्त कारण, रुद्र के समान भयंकर, मित्र के समान हितैषी, श्रेष्ठ सुखप्रद तथा सबके द्वारा वरणीय हैं ॥३॥

१४४८. अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम्।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित्।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम्॥४॥

हे मनुष्यो ! समस्त जनों के मित्र के समान हितैषी इन्द्रदेव की आयुष्य वृद्धि और शत्रुओं के विध्वंस के लिए हम यज्ञ सम्पादनार्थ प्रार्थना करते हैं। हे इन्द्रदेव ! आप जिस शत्रु समूह का विध्वंस करते हैं, वे संगठित होकर भी आपकी सामर्थ्य के आगे नगण्य हैं । ऐसे आप सभी संग्रामों में हमारी ज्ञान-सामर्थ्य को संरक्षित रखें ॥४॥

१४४९. नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥५॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप अपनी शक्तिशाली सामर्थ्य व संरक्षण साधनों की तेजस्विता से शत्रुओं के अहंकार को छिन्न-भिन्न कर दें अर्थात् विदीर्ण कर डालें । हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप शत्रुनाशक होने पर भी पापमुक्त हैं । पूर्ववत् हमें आगे करके स्वयं अग्रगामी होकर सभी मनुष्यों के कषाय- कल्मषों का निवारण करें । आप सदैव हमारे सम्मुख रहें ॥५॥

१४५०. प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत्॥६॥

जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से प्रगतिशील हैं, वे इन्द्रदेव के समान प्रशंसनीय और प्रार्थना योग्य हैं तथा जो दुष्टों के नाशक हैं, वे भी स्तुत्य हैं । श्रेष्ठ सोम के लिए हम स्तोत्र का उच्चारण करें । वे निन्दकों को अपनी सामर्थ्य से हमसे दूर करें, घातक अस्त्रों से दुर्बुद्धिग्रस्तों तथा कटुवाणी का प्रयोग करने वालों का क्षय करें । थोड़े से जल के समान ही शत्रुओं का समूल नाश करें ॥६॥

१४५१. वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः॥७॥

हे वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम यजनीय वाणी से आपकी स्तुति करें तथा सुन्दर, शक्ति-सम्पन्न सम्पदा का लाभ प्राप्त करें । श्रेष्ठ, मननशील, सुविचारों एवं संकल्प शक्ति से, अलभ्य इन्द्रदेव को प्राप्त करें । यजन करने योग्य इन्द्रदेव को, यशस्विता युक्त सत्य स्वरूप का वर्णन करने वाली प्रार्थनाओं से प्रशंसित करें ॥७॥

१४५२. प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥८ ॥

इन्द्रदेव अपनी यशस्वी संरक्षण सामर्थ्य द्वारा दुष्टों और दुर्बुद्धिग्रस्तों से हम सभी का संरक्षण करें । हमारे विनाश हेतु अति समीपवर्ती भक्षक राक्षसों द्वारा जो तीव्र गतिशील सेना भेजी गई है, वे आपसी कलह का शिकार होकर विनष्ट हो जाये । हमारे समीप तक उसकी पहुँच न हो ॥८ ॥

१४५३. त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी प्रकार के धनों को पापरहित मार्ग से हमें उपलब्ध करायें । धन बल से हम किसी को पीड़ित न करें । आप हमारे दूरस्थ अथवा निकटस्थ दोनों जगह हैं । आप दूर या निकट जहाँ भी हों, हमें संरक्षित करें । उपयोगी वस्तुओं के दान द्वारा हमारी हर प्रकार से सहायता करें ॥९ ॥

१४५४. त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥१० ॥

हे ओजस्वी, पालनकर्त्ता, संरक्षक तथा अमर इन्द्रदेव ! आप सुखस्वरूप धन से हमें दुःख-क्लेशों से मुक्त करें । अपने यशस्वी जीवन की रक्षा हेतु हम सूर्य के समान तेजस्वी आपके ही सान्निध्य में रहें । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने विशेष रथ से यहाँ आयें । आप हम भक्तों के अतिरिक्त अन्यों पर क्रोध करें तथा हिंसक राक्षसों के प्रति क्रोधित हों ॥१० ॥

१४५५. पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥११ ॥

हे श्रेष्ठ, स्तुति योग्य इन्द्रदेव ! आप देवरूप में पापकर्मों से सदा हमारा संरक्षण करें । आप सदैव दुर्बुद्धिग्रस्तों और उनकी दुष्ट अभिलाषाओं के नाशक हों । आप विध्वंसक, पापकर्मों में लिप्त राक्षसों के हन्ता और विद्वान् पुरुषों के संरक्षक हों । हे आश्रयदाता ! इसी हेतु आपका प्रादुर्भाव हुआ है ॥११ ॥

[सूक्त - १३०]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- इन्द्र । छन्द- अत्यष्टि; १० त्रिष्टुप् ।]

१४५६. एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुतेसचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥१ ॥

हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! यज्ञों में अग्नि की तरह आप दूर से भी पहुँचें । क्षेत्रपालक राजा की तरह आयें । जैसे पुत्र पिता को बुलाते हैं, उसी प्रकार हम हव्ययुक्त याजक अन्न प्राप्ति के लिए आपका सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं ॥१ ॥

१४५७. पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जल द्वारा सींचे गये और पत्थरों द्वारा कूटकर अभिषुत हुए सोमरस का वैसे ही पान करें, जिस प्रकार तीव्र प्यास से युक्त वृषभ जलाशय में जाकर जल पीते हैं। अभीष्ट आनन्द की प्राप्ति के लिए आपके अश्व वैसे ही आपको यज्ञस्थल में लेकर आयें, जैसे किरणरूपी अश्व सूर्यदेव को अभीष्ट की ओर प्रेरित करते हैं ॥२ ॥

१४५८. अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥३ ॥

जिस प्रकार गौओं के गोष्ठ अथवा जंगल में छिपाकर रखे गये पक्षियों के बच्चों को कोई मांसभक्षी खोज निकालता है, वैसे ही अंगिराओं में उत्तम, तेजस्वी, वज्रधारी इन्द्रदेव ने असीमित बादलों में छिपे हुए जल के भण्डार को खोज निकाला और जल वृष्टि द्वारा मानो इन्द्रदेव ने मनुष्यों के लिए धन-धान्य रूपी वैभव के द्वारों को ही खोल दिया हो ॥३ ॥

१४५९. दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥४ ॥

इन्द्रदेव अपने हाथों में तेजधार वाले वज्र को शत्रु पर प्रहार हेतु सुदृढ़ता से धारण करते हैं । वे जल की तीव्र धारा के समान ही असुरता के संहार के लिए शस्त्र की धार में अति पैनापन लाते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से उसी प्रकार परशु शस्त्र द्वारा शत्रुओं का संहार कर देते हैं, जैसे तेज कुल्हाड़े से बढ़ई जंगल के वृक्षों को काट डालते हैं ॥४ ॥

१४६०. त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने नदियों के जल प्रवाह को समुद्र की ओर सतत प्रवाहित होने के लिए उसी प्रकार प्रेरित किया है, जैसे शक्ति-सामर्थ्य की वृद्धि के लिए राजा रथों से युक्त सेना को प्रेषित करते हैं । कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु गौ के समान ही नदियों के जल प्रवाह, विचारशील मनुष्यों के लिए अक्षुण्ण धन-सम्पदा को प्रदान करने वाले हैं ॥५ ॥

१४६१. इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय
त्वामतक्षिषुः । शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार निपुण कारीगर धन की कामना से प्रेरित होकर श्रेष्ठ रथों का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार स्तोतागण आपके लिए प्रशंसक स्तोत्रों का गान करते हैं । हे ज्ञान - सम्पन्न इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सारथि शक्तिशाली घोड़ों को विजय लाभ के लिए अतिशक्तिशाली बनाते हैं, वैसे ही स्तोतागण, धन, बल और सुखों के लाभ के लिए स्तुतियों द्वारा आपको प्रोत्साहित करते हैं ॥६ ॥

१४६२. भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७ ॥

हे आनन्दप्रद इन्द्रदेव ! आपने महान् दानदाता पुरु और दिवोदास के लिए शत्रुओं की नब्बे नगरियों का वज्र द्वारा विध्वंस कर डाला । हे पराक्रमी वीर इन्द्रदेव ! आपने अपनी शक्ति-सामर्थ्य से प्रचुर धन-सम्पदा अतिथिग्व के लिए प्रदान की तथा शम्बर को पर्वत से गिराकर समाप्त कर दिया ॥७ ॥

१४६३. इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८ ॥

परस्पर संगठित होकर किये जाने वाले युद्धों में सैकड़ों संरक्षण साधनों से युक्त इन्द्रदेव श्रेष्ठ मनुष्यों का संरक्षण करते हैं, मननशील मनुष्यों को पीड़ित करने वाले दुष्टों को दण्डित करके नियन्त्रित करते हैं तथा कलुषित कर्मों में संलिप्त दुष्टों का संहार करते हैं । इन्द्रदेव उपद्रवियों को उसी प्रकार भस्म कर देते हैं, जैसे अग्नि पदार्थों को जला डालती है । निश्चित ही वे हिंसकों को भस्म कर देते हैं ॥८ ॥

१४६४. सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९ ॥

तेजस्वी और सबके प्रेरक इन्द्रदेव अपनी शक्ति- सामर्थ्य रूपी चक्र को लेकर शत्रुओं के पास पहुँचते ही उन्हें शान्त कर देते हैं, मानो अधीश्वर इन्द्रदेव ने उनकी वाणी का ही हरण कर लिया हो । हे क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव ! आप जिस प्रकार उशना ऋषि के संरक्षणार्थ अतिदूर से ही उनके समीप आते हैं, वैसे ही मनुष्यों के लिए भी सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करें । जिस प्रकार कोई व्यक्ति सम्पूर्ण दिन, दान में व्यतीत करता है, हमारे लिए आप वैसे ही दाता बनें ॥९ ॥

१४६५. स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१० ॥

शत्रुओं के नगरों को ध्वस्त करने वाले सामर्थ्य सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप नवरचित स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर सुखप्रद साधनों और हमारे अनुष्ठित कर्मों का संरक्षण करें । हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार दिवस सूर्य की तेजस्विता को द्युलोक में फैलाते हैं, वैसे ही हमारे स्तोत्र आपकी शक्ति को बढ़ायें ॥१० ॥

[सूक्त - १३१]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- इन्द्र । छन्द- अत्यष्टि ।]

१४६६. इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः ।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१ ॥

विस्तृत पृथ्वी और तेजस्वी द्युलोक ने अपने संसाधनों से इन्द्रदेव का सहयोग किया । उत्साहित

देवगणों ने सहमति पूर्वक इन्द्रदेव को अग्रणी रूप में प्रतिष्ठित किया। सभी देवता उन्हें अपना नायक मानकर हविभाग अर्पित करते हैं। मनुष्यों द्वारा दी गयी सोम युक्त आहुतियां इन्द्रदेव के लिए समर्पित हो ॥१ ॥

१४६७. विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यव: पृथक् स्व: सनिष्यव: पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयव: स्तोमेभिरिन्द्रमायव: ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी सोमयज्ञों में विभिन्न उद्देश्यों वाले याजक आपको हविष्यान्न प्रदान करते हैं। स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक भी पृथक् रूप में आहुतियाँ देते हैं। मनुष्यों को सागर से पार ले जाने वाली नाव के समान ही इन्द्रदेव को जागरूक करके सेना के अग्रिम भाग में प्रतिष्ठित करते हैं। हम स्तुति करने वाले स्तोत्रों द्वारा आपका ध्यान करते हैं ॥२ ॥

१४६८. वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य नि:सृज: सक्षन्त इन्द्र नि:सृज:। यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! संरक्षण के इच्छुक गृहस्थजन सपत्नीक स्वर्ग प्राप्ति एवं गौओं की प्राप्ति के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। ऐसे में हे इन्द्रदेव ! गौ समूह की प्राप्ति के लिए होने वाले संग्राम में आपको स्वयं ले जाकर प्रेरित करने वाले यजमान आपके लिए यज्ञ कर्म सम्पादित करते हैं। आपने ही अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट (प्रयुक्त) किया है ॥३ ॥

१४६९. विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरव: पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिर: सासहानो अवातिर:। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।
महीममुष्णा: पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अप: ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा शत्रुओं की सामर्थ्य को पद-दलित किये जाने पर, जब आपने ही उनकी शरद्कालीन आवासीय नगरियों का विध्वंस किया, तब प्रजाजनों में आपकी पराक्रम शक्ति विख्यात हुई। हे शक्ति के प्रतिनिधि इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के कल्याण के लिए यज्ञ विध्वंसक राक्षसों को दण्डित करके पृथ्वी एवं जलों पर उनके प्रभुत्व को समाप्त किया ॥४ ॥

१४७०. आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्य: पृतनासु प्रवन्तवे।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्त: सनिष्णत ॥५ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आनन्दित होते हुए आपने यजमानों तथा मित्र भाव रखने वालों का संरक्षण किया। उनके द्वारा आपकी पराक्रम शक्ति को चारों ओर विस्तारित किया गया। आपने ही धनादि वितरण से संग्रामों में वीरों को प्रोत्साहित किया। आपने एक - दूसरे के सहयोग से धन लाभ देते हुए अन्नादि के इच्छुकों को अन्न उपलब्ध कराया ॥५ ॥

१४७१. उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभि: स्वर्षाता हवीमभि:। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयस: ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे प्रभातकालीन यज्ञादिकर्मों के समय उच्चारित स्तुतियों पर ध्यान दें और आहुतियों को ग्रहण करें । सुखों की प्राप्ति हेतु स्तुतियों के अभिप्राय को जानें । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप शत्रुनाशक कार्यों में सजग रहते हैं, उसी गम्भीरता से आप नवीन रचित स्तोत्रों और नये ज्ञानी स्तोताओं की प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥६ ॥

१४७२. त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

हे अति विख्यात वीर इन्द्रदेव ! आप हमारे संरक्षण के लिए हमें पीड़ित करने वाले दुष्टों को वज्रास्त्र से मार डालें । हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निवेदन पर ध्यान दें । दुर्बुद्धि से ग्रस्त शत्रु आपके वज्रास्त्र के प्रहार से, खण्डित वस्तु के समान हमारे मार्ग से हट जायें । समस्त दुर्बुद्धियों का संसार से नाश हो ॥७ ॥

[सूक्त - १३२]

[**ऋषि**- परुच्छेप दैवोदासि । **देवता**- इन्द्र ; ६ पूर्वार्द्ध भाग के इन्द्र और पर्वत, शेष अर्द्ध भाग के इन्द्र । **छन्द**- अत्यष्टि ।]

१४७३. त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में हम लोग प्रथम संग्राम में ही आक्रमणकारियों पर विजय प्राप्त करें । आप हिंसक वृत्ति के दुष्टों का संहार करें । इन समीपस्थ दिवसों में आप साधकों को प्रेरित करें । श्रेष्ठ कर्मों के लिए संघर्ष करने वाले हम याजकगण इस यज्ञ में आपका वरण करें । हम शक्ति सम्पन्न बनकर युद्ध नेतृत्व की योग्यता में कुशल हों ॥१ ॥

१४७४. स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥२ ॥

सुख प्राप्ति हेतु किये जाने वाले संघर्षों, श्रेष्ठ मनुष्यों के उच्च लक्ष्यों, प्रभातवेला में जागने वालों के व्यवहारों तथा सत्कर्मों का निर्वाह करने वालों के नित्यकर्मों में बाधा डालने वाले आलस्य- प्रमादादि शत्रुओं को इन्द्रदेव ने ज्ञान की तीक्ष्ण धारा से समाप्त किया । इससे समस्त मनुष्यों में इन्द्रदेव प्रशंसनीय हुए । हे इन्द्रदेव ! आपके समस्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों । आप जैसे मंगलकारी के सभी अनुदान हमारे लिए मंगलमय हों ॥२ ॥

१४७५. तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि क्षयम् । वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव !जिस यज्ञ में आपने प्रतिष्ठित स्थान बनाया है, वहाँ पूर्ववत् ही आपके निमित्त तेजस्वी अन्न उपलब्ध हों । सत्य की महिमा से सुशोभित उच्च स्थान पर पहुँचाने वाले आप उसी सत्यमार्ग को ही दिखायें । सूर्य-रश्मियों से सभी लोग दोनों लोकों के मध्य में स्थिर मेघरूप में आपके ही दर्शन करते हैं । आप ही गौओं के प्रदाता होने के साथ सत्यधाम के ज्ञाता हैं तथा यजमानों के लिएगौओं को देने वाले हैं- ऐसा सुप्रसिद्ध है ॥३ ॥

१४७६. नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम्।
ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! पहले के समान ही आपकी पराक्रम शक्ति प्रशंसनीय हो। जो आपने अंगिराओं को गौ समूह जीतकर दिया तथा उन्हें ले जाने का मार्ग दिखाया, वैसे ही आप हमारे लिए भी ऐश्वर्यों को जीतकर प्रदान करें। आप यज्ञविरोधियों तथा क्रोधयुक्त पापियों को यज्ञादि श्रेष्ठकर्म करने वालों के हित में विनष्ट करें ॥४॥

१४७७. सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥५॥

जब बलशाली इन्द्रदेव ने पराक्रम युक्त कर्मों द्वारा मनुष्यों की तरफ निहारा, तब अन्न प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यों ने युद्ध के प्रारम्भ होने पर शत्रुओं को विनष्ट किया। उस समय यशोभिलाषियों ने इन्द्रदेव की विशेष अर्चना की। आप अपनी सामर्थ्य–शक्ति से शत्रुओं को विनष्ट करके श्रेष्ठ सन्तान एवं दीर्घायुष्य प्रदान करें। श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाहक मनुष्य इन्द्रदेव को ही अपना एकमात्र आश्रयदाता मानते हैं ॥५॥

१४७८. युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद्‌गहनं यदिनक्षत्।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥

युद्ध क्षेत्र में आगे बढ़कर पराक्रम दिखाने वाले हे इन्द्रदेव और पर्वत ! आप दोनों युद्ध करने वाले प्रत्येक शत्रु को अपने तीक्ष्ण वज्र के प्रहार से यम लोक पहुँचायें। हे वीर ! शत्रुओं द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर हमें उनसे मुक्त करायें। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों में व्याप्त हे देव ! आपके अनुग्रह से हम सभी याजक श्रेष्ठ वीर पराक्रमी सन्तानों से युक्त होकर अपार धन-वैभव से लाभान्वित हों ॥६॥

[सूक्त - १३३]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि। **देवता-** इन्द्र। **छन्द-** १ त्रिष्टुप्; २-४ अनुष्टुप्; ५ गायत्री; धृति; ७ अत्यष्टि।]

१४७९. उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥१॥

जो इन्द्रदेव यज्ञ की शक्ति से दोनों लोकों को पावन बनाते हैं। हम उन इन्द्रदेव के विरोधियों और अति भयंकर द्रोहियों का दहन करते हैं। जहाँ बड़ी संख्या में शत्रु मारे जाते हैं, वहाँ मृत शरीरों से युद्धभूमि श्मशान जैसी प्रतीत होती है ॥१॥

१४८०. अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम्।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हिंसक शत्रुओं के अति निकट जाकर (शीश पर पहुँचकर) अपनी विशाल सैन्य शक्ति से उन्हें पददलित करें ॥२॥

१४८१. अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम्। वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके॥ ३ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप मृतक मनुष्यों के घृणित स्थान एवं घृणित श्मशानों के समान इस हिंसक सैन्य शक्ति को अपनी सामर्थ्य से विनष्ट करें ॥३ ॥

१४८२. यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः। तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन शत्रु सेनाओ के त्रिगुणित पचास अर्थात् डेढ़ सौ सैनिकों को चारों ओर से घेरकर युद्ध की चालों से विनष्ट किया। आपके वे पराक्रमी कार्य प्रशंसनीय हैं; भले ही आपके लिए उनकी कोई विशेष महत्ता न हो ॥४ ॥

१४८३. पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण। सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप क्रोधाग्नि से लाल हुए शस्त्रधारियों एवं विशालकाय पिशाचों को नष्ट करें। आप समस्त राक्षसी शक्तियों का संहार करें ॥५ ॥

१४८४. अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः। शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमारे निवेदन पर भयंकर राक्षसों की सामर्थ्य को क्षीण करके उनका संहार करें। दिव्यलोक भी पृथ्वी पर हो रहे अत्याचारों से शोकातुर हो गया है। हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार अग्नि द्वारा वस्तुएँ भस्म होती हैं, वैसे ही आपके भय से शत्रु दुःखी हैं। बलशाली सेना को सुदृढ़ शस्त्रबल से सुसज्जित करके आप शत्रुदल के समीप जाते हैं। हे अग्रगामी वीर ! आप अपने शूरवीरों को सुरक्षित करने हेतु तत्पर रहते हैं। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप इक्कीस सेनाओं के साथ अर्थात् विशाल सैन्य शक्ति के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते हैं ॥६ ॥

१४८५. वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥७ ॥

सोमरस निचोड़कर तैयार करने वाले यजमान सभी ओर फैले हुए दुष्टों और देवविरोधियों को दूर करते हैं। मुक्त इन्द्रदेव यजमानों को सहस्रों प्रकार के धन प्रदान करते हैं। वे उन्हें वैभव प्रदान करते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - १३४]

[**ऋषि**- परुच्छेप दैवोदासि। **देवता**- वायु। **छन्द**- अत्यष्टि; ६ अष्टि।]

१४८६. आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती ।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आपको शीघ्रगामी अश्व पहले के समान ही पुरोडाश- हविष्यात्र के लिए इस सोमयाग में पहुँचायें। हे वायो ! हमारी प्रार्थनाओं द्वारा अभिव्यक्त प्रिय वाणी आपके गुणों से परिचित है, वह आपके अनुरूप हो। आप अपने रथ से आहुतियों को ग्रहण करने के लिए इस यज्ञ में पधारें ॥१ ॥

१४८७. मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः। यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२॥

हे वायो !आप हमारे द्वारा भली प्रकार से निष्पन्न हुए, उत्साहवर्धक, तेजस्विता युक्त तथा गोदुग्ध से मिश्रित सोमरस का आनन्द-पूर्वक पान करें। पुरुषार्थी मनुष्य संरक्षण की कामना से शक्ति-संचय के लिए श्रमरत रहते हैं। सभी विवेकशील मनुष्य सामूहिक प्रयास से संगठित होकर विवेक-सम्मत दान के लिए आपकी ही प्रार्थना करते हैं ॥२॥

१४८८. वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे। प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३॥

वायुदेव गमन करने के लिए, भारवहन में सक्षम लाल तथा अरुण रंग के दो बलिष्ठ अश्वों को अपने रथ के धुरे में जोतते हैं। हे वायुदेव ! जैसे प्रेमी पुरुष सोई हुई स्त्री को उठाते हैं, वैसे ही आप मनुष्यों को जगायें, द्यावा-पृथिवी को निश्चित रूप से प्रकाशमान करें तथा ऐश्वर्य के लिए देवी उषा को आलोकित करें ॥३॥

१४८९. तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४॥

हे वायुदेव ! पवित्र उषाएँ आपके लिए दूर स्थित, नवीन, दर्शन योग्य रश्मियों से अद्भुत कल्याणकारी वस्त्रों को बुनती हैं। अमृत रूपी दूध देने वाली गौएँ आपके लिए समस्त (दूधरूप) धनों को प्रदान करती हैं। इन्हीं अजन्मा हवाओं से नदियों (समुद्रों) का जल ऊपर आकाश में जाता है। जाने के बाद बरसकर नदियों में पुनः आता है, अतएव जलवृष्टि के कारण के मूल में वायुदेव ही हैं ॥४॥

[यहाँ वर्षा के विज्ञान सम्मत स्वरूप का वर्णन है।]

१४९०. तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥५॥

हे वायुदेव ! उज्ज्वल, पवित्र, अति गतिशील, तीक्ष्णतायुक्त यह सोमरस, ऐश्वर्यप्रद यज्ञादि के अवसर पर आपके सहयोग का इच्छुक है। जलों की स्थापना तथा दूसरे स्थान में ले जाने में आपका ही विशेष सहयोग रहता है। हे वायुदेव ! निर्बल मनुष्य विपत्तियों के निवारण हेतु आपसे ही प्रार्थना करते हैं। क्योंकि आप ही निरन्तर प्राणवायु के संचार से सम्पूर्ण संसार को आसुरी शक्तियों से संरक्षण प्रदान करते हैं ॥५॥

१४९१. त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम्।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥६॥

हे अतिश्रेष्ठ वायुदेव ! आप हमारे द्वारा अभिषुत सोमरस के सर्वप्रथम पान के लिए उपयुक्त हैं (अधिकारी

हैं) । समस्त गौएँ जिस प्रकार दूध और घी आपके निमित्त प्रदान करती हैं, उसी प्रकार आप भी प्राणवायु प्रदान करें । आप निष्पाप तथा यज्ञादि सत्कर्म करने वाले मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवियों को ग्रहण करें ॥६ ॥

[सूक्त - १३५]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- १-३,९ वायु; ४-८ इन्द्र- वायु । छन्द- अत्यष्टि; ६-८ अष्टि ।]

१४९२. स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आपके लिए ही हमारे द्वारा कुशासन (कुश का आसन) बिछाया गया है, आप सहस्रों अश्वों से युक्त रथ द्वारा हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए यहाँ आयें । शक्तिरूपी सैकड़ों अश्वों से युक्त वायुदेव के लिए ऋत्विजों ने यह सोमरस तैयार किया है । अभिषुत मधुर सोमरस यज्ञ में आपके आनन्द के लिए प्रस्तुत है ॥१ ॥

१४९३. तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति । तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥२ ॥

हे वायुदेव ! पत्थरों द्वारा कूटकर शोधित किया हुआ तथा वाञ्छित तेजस्विता को धारण किया हुआ सोमरस कलश में स्थित है । आप शुद्ध एवं कान्तिमान् सोम के हिस्से को सर्व प्रथम ग्रहण करते हैं । मनुष्यों द्वारा सर्व प्रथम देवरूप में आपका ही आवाहन किया जाता है । हे वायुदेव ! आप स्वयं ही अश्वों को प्रेरित कर हमारे पास आने की इच्छा करें ॥२ ॥

१४९४. आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये । तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥३ ॥

हे वायुदेव ! आप हमारे यज्ञ में सैकड़ों और हजारों अश्वों सहित सोमरस पीने के लिए (हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए) पधारें । आपके निमित्त ही ऋतु के अनुसार यह सोमरस तैयार किया गया है । यह सोमरस सूर्य रश्मियों के सम्पर्क से सूर्यदेव की तरह ही तेजस्विता को धारण किये हुए है । हे वायुदेव ! ऋत्विजों द्वारा यह सोमरस आपकी शक्ति को बढ़ाने के लिए कलशपात्रों में भरकर रखा गया है ॥३ ॥

१४९५. आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये । पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥४ ॥

हे वायुदेव ! आप और इन्द्रदेव दोनों, घोड़ों से खींचे जा रहे रथ द्वारा, भलीप्रकार निष्पादित सोम रस रूपी हविष्यान्न को ग्रहण करने तथा हमारे संरक्षण के लिए यहाँ पधारें । यहाँ आकर हमारे द्वारा तैयार किये गये सोमरस का पान करें । हे वायुदेव ! आप इन्द्रदेव के साथ आनन्दप्रद ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥४ ॥

१४९६. आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! आप दोनों की बुद्धि सदैव यज्ञीय कर्मों के साथ रहे । जैसे गतिशील घोड़े को चालक स्वच्छ करते हैं । उसी प्रकार बलवर्धक इस सोमरस को आपके लिए हम तैयार करते हैं । हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! आप दोनों संरक्षण साधनों के साथ यहाँ पधारकर सोमरसों का पान करें । पत्थरों द्वारा कूटकर अभिषुत, शक्ति प्रदायक सोमरसों को आप दोनों आनन्द प्राप्ति के लिए पिएँ ॥५ ॥

१४९७. इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥६ ॥

(हे इन्द्रदेव और वायुदेव) ऋत्विजों द्वारा अभिषुत यह सोमरस यज्ञों में आप दोनों को प्राप्त हो । हे वायुदेव ! दीप्तिमान् और प्रवाहित होने वाला यह सोमरस आपके लिए तिरछी धारा से पात्र में डाला जाता है, इस प्रकार का सोमरस आपको प्राप्त हो । अखण्डित रोम तंतुओं से छनकर सोमरस अति संरक्षक गुणों से सम्पन्न हो जाता है ॥६ ॥

१४९८. अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥७ ॥

हे वायुदेव ! आप सोये हुए आलसी मनुष्यों को त्यागकर आगे चले जाते हैं । आप दोनों हमेशा वहीं जाते हैं, जहाँ सोम को पत्थरों द्वारा कूटने की ध्वनि होती है, जहाँ वेद-मन्त्रों की ध्वनि सुनाई देती है और घृताहुतियों द्वारा यज्ञ सम्पन्न किया जाता है । इन्द्रदेव और आप दोनों ही प्राणऊर्जा देने के लिए बलशाली घोड़ों के संग उस यज्ञस्थल पर पहुँचे ॥७ ॥

१४९९. अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! जो सोम पुरुषार्थी लोगों द्वारा पर्वतों से ओषधिरूप में प्राप्त किया जाता है, उस सोमरस को आप दोनों यहाँ ले आयें । इस सोम ओषधि को पुरुषार्थी लोग प्राप्त करने में सफल हों । आपके लिए गौएँ अमृतरूपी दूध प्रदान करती हैं तथा जौ आदि अन्न भी आपके लिए ही सोमरस में डालने के लिए पकाये जाते हैं । हे वायुदेव ! आपके लिए दुधारू गौएं कभी कम न हों, किसी के द्वारा गौओं का अपहरण न हो ॥८ ॥

१५००. इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥९ ॥

हे श्रेष्ठ वायुदेव ! आपके ये बहुत शक्तिशाली युवा अश्व आपको द्युलोक और पृथ्वी के मध्य में सहज ही ले जाते हैं, जो मरुस्थलों में भी उतनी ही तेजगति से भागते हैं । उन अति वेगशील अश्वों का वाणी द्वारा वर्णन करना असम्भव है । जिस प्रकार सूर्य किरणों को कोई नियन्त्रित नहीं कर सकता, उसी तरह वायु की गति को हाथों द्वारा रोकना सर्वथा असम्भव है ॥९ ॥

[सूक्त - १३६]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- १-५ मित्रावरुण, ६-७ लिङ्गोक्त । छन्द- अत्यष्टि; ७ त्रिष्टुप् ।]

१५०१. प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्। ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता। अथैनो: क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥१॥

हे मनुष्यो ! वे दोनों मित्र और वरुणदेव अति तेजस्वी, घृताहुतियों का सेवन करने वाले तथा प्रत्येक यज्ञ में प्रार्थना के लिए उपयुक्त हैं । हम सभी श्रद्धा और भक्ति सहित मित्र वरुणदेव को प्रणाम करें तथा उत्तम बुद्धि से उनकी प्रार्थना करें । इनके क्षात्रबल और देवत्व को क्षीण नहीं किया जा सकता ॥१॥

१५०२. अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः। द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च। अथा दधाते बृहदुक्थ्यं१ वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥२॥

यज्ञ के लिए वेगवती उषादेवी प्रकाशित हुई हैं । रश्मियों से सूर्यमार्ग आलोकित हुआ है । ऐश्वर्यशाली सूर्यदेव की रश्मियों से आँखों में चमक आ गई है । मित्र, अर्यमा और वरुण देव सभी तेजस्विता सम्पन्न हुए हैं, अतएव सम्पूर्ण देवताओं के निमित्त आहुतियों के रूप में प्रशंसनीय हविष्यान्न अर्पित किया जाता है, जिसे वे स्वीकार करते हैं ॥२॥

१५०३. ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे। ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती। मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥३॥

विशिष्ट धारण-क्षमता वाली पृथ्वी तथा दिव्य तेजस्विता युक्त अदिति देवी की सेवा में मित्र और वरुणदेव नित्य जाग्रत् रहकर प्रवृत्त होते हैं । धन के अधिपति आदित्यगण तेजस्वी शक्ति को नित्य ही प्राप्त करते हैं । मित्र, वरुण और अर्यमा तीनों देव मनुष्यों को श्रेष्ठ मार्ग में बढ़ाते हैं ॥३॥

१५०४. अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः। तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः। तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥४॥

पेय पदार्थों में सबसे उत्कृष्ट तथा देवताओं में महावैभव सम्पन्न यह सोम, मित्र और वरुणदेव दोनों के लिए अति- आनन्दप्रद हो । सामञ्जस्य- युक्त सद्विचारों और सद्भावनाओं के प्रेरक समस्त देव समूह इस सोम का सेवन करें । हे तेजस्विता सम्पन्न मित्र और वरुणदेव ! आप श्रेष्ठ कर्मों के प्रेरक हों, हमारी अभीष्ट कामनाओं को निश्चय ही पूर्ण करें ॥४॥

१५०५. यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः। तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्। उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥५॥

जो विद्वेष भावना से रहित होकर मित्र वरुण के प्रति सेवाभाव रखते हैं; जो अपने प्रशंसक कर्मों से दोनों

को सुशोभित करते हैं; जो वाणी से उनके कर्मों की महिमा बढ़ाते हैं; उन्हें मित्र और वरुणदेव दुष्कर्म रूपी पापों से सुरक्षित करते हैं । जो दानशील सरल और सत्यमार्ग के अवलम्बी तथा श्रेष्ठ व्रतों के प्रति अनुशासित हैं; ऐसे सभी मनुष्यों को अर्यमादेव दु:खदायी पापकर्मों से बचाते हैं ॥५ ॥

१५०६. नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे । इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् । ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥६ ॥

हम द्यावा - पृथिवी, सुखप्रद मित्रदेव तथा अति सुखदायी वरुणदेव की वन्दना करते हैं । हे मनुष्यो ! आप इन्द्र, अग्नि, दीप्तिमान् अर्यमा तथा भगदेव की उपासना करें । जिससे इन सभी देवताओं की कृपा से हम सभी चिरंजीवी होकर सन्तानादि से युक्त हों और सभी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्थाओं से युक्त हों ॥६ ॥

१५०७. ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः । अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥७ ॥

हम सभी देवताओं द्वारा प्रदत्त सुखों को प्राप्त करें तथा अपनी यशस्विता और बलों से सम्पन्न होकर देवकृपा से सुरक्षित हों । अग्नि, मित्र तथा वरुणदेव हमें सुखी करें; ऐसे महान् ऐश्वर्यों से युक्त होकर हम सदैव सुखोपभोग करें ॥७ ॥

[सूक्त - १३७]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- मित्रावरुण । छन्द- अतिशक्वरी ।]

१५०८. सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे । आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः । इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! हम इस सोमरस को पत्थरों द्वारा कूटकर निचोड़ते (अभिषुत करते) हैं । यह गो दुग्ध मिश्रित सोम निश्चित ही आनन्दप्रद है, अतएव आप दोनों हमारे यहाँ पधारें । अति दीप्तिमान् तथा दिव्यलोक को स्पर्श करने वाले आप दोनों हमारे पालन पोषण के निमित्त यहाँ आयें । हे मित्र और वरुण देवो ! यह पवित्र सोमरस गो दुग्ध तथा जल में मिलाकर तैयार किया गया है, जो आपके लिए प्रस्तुत है ॥१ ॥

१५०९. इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः । उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः । सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! आप दोनों, निचोड़कर तैयार किये गये दूध और दही में मिश्रित तेजस्वी सोमरस का पान करने के लिए यहाँ आयें । आपके लिए प्रभात वेला में सूर्य रश्मियों के प्रकाशित होने के साथ ही यह सोमरस अभिषुत किया गया है । मित्र और वरुण देवों के लिए (इस यज्ञ कर्म में) यह अभिषुत सोम प्रस्तुत है ॥२ ॥

१५१०. तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः । अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये । अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! आपके लिए ऋत्विग्गण उसी प्रकार पत्थरों से कूटकर सोम वल्लियों से रस निचोड़ते हैं, जिस प्रकार गौओं से दूध का दोहन किया जाता है। आप दोनों हमारे संरक्षण के लिए सोमपान हेतु यहाँ आयें। हे मित्रावरुणदेवो ! आप दोनों के पान करने के लिए ही याज्ञिकों द्वारा सोमरस अभिषुत किया गया है ॥३ ॥

[सूक्त - १३८]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि। देवता- पूषा। छन्द- अत्यष्टि।]

१५११. प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम्।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥१ ॥

शक्ति के साथ उत्पन्न होने से पूषादेव की महिमा का सभी जगह गान होता है। इनकी सामर्थ्य को दबाना सम्भव नहीं तथा इनके प्रति स्तुतिगानों की कभी कमी नहीं रहती। जो देव यज्ञकर्त्ताओं के मनों में पारस्परिक सहयोग भावना जगाते हैं तथा जो तेजस्विता युक्त यज्ञों को सम्पन्न करते हैं- ऐसे संरक्षण सामर्थ्यों से युक्त, सुख-प्रदायक पूषादेव से अभीष्ट सुखों की प्राप्ति के लिए हम अर्चना करते हैं ॥१ ॥

१५१२. प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः। हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥२ ॥

हे पूषादेव ! जिस प्रकार मनुष्य तीव्र गतिशील अश्व को प्रशंसा द्वारा प्रोत्साहित करते हैं अथवा जिस प्रकार संग्राम की ओर प्रयाण करने वाले वीर को प्रोत्साहित करते हैं, उसी प्रकार हम स्तोत्रवाणियों द्वारा आपको प्रोत्साहित करते हैं। आप मरुस्थल से ऊँट द्वारा यात्रियों को पार उतारने के समान ही हिंसक शत्रुओं से हमें सुरक्षित करें। आप हमारी वाणी में प्रखरता लायें, सभी संघर्षों में हमें तेजस्विता युक्त करें। मैत्री भावना के लिए सुखकारी आप (पूषादेव) को ही हम सभी मनुष्य आवाहित करते हैं ॥२ ॥

१५१३. यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे। तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥३ ॥

हे पूषादेव ! आपकी मैत्री भावना के ज्ञाता वीर पुरुष अपनी पुरुषार्थ क्षमता एवं आपके संरक्षण से सभी उपभोग्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से सभी मनुष्य अपने पुरुषार्थ से ही उपभोग्य सामग्री को प्राप्त करने के लिए किसी की दया के पात्र नहीं बनते। उस श्रेष्ठ बुद्धि के अनुशासन के अधीन रहकर आपसे हम धन की कामना करते हैं। हे बहुसंख्यकों से स्तुत्य पूषादेव ! आप प्रत्येक संघर्षशील संग्राम में हमारा सहयोग करें ॥३ ॥

१५१४. अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥४ ॥

हे पूषादेव ! आप हमें वैभव- सम्पन्न बनाने के लिए प्रेम भाव से दानदाता बनकर यहाँ पधारें । हे दर्शनयोग्य पूषादेव ! अन्न के इच्छुक आप हमारे पास आयें, हम श्रेष्ठ स्तवनों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । हे जल वर्षक पूषादेव ! हम आपके द्वारा अनादर से परे रहें, आपकी मैत्री से कभी वञ्चित न हों ॥४ ॥

[सूक्त - १३९]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- १ विश्वेदेवा, २ मित्रावरुण; ३- ५ अश्विनीकुमार; ६ इन्द्र; ७ अग्नि; ८-मरुद्गण; ९ इन्द्राग्नी; १० बृहस्पति; ११ विश्वेदेवा । छन्द- अत्यष्टि; ५ बृहती; ११ त्रिष्टुप् ।]

१५१५. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी । अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥१ ॥

हमने अग्निदेव को बुद्धिपूर्वक धारण किया है । उस दिव्य प्रदीप्त ज्योति की हम आराधना करते हैं । नवीन याज्ञिक की यज्ञवेदी पर आकर, मनोरथ पूरे करने वाले इन्द्रदेव और वायुदेव की हम प्रार्थना करते हैं । हमारी स्तुति निश्चित ही देवताओं के पास पहुँचे । हमारी प्रार्थनाएँ देवों तक अवश्य पहुँचे ॥१ ॥

१५१६. यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना । युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् । धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥२ ॥

हे मित्रावरुणो ! आप दोनों निज सामर्थ्य से सत्यवादिता द्वारा असत्यवादियों को अनुशासित करते हैं तथा अपनी शक्ति-सामर्थ्य से उनके ऊपर शासन करते हैं । अतएव आप दोनों की स्वर्णिम तेजस्विता को अपनी बुद्धि, मन, इन्द्रियशक्ति तथा ज्ञान सामर्थ्य के द्वारा हम प्रत्यक्ष देखते हैं ॥२ ॥

१५१७. युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३ यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा । प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! देवताओं के प्रति श्रद्धा भावना से युक्त मनुष्य स्तवनों द्वारा आप दोनों का यशोगान करते हैं । श्रद्धावान् याजक आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप दोनों के सर्वज्ञ होने से, समस्त वैभव सम्पदाएँ और अन्न आप दोनों के ही आश्रित हैं । हे मनोहारी देवो ! सुन्दर स्वर्णिम रथ के चक्र आपको वहन करते हैं ॥३ ॥

१५१८. अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये । पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥४ ॥

हे सुन्दर अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सारथी रूप में स्वर्गस्थ मार्गों पर, तीव्र गतिशील अश्वों को रथ में नियोजित करके स्वर्ग पहुँचते हैं, ऐसा सभी का कथन है । हे उत्तम अश्विदेवो ! आप दोनों को हम भली प्रकार बन्धन युक्त स्वर्णिम रथ में विराजित करते हैं । आप दोनों अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण लोकों पर शासन करते हुए जल पर नियन्त्रण रखकर निजमार्गों से प्रस्थान करते हैं ॥४ ॥

१५१९. शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्।

मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥५ ॥

हे पुरुषार्थयुक्त, वैभव सम्पन्न अश्विदेवो ! आप दोनों हमारे श्रेष्ठ कर्मों से प्रसन्न होकर हमें अनवरत (रात-दिन) धन प्रदान करें । आपके द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्यों में कभी कमी न आये । हमारे सार्थक अनुदानों में भी कभी कमी न आये ॥५ ॥

१५२०. वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।

ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे ।

गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह पत्थर द्वारा कूटकर सामर्थ्य - शक्ति के निमित्त पानयोग्य सोमरस अभिषवण करके स्थापित है । यह स्थापित सोमरस आपके पीने के लिए शोधित किया गया है । सुन्दर महान् वैभव प्रदान करने के लिए यह (सोम) आपको उत्साहित करे । हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! वाणी द्वारा की गई प्रार्थनाओं से आप यहाँ पधारें । प्रसन्नतापूर्वक आप हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥६ ॥

१५२१. ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः । यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।

वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर आप हमारे निवेदन पर ध्यान दें । अति पूजनीय देदीप्यमान देवों से कहें कि हे देवो ! आपने गौओं को अंगिराओं के लिए प्रदान किया, उन गौओं को इकट्ठा करते हुए अर्यमा ने उन्हें दुहा । ऐसी गौओं से अर्यमा और हम दोनों ही परिचित हैं ॥७ ॥

१५२२. मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः । यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।

अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥८ ॥

हे मरुद्गणो ! पुरातनकाल की आपकी पराक्रमी सामर्थ्यों को हम कभी विस्मृत न करें । उसी प्रकार हमारी कीर्ति सदैव अक्षुण्ण रहे तथा हमारे नगरों का विध्वंस न हो । आश्चर्यप्रद, स्तुतियोग्य और अमृतरूपी रस प्रदान करने वाली गौओं से सम्बन्धित तथा मनुष्य मात्र के लिए जो धन सम्पदाएँ हैं, वे सभी युगों-युगों तक हमारे पास विद्यमान रहें । कठिनाई से प्राप्त होने योग्य जो सम्पदाएँ हैं, उन्हें भी आप हमें प्रदान करें ॥८ ॥

१५२३. दध्यङ्ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।

तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥९ ॥

पुरातन कालीन दध्यङ्, अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और 'मनु' ये सभी ऋषि हम मनुष्यों के सभी जन्मों को जानते हैं । वे मननशील ज्ञानी हमारे पूर्वजों को जानते हैं । उन ऋषियों का देवताओं के साथ अति निकटस्थ सम्बन्ध है । साधारण मनुष्य देवों से ही शक्ति - ऊर्जा प्राप्त करते हैं । उन्हीं देवों के अनुगामी बनकर, हम हृदय से उन्हें प्रणाम करते हैं । स्तोत्रों से हम इन्द्राग्नी की प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

१५२४. होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूर आदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१० ॥

यज्ञकर्त्ता यज्ञ द्वारा विभिन्न कामनाओं को पूर्ण करें । कल्याणकारी बृहस्पति, सामर्थ्यप्रद तथा विभिन्न लोगों द्वारा वांछित सोम से यज्ञ सम्पन्न करें । दूरस्थ दिशा से आ रही पत्थरों द्वारा सोमवल्ली कूटने की ध्वनि हम स्वयमेव सुनते हैं । सत्कर्म रूपी यज्ञीय कार्यों को करने वाले मनुष्य जल तथा अन्नादि से भरे - पूरे (सम्पन्न) रहते हैं । श्रद्धालु मन द्वारा याज्ञिक मनुष्य प्रचुर वैभव युक्त गृहों से सुशोभित रहते हैं ॥१० ॥

१५२५. ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११ ॥

हे देवो ! आप पृथ्वी, अन्तरिक्ष और देवलोक इन तीनों लोकों में ग्यारह-ग्यारह की संख्या में हैं । हे देवगण ! आप सभी इन आहुतियों को ग्रहण करें ॥११ ॥

[सूक्त - १४०]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- जगती; १० जगती अथवा त्रिष्टुप्;१२-१३ त्रिष्टुप् ।]

१५२६. वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! यज्ञवेदी में विराजित सुन्दर प्रकाशवान्, श्रेष्ठ कान्तियुक्त अग्नि को और अधिक प्रखर-प्रज्वलित करने के लिए समिधाएँ और हविष्यान्न अर्पित करें । उस पावन रथ के समान प्रकाशमान, तेजस्वी, तथा अन्धकार के विनाशक अग्निदेव को अपने स्तोत्रोच्चारण द्वारा किसी वस्त्र से आच्छादित करने की तरह ढक दें ॥१ ॥

१५२७. अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२ ॥

दो विधियों (मंथन एवं अग्न्याधान) द्वारा प्रकट अग्निदेव तीन प्रकार के (आज्य, पुरोडाश तथा सोमरूप) अन्नों को प्राप्त (भक्षण) करते हैं । अग्नि द्वारा ग्रहण किया गया अन्न प्रति वर्ष पुनः बढ़ जाता है । वे (अग्निदेव) जठराग्नि के रूप में भक्षण करते हैं और दावानल के रूप में जंगल के वृक्षों को जला देते हैं ॥२ ॥

१५२८. कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३ ॥

अग्नि प्रज्वलन से काली हुई दोनों अरणिरूपी माताएँ कम्पित होती हैं, इसके बाद उस, गतिमान् , ज्वालाओं रूपी जिह्वाओं से युक्त, अन्धकार नाशक, शीघ्र प्रज्वलनशील तथा साथ रहने योग्य, विशेष प्रयत्न द्वारा रक्षित तथा अपने पालनकर्त्ता याजकों की समृद्धि बढ़ाने वाले, शिशु रूप अग्नि को, (हम याजकगण) प्रकट करते हैं ॥३ ॥

१५२९. मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४ ॥

मोक्षप्रद, तीव्र गतिशील, कृष्ण मार्गगामी, नानाविध रंगों से युक्त, शीघ्रगामी, वायु द्वारा प्रभावित तथा सर्वत्र संव्याप्त होने वाले अग्निदेव गतिशील मनुष्यों के लिए यज्ञीय कार्यों में विशेष उपयोगी हैं ॥४ ॥

१५३०. आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥५ ॥

जिस समय अग्निदेव गर्जन करते हुए श्वास लेते हुए, उच्च शब्दों से आकाश को गुंजित करते हुए तथा विस्तृत पृथ्वी को सभी दिशाओं से छूते हुए प्रज्वलित होते हैं, उस समय उनकी ज्योति- ज्वालाएँ अन्धेरे मार्ग को अपने प्रकाश द्वारा बिना किसी प्रयत्न के सभी ओर प्रकाशित करती हैं ॥५ ॥

१५३१. भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥६ ॥

जो अग्निदेव पीतवर्ण वाली ओषधियों में मानो उनको सुशोभित करने के लिए प्रविष्ट होते हैं और बैल के समान शब्द करते हुए, आज्ञा पालन करने वाली पत्नीरूप ओषधियों - वनस्पतियों को भी खाने लगते हैं । अति तेजस्विता युक्त होने पर ज्वालारूपी अपने शरीर को चमकाते हैं । विकराल रूप धारण करके भयंकर बैल के समान ज्वाला रूपी सींगों को घुमाते हैं ॥६ ॥

१५३२. स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥७ ॥

वे अग्निदेव कभी प्रत्यक्ष, कभी अप्रत्यक्ष रूप से ओषधियों में अपनी सामर्थ्य को व्याप्त करते हैं । प्रकट रूप में अग्नि की अविच्छिन्न ज्वालाएँ सर्वोच्च दिव्यलोक की ओर बढ़ती हैं । पश्चात् वे ज्वालाएँ अपने पितारूप अग्नि सहित पृथ्वी और अन्तरिक्ष में (सूर्य, विद्युत , अग्नि, वड़वानल, दावानल आदि) त्रिविध रूप धारण करती हैं ॥७ ॥

१५३३. तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८ ॥

केशों के समान लम्बी ज्वालाएँ उस अग्नि को सभी ओर से स्पर्श करती हैं । वे ज्वालाएँ मृतवत् होती हुई भी अग्नि से मिलने के लिए ऊर्ध्व मुख होकर ज्वलन्त हो उठती हैं । अग्निदेव उन ज्वालाओं की जीर्णता को समाप्त करके उन्हें सामर्थ्य और जीवन्त बनाते हुए गर्जन करते हैं ॥८ ॥

१५३४. अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥९ ॥

धरती माता के तृण रूपी वस्त्रों को (वनस्पति आदि को) खाते हुए ये अग्निदेव विजयशील प्राणियों के साथ वेगपूर्वक जाते हैं । वे मनुष्य और पशुओं को अन्नरूपी शक्ति देते हैं । अग्निदेव हमेशा तृणादि को जलाते हुए जिस मार्ग से जाते हैं, उसे पीछे से काला कर देते हैं ॥९ ॥

१५३५. अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे ऐश्वर्य सम्पन्न गृह को प्रकाशित करें । इसके बाद समर्थ शत्रुओं को पराजित करने वाले आप श्वास (प्राण वायु) द्वारा शैशव त्यागकर संग्राम में हमारे लिए रक्षा कवच के समान उपयोगी हों । बार-बार शत्रुओं को दूर भगाकर विशेष दीप्ति से प्रकाशित हों ॥१० ॥

१५३६. इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मन: प्रेयो अस्तु ते।
यत्ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११॥

हे अग्निदेव ! आपके प्रति हमारे द्वारा निवेदित स्तोत्र दूसरे सभी स्तोत्रों की अपेक्षा उत्तम हो। इन स्तोत्रों से आपकी तेजस्विता में वृद्धि हो, जिससे रत्नस्वरूप सुन्दर सम्पदा हम प्राप्त करें ॥११॥

१५३७. रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे घर के परिजनों तथा महारथी वीरों के लिए यज्ञीय सत्कर्म रूपी सुदृढ़ नाव प्रदान करें। जो नाव हमारे शूरवीरों, धनसम्पन्नों तथा अन्य मनुष्यों को भी संसार सागर से पार उतार सके। आप हमें श्रेष्ठ सुख सम्पदा भी प्रदान करें ॥१२॥

१५३८. अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥१३॥

हे अग्निदेव ! हमारे स्तोत्र आपकी भली प्रकार प्रशंसा करने वाले हैं। अन्तरिक्ष, पृथ्वी तथा स्वयं प्रवाहित सरितायें हमें गौओं द्वारा उत्पादित दुग्धादि और अन्नादि-पदार्थों को प्रदान करें। इसके अतिरिक्त अरुणवर्णा उषाएँ हमें श्रेष्ठ अन्न और बल सामर्थ्य से परिपूर्ण करें ॥१३॥

[सूक्त - १४१]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य। देवता- अग्नि। छन्द- जगती; १२-१३ त्रिष्टुप्।]

१५३९. बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥१॥

दिव्य अग्नि की उस रमणीय तेजस्विता को मनुष्य देह की सुदृढ़ता हेतु धारण करते हैं। क्योंकि वह तेजस्विता बल से उत्पादित है। इस विख्यात लोकोपयोगी अग्निदेव की तेजस्विता को हमारी विवेक बुद्धि प्राप्त करे। वह हमारे अभीष्ट उद्देश्यों को पूर्ण करे। सभी प्राणियों द्वारा अग्निदेव की ही प्रार्थनाएँ की जाती हैं ॥१॥

१५४०. पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥२॥

(अग्निदेव के तीन रूप वर्णित हैं) प्रथम भौतिक अग्नि के रूप में अन्न को पकाने वाले और शरीर को पोषित करने वाले हैं। दूसरे सप्त लोकों के हितकारक मेघों में विद्युत् रूप में हैं। तीसरे बलशाली अग्निदेव सभी रसों का दोहन करने वाले सूर्य रूप मे विद्यमान हैं। ऐसे दशों दिशाओं में श्रेष्ठ इन अग्निदेव को अँगुलियाँ मन्थन द्वारा उत्पन्न करती हैं ॥२॥

१५४१. निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३॥

जब ऋत्विज विशाल अरणियों के मूलस्थान के मन्थन द्वारा उसी प्रकार अग्नि प्रकट करते हैं, जिस प्रकार पहले भी सोमयज्ञ में आहुति देने के लिए अप्रकट इस अग्नि को विद्वान् मातरिश्वा ने मन्थन द्वारा प्रकट किया था। तब सभी के द्वारा उनकी स्तुति की जाती है ॥३॥

१५४२. प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥४ ॥

सबके श्रेष्ठ पालक होने से अग्निदेव जब सभी ओर से प्रज्वलित होते हैं, तब समिधाओं के इच्छुक अग्निदेव के ज्वालारूपी दाँतों पर वृक्षादि अर्पित किये जाते हैं । जब दोनो अरणियाँ इस अग्नि को उत्पादित करने के लिए प्रयत्नशील होती हैं, तब पावन अग्निदेव प्रकट होकर तेजस्वी और बलशाली होते हैं ॥४ ॥

१५४३. आदिन्मातृराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥५ ॥

अग्निदेव की सामर्थ्य प्रकट होकर मातृरूपा दसो दिशाओ में सर्वत्र सव्याप्त हो गई । वे उन सभी दिशाओं में विघ्नरहित होकर अति वृद्धि को प्राप्त हुए । चिरकाल से स्थायी ओषधियों तथा नई-नई प्रकट हो रही ओषधीय - गुणों से रहित वनस्पतियों में भी अग्नि के गुण संव्याप्त हो रहे हैं ॥५ ॥

१५४४. आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥६ ॥

इसके बाद सभी याजकगणो ने यज्ञो मे आहुतियाँ ग्रहण करने वाले अग्निदेव का वरण किया तथा वैभव सम्पन्न नरेश के समान ही उन्हें प्रसन्न किया । इससे आनन्दित होकर ये अग्निदेव शक्ति ऊर्जा से सम्पन्न हैं । श्रेष्ठ यज्ञों में ये अग्निदेव हवि सेवन करने के लिए देवों का आवाहन करते हैं ॥६ ॥

१५४५. वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥७ ॥

जैसे अवरोध रहित, बहुभाषी, प्रशंसनीय उपहास युक्त वचनों से विदूषक सारे स्थान को हास्य से भर देता है, उसी प्रकार वायु द्वारा गतिमान् अग्निदेव सर्वत्र संव्याप्त हो जाते हैं । ऐसे अपनी ज्वलनशीलता से सब कुछ जलाने वाले, पावनस्वरूप में उत्पन्न, बहुमार्गगामी तथा जाने के बाद मार्ग में कालिमा छोड़ने वाले अग्निदेव के मार्ग का सभी लोक अनुगमन करते हैं ॥७ ॥

१५४६. रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥८ ॥

कुशल कारीगरों द्वारा रचित और चालित रथ के समान ही ये अग्निदेव वेगशील ज्वालाओं से दिव्यलोक की ओर प्रस्थान करते हैं । जाने के साथ ही इनके ये गमन मार्ग कालिमायुक्त हो जाते हैं, क्योंकि वे काष्ठों को जलाने वाले हैं । वीरों से डर कर शत्रुओं के भागने के समान ही, अग्नि की ज्वालाओं को देखकर पक्षीगण भाग जाते हैं ॥८ ॥

१५४७. त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी सामर्थ्य से ही वरुणदेव व्रतों का निर्वाह करते, सूर्यदेव अन्धेरे को दूर करते तथा अर्यमादेव श्रेष्ठ दान के व्रतों का पालन करते हैं । इसलिए हे अग्निदेन ! आप सभी ओर कर्त्तव्य परायणता द्वारा विश्वात्मारूप, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान् रूप में प्रकट होते हैं । जैसे रथ का चक्र अरों को व्याप्त करके रखता है, उसी प्रकार आप भी सर्वत्र संव्याप्त होकर सब नियमों का निर्धारण करते हैं ॥९ ॥

१५४८. त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१० ॥

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव ! आप स्तोता और सोम निष्पादनकर्त्ता यजमान के लिए ऐश्वर्यप्रद उत्तम धनों को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं । शक्तिपुत्र, तरुण महिमामय और रत्नरूप हे अग्निदेव ! पूजा उपासना के समय हम आपकी भूपति के समान ही अर्चना करते हैं ॥१० ॥

१५४९. अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे लिये गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित एवं उपयोगी सम्पत्ति देने के साथ-साथ वैभवपूर्ण, अतिकुशल सहयोगी परिजनों (सन्तानादि) को भी प्रदान करें । आप अपने जन्म के कारण आकाश और भूलोक दोनों को रासों (घोड़ों की लगाम) की तरह ही अपने नियन्त्रण में रखते हैं । ऐसे श्रेष्ठ कर्मशील आप यज्ञ में उपस्थित ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित हों ॥११ ॥

१५५०. उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२ ॥

तेजवान् वेगशील अश्वों से युक्त, देवावाहक, सुखदायी स्वर्णिम रथ से युक्त, अपराजेय शक्ति सम्पन्न तथा प्रसन्नता जैसे दैवीगुणों से विभूषित अग्निदेव क्या हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे ? वे सत्कर्मों की प्रेरणा द्वारा क्या हमें परम सौभाग्य प्रदान करेंगे ? अर्थात् अवश्य प्रदान करेंगे ॥१२ ॥

१५५१. अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥१३ ॥

साम्राज्य के लिए श्रेष्ठ तेजस्विता के धारणकर्ता अग्निदेव प्रभावकारी स्तोत्रवाणियों से सभी के द्वारा प्रशंसित होते हैं । जैसे सूर्यदेव मेघों में शब्द ध्वनि पैदा करते हैं, वैसे ही इन ऋत्विजों, हम यजमानों तथा अन्य वैभवशालियों द्वारा उच्चस्वरों से अग्निदेव की प्रार्थनाएँ की जाती हैं ॥१३ ॥

[सूक्त - १४२]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** (आप्रीसूक्त) - १ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि; २ तनूनपात्; ३ नराशंस; ४ इळ; ५ बर्हि; ६ देवीद्वार; ७ उषासानक्ता; ८ दिव्य होता प्रचेतस; ९- तीन देवियाँ - सरस्वती, इळा, भारती; १० त्वष्टा; ११ वनस्पति; १२ स्वाहाकृति; १३ इन्द्र । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१५५२. समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रज्वलित होकर हविदाता यजमान के लिए देवताओं का आवाहन करें । सोम अभिषव कर्त्ता, दानी यजमान के लिए प्राचीन यज्ञ के सम्पादनार्थ अपनी ज्वालाओं को बढ़ायें ॥१ ॥

१५५३. घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥२ ।

शरीर के आरोग्य को बढ़ाने वाले हे अग्ने ! आपके प्रशंसक तथा दानदाता हम ब्रह्मनिष्ठ विद्वानों द्वारा किये जाने वाले माधुर्य से युक्त तथा तेजस्वी यज्ञ में आकर आप प्रतिष्ठित हों ॥२ ॥

१५५४. शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवताओं द्वारा पूजनीय, मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय, पवित्र रहकर दूसरों को भी पवित्र करने वाले, आश्चर्यप्रद और तेजस्वी हैं। आप दिव्य लोक के मधुर रस रूप यज्ञ को दिन में तीन बार सिंचित करें ॥३ ॥

१५५५. ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।

इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रशंसित होकर विलक्षण कर्मों के निर्वाहक प्रिय इन्द्रदेव को हमारे इस यज्ञ में लेकर आयें। हे सुन्दर ज्वालारूपी जिह्वायुक्त अग्निदेव ! हमारी ये बुद्धियाँ, सदैव आपकी ही प्रार्थनाएँ करती हैं ॥४ ॥

१५५६. स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे । वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥

स्रुवा पात्र को धारण किये हुए ऋत्विग्गण श्रेष्ठ यज्ञ में कुश के आसनों को फैलाते हैं तथा देवों के आवाहक, विशाल यज्ञस्थल को इन्द्रदेव के लिए शोभायमान करते हैं ॥५ ॥

१५५७. वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः । पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥६॥

महिमा युक्त, यज्ञ का विकास करने वाले, पवित्र, सबके प्रिय अलग-अलग स्थित दिव्य द्वार, देवत्व की प्राप्ति के लिए यहाँ स्थित हों (खुल जायें) ॥६ ॥

१५५८. आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।

यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥७ ॥

मिलकर रहने वाली श्रेष्ठ स्वरूप युक्त, महिमामय, यज्ञकर्म को सिद्ध करने वाली पारस्परिक सहयोग की प्रतीक, रात्रि और उषा हमारे सम्बन्ध में श्रेष्ठ विचारधारा रखते हुए इस यज्ञ में आकर विराजमान हों ॥७ ॥

१५५९. मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।

यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥८ ॥

वाणी के प्रयोक्ता, मेधावी, उच्चारण-विद्या में प्रवीण, दैवी गुणों से सम्पन्न यज्ञ संचालक (होता), वर्तमान विशिष्ट आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा देवत्व पद को प्राप्त कराने वाले, हमारे देवयज्ञ में उपस्थित होकर यज्ञ सम्पन्न करायें ॥८ ॥

१५६०. शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।

इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥९ ॥

देवताओं और मरुद्गणों में पूजनीय, पवित्र यज्ञीय कर्मों के निर्वाहक होत्रा रूप भारती, सरस्वती और इळा इस यज्ञ में उपस्थित हों ॥९ ॥

१५६१. तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।

त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥१० ॥

हमारे हितैषी निर्माता हे त्वष्टादेव ! आप हम सबके द्वारा इच्छित, शीघ्र प्रवाहित होने वाले, अन्तरिक्षस्थ अद्भुत मेघों से जलवृष्टि द्वारा सबके लिए पौष्टिक अन्न और ऐश्वर्यों को प्रदान करें ॥१० ॥

१५६२. अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते । अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥११॥

हे वनों के अधिपते ! आप यज्ञीय कर्मों की प्रेरणा से युक्त होकर देवताओं के निमित्त अग्नि प्रज्वलित करें। ज्ञानवान् अग्निदेव को समर्पित आहुतियाँ सूक्ष्मरूप होकर देवताओं तक पहुँचती हैं ॥११॥

१५६३. पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥१२॥

हम पूषादेव और मरुद्‌गणों से युक्त सर्वदेव समूह के लिए, वायुदेव के लिए तथा गायत्री साधकों के संरक्षक इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ हव्य समर्पित करें ॥१२॥

१५६४. स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥१३॥

हे इन्द्रदेव ! आप श्रद्धा भावना से समर्पित की गई- आहुतियों को ग्रहण करने के लिए यहां पधारें । यज्ञीय सत्कर्मों के लिए मनुष्य आपको आवाहित कर रहे हैं । उनके निवेदन को सुनकर उनके सहयोग हेतु अवश्य आयें

[सूक्त - १४३]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अग्नि । छन्द- जगती; ८ त्रिष्टुप् ।]

१५६५. प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदद्दृत्वियः ॥१॥

शक्ति के पुत्र, जलों के संरक्षक, अग्निदेव सबके प्रिय तथा ऋतुओं को दृष्टिगत रखकर यज्ञीय कर्मों के सम्पादक हैं । वे ऐश्वर्यों सहित पृथ्वी के ऊपर यज्ञवेदी में प्रतिष्ठित होते हैं । ऐसे अग्निदेव के निमित्त हम नवीनतम श्रेष्ठ प्रार्थनाएँ अर्पित करते हैं ॥१॥

१५६६. स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२॥

वे तेजस्विता सम्पन्न अग्निदेव, मातरिश्वा वायु के लिए उच्च अन्तरिक्ष में सबसे पहले प्रादुर्भूत हुए । श्रेष्ठ विधि से प्रज्वलित होने वाले अग्निदेव की शक्ति सामर्थ्य से दिव्य लोक और भूलोक भी प्रकाशमान हुए ॥२॥

१५६७. अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥३॥

इन अग्निदेव की प्रचण्ड तेजस्विता जीर्णता से रहित है । सुन्दर मुखवाली इनकी तेजस्वी किरणें सभी ओर संव्याप्त होकर प्रकाशित हैं । दीप्तिमान्, शक्ति सम्पन्न तथा रात्रि के अन्धकार को पार करते हुए इन अग्निदेव की ज्वालारूपी किरणें सदा जाग्रत् और क्षय रहित होकर कभी भयभीत नहीं होतीं ॥३॥

१५६८. यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥४॥

जो अग्निदेव वरुणदेव के समान ही ऐश्वर्यों के एकमात्र अधिपति हैं, उन्हें भृगुवंशी ऋषियों ने अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों तथा पृथ्वी पर समस्त ऐश्वर्यों के लिए प्रतिष्ठित किया । ऐसे अग्निदेव को आप भी अपने गृह में ले जाकर श्रेष्ठ प्रार्थनाओं से प्रज्वलित करें ॥४॥

१५६९. न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥५॥

जो अग्निदेव मरुद्गणों की भीषण गर्जना की भाँति, आक्रमण को प्रेरित पराक्रमी सेना की भाँति तथा आकाश के वज्रास्त्र के समान ही अवरोध रहित हैं । वे अग्निदेव योद्धाओं के समान ही अपनी तीव्र ज्वालाओं रूपी तीखे दाँतों से शत्रुओं को विनष्ट करते हैं तथा वनों को भी उसी प्रकार भस्मीभूत कर देते हैं ॥५ ॥

१५७०. कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥६ ॥

अग्निदेव हमारे स्तोत्र के प्रति विशेष कामना से प्रेरित होकर सबके आश्रयभूत धन द्वारा हमारी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करें । वे हमारे कल्याणार्थ श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा बार-बार प्रदान करें । हम अपनी निर्मल भावनाओं से उत्तम ज्योति स्वरूप अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

१५७१. घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७ ॥

हम आप के लिए यज्ञ सम्पादक और घृत द्वारा प्रज्वलित अग्निदेव को मित्र के समान प्रदीप्त करके सुशोभित करते हैं । वे अग्निदेव श्रेष्ठ प्रकाश युक्त दीप्तियों से सम्पन्न यज्ञों में प्रज्वलित किये जाने पर मनुष्यों की श्रेष्ठ भावनाओं में प्रखरता लाते हैं ॥७ ॥

१५७२. अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप निरन्तर आलस्य रहित, व्यवधान रहित, हितकारक तथा सुखदायी साधनों से हमें संरक्षण प्रदान करें । हे पूजनीय अग्निदेव ! आप अनिष्ट रहित होकर बिना किसी पीड़ा और आलस्य के हमारी सन्तानों को भी भली प्रकार सुरक्षा प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त - १४४]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अग्नि । छन्द- जगती ।]

१५७३. एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१ ॥

विशेष ज्ञानवान् याज्ञिक अपनी उच्च निर्मल भावनाओं को धारण करते हुए इन अग्निदेव के निर्धारित व्रत अनुशासनों का ही अनुसरण करते हैं । पश्चात् ये याज्ञिक हवि प्रदान करने के लिए उपयोगी स्रुवा पात्र को हाथ में धारण करते हैं । जो स्रुवा को धारण करते हैं, वे हाथ सर्वप्रथम शोभा पाते हैं ॥१ ॥

१५७४. अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥२ ॥

जलधाराएँ अग्नि के मूल स्थान दिव्य लोक को आच्छादित करके वहाँ आनन्दपूर्वक वास कर रहे अग्नि देव से वृष्टिरूप में धरती पर आने के लिए प्रार्थना करती हैं । ये अग्निदेव अपनी किरणों से जल वृष्टि करते हैं । उस अमृतरूपी जल का सभी लोग सेवन करते हैं । जलों के साथ अन्तरिक्ष से आने वाला अग्निरूप प्राण-पर्जन्य पहले वनस्पतियों में तत्पश्चात् सभी प्राणियों में समाविष्ट हो जाता है ॥२ ॥

१५७५. युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।

आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥३ ॥

अग्नि को उत्पन्न करने के लिए भली प्रकार स्थापित एक ही समय में समान सामर्थ्य से युक्त दो अरणियाँ परस्पर घिसी जाती हैं । प्रज्वलित होने के बाद यजनीय अग्निदेव हमारे द्वारा प्रदत्त घृतधारा को सभी ओर से उसी प्रकार ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार सारथी अश्वों को लगाम द्वारा नियन्त्रित करते हैं ॥३ ॥

१५७६. यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।

दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४ ॥

दो समान आयु वाले, एक ही घर में रहने वाले, समान कार्यों में संलग्न युग्म अग्निदेव की यज्ञीय कर्मों द्वारा अहर्निश अर्चना करते हैं । उनके द्वारा पूजित अग्निदेव बढ़ने पर भी (प्राचीन होते हुए भी) वृद्ध नहीं होते । वे अनेकों युगों से संचरित होकर भी कभी जीर्ण नहीं होते ॥४ ॥

१५७७. तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।

धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥५ ॥

दसों अँगुलियों की आपसी भिन्नता होने पर भी वे सभी मिलकर प्रकाश देने वाली अग्नि को प्रकट करती हैं । हम सभी मनुष्य अपने संरक्षणार्थ अग्निदेव को आवाहित करते हैं । जिस प्रकार धनुष से बाण निकलता है, उसी प्रकार अग्निदेव प्रज्वलित होकर चारों ओर उपस्थित अपने प्रति स्तुतिगाताओं द्वारा निवेदित नूतन प्रार्थनाओं को धारण करते हैं ॥५ ॥

१५७८. त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।

एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप गौ आदि पशुपालकों के समान अपनी सामर्थ्य से दिव्यलोक और पृथ्वीलोक के अधिपति हैं । अतएव व्यापक, ऐश्वर्य सम्पन्न, स्वर्णमय, मंगल शब्दमय, शुभ्रवर्णयुक्त ये दोनों, दिव्य लोक और भूलोक, आपके इस प्रख्यात यज्ञ में उपस्थित होते हैं ॥६ ॥

१५७९. अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।

यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥७ ॥

प्रशंसा योग्य, अन्नों से समृद्ध यज्ञहेतु उत्पन्न श्रेष्ठ कर्मशील हे अग्निदेव ! जो आप समस्त जड़ और चेतनादि संसार के लिए अनुकूल दर्शन योग्य, पिता के समान पालक नेत्रों को शक्ति देने वाले तथा सबके आश्रय स्थान हैं । अतएव आप प्रसन्न होकर इन स्तोत्रवाणियों का बार-बार श्रवण करें ॥७ ॥

[सूक्त - १४५]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- जगती, ५ त्रिष्टुप् ।]

१५८०. तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।

तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥१ ॥

हे मनुष्यो !आप सभी उन अग्निदेव से ही प्रश्न करें, क्योंकि वे ही सर्वत्र गमनशील, सर्वज्ञाता, ज्ञानवान्, निश्चय ही सर्वत्र व्यापक हैं । उन्हीं में प्रशासन की सामर्थ्य तथा सभी अभीष्ट पदार्थ विद्यमान हैं । वे अग्निदेव ही अन्न, बल तथा शक्ति साधनों के स्वामी हैं ॥१ ॥

१५८१. तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।

न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥२ ॥

ज्ञान सम्पन्न ही जिज्ञासा प्रकट करते है, क्योंकि सर्वसाधारण उनसे नहीं पूछ सकते । धैर्यवान् मनुष्य कार्य को निर्धारित अवधि से पहले ही सम्पन्न कर डालते हैं । वे किसी के कथन को अनावश्यक महत्व नहीं देते, अतएव अहंकार से रहित मनुष्य ही अग्निदेव की सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

१५८२. तमिद् गच्छन्ति जुह्व१ स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।

पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥३ ॥

घृत चमस द्वारा प्रदत्त सभी आहुतियाँ उन अग्निदेव को ही प्रदान की जाती हैं और प्रार्थनाएं भी उन्हीं के निमित्त हैं । वे अकेले ही हमारी सम्पूर्ण स्तोत्र वाणियों का श्रवण करते हैं । ये अग्निदेव अनेकों के लिए प्रेरणाप्रद, दुःखों के निवारक, यज्ञसाधक, पवित्र संरक्षक तथा सामर्थ्यों से सम्पन्न हैं । अग्निदेव स्नेह युक्त होकर शिशु के समान ही आहुतियों को ग्रहण करते हैं ॥३ ॥

१५८३. उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।

अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४ ॥

जब ऋत्विग्गण अग्निदेव को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं तब वे शीघ्र प्रदीप्त होकर सब ओर फैल जाते हैं । जब सर्वत्र संव्याप्त यज्ञाग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं, तब ये अग्निदेव उत्साही यजमानों को अभीष्ट फल प्रदान करके प्रोत्साहित करते हैं ॥४ ॥

१५८४. स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।

व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥५ ॥

वनों में विचरणशील, अनुसंधान करने और उपलब्ध करने योग्य अग्निदेव, उत्तम समिधाओं के बीच स्थापित किये जाते हैं । मेधावी - यज्ञ के ज्ञान से सम्पन्न, सत्ययुक्त अग्निदेव वास्तव में ही मनुष्यों को यज्ञकर्म में प्रेरित करते हुए दिव्य ज्ञान का सन्देश देते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १४६]

[**ऋषि** - दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१५८५. त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।

निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! आप सभी माता-पिता के समान पृथ्वी और दिव्यलोक के बीच गोद में विराजमान, तीन मस्तकों से युक्त (प्रातः- मध्याह्न और सायं ये तीन सवन ही अग्नि के तीन शीश हैं) सात छन्दरूप सात ज्वालाओं से युक्त (काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता ये सात अग्नि की ज्वालाएं हैं) सबको पूर्णता प्रदान करने वाले इन अग्निदेव की प्रार्थना करें । दिव्य लोक से संचरित होने वाला इनका दिव्य तेजसमूह सभी जड़ और चेतन सृष्टि में संव्याप्त हो रहा है ॥१ ॥

१५८६. उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।

उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥२ ॥

महान् शौर्यवान् अग्निदेव इस द्युलोक और पृथ्वीलोक को सभी ओर से संव्याप्त करते हैं । सदा युवा रहने वाले पूजनीय अग्निदेव अपने संरक्षण साधनों से सम्पन्न होकर विराजमान हैं । भूमि के शीर्ष पर अपने पैरों को रखकर खड़े हुए इनकी प्रदीप्त ज्वालाएँ आकाश में सर्वत्र फैलती हैं ॥२ ॥

१५८७. समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥३ ॥

एक ही अग्नि रूपी पुत्र को उत्पन्न करने वाली, मार्गों को प्रकाशित करके उन्हें जाने योग्य बनाती हुई, सभी प्रकार की ज्ञान सम्पदा को व्यापकरूप में धारण करती हुई, उत्तम दर्शन योग्य दो गौएँ (अग्नि सम्वर्धन करने वाली यजमान दम्पती रूप) चारों ओर विचरण कर रही हैं ॥३ ॥

१५८८. धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥

धैर्य युक्त एवं मेधावी मनुष्य, विभिन्न प्रकार के साधनों से भावनापूर्वक अग्नि की रक्षा करते हुए उन्हें सुरक्षित स्थान पर ले जाते हैं । जब अग्नि की कामना करने वाले मनुष्यों ने समुद्र के जल को चारों ओर देखा, तब ऐसे मनुष्यों के लिए सूर्य प्रकाश रूप में प्रकट हुए ॥४ ॥

१५८९. दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५ ॥

सभी दिशाओं में संव्याप्त होने एवं सदा विजयी होने से ये अग्निदेव प्रशंसा योग्य हैं । ये छोटे और बड़े सभी प्राणियों को जीवनी - शक्ति देने वाले हैं । अतः विभिन्न सम्पदाओं के स्वामी और सबके प्रकाशक ये अग्निदेव बीजरूप में बोये गये (गर्भस्थ) पदार्थों के उत्पत्ति के मूल कारण हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १४७]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१५९०. कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ द्वारा वायुमण्डल का शोधन करने वाली, सर्वत्र प्रकाश बिखेरने वाली आपकी ज्वालाएँ किस प्रकार पोषक अन्नों के द्वारा जीवन तत्व प्रदान करती हैं ? ॥१ ॥

१५९१. बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥२ ॥

उत्तम तरुण रूप, वैभव सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हमारे महिमायुक्त बार-बार किये गये निवेदन को स्वीकार करें । कोई आपके निन्दक हैं तो कोई प्रशंसा करने वाले हैं, लेकिन हम स्तोता स्वभाव से युक्त आपकी प्रज्वलित ज्योति की वन्दना ही करते हैं ॥२ ॥

१५९२. ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी जिन प्रख्यात संरक्षक किरणों ने 'ममता' के पुत्र के अन्धेपन को दूर किया । ज्ञान से

सम्पन्न लोकहित के कार्यों को करने वाले को आपने संरक्षण प्रदान किया; लेकिन अहंकारी दुष्कर्मी आपको प्रभावित न कर सके ॥३ ॥

१५९३. यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जो दुष्कर्मों में लिप्त पापीजन हमें सार्थक दान देने में बाधा पहुँचा रहे हैं, जो स्वयं भी यज्ञीय कर्मों में सहयोग नहीं करते तथा छलपूर्ण चालों से हमें भी परेशान करते हैं । उनकी वे छलरूपी समस्त योजनाएँ उनके स्वयं के ही विनाश का कारण बनें । दूसरों के लिए कटु वचन बोलने वालों के शरीर क्षीण हो जायें ॥४ ॥

१५९४. उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।

अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥५ ॥

शक्ति के पुत्र हे अग्निदेव ! जो मनुष्य छल-कपटपूर्ण दुर्व्यवहार से हमें कष्ट पहुँचाना चाहते हैं, उनसे हम उपासकों को बचायें । हे स्तुत्य अग्निदेव ! हमें दुष्कर्मरूपी पापों की दुःखाग्नि में जलने से बचायें ॥५ ॥

[सूक्त - १४८]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१५९५. मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।

नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्व१र्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥१ ॥

देवताओं के आवाहक, सर्वरूपवान्, देवताओं के निमित्त सभी यज्ञादि कर्मों में कुशल उन अग्निदेव को जब मातरिश्वा (अन्तरिक्ष में संचरित होने वाले) वायु ने सर्वव्यापक होकर मन्थन द्वारा उत्पन्न किया । तब सूर्यदेव की तरह विचित्र तेजस्विता सम्पन्न उन अग्निदेव को मनुष्यों के शरीरों में पोषण के लिए प्रतिष्ठित किया गया, उनकी हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१५९६. ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।

जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥२ ॥

अग्निदेव की स्तुति करने वाले हम याजकों को शत्रु पीड़ित नहीं कर सकते, क्योंकि अग्निदेव हमारे स्तोत्रों की मंगल कामना से प्रेरित हैं । हम स्तोताओं की प्रार्थनाओं को तथा समस्त सत्कर्मों को सम्पूर्ण देवशक्तियाँ ग्रहण करती हैं ॥२ ॥

१५९७. नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।

प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥३ ॥

जिन अग्निदेव को याजकगण प्रतिदिन यज्ञ गृह में शीघ्रतापूर्वक स्तुतियों सहित प्रतिष्ठित करते हैं, उन्हें याजकगण यज्ञार्थ, तीव्रगामी रथ के घोड़ों की तरह विकसित करते हैं ॥३ ॥

१५९८. पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।

आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४ ॥

अग्निदेव ज्वालारूपी दाँतों से वृक्षों को प्राय: विनष्ट कर देते हैं। वे जंगल में सभी ओर प्रकाश बिखेरते हैं। इस अग्नि की ज्वाला इसके समीप से वायु की अनुकूलता पाकर छोड़े गये बाण की तरह वेग से आगे बढ़ती है ॥४॥

१५९९. न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति।

अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥५॥

गर्भ में स्थित अग्निदेव को शत्रु पीड़ित नहीं कर सकते। अज्ञानी दृष्टि विहीन एवं ज्ञान का दम्भ भरने वाले भी जिसकी महिमा को कम नहीं कर सके। उन अग्निदेव को नित्य यज्ञकर्म द्वारा संतुष्ट करने वाले मनुष्य सुरक्षित रखते हैं ॥५॥

[सूक्त - १४९]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य। देवता- अग्नि। छन्द- विराट्।]

१६००. महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ।

उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥१॥

जब वे अग्निदेव धन-सम्पदा प्रदान करने के लिए हमारे यज्ञों में आगमन करते हैं, तब पत्थरों द्वारा कूटकर अभिषुत सोमरस से उनका अभिनन्दन किया जाता है ॥१॥

१६०१. स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः।

प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥२॥

शक्तिशाली पुरुष की तरह अग्निदेव द्युलोक और भूलोक मे यश सहित रहते हैं। वे प्राणियों के लिए उपयुक्त सृष्टि की रचना करते हैं। वे ही प्रदीप्त होकर यज्ञवेदी में स्थापित होते हैं ॥२॥

१६०२. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा।

सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥३॥

जो अग्निदेव यजमानों द्वारा निर्मित यज्ञ वेदियों को प्रदीप्त करते हैं, जो द्रुतगामी घोड़े और वायु के सदृश गति वाले तथा दूर द्रष्टा हैं, वे अनेक रूपों में (विद्युत्, प्रकाश, ऊर्जा आदि) सुशोभित अग्निदेव सूर्यदेव के सदृश तेजोमय हैं ॥३॥

१६०३. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥४॥

ये अग्निदेव द्विजन्मा (दो अरणियों अथवा मंथन एवं अग्न्याधान से स्थापित) हैं, त्रिरोचन (सूर्य, विद्युत् एवं लौकिक अग्निरूप में) सारे विश्व को प्रकाशित करने वाले हैं। ये होता अग्निदेव जलों के बीच भी विद्यमान हैं ॥४॥

१६०४. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।

मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥५॥

दो अरणियों से उत्पन्न हुए अग्निदेव देवों का आवाहन करने (बुलाने) वाले, सब श्रेष्ठ धनों और यशस्वी कर्मों के धारक हैं। वे अग्निदेव अपने याजकों को उत्तम सम्पत्ति प्रदान करने वाले हैं ॥५॥

[सूक्त - १५०]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अग्नि । छन्द- उष्णिक् ।]

१६०५. पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा। तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१ ॥

महान् सम्पत्तिशाली की शरण में आये हुए (धन याचक) सेवक के सदृश, हम अग्निदेव के निमित्त आहुति प्रदान करते हुए स्तुतिगान करते हैं ॥१ ॥

१६०६. व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः। कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जो श्रद्धाहीन हैं, धन सम्पन्न होते हुए भी कृपण हैं तथा देवताओं के अनुशासन को नहीं मानते ; ऐसे स्वेच्छाचारी नास्तिकों को आप अपनी कृपादृष्टि से वञ्चित करें ॥२ ॥

१६०७. स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि। प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥३ ॥

हे ज्ञान सम्पन्न अग्निदेव ! जो मनुष्य आपकी शरण में आते हैं, वे आपकी तेजस्विता से दिव्य लोक के चन्द्रमा के समान सबके लिए सुखदायक होते हैं । वे सबसे अधिक महानता युक्त होते हैं । अतएव हम सदैव आपके प्रति श्रद्धा भावना से ओतप्रोत रहें ॥३ ॥

[सूक्त - १५१]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता-१ मित्र; २-९ मित्रावरुण । छन्द- जगती ।]

१६०८. मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१ ॥

पूजनीय एवं प्रीतियुक्त जिन अग्निदेव को मानव मात्र की रक्षा के लिए गौ (पोषक किरणों) की कामना से प्रेरित श्रेष्ठ ज्ञानियों ने, मित्र के समान अपने श्रेष्ठ यज्ञीय सत्कर्मों में प्रकट किया । उनकी ध्वनि और तेजोमयी शक्ति से दिव्य लोक और पृथ्वी लोक कम्पायमान होते हैं ॥१ ॥

१६०९. यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥२ ॥

हे सामर्थ्यवान् मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों के लिए मित्र के समान हितैषी ऋत्विग्गणों ने अपनी सामर्थ्य से सत्तावान् तथा विभिन्न सुखों के दाता सोमरस को अर्पित किया है । अतएव आप दोनों स्तोता के गुण, कर्म, स्वभाव को समझें तथा सद्गृहस्थ यजमान की प्रार्थना पर भी ध्यान दें ॥२ ॥

१६१०. आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥३ ॥

हे शक्ति सम्पन्न मित्र और वरुण देवो ! पृथ्वीवासी महान् दक्षता की प्राप्ति के लिए द्यावा-पृथ्वी से उत्पन्न आप दोनों की प्रशंसा करते हैं और स्तोत्रों से अलंकृत करते हैं । क्योंकि आप दोनों सच्चे साधक तथा दैवी नियमों के पालक को सामर्थ्य प्रदान करते हैं । आप आमन्त्रित करने पर तथा सत्कर्मों से आकर्षित होकर यज्ञ में उपस्थित होते हैं ॥३ ॥

१६११. प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत्।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४ ॥

हे बलशाली मित्रावरुण ! जो (यज्ञ भूमि) आप दोनों को विशेष प्रिय है, उस भूमि का व्यापक विस्तार हो । हे यज्ञीय कर्मों के पालनकर्त्ता देवो ! आप दोनों निर्भीकतापूर्वक महान् सत्यज्ञान का उद्घोष करें । महान् देवों गुणों के संवर्धनार्थ आप दोनों सामर्थ्ययुक्त तथा कल्याणकारी कर्मों में उसी प्रकार संलग्न हों जिस प्रकार बैल हल के जुए में संलग्न होते हैं ॥४ ॥

१६१२. मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।

स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥५ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों विस्तृत पृथ्वी पर अपनी प्रभाव क्षमता से धारण करने योग्य श्रेष्ठ धनों को प्रदान करते हैं तथा पवित्र गौएँ (किरणें) देते हैं । उषा काल में ये गौएँ, आकाश मण्डल पर बादलों के छा जाने पर सूर्यदेव के लिए रम्भाती हैं, जैसे मनुष्य चोर को देखकर सावधानी के लिए चिल्लाते हैं ॥५ ॥

१६१३. आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।

अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जहाँ आपकी प्रार्थनाएँ गाई जाती हैं, उस प्रदेश में अग्नि की ज्वालायें यज्ञीयकार्य के लिए आप दोनों का सहयोग करती हैं । आप हमारी बौद्धिक क्षमता को पुष्ट करके सामर्थ्य- शक्ति प्रदान करें । आप दोनों ही ज्ञानसम्पन्न विद्वानों के अधिपति हैं ॥६ ॥

१६१४. यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।

उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥७ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जो विद्वान् याजक प्रार्थनाएँ करते हुए आप दोनों को आहुतियाँ प्रदान करते हैं, उन मनुष्यों के समीप जाकर आप यज्ञीय कर्मों की अभिलाषा करते हैं । अतएव आप दोनों हमारी ओर उन्मुख होकर हमारे स्तोत्रों और श्रेष्ठ भावनाओं को स्वीकार करें ॥७ ॥

१६१५. युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।

भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥८ ॥

हे सत्य सम्पन्न मित्रावरुण देव ! इन्द्रियों में मन जिस प्रकार सर्वोत्तम है, उसी प्रकार देवताओं में सर्वोत्तम आप दोनों को याजकगण दुग्ध, घृतादि की आहुतियों द्वारा सन्तुष्ट करते हैं । उन्हें ऐश्वर्य सम्पदा प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१६१६. रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।

न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

हे नेतृत्व सम्पन्न मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों अपनी शक्तियों से सुरक्षित करते हुए हमें वैभव पूर्ण उपयोगी सम्पदाएँ प्रदान करते हैं । आप दोनों की दैवी क्षमताओं और सम्पदाओं को दिव्य लोक, अहोरात्र, नदियाँ तथा 'पणि' नामक असुरगण भी उपलब्ध नहीं कर सके ॥९ ॥

[सूक्त - १५२]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- मित्रावरुण । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१६१७. युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।

अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥१ ॥

हे मित्र-वरुणदेवो ! आप दोनों परिपुष्ट होकर तेजस्वी वस्त्रों को धारण करते हैं । आप के द्वारा रचित सभी वस्तुएँ दोषरहित और विचारणीय हैं । आप दोनों असत्यों का निवारण कर मनुष्यों को सत्यमार्ग से जोड़ देते हैं ॥१ ॥

१६१८. एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥२ ॥

मित्र और वरुण देवों में से कोई एक देव भी विशेष ज्ञानवान्, सत्य के प्रति सुदृढ़, क्रान्तदर्शियों द्वारा स्तुत्य और सामर्थ्य सम्पन्न हैं । द्रष्टा-ऋषि इससे भली प्रकार परिचित हैं । वह पराक्रमी वीर त्रिधारा और चतुर्धारा युक्त शस्त्रों को विनष्ट कर देते हैं । दैवी अनुशासनों की अवहेलना करने वाले प्रारम्भ में सामर्थ्यशाली प्रतीत होते हुए भी अन्ततोगत्वा अपनी प्रभाव क्षमता खोकर विनाश को प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

१६१९. अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! (दिन और रात्रिरूप आप दोनों की सामर्थ्य से) बिना पैरवाली उषा; पैरवाले प्राणियों से पहले पहुँच जाती हैं । (आप दोनों के) गर्भ से उत्पन्न होकर शिशु सूर्य, संसार के पालन पोषण रूपी दायित्व का निर्वाह करते हैं । यही सूर्यदेव असत्यरूप अन्धकार को दूर करके सत्यरूप आलोक को फैलाते हैं ॥३ ॥

१६२०. प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥४ ॥

सूर्यदेव सर्वत्र व्यापक, तेजस्वी प्रकाश को धारण करके, पत्नीरूप उषाओं की कान्ति को धूमिल करते हुए, मित्र और वरुण देवों के प्रिय धाम की ओर सदैव गतिशील होते हुए दिखाई देते हैं ।वे कभी भी विराम नहीं लेते ॥४ ॥

१६२१. अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५ ॥

अश्व और लगाम आदि साधनों से रहित होकर भी ये सूर्यदेव गतिमान् होते हैं । वे अपने उदित होने के साथ शब्द करते हुए सभी ऊँचे शिखरों पर रश्मियाँ बिखेरते हैं । मित्र और वरुण देवों की तेजस्विता का गुणगान करते हुए युवा साधक सूर्यदेव की विशेष रूप से स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१६२२. आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥६ ॥

रक्षक गौएँ (गायें, वाणी, किरणें) अपने स्रोतों से ममतायुक्त उपासकों को पोषण प्रदान करें । सद्ज्ञान के ज्ञाता आप (मित्रावरुण) से उचित पोषण (आहार एवं विचार) माँगें । आपकी उपासना से साधक मृत्यु को जीत लें ॥६ ॥

१६२३. आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७ ॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण देव ! हमारे द्वारा विनम्रतापूर्वक गाये गये स्तोत्रों को सुनकर आप दोनों यहाँ पधारें, आहुतियों को ग्रहण करके आप हमें संग्रामों में विजयी बनायें तथा दिव्य वृष्टि द्वारा हमें अकाल और दु:ख-दारिद्र्य से विमुक्त करें ॥७ ॥

[सूक्त - १५३]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- मित्रावरुण । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१६२४. **यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।**
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥१ ॥

परस्पर प्रीतियुक्त, विशेष तेजस्वी, हे मित्र और वरुण देवो ! आपके प्रति हमारे ऋत्विज् स्तोत्रों का गान करते हैं । हम यजमान भी महानतायुक्त आप दोनों के प्रति हव्य सहित नमन करते हैं ॥१ ॥

१६२५. **प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।**
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥२ ॥

हे मित्र-वरुणदेवो ! वाक्पटु हम आप दोनों की प्रार्थना करते हैं । घर (के आवश्यक सामान) की तरह आपका ध्यान करते हैं । ज्ञानी याजक आप दोनों की स्तुति करते हैं । वे आप से आनन्द की कामना करते हैं ॥२ ॥

१६२६. **पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।**
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३ ॥

जब हवि को प्रदान करने वाले मननशील होता आपकी अर्चना करते हुए यज्ञ में आहुतियाँ देते हैं, तब हे मित्र और वरुण देवो ! सत्य मार्ग पर सुदृढ़ रहने वाले तथा हविष्य प्रदान करने वाले साधकों को गौएँ (आपकी पोषक किरणें) हर प्रकार के सुख प्रदान करती हैं ॥३ ॥

१६२७. **उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।**
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों अन्नों, दुधारू गौओं और जलों से सभी मनुष्यों को आनन्दित करते हुए संतुष्ट करें । हमारे यज्ञ के पूर्व अधिष्ठाता अग्निदेव हमें वैभव सम्पदा प्रदान करें, पश्चात् सभी याजकगण ऐश्वर्यशाली होकर घृत की आहुतियाँ प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त - १५४]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- विष्णु । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१६२८. **विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।**
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१ ॥

जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को बनाने वाले हैं, जो देवताओं के निवास स्थान द्युलोक को स्थिर कर देते हैं, जो तीन पगों से तीनों लोकों में विचरण करने वाले हैं (अथवा मापने वाले हैं), उन विष्णुदेव के वीरतापूर्ण कार्यों का कहाँ तक वर्णन करें ? ॥१ ॥

१६२९. **प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।**
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२ ॥

विष्णुदेव के तीन पादों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अवस्थित है । अतएव भयंकर, हिंस्र और गिरि-कन्दराओं में रहने वाले पराक्रमी पशुओं की तरह सारा संसार उन विष्णुदेव के पराक्रम की प्रशंसा करता है ॥२ ॥

१६३०. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३ ॥

अकेले ही जिन (विष्णु) देव ने मात्र तीन कदमों से इस अतिव्यापक दिव्यलोक को माप लिया, उन मेघों में स्थित, अत्यन्त प्रशंसनीय, जल वृष्टि में सहायक, सूर्यरूप विष्णुदेव के लिए प्रखर-भावना से उच्चारित हमारा स्तोत्र समर्पित है ॥३ ॥

१६३१. यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।

य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४ ॥

जिन विष्णुदेव के तीन अमृत चरण अपनी धारण क्षमता से तीन धातुओं (सत्, रज, तम) से पृथ्वी एवं द्युलोक को आनन्दित करते हैं, वे (विष्णुदेव) अकेले ही सारे भुवनों-लोकों के एकाकी आधार हैं ॥४ ॥

१६३२. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५ ॥

देवों के उपासक मनुष्य जहाँ पहुँचकर विशेष रूप से आनन्द की अनुभूति करते हैं, विष्णुदेव के उस प्रियधाम को हम भी प्राप्त करें । विष्णुदेव, महापराक्रमी, वीर इन्द्र के बन्धु हैं । विष्णुदेव के उस उत्तम धाम में अमृत जल धारा सदा ही प्रवाहित रहती है ॥५ ॥

१६३३. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६ ॥

हे इन्द्र और वरुण देव ! आप दोनों से हम (यजमान दम्पती) अपने निवास के लिए ऐसा आश्रय स्थल (गृह) चाहते हैं, जहाँ अतितीक्ष्ण स्वास्थ्यप्रद सूर्य रश्मियाँ प्रवेश कर सकें (अथवा जहाँ सुन्दर सींगों वाली दुधारू गायें विद्यमान हों ।) इन्हीं श्रेष्ठ गृहों में अनेकों के उपास्य, सामर्थ्य सम्पन्न विष्णुदेव के उत्तम धामों की विशिष्ट विभूतियाँ स्वप्रकाशित होती हैं (अर्थात् वहाँ देव अनुग्रह अनवरत बरसता रहता है) ॥६ ॥

[सूक्त - १५५]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** विष्णु, १-३ इन्द्राविष्णू । **छन्द-** जगती ।]

१६३४. प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।

या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१ ॥

अपराजेय तथा महिमायुक्त जो इन्द्र और विष्णुदेव श्रेष्ठ अश्वों के समान पर्वतों के शिखरों पर रहते हैं; सद्‌बुद्धि की ओर प्रेरित करने वाले उन महान् इन्द्र और विष्णुदेव के लिए सोम रस रूपी श्रेष्ठ हविष्यान्न समर्पित करें ॥१ ॥

१६३५. त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।

या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥२ ॥

हे इन्द्र और विष्णुदेव ! आप दोनों रिपुओं का सर्वनाश करने वाले अग्नि की प्रखर- तेजस्वी ज्वालाओं का अधिकाधिक विस्तार करते हैं । आप दोनों की सभी ओर विस्तृत सामर्थ्यवान् तेजस्विता को, सोमयाग करने वाले मनुष्य और अधिक विस्तृत करते हैं ॥२ ॥

१६३६. ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।

दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥३ ॥

वे प्रार्थनाएँ सूर्यरूप विष्णुदेव की महिमायुक्त सामर्थ्य को विशेष रूप से बढ़ाती हैं । विष्णुदेव अपनी उस क्षमता को उत्पादकता एवं उपयोग के लिए, द्यावा और पृथ्वीरूपी दो माताओं के बीच प्रतिष्ठित करते हैं । जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता के तीनों प्रकार के गुणों को धारण करता है, उसी प्रकार विष्णुदेव अपने सभी प्रकार के गुणों को द्युलोक में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

१६३७. तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।

यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४ ॥

जिन सूर्यरूप विष्णुदेव ने अपने मार्ग का विस्तार करने तथा जीवनीशक्ति (प्राण-ऊर्जा) संचरित करने के लिए सभी विस्तृत लोकों को मात्र तीन पगों से नाप लिया; ऐसे संरक्षक, शत्रुरहित (अजातशत्रु), सुखकारक तथा सभी पदार्थों के स्वामी विष्णुदेव के उन सभी पराक्रम-पूर्ण कार्यों की सभी प्रशंसा करते हैं ॥४ ॥

१६३८. द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।

तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५ ॥

मनुष्य के लिए तेजस्वितायुक्त, विष्णुदेव के (पृथ्वी और अन्तरिक्ष रूपी) दो पगों का परिचय पाना सम्भव है, लेकिन (द्युलोक रूपी) तीसरे पग को किसी के भी द्वारा जानना असम्भव है । सुदृढ़ पंखों से युक्त पक्षी भी उसे नहीं जान सकते ॥५ ॥

१६३९. चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतींरवीविपत् ।

बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥६ ॥

सूर्य रूप विष्णु देव चार सहित नब्बे अर्थात् चौरानवे काल गणना के अवयवों को [१ संवत्सर (वर्ष), २ अयन (उत्तरायण - दक्षिणायन), पंच ऋतु, १२ मास, २४ पक्ष (शुक्ल एवं कृष्ण), ३० दिन-रात्रि, ८ याम, १२ मेष वृश्चिकादि राशियाँ, कुल ९४ काल गणना के अवयव हैं] अपनी प्रेरणा शक्ति से चक्राकार (गोल चक्र के समान) रूप में घुमाते हैं । विशाल स्वरूप धारी, सदा युवा रूप, कभी क्षीण न होने वाले, सूर्यरूप विष्णुदेव काल की गति को प्रेरित करते हुए ऋचाओं द्वारा आवाहन किये जाने पर यज्ञ की ओर आ रहे हैं (अर्थात् सृष्टि क्रम के विराट् यज्ञ को सम्पन्न कर रहे हैं) ॥६ ॥

[सूक्त - १५६]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** विष्णु । **छन्द-** जगती ।]

१६४०. भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।

अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥१ ॥

हे विष्णुदेव ! आप जल के उत्पादनकर्त्ता, अति देदीप्यमान, सर्वत्र गतिशील, अतिव्यापक तथा मित्र के सदृश ही हितकारी सुखों के प्रदाता हैं । हे विष्णुदेव ! इसके पश्चात् मनुष्यों द्वारा हविष्यान्न समर्पित करते हुए सम्पन्न किया गया यज्ञ स्तुति योग्य है । ज्ञान सम्पन्न मनुष्यों द्वारा आपके प्रति कहे गये स्तोत्र सराहनीय हैं ॥१ ॥

[यज्ञ रूप विष्णु द्वारा प्रदत्त साधन यज्ञ में प्रयुक्त हों तथा बुद्धि उन्हीं के महत्व को प्रतिपादित करे, तभी वे दोनों सराहनीय हैं ।]

१६४१. यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।

यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥२ ॥

जो अनन्तकाल से ज्ञानरूप एवं सदा नवीन दीखते हैं तथा जो सद्बुद्धि के प्रेरक हैं, उन विष्णुदेव के लिए हविष्यान्न अर्पित करने वाले मनुष्य कीर्तिमान् होकर श्रेष्ठ पद को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

१६४२. तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।

आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! यज्ञ के नाभिरूप, चिरपुरातन उन विष्णुदेव से सम्बन्धित जिस भी ज्ञान से आप परिचित हों, उसी के अनुसार स्तुतियों द्वारा उन्हें तुष्ट करें । इनके तेजस्वी पराक्रम से सम्बन्धित जानकारी के अनुरूप आप इनका वर्णन करें । हे सर्वत्र व्यापक देव ! हम आपकी श्रेष्ठ प्रेरणाओं के अनुगामी बनें ॥३ ॥

१६४३. तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।

दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४ ॥

सर्वज्ञ विष्णुदेव के साथ तेजस्विता सम्पन्न वरुण और अश्विनीकुमार देवता भी कर्मरत रहते हैं । मित्रों से युक्त सूर्यरूप विष्णुदेव अपनी श्रेष्ठ सामर्थ्य से दिवस को प्रकट करते हैं, (प्रकाश के अवरोधक) आवरण को छिन्न-भिन्न कर देते हैं ॥४ ॥

१६४४. आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।

वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५ ॥

दिव्यलोक में निवास करने वाले, श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करने वालों में सर्वोत्तम विष्णुदेव, श्रेष्ठ कर्मशील इन्द्रदेव का सहयोग करते हैं । तीनों लोकों में व्याप्त ये विष्णुदेव श्रेष्ठ पुरुषों को तुष्ट करते हैं, यज्ञकर्ता के पास स्वतः पहुँच जाते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १५७]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- जगती; ५-६ त्रिष्टुप् ।]

१६४५. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु१षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।

आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥१ ॥

भूमि पर अग्निदेव चैतन्य हुए; सूर्यदेव उदित हो गये हैं । महान् उषादेवी अपने तेज से लोगों को हर्षित करती हुई आ गयी हैं । अश्विनीकुमारों ने यात्रा के लिए अपने अश्वों को रथ में जोड़ लिया है । सूर्यदेव ने सब प्राणियों को अपने पृथक्-पृथक् कर्मों में प्रवृत्त कर दिया है ॥१ ॥

१६४६. यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने श्रेष्ठ रथ को जोड़कर (यज्ञ में पहुँचकर) हमारे क्षात्रबल (पौरुष) को घृत (तेज) से पुष्ट करें । हमारी प्रजाओं में ज्ञान की वृद्धि करें । हम युद्ध में शत्रुओं को पराजित करके धन प्राप्त करने में समर्थ हो सकें ॥२ ॥

१६४७. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।

त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप रथ पर विराजित होकर यहाँ पधारें । तीन पहियों वाला और मधुर, अमृततुल्य, पोषक तत्त्वों को धारण करने वाला, शीघ्रगामी अश्वों से जुता हुआ, प्रशंसनीय, बैठने के तीन स्थानों वाला, समस्त ऐश्वर्य और सौभाग्य से भरा हुआ आपका रथ मनुष्यों और पशुओं के लिए सुखदायी हो ॥३ ॥

१६४८. आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम्।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों प्रचुर अन्न प्रदान करें। हमें मधु से परिपूर्ण पात्र प्रदान करें। हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें। हमारे सभी विकारों को दूर करके तथा द्वेष भावना को मिटाकर सदैव हमारे सहायक बनें ॥४ ॥

१६४९. युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥५ ॥

हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों गौओं में (अथवा सम्पूर्ण विश्व में) गर्भ (उत्पादक क्षमता) स्थापित करने में सक्षम हैं। अग्नि, जल और वनस्पतियों को (प्राणि मात्र के कल्याण के लिए) आप ही प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

१६५०. युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या३ राथ्येभिः।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त उत्तम वैद्य हैं। उत्तम रथ से युक्त श्रेष्ठ रथी हैं। हे पराक्रमी अश्विनीकुमारो ! जो आपके प्रति श्रद्धा भावना से हविष्यान्न अर्पित करते हैं, उन्हें आप दोनों क्षात्र धर्म के निर्वाह के लिए उपयुक्त शौर्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १५८]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य। **देवता**- अश्विनीकुमार। **छन्द**- त्रिष्टुप्; ६ अनुष्टुप्।]

१६५१. वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१ ॥

हे सामर्थ्यवान् , शत्रुनाशक, सबके आश्रयरूप, दुष्टों के लिए रौद्ररूप, ज्ञानवान् , समृद्धिशाली अश्विनीकुमारो ! आप हमें अभीष्ट अनुदान प्रदान करें। उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा के द्वारा धन सम्पदा प्राप्ति के लिए प्रार्थना किये जाने पर आप दोनों श्रेष्ठ संरक्षण सामर्थ्यों के साथ शीघ्रतापूर्वक पहुँचते हैं ॥१ ॥

१६५२. को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२ ॥

सबको आश्रय देने वाले हे अश्विनीकुमारो ! इस पृथ्वी पर जो भी आप की वन्दना करते हैं, आप दोनों उन्हें अनुदान प्रदान करते हैं। आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की तुष्टि के लिए कौन क्या भेंट दे सकता है ? हे सर्वत्र विचरणशील ! आप हमें धनों के साथ पोषक दुधारू गौएँ भी प्रदान करें ॥२ ॥

१६५३. युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! राजा तुग्र के पुत्र भुज्यु के संरक्षण के लिए आपने अपने गतिशील यान को सागर के बीच में ही अपनी सामर्थ्य से स्थिर किया। वीर पुरुष जैसे युद्ध में प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही संरक्षणपूर्ण आश्रय के लिए हम आप दोनों के पास पहुँचे ॥३ ॥

१६५४. उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४ ॥

उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा कहते हैं कि हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के निकट की गई प्रार्थना मेरी रक्षा करे । यह गतिशील दिन-रात्रि मुझे निचोड़ न लें । दशगुनी समिधाएं डालकर प्रज्वलित की गई अग्नि मुझे भस्मीभूत न कर डाले । जिसने आपके इस श्रद्धालु उचथ्य को बाँध दिया था, वही अब यहाँ धरती पर असहाय स्थिति में पड़ा है ॥४ ॥

१६५५. न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५ ॥

जब उचथ्य पुत्र दीर्घतमा को (मुझको) दस्युओं ने अच्छी प्रकार से जकड़कर और बाँधकर नदी में फेंक दिया (विसर्जित कर दिया), तब मातृरूपा उन नदियों ने संरक्षण प्रदान किया । जब मेरे सिर, छाती और कन्धे को काटने का प्रयत्न किया गया, तब आपकी कृपा एवं दिव्य संरक्षण से आपका सेवक (मैं) सुरक्षित रहा, दस्यु के ही अंग कट गये ॥५ ॥

१६५६. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे । अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६ ॥

ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि दशमयुग अर्थात् एक सौ ग्यारहवें वर्ष में शारीरिक दृष्टि से वृद्धावस्था को प्राप्त हुए । उन्होंने संयमशील उत्तम कर्मों से धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ को प्राप्त किया । वे ब्रह्म ज्ञान सम्पन्न, सबके संचालन करने वाले सारथी के समान बने ॥६ ॥

[सूक्त - १५९]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- द्यावा- पृथिवी । **छन्द**- जगती ।]

१६५७. प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१ ॥

देव पुत्रियाँ द्यावा, पृथिवी और अन्य देव शक्तियाँ मिलकर अपने श्रेष्ठ कर्मों और विचार प्रेरणाओं से सबको श्रेष्ठतम ऐश्वर्यों से विभूषित करती हैं । यज्ञीय भावनाओं के पोषक , यज्ञीय विचारों के प्रेरक , पृथिवी और द्युलोक की हम स्तुति-मंत्रों से प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१६५८. उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२ ॥

हम विद्वेषरहित पृथिवी और आकाश के रूप में माता-पिता के सबल एवं महान् मन को स्तुति द्वारा प्रसन्न करते हैं । पराक्रमशील (प्रकृति रूपी) माता और (स्रष्टा रूपी) पिता ने अपनी (सृष्टि उत्पादन की) श्रेष्ठ सामर्थ्य से प्रजाओं की रक्षा करते हुए उन्हें प्रगतिशील बनाया । ये उनके सर्वोत्तम कार्य प्रशंसनीय हैं ॥२ ॥

[प्रकृति का भी 'मन' है । वह मनुष्य की अपेक्षा अधिक सबल और महान् है । उसे प्रसन्न करके प्रकृति माता का अनुकूलन किया जा सकता है ।]

१६५९. ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३ ॥

श्रेष्ठ, कर्मशील तथा गुणसम्पन्न सन्तानें, पृथिवी-द्यावारूप माता-पिता की प्रारम्भिक विशेषताओं से परिचित हैं । द्युलोक एवं पृथिवी लोक दोनों, स्थावर और जङ्गम सभी विद्रोहरहित सन्तानों का भली प्रकार से संरक्षण करते हुए अपने सत्यरूप श्रेष्ठ पद को सुशोभित करते हैं ॥३ ॥

[पृथिवी एवं द्युलोक द्वारा संकल्प पूर्वक जड़-जंगम सभी का विकास एवं पोषण पितृ भाव से किया जाता है । यही उनके महान् पद की गरिमा है ।]

१६६०. ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा।

नव्यन्नव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४ ॥

द्युलोक रूप आकाश गंगा के बीच विद्यमान सूर्य की क्रान्तदर्शी ज्ञानयुक्त किरणें, नित्य नये-नये ताने-बाने बुनती हैं। ये किरणें सहोदर बहिनों के समान एक स्थान (सूर्य) से उत्पन्न होती हैं। परस्पर सहयोग भावना से एक ही घर में निवास करने वाली ये किरणें द्यावा-पृथिवी को नाप लेती हैं ॥४ ॥

१६६१. तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे।

अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५ ॥

हम आज श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाह के लिए सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक (प्रेरक) सूर्यदेव से श्रेष्ठ ऐश्वर्यों की कामना करते हैं। द्यावा-पृथिवी अपनी उत्तम प्रेरणाओं से हमारे लिए श्रेष्ठ आवास तथा पशुधन प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - १६०]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य। **देवता-** द्यावा- पृथिवी। **छन्द-** जगती।]

१६६२. ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।

सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१ ॥

द्यावा-पृथिवी विश्व के सुखों के आधार हैं और यज्ञ युक्त हैं। ये तेजस्वी, मेधावी जनों के संरक्षक, सर्व-उत्पादक एवं ज्ञान से सम्पन्न हैं। इन दोनों के मध्य में सम्पूर्ण प्राणियों में पवित्र सूर्यदेव अपनी धारण क्षमताओं से युक्त होकर गमन करते हैं ॥१ ॥

१६६३. उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।

सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२ ॥

क्योंकि पिता (द्युलोक) अपने दिव्य प्रकाश से मनुष्यों को आश्रय प्रदान करते हैं, अतएव ये अति सामर्थ्यवान् द्यावा-पृथिवी सबको पुष्टि प्रदान करते हैं। अतिव्यापक, महिमामय और भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले ये माता-पिता सभी लोकों के संरक्षक हैं ॥२ ॥

[भिन्न प्रकृति होते हुए भी देवों (द्यावा-पृथिवी) की तरह एक ही कार्य, परस्पर पूरक बनकर बड़ी कुशलता से किया जा सकता है।]

१६६४. स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया।

धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३ ॥

माता-पिता के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने वाले पुत्ररूप ज्ञानवान् सूर्यदेव अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण लोकों में पवित्रता का संचार करते हैं। विविध रूपों वाली पृथिवी (धेनु) और बलशाली द्युलोक (बैल) को पावन बनाते हुए वे आकाश से तेजस् बरसाकर सभी प्राणियों को परिपुष्ट करते हैं ॥३ ॥

१६६५. अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा।

वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४ ॥

जिस देव (परमात्मा) ने संसार के लिए आनन्दप्रद द्युलोक एवं पृथ्वी का प्रादुर्भाव किया, जिसने श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा से दोनों द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त किया, जिन्होंने अजर-सुदृढ़ आधारों से दोनों लोकों को स्थिरता प्रदान की, ऐसे श्रेष्ठ, कर्मशील देवों के बीच में अग्रगण्य वे देव (परमात्मा) स्तुत्य हैं ॥४ ॥

१६६६. ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।

येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥५ ॥

ये द्यावा-पृथिवी प्रसन्न होकर हमारे लिए प्रचुर अन्न और सामर्थ्य प्रदान करें, ताकि हम प्रजाजनों के विस्तार (प्रगति) में समर्थ हों । वे दोनों नित्य हमारे लिए उत्तम प्रेरणाओं से युक्त शक्ति प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - १६१]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** ऋभुगण । **छन्द-** जगती; १४ त्रिष्टुप् ।]

१६६७. किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम ।

न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१ ॥

(सुधन्वा के पुत्रों के पास जब अग्निदेव पहुँचते हैं, तो वे कहते हैं-) हमारे पास ये कौन आये हैं ? ये हमसे श्रेष्ठ हैं या कनिष्ठ ? (पहचान लेने पर कहते हैं) हे भ्राता अग्निदेव ! हम इस श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हव्यान्न को दूषित न करें; आप कृपया इसके उपयोग का उपाय बतलायें ॥१ ॥

१६६८. एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।

सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२ ॥

(अग्निदेव ने कहा:-) हे सुधन्वा पुत्रो ! आप इस अन्न को चार भागों में विभक्त करें, ऐसा देवशक्तियों का आपके लिए निर्देश है । इसी निवेदन के लिए हम आपके समीप आये हैं । यदि आप इस प्रकार करेंगे तो आप भी देवताओं के परमपद के अधिकारी बनेंगे ॥२ ॥

१६६९. अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।

धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३ ॥

हे ऋभुदेवो ! आपने हव्यवाहक अग्निदेव से जो निवेदन किया है कि अश्वों, गौओं एवं रथों को उत्तम बनायें । दोनों वृद्ध (माता-पिता) को तरुण बनायें । इन सभी कर्मों का निर्वाह करने वाले हे बन्धु अग्निदेव ! हम आपका अनुगमन करते हैं ॥३ ॥

१६७०. चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।

यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४ ॥

हे ऋभुदेवो ! कार्य करने के बाद आपने पूछा कि जो दूतरूप में हमारे समीप आये हैं, वे कहाँ चले गये ? जब त्वष्टा ने चार भागों में विभक्त अन्न उन अग्निदेव को अर्पित किया, तभी वे दूत स्त्रियों (मंत्र प्रकट करने वाली वाणियों) में समाहित हो गये ॥४ ॥

१६७१. हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।

अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥५ ॥

त्वष्टादेव ने निर्देशित किया कि जो देवताओं के लिए उपयुक्त हविष्यान्नों की निन्दा करते हैं, उनका संहार करें । परस्पर सहयोग से अभिषुत सोम को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है, तब (त्वष्टा की) कन्या (वाणी) भी उन्हीं नामों से संबोधित करती हैं ॥५ ॥

१६७२. इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।

ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६ ॥

इन्द्रदेव अपने अश्वों को जोतकर, अश्विनीकुमार अपने रथ को तैयार करके यज्ञ में जाने के लिए प्रस्तुत हैं। बृहस्पतिदेव ने भी विभिन्न स्तोत्ररूप वाणियों को प्रारम्भ कर दिया है, अतएव ऋभु, विभ्वा और वाज भी देवताओं के समीप गये और यज्ञ भाग प्राप्त किया ॥६ ॥

१६७३. निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।

सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७ ॥

हे सुधन्वा पुत्रो ! आपके श्रेष्ठ प्रयासों से चर्मरहित गौ को पुनर्जीवन मिला । अतिवृद्ध माता-पिता को आपने तरुण बनाया । एक घोड़े से दूसरे घोड़े को उत्पन्न करके उनको अपने रथ में जोतकर देवों के समीप उपस्थित हुए ॥७ ॥

१६७४. इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।

सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८ ॥

(देवों ने कहा-) हे सुधन्वा के पुत्रो ! आप जल पान करें, अथवा मुञ्ज से अभिषुत सोमरस का पान करें । यदि आपकी अभी इसे पीने की इच्छा न हो तो तीसरे पहर तो इसे अवश्य ही पीकर आनन्दित हों ॥८ ॥

१६७५. आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।

वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९ ॥

किसी ने जल की, दूसरे ने अग्नि की तथा किसी तीसरे ने भूमि की सर्व श्रेष्ठता को सिद्ध किया, इस प्रकार से सभी (ऋभुदेवों) ने तीनों तत्त्वों की उपयोगिता को सत्यापित (सत्य सिद्ध) करते हुए ऐश्वर्यों का विभाजन किया ॥९ ॥

विराट् प्रकृति यज्ञ के ऋत्विज् ब्रह्म के मानस पुत्रों-ऋभुओं के संदर्भ में यह कथन है--

१६७६. श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।

आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१० ॥

एक पुत्र ने गौ (किरणों-इन्द्रियों) को जल (रसों) की ओर प्रेरित किया । दूसरे ने उन्हें मांसादि (अंग अवयव, फलों के गूदे आदि) के संवर्धन में नियोजित किया । तीसरे ने सूर्यास्त (अंतिम चरण) के समय उनके अवशेषों (विकारों) को हटा दिया - ऐसे पुत्रों वाले पिता और क्या अपेक्षा करें ? ॥१० ॥

१६७७. उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।

अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११ ॥

(सूर्य किरणों में संव्याप्त) हे ऋभु देवो ! आपने अपने श्रेष्ठ पुरुषार्थ से ऊँचे स्थानों में उपयोगी तृण आदि उगाये तथा निचले भागों में जल को संगृहीत किया । आप अब तक सूर्य मण्डल में विश्रामरत रहे, अब इस (उत्पादक) प्रक्रिया का अनुगमन क्यों नहीं करते ? ॥११ ॥

[निरुक्त ११.१६ के अनुसार सूर्य रश्मियों को ऋभु कहा जाता है ।]

१६७८. सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।

अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२ ॥

सूर्य किरणों में संव्याप्त हे ऋभुओ ! जब आप लोकों को आच्छादित करके चारों ओर संचरित होते हैं, तब आपके माता- पिता दोनों कहाँ छिप जाते हैं ? जो लोग आपके हाथों (किरणों) को रोकते हैं, उपयोग नहीं करते, वे शापित होते हैं । जो प्रेरक वचन बोलते हैं, उन्हें आप प्रगति प्रदान करते हैं ॥१२ ॥

[यहाँ यह तथ्य प्रकट किया गया है कि किरणों के उत्पादक सूर्यादि जब प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देते, तब भी किरणें भुवनों को घेरे रहती हैं । उनका उपयोग न करने वाले हानि और उपयोग करने वाले लाभ उठाते हैं ।]

१६७९. सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३ ॥

हे सूर्य किरणो (ऋभुओ) ! (जाग्रत् होने पर) आपने सूर्य से पूछा कि हमें किसने सोते से जगाया ? तब सूर्य ने वायु को जाग्रत् करने वाला बतलाया । आपने संवत्सर बदल जाने पर विश्व को प्रकाशमान किया है ॥१३ ॥

[सूर्य के हर कोण से किरणें निकलती हैं । अपनी कक्षा में घूमती हुई पृथ्वी प्रत्येक क्षेत्र में पूरा एक वर्ष बीतने पर पहुँचती है । उस क्षेत्र की किरणें पृथ्वी को पूरे एक वर्ष बाद ही प्रकाशित करती हैं ।]

१६८०. दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४ ॥

हे शक्तिशाली ऋभुओ (किरणो) ! आपको पाने की कामना करते हुए मरुद्गण देवलोक से चलते हैं । भूमि पर अग्निदेव और वायुदेव आकाश में चलते हैं तथा वरुणदेव जल प्रवाहों के रूप में आपसे मिलते हैं ॥१४ ॥

[सूक्त - १६२]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अश्वस्तुति । छन्द- त्रिष्टुप्, ३,६ जगती ।]

१६८१. मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१ ॥

हम याजकगण यज्ञशाला में दिव्यगुण सम्पन्न, गतिमान्, पराक्रमी, वाजी (बलशाली) देवताओं के ही ऐश्वर्य का गान करते हैं । अतः मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, ऋभुक्ष, मरुद्गण, इन्द्र आदि देवता हमारी उपेक्षा करते हुए हमसे विमुख न हों (वरन् अनुकूल रहें) ॥१ ॥

[यहाँ वाजी का अर्थ घोड़ा न करके उसे बलशाली देवों का पर्याय माना गया है । आचार्य उवट एवं महीधर ने भी अपने यजुर्वेद भाष्य में अश्व के नाम से देवों की ही स्तुति का भाव स्पष्ट किया है ।]

पिछलेमंत्रमें देवशक्तियों के लिए अश्व संज्ञक संबोधन दिया गया है । नीचे की तीन ऋचाओं में भी जहाँ समर्थ देवशक्तियों के लिए अश्व संज्ञक सम्बोधन है, वहीं निरीह जीव आत्माओं को 'अज' (बकरा) कहा गया है । देवों की पुष्टि के लिए किये गये यज्ञ का लाभ प्रकृति में संव्याप्त समर्थ शक्तियों के साथ-साथ सामान्य जीवों से सम्बद्ध चेतना को भी प्राप्त होता है, यह भाव यहाँ अभीष्ट है--

१६८२. यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२ ॥

जब सुसंस्कारित, ऐश्वर्ययुक्त, सबको आवृत करने वाले (देवों) के मुख के पास (देवों का मुख यज्ञाग्नि को कहा जाता है ।) हविष्यान्न (पुरोडाश आदि) लाया जाता है, तो भली प्रकार आगे लाया हुआ विश्वरूप अज (अनेक रूपों में जन्म लेने वाली जीव चेतना) भी मैं- मैं करता (मुझे भी चाहिए- इस भाव से) आता है, (तब वह भी) इन्द्र और पूषादेव आदि के प्रिय आहार (हव्य) को प्राप्त करता है ॥२ ॥

१६८३. एषच्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३ ॥

यह अज जब बलशाली अश्व के आगे लाया जाता है, तो श्रेष्ठ पुरुष (याजक या प्रजापति) इस चंचल (अश्व) के साथ अज को भी, सबको प्रिय लगने वाले पुरोडाश आदि (हव्य) का भाग देकर उत्तम यश प्राप्त करते हैं ॥३ ॥

१६८४. यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।

अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४ ॥

जब मनुष्य (याजक गण) हविष्य को (यज्ञ के माध्यम से) तीनों देवयान मार्गों (पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक) में अश्व की तरह संचारित करते हैं, तब यहाँ (पृथ्वी पर) यह अज पोषण के प्रथम भाग को पाकर देवताओं के हित के लिए यज्ञ को विज्ञापित करता चलता है ॥४ ॥

१६८५. होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।

तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५ ॥

होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तोता, प्रशास्ता, प्रज्ञावान् ब्रह्मा आदि हे ऋत्विजो ! आप सब प्रकार सज्जित (अङ्ग- उपाङ्गों सहित सम्पन्न) इस यज्ञ द्वारा इष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (प्रकृतिगत) प्रवाहों को समृद्ध बनाएँ ॥५ ॥

१६८६. यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।

ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! यज्ञ की व्यवस्था में सहयोग देने वाले, लकड़ी काटकर यूप का निर्माण करने वाले, यूप को यज्ञशाला तक पहुँचाने वाले, चषाल (लोहे या लकड़ी की फिरकी) बनाने वाले, अश्व बाँधने के खूँटे को बनाने वाले- इन सबका किया गया प्रयास हमारे लिए हितकारी हो ॥६ ॥

१६८७. उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।

अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७ ॥

अश्वमेध यज्ञ की फलश्रुति के रूप में श्रेष्ठ मानवीय फल हमें स्वयं ही प्राप्त हों । देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ इस अश्व (शक्ति) की कामना सभी करते हैं । इस अश्व को देवत्व की पुष्टि के लिए मित्र के रूप में मानते हैं । सभी बुद्धिमान् ऋषि इसका अनुमोदन करें ॥७ ॥

ऋचा क्र० ८ से २२ तक की ऋचाओं का अर्थ कई आचार्यों ने अश्वमेध में की जानेवाली अश्व बलि (हिंसा) के क्रम में किया है । इस ग्रंथ की भूमिका में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वेदों में 'अश्व' शब्द का प्रयोग घोड़े के सन्दर्भ में नहीं, प्रत्युत प्रकृति में संव्याप्त समर्थ शक्ति धाराओं (यज्ञीय ऊर्जा- सूर्य की किरणों- देवशक्तियों) आदि के निमित्त किया गया है । इसलिए इन मंत्रों का अर्थ हिंसापरक सन्दर्भ में न करके उक्त विराट् यज्ञीय सन्दर्भ में ही किया जाना उचित है--

१६८८. य द्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।

यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८ ॥

इस वाजिन् (बलशाली) को नियंत्रित रखने के लिए गर्दन का बन्धन, इस (अर्वन्) चंचल के लिए पैरों का बन्धन, कमर एवं सिर के बन्धन तथा मुख के घास आदि तृण सभी देवों को अर्पित हों । (यज्ञीय ऊर्जा अथवा राष्ट्र की शक्तियों को सुनियंत्रित एवं समृद्ध रखने वाले सभी साधन देवों के ही नियंत्रण में रहें ।) ॥८ ॥

१६८९. यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।

यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥९ ॥

अश्व (संचरित होने वाले हव्य) का जो विकृत (होमा न जा सकने वाला) भाग मक्खियों द्वारा खाया जाता है, जो उपकरणों में लगा रहता है, जो याजक के हाथों में तथा जो नाखूनों में लगा रहता है, वह सब भी देवत्व के प्रति ही समर्पित हो ॥९ ॥

१६९०. यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।

सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१० ॥

उदर में (यज्ञकुण्ड के गर्भ में) जो उच्छेदन योग्य गन्ध अधपचे (हविष्यान्न) से निकल रही है, उसका शमन भलीप्रकार किये गये मेध (यज्ञीय) उपचार द्वारा हो और उसका पाचन भी देवों के अनुकूल हो ॥१० ॥

यज्ञ कुण्ड के मध्य में हविष्यान्न का बड़ा पिण्ड बन जाता था। वह अग्नि में ठीक से पच जाय, इसके लिए उसे शूल से छेद दिया जाता था। उस क्रम में रही त्रुटियों का निवारण करने का निर्देश इस मंत्र में है—

१६९१. यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति।

मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११ ॥

आपके जो अग्नि द्वारा पचाये जाते हुए अंग, शूल के आघात से इधर-उधर उछल कर गिर गये हैं, वे भूमि पर ही न पड़े रहें, तृणों में न मिल जायें। वे भी यज्ञ भाग चाहने वाले देवों का आहार बनें ॥११ ॥

१६९२. ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति।

ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२ ॥

जो इस वाजिन् (अन्न युक्त पुरोडाश) को पकता हुआ देखते हैं और जो उसकी सुगंध को आकर्षक कहते हैं; जो इस भोग्य अन्न से बने आहार की याचना करते हैं, उनका पुरुषार्थ भी हमारे लिए फलित हो ॥१२ ॥

१६९३. यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।

ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३ ॥

जो उखा पात्र में पकाये जाते (अन्न एवं फलों के गूदे से बने) पुरोडाश का निरीक्षण करते हैं, जो पात्रों को जल से पवित्र करने वाले हैं, (पकाने के क्रम में) ऊष्मा को रोकने वाले ढक्कन, चरु आदि को अंक (गोद) में रखने वाले तथा (पुरोडाश के) टुकड़े काटने वाले जो उपकरण हैं, वे सब इस अश्वमेध को विभूषित करने वाले (यज्ञ की गरिमा के अनुरूप) हों ॥१३ ॥

१६९४. निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः।

यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४ ॥

(पकाये जाते हुए पुरोडाश के प्रति कहते हैं-) धुएँ की गंधवाली अग्नि तुम्हें पीड़ित न करे, (अग्नि के प्रभाव से) चमकता हुआ अग्नि पात्र (उखा) तुम्हें उद्विग्न न करे। ऐसे (धुएँ आदि से रहित, भली प्रकार सम्पन्न) अश्वमेध को देवगण स्वीकार करते हैं ॥१४ ॥

१६९५. मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।

इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५ ॥

(हे यज्ञ रूप अश्व !) आप का निकलना, आन्दोलित होना, पलटना, पीना, खाना आदि सारी क्रियाएँ देवताओं में (उनके ही बीच, उन्हीं के संरक्षण में) हों ॥१५ ॥

१६९६. यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।

सन्दानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६ ॥

यज्ञ को समर्पित (पूजन योग्य) अश्व को सजाने वाला ऊपर का वस्त्र, आभूषण, सिर तथा पैर बाँधने की मेखलाएँ आदि सभी देवताओं को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों ॥१६ ॥

१६९७. यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद।

स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

(हे यज्ञाग्नि रूप अश्व !) अतिशीघ्रता (जल्दबाजी) में तुम्हें सताने वालों, निचले भाग को (हव्य को जल्दी पचाने के लिए अग्नि के निचले भाग को कुरेद कर) पीड़ित करने वालों द्वारा की गयी सभी त्रुटियों को (हम पुरोहित) स्रुवा की आहुतियों (घृताहुतियों) से ठीक करते हैं ॥१७॥

१६९८. चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।

अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

हे ऋत्विजो !धारण करने की सामर्थ्य से युक्त, गतिमान्, देवताओं के बन्धु इस अश्व (यज्ञ) के चौंतीस अंगों को अच्छी प्रकार प्राप्त करें (जानें) ।हर अंग को अपने प्रयासों द्वारा स्वस्थ बनाएँ और उसकी कमियों को दूर करें ॥१८॥

१६९९. एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः।

या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९॥

(काल विभाजन के क्रम में) त्वष्टा (सूर्य) रूपी अश्व का विभाजन संवत्सर (वर्ष) करता है । उत्तरायण तथा दक्षिणायन नाम से दो विभाग उसके नियन्ता होते हैं । वह वसन्तादि दो-दो माह की ऋतुओं में विभक्त होता है । यज्ञ में शरीर के अलग-अलग अंगों की पुष्टि के निमित्त ऋतु संबंधी अनुकूल पदार्थों की आहुतियाँ देते हैं ॥१९॥

१७००. मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत्ते।

मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०॥

हे अश्व (राष्ट्र अथवा यज्ञ) ! आपका परम प्रिय आत्म तत्त्व अर्थात् अपना गौरव कभी भी पीड़ादायक स्थिति में छोड़कर न जाये (राष्ट्र का गौरव अक्षुण्ण रहे) । शस्त्र (विखण्डित करने वाली शक्तियाँ) आपके अंग-अवयवों पर अपना अधिकार न जमा सकें (राष्ट्र कभी खण्डित न हो) । अकुशल व्यक्ति भी आपके दोषों के अतिरिक्त किसी उपयोगी अंग पर असि (तलवार) का प्रयोग न करे ॥२०॥

१७०१. न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।

हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

हे अश्व !(यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा) न तो आपका नाश होता है और न आप किसी को नष्ट करते हैं, (वरन् आप) सुगम - सहज मार्ग से देवताओं तक पहुँचते हैं । शब्द करने वालों (मंत्रोच्चार करने वालों) के आधार पर वाजी (ऐश्वर्यवान्) और हरि (अंतरिक्षीय गतिशील प्रवाह) उपस्थित होकर, आपके साथ संयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥२१॥

१७०२. सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम्।

अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥२२॥

देवत्व को प्राप्त करने वाला यह बलशाली (यज्ञीय प्रयोग) हमें पुत्र-पौत्र, धन-धान्य तथा उत्तम अश्वों के रूप में अपार वैभव प्रदान करे । हम दीनता, पाप कृत्यों एवं अपराधों से सदैव दूर रहें । अश्व के समान शक्तिशाली हमारे नागरिक पराक्रमी हों ॥२२॥

[सूक्त - १६३]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- ऋभुगण । छन्द- जगती, १४ त्रिष्टुप् ।]

१७०३. यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१ ॥

हे अर्वन् (चंचल गतिवाले) ! बाज़ के पंखों तथा हिरन के पैरों की तरह गतिशील आप जब प्रथम समुद्र से उत्पन्न हुए, तब उत्पत्ति स्थान से प्रकट होकर आप शब्द करने लगे, तब आपकी महिमा स्तुत्य हुई ॥१ ॥

[यहाँ चंचल गतिवाले प्राण-पर्जन्य युक्त मेघों के लिए अर्वन् सम्बोधन अधिक सार्थक सिद्ध होता है ।]

१७०४. यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२ ॥

वसुओं ने सूर्यमण्डल से अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाली ऊर्जा रश्मियों) को निकाला । तीनों लोकों में विचरने वाले वायु ने यम के द्वारा प्रदान किये गये अश्व को रथ में (कर्म में) नियोजित किया । सर्व प्रथम इस अश्व पर इन्द्रदेव चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगाम सँभाली (ऐसे अश्व की हम स्तुति करते हैं ।) ॥२ ॥

१७०५. असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३ ॥

हे अर्वन् ! अपने गुप्त व्रतों (जो प्रकट नहीं है, ऐसी विशेषताओं) के कारण आप यम हैं, आदित्य हैं, त्रित (तीनों लोकों अथवा तीनों आयामों) मे संव्याप्त हैं । सोम (पोषक प्रवाह) के साथ आप एक रूप हैं । द्युलोक में स्थित आपके तीन बन्धन (ऋक्, यजु, साम रूप) कहे गये हैं ॥३ ॥

[विज्ञान का सर्वमान्य नियम है कि किसी पिण्ड को स्थिर करने के लिए तीन दिशाओं से संतुलित शक्ति चाहिए । इस सिद्धान्त को 'इक्विलिब्रियम ऑफ थ्री फोर्सेज' (तीन शक्तियों का संतुलन) एवं ट्रायेंगिल ऑफ फोर्सेज (शक्ति त्रिकोण) कहते हैं । संभवतः ऋषि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अन्तरिक्ष में भी वही सिद्धान्त क्रियान्वित होता देखते हैं ।]

१७०६. त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥४ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले) ! आपको श्रेष्ठ उत्पादक सूर्य कहा गया है । दिव्य लोक में, जलों में तथा अन्तरिक्ष में आपके तीन-तीन बन्धन कहे गये हैं । आप वरुण रूप में हमारी प्रशंसा करते हैं ॥४ ॥

१७०७. इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५ ॥

हे वाजिन् (बलशाली मेघ) ! आपके मार्जन (सिंचन) करने वाले साधनों को हम देखते हैं । आपके खुरों (धाराओं के आघात) से खुदे हुए वह स्थान देखते हैं । यहाँ आपके कल्याणकारी रज्जु (नियंत्रक सूत्र) हैं, जो रक्षा करने वाले हैं, जो कि इस ऋत (सनातन सत्य-यज्ञ) की रक्षा करते हैं ॥५ ॥

१७०८. आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥६ ॥

हे अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुभूत हव्य) ! नीचे के स्थान से आकाश मार्ग द्वारा सूर्य की तरफ जाते हुए आपकी आत्मा को हम विचारपूर्वक जानते हैं । सरलतापूर्वक जाने योग्य, धूलि रहित मार्गों से जाते हुए आपके नीचे की ओर आने वाले सिरों (श्रेष्ठ भागों) को भी हम देखते हैं ॥६ ॥

१७०९. अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।

यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७ ॥

हे अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुभूत हव्य) ! आपके यज्ञ की कामना वाले श्रेष्ठ स्वरूप को हम सूर्य मण्डल में विद्यमान देखते हैं । यजमान ने जिस समय उत्तम हवियों को आपके निमित्त समर्पित किया, उसके बाद ही आपने हव्य रूप ओषधियों को ग्रहण किया ॥७ ॥

१७१०. अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।

अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले यज्ञाग्नि) ! रथ (मनोरथ) आपके अनुगामी हैं । आपके अनुगामी मनुष्य, कन्याओं का सौभाग्य तथा गौएँ हैं । मनुष्य समुदाय ने आपकी मित्रता को प्राप्त किया तथा देवगणों ने आपके शौर्य को वर्णित किया है ॥८ ॥

१७११. हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।

देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥९ ॥

सबसे पहले स्वर्ण मुकुट धारण करके अश्व पर आरूढ़ होने वाले इन्द्रदेव थे । इस अश्व के पैर लोहे के समान दृढ़ और मन के सदृश वेगवान् हैं । देवताओं ने ही इसके हवि रूप भोजन को ग्रहण किया ॥९ ॥

१७१२. ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।

हंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥१० ॥

जब पुष्ट जंघाओं और वक्ष वाले, मध्य भाग (कटिभाग) में पतले, बलशाली, सूर्य के रथ को खींचने वाले और लगातार चलने वाले अश्व (किरणें) पंक्तिबद्ध होकर हंसों के समान चलते हैं, तब वे स्वर्ग मार्ग में दिव्यता को प्राप्त होते हैं ॥१० ॥

१७१३. तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातइव ध्रजीमान् ।

तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥११ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले अग्निदेव) ! आपका शरीर ऊर्ध्वगमन करने वाला और चित्त वायु के समान वेगवाला है । आपकी विशेष प्रकार से स्थित दीप्तियाँ वनों में दावानल के रूप में व्याप्त हैं ॥११ ॥

१७१४. उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।

अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥१२ ॥

यशस्वी, मन के समान तीव्र गति से चलायमान, तेजस्वी अश्व (सूक्ष्मीकृत हव्य) ऊपर की ओर देवमार्ग को जाता है । अज (अर्थात् कृष्ण वर्ण धूम्र) आगे चलता है । (सूक्ष्मीकृत हव्य का) नाभि (नाभिक-न्यूक्लियस-मुख्य भाग) उसका अनुगमन करता है । पीछे - पीछे पाठ करते हुए स्तोता चलते हैं (मंत्रों का पाठ होता है ।) ॥१२ ॥

१७१५. उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।

अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥१३ ॥

शक्तिशाली अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले सूक्ष्मीकृत हव्य) ! सर्वश्रेष्ठ उच्च स्थान को प्राप्त करके पालक और सम्माननीय माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) से मिलते हैं । हे याजक ! आप भी सद्‌गुणों से सुशोभित होते हुए देवत्व को प्राप्त करें । देवताओं से अपार वैभव उपलब्ध करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १६४]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता -१-४१विश्वदेवा ४२ प्रथमार्द्ध वाक्, द्वितीयार्द्ध-आप, ४३ प्रथमार्द्धशकधूम, द्वितीयार्द्ध सोम; ४४ अग्नि, सूर्य, और वायु;४५ वाक ;४६-४७ सूर्य; ४८ संवत्सरकालचक्र वर्णन;४९सरस्वती; ५० साध्य; ५१सूर्य; अथवा पर्जन्य और अग्नि, ५२ सरस्वान् अथवा सूर्य । छन्द- त्रिष्टुप्, १२,१५, २३, २९, ३६, ४१ जगती; ४२ प्रस्तार पंक्ति; ५१अनुष्टुप् ।]

१७१६. अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१ ॥

इन सुन्दर एवं जगपालक होता(सूर्यदेव) को हमने सात पुत्रों (सप्तवर्णी किरणों) सहित देखा है । इन(सूर्यदेव) के मध्यम (मध्य-अन्तरिक्ष में रहने वाला) भाई सर्वव्यापी वायुदेव हैं । उनके तीसरे भाई तेजस्वी पीठवाले (अग्निदेव) हैं ॥१ ॥

१७१७. सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२ ॥

एक चक्र (सविता के पोषण चक्र) वाले रथ से ये सातों जुड़े हैं । सात नामों (रंगों) वाला एक (किरण रूपी) अश्व इस चक्र को चलाता है । तीन (द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) नाभियों (केन्द्रक) अथवा धुरियों वाला यह कालचक्र सतत गतिशील अविनाशी, और शिथिलता रहित है । इसी चक्र के अन्दर समस्त लोक विद्यमान हैं ॥२ ॥

१७१८. इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३ ॥

इस (सूर्यदेव के पोषण चक्र) से जुड़े यह जो सात (सप्त वर्ण अथवा सातकाल वर्ग- अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्त) हैं, यही सात चक्र अथवा सात अश्वों के रूप में इस रथ को चलाते हैं । जहाँ गौ (वाणी) में सात नाम (सात स्वर) छिपे हैं, ऐसी सात बहनें (स्तुतियाँ) इसकी वन्दना करती हैं ॥३ ॥

१७१९. को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४ ॥

जो अस्थि(शरीर) रहित होते हुए भी अस्थियुक्त(शरीरधारी प्राणियों) का पालन - पोषण करते हैं; उन स्वयंभू को किसने देखा ? भूमि में प्राण, रक्त एवं आत्मा कहाँ से आये ?इस सम्बन्ध में पूछने (जानने) के लिए कौन किसके पास जाता ? ॥४ ॥

[आज का विज्ञान भी उक्त प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ है । जो दिखता है, उसी से सृष्टि रचना के अनुमान लगाये जाते हैं । ऋषि का संकेत है कि पदार्थों से पूछकर नहीं, आत्मानुभूति से ही रहस्य जाने जा सकते हैं ।]

१७२०. पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥

अपरिपक्व बुद्धिवाले हम, देवताओं के इन गुप्त पदों (चरणों) के सम्बन्ध में जानने के लिए मनोयोग पूर्वक पूछते हैं; सुन्दर युवा गोवत्स (बछड़े या सूर्य) के लिए ये विज्ञ (देव आदि) सप्त तन्तुओं (किरणों) को कैसे फैलाते हैं ? ॥५ ॥

[सूर्य की किरणों के पदार्थपरक प्रभावों पर तो विज्ञान थोड़ी बहुत शोध कर भी सका है, किन्तु चेतनापरक हलचलों का स्रोत एवं ताना-बाना समझने के लिए स्थूलबुद्धि की अपरिपक्वता सभी स्वीकार करने लगे हैं ।]

१७२१. अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।

वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६ ॥

जिसके द्वारा इन छहों लोकों को स्थिर किया गया है, वह अजन्मा प्रजापति रूपी तत्त्व कैसा है ? उसका क्या स्वरूप है ? इस तत्त्व ज्ञान से अपरिचित हम तत्ववेत्ताओं से निश्चित स्वरूप की जानकारी के लिए यह पूछते हैं ॥६

१७२२. इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।

शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥७ ॥

जो इस सुन्दर और गतिमान् सूर्य के उत्पत्ति स्थान को (उत्पत्ति के रहस्य को) जानते हैं, वे इस गुप्त रहस्य का यहाँ आकर स्पष्टीकरण करें कि इस सर्वोत्तम सूर्य की गौएं (किरणे) पानी का दोहन करती हैं (बरसाती हैं) । वे ही (ग्रीष्मकाल में) तेजस्वी होकर पैरों (निचले भागों) से जल को सोखती है ॥७ ॥

१७२३. माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।

सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८ ॥

माता (पृथ्वी) ने ऋत (यज्ञ अथवा ऋतु अनुरूप उपलब्धि) के लिये पिता (द्युलोक अथवा सूर्य) का सेवन किया। क्रिया के पूर्व मन से उनका संपर्क हुआ। माता गर्भ (उर्वरता धारण करने योग्य) रस से निबद्ध हुई। तब (गर्भ के विकास के लिए) उनमें नमन पूर्वक (एक दूसरे का आदर करते हुए) वचनों (परामर्श) का आदान-प्रदान हुआ ॥८ ॥

१७२४. युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।

अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९ ॥

समर्थ सूर्यदेव की धारण क्षमता पर माता(पृथ्वी) आधारित है। गर्भ (उर्वर शक्ति प्राणपर्जन्य) गमनशील (वायु अथवा बादलों) के बीच रहता है। बछड़ा (बादल) गौओं (किरणों) को देखकर शब्द करते हुए अनुमान करता है, तब तीनों का संयोग विश्व को रूपवान् बनाता है ॥९ ॥

१७२५. तिस्रो मातृस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।

मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१० ॥

यह स्रष्टा प्रजापति अकेले ही (पृथ्वी ,अन्तरिक्ष और द्युलोक रूपी) तीन माताओं तथा (अग्नि,वायु और सूर्य रूपी) तीन पिताओं का भरणपोषण करते हुए सबसे परे स्थित हैं। इन्हें थकावट नहीं आती। विश्व के रहस्य को जानते हुए भी अखिल विश्व से परे (बाहर) रहने वाले प्रजापति की वाणी (शक्ति) के सम्बन्ध में (सभी देवगण) द्युलोक के पृष्ठ - भाग पर विचार करते हैं ॥१० ॥

१७२६. द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।

आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११ ॥

ऋत (सूर्य अथवा सृष्टि संचालक यज्ञ) का बारह अरों (राशियों) वाला चक्र इस द्युलोक में चारों ओर घूमता रहता है। यह चक्र कभी अवरुद्ध या जीर्ण नहीं होता। हे अग्निदेव ! संयुक्त रूप से रहने वाले सात सौ बीस पुत्र यहाँ (इस चक्र) में रहते हैं ॥११ ॥

[आकाश चक्र का विभाजन ३६० अंश (डिग्री) में किया गया है । इन सभी अंशों में प्राण (धारण किये जाने वाले) एवं रयि (धारक) तत्व हैं। प्राणरूप (सूर्य) एवं रयि रूप (चन्द्र) दोनों पक्ष के ३६० + 360 DebMe मिलकर ७२० होते हैं।]

१७२७. पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।

अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥१२ ॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रात रूपी पाँच पैरों वाला मास रूपी बारह आकृतियों से युक्त तथा जल को बरसाने वाले पिता रूप सूर्यदेव दिव्यलोक के आधे हिस्से में रहते हैं, ऐसी मान्यता है। अन्य विद्वानों के मतानुसार ये सूर्यदेव ऋतुरूप छः अरों तथा अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्त रूपी सात चक्रों वाले रथ पर आरूढ़ हैं ॥१२ ॥

१७२८. पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।

तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३ ॥

अयन, मासादि पाँच अरों वाले इस कालचक्र (रथ) में समस्त लोक विद्यमान हैं। इतने लोकों का भार वहन करते हुए भी इस चक्र का अक्ष (धुरा) न गरम होता है और न टूटता है ॥१३ ॥

१७२९. सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।

सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४ ॥

नेमि (धुरा या नियन्त्रण) से युक्त कभी क्षय न होने वाला सृष्टि चक्र सदैव चलता रहता है। अति व्यापक प्रकृति के उत्पन्न होने पर इसे दस घोड़े (पाँच प्राण एवं पाँच उपप्राण, पाँच प्राण एवं पाँच अग्नियाँ आदि) चलाते हैं। सूर्य रूपी नेत्र का प्रकाश जल से आच्छादित होकर गतिमान् होता है, उसमें ही सम्पूर्ण लोक विद्यमान हैं ॥१४ ॥

१७३०. साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति।

तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१५ ॥

एक साथ जन्मे, जोड़े से रहने वाले छः और सातवाँ यह सभी एक (काल अथवा परमात्म चेतना) से उत्पन्न हैं। यह देवत्व से उपजे ऋषि हैं। ये सभी अपने बदले हुए रूपों में अपने-अपने इष्ट प्रयोजनों में रत, अपने-अपने धामों (क्षेत्रों) में स्थित रहकर गतिशील (सक्रिय) हैं ॥१५ ॥

[यह मंत्र अर्थ भेद से विराट् सृष्टि पर, काल क्रम पर, ऋषियों पर तथा काया आदि सभी पर घटित होता है। सप्त लोकों में छः जोड़े और एक सातवाँ सत्यलोक, छः ऋतुओं में दो मास के छः जोड़े तथा एक अधिक मास, आँख, कान, नाक के छिद्र दो-दो और एक जीभ या वाणी, सात ऋषि आदि अर्थ लेने से यह मंत्र विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त होता है।]

१७३१. स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः।

कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥१६ ॥

ये (किरणें) स्त्रियाँ हैं, फिर भी पुरुष (गर्भ धारण करने में समर्थ) हैं, यह तथ्य (सूक्ष्म) दृष्टि सम्पन्न ही देख सकते हैं। दूरदर्शी पुत्र (साधक - शिष्य) ही इसे अनुभव कर सकता है। जो यह जान लेता है, वह पिता का भी पिता (सर्व सृजेता को भी जानने वाला) हो जाता है ॥१६ ॥

[यह मंत्र प्रजनन विज्ञान (जैनेटिक साइंस) पर भी घटित होता है। गुण सूत्रों (क्रोमोजोम्स) में भी एक्स एवं वाई, नारी एवं नर दोनों की क्षमताएँ पायी जाती हैं।]

१७३२. अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।

सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७ ॥

गौएं (पोषक किरणें) द्युलोक से नीचे की ओर तथा इस (पृथ्वी) से ऊपर की ओर (सतत) गतिमान् हैं। यह बछड़े (जीवन तत्त्व) को धारण किए हुए किस लक्ष्य की ओर जाते हैं? यह किस आधे भाग से परे निकल कर जन्म देती हैं? यहाँ समूह के मध्य तो नहीं देती ॥१७ ॥

[पदार्थ विज्ञान की नवीनतम शोधों के अनुसार सूक्ष्म किरणों के प्रवाह पृथ्वी से आकाश की ओर तथा आकाश से पृथ्वी की ओर सतत गतिशील हैं । ये प्रवाह पृथ्वी के किसी भी अर्ध भाग (हैमिस्फियर) को छूते हुए निकल जाते हैं । यह प्रवाह कब कहाँ जीवन तत्त्व को प्रकट कर देते हैं ? किसी को पता नहीं है ।]

१७३३. अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।

कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८ ॥

जो द्युलोक से नीचे इस (पृथ्वी) के पिता (सूर्यदेव) तथा पृथिवी के ऊपर स्थित अग्निदेव को जानते अर्थात् उपासना करते हैं, वे निश्चित ही विद्वान् हैं । यह दिव्यता से युक्त आचरण वाला मन कहाँ से उत्पन्न हुआ ? इस रहस्य की जानकारी देने वाला ज्ञानी कौन है ? यह हमें यहाँ आकर बतायें ॥१८ ॥

१७३४. ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।

इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९ ॥

(इस गतिशील विश्व में) जो पास आते हुए को दूर जाता हुआ भी कहा जाता (अनुभव किया जाता) है और दूर जाते को पास आता हुआ भी कहा जाता है । हे सोमदेव ! आपने और इन्द्रदेव ने जो चक्र चला रखा है,वह धुरे से जुड़ा रहकर लोकों को वहन करता है ॥१९ ॥

[घूमते विश्व में नक्षत्रादि पास आते हुए, दूर जाते हुए भी दिखते हैं । इन्द्रदेव , सूर्यदेव अथवा संगठक शक्ति तथा सोम, चन्द्रमादेव अथवा पोषक शक्ति के संयोग से इस विश्व का चक्र चल रहा है ।]

१७३५. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२० ॥

साथ रहने वाले मित्रों की तरह दो पक्षी (गतिशील जीवात्मा एवं परमात्मा) एक ही वृक्ष (प्रकृति अथवा शरीर) पर स्थित हैं । उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादिष्ट पीपल (माया) के फल खाता है, दूसरा (परमात्मा) उन्हें न खाता हुआ केवल देखता (द्रष्टा रूप) रहता है ॥२० ॥

१७३६. यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।

इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१ ॥

इस (प्रकृति-रूपी) वृक्ष पर बैठी हुई संसार में लिप्त मरणधर्मा जीवात्माएँ सुख-दुःख रूपी फलों को भोगती हुई अपने शब्दों में परमात्मा की स्तुति करती हैं । तब इन लोकों के स्वामी और संरक्षक परमात्मा अज्ञान से युक्त मुझ जीवात्मा में भी विद्यमान हैं ॥२१ ॥

१७३७. यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।

तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२२ ॥

इस (संसार रूपी) वृक्ष पर प्राण रस का पान करने वाली जीवात्माएं रहती हैं, जो प्रजा वृद्धि में समर्थ हैं । वृक्ष में ऊपर मधुर फल भी लगे हुए हैं, जो पिता (परमात्मा को) नहीं जानते, वे इन मधुर (सत्कर्म रूपी) फलों के आनन्द से वञ्चित रहते हैं ॥२२ ॥

१७३८. यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३ ॥

पृथ्वी पर गायत्री छन्द को, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द को तथा आकाश में जगती छन्द को स्थापित करने वाले को जो जान लेता है, वह देवत्व (अमरत्व) को प्राप्त कर लेता है ॥२३ ॥

१७३९. गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२४॥

(परमात्मा ने) गायत्री छन्द से प्राण की रचना की, ऋचाओ के समूह से सामवेद को बनाया, त्रिष्टुप् छन्द से यजुर्वाक्यों की रचना की तथा दो पदों एवं चार पदों वाले अक्षरों से सातों छन्दमय वाणियों को प्रादुर्भूत (प्रकट) किया ॥२४॥

१७४०. जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥

गतिमान् सूर्यदेव द्वारा प्रजापति ने द्युलोक में जलों को स्थापित किया। वृष्टि के माध्यम से जल, सूर्यदेव और पृथ्वी संयुक्त होते हैं, तब सूर्य और द्युलोक में सन्निहित प्राण, जल वृष्टि के द्वारा इस पृथ्वी पर प्रकट होता है। गायत्री के तीन पाद अग्नि, विद्युत् और सूर्य (पृथ्वी, द्यु और अन्तरिक्ष) हैं। उस प्रजापति की तेजस्विता से ही ये तीनों पाद बलशाली होते हैं, ऐसा कहा गया है ॥२५॥

१७४१. उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥

दुग्ध (सुख) प्रदान करने वाली गौ (प्रकृति प्रवाहों) का हम आवाहन करते हैं। इस गौ के दुग्ध का दोहन कुशल साधक ही कर पाते हैं। सविता देव हमें दुग्ध (श्रेष्ठ प्राण) प्रदान करें। तपस्वी एवं तेजस्वी (जीवन साधक) ही इसको ग्रहण कर सकता है; ऐसा कथन है ॥२६॥

१७४२. हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥

कभी भी वध न करने योग्य गौ, मनुष्यों के लिए अन्न, दुग्ध, घृत आदि ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना से अपने बछड़े को मन से प्यार करती हुई, रँभाती हुई बछड़े के पास आ जाती है। वह गौ मानव समुदाय के महान् सौभाग्य को बढ़ाती हुई, प्रचुर मात्रा में दुग्ध प्रदान करती है ॥२७॥

१७४३. गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥

गौ (स्नेह से) आँखें मींचे (बन्द किये) हुए (बछड़े के) समीप जाकर रँभाती है। बछड़े के सिर को चाटने (सहलाने) के लिए वात्सल्यपूर्ण शब्द करती है। उसके मुँह के पास अपने दूध से भरे थनों को ले जाती हुई शब्द करती है। वह दूध पिलाते हुए (प्यार से) शब्द करते हुए बछड़े को संतुष्ट भी करती है ॥२८॥

१७४४. अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९॥

वत्स गौ के चारों ओर बिना शब्द के अभिव्यक्ति करता है। गौ रँभाती हुई अपनी (भाव भरी) चेष्टाओं से मनुष्यों को लज्जित करती है। उज्ज्वल दूध उत्पन्न कर अपने भावों को प्रकाशित करती है ॥२९॥

१७४५. अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥

श्वसन प्रक्रिया द्वारा अस्तित्व में रहने वाला जीव (चन्चल जीव) जब शरीर से चला जाता है, तब यह शरीर घर में निश्चल पड़ा रहता है। मरणशील (मरण धर्मा) शरीरों के साथ रहनेवाली आत्मा अविनाशी है, अतएव अविनाशी आत्मा अपनी धारण करने की शक्तियों से सम्पन्न होकर सर्वत्र निर्बाध विचरण करती है ॥३०॥

१७४६. अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१ ॥

समीपस्थ तथा दूरस्थ मार्गों में गतिमान् सूर्यदेव निरंतर गतिशील रहकर भी कभी नहीं गिरते । वे सम्पूर्ण विश्व का संरक्षण करते हैं । चारों ओर फैलने वाली तेजस्विता को धारण करते हुए समस्त लोकों में विराजमान सूर्यदेव को हम देखते हैं ॥३१ ॥

१७४७. य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥३२ ॥

जिसने इसे (जीव को) बनाया, वह भी इसे नहीं जानता; जिसने इसे देखा है, उससे भी यह लुप्त रहता है । यह माँ के प्रजनन अंग में घिरा हुआ स्थित है । यह प्रजाओं की उत्पत्ति करता हुआ स्वयं अस्तित्व खो देता है ॥३२ ॥

१७४८. द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्वो३ र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३ ॥

द्युलोक स्थित (सूर्यदेव) हमारे पिता और बन्धु स्वरूप हैं । वही संसार के नाभि रूप भी हैं । यह विशाल पृथिवी हमारी माता है । दो पात्रों (आकाश के दो गोलार्द्धों) के मध्य स्थित सूर्यदेव अपने द्वारा उत्पन्न पृथ्वी में गर्भ (जीवन) स्थापित करते हैं ॥३३ ॥

१७४९. पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।

पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४ ॥

इस धरती का अन्तिम छोर कौन सा है ? सभी भुवनों का केन्द्र कहाँ है ? अश्व की शक्ति कहाँ है ? और वाणी का उद्गम कहाँ है ? यह हम आप से पूछते हैं ॥३४ ॥

[इस ऋचा में सृष्टि के चार रहस्यात्मक प्रश्न पूछे गये हैं, जिनका समाधान अगली ऋचा में ऋषि द्वारा किया गया है ।]

१७५०. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५ ॥

(यज्ञ की) यह वेदिका पृथ्वी का अन्तिम छोर है, यह यज्ञ ही संसार चक्र की धुरी है । यह सोम ही अश्व (बलशाली) की शक्ति (वीर्य) है । यह 'ब्रह्मा' वाणी का उत्पत्ति स्थान है ॥३५ ॥

१७५१. सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥३६ ॥

सम्पूर्ण विश्व का निर्माण अपरा प्रकृति के मन, प्राण और पंच भूत रूपी सात पुत्रों से होता है । यह सभी तत्त्व सर्वव्यापक प्रजापति के निर्देशानुसार ही कर्त्तव्य निर्वाह करते हैं । वे अपनी ज्ञानशीलता, व्यापकता से तथा अपनी संकल्पशक्ति द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं ॥३६ ॥

१७५२. न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।

यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७ ॥

मैं नहीं जानता कि मैं कैसा हूँ ? मैं मूर्ख की भाँति मन से बँधकर चलता रहता हूँ । जब पहले ही प्रकट हुआ सत्य मेरे पास आया, तभी मुझे यह वाणी प्राप्त हुई ॥३७ ॥

[वेद वाणी किस प्रकार प्रकट हुई ? इस तथ्य को ऋषि निश्छल भाव से व्यक्त कर रहे हैं ।]

१७५३. अपाङ्प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८ ॥

यह आत्मा अविनाशी होने पर भी मरणधर्मा शरीर के साथ आबद्ध होने से विविध योनियों में जाती है । यह अपनी धारण क्षमता से ही उन शरीरों में आती और शरीरों से पृथक् होती रहती है । ये दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत एवं गतिशील होते हुए विपरीत गतियों से युक्त हैं । लोग इनमें से एक (शरीर) को तो जानते हैं, पर दूसरे (आत्मा) को नहीं समझते ॥३८ ॥

१७५४. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९ ॥

अविनाशी ऋचाएँ परमव्योम में भरी हुई हैं । उनमें सम्पूर्ण देव शक्तियों का वास है । जो इस तथ्य को नहीं जानता (उसके लिए) ऋचा क्या करेगी ? जो इस तथ्य को जानते हैं, वे इस (ऋचा) का सदुपयोग कर लेते हैं ॥३९ ॥

१७५५. सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।

अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४० ॥

हे अवध्यनीय गौ माता ! आप श्रेष्ठ पौष्टिक घास (आहार) ग्रहण करती हुई सौभाग्यशालिनी हों । आपके साथ हम सभी सौभाग्यशाली हों । आप शुद्ध घास खाकर और शुद्ध जल पीकर सर्वत्र विचरण करें ॥४० ॥

१७५६. गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१ ॥

गौ (वाणी) निश्चित ही शब्द करती हुई जलों (रसों) को हिलाती (तरंगित करती) है । वह गौ (काव्यमयी वाणी) एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदोंवाले छन्दों में विभाजित होती हुई सहस्र अक्षरों से युक्त होकर व्यापक आकाश में संव्याप्त हो जाती है ॥४१ ॥

[इस ऋचा में गौ का अर्थ सूर्य रश्मियाँ भी लिया जा सकता है । वे रसों को संचरित करती हुई सहस्र चरणवाली बनकर आकाश में संव्याप्त होती हैं ।]

१७५७. तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥४२ ॥

उन सूर्य रश्मियों से (जल वृष्टि द्वारा) जल प्रवाह बहते हैं । जिस जलवृष्टि से सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न होती हैं, इससे सम्पूर्ण विश्व को जीवन (प्राण) मिलता है ॥४२ ॥

१७५८. शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३ ॥

दूर से हमने धूम्र को देखा । चतुर्दिक् व्याप्त धूम्र के मध्य अग्नि को देखा, जिसमें प्रत्येक उत्तम कार्यों के पूर्व ऋत्विग्गण शक्तिदायी सोमरस को पकाते हैं ॥४३ ॥

१७५९. त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।

विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४ ॥

तीन किरणों वाले पदार्थ (सूर्य, अग्नि और वायु) ऋतुओं के अनुसार दिखाई देते हैं । इनमें से एक (सूर्य) संस्कार का वपन करता है । एक (अग्नि) अपनी शक्तियों से विश्व को प्रकाशित करता है । तीसरे (वायु) का रूप प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता है ॥४४ ॥

१७६०. चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५ ॥

मनीषियों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि वाणी के चार रूप हैं, इनमें से तीन वाणियाँ (परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा) प्रकट नहीं होतीं । सभी मनुष्य वाणी के चौथे रूप (बैखरी) को ही बोलते हैं ॥४५ ॥

१७६१. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६ ॥

एक ही सत्‌रूप परमेश्वर का विद्वज्जन (विभिन्न गुणों एवं स्वरूपों के आधार पर) विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । उसी (परमात्मा) को (ऐश्वर्य सम्पन्न होने पर) इन्द्र, (हितकारी होने से) मित्र, (श्रेष्ठ होने से) वरुण तथा (प्रकाशक होने से) अग्नि कहा गया है ।वह (परमात्मा) भली प्रकार पालन कर्त्ता होने से सुपर्ण तथा गरुत्मान् है ॥४६ ॥

१७६२. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।

त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७ ॥

श्रेष्ठ गतिमान् सूर्य-किरणें अपने साथ जल को उठाती हुई सबके आकर्षण के केन्द्र यानरूप सूर्यमण्डल के समीप पहुँचती हैं । वहाँ अन्तरिक्ष के मेघों में स्थित जल को बरसाते हुए पृथ्वी को सिक्त कर देती हैं ॥४७ ॥

१७६३. द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।

तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८ ॥

एक चक्र है, उसे बारह अरे घेरे हुए हैं । उसकी तीन नाभियाँ हैं । उसे कोई विद्वान् ही जानते हैं । उसमें ३६० चलायमान कीलें ठुकी हुई हैं ॥४८ ॥

[**कालचक्र, आकाश में १२ राशियों से घिरा है, तीन ऋतुएँ उसकी नाभियाँ हैं, ३६० अंशों में वह विभक्त है ।**]

१७६४.यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।

यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९ ॥

हे देवी सरस्वति ! जो आपका सुखदायक, वरण करने योग्य, पुष्टिकारक, ऐश्वर्य प्रदाता, कल्याणकारी विभूतियों को देने वाला स्तन (स्वरूप) है, उसे जगत् के पोषण के लिए प्रकट करें ॥४९ ॥

१७६५. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५० ॥

देवों ने यज्ञ से यज्ञ का यजन किया, उनका धर्म-कर्म में प्रथम स्थान है । (इससे) उन (देवों) ने स्वर्ग में स्थान पाया, जहाँ पूर्वकाल में साधना करने वाले देवता रहते हैं ॥५० ॥

१७६६. समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।

भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१ ॥

यही जल (तप्त होकर वाष्परूप में) ऊपर जाता है और वही जल पर्जन्य रूप में नीचे आता है । जल बरसने से भूमि तृप्त होती है और अग्नियों (प्रदत्त आहुतियों) से दिव्य लोक तृप्त होते हैं ॥५१ ॥

१७६७. दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२ ॥

द्युलोक में विद्यमान रहनेवाले, उत्तम गति वाले, निरन्तर गतिमान् महिमाशाली, जलों के केन्द्र, ओषधियों को

पुष्ट बनाने वाले, जल वृष्टि द्वारा चतुर्दिक् प्रवहमान जल प्रवाहों से भूमि को तृप्त करनेवाले सूर्यदेव को हम अपने संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं ।

[सूक्त - १६५]

[**ऋषि-** १,२,४,६,८,१०-१२ इन्द्र; ३,५,७,९ मरुद्गण; १३-१५ अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता-** मरुत्वानिन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१७६८. **कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।**
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१ ॥

एक ही स्थान में रहने वाले, समवयस्क मरुद्गण, किस शुभ तत्व से सिंचन करते हैं ? कहाँ से आकर, किस मति से प्रेरित होकर, ये बलशाली मरुद्गण ऐश्वर्य की कामना से बल की उपासना करते हैं ॥१ ॥

१७६९. **कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।**
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२ ॥

सदा युवा रहने वाले ये मरुद्गण किसके स्तोत्रों (हव्य) को स्वीकार करते हैं ? इन मरुतों को कौन यज्ञ की ओर प्रेरित कर सकता है ? अन्तरिक्ष में बाज़ पक्षी के समान विचरण करने वाले इन मरुतों को किन उदार-विशाल हृदय की भावनाओं से प्रसन्न करें ? ॥२ ॥

१७७०. **कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।**
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥३ ॥

हे महान् इन्द्रदेव ! आप अकेले कहाँ जाते हैं ? आप ऐसे (महान् एवं पूज्य) क्यों हैं ? हे अश्वों से युक्त शोभनीय इन्द्रदेव ! अपने सान्निध्य में रहने वालों की आप सदैव कुशलक्षेम पूछते रहते हैं । अतः हमारे हित की जो भी बात आप कहना चाहें, वह कहें ॥३ ॥

१७७१. **ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।**
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥४ ॥

(इन्द्रदेव की अभिव्यक्ति) मननशील स्तुतियाँ एवं सोम मेरे लिए सुखकारी हों । मेरा बलशाली वज्र शत्रुओं की ओर जाता है । स्तुतियाँ मेरी प्रशंसा करती हुई मेरी तरफ आती हैं । दोनों अश्व मुझे लक्ष्य की ओर ले जाते हैं ॥४ ॥

१७७२. **अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्व१ः शुम्भमानाः ।**
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५ ॥

हम अपने (इन्द्रियों रूपी) अति बलशाली अश्वों से युक्त होकर, महान् तेजस्विता से स्वयं को सज्जित करके, उनका उपयोग शत्रुओं के विनाश के लिए करते हैं । अतः हे इन्द्रदेव ! आप अपनी धारण-क्षमताओं को हमारे अनुकूल बनायें ॥५ ॥

१७७३. **क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।**
अहं ह्यु१ ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६ ॥

हे मरुद्गणो ! तुम्हारी वह स्वाभाविक शक्ति कहाँ थी, जिसे तुमने वृत्रवध के अवसर पर अकेले मुझ (इन्द्र) में स्थापित किया था । (वैसे तो) मैं (इन्द्र) स्वयं ही शक्तिशाली, बलवान् , शूरवीर हूँ । मैंने अपने शस्त्रास्त्रों से भयंकर से भयंकर शत्रुओं को भी झुकने के लिए मजबूर किया है ॥६ ॥

१७७४. भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।

भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥७ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आपने हमारे (मरुतों के) साथ मिलकर अपनी सामर्थ्य के अनुरूप अनेकों वीरतापूर्ण कार्य किये हैं । हे शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम (मरुतों) ने भी अति वीरतापूर्ण कार्य किये हैं । हम (मरुद्‌गण) अपने पुरुषार्थ से जो भी चाहते हैं, प्राप्त कर लेते हैं ॥७ ॥

१७७५. वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।

अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८ ॥

हे मरुतो ! अपनी सामर्थ्य शक्ति से ही मैंने (इन्द्रदेव ने) वृत्रासुर का संहार किया और अपने ही पराक्रम से शक्ति सम्पन्न बना । वज्र को हाथों में धारण करके मैंने (इन्द्रदेव ने) ही मनुष्यों तथा सभी प्राणियों के कल्याण के लिए, आनन्ददायी जल - प्रवाहों को सहजता से प्रवाहित किया ॥८ ॥

१७७६. अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।

न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपसे बढ़कर और कोई धनवान् नहीं है । आपके समान कोई ज्ञानी भी नहीं है । हे महान् इन्द्रदेव ! आपके द्वारा किये गये कार्यों की समानता न कोई कर सका है और न ही आगे कर सकेगा ॥९ ॥

१७७७. एकस्य चिन्मे विभ्व१ स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।

अहं ह्यु१ ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१० ॥

मैं (इन्द्र) जिन कार्यों को करने की कामना करता हूँ, उन्हें एकाग्र मन से करता हूँ, इसलिए मेरी अकेले की कीर्ति पताका चारों ओर फहरा रही है । हे मरुद्‌गणो ! चूंकि मेरे अन्दर वीरोचित शौर्य और विद्वत्ता है, इसलिए जिनकी तरफ भी जाता हूँ, उनका स्वामी बनकर शक्तियों का उपभोग करता हूँ ॥१० ॥

१७७८. अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।

इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११ ॥

हे नेतृत्वकर्त्ता, मित्र मरुतो ! आपने जो प्रशंसित स्तोत्र मेरे (इन्द्र के) निमित्त रचित किये हैं, उनसे मुझे अभूतपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई है । ये स्तोत्र, वैभवशाली शक्तिसम्पन्न उत्तम याज्ञिक तथा शक्ति सम्पन्न मेरी सामर्थ्य को और भी पुष्ट करने वाले हैं ॥११ ॥

१७७९. एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।

सञ्चक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२ ॥

हे मरुतो ! इसी प्रकार मुझे (इन्द्र को) स्नेह प्रदान करते हुए, प्रशंसनीय धन-धान्य को धारण करते हुए, आनन्द प्रदायक स्वरूप से युक्त होकर चतुर्दिक् मेरा यशोगान करें ॥१२ ॥

१७८०. को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।

मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३ ॥

हे मरुद्‌गणो ! यहाँ कौन आपकी पूजा- अर्चना करते हैं, यह भलीप्रकार जानकर मित्र के समान जो आपके हितैषी हैं, उनके समीप जायें ।उनके द्वारा किये जाने वाले उद्देश्यपूर्ण स्तोत्रों के अभिप्राय को जानकर उसे पूरा करें ॥१३

१७८१. आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।

ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४ ॥

हे मरुतो ! सम्माननीय स्तोता की मति हमें प्राप्त हो, जिससे हम स्तोत्रों के द्वारा आपकी (भली- भाँति) स्तुति कर सकें । चूंकि स्तोता आपकी स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करते हैं, अत: आप उन ज्ञान-सम्पन्नों की ओर उन्मुख हों ॥१४॥

१७८२. एष व: स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारो: ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५ ॥

हे मरुतो ! यह वाणी (यह स्तोत्र) आपके लिए है, अत: आप आनन्ददायी, सम्माननीय स्तोता को परिपुष्ट करने के निमित्त पधारें । हम भी अन्न, बल तथा यशस्वी धन प्राप्त करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १६६]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता**- मरुद्‌गण । **छन्द**- जगती; १४-१५ त्रिष्टुप् ।]

१७८३. तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१ ॥

वर्षणशील मेघों को विभाजित करने वाले हे वीर मरुद्‌गणो ! हम आपके पुरातन महत्व का यशोगान करते हैं, हे गर्जनशील मरुतो ! योद्धाओं तथा धधकती हुई अग्नि के समान चढ़ाई करते हुए शत्रुओं का संहार करें ॥१ ॥

१७८४. नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वय: ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥२ ॥

युद्ध में शत्रुओं का संहार करने वाले, बालकों के समान मधुर क्रीड़ा करनेवाले रुद्र पुत्र-मरुद्‌गण, स्तोताओं की उसी तरह रक्षा करते हैं, जैसे पिता पुत्र की ।ये मरुद्‌गण हविदाता (याजक) को कष्ट नहीं होने देते ॥२ ॥

१७८५. यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुव: ॥३ ॥

अविनाशी वीर मरुतों ने अपनी संरक्षण शक्ति से युक्त होकर, जिस हविदाता को धनसम्पदा से परिपुष्ट किया, उसके लिए कल्याणकारी मित्रों के समान सुखदायक होकर उपजाऊ भूमि को प्रचुर जल से सींचते हैं ॥३ ॥

१७८६. आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवास: स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो याम: प्रयतास्वृष्टिषु ॥४ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप गतिशील वीर अपनी शक्तियों से सभी का संरक्षण करते हैं । अपने ही अनुशासन में रहने वाले आप जब तीव्र गति से दौड़ते हुए अपने शस्त्रों को चलाते हैं, तब सारे लोक, बड़े-बड़े राजभवन काँप उठते हैं । आपकी ये हलचलें वास्तव में आश्चर्यजनक हैं ॥४ ॥

१७८७. यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवु: ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधि: ॥५ ॥

हे मरुद्‌गणो ! तीव्रगति से हमला करने वाले जब आप पहाड़ों को अपनी शब्द ध्वनि से गुञ्जित करते हैं, तथा जनकल्याण के इच्छुक आप अन्तरिक्ष के पृष्ठ भाग से गुजरते हैं, तो उस समय आपकी इस चढ़ाई से सभी वृक्ष भयभीत हो जाते हैं और समस्त ओषधियाँ भी रथ पर आरूढ़ महिलाओं के समान विचलित हो जाती हैं ॥५ ॥

१७८८. यूयं न उग्रा मरुत: सुचेतुनारिष्टग्रामा: सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्व: सुधितेव बर्हणा ॥६ ॥

हे मरुतो ! अपने सबल हाथों से तीक्ष्ण हथियारों को धारण किये हुए आप शत्रुसेना का संहार कर देते हैं, तथा शत्रुओं के हिंसक पशुओं का भी वध कर देते हैं । उस समय हे पराक्रमी वीरो ! आप अपनी श्रेष्ठ आन्तरिक भावनाओं से हमें श्रेष्ठ विचार-प्रेरणाएँ प्रदान करें तथा हमारे ग्रामों को न उजाड़ें ॥६ ॥

१७८९. प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७ ॥

शत्रुओं के संहारक, आश्रयदाता, उत्तम प्रशंसनीय, वीर मरुद्‌गणों के ऐश्वर्य को कोई नहीं छीन सकता है । ये वीर मरुद्‌गण सोमरस का पान करने के लिए संग्रामों और यज्ञों में तेजस्वी देवताओं की पूजा करते हैं; क्योंकि उनमें वीरों की शक्तियों की यथोचित परख करने की क्षमता होती है ॥७ ॥

१७९०. शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८ ॥

हे पराक्रमी, बलिष्ठ और सामर्थ्यवान् वीर मरुतो ! आप जिन्हें विनाश, पापकृत्यों तथा परनिन्दा से बचाते हैं, उन्हें सैकड़ों उपभोग के साधन प्रदान करके, अपना समर्थ संरक्षण देकर, अभेद्य नगरी में निवास योग्य बनाते हैं; ताकि वे अपनी सन्तानों का भली प्रकार से पालन-पोषण कर सकें ॥८ ॥

१७९१. विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥९ ॥

हे वीर मरुद्‌गणो ! आपके रथों में सभी कल्याणकारी वस्तुएँ स्थापित हैं । आपके कन्धों पर स्पर्धा योग्य शक्तिशाली आयुध हैं । लम्बे मार्गों के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री संगृहीत है । आपके रथ और चक्र समयानुकूल घूमते हैं ॥९ ॥

१७९२. भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥१० ॥

जनहितकारी इन वीर मरुतों की भुजाओं में यथेष्ट कल्याणकारी सामर्थ्य है । उनके वक्षस्थल एवं कन्धों पर विभिन्न वर्णों से युक्त सुदृढ़ रत्नाभूषण सुशोभित हैं । उनके वज्र तीक्ष्ण धार वाले हैं । पक्षियों के पङ्ख धारण करने के समान ये वीर विविध विभूतियाँ धारण करते हैं ॥१० ॥

१७९३. महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥११ ॥

जो वीर मरुद्‌गण अपनी महत्ता से सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यसम्पन्न, आकाश के नक्षत्रों की भाँति देदीप्यमान, दूरदर्शी, उत्साही सुन्दर वाणी से मधुर गान करने वाले हैं, वे इन्द्रदेव के सहयोगी हैं । अतः हर प्रकार से प्रशंसनीय हैं ॥११ ॥

१७९४. तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२ ॥

हे उत्तम कुल में उत्पन्न वीर मरुद्‌गण ! आपकी उदारता अदिति (भूमि) के समान ही महान् है । यह आपकी महानता वास्तव में प्रसिद्ध है । जिस पुण्यात्मा (सत्कर्मरत) मनुष्य को आप अपनी त्याग भावना से अनुदान प्रदान करते हैं, इन्द्रदेव भी उसे क्षीण नहीं करते ॥१२ ॥

१७९५. तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३ ॥

हे अमरवीर मरुतो !आपके भ्रातृपन की ख्याति चतुर्दिक् व्याप्त है । प्राचीन काल में जिन स्तोत्रों को सुनकर आप भलीप्रकार हमारा संरक्षण कर चुके हैं, उन्हीं स्तोत्रों के प्रभाव से पराक्रमी नेतृत्व प्रदान करने वाले आप, मनुष्य मात्र के कर्मों के अनुरूप उनके ऐश्वर्य की रक्षा करते हुए उनके दोषादि दूर हटाते हैं ॥१३ ॥

१७९६. येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।

आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४ ॥

हे गतिशील वीर मरुद्गण ! आपके जिस महान् ऐश्वर्य के सहयोग से हम विशाल दायित्वों का निर्वाह करते हैं और जिससे समरक्षेत्र को चारों दिशाओं में विजयी होते हैं, उन सभी सामर्थ्यों को हम इन यज्ञीय कर्मों द्वारा प्राप्त करें ॥१४ ॥

१७९७. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५ ॥

हे शूरवीर मरुद्गण ! महान् कवि द्वारा रचित यह आनन्दप्रद काव्य रचना आपकी प्रशंसा के निमित्त है । ये स्तुतियाँ आपकी कामनाओं की पूर्ति एवं शरीर बल बढ़ाने के निमित्त प्राप्त हों । इसी तरह आप भी हमें अन्न, बल और विजयश्री शीघ्रतापूर्वक प्रदान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १६७]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता -१ इन्द्र, २-११ मरुद्गण । छन्द-त्रिष्टुप् ; (१० पुरस्ताज्ज्योति) ।]

१७९८. सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।

सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१ ॥

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण के निमित्त हैं । हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करनेवाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें ॥१ ॥

१७९९. आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।

अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥२ ॥

ये अति कुशल वीर मरुद्गण अपने पुरुषार्थी संरक्षण सामर्थ्यों तथा महान् ऐश्वर्य के साथ हमारे समीप पधारें । इनके 'नियुत' नामक श्रेष्ठ अश्व समुद्र पार से (अति दूर से) भी धन ले आते हैं ॥२ ॥

१८००. मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥३ ॥

मेघ मण्डल में स्थित विद्युत् के समान ही जिन वीर मरुद्गणों के मजबूत हाथों में स्वर्णवत् चमकने वाली तलवार (मर्यादा में रहने वाली पत्नी के समान) परदे (म्यान) में छिपी रहती है । वह विद्वानों की वाणी के समान किन्हीं विशेष परिस्थितियों में बाहर आकर अपना स्वरूप दर्शाती है ॥३ ॥

१८०१. परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।

न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४ ॥

गतिमान् एवं तेजस्वी मरुद्गण भूमि पर दूर-दूर तक जल की वृष्टि करते हैं ।(विशिष्ट होते हुए भी) साधारण व्यक्तियों की तरह मरुद्गण द्युलोक एवं भूलोक में विद्यमान किसी की भी उपेक्षा नहीं करते, सभी से मित्रता बनाए रखते हैं । इसी कारण ये (मरुद्गण) महान् हैं ॥४ ॥

१८०२. जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।

आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥५ ॥

मनुष्यों के मन को हरने वाली, जीवन प्रदायिनी विद्युत् ने मरुद्‌गणों का वरण किया । विविध किरणों को समेटती हुई सूर्य की भाँति तेजस्वी वह विद्युत् इन (मरुद्‌गणों) के साथ रथ पर आरूढ़ होती है ॥५ ॥

१८०३. आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।

अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्‌गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६ ॥

हे वीर मरुद्‌गण ! जब हविष्यात्र युक्त, सोमरस लेकर सम्मान प्राप्त साधक यज्ञों में स्तोत्रों का गायन करते हुए आप सभी की पूजा करते हैं, तब याजक की बलशाली नव यौवना पत्नी को आप शुभ यज्ञ (सन्मार्ग) में ले आते हैं ॥६ ॥

१८०४. प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।

सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७ ॥

इन वीर मरुद्‌गणों की स्तुत्य महिमा का हम यथावत् वर्णन करते हैं । इनकी महिमा के अनुरूप सुस्थिर भूमि भी इनकी अनुगामिनी बनकर, इन सामर्थ्यवानों से प्रेम करती हुई, स्वाभिमान की रक्षा करती हुई सौभाग्यशाली प्रजा का पोषण करती है ॥७ ॥

१८०५. पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।

उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥८ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा, निंदनीय दोष विकारों एवं निंदनीय पदार्थों के उपयोग से आपको बचाते हैं । हे मरुतो ! आप अडिग अपराजेयों को भी पदों से च्युत कर देते हैं । आपका दिया अनुदान निरन्तर बढ़ता रहता है ॥८ ॥

१८०६. नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।

ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥९ ॥

हे वीर मरुतो ! आपकी सामर्थ्य अनन्त है, जिसका ज्ञान दूर या नजदीक से किसी भी प्रकार कर पाना असम्भव है । आपकी शक्ति, शत्रु सेना को जल के समान घेरकर विनष्ट कर डालती है ॥९ ॥

१८०७. वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।

वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥१० ॥

आज हम इन्द्रदेव के विशेष कृपापात्र बने हैं, उसी प्रकार कल (भविष्य में) भी उनके कृपापात्र बने रहें । हम इन्द्रदेव की प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं, जिससे हम सदैव विजयश्री का वरण करते हुए महानता को प्राप्त हों । इन्द्रदेव की कृपा हम सभी के लिए अनुकूल हो ॥१० ॥

१८०८. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११ ॥

हे मरुद्‌गण ! ये स्तोत्र आपके निमित उच्चारित किये जा रहे हैं । अतएव आनन्दप्रद तथा सम्माननीय आप स्तोता के शारीरिक पोषण के निमित्त आएँ और हमें भी अन्न, बल और विजयश्री दिलाने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - १६८]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - मरुद्गण । छन्द-जगती; ८-१० त्रिष्टुप् ।]

१८०९. यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियन्धियं वो देवया उ दधिध्वे ।

आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१ ॥

हे मरुद्गण ! प्रत्येक यज्ञीय कर्म में आपके मन की अनुकूलता ही कार्य को तत्परता से सम्पन्न करा लेती है । आपका चिन्तन देवत्व की ओर ही उन्मुख होता है । हम आकाश और पृथ्वी की सुस्थिरता तथा संरक्षण की कामना से श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा आपको यहाँ आवाहित करते हैं ॥१ ॥

१८१०. वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।

सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२ ॥

हे मरुद्गण ! आप अपनी सामर्थ्य से अत्यधिक पौष्टिक अन्न की प्राप्ति के लिए स्वयं प्रकट हुए हैं । आप जल की लहरों के समान हजारों लोगों द्वारा प्रशंसित हैं । आप पूज्य गौ आदि (पशुधन) के समान सदैव हमारे समीप रहें ॥२ ॥

१८११. सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।

ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३ ॥

सोमरस पान करने से जिस प्रकार तृप्ति होती है, उसी प्रकार इन मरुद्गणों के कंधों पर सुशोभित आयुधों का आश्रय प्राप्त कर सेना प्रसन्न एवं निर्भय होती है ।इन मरुद्गणों के हाथों में अलंकृत तलवारें भी सुशोभित हैं ॥३ ॥

१८१२. अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।

अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥४ ॥

अपनी ही इच्छा से कर्मरत ये मरुद्गण दिव्यलोक से अनायास ही अन्तरिक्ष में आये हैं । हे अविनाशी मरुतो ! आप अपनी शक्तियों से प्रेरणा प्रदान करें । प्रखर एवं तेजस्वी शक्तियों से हथियारों को धारण करने वाले ये वीर मरुद्गण प्रबलतम शत्रुओं को भी परास्त कर देते हैं ॥४ ॥

१८१३. को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ॥५ ॥

हे आयुधों से सुशोभित वीर मरुतो ! आप अन्न वृद्धि के लिए विशेष प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं । धनुष से छोड़े गये बाण के समान, प्रशिक्षित अश्वों के समान तथा जीभ के साथ स्वतः चलायमान हनु (ठुड्डी) की तरह कौन आपको गतिशील करता है ? ॥५ ॥

१८१४. क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।

यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥६ ॥

हे वीर मरुद्गण ! आप जिस महान् तथा असीम अन्तरिक्ष से आते हैं, उसका आदि-अन्त कौन सा है ? जब आप सघन बादलों को हिलाते हैं, उस समय वज्र प्रहार से आश्रयहीन होने के समान वे तेजस्वी बादल जल वृष्टि करने लगते हैं ॥६ ॥

१८१५. सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।

भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥७ ॥

हे वीर मरुद्‌गण ! आपके अनुदानों की तरह ही आपकी सम्पदा भी है । वह सामर्थ्यवान्, सुखप्रद, तेजसम्पन्न, विशिष्ट फलदायक, शत्रुदल संहारक तथा कल्याणकारी है । आपकी कृपा दक्षिणा के समान ही विजय प्रदान करने वाली और दैवी शक्ति के समान शत्रु को परास्त करने वाली है ॥७ ॥

१८१६. प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥८ ॥

जब इन वीर मरुद्‌गणों के रथ के पहियों से मेघों के गर्जन के समान प्रतिध्वनि सुनाई देती है, तब नदियों के जल प्रवाह में भारी खलबली मच जाती है । वीर मरुद्‌गण जब जल वृष्टि करते हैं, तब पृथ्वी पर विद्युत् तरंगें मानो हास्य कर रही प्रतीत होती है ॥८ ॥

१८१७. असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥९ ॥

मातृभूमि की प्रेरणा से महासंग्राम के लिए गतिशील वीर मरुतों की प्रखर तेजस्वी सेना अस्तित्व में आयी । संगठित होकर शत्रुओं पर प्रहार करने वाले इन वीरों ने संग्राम में प्रखर तेजस्विता का परिचय दिया । उसके बाद सभी ने अन्न उत्पादक एवं धारक क्षमताओं को भी चारों ओर फैले हुए अनुभव किया ॥९ ॥

१८१८. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१० ॥

हे वीर मरुतो ! सम्माननीय कवियों द्वारा आपको प्रसन्न करने के लिए उनके द्वारा की गई काव्य रचना आपके निमित्त समर्पित है । ये स्तुतियाँ आपको परिपुष्ट बनाएं । हमें भी अन्न, बल तथा विजय प्राप्त कराएँ ॥१० ॥

[सूक्त - १६९]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्; २ चतुष्पदाविराट् ।]

१८१९. महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् देवताओं के एवं त्याग की प्रतिमूर्ति मरुद्‌गणों के भी संरक्षक हैं । हे ज्ञान सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमसे परिचित हैं, अतः मरुद्‌गणों और अपनी प्रिय सामग्री हमें प्रदान करें ॥१ ॥

१८२०. अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन मरुद्‌गणों की सेना युद्ध के प्रारम्भ होने पर विशेष हर्षित होती हुई, सुख की अनुभूति करती है । शत्रुओं को दूर भगाने वाले वे सम्पूर्ण मनुष्यों के ज्ञाता मरुद्‌गण, सर्वोत्तम आपका ही सहयोग करते हैं ॥२ ॥

१८२१. अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा सृजित (वज्र) हमें उपलब्ध हो । ये मरुद्‌गण सदैव जल वृष्टि करते हैं ।जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को और जल द्वीप को धारण करता है । उसी प्रकार मरुद्‌गण अन्न (पोषण) प्रदान करते हैं ॥३ ॥

१८२२. त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! मधुर दूध से जिस प्रकार स्तन परिपुष्ट होते हैं, वैसे ही हमारी स्तोत्र वाणियों से प्रसन्न होकर आप अभीष्ट अन्नादि से हमें परिपुष्ट करें । दक्षिणा में प्राप्त धन की तरह ही हमें धन सम्पदाओं से सम्पन्न बनाएँ ॥४ ॥

१८२३. त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।

ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके पास ऐसी धन सम्पदा है, जो यजमानों को संतुष्ट करके उन्हें यज्ञीय सत्कर्मों की ओर प्रेरित करती है । हे इन्द्रदेव ! जो मरुद्‌गण प्राचीन काल से ही यज्ञीय सत्कर्मों के पूर्वाभ्यासी हैं, वे हमें सुख-सौभाग्य प्रदान करें ॥५ ॥

१८२४. प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।

अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप व्यापक स्तर पर जल वृष्टि के लिए अग्रणी मरुद्‌गणों के समीप जाएँ और उनके साथ मिलकर भूमण्डल में पराक्रम का परिचय दें । युद्ध में पराक्रम करने के समान मरुत् के अश्व (मेघों पर) आक्रमण करते हैं ॥६ ॥

१८२५. प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।

ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥७ ॥

जिस प्रकार ऋणी मनुष्य को अपराधी मानकर दण्डित किया जाता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव के सहयोगी मरुद्‌गण भी युद्धाकांक्षी असुरों को शस्त्रों के प्रहार से जकड़कर, जमीन पर पटक देते हैं; तब भयंकर, शीघ्र गमनशील, आक्रमणकारी और शत्रुओं को घेरने वाले इन मरुतों का शब्दनाद सुनाई देता है ॥७ ॥

१८२६. त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।

स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मरुतों के सहयोग से अपनी विश्व-उत्पादक सामर्थ्य से, अपनी प्रतिष्ठा के लिए गौओं को आगे रखकर (अपने बचाव के लिए) युद्ध लड़ रही शोषण कारी शत्रु सेना का संहार करें । हे इन्द्रदेव ! आपकी प्रार्थना स्तुत्य देवताओं के साथ ही की जाती है । हम आपके सहयोग से अन्न, बल और विजयश्री प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - १७०]

[**ऋषि** - १,३ इन्द्र; ४इन्द्र अथवा अगस्त्य; २,५ अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - १बृहती; २-४ अनुष्टुप्; ५त्रिष्टुप् ।]

१८२७. न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥१ ॥

(इन्द्र का कथन) जो आज नहीं, वो कल भी नहीं (प्राप्त होगा) । जो हुआ ही नहीं है, उसे कैसे जाना जा सकता है ? दूसरे का चित्त चलायमान है, अतः वह संकल्प करेगा, तो भी बदल सकता है ॥१ ॥

१८२८. किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२ ॥

(अगस्त्य का कथन) हे इन्द्रदेव ! मुझ निरपराधी का वध आप क्यों करना चाहते हैं ? मरुद्‌गण आपके भाई हैं । आप उनके साथ यज्ञ के श्रेष्ठ भाग को प्राप्त करें । हे इन्द्रदेव ! हमें युद्ध क्षेत्र में हिंसित न करें ॥२ ॥

१८२९. किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।

विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥३ ॥

हे भ्रातृस्वरूप अगस्त्य ! आप हमारे मित्र होकर हमारा अपमान क्यों करते हैं ? आपका मन जिस (लोभ) भावना से ग्रस्त है, उसे हम भली प्रकार जानते हैं । आप हमारा भाग हमें नहीं देना चाहते हैं ॥३ ॥

१८३०. अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः । तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥४ ॥

याज्ञिक जन, यज्ञ वेदिका को भली प्रकार सुसज्जित करें । उसमें सबसे पहले अग्नि को प्रज्वलित करें । वहाँ पर हम आपके निमित्त अमरत्व को जाग्रत् करने वाली यज्ञीय भावनाओं को विस्तारित करें ॥४ ॥

१८३१. त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥५ ॥

हे धनाधिपति इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण धनों को अपने स्वामित्व में रखते हैं । हे मित्र रक्षक ! आप मित्रों के विशेष धारण करने योग्य आश्रय हैं । हे इन्द्रदेव ! आप मरुद्गणों के साथ सद्व्यवहार करें और उनके साथ ऋतुओं के अनुसार हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों का सेवन करें ॥५ ॥

[सूक्त - १७१]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता- मरुद्गण, ३-६ मरुत्वानिन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१८३२. प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।

रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥१ ॥

हे मरुद्गण ! हम स्तुति गान करते हुए विनयावनत हो आपके समीप आते हैं । तीव्र गति से जाने वाले आप वीरों के श्रेष्ठ परामर्शों की हम याचना करते हैं । इन ज्ञानवर्धक स्तुतियों से हर्षित होकर किसी भी प्रकार के विद्वेष को भुला दें तथा रथ से घोड़ों को मुक्त कर दें (यहीं हमारे समीप रहें) ॥१ ॥

१८३३. एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।

उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥२ ॥

हे वीर मरुतो ! इस विनम्रभाव तथा एकाग्र मन से रचित स्तोत्रों को आप ध्यानपूर्वक सुनें । हे दिव्य वीरो ! हृदय से हमारे स्तोत्र से प्रशंसित होकर आप हमारे समीप आयें । आप ही इस (हव्य) को बढ़ाने वाले हैं ॥२ ॥

१८३४. स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।

ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३ ॥

स्तुतियों से प्रशंसित होकर मरुद्गण हमारे लिए सुख-सौभाग्य प्रदान करें, उसी प्रकार सबके सुखप्रदायक, वैभवशाली इन्द्रदेव भी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें सुखी करें हे मरुद्गण ! हमारा शेष जीवन प्रशंसनीय, सुन्दर तथा योग्य बने ॥३ ॥

१८३५. अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।

युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥४ ॥

हे मरुतो ! इन शक्तिशाली इन्द्रदेव के भय से हम घबराते और काँपते हैं । (भय के कारण) आपके निमित्त तैयार की गयी आहुतियाँ एक तरफ कर दी गयीं । अतः (आप हमारे ऊपर नाराज न हों, अपितु) हमें सुखी बनायें ॥४ ॥

१८३६. येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी जिस सामर्थ्य से प्रेरित होकर किरणें नित्य उषाओं के प्रकाशित होने पर सर्वत्र आलोक फैलाती हैं । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! पराक्रमियों में सर्वश्रेष्ठ, शूरवीर तथा बलप्रद आप मरुतों के सहयोग से हमें अन्न प्रदान करें ॥५ ॥

१८३७. त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने वाले नेतृत्वकर्ताओं का संरक्षण करें और मरुतों के साथ रहने वाले आप क्रोध से रहित हों । श्रेष्ठ तेजस्विता से सम्पन्न तथा शत्रुविनाशक सामर्थ्य को आप धारण करते हैं । हम भी अन्न, बल और दाता की वृत्ति को स्वाभाविक रूप से धारण करें ॥६ ॥

[सूक्त - १७२]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता- मरुद्गण । छन्द- गायत्री ।]

१८३८. चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर, अक्षय तेजसम्पन्न मरुतो !आपकी गति आश्चर्यजनक है, संरक्षण सामर्थ्य भी विलक्षण है ॥१ ॥

१८३९. आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥२ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर मरुद्गण ! आपके तीव्र गति से, शत्रु समूह पर फेंके गये शस्त्र हमसे दूर रहें । जिस वज्र से आप शत्रुओं पर प्रहार करें, वह भी हमसे दूर ही रहे ॥२ ॥

१८४०. तृणस्कन्दस्य नु विशः परिवृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥३ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर मरुद्गण ! तिनके के समान सुगमता से नष्ट होने वाले इन प्रजाजनों को आप पतन के मार्ग से रोकें । हम प्रजाजनों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाकर दीर्घायु प्रदान करें ॥३ ॥

[सूक्त - १७३]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्, ४ विराट् स्थाना अथवा विषमपदा ।]

१८४१. गायत्साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥१ ॥

कामनाओं की पूर्ति करनेवाली गौएँ (वाणी) यज्ञ में विराजमान् इन्द्रदेव की सेवा करती हैं । आप अपने ज्ञान के अनुसार शत्रु-हिंसक साम का गायन करें । हम भी इसी प्रकार इन्द्रदेव के लिए सुखदायी तथा उन्नतिकारी साम का गान करते हैं ॥१ ॥

१८४२. अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥२ ॥

जिस समय हवि सेवन के इच्छुक इन्द्रदेव, सिंह के समान, अपने भक्ष्य (आहुतियों) की कामना करते हैं, उसी समय तेजस्वी ऋत्विज् सामर्थ्यवर्धक अपना हविष्यान्न इन्द्रदेव को समर्पित करते हैं । हे पुरुषार्थी इन्द्रदेव ! हविदाता, यज्ञकर्ता तथा होता, स्तोताओं के साथ मिलकर मन्त्रोच्चारपूर्वक आपके निमित्त हव्य प्रदान करते हैं ॥२ ॥

१८४३. नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।

क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥३ ॥

होता इन्द्रदेव गतिशील होकर सर्वत्र संव्याप्त होते हैं और शरद ऋतु से पूर्व (वर्षा ऋतु में) पृथ्वी के भीतरी भाग को जल से भर देते हैं । इन्द्रदेव को आते देखकर अश्व शब्द करते हैं, गौएं भी रँभाती हैं । द्युलोक तथा भूलोक के बीच इन्द्रदेव दूत के समान घूमते हैं ॥३ ॥

१८४४. ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।

जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥४ ॥

देवों के उपासक ऋत्विजों द्वारा जो शत्रु-संहारक हवि इन्द्रदेव के लिए अर्पित की जाती है, वही भली प्रकार से तैयार की गई हवि हम आपके निमित्त अर्पित करते हैं । दर्शनीय तेजस्विता युक्त और श्रेष्ठ गतिशील, रथ पर आरूढ़ वे इन्द्रदेव अश्विनीकुमारों के समान हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को स्वीकार करें ॥४ ॥

१८४५. तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।

प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! जो इन्द्रदेव शत्रुसंहारक, शूरवीर, ऐश्वर्य सम्पन्न, उत्तम सारथि, असंख्य विरोधियों से निर्भीकता पूर्वक युद्ध करने वाले, प्रचुर सामर्थ्य युक्त और छाये हुए अज्ञान रूपी अन्धकार के नाशक हैं, ऐसे गुणों से सम्पन्न इन्द्रदेव की ही आप अर्चना करें ॥५ ॥

१८४६. प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।

सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥६ ॥

इन्द्रदेव अपनी महिमा से मनुष्यों के प्रभु हैं, उनके लिये कक्ष के ही समान आकाश और पृथ्वी, दोनों लोक पर्याप्त नहीं ।वे इन्द्रदेव बालों के समान पृथ्वी को तथा बैल के सींग के समान द्युलोक को धारण किये हुए हैं ॥६ ॥

१८४७. समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।

सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥७ ॥

जो उत्साही वीरगण आनन्दित स्थिति में अन्नों के द्वारा ज्ञान सम्पन्न इन्द्रदेव को मरुतों के साथ प्रसन्न करते हैं, हे वीर इन्द्रदेव !वे सर्वोत्तम, श्रेष्ठ, मार्गदर्शक मानकर आपको ही युद्ध भूमि में भी अग्रणी स्थान प्रदान करते हैं॥७

१८४८. एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।

विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥८ ॥

जब जलों को समुद्र तथा समस्त भूक्षेत्रों में बरसाने के लिए इन्द्रदेव की स्तुति की जाती है, तब जल वृष्टि की कामना से किये जा रहे यज्ञ आनन्दप्रद होते हैं । जब ज्ञानी मनुष्य भावनापूर्वक इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं, तब हर्षित इन्द्रदेव उन्हें अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१८४९. असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।

असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥९ ॥

हे स्वामी इन्द्रदेव ! आप हमारे साथ वही व्यवहार करें, जिससे हमारी मित्रता आपके साथ रहे और हमारी स्तोत्र वाणियाँ आप से अभीष्ट साधनों की पूर्ति भी करा सकें । आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनकर शीघ्र ही हमें कर्तव्यों का निर्वाह करने की शक्ति प्रदान करें ॥९ ॥

१८५०. **विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।**

मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥१० ॥

याज्ञिकों के समान ही स्तोता लोग भी प्रशंसक वाणियों के द्वारा प्रतिस्पर्धा भावना से इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं, ताकि वज्रधारी इन्द्रदेव की मित्रता हमें प्राप्त हो । जैसे मध्यस्थ लोग शिष्टाचारवश मित्रता की कामना से कुछ (उपहार) देते हैं, वैसे ही राष्ट्र रक्षक इन्द्रदेव को यज्ञों के द्वारा दान स्वरूप हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥१० ॥

१८५१. **यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।**

तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११ ॥

प्रत्येक यज्ञीय कर्म इन्द्रदेव को संवर्द्धित करते हैं, दुर्भावजन्य कुटिलता से किये गये यज्ञ से इन्द्रदेव प्रसन्न नहीं होते हैं । जिस प्रकार तीर्थ यात्रा में प्यासे को समीप का जल ही तुष्टि देता है,(दूर दिखने वाला जल तृप्त नहीं करता) उसी प्रकार श्रेष्ठ यज्ञ ही इन्द्रदेव को प्रसन्नता प्रदान करता है । जैसे लम्बा पथ पीड़ा पहुँचाता है, वैसे ही कुटिलतापूर्ण यज्ञ कुटिल फल प्रदान करता है ॥११ ॥

१८५२. **मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।**

महश्चिद्यस्य मीळ् हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप (मरुतों के साथ युद्ध में) हमारा भी साथ मत छोड़ना । हे बलशाली ! आपके लिए यज्ञ भाग प्रस्तुत है । हमारी सुख देने वाली, फलित होनेवाली स्तुतियाँ अन्न और जल देने वाले मरुतों की भी वन्दना करती हैं ॥१२ ॥

१८५३. **एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।**

आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३ ॥

हे अश्वों से सम्पन्न देवस्वरूप इन्द्रदेव ! हमारी ये स्तुतियाँ आपके निमित्त हैं, इनसे हमारे यज्ञ के उद्देश्य को समझें । हमें कल्याणकारी धन सम्पदा प्रदान करें; जिससे हम अन्न, बल तथा विजयश्री प्रदान करने वाले सैनिकों को प्राप्त करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १७४]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१८५४. **त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।**

त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥१ ॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप संसार के अधिपति हैं । देवशक्तियों के सहयोग से आप मनुष्यों की रक्षा करें । आप सत्कर्मशील मनुष्यों के पालक हैं, आप हम वीरों को संरक्षित करें । आप ऐश्वर्यवान् हमारे तारणकर्ता हैं । आप ही श्रेष्ठ आश्रय दाता और बलदाता हैं ॥१ ॥

१८५५. **दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।**

ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस समय आपने शरदकालीन निवास योग्य शत्रुनगरों के सात भवनों को विनष्ट किया, उसी समय कटुभाषी शत्रुसैनिकों को भी विनष्ट कर दिया । हे अनिन्दनीय इन्द्रदेव ! आपने प्रवाहित होने वाले जलों के द्वारों को खोल दिया और युवा 'पुरुकुत्स' के लिए वृत्रासुर का संहार किया ॥२ ॥

१८५६. **अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।**

रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥३ ॥

आवाहन योग्य हे इन्द्रदेव !आप निश्चित ही जिन मरुद्‌गणों के साथ दिव्य लोक में जाते हैं, उनके सहयोग से वीरों को सुरक्षित करके शत्रुओं की अभेद्य दीवारों को तोड़ देते हैं । हे इन्द्रदेव ! हमारे घरों में जलों की पूर्ति के लिए सिंह के समान अपनी पराक्रमी सामर्थ्य से इस रोगनाशक तीव्र गतिशील अग्नि को संरक्षित करें ॥३ ॥

१८५७. शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।

सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको महिमा-मण्डित करने के लिए वज्र के प्रहार से युद्ध भूमि में ही असुर धराशायी होकर गिर पड़े । जिस समय आपने योद्धा शत्रुओं के पास जाकर उनके द्वारा अवरुद्ध जल प्रवाहों को प्रवाहित किया, उसी समय आप दोनों घोड़ों पर आरूढ़ हो गये । आपने अपनी घर्षक और शत्रुसंहारक सामर्थ्य से वीर सैनिकों को दोष मुक्त किया ॥४ ॥

१८५८. वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।

प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुत्स के जिस यज्ञ में हवि सेवन की कामना करते हैं, उसी ओर सुखदायी, सीधे मार्गों से, वायु की गति के समान शीघ्र गामी अपने अश्वों को प्रेरित करें । युद्ध में सूर्यदेव अपने चक्र को उनके समीप ले जायें और हाथों में वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव शत्रु सेनाओं की ओर उन्मुख हों । ॥५ ॥

१८५९. जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।

प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥६ ॥

हे अश्वों से युक्त इन्द्रदेव ! आपने अति उत्साह में मित्रों के शत्रुओं तथा यज्ञीय कर्मों से रहित दुष्टों का संहार किया । ऐसे आप को जो, अन्न- दान से संतुष्ट करते हैं, उन्हें आप सन्तान और वीरता प्रदान करते हैं ॥६ ॥

१८६०. रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।

करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋषियों ने स्तुतिगान के समय जब आपके निमित्त प्रशंसक वाणी का प्रयोग किया, तब आपने शत्रुओं का संहार करके उन्हें पृथ्वी रूपी शैय्या पर सुला दिया । ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने तीन भूमियों (पर्वतमय,सम तथा जलमय) को उत्तम अन्न, ऐश्वर्य एवं सुखदायी पदार्थों से सुशोभित किया । दुर्योणि के लिए युद्ध में आपने कुयवाच राक्षस का संहार किया ॥७ ॥

१८६१. सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।

भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव !आपकी शाश्वत स्तोत्रवाणियों का ऋषियों ने दुबारा गान किया है । आपने आसुरी शक्तियों को युद्ध रोकने के लिए दबाया है तथा शत्रुओं के दुर्गों को तोड़ने के समान ही असुरता की अभेद्य शक्ति को अपनी सामर्थ्य से छिन्न-भिन्न कर दिया है । हिंसक शत्रु के शस्त्रादि बल की तीक्ष्णता को भी आपने क्षीण कर दिया है ॥८ ॥

१८६२.त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को अपनी सामर्थ्य से भयभीत करने वाले हैं । प्रवाहित नदियों के समान ही जल के अथाह भण्डार को आपने खोल दिया । हे पराक्रमी वीर इन्द्रदेव ! जब आप समुद्र को जल से परिपूर्ण कर देते हैं, तभी आप तुर्वश और यदु को दक्षतापूर्वक पार उतारते हैं ॥९ ॥

१८६३. त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता।

स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सदैव हमारे निष्कपट प्रजा संरक्षक हैं । ऐसे आप हमारी सम्पूर्ण सैन्यशक्ति की प्रभाव क्षमता को संवर्धित करें, जिससे हम भी अन्न, बल और दीर्घायु के लाभ को प्राप्त कर सकें ॥१० ॥

[सूक्त - १७५]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द-१ स्कन्धोग्रीवी बृहती, २-५ अनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ।]

१८६४. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१ ॥

हे अश्वधारक इन्द्रदेव ! बड़े पात्र के समान आप महान् है । आनन्ददायक, हर्षवर्द्धक, बलवर्द्धक, शक्तिशाली असंख्यों दान देने वाले आप सोमरस का पान करते हुए आनन्द की अनुभूति करें ॥१ ॥

१८६५. आ नस्ते गन्तुमत्सरो वृषा मदो वरेण्यः । सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥२ ।

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए तैयार किया गया बलवर्द्धक, हर्षदायक, श्रेष्ठ, सामर्थ्ययुक्त, पीने योग्य अविनाशी, शत्रु विजेता, आनन्ददायी यह सोमरस आपको प्राप्त हो ॥२ ॥

१८६६ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् । सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३

हे इन्द्रदेव ! आप वीर और दानदाता हैं । मनुष्य के मनोरथों को भलीप्रकार प्रेरित करें । जैसे अग्निदेव अपनी ज्वाला से पात्र को तपाते हैं, वैसे ही आप सहायक बनकर दुष्टों और मर्यादाहीनों को नष्ट करें ॥३ ॥

१८६७. मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥४ ॥

हे मेधावी इन्द्रदेव ! आप सबके स्वामी हैं, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए आपने अपनी सामर्थ्य शक्ति के द्वारा सूर्यदेव से चक्र (शक्ति) प्राप्त किया । आप 'शुष्ण' के संहार के लिए, वायु के समान वेगशील अश्वों द्वारा अपने प्रहारक वज्र को कुत्स के समीप पहुँचायें ॥४ ॥

१८६८. शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।

वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी प्रसन्नता सबको शक्ति देने वाली है तथा आपके श्रेष्ठ कर्म प्रचुर अन्न प्रदान करने वाले हैं । अश्वों के दान में प्रख्यात आप हमें वृत्रवध करने वाले तथा ऐश्वर्य सम्पदा देने वाले शस्त्रों को प्रदान करें ॥५ ॥

१८६९. यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्राचीन स्तोताओं के लिए आप, प्यासे के लिए जल और दुःखी के लिए सुख मिलने के समान ही आनन्ददाता और प्रिय सिद्ध हुए हैं । आपकी सनातन स्तुतियों से हम आपको आमन्त्रित करते हैं, जिससे हम अन्न, बल और दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - १७६]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप्, ६-त्रिष्टुप् ।]

१८७०. मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य सम्पदा की प्राप्ति के लिये आप हमें आनन्दित करें । हे बलदायक सोम ! आप इन्द्रदेव के शरीर में प्रविष्ट हों । शत्रुओं का संहार करते हुए आप देवशक्तियों के अन्दर भी संव्याप्त हो तथा विकार रूपी शत्रुओं को समीप न आने दें ॥१ ॥

१८७१. तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।

अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥२ ॥

जो इन्द्रदेव सम्पूर्ण प्रजाजनों के एकमात्र अधीश्वर हैं, जिन इन्द्रदेव के प्रति आप हविष्यान्न समर्पित करते हैं, जो शक्तिशाली इन्द्रदेव किसान द्वारा जौ की फसल को काटने के समान ही शत्रुओं का संहार करते हैं । आप सभी उन्हीं इन्द्रदेव की स्तुतियों द्वारा अर्चना करें ॥२ ॥

१८७२. यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।

स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके हाथों में पाँचों प्रकार की प्रजाओं की वैभव सम्पदा है । ऐसे आप हमारे विद्रोहियों को परास्त करें और आकाश से गिरने वाली तड़ित विद्युत् के समान ही उनको विनष्ट करें ॥३ ॥

१८७३. असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।

अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो आपके लिए सोमाभिषवण नहीं करते, जो यज्ञकर्मों से विहीन दुष्कर्मी बड़ी कठिनाई से नियन्त्रण में आने वाले हैं, ऐसे दुष्टों का आप संहार करें । उनकी धनसम्पदा को हमें प्रदान करें ॥४ ॥

१८७४. आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।

आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥५ ॥

स्तोत्रों के उच्चारण के समय सदैव उपस्थित रहकर आपने जिन दो प्रकार के (स्तोत्र-ज्ञानयज्ञ, आहुतिपरक-हविर्यज्ञ) यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले यजमानों की रक्षा की है । हे सोम ! उसी प्रकार आप युद्ध के समय इन्द्रदेव की तथा ऐश्वर्यप्राप्ति के समय यजमानों की रक्षा करें ॥५ ॥

१८७५. यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन स्तोताओं के लिए प्यासे को जल और दुःख पीड़ितों के सुख प्राप्ति की भाँति ही आनन्ददायक और प्रीतियुक्त हुए । आपकी उन्हीं प्राचीन स्तुतियों द्वारा हम आपको आमन्त्रित करते हैं । आप की कृपा से हम अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - १७७]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - इन्द्र । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१८७६. आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।

स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रजाजनों के पालक, शक्तिशाली मनुष्यों के अधिपति और बहुतों द्वारा आवाहनीय हैं । आप स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारे यज्ञ की कामना करते हुए, संरक्षण साधनों के साथ बलिष्ठ अश्वों को रथ से सयुक्त करके हमारे समीप आयें ॥१ ॥

१८७७. ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।

ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो आपके पास बलिष्ठ, सामर्थ्यवान् और संकेत मात्र से रथ में जुड़ जाने वाले घोड़े हैं, उनको रथ में जोतकर, रथ में बैठकर हमारी ओर आयें । हे इन्द्रदेव ! हम सोम अभिषवण के समय आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

१८७८. आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।

युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली रथ पर विराजमान हों । आपके निमित्त शक्तिप्रद सोमरस अभिषुत किया गया है, उसमें मधुर पदार्थों को मिश्रित किया गया है । हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप बलिष्ठ अश्वों को विशेष गतिवाले रथ से जोड़कर अपनी प्रजा के समीप जायें ॥३ ॥

१८७९. अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।

स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! देवताओं को प्राप्त होने वाला यह यज्ञ, दुधारू पशु, स्तोत्र और सोमरस आपके निमित्त हैं । आपके लिए यह आसन बिछा हुआ है । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप समीप आयें और यहाँ आसन पर बैठकर सोमपान करें । यहाँ पर अपने घोड़ों के बन्धनों को खोलें ॥४ ॥

१८८०. ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।

विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! भली-भाँति स्तुत्य आप, सम्माननीय स्तोता के स्तवनों को सुनकर हमारे समीप आयें । हम नित्यप्रति आपके संरक्षण से आपकी प्रशंसा करते हुए, धनसम्पदा हस्तगत करें और अन्न, बल तथा विजयश्री का दान प्राप्त करें ॥५ ॥

[सूक्त - १७८]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - इन्द्र । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१८८१. यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।

मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन धनों से आप स्तोताओं का संरक्षण करते हैं, वह हमें प्रदान करें । हमारी श्रेष्ठ अभिलाषाओं को न रोककर आप हमारे लिये उपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

१८८२. न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।

आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥२ ॥

हमारी अंगुलियों ने जिन यज्ञीय कार्यों को यज्ञस्थल में (सोमाभिषवण के रूप में) किया है, उन्हें तेजस्वी इन्द्रदेव नष्ट न करें । इस कार्य के सम्पादन के लिए शुद्ध जल की भी प्राप्ति हो । इन्द्रदेव हमारे लिए मैत्रीभाव और श्रेष्ठ पोषक अन्न प्रदान करें ॥२ ॥

१८८३. जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।

प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३ ॥

शूरवीर इन्द्रदेव युद्धों में सैन्य शक्ति के सहयोग से ऐश्वर्य विजेता, विपदाग्रस्त स्तोता की करुण पुकार को सुननेवाले, दानी यजमान के निकट रथ को रोकने वाले तथा जो साधक श्रद्धा भावना से प्रार्थना करनेवाले हैं, उनकी वाणी रूपी साधना को ऊर्ध्वगामी बनाने वाले हैं ॥३ ॥

१८८४. एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।

समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४ ॥

श्रेष्ठ यशस्वी इन्द्रदेव मनुष्यों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने वाले यजमान की हवियों को ही ग्रहण करते हैं । स्तोताओं की प्रार्थना को पूर्ण करने वाले और यजमान के शुभचिन्तक इन्द्रदेव, जहाँ परस्पर मिलकर अनेक स्तोत्रों से आवाहित किये जाते हैं, ऐसे युद्ध में अपने मित्रों का संरक्षण करते हैं ॥४ ॥

१८८५. त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।

त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हम आपके सहयोग से बड़े-बड़े अहंकारी-शत्रुओं को भी पराजित करें । आप ही हमारे संरक्षक और प्रगति के कारण बनें । जिससे हम अन्न, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकें ॥५ ॥

[सूक्त - १७९]

[**ऋषि**- १-२ लोपा मुद्रा; ३-४ अगस्त्य मैत्रावरुणि; ५-६ अगस्त्य शिष्य ब्रह्मचारी । **देवता** - रति ।
छन्द-त्रिष्टुप्; ५- बृहती]

इस सूक्त में सुसन्तति उत्पन्न करने की आवश्यकता एवं मर्यादाओं का उल्लेख किया गया है । ऋषि दम्पती लोपामुद्रा एवं अगस्त्य के बीच हुआ संवाद इसका आधार है । ऋषियों ने परिपक्व शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बन जाने पर ही दम्पतियों को आवश्यकता के अनुरूप संतान पैदा करने का निर्देश दिया है । पति-पत्नी की शारीरिक-मानसिक स्थिति का परीक्षण करने के बाद ही गर्भाधान संस्कार कराया जाता था । आवश्यकता के अनुसार परिपक्वता लाने के लिए विशेष तप भी कराये जाते थे । राजा दिलीप द्वारा सपत्नीक गुरु-आश्रम में रहकर तप करने पर रघु तथा भगवान् कृष्ण द्वारा बद्रिकाश्रम में तप करने पर उन्हें प्रद्युम्न जैसे पुत्र-प्राप्ति की कथाएँ सर्वविदित हैं । सन्तान उत्पादन के यज्ञीय अनुशासन का उल्लेख इस सूक्त में है--

१८८६. पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१ ॥

(देवी लोपामुद्रा कहती हैं) - हम विगत जीवन के अनेक वर्षों में उषा काल सहित दिन-रात श्रमनिष्ठ (तपरत) रहे हैं । वृद्धावस्था शरीरों की क्षमताओं को क्षीण कर देती है ।(इसलिए श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति की दृष्टि से) समर्थ पुरुष ही पत्नियों के समीप जायें । (यहां प्रकारांतर से व्यसन के रूप में पत्नियों के समीप जाने का निषेध है) ॥१ ॥

१८८७. ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।

ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥२ ॥

पूर्वकाल में जो सत्य की साधना (करने-कराने) में प्रवृत्त ऋषि स्तर के व्यक्ति हुए हैं, जो देवों के साथ (उनके समकक्ष) सत्य बोलते थे । उन्होंने भी (उपयुक्त समय पर) संतानोत्पादन का कार्य किया, अन्त तक ब्रह्मचर्य आश्रम में ही नहीं रहे ।(श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति की दृष्टि से) उन श्रेष्ठ-समर्थ पुरुषों को पत्नियाँ उपलब्ध करायी गयीं ॥२ ॥

[श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों से ही समाज को श्रेष्ठ संस्कार युक्त नयी पीढ़ी के नागरिक प्राप्त होते हैं । इसलिए श्रेष्ठ व्यक्तित्ववानों को ही संतान उत्पन्न करने की प्रेरणा देने की मर्यादा का उल्लेख किया गया है ।]

१८८८. न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।

जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३ ॥

(ऋषि अगस्त्य कहते हैं :-) हमारा (अब तक का) तप बेकार नहीं गया है ।देवता श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के कारण हमारी रक्षा करते हैं, (अत:) हमने विश्व की (जीवन में आने वाली) सारी स्पर्धाएँ जीत ली हैं । हम दम्पती यदि अब उचित ढंग से संतान उत्पन्न करें, तो इस जीवन में सौ (वर्षों तक) संग्राम (जीवन की चुनौतियों) में विजयी होंगे ॥३ ॥

१८८९. नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।

लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४ ॥

लोपामुद्रा नदी के प्रवाह को सब ओर से रोक लेने वाले संयम से उत्पन्न शक्ति को संतान प्राप्ति की कामना की ओर प्रेरित करती हैं । यह भाव इस (शारीरिक स्वभाव) अथवा उस (कर्तव्य बुद्धि) या किसी अन्य कारण से और अधिक बढ़ता है । श्वास का संयम रखने वाले समर्थ धीर पुरुष अधीरता को नियंत्रण में रखते हैं ॥४ ॥

१८९०. इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।

यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५ ॥

(इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद शिष्य के भाव हैं :-) सोम (ओषधि रस विशेष) के निकट जाकर भावनापूर्वक उसका पान करते हुए वह प्रार्थना करता है "मनुष्य अनेक प्रकार की कामनाओं वाला है ।"(उक्त संदर्भ में) यदि मेरे मन में कोई विकार आया हो, तो यह सोम अपने प्रभाव से उसे शुद्ध कर दे ॥५ ॥

१८९१. अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६ ॥

उग्र तपस्वी अगस्त्य ने खनित्र (शोध क्षमता) से खनन (नये-नये शोध कार्य) करते हुए, प्रजा (संतान) उत्पन्न करने वाले तथा (तप द्वारा) शक्ति अर्जित करनेवाले, दोनों वर्णों (प्रवृत्तियों) वाले मनुष्यों का पोषण किया (और इस प्रकार-) देवताओं के सच्चे आशीर्वाद को प्राप्त किया ॥६ ॥

[सूक्त - १८०]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१८९२. युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।

हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय आप दोनों का रथ समुद्र में अथवा अन्तरिक्ष में संचरित होता है, उस समय आपके रथ को चलाने वाले अश्वसंज्ञक गति साधन भी अन्तरिक्ष मार्ग में नियमानुसार गति करते हैं । आपके रथ के स्वर्णिम दीप्ति वाले पहिये भी मेघमण्डल के जल से भीगने लगते हैं; आप दोनों मधुर सोमरस का पान करके प्रभात वेला में ही इकट्ठे होकर जाते हैं ॥१ ॥

१८९३. युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।

स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥२ ॥

सर्वस्तुत्य तथा मधुर सोमपान कर्त्ता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों निरन्तर गतिशील, आकाश में संचरण करने वाले, मनुष्यों के कल्याणकारी, पूजनीय, सूर्यदेव के आगमन से पहले ही आते हैं, तब बहिन उषा आपका सहयोग करती हैं और यज्ञ में यजमान, बल तथा अन्न बढ़ाने के लिए आप दोनों की ही प्रशंसा करते हैं ॥२ ॥

१८९४. युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गो: ।

अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३ ॥

हे सत्यपालक अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने गौओं में पोषक दुग्ध उत्पन्न किया है तथा अप्रसूता गौओं में भी पौष्टिक दूध की सम्भावनाएँ उत्पन्न की हैं । वन क्षेत्र में साँप के समान ही जागरूक रहकर पवित्र हविष्यान्न साथ रखने वाले यजमान, आप दोनों के निमित्त दुग्ध द्वारा यज्ञ करते हैं ॥३ ॥

१८९५. युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।

तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्व: ॥४ ॥

हे नेतृत्व सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अत्रि ऋषि को सुख देने के लिए ही गर्मी को जल के समान शीतल और माधुर्ययुक्त सुखकारी बनाया । तब आपके समीप रथ के पहियों के समान यज्ञ तथा सोम रस पहुँचे ॥४ ॥

१८९६. आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रि: ।

अप: क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५ ॥

हे शत्रुसंहारक पूजनीय अश्विनीकुमारो ! विजय का आकांक्षी तुग्र का पुत्र जिस प्रकार प्रशंसक वाणियों द्वारा आप दोनों से अनुदान प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हुआ, उसी प्रकार हम भी आपके सहयोग को पाने के लिए प्रयत्नशील हों, आपकी महिमा सम्पूर्ण द्यावापृथिवी में संव्याप्त है । (हम) अतिवृद्ध होते हुए भी आप दोनों की कृपा से जरारूपी कष्ट से मुक्त होकर दीर्घजीवन प्राप्त करें । इसीलिए आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१८९७. नि यद्युवेथे नियुत: सुदानू उप स्वधाभि: सृजथ: पुरन्धिम् ।

प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥६ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों, अश्वों को अपने रथ में जोतते हैं, तब असंख्यों का भरण-पोषण करने वाली व्यवस्था बुद्धि, प्रचुर अन्न सम्पदा के साथ, साधकों में आप उत्पन्न करते हैं । श्रेष्ठ कार्य करने वालों के समान ज्ञानसम्पन्न मनुष्य इस महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह के लिए अन्न उपलब्ध करके हविष्यान्न के रूप में वायुभूत बनाकर आपको तृप्त करते हैं ॥६ ॥

१८९८. वयं चिद्धि वां जरितार: सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।

अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥७ ॥

हे शक्ति सम्पन्न, अनिन्दनीय अश्विनीकुमारो ! हम सच्चे साधक हैं, अतएव आप दोनों के प्रख्यात गुणों का वर्णन करते हैं, परन्तु धन संग्रह करने वाले व्यापारी यज्ञ (लोक हित के कार्यों) में इसे बिल्कुल नहीं लगाते । आप दोनों देवों के ग्रहण करने योग्य सोमरस का ही पान करते हैं ॥७ ॥

१८९९. युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।

अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्त: काराधुनीव चितयत्सहस्रै: ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! मनुष्यों और नेताओं में सुप्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि नित्य प्रति विशिष्ट गर्जना वाले जल प्रवाह को उपलब्ध करने के लिए कुशलता से बाँसुरी वादन करने वाले के समान ही आप दोनों की कोमल ध्वनि से सहस्रों अलापों (श्लोकों) से प्रार्थना करते हैं ॥८ ॥

१९००. प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्यन्द्रा याथो मनुषो न होता ।

धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाच: स्याम ॥९ ॥

हे सत्य के पालनकर्त्ता और गतिशील अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अपने सर्वोत्तम रथ में आरूढ़ होकर वेग से यज्ञकर्त्ता के पास मनुष्य लोक में गमन करते हैं, अतएव ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानियों को उत्तम अश्वों से युक्त धन सम्पदा प्रदान करें तथा हमें भी ऐश्वर्य सम्पदा से परिपूर्ण करें ॥९ ॥

१९०१. तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम्।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आज ही हमें सुखसाधनों की प्राप्ति हो, इसी निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । द्युलोक के चारों ओर विचरणशील, कभी विकृत न होने वाली धुरी से युक्त आपका नवीन रथ हमारे समीप पहुँचे और हमें अन्न, बल तथा दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - १८१]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द- जगती; ६,८त्रिष्टुप् ।]

आगे के कुछ सूक्त अश्विनीकुमारों के प्रति कहे गये हैं । उन्हें जुड़वाँ अभिन्न कहा जाता है, इसलिए अधिकांश मंत्रों में उनकी संयुक्त प्रार्थना ही की जाती है । कुछ ऋचाओं में उनके रूपों तथा कार्यों की भिन्नता-विशिष्टता की समीक्षा की गयी है । अश्विनी का अर्थ होता है- अश्वों (किरणों) से युक्त । उन्हें आनन्द, आरोग्य एवं पुष्टिदायक कहा गया है । आरोग्य एवं पुष्टि देने वाले दो प्रवाह प्रकृति में एक साथ उपलब्ध हैं ।(१) पदार्थों, जल, अन्न व वनस्पतियों में आरोग्य एवं पुष्टि भरने वाले अन्तरिक्षीय प्रवाह तथा (२) पदार्थों से उभरने वाले आरोग्य एवं पुष्टिदायक प्रवाह । ये दोनों प्रवाह एक साथ रहने वाले अभिन्न होते हुए भी अपनी अलग-अलग विशिष्टताएँ रखते हैं । इस रूप में अश्विद्वय को लेने से मंत्रों के भाव स्पष्ट हो सकते हैं -

१९०२. कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम्।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥१ ॥

हे मनुष्यों के संरक्षक और ऐश्वर्यदाता अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में आपकी ही प्रशंसा होती है । आप यज्ञ हेतु जलों, अन्नों और धन सम्पदाओं को प्रेरित करते हैं, वह क्रम किस समय प्रारम्भ करेंगे ? ॥१ ॥

१९०३. आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! पवित्र, दिव्यता युक्त, गतिशील, वायु के समान वेगवान्, दुग्धाहारी, मन के समान गतिशील, शक्तिशाली, उज्ज्वल पृष्ठ भाग वाले और स्वयं तेजस्विता युक्त गुणों से सुशोभित घोड़े, आप दोनों को हमारे यज्ञ में लायें ॥२ ॥

१९०४. आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥३ ॥

हे उच्च भाग में प्रतिष्ठित, एक ही स्थान पर स्थिर होकर रहने वाले अश्विनीकुमारो ! मन के समान गतिशील, उत्तम अग्र भाग वाला, भूमि के समान व्यापक, अग्रगामी, शक्तिशाली रथ हमारे कल्याण की कामना से आपको हमारे समीप ले आये ॥३ ॥

१९०५. इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों निर्दोष शरीरों से तथा अपने नामों से प्रख्यात हुए इस लोक में भली-भाँति प्रशंसित हो चुके हैं । आप दोनों में से एक विजयी, श्रेष्ठ मुख वाले (देव मुख रूप यज्ञ) के प्रेरक हैं तथा दूसरे दिव्य लोक के पुत्र होकर श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के धारणकर्ता हैं ॥४ ॥

१९०६. प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।

हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनो में एक का पीतवर्ण युक्त (सूर्य के समान स्वर्णिम) तथा सर्वत्र गमनशील रथ, इच्छित दिशाओं एवं आवासों में पहुँचता है । दूसरे के मन्थन से उत्पन्न घोड़े (अग्नि) अन्नों एवं उद्‌घोषों (मंत्रों) सहित सम्पूर्ण लोकों को पुष्टि प्रदान करते हैं ॥५ ॥

१९०७. प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।

एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों में से एक प्राचीन सामर्थ्यशाली शत्रुसेना को पराजित करने वाले हैं और अन्न में मधुर रस की उत्पत्ति हेतु सर्वत्र विचरण करते हैं । दूसरे अन्नों को समृद्ध करने वाली ऊर्ध्वगामी नदियों को वेग पूर्वक प्रवाहित करते हैं । आप दोनों हमारे समीप आयें ॥६ ॥

[यज्ञीय प्रक्रिया से सूक्ष्म जगत् में आरोग्य एवं पुष्टिकारक तत्त्व बढ़ते हैं, इसलिए उन प्रवाहों को ऊर्ध्वगामी नदियाँ कहा गया है, जो सूक्ष्म जगत् रूपी समुद्र को समृद्ध करती रहती हैं ।]

१९०८. असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।

उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७ ॥

(अपने) कार्य में दक्ष हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए प्राचीन काल से प्रचलित, सामर्थ्य बढ़ाने वाली स्तुतियाँ तीनों प्रकार (ऋक्, यजुष् एवं सामगान के रूप में) की गई हैं । हमारे द्वारा की गई प्रार्थना को जाते हुए अथवा रुक कर सुनने की कृपा करें और साधकों की रक्षा करें ॥७ ॥

१९०९. उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।

वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विदेवो ! आप दोनों के देदीप्यमान स्वरूप का गुणगान करने वाली यह स्तोत्रवाणी, तीन कुश आसनों से युक्त यज्ञस्थल में मनुष्यों को परिपुष्ट करती है । जिस प्रकार गौ दूध देकर पौष्टिकता प्रदान करती है, उसी प्रकार आपकी प्रेरणा से मेघ भी पोषण प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१९१०. युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अनेकों के धारणकर्त्ता पूषादेव जिस प्रकार पोषण करते हैं, उसी प्रकार हविष्यान्न को साथ लेकर यजमान यज्ञ द्वारा उषा और अग्नि के सदृश ही आप दोनों की प्रार्थना करते हैं । हम कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए, विनम्रता पूर्वक आपकी प्रार्थना करते हैं, जिससे हम अतिशीघ्र अन्न, बल और धन प्राप्त कर सकें ॥९ ॥

[सूक्त - १८२]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द-** जगती; ६, ८ त्रिष्टुप् ।]

१९११. अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।

धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१ ॥

हे मनस्वी ज्ञानियो ! हमें यह ज्ञात हुआ है कि अश्विनीकुमारों का सुदृढ़ रथ हमारे यज्ञस्थल के निकट आ गया है, उसे देखकर आप हर्षित हों और उसे भली-भाँति अलंकृत करें : वे दोनों पवित्र व्रतशील, द्युलोक के धारणकर्त्ता, विश्पला की कीर्ति को बढ़ाने वाले तथा सत्कर्म करने वालों को सद्‌बुद्धि प्रदान करने वाले हैं ॥१ ॥

१९१२. इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।

पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२ ॥

हे शत्रु संहारकर्ता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों प्रशंसा के योग्य तथा इन्द्रदेव और मरुद्गणों के अति श्रेष्ठ गुणों को धारण करने वाले हैं । आप दोनों सत्कर्मों में सदैव संलग्न और रथियों में अति श्रेष्ठ रथी हैं । आप मधु (मधुरता) से परिपूर्ण रथ सहित यज्ञकर्त्ता के समीप पहुँचते हैं ॥२ ॥

१९१३. किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।

अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३ ॥

हे शत्रुनाशक अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? जो लोग हवि न देकर बड़े बन गये हैं, उन्हें छोड़कर आगे बढ़ें । कृपण और यज्ञहीन व्यक्तियों को नष्ट करें । स्तोता विप्रों (सत्कर्मरतों) को प्रकाश प्रदान करें ॥३ ॥

१९१४. जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।

वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आप कुत्तों के समान हिंसक अत्याचारियों को सभी ओर से विनष्ट करें । जो हमलावर हैं, उनका भी संहार करें; उनसे आप भली प्रकार परिचित हैं । आप दोनों हम स्तोताओं की प्रत्येक स्तोत्रवाणी को धन सम्पदा से युक्त करें तथा हमारे प्रशंसनीय स्तोत्रों का संरक्षण करें ॥४ ॥

१९१५. युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।

येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपनी सामर्थ्य से चलने वाले, पक्षी के समान उड़ने वाली नौका को बनाया और कुशल चालक आप दोनों ने मन की गति के समान वेगशील उस नौका में ऊपरी आकाश मार्ग से यात्रा की तथा महासागर के बीच पहुँचकर तुग्र के पुत्र 'भुज्यु' की वहाँ रक्षा की ॥५ ॥

१९१६. अववि‌द्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।

चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥६ ॥

समुद्र के बीच में आधार रहित अँधेरे जल स्थान में तुग्रपुत्र भुज्यु को मुक्त करने के लिये अश्विनीकुमारों द्वारा भेजी गई चार नौकाएँ समुद्र के बीच पहुंच गईं और उसे ऊपर उठाकर समुद्र के पार पहुँचा दिया ॥६ ॥

१९१७. कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।

पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७ ॥

जल (समुद्र) के मध्य कौन सा वृक्ष रहा होगा, जिसे देखकर तुग्र के पुत्र भुज्यु ने जिसका आश्रय लिया । जिस प्रकार गिरने वाले मृग को पंखों का आश्रय मिल जाय, उसी प्रकार अश्विनीकुमारों ने भुज्यु को ऊपर उठाया, इस कल्याणकारी कार्य से वे यशस्वी बने ॥७ ॥

१९१८. तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।

अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

हे सत्यनिष्ठ नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! स्तोताओं ने जो आप दोनों के लिए स्तोत्रोच्चारण किये हैं, उनसे आप हर्षित हों । इस सोमयाग के यज्ञस्थल से हम अन्न, बल, ऐश्वर्य सम्पदा को प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - १८३]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९१९. तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥१॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आपका जो तीन पहियों वाला, तीन बैठने योग्य स्थान वाला, अत्यन्त गतिशील रथ है, उसे जोड़कर तैयार करें । तीन धातुओं से विनिर्मित रथ से पक्षी की तरह उड़कर आप दोनों श्रेष्ठ-कर्मों के घर पर पहुंचते हैं ॥१॥

१९२०. सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमेशा सत्कर्म में तत्पर आप दोनों हविष्यान्न प्राप्त करने के लिए भूमि पर गतिमान अपने सुन्दर रथ से यज्ञस्थल पर पहुंचते हैं । आपकी महिमा का गान करने वाली स्तुतियाँ आपको हर्षित करें, आप दोनों द्युलोक की पुत्री उषा के साथ (प्रभात वेला में) ही प्रस्थान करते हैं ॥२॥

१९२१. आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! हविष्यान्नों से पूर्णरूपेण भरा हुआ आपका रथ, आप दोनों को अपने कर्त्तव्य निर्वाह के लिए ले जाता है, उस सुन्दर वाहन (रथ) पर आप दोनों विराजमान हों और यजमान तथा उसकी सन्तानों को यज्ञ की प्रेरणा देने के लिए उनके घर पधारें ॥३॥

१९२२. मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

हे शत्रु संहारक अश्विनीकुमारो ! आपके लिए हविर्द्रव्य तैयार है, यह स्तुतियाँ आपके ही निमित्त हैं । मधु से पूर्ण पात्र आपके लिए तैयार है, आप हमारा परित्याग न करें और न ही अन्य किसी पर अनुदान बरसायें । आपकी कृपा से हमारे ऊपर वृक एवं वृकी हमला न करें ॥४॥

१९२३. युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५॥

हे शत्रुनाशक और सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! हविष्यान्न अर्पित करते हुए गोतम, अत्रि और पुरुमीढ़ ये ऋषि अपने संरक्षण के लिए आपका आवाहन करते हैं । सरल मार्ग से जाने वाला जिस प्रकार अभीष्ट लक्ष्य पर सहज ढंग से पहुंचता है, उसी प्रकार हमारे आवाहन को सुनकर आप हमारे समीप पधारें ॥५॥

१९२४. अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम इस अन्धकार से पार हो गये हैं । आप दोनों के निमित्त ये स्तोत्रगान किये गये हैं । देवतागण जिस मार्ग से चलते हैं, आप उसी मार्ग से यहाँ पधारें तथा अन्न, बल और विजयश्री हमें शीघ्र प्रदान करें ॥६॥

[सूक्त - १८४]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९२५. ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।

नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१ ॥

हे दिव्यलोक के आश्रयभूत, सत्यपालक अश्विनीकुमारो ! आज हमने आपको आमन्त्रित किया है, भविष्य में भी बुलायेंगे । हम अन्धकार की समाप्ति पर प्रभात वेला में स्तोत्रगान करते हुए अग्नि प्रदीप्त करते हैं । आप जहाँ कहीं भी हों, श्रेष्ठ पुरुष और दानवीर के यहाँ अवश्य पधारें, ऐसी हमारी प्रार्थना है ॥१ ॥

१९२६. अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।

श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आप हमें भली प्रकार आनन्दित करें । आप पणियों (लोभी ठगों) को समाप्त करें । हमारी अभिव्यक्तियों, श्रेष्ठ स्तोत्रों को सुनने की कृपा करें, क्योंकि आप दोनों सुपात्रों को खोजते और उन पर अपनी कृपा बरसाते हैं ॥२ ॥

१९२७. श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।

वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३ ॥

हे दानी, सत्यनिष्ठ, पोषणकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! उषाकाल में ही रथ पर आरूढ़ होकर यश पाने की कामना से आप दोनों बाण की गति की तरह सरल मार्ग से जाते हैं । उस समय समुद्र से प्राप्त अति विशाल वरुणदेव के पुरातन रथ के घोड़ों के समान ही आप दोनों के घोड़े भी प्रशंसित होते हैं ॥३ ॥

१९२८. अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।

अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर, मधुररसों से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के अनुदान हमें उपलब्ध होते रहें । आप मान्य द्वारा रचित स्तोत्रों को प्रेरित करें । सभी लोग आप दोनों की अनुकूलता प्राप्त कर श्रेष्ठ पराक्रम करने की कामना से आनन्दित होते हैं ॥४ ॥

१९२९. एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।

यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५ ॥

हे वैभवशाली, सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए यह सुन्दर स्तोत्र तैयार किये गये हैं । इससे हर्षित होकर आप सपरिवार अगस्त्य ऋषि के घर पधारें ॥५ ॥

१९३०. अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम इस अन्धकार रूपी अज्ञान से मुक्त हो गये हैं, आप दोनों के लिए ये स्तोत्र गान किये हैं । देवतागण जिस मार्ग से चलते हैं, आप उसी मार्ग से चलकर हमारे यहाँ पधारें तथा अन्न, बल और विजयश्री हमें शीघ्र प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - १८५]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - द्यावापृथिवी । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९३१. कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१ ॥

हे ऋषियो ! ये (द्युलोक और भूलोक) दोनों किस प्रकार उत्पन्न हुए और इन दोनों में कौन सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ तथा बाद में कौन हुआ ? इस रहस्य को कौन भलीप्रकार जानने में समर्थ है ? ये दोनों लोक सम्पूर्ण विश्व को धारण करते हैं और चक्र के समान घूमते हुए दिन-रात का निर्माण करते हैं ॥१ ॥

१९३२. भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२ ॥

स्वयं पद विहीन तथा अचल होने पर भी ये दोनों द्यावा-पृथिवी असंख्य चलने-फिरने में सक्षम पदयुक्त प्राणियों को धारण करते हैं । जिस प्रकार माता-पिता समीप उपस्थित पुत्र की सहायता करते हैं, उसी प्रकार द्युलोक और पृथिवी हम सभी प्राणियों को संकटो से बचायें ॥२ ॥

१९३३. अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥३ ॥

हम अविनाशी पृथ्वी से पापमुक्त, क्षयरहित, हिंसारहित, तेजस्वी और विनम्रता प्रदान करने वाले धन-वैभव की कामना करते हैं । हे द्यावा-पृथिवि ! ऐसा वैभव स्तोताओं के लिए प्रदान करें । ये दोनों पाप कर्मों से हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१९३४. अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥४ ॥

देव शक्तियों के उत्पादक, द्युलोक और पृथ्वी लोक पीड़ित न होते हुए भी अपने कार्य में शिथिल न होते हुए अपनी संरक्षण की शक्तियों से प्राणियों के संरक्षक हैं । दिव्यता युक्त दिन और रात के अनुकूल हम रहें । द्यावा-पृथिवी दोनों, पाप से हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

१९३५. सङ्गच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥५ ॥

चिर युवा, बहिनों की तरह परस्पर सहयोग करने वाली ये दोनों (द्यावा-पृथिवी) पिता के समीप (परमात्मा के अनुशासन में) रहकर भुवन की नाभि (यज्ञ) को सूँघती (उससे पुष्ट होती) हैं । ये द्यावा-पृथिवी हमें सभी विपदाओं से संरक्षित करें ॥५ ॥

१९३६. उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६ ॥

जो श्रेष्ठ स्वरूप वाली द्यावा-पृथिवी जल रूप अमृत को धारण करती हैं । ऐसी विशाल आश्रयभूत तथा सबको उत्पन्न करने वाली द्यावा-पृथिवी को देवशक्तियों की प्रसन्नता के लिए-यज्ञीय कार्य के लिए आवाहित करते हैं, वे दोनों(द्यावा पृथिवी)हमें पाप कर्मों से बचायें ॥६ ॥

१९३७. उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।

दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७ ॥

जो सुन्दर आकृतिरूप और श्रेष्ठ दानदाता रूप में द्यावा-पृथिवी सबकी धरित्री हैं, ऐसी विशाल, व्यापक विभिन्न आकृतिरूप तथा जिनकी सीमा अनन्त है, उन द्यावा-पृथिवी की इस यज्ञ में विनम्रभावना से हम प्रार्थना करते हैं । वे (द्यावा-पृथिवी) हमें संकटों से सुरक्षित करें ॥७ ॥

१९३८. देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।

इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८ ॥

यदि हमसे कभी प्रमादवश देवशक्तियों, मित्रजनों अथवा समस्त जगत् के सृजेता परमेश्वर के प्रति कोई पापकर्म बन पड़े हों, तो उनका शमन करने में हमारी विवेक बुद्धि सक्षम हो । द्यावा-पृथिवी पापकर्मों से हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

१९३९. उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।

भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥९ ॥

मनुष्यों के कल्याणकारी तथा स्तुति योग्य दोनों द्युलोक-पृथिवीलोक हमें आश्रय प्रदान करें । दोनों संरक्षक द्यावा-पृथिवी अपने संरक्षण साधनों से हमारा पोषण करें । हे देवशक्तियो ! हम श्रेष्ठता को धारण करते हुए, अन्नादि से हर्षित होकर दानवृत्ति को बनाये रखने के लिए प्रचुर धन सम्पदा की कामना करते हैं ॥९ ॥

१९४०. ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।

पातामवद्यादुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१० ॥

हम सद्बुद्धि को धारण करते हुए द्युलोक और पृथ्वीलोक की गरिमा से सम्बन्धित इस सत्यवाणी (ऋचा) की घोषणा करते हैं । पास-पास रहने वाले ये दोनों लोक अनिष्टों से हमारा संरक्षण करें । पितारूप (द्युलोक) और मातारूप (पृथ्वी) संरक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

१९४१. इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।

भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११ ॥

हे पिता और माता रूप द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों के निमित्त इस यज्ञ में जो स्तुतियाँ हम करते हैं, उनका प्रतिफल हमें अवश्य मिले । आप दोनों देवत्वयुक्त संरक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें एवं हमें अन्न, बल और दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - १८६]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - विश्वेदेवा । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९४२. आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।

अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१ ॥

सबके कल्याणकारी सवितादेव भली-भाँति प्रशंसित होकर, अन्न से युक्त होकर हमारे यज्ञ में पधारें । हे वरुणदेव ! आप जिस तरह आनन्दित हैं, उसी तरह हमारे यज्ञ में पधारकर अपनी अनुकम्पा से हमें तथा सम्पूर्ण विश्व को भी हर्षित करें ॥१ ॥

१९४३. आ नो विश्व आस्का गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।

भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥२ ॥

सभी शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, परस्पर प्रीति करने वाले मित्र, वरुण और अर्यमा देव हमारे समीप आएँ तथा यथासम्भव हमारी प्रगति में सहायक हों । ये देव शत्रुओं को परास्त करने की सामर्थ्य से युक्त होकर हमारी शक्तियों को क्षीण न करें ॥२ ॥

१९४४. प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।

असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३ ॥

जो अग्निदेव शत्रुसंहारक और सबके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करने के कारण अतिथि के समान पूज्य हैं, उनकी हम स्तोत्रों द्वारा स्तुतियाँ करते हैं । शत्रुओं के आक्रान्ता और ज्ञानवान् ये वरुणदेव हमें अन्न तथा यथोचित कीर्ति प्रदान करें ॥३ ॥

१९४५. उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।

समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥४ ॥

हे सम्पूर्ण विश्व की संचालक देवशक्तियो ! गौ (सूर्य किरणों) से उत्पादित होने वाले (दुग्धरूपी) प्राण में सम्पूर्ण तेजस्विता की अनुभूति करते हुए, हम साधक मनोविकाररूपी शत्रुओं पर विजय पाने की कामना से प्रातः और सायं (दोनों सन्ध्याओं में) उसी प्रकार आपके समीप जाते हैं, जिस प्रकार श्रेष्ठ दुधारू गौएँ गोपाल के पास जाती हैं ॥४ ॥

१९४६. उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।

येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५ ॥

अहिर्बुध्न्य (विद्युत्‌रूप अग्नि) अन्तरिक्षीय मेघों से जल बरसाकर हमें सुखी करें । शिशु का पोषण करने वाली माता के समान नदियाँ जल से परिपूर्ण होकर हमारे समीप आएँ । जल को न गिरने देने वाले (अग्निदेव) की हम वन्दना करते हैं । मन की तरह वेगवान् अश्व (किरणें) उन्हें ले जाते हैं ॥५ ॥

(अहिर्बुध्न्य- विद्युत्‌रूप अग्नि अन्तरिक्ष में स्थित मेघों का विनाशक है ।)

१९४७. उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।

आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६ ॥

ज्ञानियों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करने वाले ये त्वष्टदेव तथा मनुष्यों के तृप्तिकारक और वृत्रासुर के वध द्वारा सबके द्वारा प्रशंसनीय इन्द्रदेव, हमारे इस यज्ञ में पधारकर हमारे सत्कर्मों में सहायक बनें ॥६ ॥

१९४८. उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।

तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७ ॥

जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों को स्नेह से चाटती हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धियाँ उन चिरयुवा इन्द्रदेव के प्रति अपना स्नेह प्रकट करती हैं । उन महायशस्वी इन्द्रदेव को हमारी स्तुतियाँ उसी प्रकार आकर्षित करती हैं, जिस प्रकार प्रजननशील स्त्रियाँ पतियों को आकर्षित करती हैं ॥७ ॥

१९४९. उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८ ॥

रथों पर विराजमान रक्षकगणों के पास समान दुष्टशत्रुओं को विनष्ट करने वाले, मित्रों के समान पारस्परिक स्नेह रहने वाले, विलक्षण अश्वों से युक्त, समान मनोभावों से युक्त, तेजस्वी, महान् सामर्थ्यों से युक्त मरुद्‌गण तथा द्यावा-पृथिवी हमारे यज्ञ मे पधारें ॥८ ॥

१९५०. प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९ ॥

श्रेष्ठ स्तुतियों से हर्षित होकर मरुद्‌गण अश्वों को अपने रथ मे जोड़ते हैं । तत्पश्चात् दिन में जिस प्रकार प्रकाश सर्वत्र संचरित होता है, उसी प्रकार मरुतों की सेना ऊसर भूमि को जलों से सींचकर उपजाऊ बनाती है । इससे इन मरुद्‌गणो की ख्याति और भी अधिक बढ़ जाती है ॥९ ॥

१९५१. प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१० ॥

हे मनुष्यो ! अपनी रक्षा के लिए अश्विनीकुमारो, पूषादेव, विद्वेषरहित विष्णुदेव, वायुदेव, ऋभुओ के स्वामी (इन्द्रदेव) इन सभी देवों की स्तुति करो । हम भी सुख की प्राप्ति के लिए इन देव समूह की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥

१९५२. इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११ ॥

हे यज्ञदेव ! आपका जो तेज देवों को ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है, मनुष्यों की अभिलाषाओं को पूर्ण कराने वाला तथा आवास प्रदान कराने वाला है । वह दिव्यतेज हम अपने अन्दर धारण करें, जिससे हम मनुष्य उत्तम अन्न, उत्तम बल और दीर्घ जीवन का लाभ प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

[सूक्त - १८७]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि ।**देवता -** अन्न । **छन्द-** १ अनुष्टुप् गर्भा उष्णिक्; ३,५-७ अनुष्टुप्, ११ अनुष्टुप् अथवा बृहती; २,४,८-१० गायत्री ।]

१९५३. पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१ ॥

जिसके ओर से तीनों लोकों में यशस्वी इन्द्रदेव ने वृत्रनामक असुर के अंग-प्रत्यंगों को काट-काट कर मारा, उन महान् शक्तिशाली, सबके पोषक तथा धारणकर्त्ता अन्नदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१९५४. स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२ ॥

हे स्वादिष्ट, पालक तथा माधुर्ययुक्त रसों के पोषक अन्नदेव ! हम आपमें विद्यमान पोषक तत्त्व को धारण करते हैं, आप हमारे संरक्षक हैं ॥२ ॥

१९५५. उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३ ॥

हे पालनकर्त्ता अन्नदेव ! आप कल्याणकारी सुखप्रद, विद्वेषरहित, मित्र के समान हितैषी, भली- भाँति सेवनीय और ईर्ष्या-द्वेष से रहित हैं । आप मंगलकारी संरक्षणयुक्त पोषक तत्वों से युक्त होकर हमारे समीप आएँ ॥३ ॥

१९५६. तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाताइव श्रिताः ॥४ ॥

हे परिपोषक अन्नदेव ! जिस प्रकार अन्तरिक्ष में वायु प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार आपके वे विभिन्न रस सम्पूर्ण लोकों में विद्यमान हैं ॥४ ॥

१९५७. तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवाइवेरते ॥५ ॥

हे परिपोषक अन्नदेव ! आपके उपासक कृषक आप से दानवृत्ति को ग्रहण करते हैं, हे माधुर्ययुक्त पोषक देव ! आपके साधक आपकी पोषणशक्ति को बढ़ाते हैं । आपके रसों का सेवन करने वाले पुष्टग्रीवायुक्त होकर सर्वत्र विचरण करते हैं ॥५ ॥

१९५८. त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६ ॥

हे सर्वपालक अन्नदेव ! महान् देवों का मन भी आपके लिए लालायित रहता है । इन्द्रदेव ने आपकी श्रेष्ठ पोषक शक्ति एवं संरक्षक शक्ति से ही अहि असुर का वध करके महान् कार्य किया ॥६ ॥

१९५९. यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥७ ॥

हे सर्व पालक अन्नदेव ! जब जलों से परिपूर्ण बादलों का शुभ जल आपके समीप पहुँचता है, तब आप हमारे पोषण के लिए इस विश्व में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों ॥७ ॥

१९६०. यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥८ ॥

जब जलों और ओषधि तत्त्वों से युक्त सभी प्रकार से कल्याणकारी अन्न को हम ग्रहण करते हैं, तब हे शरीर ! आप इस पोषक अन्न से स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हों ॥८ ॥

१९६१. यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥९ ॥

हे सुखस्वरूप अन्नदेव ! जब अन्न में जौ, गेहूँ आदि पदार्थों के साथ गाय के दूध, घृतादि पौष्टिक पदार्थों का सेवन किया जाता है, तब हमारा शारीरिक स्वास्थ्य सुदृढ़ हो ॥९ ॥

१९६२. करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥१० ॥

हे परिपक्व अन्नदेव ! पौष्टिक, आरोग्यप्रद तथा इन्द्रिय सामर्थ्य को बढ़ाने वाले हैं । पके हुए अन्नों के सेवन से हमारा शारीरिक स्वास्थ्य बढ़े ॥१० ॥

१९६३. तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११ ॥

हे पालनकर्त्ता अन्नदेव ! आप देव शक्तियों और मनुष्यों दोनों को ही समानरूप से आनन्दित करने वाले हैं । प्रशंसित स्तोत्रों से आपको उसी प्रकार अभिषुत करते हैं, जैसे गोपाल गौओं से दूध दुहते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - १८८]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - १ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि; २ तनूनपात् ; ३ इळ ; ४ बर्हि; ५-देवीर्द्वार; ६ उषासानक्ता; ७ दिव्य होतागण प्रचेतस्; ८ तीन देवियां-सरस्वती, इळा, भारती; ९ त्वष्टा; १० वनस्पति; ११ स्वाहाकृति । **छन्द**-गायत्री ।]

१९६४. समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूतो हव्या कविर्वह ॥१ ॥

हे सहस्रों शत्रुओं के विजेता अग्निदेव ! देवों द्वारा तेजस्वीरूप में आज आप प्रदीप्त हो रहे हैं । हे क्रान्तदर्शी ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को दूत की तरह देवों तक पहुँचाएँ ॥१ ॥

१९६५. तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत्सहस्रिणीरिषः ॥२ ॥

स्वास्थ्य संरक्षक, पूजनीय अग्निदेव सहस्रों प्रकार के अन्नों में प्राणतत्त्व को परिपोषित करते हुए यज्ञभूमि में जाते हैं और वहाँ हविष्यान्नों में मधुर रसों का संचार करते हैं ॥२ ॥

१९६६. आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् । अग्ने सहस्रसा असि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप सहस्रों प्रकार की ऐश्वर्य सम्पदा के धारणकर्ता हैं । अतएव हमारे द्वारा आवाहित किये जाने पर आप अनेक आदरणीय देवताओंसहित हमारे यज्ञ में पधारें ॥३ ॥

१९६७. प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥४ ॥

हे आदित्यगण ! प्राचीनकाल से हजारों देवगणों के साथ आप जिस आसन पर विराजमान होते रहे हैं, ऐसे कुश के आसन को यजमान अपनी शक्ति से (यज्ञस्थल पर) बिछाते हैं ॥४ ॥

१९६८. विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५ ॥

विराट् तेजस्वी, विभु, प्रभु, यज्ञदेव अनेक द्वारों से घृत की वर्षा करते हैं ॥५ ॥

१९६९. सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥६ ॥

उत्तम स्वरूप वाली (उषा एवं रात्रि) और अधिक शोभा पा रही हैं । हे उषा और रात्रि ! आप दोनों हमारे यहाँ यज्ञ में विराजमान हों ॥६ ॥

१९७०. प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७ ॥

सर्वोत्तम, प्रखर वाणी के प्रयोक्ता, दिव्यगुणों से युक्त, मेधावी होता हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करें ॥७ ॥

१९७१. भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥८ ॥

हे भारती, इळा और सरस्वती ! हम आप सभी को आमंत्रित करते हैं । आप तीनों हमें ऐश्वर्य विभूतियों की ओर प्रेरित करें ॥८ ॥

१९७२. त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥९ ॥

त्वष्टादेव स्वरूप प्रदान करने में सक्षम हैं, वही पशुओं के निर्माता हैं । हे त्वष्टादेव ! आप हमारे लिए पशुधन की वृद्धि करें ॥९ ॥

१९७३. उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१० ॥

हे वनस्पते ! आप अपनी सामर्थ्य से हव्य पदार्थ उत्पन्न करें, तब अग्निदेव हव्य का सेवन करें ॥१० ॥

१९७४. पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥११ ॥

देवताओं में अग्रणी रहनेवाले अग्निदेव गायत्री मंत्र के उच्चारण से सुशोभित होते हैं; पश्चात् "स्वाहा" शब्द के साथ प्रदत्त आहुतियों से वे अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - १८९]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९७५. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।

युयोध्य१ स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१ ॥

दिव्य गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण मार्गों (ज्ञान) को जानते हुए हम याजकों को यज्ञ फल प्राप्त करने के लिए सन्मार्ग पर ले चलें । हमें कुटिल आचरण करने वाले शत्रुओं तथा पापों से मुक्त करें ।हम आपके लिए स्तोत्र एवं नमस्कारों का विधान करते हैं ॥१ ॥

१९७६. अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।

पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आप नित्यनूतन अथवा अति प्रशंसनीय हैं ।आपकी कृपा से मंगलकारी मार्गों से हम सभी प्रकार के दुर्गम पापकर्मों एवं कष्टकारी दुःखों से निवृत्त हों । यह पृथ्वी और नगर हमारे लिए उत्तम और विस्तृत हों । आप हमारी सन्तानों के लिए सुखप्रदायी हों ॥२ ॥

१९७७. अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।

पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ द्वारा हमारे सभी रोगों (विकारों) का निवारण करें । यज्ञरहित मनुष्य सदैव रोग विकारों से त्रस्त रहते हैं । हे देव ! आप अमरत्व प्राप्त सभी देवताओं के साथ दिव्य गुणों से युक्त होकर हमारे कल्याण की कामना से यज्ञस्थल पर संगठित रूप से पधारें ॥३ ॥

१९७८. पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्।

मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप निरन्तर अपनी संरक्षण शक्तियों से हमें रक्षित करें और हमारे प्रिय यज्ञ स्थल में पधारकर सर्वत्र प्रकाशमान हों । हे नित्य तरुण रूप अग्निदेव ! आपके स्तोता सभी प्रकार के भयों से मुक्त हों ।हे बलों से उत्पन्न अग्निदेव !आपकी सामर्थ्य से अन्य संकटों के समय भी हम निर्भय रहें ॥४ ॥

१९७९. मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।

मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥५ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! हमें पापों में लिप्त, अधर्मयुक्त कार्यों से उपार्जित अन्न को खाने वाले, सुखों के नाशक शत्रुओं के बन्धन में न सौंपें । हमें दाँतों से काटने वाले सर्परूपी शत्रुओं के अधीन न करें तथा हिंसकों एवं दस्यु असुरों के बन्धन में भी न बाँधें ॥५ ॥

१९८०. वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानोअग्ने तन्वे३ वरूथम्।

विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६ ॥

हे यज्ञ के निमित्त उत्पन्न अग्निदेव ! आपके साधक आपकी श्रेष्ठ प्रार्थना करते हुए शारीरिक दृष्टि से परिपुष्ट होकर हिंसक एवं पर निन्दक दुष्ट व्यक्तियों से स्वयं को संरक्षित करते हैं । हे दिव्य गुण सम्पन्न अग्निदेव ! आप दुर्बुद्धि से ग्रस्त, दुर्व्यव्यवहारयुक्त दुष्टकर्मियों को निश्चित ही दण्डित करने वाले हैं ॥६ ॥

१९८१. त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।

अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७ ॥

हे यजन योग्य अग्निदेव ! आप यज्ञ प्रेमी और यज्ञ विहीन इन दोनों से भलीप्रकार परिचित होते हुए प्रभात वेला में मनुष्यों के पास पहुँचते हैं । पराक्रम-सम्पन्न आप यज्ञ में उपस्थित मनुष्यों को उसी प्रकार शिक्षण प्रदान करें, जिस प्रकार ऋत्विज् यजमानों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं ॥७ ॥

१९८२. अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।

वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

यज्ञ के उत्पन्नकर्त्ता और शत्रुसंहारक इन अग्निदेव के निमित्त हम सभी प्रकार के स्तोत्रों का गान करते हैं । हम इन इन्द्रिय रूपी ऋषियों को समर्थ बनाकर अनेक ऐश्वर्यों का उपभोग करें तथा अन्न, बल और दीर्घायुष्य को प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - १९०]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९८३. अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।

गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! जिन द्वेष रहित, बलशाली, मधुर भाषी, स्तुति के योग्य बृहस्पतिदेव के मधुर, तेजस्वी एवं प्रशंसा के योग्य वचनों को मनुष्य तथा देवगण सभी श्रद्धा के साथ सुनते हैं, उनका गुणगान करो ॥१ ॥

१९८४. तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।

बृहस्पतिः सह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥

समयानुकूल की गई स्तुतियाँ बृहस्पति देव ग्रहण करते हैं । जिन बृहस्पतिदेव ने नई सृष्टि की रचना के समान देव बनने की कामना करने वाले मनुष्य को उत्पन्न किया, ऐसे वायु के समान प्रगतिशील बृहस्पतिदेव उत्तम वस्तुओं के साथ अपनी प्रचण्ड शक्ति से उत्पन्न हुए ॥२ ॥

१९८५. उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।

अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥३ ॥

जैसे सूर्यदेव बाहु (किरणें) फैलाते हैं; उसी प्रकार बृहस्पतिदेव याजकों की स्तुतियाँ, अन्नादि एवं मंत्रों को स्वीकार करते हैं । बृहस्पतिदेव के क्रूरतारहित कर्त्तव्य से ही सूर्यदेव भयंकर मृग (सिंह जैसा) की तरह बल सम्पन्न होते हैं ॥३ ॥

१९८६. अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।

मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥४ ॥

इन बृहस्पतिदेव की कीर्ति द्युलोक और पृथ्वीलोक में सर्वत्र व्याप्त है । शीघ्रगामी अश्व के समान ज्ञानियों के भरणपोषण कर्त्ता, विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न ये बृहस्पतिदेव सभी लोकों के सहयोग के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । हरिणों के संहारक शस्त्रों के समान बृहस्पति देव के ये शस्त्र दिन में छल करने वाले कपटी असुरों को मारते हैं ॥४ ॥

१९८७. ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।

न दूढ्ये३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥५ ॥

हे देव ! जो धन का अहंकार करने वाले पापी वृद्ध बैल के समान जीवित हैं, आप उन दुर्बुद्धिग्रस्तों को ऐवश्वर्य नहीं देते हैं । हे बृहस्पतिदेव ! आप सोमपान करने वालों पर ही अपनी कृपा बरसाते हैं ॥५ ॥

१९८८. सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।

अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥६ ॥

ये बृहस्पतिदेव सन्मार्गगामी तथा उत्तम अन्नवाले मनुष्य के लिए श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक रूप हैं तथा दुष्टों का नियन्त्रण करने वालों के मित्र के समान हैं । निष्पाप होकर जो मनुष्य हमारी ओर देखते हैं, वे अज्ञानरूपी अन्धकार से आवृत होने पर भी, अज्ञान को त्यागकर ज्ञान मार्ग पर बढ़ते हैं ॥६ ॥

१९८९. सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।

स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७ ॥

स्वामी को उत्तम भूमि प्राप्त होने तथा समुद्र को भँवरों से युक्त नदियों का जल प्राप्त होने के समान ही बृहपतिदेव को स्तोत्ररूप वाणियाँ प्राप्त होती हैं । सुखों के अभिलाषी, ज्ञानवान् बृहस्पति देव दोनों के मध्य विराजमान होकर तट और जल दोनों को देखते हैं ॥७ ॥

१९९०. एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

हम सभी अति प्रख्यात, शक्तिशाली, महिमायुक्त, सुखवर्षक बृहस्पतिदेव की प्रार्थना करते हैं । वे हमें वीर संतान युक्त गवादि धन प्रदान करें । हम सभी प्राप्त करने योग्य, शक्ति सम्पन्न तथा तेजस्वी देव के ज्ञान से युक्त हों ॥८ ॥

[सूक्त - १९१]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - अप्तृण सूर्या (विषघ्नोपनिषद्) । **छन्द** - अनुष्टुप्; १०-१२ महापंक्ति; १३ महाबृहती ।]

१९९१. कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः । द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥१ ॥

कुछ विषैले, कुछ विषरहित और कुछ जल में रहने वाले अल्पविष जीव होते हैं । ये दृश्य भी होते हैं और अदृश्य भी । वे दोनों शरीर में दाह उत्पन्न करते हैं । उनका विष हममें संव्याप्त हो जाता है ॥१ ॥

१९९२. अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती । अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥२ ॥

यह ओषधि, उन अदृश्य जीवों के विष को समाप्त करती है । यह कूटी-पीसी जाकर भी विषैले जीवों के विष को नष्ट करती है ॥२ ॥

१९९३. शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।

मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३ ॥

इन विषैले जीवों में से कुछ सरकण्डों, कुछ कुशाघास, कुछ छोटे सरकण्डों में स्थित रहते हैं । कुछ नदी, तालाबों के तटों पर पैदा होने वाले घास में, कुछ मूँज और कुछ वीरण नामक घास में छिपे रहते हैं । ये सभी लिपटने वाले होते हैं ॥३ ॥

१९९४. नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।

नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥४ ॥

जिस समय गौएं गोष्ठ में और पशु अपने स्थानों में विश्राम करते हैं तथा जब मनुष्य भी थककर विश्राम करने लगते हैं, ऐसे में अदृश्य रहनेवाले ये जीव बाहर निकलते है और उन्हें लिपटते हैं ॥४ ॥

१९९५. एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्कराइव । अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५ ॥

ये विषाणु चोरों की तरह रात्रि में दिखाई देते हैं । ये अदृश्य होते हुए भी सबको दिखते हैं (उनका प्रभाव दिखता है) । हे मनुष्यो ! इनसे सावधान रहो ॥५ ॥

१९९६. द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६ ॥

हे विषाणुओ ! तुम्हारे पिता दिव्यलोक, जन्म दात्री पृथ्वी, सोम भ्रातृरूप और देवमाता अदिति भगिनी स्वरूपा हैं, अतः स्वयं अदृश्य रूप होते हुए भी तुम सबको देखने में समर्थ हो । अस्तु तुम किसी को पीड़ित न करते हुए सुखपूर्वक विचरण करो ॥६ ॥

१९९७. ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।

अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७ ॥

जो जन्तु पीठ के सहारे (सर्पादि) सरकते हैं, जो पैरों के सहारे (कानखजूरा) चलते हैं, जो सुई के समान (बिच्छू) छेदते हैं, जो महाविषैले हैं और जो दिखाई नहीं पड़ते, ये सभी विषैले जीव एक साथ हमें कष्ट न पहुंचायें ॥७ ॥

१९९८. उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।

अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८ ॥

सबके दर्शनीय, अदृश्य दोषविकारों के नाशक, सूर्यदेव पूर्व दिशा में उदय होते हैं ।वे सभी अदृश्य प्राणियों और सभी प्रकार की कुटिल चाल धारण करने वाले राक्षसी तत्त्वों को दूर करते हुए प्रकट होते हैं ॥८ ॥

१९९९. उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् । आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९ ॥

अनेक अदृश्य जन्तुओं को विनष्ट करते हुए ये सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ऊपर उठते हैं, इनके उदित होते ही सभी अनिष्टकारी (विषधारी) जीव छिप जाते हैं ॥९ ॥

२०००. सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे । सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१० ॥

आसव को जिस प्रकार पात्र में रखते हैं, उसी प्रकार हम सूर्य किरणों में विष को रखते हैं । इस विष से सूर्यदेव प्रभावित नहीं होते तथा हमारे लिए विषनिवारक सिद्ध होते हैं । अश्वारूढ़, सूर्यदेव इस विष का निवारण करते हैं, तथा मधुला विधा इस विष को मृत्युनिवारक अमृत बनाती है ॥१० ॥

२००१. इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् । सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११ ॥

कपिंजली नामक चिड़िया तेरे विष को खाये । जिससे वह न मरे तथा हमारे विष का भी निवारण हो और मधुला शक्ति इस विष के लिए मृत्युनिवारक (अमृत) सिद्ध हो ॥११ ॥

२००२. त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् । ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२ ॥

इक्कीस प्रकार की ऐसी छोटी-छोटी चिड़ियाएं हैं, जो विष के फलो को खा जाती हैं, पर फिर भी प्रभावित नहीं होतीं । इसी प्रकार हम भी विष से मृत्युरहित हों । अश्वारूढ़ सूर्य ने इस विष का निवारण कर दिया है; मधुला विधा विष को अमृत रूप में बदल देती है ॥१२ ॥

२००३. नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।

सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३ ॥

निन्यानबे प्रकार की औषधियाँ हैं, जो विषों की निवारक हैं, उन सभी को हम जानते हैं । उनके उपयोग से हर प्रकार के विष का निवारण होता है । अश्वारूढ़ सूर्य इसका निवारण करें तथा मधुला शक्ति इसे अमृत बनाये ॥१३ ॥

२००४. त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।

तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४ ॥

हे विष पीड़ित प्राणी !जिस प्रकार घड़ों में स्त्रियाँ जल ले जाती हैं, उसी प्रकार इक्कीस मोरनियाँ और भगिनीरूपा सात नदियाँ आपके विष का निवारण करें ॥१४ ॥

२००५. इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।

ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५ ॥

इतना छोटा सा यह विषयुक्त कीट है, ऐसे हमारी ओर आने वाले छोटे कीट को हम पत्थर से मार डालते हैं । उसका विष अन्य दिशाओं में चला जाय ॥१५ ॥

२००६. कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।

वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥

पहाड़ से आने वाले कुषुम्भक (नेवला) ने यह कहा कि बिच्छू का विष प्रभावहीन है । हे बिच्छू ! तुम्हारे विष में प्रभाव नहीं है ॥१६ ॥

[इस सूक्त में विषैले जीवों के विष के शमन के सूत्र हैं, जो शोध के योग्य हैं ।]

॥इति प्रथमं मण्डलम् ॥

॥अथ द्वितीयं मण्डलम्॥

[सूक्त - १]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। देवता- अग्नि। छन्द - जगती।]

२००७. त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।

त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥१॥

हे मनुष्यों के स्वामी अग्निदेव ! आप द्युलोक से प्रकट होकर शीघ्र प्रकाशित होने वाले तथा पवित्र हैं। आप जल से, (बड़वाग्नि रूप में) पाषाण घर्षण से, (चिनगारी रूप में) वनों से, (दावानल रूप में) ओषधियों से (तेजाबयुक्त ज्वलनशील रूप में) उत्पन्न होने वाले हैं॥१॥

२००८. तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः।

तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे॥२॥

हे अग्ने ! ऋत्विजों (यज्ञीय प्रक्रिया के संचालकों) में आप ही होता (देव आवाहन कर्ता), पोता (पवित्रता बनाये रखने वाले), नेष्टा (सोमादि वितरक), आग्नीध्र (अग्निकर्म के ज्ञाता) हैं। आप ही यज्ञ की कामना करने वाले प्रशास्ता (प्रेरणा देने वाले), अध्वर्यु (कर्मकाण्ड संचालक) तथा ब्रह्मा (निरीक्षक) हैं। यज्ञकर्त्ता गृहपति (यजमान) भी आप ही हैं॥२॥

२००९. त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।

त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या॥३॥

हे अग्निदेव ! आप सज्जनों को प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्र हैं। आप ही सबके स्तुत्य सर्वव्यापी विष्णु हैं। हे ज्ञान सम्पन्न अग्निदेव ! आप उत्तम ऐश्वर्य से युक्त ब्रह्मा हैं, विविध प्रकार की बुद्धि को धारण करने के कारण आप मेधावी हैं॥३॥

२०१०. त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।

त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥४॥

हे अग्निदेव ! आप व्रतों को धारण करने वाले राजा वरुण हैं। दुष्टनाशक तथा सबके स्तुत्य मित्र देवता हैं। सर्वव्यापी आप दान देने वाले सज्जनों के पालक अर्यमा हैं। आप ही सूर्य हैं। अतः हे अग्निदेव ! दिव्य गुणों से युक्त अभीष्ट फल हमें प्रदान करें॥४॥

२०११. त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।

त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः॥५॥

हे अग्निदेव ! साधकों के लिए आप श्रेष्ठ पराक्रम प्रदान करने वाले त्वष्टादेव हैं। सभी स्तुतियाँ आपके लिये हैं। आप हमारे मित्र और सजातीय (बन्धु) हैं। आप शीघ्र ही उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों को आश्रय प्रदान करने वाले महान् बली हैं॥५॥

२०१२. त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।

त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना॥६॥

हे अग्निदेव ! आप द्युलोक के प्राणदाता रुद्र हैं । आप अन्नाधिपति तथा मरुतों के बल हैं । आप वायु के समान द्रुतगामी अश्व पर आरूढ़ होकर, कल्याण की कामना वाले गृहस्वामी के यहाँ जाते हैं । आप पोषणकर्ता पूषादेव हैं, अत: आप स्वयं ही मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥६ ॥

२०१३. त्वमग्ने द्रविणोदा अरङ्कृते त्वं देव: सविता रत्नधा असि ।

त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! प्रज्वलित करने वाले को आप धन प्रदान करते हैं । आप रत्नों के धारणकर्ता सवितादेव हैं । हे प्रजापालक अग्निदेव ! आप ही धनाधिपति 'भग' देव हैं । जो अपने घर में आपको प्रज्वलित रखता है, उसकी आप रक्षा करें ॥७ ॥

२०१४. त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।

त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८ ॥

हे प्रजापालक अग्निदेव ! प्रजा अपने घरों में प्रकाशमान तथा ज्ञानयुक्त अग्नि के रूप में आपको प्राप्त करती है । हे सुन्दर ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं तथा लाखों फल प्रदान करने वाले हैं ॥८

२०१५. त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।

त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्त्वं सखा सुशेव: पास्याधृष: ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों के पितर हैं, वे यज्ञों द्वारा आपको तृप्त करते हैं । आपका भ्रातृत्व प्राप्त करने के लिए वे शरीर को तेजस्वी बनाने वाले आपको कर्मों से प्रसन्न करते हैं । सेवा करने वालों के लिए आप पुत्र (तुष्टिकर) बन जाते हैं । आप मित्र, हितैषी तथा विघ्ननाशक बनकर हमारी रक्षा करें ॥९ ॥

२०१६. त्वमग्न ऋभुराके नमस्य१स्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।

त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनि: ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आपका अत्यन्त तेजस्वी स्वरूप भी समीप से स्तुति के योग्य है । आप प्रचुर अन्न आदि भोग्य सामग्री से युक्त बल के स्वामी हैं । आप काष्ठों को जलाकर प्रकाशित होते हैं । आप दान देने वालों के यज्ञ को पूर्ण करते हैं ॥१० ॥

२०१७. त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।

त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप दान-दाताओं के लिए 'अदिति' हैं । वाणी रूपी स्तुतियों से विस्तृत होने के कारण 'होत्रा' तथा 'भारती' हैं । सैकड़ों वर्ष की आयु प्रदान करने में समर्थ होने के कारण आप 'इळा' हैं । हे धनाधिपति अग्निदेव ! आप वृत्रहन्ता और 'सरस्वती' हैं ॥११ ॥

२०१८. त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ सन्दृशि श्रिय: ।

त्वं वाज: प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथु: ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ पोषक अन्न हैं । आपके द्वारा ही वरण करने योग्य तथा दर्शनीय ऐश्वर्य प्राप्त होता है । आप सदा बढ़ने वाले तथा महान् हैं । आप प्रचुर अन्न एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥१२ ॥

२०१९. त्वामग्न आदित्यास आस्य१ त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।

त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३ ॥

हे दूरदर्शी अग्निदेव !आप आदित्यों के मुख हैं । पवित्र देवगणों के लिए आप जिह्वा रूप हैं । यज्ञ में

दानशील देवगण आपका ही आश्रय प्राप्त करते हैं और आपको समर्पित की गई आहुतियों को ग्रहण करते हैं ॥१३ ॥

२०२०. त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।

त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! परस्पर द्रोह न करने वाले, अमरत्व प्राप्त सभी देवगण आपके मुख से ही हविष्यान्न ग्रहण करते हैं । आपका आश्रय प्राप्त करके ही मनुष्य अन्नादि को ग्रहण करते हैं । हे अग्निदेव ! आप वृक्ष-वनस्पतियों में ऊर्जा के रूप में विद्यमान रहकर अन्नादि को उत्पन्न करते हैं ॥१४ ॥

[विज्ञान द्वारा प्रतिपादित नाइट्रोजन साइकिल (नत्रजन चक्र) की भाँति यह ऋचा प्रकृति में संव्याप्त ऊर्जा चक्र (एनर्जी साइकिल) का प्रतिपादन करती है ।]

२०२१. त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।

पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी शक्ति से देवगणों से संयुक्त एवं पृथक् होते हैं तथा अपने महान् गुणों के कारण ही देवगणों में सर्वश्रेष्ठ हैं । आपको जो कुछ भी अन्न समर्पित किया जाता है, उसे आप द्युलोक तथा पृथिवी लोक के मध्य विस्तृत कर देते हैं ॥१५ ॥

[यज्ञ को समर्पित श्रेष्ठ पदार्थ सूक्ष्मीकृत तथा विस्तृत होकर आकाश एवं पृथ्वी को लाभ पहुँचाते हैं ।]

२०२२. ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६ ॥

हे अग्निदेव ! जो ज्ञानीजन स्तोताओं को गाय तथा घोड़े आदि पशुओं का दान करते हैं, उन दानियों सहित हमें श्रेष्ठ (यज्ञ) स्थल पर शीघ्र ले चलें । हम वीर सन्तति से युक्त यज्ञ में उत्तम स्तुतियाँ करें ॥१६ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- अग्नि । **छन्द** - जगती ।]

२०२३. यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।

समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥१ ॥

हे याज्ञिको ! समिधाओं से प्रज्वलित होने वाले, उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, उत्तम अन्न सम्पदा से युक्त, सुखपूर्वक उद्देश्य तक पहुँचाने वाले, संग्राम में बल प्रदान करने वाले होता रूप अग्निदेव का विस्तार करो तथा हविष्यान्न समर्पित करके स्तुतियों द्वारा पूजन करो ॥१ ॥

२०२४. अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।

दिवइवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जिस तरह गौएँ अपने बछड़े की कामना करती हैं, उसी तरह दिन तथा रात्रि में हम आपको प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । बहुतों के द्वारा वांछनीय आप भली प्रकार समर्थ होकर द्युलोक की तरह विस्तार पाते हैं । युगों-युगों से आप मनुष्य के पास विद्यमान हैं तथा दिन के समान रात्रि में भी प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

२०२५. तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।

रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३ ॥

श्रेष्ठ कर्मा, द्युलोक और पृथिवी लोक में संव्याप्त, श्रेष्ठ ऐश्वर्य युक्त रथ वाले, तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त, प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ, मित्र के समान प्रशंसनीय, अग्निदेव को देवगण सभी लोकों में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

२०२६. तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।

पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४ ॥

अन्तरिक्ष से वृष्टि कराने वाले, चन्द्रमा के समान उत्तम कान्तिमान्, पृथिवी पर सर्वत्र गमनशील, ज्वालाओं से दृष्टिगत होने वाले, द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों में सेतु के समान व्याप्त अग्निदेव को अपने घर में एकान्त (सुरक्षित) स्थान पर लोग स्थापित करते हैं ॥४ ॥

[सेतु (पुल) दो स्थानों को जोड़ता है, बीच के स्थान से अप्रभावी रहता है। अग्निदेव (ताप) द्युलोक से चलकर पृथ्वी के पदार्थों को ऊर्जा देते हैं, अंतरिक्ष में उस ऊर्जा का क्षरण नहीं होता । इस विज्ञान सम्मत तथ्य को यह ऋचा प्रकट करती है ।]

२०२७. स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।

हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५ ॥

वे अग्निदेव होता रूप में सम्पूर्ण यज्ञ स्थल को सभी ओर से संव्याप्त करते हैं । याजक गण उन्हें हविष्यान्न तथा स्तुतियों के द्वारा अलंकृत करते हैं । जिस तरह से आकाश नक्षत्रों से प्रकाशित होता है उसी प्रकार तेजस्वी ज्वालाओं से समिधाओं के बीच में बढ़ते हुए अग्निदेव द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं ॥५ ॥

२०२८. स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।

आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे लिए कल्याणकारी ऐश्वर्य प्रदान करते हुए दीप्तिमान् हों । द्यावा-पृथिवी को हमें सुख प्रदान करने वाली बनाएँ और मनुष्यों द्वारा समर्पित किये गये हविष्यान्न को देवताओं तक पहुँचाएँ ॥६ ॥

२०२९. दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।

प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें हजारों तरह की विभूतियाँ प्रचुर मात्रा में प्रदान करें । कीर्तिदायी अन्न प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करें । उषायें आपको आदित्य के समान प्रकाशित करती हैं, अतः द्युलोक तथा पृथ्वी लोक को ज्ञान के सहारे हमारे अनुकूल बनाएँ ॥७ ॥

२०३०. स इधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेण भानुना ।

होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८ ॥

उषा की समाप्ति के बाद प्रज्वलित अग्निदेव अपने उज्ज्वल तेज से प्रकाशित होते हैं । श्रेष्ठयाज्ञिक, प्रजाधिपति वे अग्निदेव मनुष्यों की स्तुतियों से प्रशंसित होते हुए प्रिय अतिथि की तरह पूज्य होते हैं ॥८ ॥

२०३१. एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।

दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त तेजस्वी देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं । मानव समुदाय के बीच में आप स्तुतियों से तृप्त होते हैं । याजकों को आप कामधेनु के समान असंख्य प्रकार का धन प्रदान करते हैं ॥९ ॥

२०३२. वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।

अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्व१र्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! हम पराक्रम तथा ज्ञान के द्वारा सामर्थ्यशाली बनकर मानव समुदाय में श्रेष्ठ बनें । हमारा उच्च स्तरीय, अनन्त तथा दूसरों के लिए अप्राप्त धन समाज के पाँचों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद) वर्णों में सूर्य की तरह प्रकाशित हो ॥१० ॥

[जो विशेष विभूतियाँ हमें प्राप्त हैं, वे बिना भेद-भाव के समाज के, सभी वर्गों की प्रगति के लिए प्रयुक्त होनी चाहिए ।]

२०३३. स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।

यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! श्रेष्ठकुल में जन्म लेने वाले ज्ञानीजन यज्ञ में अन्न की कामना करते हैं तथा धन - धान्य से सम्पन्न मनुष्य हमारी इच्छाओं को जानने वाले आपको प्रशंसनीय, पूजनीय तथा तेजस्वी रूप में अपने घरों में प्रज्वलित करते हैं ॥११ ॥

२०३४. उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।

वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२ ॥

हे ज्ञानोत्पादक अग्निदेव ! ज्ञानी स्तोताओं सहित हम दोनों सुख की कामना से आपके आश्रित हों । आप हमारे लिए उत्तम सन्तति, रहने के योग्य गृह आदि तथा श्रेष्ठ सम्पत्ति प्रदान करें ॥१२ ॥

२०३५. ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! जो ज्ञानीजन स्तोताओं को श्रेष्ठ गौएं तथा बलशाली घोड़ों से युक्त धन प्रदान करते हैं, आप उन्हें तथा हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें । यज्ञों में वीर सन्तति से युक्त होकर हम आपकी स्तुति करें ॥१३ ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । देवता-आप्री सूक्त १ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि, २ नराशंस, ३ इळ, ४ बर्हि, ५ दिव्यद्वार, ६ उषासानक्ता, ७ दिव्य होतागण प्रचेतस, ८ तीन देवियाँ-सरस्वती, इळा, भारती, ९ त्वष्टा, १० वनस्पति, ११ स्वाहाकृति । छन्द-जगती ।]

२०३६. समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।

होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥१ ॥

प्रदीप्त अग्निदेव पृथ्वी पर स्थापित होकर समस्त लोकों में व्याप्त हैं । श्रेष्ठ बुद्धिवाले, पवित्र बनाने वाले, हविष्यान्न ग्रहण करने वाले तथा अत्यन्त तेजस्वी एवं पूज्य अग्निदेव देवों की पूजा करें ॥१ ॥

२०३७. नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।

घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥२ ॥

सबके द्वारा स्तुत्य ये अग्निदेव, पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों लोकों को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकाशित करते हुए, स्नेहयुक्त मन से हविष्यान्न को ग्रहण करते हुए यज्ञ स्थल में अपने दिव्य-प्रभाव को प्रकट करते हैं ॥२ ॥

२०३८. ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।

स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३ ॥

हे पूज्य अग्निदेव ! हमारे हित साधन के लिए, हमारे पूजन को स्वीकार कर मनुष्यों से पूर्व ही आप श्रेष्ठ मन से देवों की पूजा करें । हे अग्निदेव ! सामर्थ्यवान् मरुत् देव तथा कभी भी परास्त न होने वाले इन्द्रदेव को हमारे पास लायें । हे मनुष्यो ! यज्ञ स्थल में स्थापित अग्निदेव की उपासना करो ॥३ ॥

२०३९. देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।

घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४ ॥

हे कुशाओं में स्थित अग्निदेव! यज्ञ कुण्ड में बढ़ते हुए आप हमें वीर सन्तति तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करें । हे वसुओ, आदित्यो तथा विश्वे-देवो ! घृत से सिंचित एवं फैलाए गये कुश पर आप स्थापित हों ॥४ ॥

यज्ञाग्नि को देव मुख तो कहा ही गया है । यहाँ उसे दिव्य द्वार (देवीःद्वारः) कहकर संबोधित किया गया है—

२०४०. वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।

व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५ ॥

नमस्कार पूर्वक आवाहित होने वाला, विस्तृत तथा सुखकर यह जो दिव्य द्वार (यज्ञाग्नि) है, मानव इसका सहारा ले (देवों के साथ आदान-प्रदान हेतु इसका उपयोग करें) और (देवों से) सम्पर्क जोड़ने वाला-जीर्ण न होने वाला यह दिव्य द्वार श्रेष्ठ संतति एवं सुयश प्रदान करते हुए सतत विकासशील रहे ॥५ ॥

यहाँ दिन और रात्रि की प्रतीक उषा और नक्ता देवियों को सम्बोधित किया गया है--

२०४१. साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।

तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६ ॥

यज्ञ के स्वरूप को सुन्दरता प्रदान करने वाली उषा और नक्ता देवियाँ वरणी (वस्त्र बुनने वाली) के समान शब्दायमान हो, हमारे उत्तम कर्मों को प्रेरणा देती हुई पूजित होती हैं । ये देवियाँ (काल विभाग रूपी) फैले धागों को बुनती हुई (मनुष्य के जीवन-रूपी वस्त्र को) उत्तम प्रकार से गति करने योग्य बनाकर सभी प्रकार की कामनाओं को पूरा करते हुए अन्न और दुग्धादि से पूर्ण बनाती हैं ॥६ ॥

२०४२. दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।

देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७ ॥

दोनों दिव्य होता अग्रणी, विद्वान् तथा रूपवान् हैं । वे ऋचाओं के माध्यम से सरलता पूर्वक देव यज्ञ सम्पन्न करते हैं । पृथ्वी की नाभि (यज्ञकुण्ड) में वे तीनों सवनों में भली प्रकार संयुक्त होते हैं ॥७ ॥

[निरुक्तकार यास्क के अनुसार दिव्य अग्नि से अग्नि के दो रूप प्रकट हुए, एक अन्तरिक्ष में पर्जन्य चक्र तथा दूसरे पृथ्वी पर यज्ञीय चक्र का संचालन करते हैं । जिससे पृथ्वी पर पोषक तत्त्व पैदा होते हैं । पृथ्वी पर उत्पन्न पोषक पदार्थों से प्राणि जगत् का पालन होता है । यह दोनों यज्ञ उक्त दो होता करते हैं । जब श्रेष्ठ याजक यज्ञ करते हैं, तो यज्ञ कुण्ड में चलने वाली प्रक्रिया से अन्तरिक्षीय पर्जन्य तथा जीवजगत् के पालन दोनों की पुष्टि होती है । इस रूप में दोनों होता वहाँ संयुक्त हो जाते हैं ।]

२०४३. सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।

तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८ ॥

अनेक श्रेष्ठ गुणों से युक्त देवी इळा, देवी भारती तथा देवी सरस्वती ये तीनों देवियाँ हमारे इस यज्ञ स्थल पर विद्यमान रहकर अपनी धारणा शक्ति के द्वारा हमारे इस यज्ञ का संरक्षण करें ॥८ ॥

२०४४. पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९ ॥

अग्निरूप त्वष्टा देव हमें श्रेष्ठ सन्तान प्रदान करें । वह पुत्र सुवर्ण जैसी कान्तिवाला, उत्तम हृष्ट-पुष्ट, अन्न तथा पराक्रम को धारण करने वाला, दीर्घायु, वीर, श्रेष्ठ बुद्धिमान्, उत्तम गुणों की कामना करने वाला तथा देवों द्वारा प्रदर्शित उत्तम मार्ग का अनुगामी हो ॥९ ॥

२०४५. वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१० ॥

वनस्पतियों से अपना प्रकाश फैलाते हुए अग्निदेव हमारे समीप स्थित हों । ये अग्निदेव अपनी शक्ति से हविष्यान्न का परिपाक करते हैं । दिव्य गुण सम्पन्न, शान्त स्वभाव वाले ये अग्निदेव तीन प्रकार से तैयार हविष्यान्न को देवों के पास पहुँचायें ॥१० ॥

२०४६. घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११ ॥

इन अग्निदेव का मूल आश्रय स्थल (तेज) घी है, अतः इन्हें घृत से सिंचित करते हैं । हे बलशाली अग्निदेव ! स्नेह पूर्वक समर्पित की गई आहुतियों (हविष्यान्न) को सभी देवों तक पहुँचाकर उन्हें प्रसन्न करें ॥११ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि-** सोमाहुति भार्गव । **देवता-** अग्नि । **छन्द -** त्रिष्टुप् ।]

२०४७. हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१ ॥

हे याजको ! दिव्य गुण सम्पन्न सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता तथा मनुष्यों से लेकर देवों तक सूर्यदेव के समान सभी के आधार रूप जो अग्निदेव हैं, उन प्रकाशित, पापों को नष्ट करने वाले, अतिथि के समान पूज्य तथा सबको प्रसन्न करने वाले अग्निदेव को हम आवाहित करते हैं ॥१ ॥

२०४८. इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२ ॥

अग्नि - विद्या के ज्ञाताओं ने, इन अग्निदेव को विशेष उपायों से अन्तरिक्ष में जल के निवास स्थल (मेघों में तड़ित विद्युत् के रूप में) तथा मनुष्यों के बीच पृथ्वी पर (अग्नि के रूप में) इन दोनों स्थानों में स्थापित किया । समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, द्रुतगामी अश्वों वाले ये अग्निदेव सभी सामर्थ्यवान् शत्रुओं को पराजित करें ॥२ ॥

२०४९. अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३ ॥

जिस प्रकार यात्रा में जाने वाला मनुष्य अपने मित्र को घर की रखवाली के लिए नियुक्त करता है, उसी प्रकार प्रिय तथा हितकारी अग्निदेव को देवों ने मानवी प्रजा के मध्य स्थापित किया ॥३ ॥

२०५०. अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४ ॥

जिस प्रकार अपने शरीर की स्वस्थता आनन्ददायी होती है, उसी प्रकार काष्ठादि को भस्म करके वृद्धि

को प्राप्त हुए अग्निदेव की तेजस्विता भी सबके लिए रमणीय होती है । जिस तरह रथ में जुड़ा हुआ घोड़ा अपनी पूँछ के बालों को कँपाता है, उसी प्रकार वृक्ष वनस्पतियों को धारण करने वाले अग्निदेव की ज्वालायें दिखाई देती हैं ॥४ ॥

२०५१. आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥५ ॥

अग्निदेव की महानता का गान करने वाले तथा अग्निदेव की कामना करने वाले स्तोताजनों को अग्निदेव अपने जैसा ही तेज प्रदान करते हैं तथा हव्य समर्पित किए जाने पर अपने अति मनोहर स्वरूप को प्रदर्शित करते हुए वृद्ध (मन्द) होकर भी बार-बार तरुण (कान्तिमान् ज्वालाओं वाले) हो जाते हैं ॥५ ॥

२०५२. आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६ ॥

जैसे प्यासा व्यक्ति पानी पीता है, उसी प्रकार द्रुतगति से वनों को जलानेवाले अग्निदेव, रथ को वहन करने वाले घोड़े की भाँति शब्द करते हैं । वह 'कृष्ण धूम्र-मार्ग' से जाने वाले, सभी को ताप देने वाले, रमणीय अग्निदेव नक्षत्रों से प्रकाशित आकाश की तरह सुशोभित होते हैं ॥६ ॥

२०५३. स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७ ॥

जो अग्निदेव विविध रूपों में विश्वव्यापी हैं, जो विशाल पृथिवी के पदार्थों को जलाते हैं, वे तेजस्वी अग्निदेव सभी व्यथाकारी, कण्टकों को, सूखे काष्ठों तथा वनस्पतियों को अपनी ज्वालाओं से जलाते हुए रक्षक रहित पशु के समान इधर-उधर स्वेच्छा से जाते हैं ॥७ ॥

२०५४. नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आपने पूर्व समय में भी हमारा संरक्षण किया है, अतः हम तीसरे सवन में भी मनोहारी स्तोत्रों का उच्चारण करके उसका स्मरण करते हैं । हे अग्निदेव आप हमें श्रेष्ठ धन तथा महान् कीर्तिमान् वीर सन्तति प्रदान करें ॥८ ॥

२०५५. त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! जिस तरह गुफा में बैठे हुए अहंकार रहित स्तुति करने वाले ऋषियों को उत्तम सन्तति प्रदान करके आपने संरक्षण प्रदान किया, उसी तरह हमारे द्वारा ज्ञान पूर्वक की गई स्तुतियों से हमें श्रेष्ठ धन देते हुए संरक्षण प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि**- सोमाहुति भार्गव । **देवता**- अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

२०५६. होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१ ॥

शरीर में चेतना उत्पन्न करने वाले ये होता एवं पिता रूप अग्निदेव पितरों की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए । ये हमें भी बलशाली, पूजनीय, रक्षा साधन से सम्पन्न तथा विजय दिलाने योग्य धन प्रदान करने में समर्थ हों ॥१ ॥

२०५७. आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२ ॥

यज्ञ के नायक रूप अग्निदेव में सात रश्मियाँ व्याप्त हैं । पवित्र बनाने वाले वे अग्निदेव मनुष्य की तरह यज्ञ के आठवें (दीर्घायु प्रदान करने वाले होकर) स्थान में पूर्ण रूप से व्याप्त होते हैं । ॥२ ॥

२०५८. दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३ ॥

अग्निदेव को लक्ष्य करके इस यज्ञ में मन्त्रोच्चारण के साथ जो हविष्यान्न समर्पित किया जाता है, उसे ये अग्निदेव जानते हैं । जिस तरह धुरी के चारों ओर चक्र घूमते हैं, उसी तरह सभी स्तुतियां इन अग्निदेव के चारों ओर घूमती हैं ॥३ ॥

२०५९. साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानु रोहते ॥४ ॥

उत्तम प्रकार से शासन करने वाले ये अग्निदेव शुद्ध करने वाले पवित्र कर्मों के साथ ही उत्पन्न हुए । जो (व्यक्ति) अग्निदेव के इस सनातन स्वरूप को जानता है, वह वृक्ष की शाखाओं के समान बराबर वृद्धि को प्राप्त होता है और क्रम से ऊँचे- ही -ऊंचे चढ़ता है ॥४ ॥

२०६०. ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुःसचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५ ॥

नेता रूप अग्निदेव के तीनों रूपों को उत्तम प्रकार से तेजस्वी बनाने वाली, बहनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली अँगुलियाँ प्रज्वलित करती हैं, ये अग्निदेव मनुष्यों को दुधारू गौ के समान सुखी बनाते हैं ॥५ ॥

२०६१. यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित । तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६

जब माता रूपी वेदी के पास बहन रूपी अँगुलियाँ घृत भरकर (जुहूपात्र लेकर) जाती हैं, तब अध्वर्यु अग्निदेव के समीप अँगुलियों के आने पर उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं - जैसे वर्षा के जल को पाकर अन्न ॥६ ॥

२०६२. स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् । स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥७

ये अग्निदेव श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त सामर्थ्य प्रदान करने हेतु ऋत्विक् के समान हैं । हम उन ऋत्विक् रूप अग्निदेव के निमित्त स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए हविष्यान्न समर्पित करते हुए यज्ञ करें ॥७ ॥

२०६३. यथा विद्वाँ अरंकरद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार ज्ञानी जन भली-भाँति सभी देवों को सन्तुष्टि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हमारे द्वारा जो भी यज्ञीय कार्य सम्पन्न हो, वह आपकी तृप्ति के लिए ही हो ॥८ ॥

[सूक्त - ६]

[ऋषि- सोमाहुति भार्गव । देवता- अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

२०६४. इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारी इन समिधाओं तथा आहुतियों को स्वीकार करते हुए हमारे स्तोत्रों को भली-भाँति सुनें ॥१ ॥

२०६५. अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे। एना सूक्तेन सुजात ॥२ ॥

हे शक्ति को क्षीण न करने वाले, द्रुतगामी, साधनों में गति प्रदान करने वाले, उत्तम ख्याति वाले अग्निदेव ! हमारी इस यज्ञ क्रिया तथा सूक्त से आप प्रसन्न हों ॥२ ॥

२०६६. तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः। सपर्येम सपर्यवः ॥३ ॥

हे ऐश्वर्यप्रदाता अग्निदेव ! आपकी प्रतिष्ठा चाहने वाले हम आपके स्तुत्य तथा धन प्रदान करने वाले स्वरूप की स्तुतियों के द्वारा पूजा करते हैं ॥३ ॥

२०६७. स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यप्रदाता धनाधिपति अग्निदेव ! आप ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानवान् होकर हमारी कामनाओं को जानते हुए द्वेष करने वाले हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥४ ॥

२०६८. स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम्। स नः सहस्रिणीरिषः ॥५ ॥

अन्तरिक्ष से वे अग्निदेव हमारे लिए वृष्टि करें। वे हमें श्रेष्ठ बल तथा हजारों प्रकार का अन्न प्रदान करें ॥५ ॥

२०६९. ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा। यजिष्ठ होतरा गहि ॥६ ॥

बलशाली तथा अत्यन्त प्रशंसा के योग्य, दुष्टों को पीड़ित करने वाले, होतारूप हे अग्निदेव ! आपके संरक्षण की कामना से स्तोत्र रूप वाणियों से हम आपका पूजन करते हैं। अतः आप हमारे पास आयें ॥६ ॥

२०७०. अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे। दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७ ॥

हे मेधावान् अग्निदेव ! आप मनुष्यों के हृदयाकाश में विद्यमान रहकर उनके दोनों (वर्तमान तथा पिछले) जन्मों को जानते हैं। आप मित्रतुल्य सभी के हितकारी हैं ॥७ ॥

२०७१. स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक्। आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप ज्ञानी हैं, अतः हमारी कामनाओं को पूर्ण करें। आप चैतन्यतायुक्त हैं, अतः हमारे हविष्यान्न को यथा क्रम से देवताओं तक पहुँचा कर हमारे इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों ॥८ ॥

[सूक्त - ७]

[ऋषि- सोमाहुति भार्गव। देवता- अग्नि। छन्द - गायत्री।]

२०७२. श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर। वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१ ॥

हे अतीव बलशाली अग्निदेव ! आप सभी के पालक तथा सुख प्रदान करने वाले आश्रयदाता हैं, अतः महान् तेजस्वी तथा बहुतों द्वारा चाहा गया ऐश्वर्य हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें ॥१ ॥

२०७३. मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च। पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! देवताओं तथा मनुष्यों के दुश्मन हमारे ऊपर स्वामित्व स्थापित न करें। अपितु आप उन शत्रुओं से हमें बचायें ॥२ ॥

२०७४. विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्याइव। अति गाहेमहि द्विषः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! जिस तरह जल की धारायें बड़ी चट्टानों को पार कर जाती हैं, उसी तरह आपका संरक्षण पाकर द्वेष करने वाले सम्पूर्ण शत्रुओं को हम पार कर जायें ॥३ ॥

२०७५. शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे। त्वं घृतेभिराहुतः ॥४ ॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! आप पवित्र तथा वन्दना के योग्य हैं। आप घृत की आहुतियों से अत्यन्त प्रकाशित होते हैं ॥४ ॥

२०७६. त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः। अष्टापदीभिराहुतः ॥५ ॥

हे मनुष्यों के हितकारी अग्निदेव ! आप हमारी सुन्दर गौओं, बैलों तथा गर्भिणी गौओं द्वारा पूजित हैं ॥५ ॥

२०७७. द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः। सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६ ॥

इन अग्निदेव का भोजन समिधा रूपी अन्न है, जिनमें घृत का सिंचन किया जाता है, जो सनातन तथा होता रूप में वरण के योग्य है। बल से उत्पन्न ऐसे अग्निदेव अद्‌भुत गुणों के कारण रमणीय हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- अग्नि। **छन्द** - गायत्री ६ अनुष्टुप्।]

२०७८. वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि। यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१ ॥

हे मनुष्य ! जिस प्रकार धन-धान्य की कामनावाले रथों को उत्तम रीति से तैयार करते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त यशस्वी, सबके लिए सुखकारी अग्निदेव की स्तुतियों के द्वारा उनका पूजन करो ॥१ ॥

२०७९. यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिम्। चारुप्रतीक आहुतः ॥२ ॥

जो अग्निदेव श्रेष्ठ नेतृत्व प्रदान कर उत्तम पथ पर ले जाते हैं, जो अविनाशी तथा श्रेष्ठ उपक्रम वाले हैं, ऐसे शत्रु नाशक, दानशील अग्निदेव का हम आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

२०८०. य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते। यस्य व्रतं न मीयते ॥३ ॥

जो अग्निदेव घरों में अपनी कान्ति से युक्त होकर प्रतिष्ठित होते हैं, जो अग्निदेव दिन और रात प्रशंसा के योग्य हैं तथा जिनका व्रत कभी खण्डित नहीं होता; वे अग्निदेव पूज्य तथा प्रशंसनीय हैं ॥३ ॥

२०८१. आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा। अञ्जानो अजरैरभि ॥४ ॥

जिस तरह सूर्य से द्युलोक प्रकाशित होता है, उसी तरह वे अविनाशी, आश्चर्य कारक अग्निदेव अपनी ज्वालाओं को प्रकट करके सर्वत्र प्रकाशित होते हैं ॥४ ॥

२०८२. अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः। विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५ ॥

शत्रुनाशक तथा सुशोभित अग्निदेव स्तुतियों से अत्यन्त तेजोमय होकर समस्त ऐश्वर्यों को धारण करके शोभायमान होते हैं ॥५ ॥

२०८३. अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम्।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६ ॥

अग्नि, इन्द्र, सोम आदि अन्यान्य देवताओं के संरक्षण में हम भली - भाँति सुरक्षित हैं, अतः कभी भी नाश को न प्राप्त होते हुए हम शत्रुओं को पराजित करें ॥६ ॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- अग्नि। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

२०८४. नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१ ॥

ये अग्निदेव होता, मेधावी, प्रदीप्त, पोषक, बलशाली, तेजस्वी, उत्तम बल से युक्त, नियमों पर आरूढ़, आश्रय दाता, हजारों का भरण-पोषण करने में समर्थ तथा सत्यवक्ता हैं। ऐसे अग्निदेव होता के सदन में प्रतिष्ठित हों ॥१ ॥

२०८५. त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।

अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप ही हमारे दूत तथा आप ही हमारे रक्षक हैं । आप धन प्रदाता हैं, अतः हमारी सन्तति को प्रमाद रहित तथा दीप्तिवान् बनाकर हमारे कुल का विस्तार करें तथा भली-भाँति प्रज्वलित होकर हमारे शरीर की रक्षा करें ॥२ ॥

२०८६. विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।

यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपके उत्पत्तिस्थान द्युलोक में हम स्तुतियों द्वारा आपका पूजन करें, द्युलोक से नीचे अन्तरिक्ष में भी स्तुति युक्त वचनों से आपका पूजन करें और जहाँ आप प्रकट हुए हैं, उस पृथ्वी लोक में यज्ञ में प्रज्वलित होने पर हविष्यान्न समर्पित करके हम आप का पूजन करें ॥३ ॥

२०८७. अग्ने यजस्व हविषा यजीयान् श्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।

त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ याज्ञिक हैं, अतः स्वीकार करने योग्य हमारे उपयुक्त पदार्थ एवं धन हमें शीघ्र प्रदान करें । आप हमारी स्तुतियों पर ध्यान दें । आप धनाधिपति हैं ॥४ ॥

२०८८. उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।

कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५ ॥

हे दुःखनाशक अग्निदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त (दिव्य तथा पार्थिव) दोनों प्रकार का धन कभी भी नष्ट नहीं होता, अतः आप स्तोताओं को यशस्वी बनायें और उत्तम सन्तति युक्त धन प्रदान करें ॥५ ॥

२०८९. सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।

अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी ज्वालाओं के द्वारा हमें उत्तम ऐश्वर्य से युक्त करें । आप किसी से भी तिरस्कृत न होने वाले, उत्तम याज्ञिक देवताओं के पोषक तथा संकटों से पार करने वाले श्रेष्ठ रक्षक हैं । आप तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् तथा कल्याणकारी रूप में सर्वत्र प्रकाशित हों ॥६ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । **देवता**- अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२०९०. जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।

श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१ ॥

जो अग्निदेव यज्ञ स्थल में मनुष्य द्वारा प्रज्वलित होते हैं, वह पिता के समान पालक, प्रमुख तथा पूज्य होते हैं । वे अग्निदेव शोभायुक्त, अमर, विविध ज्ञानों से युक्त, अन्नवान्, बलशाली तथा सभी पदार्थों को पवित्र बनाने वाले हैं, इसलिए वह सबके द्वारा पूज्य भी हैं ॥१ ॥

२०९१. श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।

श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२ ॥

अमर, विशेष ज्ञान से युक्त, अद्भुत कान्तिमान् अग्निदेव हमारी सभी प्रकार की वाणियों से की गई प्रार्थना

को स्वीकारें । अग्निदेव के रथ को श्याम वर्ण वाले, लाल वर्ण वाले तथा शुक्लवर्ण वाले घोड़े खींचते हैं । वे अग्निदेव विविध स्थानों में भ्रमण करते हैं ॥२ ॥

२०९२. उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।

शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३ ॥

नाना प्रकार की ओषधियों (काष्ठ) में अग्निदेव गुप्त रूप से विद्यमान होते हैं ।उनको मंथन द्वारा अध्वर्युगण उत्पन्न करते हैं ।ये रात्रि में अपने तेज के कारण अन्धकार से आच्छादित न होकर सर्वत्र प्रकाशित होते हैं ॥३ ॥

२०९३. जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।

पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥४ ॥

सम्पूर्ण भुवनों में संव्याप्त, महान् तेजस्वी, काष्ठ आदि पदार्थों से खूब फैलने वाले, तिरछी ज्वालाओं से युक्त, सुन्दर, दर्शनीय अग्निदेव को हम घृत और चरु से सिंचित करके प्रदीप्त करते हैं ॥४ ॥

२०९४. आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।

मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥५ ॥

सर्वत्र व्याप्त अग्निदेव को हम घृत से सिंचित करके प्रदीप्त करते हैं । हे अग्निदेव ! समर्पित घृत की आहुतियों को शान्तिपूर्वक ग्रहण करें । मनुष्यों द्वारा पूज्य, कान्तिवान् अग्निदेव, जब तेजस्वी रूप में प्रदीप्त होते हैं , तब कोई स्पर्श नहीं कर सकता ॥५ ॥

२०९५. ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।

अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी शत्रु निवारक शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें । हम आपकी मनु की तरह दूत रूप में स्तुति करते हैं । मधुरतायुक्त, धनदाता अग्निदेव को हम स्तुति पूर्वक घृत की आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ११]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र ।
छन्द - विराट् स्थाना २१ त्रिष्टुप् ।]

२०९६. श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।

इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निवेदन को स्वीकार करें, हमें तिरस्कृत न करें । धन दान के समय हम आपके कृपा पात्र रहें । झरते हुए जल के समान (मनुष्यों द्वारा प्रेमपूर्वक) दिया गया हव्य आपकी शक्ति को बढ़ाएं ॥१ ॥

२०९७. सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव !जल को रोकने वाले अहि (असुर) के बन्धनों को तोड़कर आपने जल को मुक्त किया, उसे भूमि पर बहाया ।स्तुतियों से बढ़ते हुए आपने, अपने आपको अमर समझने वाले उस घमण्डी असुर को धराशायी किया ॥२ ॥

२०९८. उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।

तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! जिन स्तुतियों से आप आनन्दित होते हैं और रुद्रदेव की जिन स्तुति की कामना करते हैं। हे बलशाली ! आपके लिए यज्ञ में वे स्तुतियां प्रकट होती हैं ॥३ ॥

२०९९. शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।

शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके तेजस्वी बल को बढ़ाने वाले चमचमाते वज्र को आपकी भुजाओं में धारण कराते हैं। आप तेजस्वी रूप में विस्तार पाते हुए सूर्य के समान संतापदायी वज्र से आसुरी प्रजाओं को नष्ट करें ॥४ ॥

२१००. गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।

उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने द्युलोक में चढ़ाई करके जल को रोके रखने वाले, गुफा में छिपे हुए मायावी 'अहि' असुर को क्षीण करते हुए अपने पराक्रम से मारा ॥५ ॥

२१०१. स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि।

स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके द्वारा प्राचीन समय में किये गए श्रेष्ठ कार्यों का यशोगान करते हुए वर्तमान में किये जा रहे कार्यों की प्रशंसा करते हैं। हाथों में धारण किये सुन्दर वज्र की तथा सूर्य रश्मियों के समान कान्तिमान् आपके अश्वों की भी हम प्रशंसा करें ॥६ ॥

२१०२. हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।

वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्रुतगामी अश्वों की गर्जना जल वृष्टि करने वाले मेघों की तरह है। पृथिवी जल वृष्टि से खूब फैल जाती है (उपजाऊ बन जाती है)। मेघ दौड़ते हुए पर्वतों पर विचरण करते हैं ॥७ ॥

२१०३. नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।

दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८ ॥

जल युक्त अप्रमादी मेघ आकाश में गर्जना करते हुए विचरण कर रहे थे, तब स्तोताओं की वाणी रूपी स्तुतियों से इन्द्रदेव की प्रेरणा प्राप्त कर मेघ बहुत दूर-दूर तक निरन्तर विस्तृत हुए ॥८ ॥

२१०४. इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।

अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९ ॥

अन्तरिक्ष में जल का मार्ग रोकने वाले बहुत बड़े मायावी राक्षस वृत्र का इन्द्रदेव ने हनन किया। उस समय बलशाली इन्द्रदेव के सिंह-गर्जना करने वाले वज्र के भय से दोनों लोक काँपने लगे ॥९ ॥

२१०५. अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात्।

नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१० ॥

मनुष्यों का अहित करने वाले वृत्र राक्षस को जब मनुष्यों का हित करने वाले इन्द्रदेव ने मारा, तब

बलशाली इन्द्रदेव के वज्र ने बार-बार गर्जना की । तभी सोमपायी इन्द्रदेव ने इस मायावी राक्षस की माया को नष्ट कर दिया ॥१० ॥

२१०६. पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११ ॥

हे वीर इन्द्रदेव !इस सोम रस का पान अवश्य करें ।यह शोधित आनन्ददायक सोमरस आपको हर्षित करे । यह आपके पेट में जाकर आपकी शक्ति को बढ़ाये ।इस प्रकार यह (आपके माध्यम से) समस्त प्रजा की रक्षा करे ॥११

२१०७. त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम ज्ञानीजन यज्ञीय कर्म की कामना से आपका आश्रय प्राप्त करते हुए आपसे सम्बद्ध हों । आपकी बुद्धि प्राप्त करें । आपकी स्तुतियाँ करते हुए हम लोग संरक्षण की कामना करते हैं । आपके दान से हमें धन प्राप्त हो ॥१२ ॥

२१०८. स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम रक्षा की कामना से आपको तेजस्वी बनाते हैं, अतः सदैव हम आपके संरक्षण में रहें । हमारी कामना के अनुरूप वीरों (पुत्रों) से युक्त धन हमें प्रदान करें ॥१३ ॥

२१०९. रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! समान रूप से परस्पर प्रेम रखने वाले, हर्षदायक जो मरुद्गण अग्रणी होकर नेतृत्व प्रदान करने वालों की रक्षा करते हैं, उन मरुतों का मित्रवत् शक्तियुक्त आश्रय हमें प्रदान करें ॥१४ ॥

२११०. व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन यज्ञों में आप आनन्दित होते हैं, उनमें तृप्तकारी सोमरस का पान स्थिर होकर करें । सभी स्तोतागण भी उस सोम का पान करें । हे संकटों से पार करने वाले देव ! हमारे महान् स्तोत्रों से संग्राम में हमें तेजस्वी बनाएँ और आकाश को समृद्ध बनाएँ ॥१५ ॥

२१११. बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६ ॥

हे दुःख नाशक इन्द्रदेव ! जो महान् साधक स्तोत्रों द्वारा आपका स्नेह चाहते हैं एवं कुश का आसन प्रदान करते हैं, वे शीघ्र ही आपका संरक्षण प्राप्त करके अन्न और गृह प्राप्त करते हैं ॥१६ ॥

२११२. उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! जो सोम रस तीनों लोकों में सूर्य के समान बल प्रदान करने वाला है, आनन्दित होते हुए उसका पान करें । श्रेष्ठ घोड़ों पर आरूढ़ होकर दाढ़ी-मूँछों को झाड़कर सोमरस का पान करें ॥१७ ॥

२११३. धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम्।

अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥

हे वीर इन्द्रदेव ! मकड़ी के जाल के समान अवरोधों से जल को रोके रखने वाले असुर वृत्र को जिस पराक्रम से आपने छिन्न-भिन्न किया, उसी बल का प्रयोग करें । आपने दस्युओं (अवरोधों) को हटाकर मनुष्यों को सूर्य का प्रकाश उपलब्ध कराया ॥१८॥

२११४. सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।

अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥

हे इन्द्रदेव !मनुष्य मात्र का संरक्षण करते हुए आपने त्रिविध (कायिक, वाचिक तथा मानसिक) ताप देने वाले असुरों को अपने वश में किया था तथा त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को नष्ट किया था ।आप हमें भी संरक्षण प्रदान करें ॥१९

२११५. अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।

अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥

यज्ञकर्ता त्रित के शत्रु अर्बुद को इन्द्रदेव ने स्वयं बढ़ते हुए, आनन्दित होकर मारा था । अंगिराओं के मित्र इन्द्रदेव ने सूर्यदेव द्वारा रथ के पहिए घुमाने की भाँति अपने वज्र को घुमाकर असुरों को नष्ट किया ॥२०॥

२११६. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय स्तोताओं के लिए आपके द्वारा दी गई ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चित ही उत्तम धन प्राप्त कराती है । स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥२१॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२११७. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।

यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

हे मनुष्यो ! अपने पराक्रम के प्रभाव से ख्याति प्राप्त उन मनस्वी इन्द्रदेव ने उत्पन्न होते ही अपने श्रेष्ठ कर्मों से देवताओं को अलंकृत कर दिया था, जिसकी शक्ति से आकाश और पृथिवी दोनों लोक भयभीत हो गये ॥१॥

२११८. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२॥

हे मनुष्यो ! उन इन्द्रदेव ने विशाल आकाश को मापा, द्युलोक को धारण किया तथा भूकम्पों से काँपती हुई पृथिवी को मजबूत आधार प्रदान करके आग उगलते पर्वतों को स्थिर किया ॥२॥

२११९. यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

हे मनुष्यो ! जिसने वृत्र राक्षस को मारकर (जल वृष्टि कराकर) सात नदियों को प्रवाहित किया जिसने वल (राक्षस) द्वारा अपहृत की गयी गौओं को मुक्त कराया, जिसने पाषाणों के बीच अग्निदेव को उत्पन्न, किया, जिसने शत्रुओं का संहार किया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥३॥

२१२०. येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! जिसने समस्त गतिशील लोकों का निर्माण किया, जिसने दास वर्ण (अमानवीय आचरण वालों) को निम्न स्थान प्रदान किया, जिसने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और जिसने व्याध द्वारा पशुओं के समान शत्रुओं की समृद्धि को अपने अधिकार में ले लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥४ ॥

२१२१. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव के बारे में लोग पूछा करते हैं कि वे कहाँ हैं ? उन इन्द्रदेव के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि वे हैं ही नहीं । वे इन्द्रदेव उन्हें न मानने वाले शत्रुओं की पोषणकारी सम्पत्ति को वीरता के साथ नष्ट कर देते हैं । हे मनुष्यो ! इन इन्द्रदेव के प्रति श्रद्धा व्यक्त करो, ये सबसे महान् देव इन्द्र ही हैं ॥५ ॥

२१२२. यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।

युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! जो दरिद्रों, ज्ञानियों तथा स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं, सोमरस निकालने के लिए पत्थर रखकर (कूटने के लिए) जो यजमान तैयार है, उस यजमान की जो रक्षा करते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥६ ॥

२१२३. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके अधीन समस्त ग्राम, गौएँ, घोड़े तथा रथ हैं, जिनने सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया, जो समस्त प्रकृति के संचालक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥७ ॥

२१२४. यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।

समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८ ॥

हे मनुष्यो ! परस्पर साथ-साथ चलने वाले द्युलोक तथा पृथिवी लोक जिन्हें सहायता के लिए बुलाते हैं, महान् तथा निम्न स्तरीय शत्रु भी जिन्हें युद्ध में मदद के लिए बुलाते हैं, एकरथ पर आरूढ़ दो वीर साथ-साथ जिन्हें मदद के लिए बुलाते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥८ ॥

२१२५. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! जिनकी सहायता के बिना शूरवीर युद्ध में विजयी नहीं होते, युद्धरत वीर पुरुष अपने संरक्षण के लिए जिन्हें पुकारते हैं, जो समस्त संसार को यथा विधि जानते हुए अपरिमित शक्तिवाले शत्रुओं का संहार कर देते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥९ ॥

२१२६. यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१० ॥

हे मनुष्यो ! जिनने अपने वज्र से महान् पापी शत्रुओं का हनन किया, जो अहंकारी मनुष्यों का गर्व नष्ट कर देते हैं, जो दूसरे के पदार्थों का हरण करने वाले दुष्टों के नाशक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१० ॥

२१२७. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।

ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११ ॥

हे मनुष्यो ! जिनने चालीसवें वर्ष में पर्वत में छिपे हुए शंबर राक्षस को ढूंढ़ निकाला, जिनने जल को रोककर रखने वाले सोये हुए असुर वृत्र को मारा, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥११ ॥

२१२८. यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।

यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२ ॥

हे मनुष्यो ! जिनने सात नदियों को सूर्य की सात किरणों की भाँति बलशाली और ओजस्वी रूप में प्रभावित किया, जिनने द्युलोक की ओर चढ़ती रोहिणी को अपने हाथ के वज्र से रोक लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१२ ॥

२१२९. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।

यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके प्रति द्युलोक तथा पृथिवी लोक नमनशील हैं, जिनके बल से पर्वत भयभीत रहते हैं, जो सोमपान करने वाले, वज्र के समान भुजाओं वाले तथा शरीर से महान् बलशाली हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१३ ॥

२१३०. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४ ॥

हे मनुष्यो !जो सोमरस निकालने वाले, शोधित करने वाले, स्तोत्रों के द्वारा स्तुतियाँ करने वाले को, अपने रक्षा साधनों से संरक्षण प्रदान करते हैं, जिनके स्तोत्र एवं सोम हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१४ ।

२१३१. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।

वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५ ॥

जो सोमयज्ञ करने वाले तथा सोमरस को शोधित करने वाले याजक को धन प्रदान करते हैं, वे निश्चित रूप से सत्यरूप इन्द्रदेव हैं। हे इन्द्रदेव ! हम सन्तति युक्त प्रियजनों के साथ सदैव आपका यशोगान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- अग्नि। **छन्द** - जगती, १३ त्रिष्टुप्।]

२१३२. ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते।

तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१ ॥

वर्षा से सोम की उत्पत्ति होती है, वह सोम जल में (मिश्रित होकर) बढ़ता है। श्रेष्ठ रस वाली लता (सोम बल्ली) कूटकर सोमरस निकालने योग्य होती है। यह प्रशंसनीय सोमरस इन्द्रदेव का हविष्यान्न है ॥१ ॥

२१३३. सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम्।

समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२ ॥

सभी नदियाँ प्रवाहित होती हुई समुद्र को जल से भरकर मानो भोजन कराती हैं। हे इन्द्रदेव ! यह अभूतपूर्व कार्य करने वाले आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥२ ॥

२१३४. अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते।

विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३ ॥

(सूक्ष्म चेतन प्रवाहों अथवा श्रेष्ठ कर्म-रत व्यक्तियों, यजमानों में से) एक जो कुछ देता है, उसके सम्बन्ध में जानकारी देता चलता है। एक (प्राप्त वस्तुओं के) रूपों में भेद करता (अंतर समझाता) चलता है। एक हटाने योग्य को हटाकर शोधन करता चलता है। हे इन्द्रदेव ! आपने पहले ही इन सब कर्मों को सम्पन्न किया, इसलिए आप प्रशंसनीय हैं ॥३ ॥

२१३५. प्रजाभ्य: पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते।

असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४ ॥

(देवगण) अभ्यागतों की तरह प्रजा के लिए ऐश्वर्य तथा पोषक अन्न प्रदान करते हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपने दाँतों से चबाकर भोजन खाता है, उसी प्रकार आप (प्रलय काल में) समस्त जगत् को खा जाते हैं। इन किये गये हितकारी कार्यों के लिए आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥४ ॥

२१३६. अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः।

तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥५ ॥

हे वृत्रनाशक इन्द्रदेव ! आपने नदियों को प्रवाहित होने का मार्ग प्रशस्त किया और सूर्य के प्रकाश में दर्शनीय पृथिवी को स्थापित किया । जिस प्रकार ओषधियों को जल से सींचकर पुष्टिकारक बनाते हैं, उसी प्रकार स्तोत्रों के माध्यम से स्तुतियाँ करके साधक आपको बलशाली बनाते हैं। इस प्रकार आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥५ ॥

२१३७. यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ।

सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप (प्राणियों को) वृद्धि के साधन तथा भोजन प्रदान करते हैं। गीले पौधों से मधुर सूखे पदार्थ (फल या अन्न) प्राप्त कराते हैं। ऐश्वर्य प्रदान करने वाले आप अकेले ही सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं। अतः आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥६ ॥

२१३८. यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः।

यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वी अभितः सास्युक्थ्यः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने खेतों में फूल व फल वाली ओषधियों को गुणवान् बनाकर उनका संरक्षण किया है। आपने प्रकाशित सूर्य को नाना किरणें प्रदान कीं। आपकी महानता से ही सुदूर तक विस्तृत पर्वतों का प्रादुर्भाव हुआ। ऐसे महान् आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥७ ॥

२१३९. यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः।

ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥८ ॥

हे बहुकर्मा इन्द्रदेव ! आपने दस्युओं के विनाश के उद्देश्य से नृमर के पुत्र सहसवसु को बलशाली वज्र के वार से मारा तथा अन्नादि प्राप्त किया, अतः आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥८ ॥

२१४०. शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ।

अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने दानशील यजमान के सुख के लिए संरक्षण प्रदान किया, आपके रथ को दस सौ (हजारों) अश्व खींचते हैं। आपने रस्सी से बाँधे बिना दभीति ऋषि के दस्युओं को नष्ट किया और उनके श्रेष्ठ मित्र बने। आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥९ ॥

२१४१. विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।

षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च सन्दृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१० ॥

इन्द्रदेव के पराक्रम के अनुकूल सारी नदियाँ (धाराएँ) प्रवाहित होती हैं । उनके लिए सभी धन एकत्रित करते हैं तथा यजमान हविष्यान्न देते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपने पंचजनों के पालन के लिए छः विशाल पदार्थों को धारण किया है, अतः आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥१० ॥

[पाँच इन्द्रियों के लिए छः ऋतुओं या षट् रसों का भाव यहाँ लिया जा सकता है ।]

२१४२. सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।

जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव !आप एक बार के प्रयास से ही इच्छित ऐश्वर्य प्राप्त कर लेते हैं, आपका यह पराक्रम प्रशंसनीय है । आप उत्पन्न प्राणियों को अन्न देने वाले एवं महान् कार्यों के कर्त्ता हैं, इसी कारण आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥११ ॥

२१४३. अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।

नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने तुर्वीति तथा वय्य को प्रवाहित जल से सुख पूर्वक पार जाने का मार्ग प्रशस्त किया । अंधे एवं पंगु परावृक ऋषि को आपने गहरे जल से निकालकर आँख तथा पैर प्रदान करके अपनी कीर्ति बढ़ाई । आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥१२ ॥

२१४४. अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् ऐश्वर्यशाली हैं । श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त आप हमें धन प्रदान करें । हम सदैव आपके धन को प्राप्त करने की कामना करते हैं । हम यज्ञ में पुत्र-पौत्रों सहित स्तोत्रों का गायन करके आपकी स्तुति करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२१४५. अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।

कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१ ॥

हे अध्वर्युगणो ! सदैव सोम-पान की कामना वाले वीर इन्द्रदेव को भरपूर मात्रा में सोमरस तथा पात्रों में हर्षदायक अन्न प्रदान करें । इन्द्रदेव की कामना के अनुसार सुखवर्धक सोम की आहुतियाँ उन्हें प्रदान करें ॥१ ॥

२१४६. अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।

तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिस तरह बिजली वृक्ष को धराशायी कर देती है, उसी तरह जिन इन्द्रदेव ने जल को रोककर रखने वाले वृत्र को धराशायी किया था, वे इन्द्रदेव इस सोमरस पान के योग्य हैं, अतः उनकी कामनानुसार सोम रस प्रदान करो ॥२ ॥

२१४७. अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।

तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन इन्द्रदेव ने दृभीक राक्षस का हनन किया, जिनने बल-पूर्वक रोकी गई गौओं (किरणों) को मुक्त कराया । उन इन्द्रदेव के निमित, आकाश में व्याप्त वायु की तरह यह सोम स्थापित करो । शरीर को वस्त्रों से आच्छादित करने की भाँति इन्द्रदेव को सोम से आच्छादित करो ॥३ ॥

२१४८. अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।

यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन इन्द्रदेव ने उरण नामक राक्षस की निन्यानवे भुजाओं को काटा और उसे मारा तथा अर्बुद राक्षस को अधोमुख करके उसे पीड़ित किया, उन इन्द्रदेव को सोम यज्ञ में आने के लिए प्रेरित करो ॥४ ॥

२१४९. अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।

यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव ने अश्न, प्रजाशोषक शुष्ण, बाहुरहित अहि, पिप्रु, नमुचि तथा रुधिक्रा नामक राक्षसों का वध किया, उन इन्द्रदेव को विभिन्न हविष्यान्नों की आहुतियाँ समर्पित करो ॥५ ॥

२१५०. अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।

यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन इन्द्रदेव ने शम्बर राक्षस के सौ पुराने नगरों का अपने शक्तिशाली वज्र से ध्वंस किया, जिनने वर्चीक के सौ हजार पुत्रों को धराशायी किया, उन इन्द्रदेव के निमित्त सोम प्रदान करो ॥६ ॥

२१५१. अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।

कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥७ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन शत्रुनाशक इन्द्र देव ने हजारों असुरों को मारकर सैकड़ों बार भूमि पर बिछा दिया । जिनने कुत्स, आयु तथा अतिथिग्व के द्वेषियों का वध किया, उन इन्द्रदेव के निमित्त सोम एकत्रित करो ॥७ ॥

२१५२. अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।

गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८ ॥

हे अध्वर्युगणो ! नेता इन्द्रदेव को हविष्यान्न प्रदान करके अपनी कामनानुसार वाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त करो । अंगुलियों से शोधित सोम को यशस्वी इन्द्रदेव के निमित प्रदान करते हुए आहुतियाँ दें ॥८ ॥

२१५३. अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।

जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९ ॥

हे अध्वर्युगणो !काष्ठपात्र में शोधित सोमरस को रखकर इन्द्रदेव के समीप पहुँचाओ ।वे सोमपायी तुम्हारे हाथ में शोधित सोमरस की इच्छा करते हैं ।अतः इन्द्रदेव को हर्षित करने वाले सोम की आहुतियाँ समर्पित करो ॥९ ॥

२१५४. अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१० ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिस तरह गाय के थन दूध से भरे रहते हैं, उसी तरह भोज्य पदार्थ प्रदान करने वाले इन्द्रदेव को सोम के द्वारा पूर्ण करो । इससे पूज्य इन्द्रदेव दाता यजमान को और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । इस गोपनीय रहस्य को हम भली-भाँति जानते हैं ॥१० ॥

[गाय के थनों में जितना अधिक दूध भरेगा, उतना ही पालने वाले का लाभ होगा, यज्ञ द्वारा देवशक्तियों के पुष्ट होने से प्रजा का हित होता है ।]

२१५५. **अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।**

तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११ ॥

हे अध्वर्युगणो ! इन्द्रदेव द्युलोक , पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न समस्त ऐश्वर्य के स्वामी हैं । जिस प्रकार से जौ आदि अन्न से कोठे भरे जाते हैं उसी प्रकार उन इन्द्रदेव को सोमरस के द्वारा सदैव पूर्ण करते रहो ॥११ ॥

२१५६. **अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।**

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप महान् ऐश्वर्यशाली हैं, अतः श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त हमें धन प्रदान करें । हम सदैव आपके धन को प्राप्त करने की कामना करते हैं । हम इस यज्ञ में पुत्र-पौत्रों सहित उत्तम स्तोत्रों का गायन करके आपकी स्तुतियाँ करें ॥१२ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२१५७. **प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।**

त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१ ॥

उन महान् सत्य संकल्प धारी इन्द्रदेव के यथार्थ तथा महान् कर्मो का हम यशोगान करते हैं । इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त सोम का पान करके इस सोम से आनन्दित होकर अहि राक्षस का वध किया ॥१ ॥

२१५८. **अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।**

स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥२ ॥

सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने बिना स्तम्भों के द्युलोक तथा अन्तरिक्ष को स्थिर किया ।इन दोनों लोकों को अपनी सत्ता से अनुप्राणित किया तथा पृथ्वी लोक को धारण करके उसका विस्तार किया ॥२ ॥

२१५९. **सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।**

वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३ ॥

सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने समस्त संसार को माप करके पूर्वाभिमुख बनाया । अपने वज्र के प्रहार से दीर्घकाल तक सहज प्रवाहित होने योग्य नदियों का मार्ग बनाया ॥३ ॥

२१६०. **स प्रवोळ्हृन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।**

सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४ ॥

सोमरस के पान से आनन्दित होकर इन्द्रदेव ने 'दभीति' ऋषि को अपहृत करके ले जा रहे सारे असुरों को मार्ग में ही रोक कर, आयुधों से प्रदीप्त हुई अग्नि से जलाकर मारा, उन 'दभीति' ऋषि को गौओं, घोड़ों तथा रथों से विभूषित किया ॥४ ॥

२१६१. **स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातृनपारयत्स्वस्ति ।**

त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५ ॥

सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने पार जाने मे असमर्थों को पार जाने के लिए विशाल नदी के प्रवाह को धीमा किया । उस नदी से पार निकल कर ऋषिगण ऐश्वर्य को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं ॥५ ॥

२१६२. सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६ ॥

सोमरस के पान से आनन्दित होकर इन्द्रदेव ने अपने पराक्रम से नदी का प्रवाह उत्तराभिमुख किया । उनने अपनी द्रुतगामी सेनाओं के द्वारा उषा की निर्बल सेनाओं को नष्ट करते हुए उसके रथ को छिन्न-भिन्न किया था ॥६ ॥

२१६३. स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७ ॥

पंगु तथा चक्षुहीन ऋषि परावृक् अपने ब्याह के लिए लाई हुई कन्याओं को भागते हुए देखकर उनके पीछे दौड़ पड़े थे, स्तुति से प्रसन्न इन्द्रदेव ने उन्हें पैर तथा आँखें प्रदान कीं । यह कार्य इन्द्रदेव ने सोम रस के पान से आनन्दित होकर किया ॥७ ॥

२१६४. भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८ ॥

अंगिरा आदि स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर तथा सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने पर्वत के सुदृढ़ द्वारों को खोलकर असुरों की रची हुई बाधाओं को हटाते हुए 'वल' नामक असुर को विदीर्ण किया था ॥८ ॥

२१६५. स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सोमरस के पान से उत्साहित होकर 'दभीति' की रक्षा के लिए दुष्ट राक्षस 'चमुरि' तथा 'धुनि' को दीर्घ निद्रा में सुलाते हुए मारा था । इस अवसर पर दण्डधारियों (द्वारपालों) ने धन प्राप्त किया ॥९ ॥

२१६६. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव !आपकी ऐश्वर्ययुक्त दक्षिणा स्तोताओं के लिए वरदायक होती है । उसे हमें भी प्रदान करें ।आप हमें न त्यागें, हमें भी ऐश्वर्य से युक्त करें । हम यज्ञ में पुत्र-पौत्रों सहित महान् स्तोत्रों से आपकी स्तुतियाँ करें ॥१० ॥

[सूक्त - १६]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र । छन्द - जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

२१६७. प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१ ॥

हम देवो में सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव के निमित्त अत्यन्त दीप्तिमान् अग्नि में सुन्दर स्तुतियों के साथ आहुतियाँ समर्पित करते हैं । उन सनातन शक्ति सम्पन्न, कभी भी नष्ट न होने वाले, शत्रुनाशक तथा सोम से तृप्त इन्द्रदेव का तुम्हारे संरक्षण के लिए आवाहन करते हैं ॥१ ॥

२१६८. यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२ ॥

इस विराट् संसार में इन्द्रदेव ही सबसे महान् हैं । वे पराक्रम से युक्त इन्द्रदेव उदर में सोमरस, शरीर में तेजस्वी बल, हाथ में वज्र तथा शिर में महान् ज्ञान धारण किए हुए हैं ॥२ ॥

२१६९. न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जब अपने द्रुतगामी अश्वों के द्वारा अनेक योजन पार करते हैं, उस समय आपकी शक्ति को द्यावा-पृथिवी भी नहीं नाप सकती । हे इन्द्रदेव ! आपके रथ को पर्वत तथा समुद्र भी नहीं रोक सकते तथा कोई भी शक्तिशाली वीर आपके वज्र को नहीं रोक सकता ॥३ ॥

२१७०. विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४ ॥

शत्रुनाशक, पूज्य, बलशाली तथा स्तुत्य इन्द्रदेव के निमित्त सभी लोग यज्ञ करते हैं । हे यजमान ! तुम देवगणों को सोम रस प्रदान करने वाले तथा मेधावान् हो, अतः हविष्यान्न की आहुतियों सहित इन्द्रदेव की स्तुति करो । हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली एवं तेजस्वी रूप में सोम रस का पान करें ॥४ ॥

२१७१. वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५ ॥

तृप्तिकारक, बलवर्धक, अन्नयुक्त मधुर सोमरस की धारा बलशाली इन्द्रदेव के पान के लिए स्रवित होती है ।अध्वर्युगण बलशाली इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए सुदृढ़ पत्थरों में (पीसकर) पुष्टिकारक सोमरस तैयार करते हैं ॥५ ॥

२१७२. वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥६ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आपका वज्र, आपका रथ, आपके अश्व तथा आपके आयुध सभी शक्ति से भरपूर हैं । आप बलशाली आनन्द का स्वामित्व करते हैं, अतः बलयुक्त सोमरस का पान करके आप तृप्त हों ॥६ ॥

२१७३. प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुनाशक हैं । नाव के समान आप युद्ध में स्तोताओं का उद्धार करते हैं । यज्ञ स्थल में आपके स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए हम जाते हैं । हे ऐश्वर्य के भण्डार इन्द्रदेव ! कुँए के समान हम सोमरस से आपको सींचते हैं । आप हमारी प्रार्थना को स्वीकारें ॥७ ॥

२१७४. पुरा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! जिस प्रकार गाय घास खाने के बाद संतुष्ट होकर बछड़े को दूध पिलाने हेतु पहुँच जाती है, उसी प्रकार आप विपत्तियाँ आने से पूर्व ही हमारे पास पहुँचें । हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार पत्नियाँ पतियों को हर्षित करती हैं, उसी प्रकार हम उत्तम स्तोत्रों के द्वारा आपको प्रसन्न करेंगे ॥८ ॥

२१७५. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय आपके द्वारा स्तोताओं के लिए दी गयी ऐश्वर्ययुक्त दक्षिणा निश्चित ही उत्तम धन

प्राप्त कराती है। स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें। हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥९ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- इन्द्र। **छन्द** - जगती, ८-९ त्रिष्टुप्।]

२१७६. तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१ ॥

इन इन्द्रदेव का पराक्रम आदि काल की तरह ही बढ़ रहा है। इन्द्रदेव ने सोमरस के पान से उत्साहित होकर शत्रुओं के सम्पूर्ण सुदृढ़ गढ़ों को अपने बल से ध्वस्त कर दिया था। हे स्तोताओ ! अंगिराओं की तरह उत्तम स्तुतियों द्वारा इन्द्रदेव की उपासना करो ॥१ ॥

२१७७. स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत्।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२ ॥

जिन इन्द्रदेव ने सर्वप्रथम अपने बल को बढ़ाने के लिए सोम रस का पान किया था, उनका वह बल सदैव बना रहे। शत्रुनाशक इन्द्रदेव ने संग्राम में अपने शरीर पर कवच धारण किया और अपनी महानता से द्युलोक को अपने मस्तक पर धारण किया ॥२ ॥

२१७८. अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर, शत्रुनाशक बल दिखाकर आपने महान् पराक्रम प्रकट किया। समर्थ घोड़ों वाले रथ में आरूढ़ आपके शत्रुनाशक स्वरूप को देखकर असुरों का समूह अलग-अलग होकर भाग गया ॥३ ॥

२१७९. अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४ ॥

सबसे उत्कृष्ट बलशाली होकर इन्द्रदेव ने अपने महान् पराक्रम से सभी भुवनों का विस्तार किया और सभी के अधिपति हुए। इसके बाद द्यावा-पृथिवी को अपने तेज से संव्याप्त किया तथा दूर-दूर तक फैले हुए अन्धकार को सूर्य की भाँति नष्ट किया ॥४ ॥

२१८०. स प्राचीनान्पर्वतान्दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥५ ॥

उन महान् इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य के द्वारा सभी को आश्रय प्रदान करने वाली पृथिवी को धारण किया तथा द्युलोक नीचे न गिरने पाये, इसके लिए थामे रखा। हिलने वाले पर्वतों को अपनी शक्ति से स्थिर किया तथा जल के प्रवाह को नीचे की ओर प्रवाहित किया ॥५ ॥

२१८१. सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६ ॥

सभी जन्मधारी जीवों के पालनकर्त्ता इन्द्रदेव ने अपने वज्र को सब प्रकार से समर्थ किया। विद्युत् के समान गर्जना करने वाले वज्र से इन्द्रदेव ने 'क्रिवि' नामक राक्षस को मारकर पृथ्वी पर सुला दिया। वह वज्र इन्द्रदेव की भुजाओं को सामर्थ्यवान् बनाये ॥६ ॥

२१८२. अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।

कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३येन मामहः ॥७ ॥

जिस प्रकार माता-पिता के साथ रहने वाली पुत्री अपने माता-पिता से ही आजीविका की याचना करती है, उसी प्रकार हे देव ! हम आप से ऐश्वर्य की याचना करते हैं । आप जिस ऐश्वर्य से स्तोताओं को महान् बनाते हैं, हमारे लिए वह उपयोगी अन्न तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥७ ॥

२१८३. भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।

अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ कर्मा तथा अन्न के दाता हैं । हम लोग पालक के रूप में बार-बार आपका आवाहन करते हैं । आप रक्षा साधनों से युक्त होकर हमें संरक्षण प्रदान करें । हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्यवान् बनायें ॥८ ॥

२१८४. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय आपके द्वारा स्तोताओं के निमित्त दी गयी ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चित रूप से धन प्रदान कराती है, अतः स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तुतियाँ करें ॥९ ॥

[सूक्त - १८]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२१८५. प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।

दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१ ॥

प्रातः काल यह नया रथ (यज्ञ) नियोजित किया गया है । इसमें चार युग, तीन कोड़े, सात रश्मियाँ तथा दस चक्र हैं । यह इष्ट प्रयोजनों के लिए मति के अनुरूप गतिमान हो । यह मनुष्यों को स्वर्ग तक पहुँचाने वाला है ॥१ ॥

[यज्ञ (अग्नि) हव्य वहन करता है, इसलिए उसे रथ की संज्ञा भी दी जाती है । युग का अर्थ चारों युग भी हैं तथा अश्व जोड़ने वाले जुए भी । चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) इससे जुड़ते हैं । कोड़े की आवाज से अश्व चलते हैं, मंत्र ध्वनि से यज्ञ बढ़ता है । उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित तीन स्वरों से मंत्र कहे जाते हैं । रश्मियाँ किरणों को भी कहते हैं और अश्वनियंत्रक रस्सियों (लगामों) को भी । सात छन्दों को यज्ञ नियंत्रक रश्मि कहा जा सकता है । यज्ञ का चक्र दसों दिशाओं में गतिमान् रहता है। यह अद्भुत रथ स्वर्ग तक ले जाने की क्षमता रखता है ।]

२१८६. सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।

अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२ ॥

यह रथ इन्द्रदेव को प्रथम, द्वितीय और तृतीय (अर्थात् प्रातः, सायं और मध्याह्न) तीनों सवनों में -यज्ञों में पहुँचाने में समर्थ है । यह रथ मनुष्यों की कामनाओं को पूरा करने वाला है । स्तोतागण एक दूसरे के साथ मिलकर ब्रह्माण्डव्यापी, बलशाली तथा अजेय उन इन्द्रदेव के अनुग्रह को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

२१८७. हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।

मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥३ ॥

इन्द्रदेव के सुखपूर्वक आवागमन के लिए उत्तम स्तुतियों के माध्यम से उनके रथ में दोनों घोड़ों को नियोजित किया गया है। हे इन्द्रदेव ! हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी मेधावी स्तोता आपको भली-भाँति तृप्त नहीं कर सकता ॥३ ॥

२१८८. आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा आवाहित आप सोम-पान करने के लिए दो, चार, छः, आठ, दस घोड़ों से आयें। यह सोम रस आपके लिए शोधित किया गया है। आप इसका पान करें, इसके लिए युद्ध न करें ॥४ ॥

२१८९. आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव आप सोमरस का पान करने के लिए रथ के योग्य बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ तथा सत्तर घोड़ों को नियोजित करके हमारे पास आयें ॥५ ॥

२१९०. आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको आनन्दित करने के लिए सोमरस को सुन्दर पात्रों में रखा गया है, अतः आप अस्सी, नब्बे और सौ घोड़ों को अपने रथ में नियोजित करके हमारे पास आयें ॥६ ॥

२१९१. मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बहुतों के द्वारा आमन्त्रित किये गये हैं, अतः हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करके अपने रथ में सभी घोड़ों को नियोजित करके हमारे इस यज्ञ में आकर आनन्दित हों ॥७ ॥

['वीर्यं वा अश्वः' के अनुसार अश्व पराक्रम का पर्याय है। प्रार्थना की गयी है कि सोमपान से इन्द्र अपना पराक्रम सतत बढ़ाते हुए हमारे पास आयें। यह ऋचा अंक विद्या से भी जोड़ी जाती है।]

२१९२. न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८ ॥

इन्द्रदेव के साथ हमारी मैत्री अटूट रहे। हम उनके उत्तम दाहिने हाथ के समीप रहें। इन्द्रदेव के द्वारा हमें सदैव दान मिलता रहे। इनके संरक्षण में हम प्रत्येक युद्ध में विजय प्राप्त करें ॥८ ॥

२१९३. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय आपके द्वारा स्तोताओं के निमित्त दी गयी ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चित रूप से धन प्रदान कराती है, अतः स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तुतियाँ करें ॥९ ॥

[सूक्त - १९]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२१९४. अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१ ॥

सोमरस को परिष्कृत करने वाले ज्ञानी यजमान के द्वारा आनन्द प्रदान करने के लिए दिये गये अन्न (आहार) को इन्द्रदेव ग्रहण करें, वे इन्द्रदेव तथा ज्ञानी यजमान उत्तम स्थान प्राप्त करें ॥१ ॥

२१९५. अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२ ॥

जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसलों में जाते हैं, उसी प्रकार नदियों की धारायें प्रवाहित होती हैं ।ऐसे प्रवाहित सोमपान से आनन्दित इन्द्रदेव ने हाथ में वज्र धारण करके जल को रोकने वाले अहि नामक राक्षस को मारा था ॥२ ॥

२१९६. स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३ ॥

अहि नामक राक्षस को मारने वाले इन्द्रदेव ने अन्तरिक्ष के जल को सीधे समुद्र की ओर प्रवाहित किया, उन्हीं ने सूर्य तथा सूर्यरश्मियों को प्रकट किया, जिसके प्रकाश से दिन में होने वाले सभी कार्यों को हम करते हैं ॥३ ॥

२१९७. सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४ ॥

जो इन्द्रदेव सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप प्राप्त करने के लिए सब दिन समान रूप से स्पर्धा करते हैं, वे इन्द्रदेव दानशील मनुष्यों के लिए श्रेष्ठ धनों के प्रदाता हैं । वे ही वृत्र राक्षस को मारते हैं ॥४ ॥

२१९८. स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५ ॥

जिस प्रकार पुत्र को पिता अपने धन का एक अंश देता है, उसी प्रकार जब इन्द्रदेव को दान दाता'एतश' ने यज्ञ के समय अमूल्य तथा उत्तम धन प्रदान किया, तब पूज्य तथा तेजस्वी इन्द्रदेव ने यज्ञ की कामना वाले मनुष्यों के लिए सूर्य को प्रकाशित किया ॥५ ॥

२१९९. स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६ ॥

उन तेजस्वी इन्द्रदेव ने सारथि कुत्स (कुत्साओं से समाज की रक्षा करने वालों) के निमित शुष्ण (शोषक), अशुष (निष्ठुर) कुयव (कुधान्य) नामक आसुरों का संहार किया तथा दिवोदास के निमित्त शम्बरासुर (अशान्ति पैदा करने वालों) के निन्यानवे नगरों को ध्वस्त किया ॥६ ॥

२२००. एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अन्न और बल की कामना से आपकी स्तुतियाँ करते हैं । आपने देवों की अवमानना करने वाले तथा हिंसक दुष्टों के हिंसाकारी कृत्यों को नष्ट किया । हम आपसे परम मैत्री भाव बनाये रखें ॥७ ॥

२२०१. एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! गृत्समदगण अपने उत्तम संरक्षण की कामना से आपकी उत्तम एवं मनोरम स्तोत्रों के

द्वारा स्तुतियाँ करते हैं ; उसी प्रकार नये ब्रह्मज्ञानी स्तोताजन भी उत्तम आश्रय, अन्न, बल और सुख की प्राप्ति के लिए स्तुतियाँ करते हैं ॥८ ॥

२२०२. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ काल में आपके द्वारा दी गयी ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चय ही स्तोताओं को धन प्राप्त कराती है, अतः हमें भी स्तोताओं के साथ वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा दें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आपकी स्तुतियाँ करें ॥९ ॥

[सूक्त - २०]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२२०३. वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार अन्न की कामना वाले अपने रथ को अन्न से भरते हैं, उसी प्रकार हम स्तोताजन बुद्धि से तेजस्वी होते हुए आपसे सुख की कामना करते हुए आपके लिए हवि प्रदान करते हैं । हमारे इस कार्य को आप भली-भाँति जानें ॥१ ॥

२२०४. त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो आपको ही अपना इष्ट मानता है, उस दानशील मनुष्य के समीप आने पर आप हर प्रकार से उसकी रक्षा करते हैं । आप विपत्तियों से बचाने वाले तथा सत्यकर्मा, न्यायशील हैं, अतः आप अपने रक्षण साधनों से हमें संरक्षण प्रदान करें ॥२ ॥

२२०५. स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥३ ॥

स्तोत्रों का उच्चारण करने वाले, उत्तम निर्देश देने वाले, हविष्यान्न को तैयार करने वाले तथा स्तोता यजमानों को, जो अपने संरक्षण के द्वारा विपत्तियों से मुक्ति दिलाते हैं, ऐसे नित्य तरुण, मित्रवत् सदैव पास बुलाने योग्य तथा सुखस्वरूप इन्द्रदेव समस्त प्रजा सहित हमें संरक्षण प्रदान करें ॥३ ॥

२२०६. तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥४ ॥

जिन इन्द्रदेव के आश्रय में स्तोतागण वृद्धि पाते रहे हैं और शत्रुओं का संहार करते रहें हैं, उन इन्द्रदेव का यशोगान हम स्तुतियों से करते हैं । वे स्तुत्य इन्द्रदेव नये यजमानों की धन की कामना को पूर्ण करते हैं ॥४ ॥

२२०७. सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥५ ॥

अंगिराओं की स्तुतियों को स्वीकारते हुए वे इन्द्रदेव श्रेष्ठ मार्गदर्शक के रूप में उनके ज्ञान में वृद्धि करते हैं । ये स्तुत्य इन्द्रदेव सूर्य को उदित करके उषा को हरते हुए 'अश्नासुर' (बहुत खाने वाले असुर अन्धकार या आलस्य) को नष्ट कर देते हैं ॥५ ॥

२२०८. स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।

अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥६ ॥

तेजवान्, कीर्तिवान्, ख्यातिप्राप्त, अत्यन्त दर्शनीय तथा प्रिय इन्द्रदेव ज्ञानवान् स्तोताओं के संरक्षण के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । शत्रुनाशक इन्द्रदेव ने संसार के अनिष्टकर्ता दास नामक असुर का सिर काटा ॥६ ॥

२२०९. स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासी रैरयद्वि ।

अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७ ॥

वृत्रहन्ता, शत्रुओं के दुर्गों को ढहाने वाले इन्द्रदेव ने कृष्ण दासों की (निकृष्ट) सेना का संहार किया । मनुष्य के लिए पृथिवी तथा जल को उत्पन्न किया । ऐसे महान् इन्द्रदेव यजमान की श्रेष्ठ कामनाओं को पूरा करें ॥७ ॥

२२१०. तस्मै तवस्य१ मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।

प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥८ ॥

उन इन्द्रदेव को देवताओं ने युद्ध में संगठित होकर निरन्तर बल प्रदान किया । इन्द्रदेव ने अपनी बलशाली भुजाओं में वज्र को धारण करके दुष्टों का संहार किया तथा उनके दुर्गम नगरों को भी ध्वस्त किया ॥८ ॥

२२११. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा यज्ञ काल में दी गयी ऐश्वर्ययुक्त दक्षिणा स्तोताओं को निश्चय ही धन प्राप्त कराती है । अतः हमें भी स्तोताओं के साथ वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा दें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आपकी स्तुतियां करें ॥९ ॥

[सूक्त - २१]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - जगती, ६- त्रिष्टुप् ।]

२२१२. विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।

अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१ ॥

हे याजको ! समस्त विश्व को जीतने वाले, धन की विजय करने वाले, संगठित रूप में विजय प्राप्त करने वाले, मनुष्यों को जीतने वाले, उर्वर भूमि को जीतने वाले, घोड़े तथा गौओं को जीतने वाले तथा जल तत्त्व को अपने वश में करने वाले पूज्य इन्द्रदेव के निमित्त तेजस्वी सोम प्रदान करो ॥१ ॥

२२१३. अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।

तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२ ॥

हे याजको ! सर्वव्यापक, प्रलयंकारी, ऐश्वर्य का यथोचित विभाजन करने वाले, अजेय शत्रुओं के आक्रमण को स्वयं झेलने वाले, विश्व के विधाता, पुष्टग्रीव, सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले, अपार सामर्थ्य वाले तथा संगठित रूप से युद्ध करने वाले इन्द्रदेव का सदैव यशोगान करो ॥२ ॥

२२१४. सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।

वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३ ॥

हे याजको ! मनुष्यों के हित के लिए संगठित रूप से लड़ने वाले, बलवानों के विजेता, शत्रु निवारक योद्धा,

प्रीतिपूर्वक सोमरस का पान करने वाले, शत्रुहन्ता तथा प्रजा पालक तेजस्वी इन्द्रदेव द्वारा किये गये महान् पराक्रमों का यशोगान करो ॥३ ॥

२२१५. **अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।**

रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४ ॥

हे याजको ! महादानी, बलशाली, दुर्धर्ष शत्रुओं के हन्ता, गम्भीर, सर्वज्ञाता, असाधारण कार्य कुशल, उत्तम कर्मों के प्रेरक, शत्रुओं की शक्ति को क्षीण करने वाले, परिपुष्ट अंगो वाले, श्रेष्ठकर्मा, महान् इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से उषाओं तथा सूर्य को प्रकट किया है ॥४ ॥

२२१६. **यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।**

अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥५ ॥

शीघ्रता से कार्य करने वाले ज्ञानीजन, समृद्धि की कामना से श्रेष्ठ यज्ञीय कर्मों मे स्तुतियाँ करते हुए योग्य मार्ग पा जाते हैं, और अपने संरक्षण की कामना से इन्द्रदेव की स्तुतियाँ करते हुए उनके समीप रहकर धन प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

२२१७. **इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।**

पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें । हमें चेतना युक्त सामर्थ्य तथा उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें । हमें निरोग बनाते हुए ऐश्वर्य की वृद्धि करें । हमारी वाणी को मधुर तथा प्रत्येक दिन को उत्तम बनायें ॥६ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** -१ अष्टि, २-३ अतिशक्वरी, ४- अष्टि अथवा अतिशक्वरी ।]

२२१८. **त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।**

स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥

अत्यन्त बली पूजनीय इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त, तृप्तिदायक, दिव्य सोम को जौ के सार भाग के साथ मिलाकर विष्णुदेव के साथ इच्छानुसार पान किया । उस (सोम) ने महान् इन्द्रदेव को श्रेष्ठ कार्य करने के लिये प्रेरित किया । उत्तम दिव्य गुणों से युक्त उस दिव्य सोमरस ने इन्द्रदेव को प्रसन्न किया ॥१ ॥

२२१९. **अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे ।**

अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी सामर्थ्य से क्रिवि नामक असुर को आपने जीता और आकाश एवं पृथ्वी को तेज से परिपूर्ण कर दिया । आपने सोम के एक भाग को अपने उदर में धारण किया और दूसरा भाग देवों को दिया । सत्यस्वरूप दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्यस्वरूप तेजस्वी इन्द्रदेव को पुष्ट करता है ॥२ ॥

२२२०. **साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः । दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३ ।**

हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ के साथ प्रकट हुए हैं । अपनी सामर्थ्य से विश्व का भार उठाने को लालायित रहते

हैं । हे ज्ञानी श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! महान् पराक्रमी, शत्रु संहारक, विशिष्ट ज्ञानी आप स्तोताओं को अभीष्ट ऐश्वर्य देते हैं । सत्यस्वरूप दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्य के ज्ञाता इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥३ ॥

२२२१. **तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।**
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥४ ॥

सभी को अपने अनुशासन में चलाने वाले हे इन्द्रदेव ! मानव मात्र के हितकारी, सबसे पहले किये गये आपके सबसे उत्कृष्ट कर्म स्वर्ग लोक में प्रशंसित हैं । अपनी शक्ति से आपने राक्षसों का संहार किया, असुरों को हराया तथा जल प्रवाहित किया । शतकर्मा (शतक्रतु) इन्द्रदेव ने अन्न एवं बल प्राप्त किया ॥४ ॥

[सूक्त - २३]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- बृहस्पति; १-५, ९,११,१७,१९-ब्रह्मणस्पति । छन्द - जगती, १५,१९- त्रिष्टुप् ।]

२२२२. **गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।**
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आप गणों के भी गणपति तथा कवियों में भी श्रेष्ठ कवि हैं । आप अनुपमेय, श्रेष्ठ तथा तेजस्वी मंत्रों के स्वामी हैं, अत: हम आपका आवाहन करते हैं । हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर रक्षण साधनों सहित हमें संरक्षण प्रदान करें ॥१ ॥

२२२३. **देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।**
उस्राइव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२ ॥

हे महाबली बृहस्पतिदेव ! सर्वोत्कृष्ट देवताओं ने आपके यज्ञीय भाग को प्राप्त किया था । जिस तरह महान् सूर्य तेजस्वी किरणों को पैदा करते हैं, उसी प्रकार आप सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशक हैं ॥२ ॥

२२२४. **आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।**
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! पाप पूर्णकर्म करने वालों को तथा अज्ञानमय अन्धकार को विविध उपायों से नष्ट करके, दुष्ट पुरुषों को भय देने वाले, शत्रुओं के नाशक, राक्षसों का वध करने वाले, सुदृढ़ किलों को ध्वस्त करने वाले तथा यज्ञ के प्रकाशक और सुखदायी आप रथ में विराजमान होते हैं ॥३ ॥

२२२५. **सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।**
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो आपको हविष्यान्न समर्पित करता है, उसके श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक बनकर आप उसे संरक्षण प्रदान करते हैं, उसे कभी पाप नहीं व्यापता । आप ज्ञान द्वेषियों को पीड़ित करने वाले तथा अभिमानियों के नाशक हैं । आपकी महान् महिमा अवर्णनीय है ॥४ ॥

२२२६. **न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।**
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥५ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आप जिसे संरक्षण प्रदान करते हैं, उसे सम्पूर्ण हिंसक शक्तियों से बचाते हैं । उसके लिए पाप कर्म दुःखदायी नहीं होते, शत्रु भी उसे कष्ट नहीं पहुंचाते तथा कोई ठग भी उसे भ्रमित नहीं कर सकता ॥५ ॥

२२२७. त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।

बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे संरक्षक तथा मार्गदर्शक हैं । हे सर्वज्ञाता ! आपके नियमानुसार अनुगमन करने के लिए हम मन्त्रों सहित आपकी स्तुति करते हैं । हमारे प्रति जो भी कुटिलता का व्यवहार करे, उसे उसकी ही दुर्बुद्धि नष्ट कर दे ॥६ ॥

२२२८. उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः ।

बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! शत्रुवत् आचरण करने वाले तथा भेड़िये के समान हिंसक मनुष्य यदि हमें पीड़ित करें तो उन्हें हमारे मार्ग से हटा दें । देवत्व की प्राप्ति के लिए हमारे मार्ग को अपराध रहित बनाते हुए उसे सुगम करें ॥७ ॥

२२२९. त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।

बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप शत्रुनाशक बल को विपत्तियों से पार करने वाले हैं । हम आपको अपने शरीरों के पालक मानते हैं, प्रिय गृहपति के रूप में स्वीकार करते हैं, अतः आपका आवाहन करते हैं । आप देवताओं की निन्दा करने वालों को नष्ट करें । दुष्ट आचरण वालों को सुख की प्राप्ति न हो, उनका नाश करें ॥८ ॥

२२३०. त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।

या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥९ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! हम याजकगण आप से मनुष्यों के लिए हितकारी तथा चाहने योग्य उत्तम वृद्धिकारक धन की याचना करते हैं । हमारे पास, दूर तथा चारों ओर जो भी शत्रुरूप आघात करने वाले कर्महीन मनुष्य हैं, उन्हें नष्ट करें ॥९ ॥

२२३१. त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।

मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥१० ॥

हे वाणी के स्वामी बृहस्पतिदेव ! आप पवित्र आचारवान् तथा सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले हैं, हम आप से जुड़कर आयुष्य प्राप्त करें । दुराचारी तथा ठगने वाला हमारा अधिपति न हो । उत्तम बुद्धि के सहारे प्रशंसनीय रहते हुए हम संकटों को पार करें ॥१० ॥

२२३२. अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।

असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥११ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आपके समान दानदाता दूसरा कोई नहीं है । आप बलशाली, युद्ध में जाने वाले (योद्धा), शत्रुओं को पीड़ित करने वाले, युद्ध में शत्रुओं को पराजित करने वाले, ऋण मुक्त करने वाले, पराक्रम से युक्त, शत्रुओं का दमन करने वाले तथा न्यायशील हैं ॥११ ॥

२२३३. अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।

बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो आसुरी वृत्ति के कारण हमारे लिए दुःख दायी है, निर्दयी है, अत्यन्त अहंकारी रूप में स्तोताओं का हनन करना चाहता है, उसके हथियार हमें स्पर्श न करें । कुमार्गगामी बलवान् व्यक्ति के क्रोध को हम नष्ट करें ॥१२ ॥

२२३४. भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३ मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँइव ॥१३ ॥

युद्ध में सहायता के लिए आदर-पूर्वक बुलाने योग्य बृहस्पतिदेव सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वे स्तुत्य हैं । शत्रु सेनाओं को नष्ट करने की कामना वाले बृहस्पतिदेव शत्रु के रथों के समान ही हिंसक शत्रुओं का संहार करें ॥१३ ॥

२२३५. तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥१४ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आपके दृष्टिगोचर होने वाले पराक्रम की जो निन्दा करते हैं, आप उन दुष्ट प्रकृति वालों को अपने तेजस्वी ताप से पीड़ित करें । आपका पराक्रम सराहनीय है, उसे प्रकट करके चारों ओर व्याप्त शत्रुओं का संहार करें ॥१४ ॥

२२३६. बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१५ ॥

हे ख्याति प्राप्त धर्मज्ञ बृहस्पति देव ! ज्ञानी जनों द्वारा सम्माननीय, मनुष्यों में तेजस्वी कर्म के रूप में प्रतिफलित होने वाले, देदीप्यमान सर्वोत्तम तथा अलौकिक ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥१५ ॥

२२३७. मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो द्रोही शत्रु आक्रमण करके अन्नादि पदार्थों की कामना करते हैं, देवगणों के प्रति द्वेष भाव रखते हैं तथा श्रेष्ठ सुखकारी वचन भी नहीं जानते, ऐसे चोर पुरुषों से हमें भय न हो ॥१६ ॥

२२३८. विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥१७ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! प्रजापति ने आपको सम्पूर्ण भुवनों में सर्वश्रेष्ठ बनाया है, अतः आप प्रत्येक साम के ज्ञाता हैं । महान् यज्ञ के धारण कर्त्ता स्तोताओं को ऋण से मुक्ति दिलाकर, द्रोहकारियों का विनाश करते हैं ॥१७ ॥

२२३९. तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८ ॥

हे अंगिरावंशी बृहस्पतिदेव ! जब गौओं को पर्वतों ने छिपाया था और आपने उन गौओं को बाहर निकालकर आश्रय प्रदान किया था, तब इन्द्रदेव की मदद से वृत्र द्वारा रोके गये जल को बरसने के लिए आपने प्रेरित किया ॥१८ ॥

२२४०. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आप सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता हैं । आप इस सूक्त के ज्ञाता हैं । देवगणों का संरक्षण जिन्हें प्राप्त होता है, उनका सब प्रकार से कल्याण होता है । आप हमारी सन्तति को परिपुष्ट बनायें, जिससे हम यज्ञ में सुसन्तति सहित आपकी महिमा का गायन कर सकें ॥१९ ॥

[सूक्त - २४]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। देवता- ब्रह्मणस्पति; १, १० बृहस्पति; १२- इन्द्राब्रह्मणस्पती। छन्द - जगती; १२, १६ त्रिष्टुप्।]

२२४१. सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा।

यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥१॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं, हम महान् स्तुतियों के द्वारा आपका यशोगान करते हैं, उन्हें ग्रहण करें। जो स्तोता आपकी मित्र भाव से स्तुतियाँ करते हैं, वे हमें सद्बुद्धि प्रदान करें ॥१॥

२२४२. यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।

प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

ब्रह्मणस्पतिदेव ने अपनी सामर्थ्य से दण्डित करने योग्य शत्रुओं को दबाया, मन्यु के द्वारा शम्बर को विदीर्ण किया, न गिरने वाले (जल) को गिराया तथा जहाँ गौएँ छिपी थीं, उस पर्वत में प्रवेश किया ॥२॥

२२४३. तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।

उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥३॥

देवों में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मणस्पतिदेव के कर्तृत्व से सुदृढ़ किले भी शिथिल हो जाते हैं तथा बलशाली भी नम्र होकर झुक जाते हैं। ब्रह्मणस्पतिदेव ने मंत्र शक्ति के द्वारा बलासुर को मारकर गौओं को मुक्त कराया। सूर्यदेव को प्रकट करके अन्धकार को नष्ट किया ॥३॥

२२४४. अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत्।

तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥

ब्रह्मणस्पतिदेव ने पत्थर जैसे दृढ़ मुखवाले मधुर धाराओं से युक्त मेघ को बल प्रयोग द्वारा बरसने के लिए प्रेरित किया। वृष्टि के जल का पान सूर्य रश्मियों ने किया तथा प्रचुर जलधारा के रूप में (धरती पर) बरसाया ॥४॥

२२४५. सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः।

अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

हे ऋत्विजो ! ब्रह्मणस्पतिदेव ने तुम्हारे लिए ही अनादि काल से प्रत्येक माह और प्रत्येक वर्ष, वर्षा के लिए मेघों को प्रेरित किया। इस प्रकार द्यावा-पृथिवी दोनों परस्पर जल का उपभोग करते हैं ॥५॥

२२४६. अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम्।

ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥६॥

'पणियों' के द्वारा गुहा में छिपाये गये श्रेष्ठ धन को चारों ओर खोज कर देवगणों ने प्राप्त किया। यज्ञीय कार्य में विघ्न पैदा करने वाले राक्षस उस दिव्य ऐश्वर्य को देखकर, जिस स्थान से आये थे, वापस लौट गये ॥६॥

२२४७. ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः।

ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥७॥

सर्वज्ञाता तथा सत्यवादियों ने माया की शक्तियों को देखा। वे वहाँ से हटकर विवेक पूर्वक महान् कार्यों के पथ पर चल पड़े। यज्ञीय कार्य के निमित्त उत्पन्न की गयी अग्नि को वहीं (पर्वत में ही) छोड़ दिया ॥७॥

२२४८. ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८ ॥

ब्रह्मणस्पतिदेव के पास सुगमता से खिंचने वाली डोरी वाला (बुद्धि रूपी) एक उत्तम धनुष है, जिससे वे (ज्ञानरूपी) बाणों को जहाँ (बुद्धिमान जनों के कानों तक) वे चाहते हैं, पहुँचा देते हैं। इससे वे मनुष्यों के सभी संकटों और दुष्ट भावों को उखाड़ फेंकते हैं ॥८ ॥

२२४९. स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९ ॥

वे स्तुत्य ब्रह्मणस्पतिदेव युद्ध में अग्रणी होकर संगठित रूप से आक्रमण करते हैं। सर्वदर्शी ब्रह्मणस्पतिदेव जब अन्न और धन को धारण करते हैं, तब स्वाभाविक रूप से सूर्य उदित हो जाता है ॥९ ॥

२२५०. विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥१० ॥

व्यापक सामर्थ्य प्रदान करने वाला, सब प्रकार सुखदायी, सिद्धिदायी यह धन महाबलशाली बृहस्पतिदेव ने सबके द्वारा चाहे जाने पर बरसाया है। जिसका भोग दोनों प्रकार की (ज्ञानी और अज्ञानी) प्रजायें करती हैं ॥१० ॥

२२५१. योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११ ॥

सर्वव्यापी, आनन्ददायी ब्रह्मणस्पतिदेव प्रत्येक युद्ध में अपनी सामर्थ्य से अपनी महत्ता को प्रकट करते हैं। सभी देवों से श्रेष्ठ ब्रह्मणस्पतिदेव समस्त विश्व में संव्याप्त रहते हैं ॥११ ॥

२२५२. विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम्।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२ ॥

हे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रदेव और हे ब्रह्मणस्पतिदेव !आप दोनों सत्यव्रत धारी हैं। आप दोनों के कर्तव्य और नियम अडिग हैं।जुए में जुड़े अश्वों के समान आप दोनों हमारे हविष्यान्न को ग्रहण करने के लिए (यज्ञ स्थल में) आयें ॥१२ ॥

२२५३. उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३ ॥

युद्ध में बलशाली ब्रह्मणस्पतिदेव सभ्य ज्ञानी जनों के उत्तम धन को ही स्वीकार करते हैं और बलशाली शत्रुओं से द्वेष करते हैं। द्रुतगति से जाने वाले अश्व भी (उनकी बात) सुनते हैं। वे ऋण से उऋण करते हैं ॥१३ ॥

२२५४. ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥१४ ॥

महान् कार्य में निरत ब्रह्मणस्पतिदेव का कार्य उनकी अभिलाषा के अनुसार सफल होता है। ब्रह्मणस्पतिदेव ने गौओं को बाहर निकाल कर विजय प्राप्त की। सतत प्रवाहित नदियों की भाँति ये गौएँ स्वतंत्र रूप से चली गयीं ॥१४ ॥

२२५५. ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! हम सभी व्रतों के पालक तथा अन्न युक्त धन के सदैव अधिपति रहें । आप सभी के नियन्ता हैं, अत: ज्ञान पूर्वक की गयी हमारी स्तुतियों को स्वीकार करके हमें पराक्रमी सन्तति प्रदान करें ॥१५ ॥

२२५६. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीरा: ॥१६ ॥

हे संसार के नियन्ता ब्रह्मणस्पतिदेव ! देवगण जिसे अपना संरक्षण प्रदान करते हैं, उसका हर प्रकार से कल्याण होता है; अत: आप हमारे सूक्त को जानकर हमारे पुत्रों को परिपुष्ट बनायें, ताकि उत्तम सन्तति से युक्त होकर हम यज्ञ में आपकी महिमा का गान कर सकें ॥१६ ॥

[सूक्त - २५]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- ब्रह्मणस्पती । छन्द - जगती ।]

२२५७. इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यत: कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।

जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पति: ॥१ ॥

जिसे ब्रह्मणस्पतिदेव सखा बना लेते हैं, वह अग्नि को प्रज्वलित करके शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होता है तथा ज्ञानवान् बनकर हवि प्रदान करके समृद्धि प्राप्त करता है । पुत्र- पौत्रों, से उसकी वृद्धि होती है ॥१ ॥

२२५८. वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।

तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पति: ॥२ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा रूप मे स्वीकार कर लेते हैं, वह अपने बलशाली पुत्रों के द्वारा हिंसक शत्रु के वीर पुत्रों को मारता है । वह गोधन से समृद्ध होता हुआ ज्ञानवान् बनता है । ब्रह्मणस्पतिदेव उसे पुत्र-पौत्रों से समृद्ध बनाते हैं ॥२ ॥

२२५९. सिन्धुर्न क्षोद: शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रींरभि वष्ट्योजसा ।

अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पति: ॥३ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा रूप में स्वीकार कर लेते हैं, वह जिस प्रकार नदी तटबन्ध को तोड़ती है, साँड, बैल को पराजित करता है, उसी तरह अपनी सामर्थ्य से हिंसक शत्रुओं को पराजित करता है । ऐसा यजमान अग्नि की ज्वालाओं के समान किसी से रोका नहीं जा सकता ॥३ ॥

२२६०. तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चत: स सत्वभि: प्रथमो गोषु गच्छति ।

अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पति: ॥४ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, उसे दैवी सामर्थ्य सतत मिलती रहती है । वह सत्यनिष्ठ व्यक्तियों के साथ सबसे पहले गोधन प्राप्त करता है । युद्ध में शत्रुओं का संहार करते हुए सदैव अजेय रहता है ॥४ ॥

२२६१. तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।

देवानां सुम्ने सुभग: स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पति: ॥५ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, सारी नदियों का प्रवाह उसके

अनुकूल होता है । वह सतत अनेकानेक सुखों का भोग करता है । वह सौभाग्यशाली यजमान देवों के द्वारा प्रदत्त सुख तथा समृद्धि प्राप्त करता है ॥५ ॥

[सूक्त - २६]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- ब्रह्मणस्पती । छन्द - जगती ।]

२२६२. ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।

सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१ ॥

ब्रह्मणस्पतिदेव की स्तुति करने वाले सज्जन स्तोता ही देवगणों का पूजन करते हैं तथा देवगणों को न मानने वालों एवं हिंसकों का संहार करते हैं । उत्तम संरक्षण प्रदान करने वाले वे ब्रह्मणस्पतिदेव युद्ध में दुर्धर्ष शत्रुओं को मारते हैं । याज्ञिक(श्रेष्ठ कार्य करने वाले) ही यज्ञ न करने वाले(कुसंगी) व्यक्तियों के ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं ॥१ ॥

२२६३. यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।

हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! यज्ञ के द्वारा अहंकारी शत्रुओं का विनाश करो । विघ्नों को नष्ट करने के लिए मंगलमय विचारों से जुड़कर ब्रह्मणस्पतिदेव के संरक्षण की कामना से हविष्पात्र तैयार करो, जिससे सौभाग्यशाली बन सको ॥२ ॥

२२६४. स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।

देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३ ॥

जो याजक श्रद्धाभावना से देवों के पालनकर्ता ब्रह्मणस्पतिदेव को हव्य समर्पित करता है, वह व्यक्तियों द्वारा, समाज द्वारा तथा सन्तति द्वारा ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है और मनुष्य मात्र का सहयोग पाता है ॥३ ॥

२२६५. यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।

उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४ ॥

जो याजक यज्ञ में ब्रह्मणस्पतिदेव के निमित्त घृत युक्त हव्य से आहुतियाँ समर्पित करता है, उसे ब्रह्मणस्पतिदेव उत्तम संरक्षण प्रदान करते हैं, पाप से बचाते हैं, दारिद्र्य आदि कष्ट से रक्षा करते हैं और देवत्व के मार्ग में बढ़ाते हुए अद्‌भुत महान् बना देते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - २७]

[ऋषि- कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद । देवता- आदित्यगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२२६६. इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।

शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१ ॥

तेजस्वी आदित्यगण के लिए जुहू पात्र द्वारा घृत का सिंचन करते हुए हम स्तुतियाँ करते हैं । मित्रदेव, अर्यमादेव, भगदेव, सर्वव्यापी वरुणदेव, दक्ष तथा अंश आदि देवगण हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें ॥१ ॥

२२६७. इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।

आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२ ॥

कुटिलता से रहित, अनिन्दित आचार वाले, हिंसा न करने वाले व हिंसित न होने वाले यशस्वी आदित्यगण तथा मित्र, वरुण और अर्यमा देवगण हमारे स्नेह युक्त स्तोत्रों को आज श्रवण करें ॥२ ॥

२२६८. त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः।

अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥३ ॥

महान् गंभीर, दमन करने में समर्थ, दुष्टों को दण्ड देने वाले, हजारों आँखों वाले, आदित्य देव समस्त प्राणियों के अन्तःकरण की कुटिलता व सज्जनता को देखते हैं । इनके लिए दूर में स्थित पदार्थ भी निकट ही हैं ॥३ ॥

२२६९. धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः।

दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥४ ॥

स्थावर-जंगम सभी को धारण करते हुए ये आदित्यगण सम्पूर्ण संसार की रक्षा करते हैं ।विशाल बुद्धि वाले ये देवगण सत्य मार्ग पर चलने वाले स्तोताओं के ऋणों को दूर करते तथा अन्न, जल और धन की रक्षा करते हैं ॥४ ॥

२२७०. विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु।

युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥५ ॥

हे आदित्यगण ! किसी भी प्रकार का संकट आने पर हम आपका सुखदायी संरक्षण प्राप्त करें । हे अर्यमा, मित्र तथा वरुणदेवो ! गड्ढे वाली उबड़-खाबड़ जमीन की भाँति हम पाप कर्मों को छोड़ दें ॥५ ॥

२२७१. सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति।

तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६ ॥

हे अर्यमादेव, मित्रदेव तथा वरुण देव ! आप हमें विघ्नों से रहित, सरल तथा सुगमता से जाने योग्य मार्ग से ले चलें । हे आदित्यगण ! आप हमें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए कभी नष्ट न होने वाला सुख प्रदान करें ॥६ ॥

२२७२. पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥७ ॥

हे तेजस्वी पुत्रों वाली (देवों की माता) अदिति तथा अर्यमादेव ! हमें द्वेषकारी शत्रुओं को लाँघकर जाने का सुगम मार्ग दिखायें । हम मित्रदेव तथा वरुणदेव के संरक्षण में शत्रुओं से पीड़ित न होते हुए सुसन्तति सहित महान् सुख की प्राप्ति करें ॥७ ॥

२२७३. तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्।

ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥८ ॥

ये आदित्यगण तीन भूमियों (द्युलोक, पृथिवी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक) को तीन प्रकाशों (अग्नि, विद्युत् और सूर्य) सहित धारण करते हैं । ये सभी यज्ञीय व्रतों (अनुशासनों) के पालक हैं । हे आदित्यगण ! आप लोगों की महान् सामर्थ्य यज्ञ पर ही आधारित है । हे मित्र, वरुण और अर्यमा देवो ! आपकी महानता सर्वश्रेष्ठ है ॥८ ॥

२२७४. त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः।

अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९ ॥

सुवर्णालंकारों से अलंकृत, तेजवान्, परम पवित्र, निद्रारहित, आँख न झपकने वाले, यशस्वी, हिंसा रहित तथा मनुष्यों के हितकारी आदित्यगण तीनों दिव्य (अग्नि, वायु तथा सूर्य) शक्तियों को, धर्म मार्ग पर चलने वाले मनुष्यों के लिए धारण करते हैं ॥९ ॥

२२७५. त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः।

शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१० ॥

हे मादक पदार्थों से रहित वरुण देव ! आप देवता तथा मनुष्य सभी के राजा हैं । हमें इस संसार को भली- भाँति देखने के लिए सौ वर्ष की आयु प्रदान करें ॥१० ॥

२२७६. न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा।

पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११ ॥

हे आदित्यगण ! हम आगे, पीछे, बायें, दायें क्या है, यह नहीं जानते ? सबके आश्रयदाता आदित्यगण ! हम परिपक्व बुद्धि तथा धैर्यवान् होकर आपके द्वारा दिखाये गये पथ में चलते हुए भय रहित ज्योति प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

२२७७. यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः।

स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥१२ ॥

जो तेजस्वी याजकों को धन प्रदान करता है, जो सदैव समृद्धिशाली रूप में वृद्धि पाता है, वह स्तुत्य, धन प्रदाता धनिक रथ में प्रतिष्ठित रथी के समान श्रेष्ठ कार्यों में सदैव अग्रणी रहता है ॥१२ ॥

२२७८. शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः।

नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३ ॥

जो आदित्यगणों का पथानुगामी होता है, वह दीप्तिमान् , हिंसा रहित, उत्तम संतति से युक्त, दीर्घायु, पोषक अन्न तथा श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त करता है । उसका समीप से या दूर से कोई शत्रु वध नहीं कर सकता ॥१३ ॥

२२७९. अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः।

उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४ ॥

हे अदिति, मित्र तथा वरुण देवो ! यदि हमसे कोई अपराध भी बन पड़े तो भी आप हमें क्षमा करें । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! दीर्घ अन्धकार हमें न व्याप्त करे, अतः विस्तीर्ण तथा अभय ज्योति हमें प्रदान करें ॥१४ ॥

२२८०. उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन्।

उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥१५ ॥

(जो व्यक्ति आदित्यगणों का अनुगमन करता है !) उसे द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों परिपुष्ट बनाते है । द्युलोक से हुई ऐश्वर्य वृष्टि को वह सौभाग्यशाली प्राप्त करता है । वह युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता हुआ दोनों लोकों में जाता है तथा दोनों लोक उसके लिए मंगलदायी होते हैं ॥१५ ॥

२२८१. या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः।

अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥१६ ॥

हे आदित्यगण ! जिस तरह घुड़सवार कठिन रास्ते को सुगमता से पार करता है, उसी तरह शत्रुओं के लिए आपके द्वारा बनाये गये पाशों को हम सरलता से लाँघ जायें । हम निर्विघ्न सुखमय विशाल गृह में निवास करें ॥१६ ॥

२२८२. माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।

मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७ ॥

हे वरुणदेव ! सबको सन्तुष्ट करने वाले ऐश्वर्यवान् दानदाता की सुख-समृद्धि से कभी ईर्ष्या न करें, उसे बन्धुवत् मानें । हे वरुण देव ! आवश्यक धन प्राप्त होने पर हम अहंकारी न बनें, श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवों की स्तुतियाँ करें ॥१७ ॥

[सूक्त - २८]

[ऋषि- कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद । देवता- वरुण (१० दुःस्वप्ननाशिनी) । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२२८३. इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१ ॥

स्वयं प्रकाशित होने वाले आदित्यगण अपनी सामर्थ्य से सभी विनाशकारी शक्तियों को दूर करें, ये स्तोत्र उन दूरदर्शी आदित्यगण के लिए हैं । याज्ञिकों के लिए अत्यन्त सुखदायी, पोषणकारी वरुणदेव की स्तुतियों के द्वारा हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

२२८४. तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२ ॥

हे वरुणदेव ! आपका अनुगमन करते हुए हम सौभाग्यशाली बनें । किरण युक्त उषा के समय प्रतिदिन आपकी स्तुतियाँ करते हुए हम स्तोताजन श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त होकर अग्नि के समान तेजस्वी बनें ॥२ ॥

२२८५. तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३ ॥

हे श्रेष्ठनायक वरुणदेव ! आप बहुतों के द्वारा प्रशंसित हैं । हम वीर सन्तति से युक्त होकर आपके आश्रय में रहें । हे अवध्य पुत्रो ! हम आपसे मित्र भाव की कामना करते हुए अपने अपराधों तथा पापों के लिए क्षमा याचना करते हैं ॥३ ॥

२२८६. प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४ ॥

समस्त विश्व को धारण करने वाले अदिति पुत्र वरुणदेव ने जल को वृष्टि रूप में उत्पन्न करके अपनी सामर्थ्य से नदियों को प्रवाहित किया, जो पक्षी की भाँति अविरल गति से पृथ्वी पर विचरण कर रही हैं ॥४ ॥

२२८७. वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥५ ॥

हे वरुणदेव ! हमारे पापों ने हमें रस्सी की भाँति जकड़ रखा है, उनसे हमें छुड़ायें, ताकि श्रेष्ठ मार्ग में गमनशील आपकी सामर्थ्य को हम धारण कर सकें । जिस तरह बुनाई करने वाले का तागा नहीं टूटना चाहिए, उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों के नियोजन के समय आपकी शक्ति अविरल गति से प्राप्त होती रहे । कार्य की समाप्ति के पूर्व ही हमारी शक्ति क्षीण न हो ॥५ ॥

२२८८. अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६ ॥

हे सत्यरक्षक, तेजस्वी वरुणदेव !हमारे ऊपर कृपा बनाये रखकर, भय से हमें दूर करें ।जिस प्रकार रस्सी

से बछड़े को मुक्त करते हैं, उसी प्रकार हमें पापों से मुक्त करें, क्योंकि आपके अभाव में हमारा कोई अस्तित्व नहीं है ॥६ ॥

२२८९. मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।

मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७ ॥

हे प्राणों के रक्षक वरुणदेव ! दुष्टों को नष्ट करने वाले आयुधों का हम पर कोई प्रभाव न हो । हमारे जीवन को सुखमय बनाने के लिए हिंसक शत्रुओं को नष्ट करें तथा हम लोग प्रकाश से दूर न जायें ॥७ ॥

२२९०. नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।

त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥८ ॥

हे अनेक दुर्लभ शक्तियों से सम्पन्न वरुणदेव ! आपके अटूट नियम पर्वत के समान अचल तथा दृढ़ता से स्थिर रहते हैं । हम भूतकाल में आपको नमन करते रहे हैं, इस समय भी नमन करते हैं तथा भविष्य में भी नमन करते रहेंगे ॥८ ॥

२२९१. पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।

अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९ ॥

हे वरुणदेव ! हमें ऋण मुक्त करें । दूसरों के द्वारा अर्जित की गयी सम्पत्ति का हम उपभोग न करें ।बहुत सी उषाएँ (जीवन में प्रकाश देने वाली धाराएँ) जो प्रकाशित हो सकीं, उनसे हमारे जीवन को सुखमय बनायें ॥९ ॥

२२९२. यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।

स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१० ॥

हे तेजस्वी वरुणदेव ! जो हमारे बन्धु स्वप्न में हमें भयभीत करते हैं या भेड़िये के समान हमें नष्ट करना चाहते हैं, उनसे हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

२२९३. माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।

मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥११ ॥

हे वरुणदेव ! सबको सन्तुष्ट करने वाले, ऐश्वर्यशाली दानदाता की सुख-समृद्धि से हम कभी ईर्ष्या न करें, उन्हें बन्धुवत् मानें । हे वरुणदेव ! आवश्यक धन प्राप्त होने पर हम अहंकारी न बनें, श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवों की स्तुतियाँ करें ॥११ ॥

[सूक्त - २९]

[ऋषि- कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद । देवता- विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२२९४. धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।

शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१ ॥

हे व्रतधारी, सर्वत्र गमनशील आदित्यगण ! गुप्त रहस्य की भाँति हमारे पापों को हमसे दूर करें । हे मित्र एवं वरुणदेवो ! आपके मंगलकारी कार्यों को जानकर हम संरक्षण के लिए आपका आवाहन करते हैं, आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१ ॥

२२९५. यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।

अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥२ ॥

हे देवगण ! आप श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं, तेजस्वी हैं तथा द्वेषियों के छल को प्रकट करने वाले हैं । आप शत्रुनाशक हैं; अतः शत्रुओं का संहार करें तथा हमारा वर्तमान और भविष्य सुखमय बनायें ॥२ ॥

२२९६. किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३ ॥

हे आश्रयदाता देवगण ! पूर्व मे किये गये अपने कर्मों से हम आपका किस प्रकार आदर सत्कार करें, हे मित्र, वरुण, अदिति, इन्द्र तथा मरुद्गणो ! आप सभी देवगण हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

२२९७. हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४ ॥

हे देवगणो ! आप ही हमारे हितैषी सखा है; अतः हम आपकी स्तुति करते हैं, आप हमें सुखी बनायें । हमारे यज्ञ में आपका रथ तीव्र गति से आये । हम आपके समान सखा पाकर सदैव स्तुतियाँ करते रहें, थके नहीं ॥४ ॥

२२९८. प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५ ॥

हे देवो ! आपने हमें पिता की भाँति उपदेश दिया है; अतः हमने अपने अनेकों पापों को नष्ट कर दिया है । हे देवो ! पाप तथा पाश हमसे दूर रहें । व्याध द्वारा पक्षी की तरह पुत्र के सामने (निर्दयतापूर्वक) हमें न पकड़ें ॥५ ॥

२२९९. अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६ ॥

हे पूज्य देवगणो ! आप आज हमारे सामने प्रकट हों, भयभीत होकर हम आपके हृदय के समान प्रिय आश्रय को प्राप्त करें । हे पूज्य देवगणो ! कष्टदायी दुष्ट शत्रुओं से आपत्ति काल में हमारी हर प्रकार से रक्षा करें ॥६ ॥

२३००. माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! सबको सन्तुष्ट करने वाले ऐश्वर्यशाली दानदाता की सुख-समृद्धि से हम कभी ईर्ष्या न करें, उन्हें बन्धुवत् मानें । हे वरुणदेव ! आवश्यक धन प्राप्त होने पर हम अहंकारी न बनें, श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवों की स्तुतियाँ करें ॥७ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र , ६ - इन्द्रासोम, ८- पूर्वार्द्ध की सरस्वती, ९- बृहस्पति, ११- मरुद्गण । छन्द - त्रिष्टुप्; ११-जगती ।]

२३०१. ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥१ ॥

जल प्रेरक, तेजस्वी तथा सर्व प्रेरक वृत्रहन्ता, इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञादिकर्म कभी भी नहीं रुकते । जब से यज्ञादि कर्म प्रचलित हुए, तब से याजकगण सदैव यज्ञ कर्म करते हैं ॥१ ॥

२३०२. यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥२ ॥

जो (इन्द्रदेव के शत्रु) वृत्र के लिए अन्न प्रदान करता है, उसकी बात इन्द्रदेव से उनकी माता अदिति कह देती हैं। नदियाँ इन्द्रदेव की कामनानुसार अपना मार्ग बनाती हुई निरन्तर समुद्र की तरफ प्रवाहित होती हैं ॥२ ॥

२३०३. ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार।

मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३ ॥

चूँकि अन्तरिक्ष में बहुत ऊँचे स्थित होकर मेघ से आच्छादित वृत्र ने इन्द्रदेव पर आक्रमण किया था, इसलिए इन्द्रदेव ने अपने वज्र को वृत्र के ऊपर फेंका और तीक्ष्ण आयुधधारी इन्द्रदेव ने वृत्र पर विजय प्राप्त किया ॥३ ॥

२३०४. बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्।

यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! असुर पुत्रों को अपने विद्युत् के समान ताप देने वाले वज्र से छिन्न-भिन्न करें, प्रताड़ित करें। हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार प्राचीनकाल में आपने वज्र के द्वारा शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, उसी तरह हमारे शत्रुओं को भी आज नष्ट करें ॥४ ॥

२३०५. अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः।

तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर आपने जिस वज्र से शत्रु का विनाश किया था, उसी वज्र को द्युलोक से हमारे शत्रुओं के ऊपर फेंके। हमें भरण-पोषण के योग्य साधन तथा गोधन से समृद्ध बनायें, ताकि हम संतति का पालन-पोषण कर सकें ॥५ ॥

२३०६. प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ।

इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव तथा सोमदेव ! आप दोनों स्तोता-यजमानों को चाहते हैं तथा उन्हें यज्ञ के विस्तार की प्रेरणा देते हैं। आप दोनों भययुक्त इस संसार में हम लोगों की रक्षा करें तथा हमारे जीवन को प्रकाशित करें ॥६ ॥

२३०७. न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम्।

यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७ ॥

जो इन्द्रदेव हमें उत्तम ज्ञान तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करके हमारी कामनाओं को पूरा करते हैं, जो सोम रस को शोधित करते समय हमारे पास गौओं सहित आते हैं; वे इन्द्रदेव हमें कष्ट न दें, श्रमशक्ति प्रदान करें तथा हमें आलसी न बनायें। हम भी कभी किसी से यह न कहें कि इन्द्रदेव के लिए सोमरस तैयार न करो ॥७ ॥

२३०८. सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून्।

त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८ ॥

हे माँ सरस्वति ! मरुतों के साथ संयुक्त होकर दृढ़तापूर्वक हमारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके आप हमारी रक्षा करें। अहंकारी तथा अत्यधिक बलशाली शाण्डवंशी शण्डामर्क राक्षस को इन्द्रदेव ने मारा था ॥८ ॥

२३०९. यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य।

बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥९ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! हमारे बीच में जो छुपा हुआ हिंसक शत्रु हो, उसे खोजकर तीक्ष्ण शस्त्रों से छेदें। हमारे शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों से विजय प्राप्त करें। हे राजा बृहस्पतिदेव ! हिंसक अस्त्र द्रोहकारियों के ऊपर फेंकें ॥९ ॥

२३१०. अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि।

ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१०॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हमारे बलशाली वीरों का सहयोग लेकर, करने योग्य पराक्रमी कार्यों को करें । अहंकारी शत्रुओं को मारें तथा उनका धन हमें प्रदान करें ॥१०॥

२३११. तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम्।

यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

हे मरुद्गण ! सुख की कामना से हम आपके तेजस्वी पराक्रम की स्तुति करते हैं । आपकी नमनपूर्वक प्रशंसा करते हैं । हमें पराक्रमी संतति से युक्त यशस्वी धन सदैव प्रदान करें ॥११॥

[सूक्त - ३१]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- विश्वेदेवा । छन्द - जगती; ६- त्रिष्टुप् ।]

२३१२. अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा।

प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१॥

हे मित्र तथा वरुणदेवो !जब वनों में रहने वाले पक्षियों की तरह हमारा रथ अन्न की कामना से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, तब आदित्य, रुद्र तथा वसुओं के साथ संयुक्त रूप से हमारे रथ की रक्षा करें ॥१॥

२३१३. अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम्।

यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥२॥

इस रथ में जुते हुए द्रुतगामी घोड़े अपने मार्ग को तय करते हुए अपने पैरों से पृथ्वी के पृष्ठ भाग को आघात करते हुए चलते हैं । हे समान प्रीति वाले देवगणो ! इस समय अन्नाभिलाषी हमारे रथ को प्रजा की ओर जाने के लिए प्रेरित करें ॥२॥

२३१४. उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः।

अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३॥

सर्वद्रष्टा, उत्तम कर्मा इन्द्रदेव आप मरुतों के पराक्रम से युक्त होकर द्युलोक से आकर हमारे रथ में विराजमान हों तथा हमें धन-धान्य से सम्पन्न बनाते हुए श्रेष्ठ संरक्षण प्रदान करें ॥३॥

२३१५. उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम्।

इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥४॥

यशस्वी और समान रूप से सभी से प्रेम करने वाले सृष्टिकर्ता त्वष्टादेव अपनी तेजस्वी शक्तियों से हमारे रथ को चलायें । इडा, अत्यन्त कान्तिवान् भगदेव, ब्रह्माण्ड की व्यवस्था करने वाले पूषादेव, सबके पोषक दोनों अश्विनीकुमार तथा द्यावा-पृथिवी हमारे रथ को चलायें ॥४॥

२३१६. उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा।

स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥५॥

परम तेजस्वी, ऐश्वर्य सुख से युक्त, एक दूसरे के प्रति स्नेह रखने वाली दिन और रात्रि जंगम तथा स्थावर को प्रेरणा देने वाली हैं । हे द्यावा-पृथिवी ! आप दोनों की हम नवीन स्तोत्रों से (मानसिक, कायिक तथा वाचिक) तीनों प्रकार से स्तुतियाँ करते हुए हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥५॥

२३१७. उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्यो३ज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥६ ॥

हे देवगणो ! सज्जनों की भाँति हम आपकी स्तुति करना चाहते हैं, सर्वव्यापी अहिर्बुध्न्य, अज एकपात, तीनों लोकों में व्याप्त सविता देव, प्राणियों के पालक अग्निदेव, हमारी स्तुतियों से हर्षित होकर भरपूरअन्न प्रदान करें ॥६ ॥

२३१८. एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥७ ॥

हे पूज्य देवगणो ! आप सभी के द्वारा स्तुत्य हैं, अतः हम आपकी स्तुति करने की कामना करते हैं । अन्न और बल की कामना से यशस्वी मनुष्यों ने आपके लिए स्तुतियाँ बनायी हैं । रथ में जुड़े हुए घोड़ों की भाँति हम सदैव कार्य करते रहें ॥७ ॥

[सूक्त - ३२]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता** - १ द्यावा-पृथिवी; २-३ इन्द्र अथवा त्वष्टा; ४-५ राका; ६-७ सिनीवाली, ८- लिङ्गोक्त । **छन्द** - जगती; ६-८ अनुष्टुप् ।]

२३१९. अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥१ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आपको प्रसन्न करने की कामना करने वाले स्तोताओं के आप आश्रयदाता हैं । आप दोनों की हम स्तुति करते हैं । आप हमें उत्तम बल तथा धन प्रदान करें ॥१ ॥

२३२०. मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! शत्रुओं की गुप्त माया दिन या रात में हमें न मारने पाये । इन दुःखदायी विपत्तियों से हमें पीड़ित न करें । हम आपकी मित्रता की कामना करते हैं; अतः सुख की कामनावाले भाव को जानकर उन्हें टूटने न दें ॥२ ॥

२३२१. अहेळता मनसा श्रुष्टिमावह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप द्रुतगामी तथा मृदुभाषी हैं । आप हमें प्रसन्नतापूर्वक सुखकारी, दुधारू तथा परिपुष्ट गौएँ प्रदान करें । हम आपकी दिन-रात स्तुति करते हैं ॥३ ॥

२३२२. राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४ ॥

हम उत्तम स्तोत्रों के द्वारा आवाहन के योग्य 'राका' एवं 'पूर्णिमा' देवियों का आवाहन करते हैं । ये ऐश्वर्यशालिनी देवियाँ हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके कभी न टूटने वाले संकल्प रूपी कर्मों को सुदृढ़ बनायें तथा प्रशंसनीय धन तथा वीर संतति प्रदान करें ॥४ ॥

२३२३. यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५ ॥

"हे ऐश्वर्यशालिनि राका देवि ! आप जि" उत्तम बुद्धियों से याज्ञिकों को श्रेष्ठ धन प्रदान करती हैं, आज उन्हीं श्रेष्ठ बुद्धियों से युक्त होकर अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन तथा पौष्टिक अन्न सहित हमारे पास पधारें ॥५ ॥

२३२४. सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥६ ॥

हे विराट् स्वरूपा सिनीवाली देवि ! आप देवताओं की बहिन हैं । हे देवि ! अग्नि में समर्पित की गयी आहुतियों को ग्रहण करके हमें उत्तम सन्तति प्रदान करें ॥६ ॥

२३२५. या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७ ॥

हे याजको ! जो सिनीवाली देवी उत्तम भुजाओं तथा सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ पदार्थों तथा उत्तम प्रजाओं की जनक हैं, उन प्रजापालक सिनीवाली देवी के लिए हविष्यान्न प्रदान करें ॥७ ॥

२३२६. या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥८ ॥

जो गुंगू , जो सिनीवाली, जो राका, जो सरस्वती आदि देवि-याँ हैं, उन्हें हम अपने संरक्षण की कामना से आवाहित करते हैं । इन्द्राणी तथा वरुणानी देवियों को भी अपने कल्याण की कामना से आवाहित करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- रुद्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२३२७. आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१ ॥

हे मरुतों के पिता रुद्रदेव ! आपका सुख हमें प्राप्त हो । हमें सूर्य के उत्तम प्रकाश से कभी भी दूर न करें । हमारी वीर सन्तति संग्राम में शत्रुओं को पराजित करे । हम उत्तम सन्तति से प्रसिद्धि प्राप्त करें ॥१ ॥

२३२८. त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२ ॥

हे रुद्रदेव ! हम आपके द्वारा प्रदान की गयी सुखदायी ओषधियों के सेवन से सौ वर्ष तक जीवित रहें । आप हमारे द्वेष भावों तथा पापों को दूर करके हमारे शरीर में व्याप्त समस्त रोगों को नष्ट करें ॥२ ॥

२३२९. श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३ ॥

हे रुद्रदेव ! आप सबसे श्रेष्ठ ऐश्वर्यशाली हैं । हे आयुधधारी रुद्रदेव ! आप बलवानों में सबसे अधिक बलवान् हैं । हमें पापों से मुक्त करके, उनके कारण आने वाली विपत्तियों को हमसे दूर करें ॥३ ॥

२३३०. मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४ ॥

हे रुद्रदेव ! वैद्यों से भी उत्तम वैद्य के रूप में आप जाने जाते हैं; अतः ओषधियों के द्वारा हमारी सन्तति को

बलशाली बनायें । हम झूठी तथा निन्दित स्तुतियों के द्वारा आपको क्रोधित न करें । साधारण लोगों के समान बुलाकर भी हम आपको क्रोधित न करें ॥४ ॥

२३३१. हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५ ॥

जिन रुद्रदेव को हविष्यान्न समर्पित करके स्तुतियों के द्वारा आवाहित किया जाता है, उन्हें हम स्तोत्रों के द्वारा शान्त भी करें । कोमल हृदय वाले तेजस्वी हँसमुख स्वभाववाले तथा उत्तम प्रकार से बुलाये जाने योग्य रुद्रदेव ईर्ष्यालुओं के द्वारा हमारी हिंसा न करायें ॥५ ॥

२३३२. उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६ ॥

कामनाओं की पूर्ति करने वाले मरुतों से युक्त हे रुद्रदेव ! हम ऐश्वर्य की कामना वालों को तेजस्वी अन्न से संतुष्ट करें । जिस प्रकार धूप से पीड़ित व्यक्ति छाया की शरण में जाता है, उसी प्रकार हम भी पाप रहित होकर रुद्रदेव की सेवा करते हुए उनके सुख को प्राप्त करें ॥६ ॥

२३३३. क्व१स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७ ॥

हे रुद्रदेव ! जिस हाथ से आप ओषधियाँ प्रदान करके सुखी बनाते हैं, वह आपका सुखदायी हाथ कहाँ है ? हे बलशाली रुद्रदेव ! आप दैवी आपत्तियों को दूर करने वाले हैं ; अतः हमारे अपराधों को क्षमा करें ॥७ ॥

२३३४. प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८ ॥

ऐश्वर्य प्रदाता, सबके पालक तथा श्वेत आभायुक्त रुद्रदेव की हम महान् स्तुतियाँ गाते हैं । हे स्तोताओ ! हम रुद्रदेव के उज्ज्वल नाम का संकीर्तन करते हैं, आप लोग भी तेजस्वी रुद्रदेव की स्तुतियों के द्वारा पूजा करो ॥८ ॥

२३३५. स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥९ ॥

सबके पालक, दृढ़ अंगों वाले, अनेक रूपों के स्वामी, तेजस्वी रुद्रदेव स्वर्णाभूषणों से सुशोभित होते हैं ।ये समस्त भुवनों के स्वामी तथा भरण-पोषण करने वाले हैं । असुर संहारक शक्ति इनसे कभी भी अलग नहीं होती

२३३६. अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१० ॥

हे रुद्रदेव ! आप धनुष-बाण धारण करने के योग्य हैं । स्वर्णाभूषणों से युक्त अनेकों रूपों वाले आप पूजा के योग्य हैं । हे देव ! आपसे तेजस्वी और कोई नहीं है । आप ही विशाल विश्व का संरक्षण करते हैं ॥१० ॥

२३३७. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११ ॥

हे स्तोताओ ! यशस्वी रथ में विराजमान तरुण, सिंह के समान भय उत्पन्न करने वाले, शत्रु संहारक, बलशाली रुद्रदेव की स्तुति करो । हे रुद्रदेव ! आप स्तोताओं को सुखी बनायें तथा आपकी सेना शत्रुओं का संहार करे ॥११ ॥

"हे ऐश्वर्यशालिनि राका देवि ! आप जि' उत्तम बुद्धियों से याज्ञिकों को श्रेष्ठ धन प्रदान करती हैं, आज उन्हीं श्रेष्ठ बुद्धियों से युक्त होकर अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन तथा पौष्टिक अन्न सहित हमारे पास पधारें ॥५ ॥

२३२४. सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।

जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥६ ॥

हे विराट् स्वरूपा सिनीवाली देवि ! आप देवताओं की बहिन हैं । हे देवि ! अग्नि में समर्पित की गयी आहुतियों को ग्रहण करके हमें उत्तम सन्तति प्रदान करें ॥६ ॥

२३२५. या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।

तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७ ॥

हे याजको ! जो सिनीवाली देवी उत्तम भुजाओं तथा सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ पदार्थों तथा उत्तम प्रजाओं की जनक हैं, उन प्रजापालक सिनीवाली देवी के लिए हविष्यान्न प्रदान करें ॥७ ॥

२३२६. या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।

इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥८ ॥

जो गुंगू , जो सिनीवाली, जो राका, जो सरस्वती आदि देवियाँ हैं, उन्हें हम अपने संरक्षण की कामना से आवाहित करते हैं । इन्द्राणी तथा वरुणानी देवियों को भी अपने कल्याण की कामना से आवाहित करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । देवता- रुद्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२३२७. आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।

अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१ ॥

हे मरुतों के पिता रुद्रदेव ! आपका सुख हमें प्राप्त हो । हमें सूर्य के उत्तम प्रकाश से कभी भी दूर न करें । हमारी वीर सन्तति संग्राम में शत्रुओं को पराजित करे । हम उत्तम सन्तति से प्रसिद्धि प्राप्त करें ॥१ ॥

२३२८. त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।

व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२ ॥

हे रुद्रदेव ! हम आपके द्वारा प्रदान की गयी सुखदायी ओषधियों के सेवन से सौ वर्ष तक जीवित रहें । आप हमारे द्वेष भावों तथा पापों को दूर करके हमारे शरीर में व्याप्त समस्त रोगों को नष्ट करें ॥२ ॥

२३२९. श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।

पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३ ॥

हे रुद्रदेव ! आप सबसे श्रेष्ठ ऐश्वर्यशाली हैं । हे आयुधधारी रुद्रदेव ! आप बलवानों में सबसे अधिक बलवान् हैं । हमें पापों से मुक्त करके, उनके कारण आने वाली विपत्तियों को हमसे दूर करें ॥३ ॥

२३३०. मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।

उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४ ॥

हे रुद्रदेव ! वैद्यों से भी उत्तम वैद्य के रूप में आप जाने जाते हैं; अतः ओषधियों के द्वारा हमारी सन्तति को

२३३८. **कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम्।**

भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥

हे रुद्रदेव ! जिस प्रकार पुत्र अपने पूज्य पिता को प्रणाम करता है, उसी तरह आपके समीप आने पर हम आपको प्रणाम करते हैं। हे सज्जनों के स्वामी दानदाता रुद्रदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं। स्तुति करने पर आप हमें ओषधियाँ प्रदान करें ॥१२॥

२३३९. **या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु।**

यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

हे बलशाली मरुतो ! आपकी जो कल्याणकारी, पवित्र तथा सुखदायी ओषधियाँ हैं, जिनका चयन हमारे पिता मनु ने किया था, उन कल्याणकारी रोग निवारक ओषधियों की हम इच्छा करते हैं ॥१३॥

२३४०. **परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात्।**

अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥

रुद्रदेव के महान् आयुध, पीड़ादायी तीक्ष्ण शस्त्र तथा दुर्बुद्धि हमसे परे ही रहें। हे सुखदायी रुद्रदेव ! ऐश्वर्यशाली याजकों के प्रति अपने दृढ़ धनुष की प्रत्यंचा को शिथिल करें तथा हमारी सन्तति को सुखी बनायें ॥१४॥

२३४१. **एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि।**

हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥

हे तेजस्वी, सुखकारी, सर्वज्ञ तथा प्रार्थना को स्वीकार करने वाले रुद्रदेव ! आप हमें ऐसा मार्गदर्शन दें, कि हमारे कारण आप कभी क्रुद्ध न हों, आप हमें नष्ट न करें। हम उत्तम सन्तति सहित यज्ञ में आपकी उत्तम स्तुतियाँ करें ॥१५॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- मरुद्गण। **छन्द** - जगती, १५ त्रिष्टुप्।]

२३४२. **धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः।**

अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१॥

मेघ की जलधारा को आवृत्त करने वाले, शत्रुओं के संहारक बल से युक्त, सिंह की भाँति भय उत्पन्न करने वाले, अग्नि जैसे तेजस्वी, सन्मार्गगामी, गति पैदा करने वाले पूज्य मरुद्गण सूर्य-रश्मियों को प्रकट करते हैं ॥१॥

२३४३. **द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य १ भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः।**

रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥

हे सुवर्ण आभूषणों से अलंकृत मरुतो ! जिस प्रकार द्युलोक, नक्षत्रों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप मेघ में विद्यमान विद्युत् से शोभायमान हों। आपको रुद्रदेव ने पृथिवी के पवित्र उदर से उत्पन्न किया है, आप ही शत्रुभक्षक तथा जल की वृष्टि करने वाले हैं ॥२॥

२३४४. **उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः।**

हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३॥

मरुद्गण अपने घोड़ों को घुड़दौड़ के घोड़ों के समान बलवान् बनाते हैं । ये शब्द करने वाले द्रुतगामी घोड़े युद्ध में वेग से जाते हैं । हे सुवर्णाभूषणों से अलंकृत मरुद्गण ! आप शत्रुओं को कम्पित करने वाले हैं । आप अन्न आदि (पोषक पदार्थों) के समीप वर्षण करने वाली मेघ मालाओं के माध्यम से जाते हैं ॥३ ॥

२३४५. पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।

पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४ ॥

ये मरुद्गण मित्र के समान सभी भुवनों को आश्रय प्रदान करते हैं । धब्बे वाले घोड़ों से युक्त, अक्षय अन्न प्रदान करने वाले ये दानशील मरुद्गण धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वाले याजकों को उन्नति पथ पर ले जाते हैं ॥४ ॥

२३४६. इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।

आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५ ॥

हे दीप्तिमान् आयुध वाले मन्युयुक्त मरुद्गण ! जिस तरह हंस अपने निवास स्थान की ओर जाते हैं, उसी प्रकार आप बरसने वाले मेघों के साथ धेनु युक्त होकर विघ्न रहित मार्ग से सोम रस का पान करने और आनन्दित होने के लिए यज्ञ में आयें ॥५ ॥

२३४७. आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।

अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६ ॥

हे मन्यु युक्त मरुतो ! जिस प्रकार शूरवीर आते हैं, उसी प्रकार आप हमारे शोधित सोम के पास आयें । हमारी गौओं के अधोभाग को घोड़ी की तरह पुष्ट बनायें तथा याजकों के यज्ञ को अन्न युक्त करें ॥६ ॥

२३४८. तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।

इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७ ॥

हे वीर मरुद्गण ! आप हमें अन्न युक्त सन्तति प्रदान करें । वह सन्तति आपके आगमन के समय आपका यशोगान करे । आप स्तोताओं को अन्न प्रदान करें । युद्ध के समय पराक्रमी स्तोताओं को दानवृत्ति, युद्ध - कौशल, सद्बुद्धि और अभय तथा अजेय सहनशीलता प्रदान करें ॥७ ॥

२३४९. यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।

धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥८ ॥

ऐश्वर्यशाली, दानशील मरुद्गणों के वक्षस्थल में सुवर्णाभूषण सुशोभित हैं । जिस प्रकार गाय बछड़े को दूध देती है, उसी प्रकार मरुद्गण घोड़ों को रथ में जोतते हुए, हवि प्रदान करने वाले याजक के घर में भरपूर मात्रा में अन्न प्रदान करते हैं ॥८ ॥

२३५०. यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।

वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥९ ॥

हे आश्रय प्रदाता मरुद्गण ! जो मनुष्य भेड़िये की तरह हमसे शत्रुता करता है, उस हिंसक मनुष्य से हमारी रक्षा करें । उसे संताप जनक चक्र द्वारा चारों ओर से हरायें । हे रुद्रदेव ! आप शत्रुओं के आयुधों को दूर करके उन्हें नष्ट करें ॥९ ॥

२३५१. चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।

यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥१० ॥

हे मरुद्गणो ! आप गाय के दुग्धाशय का दोहन करके दूध पीते और सबके प्रति मित्रभाव रखते हैं । आपने स्तोताओं के निन्दकों की हत्या की थी तथा त्रित नामक ऋषि के शत्रुओं का संहार किया था । आपका यह आश्चर्यजनक पराक्रम सर्वविदित है ॥१०॥

२३५२. तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।

हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥

हे द्रुतगामी मरुद्गणो !आपको हम अपने व्यापक हितों की पूर्ति की कामना से आवाहित करते हैं । हे सुवर्ण के समान तेजस्वी मरुद्गणो !पुण्य कार्य में निरत हम याजकगण आपसे प्रशंसनीय धन की याचना करते हैं ॥११॥

२३५३. ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।

उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥

दसों इन्द्रियों को अपने वश में करने वाले अद्वितीय वीरों (मरुतों) ने पहले यज्ञ किया । उषाकाल आरंभ होते ही वे हमें प्रेरित करें । जिस प्रकार उषा की अरुणाभ किरणें अंधेरी रात्रि को हटाती हैं, उसी तरह मरुद्गण अपनी तेजस्वी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ॥१२॥

२३५४. ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।

निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥

रुद्रपुत्र ये मरुद्गण अरुणाभ वस्त्रालंकारों से अलंकृत होकर जल के निवास स्थल मेघ में विस्तार पाते हैं । ये मरुद्गण परस्पर मिलकर वेगयुक्त बल से जल लाते समय हर्षदायक तथा मनोहर सौन्दर्य धारण करते हैं ॥१३॥

२३५५. ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।

त्रितो न यान्पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४॥

हम याजकगण उन मरुद्गणों से प्रशंसनीय धन की याचना करते हुए अपने संरक्षण के लिए स्तोत्रों के द्वारा उनकी स्तुतियाँ करते हैं । इन अत्यन्त श्रेष्ठ मरुद्गणों ने पाँच (पाँचों वर्ण) याजकों को चक्र रूपी हथियार से संरक्षण प्रदान करने के लिए त्रित नामक ऋषि को बुलाया था ॥१४॥

२३५६. यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।

अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥१५॥

हे मरुद्गणो ! आप जिस समर्थ संरक्षण से याजक को पाप से बचाते हैं; जिस संरक्षण से स्तोताओं को निन्दा करने वालों से मुक्त करते हैं; वही समर्थ संरक्षण हमें भी प्रदान करें ॥१५॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** अपांनपात् । **छन्द** -त्रिष्टुप् ।]

२३५७. उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।

अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥१॥

अन्न और बल की कामना से हम इन स्तुतियों का उच्चारण करते हैं । द्रुतगामी अपांनपात् (अग्नि) देव हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हुए अन्नादि को पुष्ट बनायें और हमें उत्तम रूप प्रदान करें ॥१॥

२३५८. इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥२ ॥

इन अपांनपात् देव के लिए हम हृदय से रचित मंत्रों का गान करें, जिन्हें वे स्वीकार करें । इन अपांनपात् देव ने अपनी असुर संहारक शक्ति की महिमा से समस्त लोकों को उत्पन्न किया है । ।२ ॥

२३५९. समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥३ ॥

कुछ जल प्रवाह पास आते हैं, अन्य प्रवाह दूर जाते हैं । नदियाँ संयुक्त होकर सागर में पहुँचती हैं । वहाँ वह जल अपांनपात् देव को चारों ओर से घेर लेता है ॥३ ॥

२३६०. तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥४ ॥

जिस प्रकार अहंकार रहित स्त्री अपने युवा पति को अलंकृत करती है, उसी प्रकार दीप्तियुक्त स्वरूप वाले ये अपांनपात् देव जलमय प्रकृति में बिना ईधन के ही (बड़वाग्नि रूप में) चमकते हैं । ये अपांनपात् देव हमें अपने तेजस्वी स्वरूप में धन प्रदान करें ॥४ ॥

२३६१. अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥५ ॥

तीन देवियाँ (इळा, सरस्वती तथा भारती) दुःख रहित अपांनपात् देव के लिए अन्न धारण करती हैं । जिस प्रकार जल के प्रवाह में कोई पदार्थ सुगमता से आगे बढ़ता है, उसी प्रकार ये तीनों देवियाँ आगे बढ़ती हैं । अपांनपात् देव जल में उत्पन्न अमृत का सर्व प्रथम पान करते हैं ॥५ ॥

२३६२. अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥६ ॥

इन अपांनपात्‌देव के द्वारा ही अश्व (उच्चैःश्रवा नामक) का जन्म होता है । यह अश्व उत्तम सुखदायी है । हे अपांनपात् देव ! आप हिंसकों तथा द्रोहियों से स्तोताओं की रक्षा करें । अपरिपक्व बुद्धि वाले, असत्याचरण वाले तथा अदानी व्यक्ति इन अहिंसनीय अपांनपात् देव को नहीं प्राप्त कर सकते ॥६ । ।

२३६३. स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥७ ॥

अपने आवास में रहने वाले अपांनपात् देव की गौएं सहज ही दुही जा सकती हैं । ये अपांनपात् देव अन्न की वृद्धि करते हुए उत्तम अन्न को स्वीकार करते हैं । ये देव जल के मध्य प्रबल होकर याजकों को धन देने की कामना से दीप्तिवान् होते हैं ॥७ ॥

२३६४. यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥८ ॥

जल में रहने वाले, सत्ययुक्त, अनश्वर, अत्यन्त विशाल, अपांनपात् देव चारों ओर से प्रकाशित होते हैं । अन्य दूसरे भुवन इनकी शाखाओं के रूप में हैं । इन्हीं अपांनपात् देव से फल-फूल तथा अन्यान्य वनौषधियाँ समस्त प्रजा को प्राप्त होती हैं ॥८ ॥

२३६५. अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।

तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९ ॥

ये अपांनपात् देव कुटिल गति से चलने वाले मेघों के ऊपर विद्युत् से आच्छादित होकर अन्तरिक्ष में रहते हैं । जब ये देव जल वृष्टि करते हैं, तब बड़ी-बड़ी नदियाँ चारों ओर से प्रवाहित होती हुई इन देव की महिमा का गान करती हैं ॥९ ॥

२३६६. हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।

हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१० ॥

ये अपांनपात् देव सुवर्ण के समान स्वरूप वाले,सुवर्ण के समान आँखों वाले,सुवर्ण के समान वर्णवाले हैं ।ये देव सुवर्णमय स्थल में विराजमान होकर सुशोभित होते हैं ।सुवर्ण प्रदान करने वाले याजक उन्हें अन्न देते हैं ॥१०॥

२३६७. तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।

यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११ ॥

सुन्दर नाम वाले अपांनपात् देव की किरणें मेघों में रहकर विस्तार पाती हैं । सुवर्ण के समान तेजस्वी स्वरूप वाले अपांनपात् देव को अँगुलियाँ जल समर्पित करके विस्तृत करती हैं ॥११ ॥

२३६८. अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२ ॥

बहुतों में श्रेष्ठ, समान रूप से सबके मित्र इन अपांनपात् देव की (हम) आहुतियों एवं स्तुतियों द्वारा सेवा करते हैं । हम गिरि शिखरों की भाँति उनके स्वरूप को अलंकृत करते हैं । समिधाओं को प्रदीप्त करके अन्न की आहुतियाँ समर्पित करते हुए ऋचाओं के द्वारा हम अपांनपात् देव की वन्दना करते हैं ॥१२ ॥

२३६९. स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।

सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३ ॥

वृष्टि करने में समर्थ अपांनपात्देव जल से पूर्ण वायुमण्डल को उत्पन्न करते हैं । ये अपांनपात् देव छोटे शिशु की भाँति समुद्र से जल ग्रहण करके समस्त दिशाओं में जल को पहुंचाते हैं । ये अपांनपात् देव तेजस्वी होकर इस लोक में अन्य रूप में रहते हैं ॥१३ ॥

२३७०. अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।

आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४ ॥

ये अपांनपात् देव सर्वोत्कृष्ट स्थान में विराजमान रहते हैं । सतत प्रवाहशील महान् जल समूह उन अविनाशी तेजस्वी देव के निमित्त पोषक रस पहुँचाते हुए उन्हें घेरे रहते हैं ।

२३७१. अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम प्रकार से आश्रय प्रदान करते हैं, अतः सन्तति लाभ के निमित्त हम आपके पास आये हैं । देवगणों का कल्याणकारी संरक्षण हमें मिले तथा आपकी अनुकम्पा से ऐश्वर्यशाली भी हमसे श्रेष्ठ व्यवहार करें । हम श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवगणों का यशोगान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ३६]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । देवता- ऋतुदेवता- १ इन्द्र एवं मधु, २ मरुत् एवं माधव, ३ त्वष्टा एवं शुक्र, ४ अग्नि एवं शुचि, ५ इन्द्र एवं नभ, ६ मित्रावरुण एवं नभस्य । छन्द- जगती]

२३७२. तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।

पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस सोम रस में गौ दुग्ध तथा जल मिश्रित है । याज्ञिकों द्वारा पत्थर से कूटकर निकाले गये इस सोम रस को ऊन की छननी से शोधित किया जाता है । हे इन्द्रदेव ! आप समस्त संसार के शासक हैं, अतः याजकों द्वारा वषट्कार पूर्वक स्वाहा के साथ समर्पित किये गये सोम को यज्ञ में आकर सबसे पहले आप पान करें ॥१ ॥

२३७३. यज्ञैः सम्मिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।

आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥२ ॥

यज्ञीय कार्य में सहायक, भूमि को सिंचित करने वाले,शस्त्रों से सुशोभित,आभूषण प्रेमी,भरण-पोषण में समर्थ, देवपुत्र तथा नेतृत्व प्रदान करने वाले हे मरुद्गणो !आप यज्ञ में विराजमान होकर पवित्र सोमरस का पान करें ॥२ ॥

२३७४. अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।

अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥३ ॥

हे यशस्वी मरुतो ! आप हमारे पास आयें और कुश-आसन में विराजमान होकर सुशोभित हों । हे त्वष्टा देव ! आप देवगणों तथा दैवी शक्तियों के सोमरस का पान करके हर्षित हों ॥३ ॥

२३७५. आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।

प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥४ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ में देवगणों को सत्कार पूर्वक बुलायें । हे होता अग्निदेव ! हमारे यज्ञ की कामना से आप तीनों लोकों में प्रतिष्ठित हों । शोधित सोमरस को स्वीकार करके इस यज्ञ में सोमपान करें, समर्पित किये गये भाग से आप तृप्त हों ॥४ ॥

२३७६. एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।

तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके शरीर में शक्ति की वृद्धि करने वाला है । इसी सोम से आपकी भुजायें बलशाली हैं तथा आप तेजस्वी एवं ओजस्वी हैं । हे इन्द्रदेव ! आप के निमित्त ही यह सोमरस लाया गया है तथा शोधित किया गया है । ज्ञानी जनों द्वारा प्रदान किये गये सोमरस का पान करके आप तृप्त हों ॥५ ॥

२३७७. जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।

अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥६ ॥

हे मित्रावरुण ! आप हमारे यज्ञ में आयें । होतागण उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, अतः हमारे आवाहन को सुनकर यज्ञ में बैठकर सुशोभित हों । हे देवो ! याजकों द्वारा शोधित यह सोमरस दुग्ध मिश्रित है, अतः हमारे इस यज्ञ में आकर इस सोमरस का पान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- सविता । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२३७८. मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१ ॥

हे धन प्रदाता अग्निदेव ! होताओं के द्वारा समर्पित किये गये सोमरस का प्रसन्नतापूर्वक पान करके हर्षित हों । हे अध्वर्युगण ! अग्निदेव पूर्णाहुति की कामना करते हैं, अतः उनके लिए सोमरस प्रदान करें । सोम की कामना वाले ये अग्निदेव तुम्हें धन प्रदान करेंगे । हे अग्निदेव ! यज्ञ में होताओं के द्वारा समर्पित किये गये इस सोमरस का ऋतु के अनुरूप पान करें ॥१ ॥

२३७९. यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२ ॥

जिन अग्निदेव को हमने पहले भी बुलाया था, उन्हें अब भी आवाहित करते हैं । ये अग्निदेव निश्चित ही याजकों को धन प्रदान करने वाले तथा सभी के स्वामी हैं, आवाहन के योग्य हैं । इन देव के लिए याजकों द्वारा सोमरस शोधित किया गया है । हे अग्निदेव ! इस पवित्र यज्ञ में ऋतु के अनुरूप सोमरस का पान करें ॥२ ॥

२३८०. मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३ ॥

हे द्रविणोदादेव ! आप जिस अश्व पर आरूढ़ होते हैं, वह तृप्त हो । हे वनस्पतिदेव ! आप हमें हिंसित न करके शक्तिशाली बनायें । हे शत्रुनाशक देव ! आप यज्ञ में पधार कर याज्ञिकों द्वारा समर्पित किये गये सोमरस का पान ऋतु के अनुरूप करें ॥३ ॥

२३८१. अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४ ॥

जो द्रविणोदादेव नेष्टा के यज्ञ में पवित्र सोमरस का पान करके आनन्दित हुए, वे धन प्रदाता देव भली- भाँति शोधित किये गये, अमरत्व प्रदान करने वाले सोमरस का पान करें ॥४ ॥

२३८२. अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने अभीष्ट स्थान पर ले जाने वाले द्रुतगामी रथ को हमारे यज्ञ स्थल में आने के लिए नियोजित करें । हमारे यज्ञ में आकर हमारे हविष्यान्न को सुस्वादु बनायें । हे आश्रय प्रदाता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सोम रस का पान करें ॥५ ॥

२३८३. जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारी समिधाओं से प्रदीप्त होकर आहुतियों को ग्रहण कर याजकों द्वारा की गयी सुन्दर स्तुतियों को स्वीकार करें । सोमपान की अभिलाषा वाले हे अग्निदेव ! आप सभी के आश्रय दाता हैं । आप सभी देवों, ऋभुओं और विश्वेदेवों के साथ सोमरस का पान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ३८]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- सविता । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२३८४. उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१ ॥

सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले, प्रकाशक तथा तेजस्वी सवितादेव सभी (प्राणियों) को कर्म की प्रेरणा देते हुए प्रतिदिन उदित होते हैं । देवत्व धारियों (स्तोताओं) के लिए ये सवितादेव रत्न धारण करते हैं । अतः वे स्तोता अपने मंगल की कामना से यज्ञ करें ॥१ ॥

२३८५. विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२ ॥

ये तेजस्वी सवितादेव उदित होकर सम्पूर्ण विश्व के सुख के लिए अपनी विशाल (किरणों रूपी) भुजाओं को फैलाते हैं । सवितादेव के अनुशासन में ही अत्यन्त पवित्र जल प्रवाहित होता है तथा उन्हीं के नियमों में आबद्ध वायु भी प्रवाहित होते हुए आनन्दित होती है ॥२ ॥

२३८६. आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३ ॥

अस्त होते हुए सवितादेव अपनी द्रुतगामी रश्मियों को समेट कर चलते हुए यात्रियों को रोक देते हैं । शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले वीरों को रोक देते हैं ।उनके इस कर्म की समाप्ति के बाद ही रात्रि का आगमन होता है ॥३ ॥

२३८७. पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृ१ तूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४ ॥

अन्धकार रूपी रात्रि वस्त्र बुनने की तरह सम्पूर्ण प्रकाश को आबद्ध कर लेती है । ज्ञानीजन (ऐसी स्थिति में) करने योग्य कार्यों को बीच में ही रोक देते हैं तथा कभी न रुकने वाले ऋतु विभाग कर्त्ता सवितादेव के उदित होते ही सम्पूर्ण जगत् निद्रा को त्याग देता है ॥४ ॥

२३८८. नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५ ॥

जिस प्रकार अग्नि का तेज घरों तथा समस्त जीवन में व्याप्त है, उसी प्रकार सवितादेव का तेज सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त है । उषा माता सवितादेव द्वारा प्रदत्त यज्ञ के श्रेष्ठ भाग को अपने पुत्र अग्नि के लिए धारण करती हैं ॥५ ॥

२३८९. समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६ ॥

सवितादेव के अस्त हो जाने पर विजयाकांक्षी वीर योद्धा आक्रमण को बीच में ही रोक देता है । गतिमान् प्राणी घर जाने की इच्छा करते हैं तथा सतत कार्य करने वाले भी अधूरे काम को रोककर घर लौट आते हैं ॥६ ॥

२३९०. त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७ ॥

हे सवितादेव ! अन्तरिक्ष में आपने जो जल भाग स्थापित किया है, उसे प्राणी मरुप्रदेशों में भी प्राप्त करते

हैं । आपने ही पक्षियों के (आश्रय) के लिए जंगल प्रदान किये हैं । ऐसे तेजस्वी सविता देव के कर्म को कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥७ ॥

२३९१. याद्राध्यं१ वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।

विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८ ॥

सविता देव के अस्त हो जाने पर सतत गमनशील वरुण देव सभी को सुखकारी तथा वांछनीय आश्रय प्रदान करते हैं । इस प्रकार सवितादेव के अस्त होते ही पक्षी तथा जानवर अपने-अपने स्थान पर पहुँचकर अलग-अलग हो जाते हैं ॥८ ॥

२३९२. न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।

नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९ ॥

जिन सवितादेव के अनुशासन को इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा तथा रुद्रदेव भी नहीं तोड़ सकते हैं और न ही शत्रु तोड़ सकते हैं-- ऐसे तेजस्वी सवितादेव को हम अपने मंगल की कामना से नमस्कार पूर्वक आवाहित करते हैं ॥९ ॥

२३९३. भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।

आये वामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१० ॥

समस्त जगत् को धारण करने वाले, सुखदाता, स्तुत्य, भजनीय, ज्ञानदाता तथा प्रजा पालक सविता देव हमारी रक्षा करें ।उत्तम ऐश्वर्य तथा पशु आदि सम्पदाओं के प्राप्त होने पर भी हम सवितादेव के प्रिय होकर रहें ॥१० ॥

२३९४. अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।

शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११ ॥

हे सवितादेव ! आपके द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य स्तोताओं तथा उनके वंशजों के लिए कल्याणकारी है, अत: द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्षलोक का कान्तियुक्त ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । हम आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ३९]

[ऋषि - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२३९५. ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।

ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार पक्षी फल से लदे वृक्ष की ओर जाते हैं, वैसे ही आप यजमानों के पास पहुँचें । दो शिलाखण्डों से उत्पन्न ध्वनि की तरह (शब्दनाद करते हुए) शत्रुओं को बाधा पहुँचायें ।यज्ञ में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् तथा जनता के हितकारी दूतों की तरह आप बहुतों के द्वारा सम्मान पूर्वक बुलाने योग्य हैं ॥१ ॥

२३९६. प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।

मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप प्रभात वेला में यात्रा करने वाले दो रथियों की तरह महारथी वीर हैं, दो जुड़वा भाई जैसे हैं । दो स्त्रियों की तरह सुन्दर शरीर वाले हैं । पति-पत्नी के समान परस्पर सम्बद्ध रहकर कार्य करने वाले हैं । आप अपने श्रेष्ठ भक्तों के पास जाते हैं ॥२ ॥

२३९७. शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।

चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! सींगों के समान अग्रणी एवं खुरों के समान गतिमान् होकर आप हमारे पास आयें ।अपने कर्म में समर्थ, शत्रुहन्ता हे अश्विनीकुमारो ! जिस तरह चक्रवाक् दम्पती अथवा दो महारथी आते हैं, उसी तरह आप दोनों हमारे पास आयें ॥३ ॥

२३९८. नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।

श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! नौका की तरह, रथ में जुड़े अश्वों के समान, रथचक्र के केन्द्र में लगे दण्डों के समान, रथ में लगे बगल के दो दण्डों के समान, रथ में लगे पहियों के दो हालों (लोहे के चक्रों) के समान हमें संकटों से पार करें । दायें-बायें चलने वाले दो कुत्तों तथा कवचों के समान रक्षक होकर हमारे शरीरों की रक्षा करते हुए हमें नाश से बचायें ॥४ ॥

२३९९. वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।

हस्ताविव तन्वे३शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जीर्ण न होने वाले वायु प्रवाह के समान सदैव गतिमान्, नदियों की भाँति तथा दो आँखों के समान दर्शन शक्ति से युक्त होकर आप दोनों हमारे पास आयें । आप दोनों शरीर के लिए सुखदायी हाथों, पैरों के समान हैं । आप हमें पाँवों के समान श्रेष्ठ मार्ग में ले चलें ॥५ ॥

२४००. ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।

नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! मुख के ओठों के समान मधुर वचन कहते हुए आप दोनों जिस तरह स्तनों (के पान) से बच्चे पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन वृद्धि के लिए हमें पुष्ट बनायें । आप दोनों नाकों के समान शरीर के संरक्षक तथा दोनों कानों के समान उत्तम रीति से श्रवण करने वाले बनें ॥६ ॥

२४०१. हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।

इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हाथों की तरह हमें शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करें । द्युलोक तथा पृथिवी लोक की तरह भली-भाँति आश्रय प्रदान करें । हे अश्विनीकुमारो ! जिस तरह से तलवार को शान चढ़ाकर तीक्ष्ण बनाते हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियों को भली-भाँति प्रभावशाली बनायें ॥७ ॥

२४०२. एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।

तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी कीर्ति के विस्तार के लिए गृत्समद ऋषि ने ज्ञानदायी स्तोत्र बनाये हैं । आप नेतृत्व प्रदान करने वाले हैं; अतः उन (स्तोत्रों) को स्वीकार करते हुए आप दोनों हमारे पास आयें । हम यज्ञ में सुसन्तति युक्त होकर आपका यशोगान करें ॥८ ॥

[सूक्त - ४०]

[ऋषि - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गवशौनक । देवता- सोमापूषा, ६ अन्तिम आधी ऋचा का अदिति । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

२४०३. सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।

जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१ ॥

हे सोमदेव तथा पूषादेव ! आप दोनों द्युलोक तथा पृथ्वीलोक के ऐश्वर्य उत्पादक हैं। जन्म लेते ही आप दोनों समस्त संसार के संरक्षक हुए हैं। देवों ने आपको अमृत का केन्द्र बनाया है ॥१ ॥

२४०४. इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा।

आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥२ ॥

सोमदेव तथा पूषादेव के जन्म लेते ही सभी देवगण इन दोनों की सेवा करने लगे। ये दोनों देव अप्रिय अन्धकार को नष्ट करते हैं। इन्द्रदेव ने इन सोम तथा पूषादेवों की मदद से तरुणी धेनुओं में पक्व दुग्ध उत्पन्न किया ॥२ ॥

२४०५. सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्।

विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३ ॥

हे सोम तथा पूषादेवो ! आप समस्त लोकों के उत्पन्न करने वाले, सर्वव्यापी, समस्त संसार के रक्षक, सात ऋतु रूप (मलमास सहित) चक्रों से युक्त, इच्छा से संचालित होने वाले, पाँच लगामों वाले रथ को हमारी ओर प्रेरित करें ॥३ ॥

२४०६. दिव्य १ न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे।

तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥४ ॥

आप में से एक ऊँचे द्युलोक में रहते हैं तथा दूसरे अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हैं। वे दोनों देव हमारे लिए स्वीकार करने योग्य, बहुत प्रकार के, अन्नादि से पूर्ण, पुष्टिकारक ऐश्वर्य प्रदान करें तथा पशु धन भी दें ॥४ ॥

२४०७. विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति।

सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५ ॥

हे सोम तथा पूषा देवो ! आप में से एक ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है तथा दूसरे देव सम्पूर्ण संसार का पर्यवेक्षण करते हुए जाते हैं। हे सोम तथा पूषा देवो ! आप हमें सद्‌बुद्धि प्रदान करते हुए हमारे कर्मों की रक्षा करें। आपकी मदद से हम शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करें ॥५ ॥

२४०८. धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु।

अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥६ ॥

समस्त विश्व को तृप्त करने वाले पूषादेव हमारी बुद्धियों को सन्मार्गगामी बनायें। ऐश्वर्यपति सोमदेव हमें धन प्रदान करें। अनुकूल व्यवहार करने वाली (देवों की माता) अदिति हमारी रक्षा करें। हम सुसन्तति युक्त होकर यज्ञ में आपका यशोगान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ४१]

[ऋषि - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। देवता- १-२ वायु, ३ इन्द्रवायू, ४-६ मित्रावरुण, ७-९ अश्विनीकुमार, १०-१२ इन्द्र, १३-१५विश्वेदवा, १६-१८ सरस्वती, १९-२१ द्यावा-पृथिवी अथवा हविर्धान, १९ के तृतीय पाद का विकल्प से अग्नि। छन्द- गायत्री, ८, १६-१७ अनुष्टुप्, १८ बृहती ।]

२४०९. वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि। नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आप अपने घोड़ों से युक्त हजारों रथों से सोम पान करने के लिए आयें ॥१ ॥

२४१०. नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते। गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२ ॥

याज्ञिकों के पास नियुत (रथ) में सवार होकर पहुँचने वाले हे वायुदेव ! आपके निमित्त यह देदीप्यमान सोमरस तैयार किया गया है। इस हेतु हम आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

२४११. शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः। आ यातं पिबतं नरा ॥३ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्र और वायुदेवो ! आप आज घोड़ों से युक्त होकर गौ का दूध मिला हुआ तेजस्वी सोमरस पीने के लिए आयें और पान करें ॥३ ॥

२४१२. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४ ॥

यज्ञ को बढ़ाने वाले हे मित्र और वरुणदेवो ! उत्तम रीति से तैयार एवं शुद्ध किया गया यह सोमरस आपके निमित्त प्रस्तुत है। हमारी यह प्रार्थना सुनें ॥४ ॥

२४१३. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते ॥५ ॥

आपस में कभी द्रोह न करने वाले हे तेजस्वी मित्र और वरुण देवो ! हजार स्तम्भों पर स्थिर, सशक्त, श्रेष्ठ यज्ञ मण्डप में आप विराजें ॥५ ॥

२४१४. ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती। सचेते अनवह्वरम् ॥६ ॥

सम्राट् रूप, घृताहुति स्वीकार करने वाले, दानशील अदिति पुत्र मित्र और वरुणदेव, कुटिलता से रहित (सरल हृदय वाले), साधकों (याजकों) की ही सहायता करते हैं ॥६ ॥

२४१५. गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना। वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हे सत्य सेवी रुद्रदेवो ! जिस सोमरस का पान यज्ञ में नेतृत्व प्रदान करने वाले लोग करेंगे, उस सोमरस को गौओं तथा अश्वों से युक्त रथ में आप भली-भाँति लायें ॥७ ॥

२४१६. न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८ ॥

हे धनवर्षक अश्विनीकुमारो ! समीप में रहनेवाले या दूर रहने वाले कटुभाषी शत्रु जिस धन को नहीं चुरा सकते, उसे हमें प्रदान करें ॥८ ॥

२४१७. ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्। धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९ ॥

हे उत्तम स्तुति के योग्य अश्विनीकुमारो ! आपके पास जो सुवर्णयुक्त नाना प्रकार का ऐश्वर्य है, वह धन हमारे लिए ले आये ॥९ ॥

२४१८. इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१० ॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव महान् पराभवकारी भय को शीघ्र ही दूर करते हैं ॥१० ॥

२४१९. इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥११ ॥

यदि इन्द्रदेव हमें सुखप्रदान करेंगे, तो हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, वे हर प्रकार से हमारा कल्याण ही करेंगे ॥११ ॥

२४२०. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥१२ ॥

शत्रुविजेता, प्रज्ञावान् इन्द्रदेव सभी दिशाओं से हमें निर्भय बनायें ॥१२ ॥

२४२१. विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्नि षीदत ॥१३ ॥

हे सम्पूर्ण देवगणो ! आप इस यज्ञ में आकर कुश के आसन पर विराजमान हों तथा हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१३ ॥

२४२२. तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः। एतं पिबत काम्यम् ॥१४ ॥

हे सम्पूर्ण देवगणो ! पवित्रता प्रदान करने वाले इस यज्ञ में आनन्ददायी, तीक्ष्ण तथा मधुर सोमरस आपके निमित्त तैयार किया गया है, आप सभी आयें तथा इच्छानुसार इस सोमरस का पान करें ॥१४ ॥

२४२३. इन्द्रज्येष्ठा मरुद्‌गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥

जिन मरुद्‌गणों में सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव हैं, जिन्हें पोषण देने वाले पूषादेव हैं, वे मरुद्‌गण हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१५॥

२४२४. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥

हे नदियों, मातृगणों, देवों में सर्वश्रेष्ठ माता सरस्वती ! हम मूर्ख बालकों के समान हैं; अतः हमें उत्तम ज्ञान प्रदान करें ॥१६॥

२४२५. त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७॥

हे माता सरस्वती ! आपके तेजस्वी आश्रय में ही सम्पूर्ण जीवन-सुख आश्रित है, अतः हे माता ! आप पवित्र करने वाले यज्ञ में आनन्दित होकर हमें उत्तम सन्तति प्रदान करें ॥१७॥

२४२६. इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥

हे माता सरस्वती ! आप अन्न तथा बल प्रदान करके सत्य मार्ग पर चलाने वाली हैं; अतः देवों को प्रिय लगने वाले गृत्समद ऋषि द्वारा बनाये गये उत्तम स्तोत्र हम आपको सुनाते हैं, आप इन स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥१८॥

२४२७. प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

हे मंगलकारी द्यावा - पृथिवि ! हव्यवाहक अग्निदेव के साथ आप दोनों का हम वरण करते हैं। आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके यज्ञ में आयें ॥१९॥

२४२८. द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

हे द्यावा - पृथिवि ! सुख के साधक तथा आकाश तक हमारी हवि को स्पर्श कराने वाले यज्ञ को आज आप दोनों देवों तक ले जायें ॥२०॥

२४२९. आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः। इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥

परस्पर सम्बद्ध रहने वाली (द्रोह न करने वाली) हे द्यावा-पृथिवी देवियो ! आज इस यज्ञ में देवगण सोमपान के निमित्त आपके पास बैठें ॥२१॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गवशौनक।
देवता-शकुन्त (कपिञ्जल रूपी इन्द्र)। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

२४३०. कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम्।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥

जिस प्रकार मल्लाह नाव को चलाता है, उसी प्रकार उपदेश देने वाला शकुनि बार-बार उत्तम वाणी द्वारा प्रेरित करता है। हे शकुनि ! आप सबके कल्याण करने वाले हों। आपको कोई आक्रमणकारी शत्रु किसी भी प्रकार का कष्ट न दे ॥१॥

२४३१. मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२॥

हे शकुनि (उपदेशक) ! आपको श्येन (दुष्ट व्यक्ति) न मारे और न ही गरुड़ पक्षी (बलशाली) तुम्हें मारे । कोई शस्त्रास्त्रधारी आपको न प्राप्त कर सके । दक्षिण दिशा (विपरीत परिस्थितियों) में भी कल्याणकारी वचनों का ही यहाँ उच्चारण करें ॥२॥

२४३२. अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

हे शकुनि ! आप मंगलमय शब्दों को बोलने वाले हैं; अतः घर की दक्षिण दिशा में बैठकर भी कल्याणकारी प्रिय वचन बोलें । चोर तथा दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर अधिकार न करें । सुसंतति युक्त होकर हम इस यज्ञ में आप का यशोगान करें ॥३॥

[सूक्त - ४३]

[ऋषि - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता-शकुन्त (कपिञ्जल रूपी इन्द्र)
छन्द- जगती; २ अतिशक्वरी अथवा अष्टि ।]

२४३३. प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥

स्तोताओं के समान समय-समय पर अन्न की खोज करने वालों की तरह शकुनिगण दायीं ओर (सम्मानपूर्वक) बैठकर उपदेश दें । जिस तरह साम गायक गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द से युक्त दोनों वाणियों का उच्चारण करता है, उसी तरह यह शकुनि उत्तम वाणी बोलते हुए सुशोभित होता है ॥१॥

२४३४. उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा
वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥२॥

हे शकुनि ! आप उद्गाता की तरह सामगान करते हैं तथा यज्ञ में ऋत्विक् की भाँति स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । जिस प्रकार बलशाली अश्व घोड़ी के पास जाकर शब्दनाद करता है, उसी प्रकार हे शकुनि ! आप चारों ओर से हमारे लिए कल्याणकारक तथा पुण्यकारक वचन ही बोलें ॥२॥

२४३५. आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

हे शकुनि ! जिस समय आप बोलते हैं, उस समय हमारे कल्याण का संकेत करते हैं । जिस समय शान्त बैठते हैं, उस समय हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं । उड़ते समय कर्करी बाजे (वाद्ययंत्र) के समान मधुर ध्वनि करते हैं । हम सुसन्तति युक्त होकर इस यज्ञ में आपका यशोगान करें ।।३॥

॥ इति द्वितीयं मण्डलम् ॥

ऋग्वेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग-२

[मण्डल ३,४,५,६]

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

प्रकाशक

ब्रह्मवर्चस्

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल)

चतुर्थ आवृत्ति] २००१ [१००रुपये

भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

***

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुख स्वरूप,
श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को
हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा
हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर
प्रेरित करे।

*

— ऋग्वेद ३.६२.१०

अनुक्रमणिका

विषय-वस्तु	पृष्ठ सं० से .... तक
क. संकेत विवरण	४
ख. तृतीय मण्डल (सूक्त १-६२)	१-८८
ग. चतुर्थ मण्डल (सूक्त १-५८)	१-८६
घ. पंचम मण्डल (सूक्त १-८७)	१-१०४
ङ. षष्ठ मण्डल (सूक्त १-७५)	१-१०४
च. परिशिष्ट	
१. ऋषियों का संक्षिप्त परिचय	१-१२
२. देवताओं का संक्षिप्त परिचय	१३-२०
३. छन्दों का संक्षिप्त परिचय	२१
४. ऋग्वेद संहितायाः वर्णानुक्रमसूची	४०९-४२८

संकेत-विवरण

अनु० भा० = अनुक्रमणी भाष्य
आ० गृ० सू० = आश्वलायन गृह्यसूत्र
आ० श्रौ० सू० = आश्वलायन श्रौतसूत्र
उत्त० = उत्तरार्द्ध
ऋ० = ऋग्वेद
ऐत० ब्रा० = ऐतरेय ब्राह्मण
तैत्ति० आ० = तैत्तिरीय आरण्यक
द्र० = द्रष्टव्य
नि० = निरुक्त
पञ्च ब्रा० = पञ्चविंश ब्राह्मण
पू० = पूर्वार्द्ध
बृह० = बृहद्देवता
यजु० = यजुर्वेद सर्वानुक्रमसूत्र
सा० भा० = सायण भाष्य

॥ अथ तृतीयं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि - विश्वामित्र । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२४३६. सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपने यज्ञ में यज्ञादि कार्य के लिए हमें सोमरस का वाहक बनाया है, अतएव हमें (समुचित) बल भी प्रदान करें । हे अग्निदेव ! हम तेजस्वितापूर्वक, देवशक्तियों के लिए (सोमरस निकालने के कार्य में, कूटने वाले) पाषाण को नियोजित करके आपकी स्तुतियाँ करते हैं ।आप शरीर को पुष्ट करने के लिए इसे ग्रहण करें ॥१ ॥

२४३७. प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं और हव्यादि द्वारा आपको पुष्ट करते हुए हमने भली प्रकार यज्ञ सम्पन्न किया है । हमारी वाणी (स्तुतियों के प्रभाव) का संवर्द्धन हो । देवों ने हम स्तोताओं को यज्ञादि कर्म सिखाया है । अत: हम स्तोता अग्निदेव की स्तुति करने की इच्छा करते हैं ॥२ ॥

२४३८. मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१ न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥३ ॥

ये अग्निदेव मेधावी, विशुद्ध, बल-सम्पन्न और जन्म से ही उत्कृष्ट बन्धुत्व भाव से युक्त हैं । ये द्युलोक और पृथ्वी लोक में सर्वत्र सुख स्थापित करते हैं । प्रवहमान धाराओं के जल में गुप्त रूप से स्थित दर्शनीय अग्निदेव को देवों ने (यज्ञार्थ) खोज निकाला ॥३ ॥

२४३९. अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥४ ॥

शुभ्र धन-सम्पदा से युक्त, उत्पन्न अग्नि (ऊर्जा) को प्रवाहशील महान् नदियों ने प्रवर्धित किया । जैसे घोड़ी नवजात शिशु को विकसित करती है, उसी प्रकार अग्नि के उत्पन्न होने के बाद देवों ने उसे विकसित-संवर्धित किया ॥४ ॥

२४४०. शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५ ॥

शुभ्रवर्ण तेज के द्वारा अन्तरिक्ष को व्याप्त करके ये अग्निदेव यज्ञ-कर्म सम्पादक यजमान को पवित्र और स्तुत्य तेजों से परिशुद्ध करते हैं । प्रदीप्त ज्वाला रूप आच्छादन को ओढ़कर ये अग्निदेव स्तोताओं को विपुल अन्न और पर्याप्त ऐश्वर्य-सम्पदा से समृद्धि प्रदान करते हैं ॥५ ॥

२४४१. वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥६ ॥

स्वयं नष्ट न होने वाले तथा (जल को) हानि न पहुँचाने वाले ये अग्निदेव सब ओर विचरण करते हैं । वस्त्रों से आच्छादित न होने पर भी नग्न न रहने वाली सनातन काल से तरुण, एक ही दिव्य स्रोत से उत्पन्न प्रवहमान जलधाराएँ एक ही गर्भ (अग्नि) को धारण करती हैं ॥६ ॥

२४४२. स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥७ ॥

इस (अग्नि) की नाना रूपों वाली संगठित किरणें जब फैलती हैं, तब पोषक रस के उत्पत्ति स्थान से मधुर वर्षा होती है । सबको तृप्ति देने वाली किरणें यहाँ विद्यमान रहती हैं । इस अग्नि के माता-पिता पृथ्वी और अंतरिक्ष हैं ॥७ ॥

२४४३. बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! सबके द्वारा धारण किये जाने योग्य आप उज्ज्वल और वेगवान् किरणों द्वारा प्रकाशमान हों । जिस समय स्तोतागण स्तोत्रों से आपको प्रवर्धित करते हैं, उस समय वे मधुर घृत धारायें सिंचित करती हैं अथवा पुष्टिकारक जल धाराएँ बरसती हैं ॥८ ॥

२४४४. पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९ ॥

अग्निदेव ने जन्म से ही अपने पिता (अन्तरिक्ष) के निचले स्तर जल प्रदेश को जान लिया । अन्तरिक्ष की जलधारा ने बिजली को उत्पन्न किया । अग्निदेव अपने कल्याणकर मित्रों और द्युलोक की जलराशि के साथ गुह्य रूप में विचरते हैं । (गुह्य रूप में स्थित) उस अग्नि को कोई भी प्राप्त नहीं कर सका ॥९ ॥

२४४५. पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३ नि पाहि ॥१० ॥

ये अग्निदेव पिता (आकाश) और माता (पृथ्वी) के गर्भ को पुष्ट करते हैं । एक मात्र अग्निदेव अभिवर्द्धित ओषधि का भक्षण करते हैं । अभीष्ट वर्षा करने वाले ये अग्निदेव पत्नी सहित याजक के पवित्रकर्त्ता बन्धु सदृश हैं । हे अग्निदेव ! द्यावा-पृथिवी में हम यजमानों को रक्षित करें ॥१० ॥

२४४६. उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११ ॥

महान् अग्निदेव अबाध और विस्तीर्ण पृथ्वी में प्रवर्धित होते हैं । वहाँ बहुत अन्नवर्द्धक जल समूह अग्नि को संवर्धित करते हैं । जल के उत्पत्ति स्थान में स्थित अग्निदेव परस्पर बहिन रूप नदियों के जल में शान्तिपूर्वक शयन करते हैं ॥११ ॥

२४४७. अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२ ॥

ये अग्निदेव सबके पिता रूप जल के गर्भ में गुह्य-स्थित, मनुष्यों के हितकारी, संग्राम में युद्ध कुशल, अपनी

सेना के पोषक, सर्व दर्शनीय तथा अपने तेज से दीप्तिमान् हैं । उन्होंने अपने पुत्र रूप यजमान के लिए पोषण की क्षमता उत्पन्न की ॥१२ ॥

२४४८. अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३ ॥

उत्तम ऐश्वर्ययुक्त अरणी ने दर्शनीय, विशिष्ट रूपवान् तथा जलों और ओषधियों के गर्भभूत अग्निदेव को उत्पन्न किया है । सम्पूर्ण देवगण भी उस स्तुत्य, बलशाली और नवजात अग्निदेव के पास स्तुतियाँ करते हुए पहुँचे । उन्होंने अग्नि की सम्यक् सेवा की ॥१३ ॥

२४४९. बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥१४ ॥

विद्युत् की भाँति अत्यन्त कान्तिमान् महान् सूर्यदेव की किरणें अगाध समुद्र के बीच अमृत रूप जल का दोहन करती हैं । वे किरणें गुहा के समान अपने सदन अन्तरिक्ष में बढ़ती हुई, प्रभायुक्त अग्नि का आश्रय प्राप्त करती हैं ॥१४ ॥

[समुद्र का जल सेवन योग्य नहीं होता, किन्तु किरणें उसका दोहन करके सेवन-योग्य अमृत तुल्य जल को प्राप्त कर लेती हैं ।]

२४५०. ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५ ॥

हे अग्ने ! हम यजमान हव्यादि द्वारा आपकी सम्यक् स्तुति करते हैं । हम उत्तम बुद्धि की कामना करते हुए आपसे मित्रता के लिए प्रार्थना करते हैं । देवों के साथ आप, हम स्तुति करने वालों की रक्षा करें और दुर्दम्यों से हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

२४५१. उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥१६ ॥

हे उत्तम नियामक देव अग्ने ! आपके आश्रय में रहने वाले हम सम्पूर्ण धनों को धारण करते हुए, आपके अनुग्रह से पुष्ट (समृद्ध) होते रहें । हम उत्तम पुष्टिदायक अन्नों से युक्त होकर देव विरोधी शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥१६ ॥

२४५२. आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! आप देव कार्यों के प्रतीक रूप में अत्यन्त मनोहर दिखाई देते हैं । आप सम्पूर्ण स्तोत्रों के ज्ञाता हैं । आप मनुष्यों को उनके अपने घरों में आश्रय देने वाले हैं । उत्तम रथों से गमन करने वाले आप देवों के कार्य में उनका अनुगमन करते हैं ॥१७ ॥

२४५३. नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८ ॥

अविनाशी और दीप्तिमान् अग्निदेव यज्ञ के साधन रूप में प्रयुक्त होते हैं और मनुष्यों के घरों में अधिष्ठित होते हैं । ये सम्पूर्ण स्तोत्रों के ज्ञाता हैं । घृत द्वारा प्रदीप्त काया से अग्निदेव विशेष प्रकाशित होते हैं ॥१८ ॥

२४५४. आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन्।

अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९ ॥

सर्वत्र विचरणशील हे महान् अग्ने ! आप अपनी मंगलमयी मैत्री और महती रक्षण-सामर्थ्यों के साथ हमारे पास आयें और हमें उपद्रवरहित, उत्तम स्तुति के योग्य, यशस्वी धन विपुल मात्रा में प्रदान करें ॥१९ ॥

२४५५. एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम्।

महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२० ॥

हे अग्ने ! पुरातन पुरुष रूप में, सनातन और नूतन स्तोत्रों से आपकी स्तुति की जाती है । सभी जन्म लेने वाले प्राणियों में सन्निहित हे शक्तिशाली अग्निदेव ! हमने आपके निमित्त महान् यज्ञों को सम्पन्न किया है ॥२० ॥

२४५६. जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों में निहित, सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव, विश्वामित्र वंशजों द्वारा सर्वदा प्रदीप्त होते रहे हैं । हम उस यजनीय अग्नि के कल्याणकारी अनुग्रहों के अनुगत बने रहें ॥२१ ॥

२४५७. इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।

प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२ ॥

हे बलवान् और उत्तमकर्मा अग्निदेव ! आप हमारे हव्यादि से हर्षित होकर हमारे यज्ञ को सब देवों तक पहुँचायें । हे देवों के आह्वाता अग्निदेव ! आप हमें विपुल अन्नादि प्रदान करें । हमें प्रभूत धनों से युक्त करें ॥२२ ॥

२४५८. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञादि कार्य के लिए अनेक सत्कर्मों के लिए और गौओं के पोषण आदि के लिए उत्तम भूमि हमें प्रदान करें । हमारे पुत्र वंश की वृद्धि करने वाले हों । आपकी वह सुमति हमें भी प्राप्त हो ॥२३ ॥

[सूक्त - २]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - वैश्वानर अग्नि । छन्द - जगती]

२४५९. वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।

द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१ ॥

ऋत की वृद्धि करने वाले वैश्वानर अग्निदेव के लिए हम घृतवत् पवित्र स्तुतियाँ करते हैं । मनुष्य और ऋत्विग्गण देवों के आवाहन कर्ता दोनों रूपों वाले (गार्हपत्य और आहवनीय) अग्नि को अपनी बुद्धि के अनुसार उसी प्रकार सँवारते हैं, जैसे कारीगर रथ को सँवारते हैं ॥१ ॥

२४६०. स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत्पुत्र ईड्यः ।

हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२ ॥

वे अग्निदेव जन्म के साथ ही द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं । वे अग्निदेव पिता और माता रूप द्यावा-पृथिवी के स्तुति योग्य पुत्र हैं । वे अग्निदेव हव्यवाहक, अजर, अन्न-धन से पूर्ण, अटल, प्रभापुञ्ज और मनुष्यों में अतिथि के सदृश पूजनीय हैं ॥२ ॥

२४६१. क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।

रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३ ॥

बलसम्पन्न और कर्मकुशल देव पुरुष यज्ञ में कर्म और ज्ञान के प्रभाव से अग्निदेव को उत्पन्न करते हैं । जैसे भार वहन करने वाले अश्व की स्तुति होती है, वैसे ही हम अन्नों की कामना से तेजस्वी, महान् अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥३ ॥

२४६२. आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।

रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४ ॥

स्तुति-योग्य, वरणीय, उज्ज्वल और प्रशंसनीय अन्नों की अभिलाषा से , भृगु-वंशजों के ऐश्वर्य-दाता, अभीष्ट प्रदान करने वाले, प्रज्ञावान् दिव्य तेजों से प्रकाशमान अग्निदेव का हम वरण करते हैं ॥४ ॥

२४६३. अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।

यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५ ॥

यजमान अपने सुख के लिए कुश के आसन बिछाकर, स्रुचाओं को हाथ में लेकर बैठते हैं । वे अन्न और बल से युक्त, उत्तम, प्रकाशमान, सम्पूर्ण देवों के हितकारी, ताप-नाशक, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के इष्ट-साधक अग्निदेव को सबसे आगे स्थापित करते हैं ॥५ ॥

२४६४. पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।

अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६ ॥

हे पवित्र, दीप्ति-सम्पन्न, होता अग्निदेव ! आपकी परिचर्या की कामना करने वाले यजमान पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ स्थान में कुश के आसन बिछाकर स्तुति आदि कर्म करते हैं । उन्हें आप धन प्रदान करें ॥६ ॥

२४६५. आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।

सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७ ॥

नवजात अग्नि को यजमानों ने धारण किया, तब अग्नि ने अपने तेजोयुक्त प्रकाश को द्यावा-पृथिवी और विस्तृत अन्तरिक्ष में संव्याप्त किया । वे अन्न प्रदाता और मेधावी अग्निदेव अन्न प्राप्ति की कामना से यज्ञ के लिए सज्जित अश्व के सदृश चारो ओर से लाये जाते है ॥७ ॥

२४६६. नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।

रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! यह रथी (गतिमान्) और विराट् यज्ञ के द्रष्टा अग्निदेव सब देवों में अग्रणी रूप में स्थापित हुए हैं । ऐसे हव्यभक्षक, उत्तम यज्ञ-संपादक, (दोषों का) दमन करने वाले जातवेद को नमन करते हुए उनकी सेवा करो ॥८ ॥

२४६७. तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।

तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९ ॥

(हित की) कामना करने वाले अमर देवों ने सर्वत्र संव्याप्त होने वाले अग्निदेव के लिए तीन महान् समिधाओं को पवित्र किया । उन (अग्निदेव का) रक्षण करने वाली तीन (समिधाओं) में से एक को मृत्युलोक में, शेष दो को उनसे सम्बन्धित दो लोकों (अन्तरिक्ष और द्युलोक) में स्थापित किया ॥९ ॥

[समिधा का अर्थ होता है सम्यक् रूप से प्रज्वलित करने वाली। भूलोक में अग्नि को प्रज्वलित करने वाली वायु (आक्सीजन) है। अन्तरिक्ष में अग्नि का रूप विद्युत् है। उसके आधार विद्युत्-चुम्बकीय धाराएँ अथवा अयन हैं। द्युलोक में सूर्य की समिधा अणु विखण्डन प्रक्रिया है।]

२४६८. विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१० ॥

अन्न की अभिलाषी मानवी प्रजाओं ने अपने पालक मेधावी अग्निदेव को तेजस्वी शस्त्र की भाँति संस्कृत किया। वे अग्निदेव उच्च और निम्न प्रदेशों को व्याप्त करते हुए गमन करते हैं। उन्होंने सम्पूर्ण लोकों में गर्भधारण करवाया (लोकों में उत्पादक क्षमता का विकास किया) ॥१० ॥

२४६९. स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११ ॥

वे वैश्वानर अग्निदेव, जो अत्यन्त बलशाली और अमरणशील हैं, जो यजमान को उत्तम धन और रत्नों को देने वाले हैं; जो अत्यन्त ज्ञान-सम्पन्न और अभीष्टवर्षी हैं; वे मनुष्यों के जठर में प्रवर्धित होते हैं, तो सिंह के सदृश विचित्र गर्जनाएँ करते हैं ॥११ ॥

२४७०. वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२ ॥

उत्तम स्तोत्रों से स्तुत्य ये वैश्वानर अग्निदेव अन्तरिक्ष में होते हुए द्युलोक के पृष्ठ पर आरूढ़ होते हैं। पूर्वकाल के सदृश वे प्राणियों के लिए धारण-योग्य पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। वे सर्वदा जाग्रत् रहकर सनातन (सुनियोजित) मार्ग से परिभ्रमण करते रहते हैं ॥१२ ॥

२४७१. ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य १ मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३ ॥

उन यज्ञपालक, यजनीय, मेधावी और स्तुत्य द्युलोक-निवासक अग्निदेव को (धरती पर) वायु देव ने धारण किया। विविध मार्गगामी, दीप्तिमान् ज्वाला- युक्त, उत्तम रश्मि- युक्त उन अग्निदेव से हम नवीन और श्रेष्ठ साधनों की याचना करते हैं ॥१३ ॥

२४७२. शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४ ॥

अत्यन्त शुद्ध, यज्ञ में गमनशील, सर्वद्रष्टा, आकाश में केतुरूप गतिवाले, सर्वदा देदीप्यमान, उषाकाल में चैतन्य रहने वाले, अन्नवान् और महान् उन अग्निदेव की हम नमनपूर्वक प्रार्थना करते हैं ॥१४ ॥

२४७३. मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम्।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५ ॥

हर्ष प्रदायक, देव-आह्वाता (होता), सर्वदा शुद्ध ,अकुटिल, शत्रु दमनकारी, स्तुत्य, विश्वद्रष्टा, रथ के सदृश विलक्षण शोभा वाले, दर्शनीय शरीर वाले, मनुष्यों का हित करने वाले उन अग्निदेव से हम ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ३]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - वैश्वानर अग्नि । छन्द - जगती ।]

२४७४. **वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।**
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१ ॥

ज्ञानी स्तोतागण सन्मार्ग पर अनुगमन के लिए यज्ञों में व्यापक बल संयुक्त वैश्वानर अग्निदेव की सेवा करते हैं । अमर अग्निदेव हव्यादि पहुँचाकर देवों की सेवा करते हैं । अतएव यह सनातन (यज्ञीय) धर्म कभी प्रदूषण पैदा नहीं करता ॥१ ॥

२४७५. **अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।**
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२ ॥

सुन्दर अग्निदेव, होता तथा दूत के रूप में द्युलोक एवं पृथ्वी लोक में संचरित होते हैं । देवों द्वारा प्रेरित ज्ञान-सम्पन्न ये अग्निदेव मनुष्यों के बीच पुरोहित रूप में अधिष्ठित होकर अपने तेजों से महान् यज्ञ गृह को सुशोभित करते हैं ॥२ ॥

२४७६. **केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।**
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३ ॥

मेधावीजन यज्ञों के केतु (विज्ञापक) और साधन रूपी अग्नि का पूजन अपने ज्ञान एवं कर्म आदि से करते हैं ।जिस अग्नि में स्तोताजन अपने कर्मों को अर्पित करते हैं, उसी अग्नि से यजमान सुखादि की कामना करता है ॥३ ॥

२४७७. **पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।**
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४ ॥

वे अग्निदेव यज्ञों के पोषणकर्ता पिता रूप हैं । वे स्तोताओं के प्राण-दाता और ऋत्विजों के हव्यादि वाहक हैं । वे अग्निदेव विविध रूपों में द्यावा-पृथिवी में प्रविष्ट होते हैं । बहुतों के प्रिय और मेधावी वे अग्निदेव अपने तेज से प्रदीप्त होते हैं ॥४ ॥

२४७८. **चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।**
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५ ॥

चन्द्र की तरह (आनंदित करने वाले) अग्निदेव, तेजस्वी रथ वाले, शीघ्र कर्म करने वाले, जलों में निवास करने वाले और सर्वज्ञाता हैं । उन सर्वत्र व्याप्त होने वाले, शीघ्र गमनकारी, अनेक बलों से युक्त, भरण-पोषण कर्त्ता और उत्तम सुषमा युक्त वैश्वानर अग्निदेव को देवों ने इस लोक में स्थापित किया ॥५ ॥

२४७९. **अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।**
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६ ॥

यज्ञ के साधन रूप अग्निदेव कर्म कुशल ऋत्विजों द्वारा संचालित यजमानों के यज्ञ को सम्पादित करते हैं । सर्वत्र गतिमान् , शीघ्रगामी, दानशील, शत्रुनाशक अग्निदेव द्यावा-पृथिवी के मध्य गमन करते हैं ॥६ ॥

२४८०. **अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।**
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७ ॥

हम दीर्घ आयु और उत्तम पुत्रादि की प्राप्ति के लिए अग्निदेव की स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें बल से पूर्ण करें । हमें अन्न आदि प्रदान करें । हे चैतन्य अग्निदेव ! आप महान् यजमान को पूर्णायु से युक्त करें, क्योंकि आप उत्तम कर्म करने वाले तथा सत्पुरुषों एवं देवों के प्रिय हैं ॥७ ॥

२४८१. विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८ ॥

मनुष्य अपनी समृद्धि के लिए पालक रूप, महान्, अतिथि के सदृश पूजनीय, बुद्धि के प्रेरक, ऋत्विजों के प्रिय, यज्ञों के प्राण-स्वरूप, जातवेदा अग्निदेव का नमनपूर्वक पूजन करते हैं ॥८ ॥

२४८२. विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९ ॥

स्तुत्य, उत्तम रथी, दीप्तिमान्, दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव अपने बल से सम्पूर्ण प्रजाओं को व्याप्त करते हैं । हम घरों में स्थित होकर अनेकों के पोषक अग्निदेव के सम्पूर्ण कर्मों को अपने उत्तम स्तोत्रों से विभूषित करते हैं ॥९

२४८३. वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१० ॥

हे दूरदर्शी वैश्वानर अग्निदेव ! आप जिन तेजों के द्वारा सर्वज्ञाता हुए, उनकी हम स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आपने उत्पन्न होकर ही द्यावा-पृथिवी और सम्पूर्ण लोकों को प्रकाश से पूर्ण किया है । आप अपनी शक्ति से सम्पूर्ण जनों को घेर लेने में समर्थ हैं ॥१० ॥

२४८४. वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११ ॥

वैश्वानर अग्निदेव के उत्तम कर्म से यजमानों को महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । उत्तम यज्ञादि कर्म की इच्छा से वे एकमात्र मेधावी अग्निदेव यजमानों को धनादि दान कर देते हैं । वे अग्निदेव अपने प्रचुर बल से दोनों माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी को प्रतिष्ठा प्रदान करते हुए उत्पन्न हुए ॥११ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - आप्रीसूक्त (=१इध्म अग्नि अथवा समिद्ध अग्नि २ तनूनपात् । ३ इळ; ४ बर्हि; ५- देवीद्वार; ६ उषासानक्ता । ७ दिव्य होता प्रचेतस् । ८ तीन देवियाँ- सरस्वती; इळा; भारती ; ९ त्वष्टा, १० वनस्पति ; ११- स्वाहाकृति) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२४८५. समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१ ॥

समिधाओं से भली प्रकार प्रदीप्त हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ मन से हमें चैतन्य करें । अतिशय पवित्र तेज से युक्त होकर हमें उल्लसित मन से धनादि प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप देवों को यज्ञ के लिए बुलाकर लायें । आप देवों के सखा रूप हैं । आप प्रसन्न मन से मित्र देवों का यजन करें ॥१ ॥

२४८६. यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥२ ॥

वरुण, मित्र, अग्नि आदि देव जिस तनूनपात् यज्ञदेव की नित्यप्रति दिन में तीन बार पूजा करते हैं, वे देव घृत के आधार पर पुष्ट होने वाले, देवों को तुष्ट करने वाले इस यज्ञ को मधुरता से परिपूर्ण करें ॥२ ॥

२४८७. प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३ ॥

हमारी स्तुतियाँ सर्वप्रथम वरणीय होता अग्निदेव के पास गमन करें । वन्दना करने के लिए हम उन बलशाली अग्निदेव के पास स्तुतियों के साथ गमन करें । वे हमारे द्वारा प्रेरित होकर पूजनीय देवों का यजन करें ॥३ ॥

२४८८. ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४ ॥

दिव्य नाभि (यज्ञ कुण्ड) के मध्य होता (अग्नि) स्थापित है । हम देव से युक्त (अग्नि अथवा मंत्र के साथ) कुशों को (प्रज्वलन के लिए) फैलाते हैं । तुम दोनों की ज्वालाएँ अन्तरिक्ष में बहुत ऊपर तक पहुँच गयी हैं । यज्ञ में हमने ऊर्ध्वगति देने वाले मार्ग का ही आश्रय लिया है ॥४ ॥

२४८९. सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभी ३ मं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥५ ॥

यज्ञ से समस्त जगत् को पुष्ट करने वाले देवगण, स्वयं मन से इच्छा करते हुए, सप्त होता युक्त यज्ञ की ओर गमन करते हैं । यज्ञों में मनुष्य सदृश रूप वाले बहुत से देवगण प्रकट होकर यज्ञ के चारों ओर विचरण करते हैं ॥५ ॥

२४९०. आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६ ॥

स्तुति किये जाने योग्य, भिन्न रूप वाली होकर भी समीप रहने वाली उषा और रात्रि प्रकाशित शरीरों से आगमन करें । मित्र, वरुण और मरुतों से युक्त इन्द्रदेव जिस रूप से हम पर अनुग्रह करते हैं, उसी रूप को वे दोनों भी तेज से युक्त होकर धारण करें ॥६ ॥

२४९१. दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥७ ॥

दिव्य और प्रधान अग्नि रूप दोनों होताओं को हम तृप्त करते हैं । अन्नवान् और यज्ञ की इच्छावाले सात ऋत्विज् भी इन दोनों को हविष्यान्न से हर्षित करते हैं । वे व्रतपालक और तेजस्वी ऋत्विग्गण "यज्ञादि व्रतों का अनुगमन ही सत्य है"- ऐसा कहते हैं ॥७ ॥

२४९२. आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८ ॥

भरण करने वाली (सूर्य की) शक्ति के साथ भारती देवी हमारे यज्ञ में आयें । मनुष्य जनों (यज्ञादि कर्मकर्त्ता) के साथ इला देवी भी इस दिव्य अग्नि के पास आयें । सारस्वत वाक् शक्ति के साथ सरस्वती देवी भी आयें । ये तीनों देवियाँ आकर इन कुश के आसनों पर अधिष्ठित हों ॥८ ॥

२४९३. तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप उल्लसित मन से हमें बल और पुष्टि युक्त वह वीर्य प्रदान करें, जिससे हमें वीर, कर्मठ,

कौशल युक्त, सोम को सिद्ध करने वाला और देवत्व प्राप्ति की कामना वाला पुत्र उत्पन्न हो ॥९ ॥

२४९४. **वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।**

सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१० ॥

हे वनों के स्वामी ! आप देवों को हमारे पास लायें । पाप-नाशक अग्निदेव हमारी हवियों को देवों तक पहुँचायें । वह सत्यव्रती अग्निदेवों के आह्वाता हैं, क्योंकि वे ही देवों के सभी कर्मों को जानते हैं ॥१० ॥

२४९५. **आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।**

बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप भली प्रकार समिधाओं से युक्त होकर इन्द्रदेव और शीघ्र गमनकारी देवों के साथ एक रथ पर बैठकर हमारी ओर आगमन करें । उत्तम पुत्रों वाली अदिति हमारे कुशों पर बैठें । उत्तम आहुतियों से अमर देवगण तृप्त हों ॥११ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२४९६. **प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।**

पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥१ ॥

अग्निदेव उषा को जानते हैं ।ये मेधावी अग्निदेव क्रान्तदर्शी ज्ञानियों के मार्ग पर जाने के लिए चैतन्य होते हैं ।अत्यन्त तेजस्वी ये देव देवत्व की अभिलाषा वाले व्यक्तियों द्वारा प्रदीप्त होकर अन्धकार से मुक्ति दिलाते हैं ॥१ ॥

२४९७. **प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।**

पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥२ ॥

ये पूज्य अग्निदेव स्तोताओं की वाणी , मंत्रों और स्तोत्रों से प्रवृद्ध होते हैं । देवों के दूतरूप अग्निदेव अनेक यज्ञों मे दीप्तिमान् होने की इच्छा से चैतन्य होकर उषाकाल में विशेष प्रकाशमान होते हैं ॥२ ॥

२४९८. **अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व १ पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।**

आ हर्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३ ॥

यजमानों के मित्ररूप अग्निदेव यज्ञ से उनके अभीष्ट को सिद्ध करने वाले हैं । जलों के गर्भ में रहने वाले अग्निदेव मनुष्यों के बीच स्थापित किये जाते हैं । इष्ट और पूज्य अग्निदेव उच्च स्थान पर स्थित होते हैं । वे मेधावी अग्निदेव स्तुतियों और हव्यादि द्वारा यजन के योग्य हैं ॥३ ॥

२४९९. **मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।**

मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४ ॥

ये अग्निदेव समिधाओं से जाग्रत् होते हैं, उस समय वे मित्र होते हैं । वे ही मित्र, होता और सर्वभूत ज्ञाता वरुण हैं । वे ही मित्र,दानशील अध्वर्यु और प्रेरक वायु स्वरूप हैं । वे ही नदियों और पर्वतों के भी मित्र होते हैं ॥४ ॥

२५००. **पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।**

पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५ ॥

ये सुशोभित अग्निदेव विस्तृत पृथ्वी के प्रीतिकर और श्रेष्ठ स्थान की रक्षा करते हैं । महान् सूर्यदेव के

परिभ्रमण स्थान की रक्षा करते हैं । अन्तरिक्ष के मध्य मरुद्‌गणों की रक्षा करते हैं और देवों को प्रमुदित करने वाले यज्ञादि कर्मों की रक्षा करते हैं ॥५ ॥

२५०१. ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६ ॥

अग्निदेव के प्रसुप्त रहने पर भी उनका रूप तेजस्वी होता है । वे सम्पूर्ण महान् कार्यों के ज्ञाता, दीप्तिमान् अग्निदेव प्रशंसनीय और सुन्दर जल को उत्पन्न करते हैं तथा तत्परतापूर्वक उसकी रक्षा करते हैं ॥६ ॥

२५०२. आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मातरा नव्यसी कः ॥७ ॥

तेजस्वी और स्तुत्य ये अग्निदेव स्वेच्छा से अपने प्रिय गर्भस्थान में अधिष्ठित होते हैं । ये दीप्तिमान्, शुद्ध महान् और पवित्र अग्निदेव अपने माता-पिता अर्थात् पृथ्वी और द्युलोक को बार-बार नवीनता प्रदान करते हैं ॥७ ॥

२५०३. सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८ ॥

जन्म के साथ ही ये अग्निदेव जब ओषधियों द्वारा धारण किये जाते हैं, तब मार्ग में प्रवाहित जल के समान शुभ्र ओषधियाँ जल से पोषित होकर फलदायक होती हैं । ये अग्निदेव अपने माता-पिता पृथ्वी और द्यु के मध्य बढ़ते हुए हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

२५०४. उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९ ॥

हमारे द्वारा स्तुत होकर प्रवृद्ध हुए ये अग्निदेव पृथ्वी में प्रतिष्ठित होकर द्युलोक तक प्रकाशित हुए हैं । वे अग्निदेव सबके मित्र स्वरूप, सबके द्वारा स्तुत्य और अरणियों से उत्पन्न होने वाले हैं । वे अग्निदेव देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित होकर हमारे यज्ञ हेतु देवताओं को भली प्रकार बुलाएँ ॥९ ॥

२५०५. उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वो ३ ग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१० ॥

जब मातरिश्वा ने भृगुओं के लिए गुहा स्थित हव्य-वाहक अग्नि को प्रज्वलित किया था, तब तेजस्वियों में शिरोमणि और महान् उन अग्निदेव ने अपने दिव्य तेज से सूर्य को भी स्तंभित कर दिया ॥१० ॥

२५०६. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं के लिए श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें, पुत्र-पौत्रादि से वंश-वृद्धि होती रहे तथा आपकी उत्तम बुद्धि का लाभ हमें प्राप्त हो ॥११ ॥

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२५०७. प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१ ॥

हे स्तोताओ ! आप मंत्र युक्त स्तोत्रों के साथ ही देवयजन में प्रयुक्त होने वाली स्रुवा को ले आयें । अन्न से पूर्ण स्रुवा को दक्षिण दिशा से लाकर पूर्व दिशा में हवि और घृत से परिपूर्ण कर अग्नि की ओर लाया जाता है ॥१॥

२५०८. आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जन्म के साथ ही आप द्युलोक एवं पृथ्वी को पूर्ण करते हैं । हे यजन योग्य अग्निदेव ! अपनी महिमा से ही आप द्यावा - पृथिवी और अन्तरिक्ष से भी श्रेष्ठ हो गये हैं । आपकी अंश रूप सप्त ज्वालाओं से युक्त किरणें स्तुत्य हों ॥२ ॥

२५०९. द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥३ ॥

हे होता अग्निदेव ! जिस समय देवत्व की अभिलाषा द्वारा हविष्यान्न से युक्त होकर प्रजाजन तेजस्वी ज्वालाओं की स्तुति करते हैं, उस समय द्युलोक, पृथिवी और यजनीय देवगण यज्ञादि की सफलता के लिए आपकी स्थापना करते हैं ॥३ ॥

२५१०. महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४ ॥

याजकों के प्रिय महान् अग्निदेव, तेजस्वितापूर्वक द्यावा-पृथिवी के बीच अपने महिमामय स्थान पर अविचल रूप में स्थित हैं । सपत्नी की भाँति परस्पर जुड़ी हुई अजर - अमृत उत्पादक द्यावा-पृथिवी श्रेष्ठ अग्निदेव की दुधारूगौओं के समान हैं ॥४ ॥

२५११. व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ हैं । आपके कर्म महान् हैं । आपने यज्ञादि कर्मों से द्यावा-पृथिवी को विस्तारित किया है । आप देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित हैं । हे बलशाली अग्निदेव ! आप जन्म से ही याजकों के नेता हैं ॥५॥

२५१२. ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६ ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! प्रशस्त केश वाले, लगाम वाले, तेजोमय रोहित वर्ण वाले अपने अश्वों को यज्ञ की धुरी से जोड़ें । तदनन्तर सम्पूर्ण देवों को बुला लायें । हे सर्वभूत ज्ञाता अग्निदेव ! उन देवों को हमारे उत्तम यज्ञ से युक्त करें ॥६ ॥

२५१३. दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप वनों में जल का शोषण करते हैं, उस समय आपकी दीप्ति सूर्य से भी अधिक तेज होती है । आप कान्तिमती पुरातन उषा के पीछे प्रतिभाषित होते हैं । विद्वान् स्तोतागण प्रमुदित मन से होतारूप आपकी स्तुति करते हैं ॥७ ॥

२५१४. उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८ ॥

जो देवगण अन्तरिक्ष में हर्षपूर्वक रहते हैं, जो दीप्तिमान् द्युलोक में रहते हैं और जो 'ऊम' संज्ञक यजनीय पितर हैं, वे सभी यहाँ सम्मानपूर्वक आवाहित होते हैं। हे अग्निदेव ! आप अश्वों से युक्त रथ से उन्हें लाएँ ॥८ ॥

२५१५. ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ्नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन सभी देवों के साथ एक ही रथ पर अथवा विविध रथों से हमारे पास आयें । आपके अश्व, वहन करने में समर्थ हैं, तैंतीस देवों को उनकी पत्नियों सहित सोमपान के लिए लाएँ और सोमपान से उन्हें प्रमुदित करें ॥९ ॥

२५१६. स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१० ॥

अत्यन्त विस्तृत द्यावा-पृथिवी प्रत्येक यज्ञ में जिसकी वृद्धि के लिए स्तुतियाँ करती हैं, वे ही देवों के आवाहनकर्त्ता अग्निदेव हैं । सुन्दर रूपवती, परिपूर्ण जलवती, सत्यवती द्यावा - पृथिवी यज्ञ के समान ऋत से उत्पन्न उस अग्नि के अनुकूल होकर स्थित है ॥१० ॥

२५१७. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप हम स्तोताओं के लिए सर्वदा श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें । हमारे पुत्र-पौत्रादि से वंश वृद्धि होती रहे । हे अग्निदेव ! आपकी उत्तम बुद्धि का अनुग्रह हमें प्राप्त हो ॥११ ॥

[सूक्त - ७]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२५१८. प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥१ ॥

पृष्ठ भाग जिनका नीलवर्ण है-ऐसे सर्वधारक अग्निदेव की ज्वालाएँ उन्नत उठती हैं, वे मातृ-पितृ रूपा द्यावा-पृथिवी में एवं प्रवहमान सप्त धाराओं में भी प्रविष्ट होती हैं । सर्वत्र व्यापक इन अग्निदेव के साथ द्यावा-पृथिवी भी संचरित होती है । वे दोनों अग्निदेव को दीर्घायु भी प्रदान करते हैं ॥१ ॥

२५१९. दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥२ ॥

द्युलोक में संव्याप्त बलशाली अग्नि के अश्व (गतिशील किरणें) धेनु (पोषण करने वाली) भी हैं । वे अग्निदेव (प्रकृति के) मधुर प्रवाहों में भी स्थिर रहते हैं । हे अग्निदेव ! आप यज्ञ गृह में रहकर अपनी ज्वालाओं को विस्तारित करते हैं । एक गौ (पृथ्वी अथवा वाणी) आपकी परिचर्या करती हैं ॥२ ॥

[आकाश में संव्याप्त ऊर्जाकण गतिशील होने से अश्व तथा पोषण प्रदायक होने से धेनु कहे गये हैं । यह ऊर्जा प्रकृति के सभी पोषक-प्रवाहों में भी संव्याप्त है ।]

२५२०. आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान्रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥३ ॥

धनों में उत्कृष्टतम धन-सम्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न, अधीश्वर अग्निदेव सुनियोजित अश्वों (समिधाओं) पर आरूढ़ होते हैं । नीले पृष्ठ वाले, विविध प्रतीकों के रूप में अग्निदेव ने उन समिधाओं को सतत प्रयोग के लिए अपने पास रख लिया ॥३ ॥

२५२१. महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥४ ॥

बलवती और प्रवाहित धारायें उन महान् त्वष्टा पुत्र अजर, सर्वभूत धारक अग्निदेव को धारण करती हैं । जैसे पुरुष पत्नी के पास जाता है, वैसे अग्निदेव प्रज्वलित होकर अत्यन्त दीप्तिमान् अंगों को पाकर द्यावा-पृथिवी में व्याप्त होते हैं ॥४ ॥

२५२२. जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥५ ॥

उन बलशाली और अहिंसक अग्निदेव के आश्रयरूप सुख को लोग जानते हैं और उनके संरक्षण में आनन्द-पूर्वक रहते हैं । जिन अग्निदेव के लिए स्तोताओं की स्तुति रूप वाणी प्रवाहित होती है, वे अग्निदेव आकाश को दीप्तिमान् कर स्वयं भी उत्तम दीप्ति से सुशोभित होते हैं ॥५ ॥

२५२३. उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्‌भ्यामनयन्तशूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥६ ॥

स्तोताओं ने उत्कृष्टतम पितृ-मातृ रूपा द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त अग्निदेव को जानकर, उच्च उद्घोषों युक्त स्तुतियों द्वारा सुख को प्राप्त किया । जल सिंचनशील अग्निदेव रात्रि में आच्छादित अपने तेज को स्तोताओं के निमित्त प्रेरित करते हैं ॥६ ॥

२५२४. अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७ ॥

पाँच अध्वर्युओं के साथ सात होतागण कान्तियुक्त अग्निदेव के प्रिय स्थान (यज्ञ) की रक्षा करते हैं । जो ऋत्विज् पूर्व की ओर मुख करके सोमपान आदि के निमित्त अथक श्रम करते हैं और देवों के व्रतों का अनुगमन करते हैं, उनसे देवगण अतिशय प्रसन्न होते हैं ॥७ ॥

२५२५. दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥८ ॥

हम दिव्य और प्रधान अग्निरूप दोनों होताओं को तृप्त करते हैं । अन्नवान् यज्ञ की इच्छा वाले सात ऋत्विज् भी इन दोनों को हविष्यान्न से हर्षित करते हैं । वे व्रतपालक और तेजस्वी ऋत्विग्गण "यज्ञादि व्रतों का अनुगमन ही सत्य है" ऐसा कहते हैं ॥८ ॥

२५२६. वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान्रोदसी एह वक्षि ॥९ ॥

हे दीप्तिमान् देवों का आवाहन करने वाले अग्निदेव ! आप सब पर प्रकाश से आच्छादित होने वाले, महान् विलक्षण वर्ण वाले और बलवान् हैं । आपकी विविध सुविस्तृत, सर्वत्र गमनशील रश्मियाँ आपको बलशाली बनाती हैं । आप आह्लादक एवं ज्ञानवान् महान् देवों को और द्यावा-पृथिवी को यहाँ ले आएँ ॥९ ॥

२५२७. **पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१० ॥**

ये सर्वत्र गमनशील, उत्तम धनवती , उत्तम वाणियों से स्तुत होने वाली, उत्तम किरणों वाली देवी उषा हमें धन से युक्त करती हुई प्रकाशित होती है । हे अग्निदेव ! आप अपनी व्यापक महिमा से यजमान के पापों को विनष्ट करें ॥१० ॥

२५२८. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गो शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११ ॥**

हे अग्निदेव ! आप हम स्तोताओं के लिए सर्वदा श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में प्रयुक्त होने वाली, गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें । हमारे पुत्र-पौत्रादि से वंश वृद्धि होती रहे । हे अग्निदेव ! आपकी उत्तम बुद्धि से हमें अनुग्रह की प्राप्ति हो ॥११ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - यूप; ६-१० अनेक यूप; ८ वें का विकल्प से विश्वेदेवा भी; ११ व्रश्चनी । **छन्द** - त्रिष्टुप् ; ३, ७ अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त के देवता वनस्पति देव हैं । परम्परागत मान्यता के अनुसार अनेक आचार्यों ने इस सूक्त के मंत्रों को यज्ञ में स्थापित यूप (खंभे) पर घटित किया है; किन्तु मन्त्रों के मूल भावों पर ध्यान देने से ये वनस्पतिदेव अर्थात् पौधों आदि पर ही अधिक उपयुक्त रूप से घटित होते हैं । यज्ञों में वनस्पतियों के संवर्धन के प्रयोग किये जाने स्वाभाविक भी हैं -

२५२९. **अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१ ॥**

हे वनस्पति देव ! देवत्व के अभिलाषी ऋत्विग्गण यज्ञ में आपको दिव्य मधु से (यज्ञीय प्रयोग द्वारा) सिञ्चित करते हैं । आप चाहे उन्नत अवस्था में या पृथ्वी की गोद में पड़े हों; हमें धन प्रदान करें ॥१ ॥

२५३०. **समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२ ॥**

प्रज्वलित (अग्नि) होने के पूर्व से ही विद्यमान, ब्रह्मवर्चस् प्रदान करने वाले हे अजर श्रेष्ठ वीर (वनस्पति देव) !आप दूर तक हमारी कुबुद्धि को नष्ट करते हुए हमें सौभाग्य प्रदान करने के लिए उच्च पद पर स्थित हों ॥२ ॥

२५३१. **उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन्पृथिव्या अधि । सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३ ॥**

हे वनस्पति देव ! आप पृथ्वी के ऊपर यज्ञ-गृह में उन्नत स्थान पर स्थित हों; अपने उत्कृष्ट परिमाण से युक्त हों, यज्ञ का निर्वाह करने वालों को वर्चस् धारण करायें ॥३ ॥

२५३२. **युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥४ ॥**

उत्तम वस्त्रों से लपेटे हुए ये तरुण (वनस्पतिदेव-पुष्ट पौधे) आ गये हैं । ये जन्म से ही उत्तम होते हैं ।देवत्व की कामना वाले मेधावी, अध्ययनशील, दूरदर्शी, विवेकवान् पुरुष मनोयोगपूर्वक इनकी उन्नति करते हैं ॥४ ॥

[वनस्पति शास्त्री यज्ञों के माध्यम से पौधों की उन्नत किस्में बड़े मनोयोग से विकसित करते थे, ऐसा भाव यहाँ प्रकट होता है ।]

२५३३. जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः।

पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥५ ॥

उत्पन्न हुए ये (पादप) मनुष्यों से युक्त इस यज्ञ में वृद्धि पाते हुए दिनों को सुन्दर बनाते हैं। यज्ञ कर्म करने वाले धीर-मनीषी उन्हें पवित्र (दोष मुक्त) बनाते हैं ।देव आराधक विप्र सुन्दर स्तुतियों का पाठ करते हैं ॥५ ॥

२५३४. यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष।

ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम् ॥६ ॥

हे वनस्पते ! देव कर्म में प्रवृत्त मनुष्यों ने (हवन सामग्री का रूप देने के लिए) आपमें से जिनको (कूटने के लिए) अवट में डाला अथवा (विभाजित करने के लिए) धारदार शस्त्र से काटा है; वे आप सूर्यदेव की भाँति तेजस्वी, दिव्य गुण सम्पन्न (यज्ञ) के साथ स्थित होकर, इस याजक को श्रेष्ठ प्रजाओं से युक्त रत्नादि प्रदान करें ॥६ ॥

२५३५. ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः।

ते नो व्यन्तु वार्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः ॥७ ॥

कुठार से काटे गये (अथवा) ऋत्विजों द्वारा (अवट में) नीचे डाले गये, यज्ञ को सिद्ध करने वाले वे (वनस्पति के अंश) हमें वरणीय विभूतियाँ प्रदान करें ॥७ ॥

[इन मंत्रों का अर्थ अवट में डाल कर यूप खड़े करने के संदर्भ में भी सिद्ध होता है।]

२५३६. आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम्।

सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८ ॥

उत्तम प्रेरक आदित्यगण, रुद्रगण, वसुदेव, विस्तीर्ण द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष और परस्पर प्रेम-भाव संयुक्त देवगण, हमारे यज्ञ की रक्षा करें और यज्ञ के केतु (धूम्र) को उन्नत करें ॥८ ॥

२५३७. हंसा इव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः।

उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९ ॥

(यज्ञ के संयोग से ऊर्जा रूप में विकसित) सूर्य की तरह शुभ्र तेज युक्त, ऊर्ध्वगति पाते हुए ये (वनस्पति अंश) हमें पंक्तिबद्ध हंसों की तरह दिखाई देते हैं ।ये विद्वानों से भी पहले देवमार्ग से द्युलोक की प्राप्ति करते हैं ॥९ ॥

२५३८. शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम्।

वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१० ॥

ये चमकदार वनस्पति खण्ड (यूप रूप में) चषाल के साथ पृथ्वी में स्थापित होकर, पशुओं के सींग की भाँति दिखाई देते हैं। यज्ञ में स्तोताओं की स्तुतियाँ सुनकर, वे सब युद्ध में हमारे रक्षक सिद्ध हों ॥१० ॥

२५३९. वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम।

यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११ ॥

हे वनस्पते ! इस अत्यन्त तीक्ष्ण फरसे ने तुम्हें महान् सौभाग्य के लिए (यज्ञीय प्रयोजन के लिए) विनिर्मित किया है। (यज्ञ के प्रभाव से) आप सैकड़ों शाखाओं से युक्त होकर वर्द्धमान हों और हम भी सहस्रों शाखाओं से युक्त होकर वृद्धि करने वाले हों ॥११ ॥

[सूक्त - ९]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि । छन्द - बृहती; ९ त्रिष्टुप् ।]

२५४०. **सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।**
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥१ ॥

हे श्रेष्ठकर्मा, उत्तम ऐश्वर्य युक्त, निष्पाप, पापनाशक, पानी को नीचे न गिरने देने वाले अग्निदेव ! अपने संरक्षण के लिये हम मनुष्यगण मित्र भाव से आपका वरण करते हैं ॥१ ॥

[मेघों में जल को अग्नि की ही ऊर्जा सँभाले रहती है- वाष्प की ऊर्जा (लेटेन्ट हीट) शान्त हुए बिना वर्षा सम्भव नहीं होती ।]

२५४१. **कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।**
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप वनों (समूहों) को आकार देने वाले हैं । आप मातृ रूप जलों के पास (शान्त होकर) जाते हैं । आपका निवृत्त होना हम सहन न करें । आप दूर होकर भी हमारे निकट प्रकट होते हैं ॥२ ॥

[अग्नि विद्युत् विभव (इलैक्ट्रिक चार्ज) के रूप में परमाणुओं को संयुक्त करके उन्हें आकार देने में सक्षम है । हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन को संयुक्त करने में भी ताप की आवश्यकता होती है । इसीलिए उसे समूह को आकार देने वाला तथा जल में शान्त होकर रहने वाला कहा गया है ।]

२५४२. **अति तृष्टं ववक्षिथाथैव सुमना असि ।**
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं की स्तुति सुनकर उन्हें अभीष्ट फल प्रदान करने में अत्यधिक समर्थ हैं । साथ ही आप सदैव प्रसन्न रहते हैं । आप जिन ऋत्विजों के साथ मित्र भाव में स्थित होते हैं, उनमें कुछ (अध्वर्यु आदि) यज्ञादि कर्म में प्रवृत्त होते हैं और शेष चारों ओर बैठकर स्तुति- आदि कर्म करते हैं ॥३ ॥

२५४३. **ईयिवांसमति स्निधः शश्वतीरति सश्चतः ।**
अन्वीमविन्दन्निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥४ ॥

शत्रु सेनाओं के पराभवकारी और जल में छिपे हुए सिंह के समान पराक्रमी , उन अग्निदेव को द्रोह न करने वाले (स्नेह करने वाले) अविनाशी देवों ने प्राप्त किया ॥४ ॥

२५४४. **ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम् ।**
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५ ॥

जैसे स्वेच्छाचारी पुत्र को पिता बलात् खींच ले आते हैं, वैसे ही स्वेच्छा से गुह्य (छिपे हुए) अग्नि को मातरिश्वा वायु भलीप्रकार मंथन कर दूरस्थ प्रदेशों से देवों के लिए ले आयें ॥५ ॥

२५४५. **तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।**
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६ ॥

हे मनुष्यों के हितकारी और सर्वदा तरुण अग्निदेव ! आप अपने पराक्रम पूर्ण कर्तृत्वों से सम्पूर्ण यज्ञों के पालनकर्ता हैं । हे हव्यादि वहनकर्ता अग्निदेव ! मनुष्यों ने आपको देवों के लिए ग्रहण किया है ॥६ ॥

२५४६. तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जब रात्रि में आप प्रज्वलित होते हैं, तो पशु भी आकर आपके समीप बैठते हैं । आपका यह कल्याणकारी कर्म बालवत् अज्ञानी को भी पूजादि के लिए प्रेरित करता है ॥७ ॥

२५४७. आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम्।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! पवित्र दीप्तिमान् काष्ठों में सोये हुए, उत्तम यज्ञ-सम्पादक अग्निदेव की हव्यादि द्वारा परिचर्या करें । उन सर्वत्र व्याप्त, दूत-रूप, शीघ्र गमनशील, चिरपुरातन, बहुस्तुत, दीप्तिमान् अग्निदेव का शीघ्र पूजन करें॥८ ॥

२५४८. त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९ ॥

तीन हजार तीन सौ उन्तालीस देवों ने अग्निदेव की पूजा की है, उन्हें घृत से सिञ्चित किया है और उनके लिए कुश का आसन बिछाया है । फिर उन सबने उन्हें होता रूप में वरण कर, उस पर विराजित किया है ॥९ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - उष्णिक् ।]

२५४९. त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम्। देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रजाओं के अधीश्वर और दीप्तिमान् हैं । आपको मेधावीजन यज्ञ में सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥१ ॥

२५५०. त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीळते। गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप होतारूप और ऋत्विज्रूप हैं । यज्ञों में आपकी स्तुति की जाती है । यज्ञ के रक्षकरूप में आप अपने यज्ञ-गृह में प्रदीप्त हों ॥२ ॥

२५५१. स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे। सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वभूत ज्ञाता हैं । जो यजमान आपके निमित्त समिधायें देता है, वह सुनिश्चित ही उत्तम पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करता है और पशु आदि ऐश्वर्य से समृद्ध होता है ॥३ ॥

२५५२. स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत्। अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥४ ॥

यज्ञों में केतुस्वरूप गतिवाले अग्निदेव, सात होताओं द्वारा घृताभिषिक्त होकर हवि-दाता यजमानों के पास देवों के साथ पधारें ॥४ ॥

२५५३. प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत्। विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! आप, मेधावानों में तेजो के धारण-कर्ता, जन-जन के विधाता, देवों के आह्वाता अग्निदेव के लिए महान् और पुरातन स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥५ ॥

२५५४. अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः। महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६ ॥

महान् अन्न और धन की प्राप्ति के लिए ये अग्निदेव प्रज्वलित होकर दर्शनीय होते हैं । जिन स्तुतिवचनों से वे प्रशंसित होते हैं, हमारे वे वचन उन अग्निदेव को प्रवर्धित करें ॥६ ॥

२५५५. अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान्देवयते यज । होता मन्द्रो विराजस्यति स्त्रिधः ॥७ ॥

यज्ञ में पूजनीय, देवों को बुलाने वाले, शत्रुजयी हे अग्निदेव ! आप याजकों एवं देवों के (कल्याण) हेतु यज्ञ प्रक्रिया सम्पन्न करते हुए सुशोभित होते हैं ॥७ ॥

२५५६. स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८ ॥

हे पावन बनाने वाले अग्निदेव ! आप हमें दीप्तिमान् एवं उत्तम तेजोयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें और स्तोताओं के कल्याण के लिए उनके पास जायें ॥८ ॥

[खनिजों का शोधन करके धातु बनाने, धातुओं को शुद्ध करने, वनौषधियों का शोधन करके उनके रस-रसायन बनाने में अग्नि का प्रयोग होता है । ज्ञानरूप में अग्निदेव अंतःकरण के विकारों का शोधन करते है । इसलिए उन्हें 'पावक' (पवित्र बनाने वाला) कहा गया है ।]

२५५७. तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप हविवाहक, अमरणशील, मंथनरूप बल से संवर्धित होते हैं । प्रबुद्ध, मेधावी, स्तोताजन आपको सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त -११]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

२५५८. अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१ ॥

वे अग्निदेव सब यज्ञादि कर्मों के होता, पुरोहित तथा यज्ञ के विशेष द्रष्टा हैं । वे अनवरत चलने वाले यज्ञादि कर्मों के ज्ञाता हैं ॥१ ॥

२५५९. स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥२ ॥

हव्यवाहक, अविनाशी, हव्यादि की कामना वाले, देवों के दूत रूप, अन्नों से सबका हित करने वाले वे अग्निदेव विचार शक्ति (मेधा) से सम्पन्न हैं ॥२ ॥

२५६०. अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३ ॥

यज्ञ के केतु रूप, निर्देशक, पुरातन वे अग्निदेव अपनी बुद्धि से सबकुछ जानने वाले हैं । इनके द्वारा दिया गया धन ही तारने वाला होता है ॥३ ॥

[यज्ञीय मर्यादा के अनुसार प्राप्त धन मुक्ति का आधार बनता है-अन्य धन माया-बन्धन सिद्ध होता है ।]

२५६१. अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥४ ॥

बल के पुत्र रूप, सनातन काल से प्रसिद्ध जातवेदा अग्नि को देवों ने हविवाहक बनाया है ॥४ ॥

२५६२. अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥५ ॥

मानवों के मार्गदर्शक होने से अग्रणी, तत्काल क्रियाशील, रथ के समान गतिशील, चिरयुवा ये अग्निदेव सर्वथा अदम्य हैं ॥५ ॥

२५६३. साह्वान्विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥६ ॥

आक्रामक, शत्रु सेनाओं को परास्त करने वाले, दिव्य गुणों के संवर्धक हे अग्निदेव ! आप प्रचुर अन्न(पोषण) प्रदान करने वाले हैं ॥६ ॥

२५६४. अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥७ ॥

हविदाता मनुष्य हविवाहक अग्निदेव से, सब प्रकार के अन्नों (पोषण) तथा पावन प्रकाश से युक्त उत्तम आवास की प्राप्ति करते हैं ॥७ ॥

[जीव चेतना का आवास शरीर है । अग्नि (प्राणाग्नि) के द्वारा ही अन्नादि का पाचन होकर सुन्दर अन्नमय कोष का निर्माण एवं पोषण होता है । यज्ञीय प्रक्रिया से नीरोग, पुष्ट एवं व्यसनमुक्त शरीर रूपी आवास की प्राप्ति होती है ।]

२५६५. **परि विश्वानि सुधितान्गेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥८ ॥**

सर्वभूतज्ञाता (सर्वज्ञ) और मेधावी अग्निदेव से हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा सम्पूर्ण वाञ्छित ऐश्वर्य सब ओर से प्राप्त करें ॥८ ॥

२५६६. **अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥९ ॥**

हे अग्निदेव ! देवों ने आपसे प्रेरणा प्राप्त की, हम भी आपसे प्रेरित होकर वरणीय धन (दैवी सम्पदा) प्राप्त करें ॥९ ॥

[सूक्त -१२]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - इन्द्राग्नी । छन्द - गायत्री ।]

इस सूक्त के देवता इन्द्राग्नी हैं । इन्द्र है-प्रकृति के घटकों को संगठित रखने वाला प्राण-प्रवाह तथा अग्नि है-ऊर्जा का दृश्य रूप । इन्द्राग्नी से इन्द्र एवं अग्नि अथवा इन्द्ररूप में अग्नि अथवा अग्निरूप में इन्द्र आदि भाव लिये जा सकते हैं --

२५६७. **इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥१ ॥**

हे इन्द्र एवं अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों से प्रभावित (संस्कारित), आकाश से आया हुआ यह श्रेष्ठ सोमरस है । हमारे भक्तिभाव को स्वीकार कर आप इस सोमरस का पान करें ॥१ ॥

२५६८. **इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥२ ॥**

हे इन्द्राग्ने ! आप स्तुति करने वालों के सहायक बनें । स्तुतियों द्वारा बुलाये गये आप स्फूर्तिदाता एवं यज्ञ के साधनभूत सोमरस का पान करें ॥२ ॥

२५६९. **इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३ ॥**

यज्ञीय प्रेरणा से स्तुति करने वालों के लिये योग्य फलदाता इन्द्र और अग्निदेव की हम पूजा करते हैं । वे दोनों इस यज्ञ में सोमरस पान से संतुष्ट हों ॥३ ॥

२५७०. **तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४ ॥**

दुष्ट - दुराचारियों, शत्रुओं का हनन कर हमेशा युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, अपराजेय, साधकों को अपार वैभव प्रदान करने वाले, इन्द्र और अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं ॥४ ॥

२५७१. **प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः । इन्द्राग्नी इष आ वृणे ॥५ ॥**

हे इन्द्र और अग्निदेव ! वेदपाठी आपकी प्रार्थना करते हैं, सामवेद गायक आपका गुणगान करते हैं, (पोषण) प्राप्ति हेतु हम भी आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

२५७२. **इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥६ ॥**

हे इन्द्राग्ने ! आप दोनों ने संयुक्त होकर रिपुओं के नब्बे नगरों और उनकी विभूतियों को एक बार के आक्रमण से, एक ही समय में कम्पित कर दिया ॥६ ॥

[नब्बे का उपयोग सैकड़ों जैसे भाव से किया जाता रहा है ।]

२५७३. **इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः । ऋतस्य पथ्या३ अनु ॥७ ॥**

हे इन्द्र और अग्ने ! श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोग सदैव सत्य मार्ग का अनुगमन करते हुए आगे बढ़ते हैं ॥७ ॥

२५७४. **इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च । युवोरप्तूर्यं हितम् ॥८ ॥**

हे इन्द्राग्ने ! आपके बल और अन्न संयुक्त रूप से रहते हैं । आपका बल शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाला है ॥८ ॥

२५७५. **इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः । तद्वां चेति प्र वीर्यम् ॥९ ॥**

हे इन्द्र और अग्निदेव ! दिव्यगुणों से आलोकित, आप संघर्षों में सफल होने पर शोभायमान होते हैं । यह आपके शौर्य की पहचान है ॥९ ॥

[सूक्त -१३]

[**ऋषि** - ऋषभ वैश्वामित्र । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

२५७६. **प्र वो देवायाग्नये बर्हिष्ठमर्चास्मै । गमद्देवेभिरा स नो यजिष्ठो बर्हिरा सदत् ॥१ ॥**

हे स्तोताओ ! आप इन अग्निदेव के निमित्त उत्तम स्तुति करें, जिससे वे देवों के साथ हमारे पास आयें और यजनीय वे अग्निदेव हमारे इस यज्ञ में कुशों पर विराजें ॥१ ॥

२५७७. **ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः । हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥२ ॥**

द्यावा-पृथिवी जिन अग्निदेव के वशीभूत हैं । रक्षक देवगण भी जिन अग्निदेव के बल से पोषित होते हैं, धनाभिलाषी, सत्यवान्, हविदाता यजमान अपने संरक्षण के लिए उन अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥२ ॥

२५७८. **स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।**
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३ ॥

वे मेधावान् अग्निदेव यजमानों के नियन्ता हैं । वे यज्ञों के भी नियन्ता हैं । ऐश्वर्यदाता वे अग्निदेव धन देने वाले हैं । अतएव हे ऋत्विजो आप उन अग्निदेव की परिचर्या करें ॥३ ॥

२५७९. **स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।**
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४ ॥

वे अग्निदेव हमारे रक्षण के लिए उपयोगी और शांतिदायी आवास प्रदान करें । जहाँ (रहकर) द्युलोक, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी में संव्याप्त पुष्टिप्रद वैभव हमें प्राप्त हो ॥४ ॥

२५८०. **दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।**
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५ ॥

स्तोतागण उन देदीप्यमान, प्रतिक्षण नवीन, देवों का आवाहन करने वाले, प्रजापालक अग्निदेव को श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रदीप्त करते हैं ॥५ ॥

२५८१. **उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः । शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६ ॥**

हे अग्निदेव ! स्तुतियों के समय आप हमारी रक्षा करें । हे देवों के आह्वाता ! आप मन्त्रोच्चारण में हमारी रक्षा करें । सहस्रों धनों के दाता आप, मरुद्गणों द्वारा वर्द्धित होते हैं । आप हमारे सुखों में वृद्धि करें ॥६ ॥

२५८२. **नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु । द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७ ॥**

हे अग्ने ! आप हमें पुत्र-पौत्रादि सहित पुष्टिकारक, दीप्तिमान् तेजस्वी, उत्कृष्टतम, अक्षय तथा सहस्र संख्यक धन प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त -१४]

[**ऋषि** - ऋषभ वैश्वामित्र । देवता - अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२५८३. **आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।**
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१ ॥

देवों के आह्वानकर्त्ता, सुखकारक, सत्यपालक, मेधावियों में श्रेष्ठ, यज्ञकारी, विधाता वे अग्निदेव हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों । वे प्रकाशित रथ-युक्त, ज्योतित केशों वाले, बल के पुत्र अग्निदेव इस पृथ्वी पर अपनी प्रभा को प्रकट करते हैं ॥१ ॥

२५८४. **अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।**
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२ ॥

हे यज्ञ- सम्पादक अग्निदेव ! हम नमस्कारपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं । हे बलवान् और ज्ञानवान् देव ! निवेदित स्तुतियों को आप स्वीकार करें । आप विद्वान् हैं, अतएव विद्वान् देवगणों को अपने साथ ले आयें । हमारे संरक्षण के लिए आप यज्ञ-गृह के मध्य में बिछे कुश के आसन पर विराजमान हों ॥२ ॥

२५८५. **द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।**
यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! अन्नवती उषा और रात्रि, आपके निमित्त गमन करती हैं । आप वायु मार्ग से आगमन करें । पुरातन ऋत्विग्गण आपको हव्यादि द्वारा सिञ्चित करते हैं । एक ही जुए में जुड़ी हुई (परस्पर संयुक्त) उषा और रात्रि हमारे घर में स्थित हों ॥३ ॥

२५८६. **मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।**
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥४ ॥

हे बल सम्पन्न अग्निदेव ! मित्र, वरुण और सम्पूर्ण मरुद्‌गण आपके निमित्त स्तुतियाँ करते हैं । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप सूर्य की तरह मनुष्यों को श्रेष्ठ पथ दिखाने वाली रश्मियों को विस्तारित कर, अपनी तेजस्विता से स्थित हों ॥४ ॥

२५८७. **वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।**
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम कामना युक्त याजक ऊँचे हाथ करके आपको हव्यादि अर्पित करते हैं । हे मेधावान् अग्निदेव ! हमारे हव्यादि से सन्तुष्ट होकर आप अपने श्रेष्ठ मन से स्तोत्रों द्वारा देवों का यजन करें ॥५ ॥

२५८८. **त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।**
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६ ॥

हे बल के पुत्र अग्ने ! आपकी सनातन रक्षक किरणें देवों की ओर गमन करती हैं और उन्हें अन्नादि भी प्रदान करती हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें द्रोहरहित, तेजोमय सहस्रों प्रकार के अक्षय धन प्रदान करें ॥६ ॥

२५८९. तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७ ॥

हे बलवान्, मेधावान्, दीप्तिमान् अग्निदेव ! हम मनुष्य यज्ञ में आपके निमित्त हव्यादि कर्मों को निवेदित करते हैं । हे अविनाशी अग्निदेव ! यज्ञ मे निवेदित इन हवियों का आप आस्वादन करें । उत्तम रथ वाले आप यजमानों की रक्षा के निमित्त चैतन्य हों ॥७ ॥

[सूक्त -१५]

[**ऋषि** - उत्कील कात्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

२५९०. वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१ ॥

हे अग्ने ! आप अपने वर्द्धमान बल तथा तेजस्विता से, द्वेष करने वाले शत्रुवृत्ति तथा राक्षसी वृत्तिवालों को बाधित करें । हे श्रेष्ठ, सुखदायी, महान्, सुविख्यात अग्निदेव ! हम आपके आश्रय में रहना चाहते हैं ॥१ ॥

२५९१. त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आप उषा के प्रकट होने तथा सूर्य के उदित होने पर हमारे संरक्षण के लिए चैतन्य हों ।स्वयमेव उत्पन्न होने वाले आप हमारे स्तोत्रों को उसी प्रकार ग्रहण करें, जैसे पिता अपने नवजात पुत्र को ग्रहण करता है ॥२॥

२५९२. त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥३ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप मनुष्यों के समस्त कर्मों के ज्ञाता हैं । आप अंधेरी रातों मे भी बहुत अधिक दीप्तिमान् होते हैं । आपकी ज्वालाएँ विस्तृत होती हैं । हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप हमें दुःख और पापों से पार करें । हे अति युवा अग्निदेव ! हमे ऐश्वर्य - सम्पन्न बनायें ॥३ ॥

२५९३. अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा सञ्जिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपराजेय और बलशाली हैं । आप शत्रुओं के नगरों और धनों को जीतकर अपनी दीप्तियों से सर्वत्र व्याप्त हों । हे उत्तम प्रेरक और सर्व भूतज्ञाता अग्निदेव ! आप महान् आश्रयदाता और यज्ञ के प्रथम सम्पादन-कर्ता हैं ॥४ ॥

२५९४. अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥५ ॥

हे स्तुत्य अग्निदेव ! आप उत्तम, मेधावान् और अपने तेज से दीप्तिमान् हैं । देवों के निमित्त आप सम्पूर्ण सुखकर कर्मों को भली प्रकार सम्पादित करें । आप रथ के सदृश वेगपूर्वक गमन कर, देवों के निमित्त हव्यादि वहन करें और सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करें ॥५ ॥

२५९५. प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥६ ॥

हे अभीष्ट वर्षा में समर्थ अग्निदेव ! आप हमें पूर्णता प्रदान करें और विविध अन्नों से पुष्ट करें । उत्तम दीप्तियों से दीप्तिमान् होकर, आप देवों के साथ द्यावा-पृथिवी को उत्तम दोहन योग्य बनायें । अन्यान्य मनुष्यों की दुर्बुद्धि हमारे निकट भी न आये (दुर्बुद्धिग्रस्त होकर हम प्रकृति का स्वार्थ पूर्ण दोहन न करने लगें) ॥६ ॥

[अज्ञानी लोग प्रकृति का केवल दोहन करते रहते हैं, प्रकृति को दोहन योग्य पुष्ट बनाना, यज्ञीय प्रक्रिया से प्रकृति का-पर्यावरण का संतुलन बनाये रखना ज्ञानियों का कार्य है ।]

२५९६. **इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।**

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं के निमित्त श्रेष्ठ रहने वाली, अनेक कर्मों में उपयोगी तथा गौओं को पुष्ट करने वाली भूमि प्रदान करें, हमारे पुत्र-पौत्रादि वंश-वृद्धि में सक्षम हों तथा आपकी उत्तम बुद्धि हमें भी प्राप्त हो ॥७ ॥

[सूक्त -१६]

[**ऋषि** - उत्कील कात्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- बार्हत प्रगाथ - (१, ३, ५ बृहती, २, ४, ६ सतोबृहती ।]

२५९७. **अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।**

राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१ ॥

ये अग्निदेव पुरुषार्थ एवं महान् सौभाग्य के स्वामी हैं । ये धनैश्वर्य तथा सुसंतति के स्वामी (देने वाले) हैं । गौ (पोषक किरणों, इन्द्रियों अथवा गौ आदि) तथा वृत्र (वृत्रासुर अथवा पुरुषार्थ को आच्छादित कर लेने वाली दुष्प्रवृत्तियों) को नष्ट करने वालों के भी स्वामी हैं ॥१ ॥

[अग्नि की सम्यक् आराधना द्वारा उक्त सभी विभूतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं । इस मंत्र में ' सु अपत्य' का अर्थ सुसंतति लिया गया है । अपत्य का अर्थ होता है, जिससे पतन न हो । एक पीढ़ी जो प्रगति करती है, उसे बनाये रखने-गिरने न देने के लिए अगली पीढ़ी की आवश्यकता होती है । इसलिए संतान को अपत्य कहा गया है । इस प्रयोजन की पूर्ति न हो, तो संतान का होना निरर्थक है । सु अपत्य का अर्थ पतन न होने देने वाली श्रेष्ठ विभूतियाँ लेने से भी मंत्रार्थ सिद्ध होता है ।]

२५९८. **इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन्रायः शेवृधासः ।**

अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप संग्रामों में पराजित न होकर सदा से शत्रुओं के संहारकर्ता हैं । आप मनुष्यों को बढ़ाने वाले इन अग्निदेव की परिचर्या करें, जिनके चारों ओर सुखवर्द्धक धन-ऐश्वर्य विद्यमान हैं ॥२ ॥

२५९९. **स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य ।**

तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३ ॥

हे प्रचुर धन-सम्पन्न, सुखवर्धक अग्निदेव ! आप हमें धन से समृद्ध करें । श्रेष्ठ सन्तानों सहित आरोग्यप्रद, बलिष्ठ और तेजस्वी अन्नों से पुष्ट करें ॥३ ॥

२६००. **चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।**

आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥४ ॥

ये अग्निदेव जगत् के कर्म-संपादक हैं और सम्पूर्ण लोकों में संव्याप्त हैं । वे कर्म-कुशल अग्निदेव हव्यादि वहन कर, देवों के पास गमन करते हैं और देवों को यज्ञ में ले आते हैं । वे मनुष्यों से प्रशंसित होकर उन्हें उत्तम पराक्रम से युक्त करते हैं ॥४ ॥

२६०१. **मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।**
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥५ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप हमें दुर्बुद्धि के अधिकार में मत सौंपें । हमें वीर पुत्रों से रहित न करें, गौ आदि पशुओं से विहीन न करें तथा निन्दनीय न होने दें साथ ही आप हमारे प्रति द्वेष-भाव से मुक्त रहें ॥५ ॥

२६०२. **शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।**
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥६ ॥

हे उत्तम धन-सम्पन्न अग्निदेव ! हम यज्ञ में विपुल सन्तानों से युक्त अन्नादि धन के अधिपति हों । हे महान् धन से युक्त अग्निदेव ! आप हमें सुखकर - यशवर्द्धक प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त -१७]

[**ऋषि-** कत वैश्वामित्र । देवता- अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२६०३. **समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।**
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक्पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१ ॥

वे अग्निदेव धर्म - धारक, ज्वाला रूप केश वाले, सबके द्वारा वरणीय, समिधाओं से प्रज्वलित, घृत से प्रदीप्त, पवित्रकर्त्ता और उत्तम यज्ञों के सम्पादक हैं । वे यज्ञ के प्रारम्भ में प्रज्वलित होकर देव-यजन के निमित्त घृतादि से भली प्रकार सिञ्चित होते हैं ॥१ ॥

२६०४. **यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।**
एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपने जैसे पृथ्वी को हव्य प्रदान किया, जैसे आकाश को हव्य प्रदान किया; उसी प्रकार हे सब भूतों के ज्ञाता-ज्ञानवान् अग्निदेव ! हमारे इस हवि-द्रव्य द्वारा सम्पूर्ण देवों का यजन करें । मनु के यज्ञ के समान हमारे यज्ञ को भी पूर्ण करें ॥२ ॥

२६०५. **त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।**
ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आपके तीन प्रकार के अन्न (आज्य, ओषधि और सोम) हैं । (एकाह, अहीन और सत्र नामक) तीन उषाएँ आपकी माताएँ हैं । आप उनके द्वारा देवों का यजन करें । सबको जानने वाले आप, यजमान के लिए सुख और कल्याण देने वाले हों ॥३ ॥

२६०६. **अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।**
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप उत्तम दीप्तिमान्, उत्तम दर्शनीय और स्तवनीय हैं । हम नमस्कारपूर्वक आपका स्तवन करते हैं । हे गमनशील ज्वाला युक्त और हव्यवाहक अग्निदेव ! देवों ने आपको दूत रूप में प्रतिष्ठित किया है और अमृत का केन्द्र मानकर आपका आस्वादन किया है ॥४ ॥

२६०७. **यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।**
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! पहले जो होता उत्तम और मध्यम दो स्थानों पर स्वधा के साथ बैठकर सुखी हुए, उनके धर्म का अनुगमन करते हुए आप यजन करें । तदनन्तर हमारे इस यज्ञ को देवों की प्रसन्नता के निमित्त धारण करें ॥५ ॥

[पृथ्वी पर अग्नि की उत्पत्ति के पूर्व द्युलोक एवं अंतरिक्ष में, सूर्य एवं विद्युत् रूप में दो होताओं द्वारा (उत्पादन एवं पोषण रूप) यजन कार्य किया जा रहा था । अग्नि से उन्हीं के अनुरूप यज्ञ चक्र को पृथ्वी पर संचालित करने की प्रार्थना की गयी है ।

[सूक्त -१८]

[ऋषि- कत वैश्वामित्र । देवता- अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२६०८. भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार मित्र के प्रति मित्र और अपने पुत्र के प्रति माता-पिता हितैषी होते हैं, उसी प्रकार आप प्रसन्नता के साथ हमारे लिए अनुकूल और हितैषी बनें । इस लोक में मनुष्यों के प्रति मनुष्य अत्यन्त द्रोही हैं, अतएव हमारे विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रुओं के प्रतिकूल होकर उन्हें भस्म कर दें ॥१ ॥

२६०९. तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे समीपस्थ शत्रुओं को भली प्रकार संतप्त करें । हव्यादि न देने वाले और दूसरों की निन्दा करने वालों को संतप्त करें । हे आश्रयदाता और विद्वान् अग्निदेव ! आप चंचल चित्त वालों को संतप्त करें । आपकी अजर किरणें अबाध गति से विकीर्ण हों ॥२ ॥

२६१०. इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हम श्रेष्ठ कामनाओं सहित आपके वेग और बल के लिए समिधा एवं घृत के साथ हविष्यान्न प्रदान करते हैं । स्तोत्रों से आप की स्तुति करते हुए हम धन पर प्रभुत्व पायें । आप हमारे लिए अक्षय धन प्रदान करने के निमित्त हमारी स्तुति को दिव्य बनायें ॥३ ॥

२६११. उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥४ ॥

बल के पुत्र हे अग्निदेव ! आप अपने तेज से दीप्तिमान् हों । आप प्रशंसक विश्वामित्र के वंशजों (विश्व में समस्त मानवों के प्रति मित्रभाव रखने वाले) द्वारा स्तुति किये जाने पर अपार धन-धान्य प्रदान करें । उन्हें आरोग्य और निर्भयता प्रदान करें । यज्ञादि कर्म कर्त्ता हे अग्निदेव ! हम आपके शरीर का पुनः-पुनः शोधन करते हैं ॥४ ॥

२६१२. कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥

उत्तम दानशील हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठतम धन प्रदान करें । आप भली प्रकार प्रदीप्त होकर याजकों को धन प्रदान करते हैं । समृद्धिशाली स्तोताओं को अपार धन-वैभव प्रदान करने के लिए आप अपने रूपवान् तेजस्वी हाथों (किरणों) को विस्तृत करें ॥५ ॥

[सूक्त -१९]

[ऋषि-गाथी कौशिक । देवता-अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२६१३. अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥१ ॥

स्तुतिपूर्वक देवताओं का आवाहन करने वाले मेधावान् , ज्ञानवान् अग्निदेव को हम यज्ञ में विशेष रूप से वरण करते हैं । वे पूज्य अग्निदेव हमारे निमित्त देवों का यजन करें । हमें विपुल धन-धान्य प्रदान करने के लिए हमारी हवियों को स्वीकार करें ॥१ ॥

२६१४. प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हम घृत आदि हव्य पदार्थों से परिपूर्ण पात्र को नित्य आपकी ओर प्रेरित करते हैं । देवताओं का आवाहन करने वाले आप, हमारे वैभव को बढ़ाने की कामना से यज्ञ स्थल पर भलीप्रकार उपस्थित हों ॥२ ॥

२६१५. स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप जिसकी रक्षा करते हैं, उसका मन अत्यन्त तेजस्वी होता है । आप उसे उत्तम धन, सन्तान प्रदान करें । धन-प्रदाता, उत्तम प्रेरक हे अग्ने ! हम आपके विपुल ऐश्वर्य के संरक्षण में निवास करें और आपकी स्तुतियाँ करते हुए धन के स्वामी बनें ॥३ ॥

२६१६. भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४ ॥

हे अग्निदेव !देवों की पूजा-यज्ञादि करने वाले मनुष्यों ने आपमें प्रचुर मात्रा में दीप्ति उत्पन्न की है ।सर्वदा तरुण रहने वाले आप यज्ञ में देवों के दिव्य तेज की पूजा करते हैं, अतएव हमारे इस यज्ञ में उन्हें साथ लेकर आयें ॥४

२६१७. यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५ ॥

देवताओं का आवाहन करने वाले हे अग्निदेव ! यज्ञ के लिए बैठे हुए दीप्तिमान् ऋत्विग्गण आपको प्रतिष्ठित कर घृतादि द्वारा सिंचित करते हैं । आप हमारे यज्ञ में चैतन्य होकर हमें संरक्षण प्रदान करें । हमारे पुत्रों को आप प्रचुर मात्रा में धन-धान्य प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त -२०]

[ऋषि - गाथी कौशिक । देवता - अग्नि ; १, ५ विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२६१८. अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥१ ॥

यज्ञ में समर्पित आहुतियों को धारण करने वाले अग्निदेव, उषा, अश्विनीकुमार और दधिक्रा आदि देवों को हम स्तुति वचनों द्वारा बुलाते हैं । उत्तम दीप्तिमान् तथा प्रेम और सहकार पूर्वक रहने वाले देवगण, इस यज्ञ की सफलता की कामना करते हुए हमारी स्तुतियों का श्रवण करें ॥१ ॥

२६१९. अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आपके (घृत, ओषधि और सोम) तीन प्रकार के अन्न हैं और तीन प्रकार के (पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यु) निवास हैं । हे यज्ञ से उत्पन्न अग्निदेव ! आपकी पुरातन तीन जिह्वायें (गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि) हैं । आपके तीन शरीर (पवमान, पावक और शुचि) देवों द्वारा चाहने योग्य हैं । आप प्रमादरहित होकर अपने शरीरों द्वारा हमारे स्तोत्रों की रक्षा करें ॥२ ॥

२६२०. अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो ॥३ ॥

दीप्तिमान्, ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और अविनाशी हे अग्निदेव ! देवताओं ने आपको अनेक विभूतियों से सम्पन्न बनाया है । आप जगत् को तृप्ति प्रदान करने वाले और वांछित फल दाता हैं । हे अग्निदेव ! आप मायावियों की सम्पूर्ण पुरातन मायाओं को भली-भाँति जानते हुए उन्हें धारण करते हैं ॥३ ॥

२६२१. अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४ ॥

ऋतुओं का संचालन करने वाले ऐश्वर्यवान् सूर्यदेव के सदृश ये अग्निदेव मनुष्यों और देवताओं का नेतृत्व करते हैं । वे यज्ञादि सत्कर्म करने वाले, वृत्र का नाश करने वाले, सनातन, सर्वज्ञ और दीप्तिमान् हैं । वे अग्निदेव हम स्तोताओं को सम्पूर्ण पापों से मुक्त करें ॥४ ॥

२६२२. दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५ ॥

हम दधिक्रा, अग्नि, दीप्तिमान् उषा, बृहस्पति, सवितादेव, दोनों अश्विनीकुमार, मित्र, वरुण, भगदेव, वसुओं, रुद्रों और आदित्यों से इस यज्ञ में उपस्थित होने की प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त -२१]

[**ऋषि** - गाथी कौशिक । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - १, ४ त्रिष्टुप्; २, ३ अनुष्टुप्; ५ विराड्रूपा सतोबृहती ।]

२६२३. इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१ ॥

हे सर्वभूत ज्ञाता अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ को अमर देवों के पास समर्पित करें । हमारे द्वारा समर्पित इन हवि पदार्थों का सेवन करें । देवताओं का आवाहन करने वाले हे अग्निदेव ! आप यज्ञ में बैठकर सर्वप्रथम हवि और घृत के अंशों का भक्षण करें ॥१ ॥

२६२४. घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥२ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! इस यज्ञ में घृत से युक्त हविष्यान्न, आपके और देवों के सेवन के लिए अर्पित किया जा रहा है । अतएव हमें आप श्रेष्ठ और उपयोगी धन प्रदान करें ॥२ ॥

२६२५. तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३ ॥

ऋत्विजों द्वारा सेवित, मेधावान् हे अग्निदेव ! आपके लिए टपकती हुई घृत की बूँदें अर्पित हैं। श्रेष्ठ क्रान्तदर्शी आप घृतादि द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित होते हैं। आप हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हों ॥३ ॥

२६२६. तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४ ॥

हे सतत गमनशील और सामर्थ्यवान् अग्निदेव ! आपके निमित्त हविर्भाग और घृत की बूँदें अर्पित होती हैं। हे मेधावान् अग्निदेव ! आप मेधावियों द्वारा प्रशंसित होकर, अपने विस्तृत तेजों के साथ हमारे लिए अनुकूल हों और हमारे हव्यादि को ग्रहण करें ॥४ ॥

२६२७. ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम सब घृतादि युक्त श्रेष्ठ हव्य, आपके लिए प्रदान करते हैं। हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आपकी ज्वालाओं के मध्य घृत की अजस्र धारा समर्पित की जा रही है ॥५ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि** - गाथी कौशिक। **देवता** - अग्नि, ४ पुरीष्य अग्नियाँ। **छन्द** - त्रिष्टुप्; ४ अनुष्टुप्।]

२६२८. अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्स्तूयसे जातवेदः ॥१ ॥

सोम की अभिलाषा करने वाले इन्द्रदेव ने जिस जठर में अभिषुत सोम को धारण किया था, वे यही जातवेदा अग्निदेव ही हैं। हे जातवेदा अग्निदेव ! विविध रूपों में अश्व के सदृश वेगवान् हविष्यान्न का आप सेवन करते हैं और सबके द्वारा की गई स्तुतियों का श्रवण करते हैं ॥१ ॥

२६२९. अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२ ॥

हे यज्ञाग्ने ! आपके जिस तेज ने स्वर्गलोक को, पृथ्वी पर तेजरूप से ओषधियों को और जल में विद्युत् रूप से अतिव्यापक अन्तरिक्ष लोक को संव्याप्त किया है; हे सर्वत्र गतिमान्, जगत् प्रकाशक ! आपका वह दिव्य तेज मनुष्यों के सभी अच्छे-बुरे कर्मों को देखने वाला है ॥२ ॥

२६३०. अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये।
या रोचने परस्तात्सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप दिव्य लोक के अमृतरूपी जल को उत्तम रीति से धारण करते हैं। बुद्धि के प्रेरक जो प्राण स्वरूप देव हैं; उनके समक्ष भी आप गतिशील होते हैं। प्रकाशमान सूर्यमण्डल में स्थित, सूर्य से आगे (परे) जो जल है तथा जो जल इसके नीचे है, समस्त जल में आप विराजमान हों ॥३ ॥

२६३१. पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥४ ॥

प्रजापालक, समान विचारशीलों में प्रीतियुक्त, द्रोह भावना से रहित, ये अग्नियाँ इस यज्ञ में आरोग्यप्रद वनौषधियों से युक्त हविष्य को पर्याप्त मात्रा में ग्रहण करें ॥४ ॥

२६३२. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञादि कार्य के लिए , अनेक सत्कर्मों के लिए और गौओं के पोषण आदि के लिए हमें उत्तम भूमि प्रदान करें । हमारे पुत्र वंश की वृद्धि करने वाले हों । आपकी वह सुमति हमें भी प्राप्त हो ॥५ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - देवश्रवा और देववात भारत । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ३ सतोबृहती ।]

२६३३. निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१ ॥

मंथन द्वारा प्रकट यजमान के घर स्थापित वे अग्निदेव सर्वदा युवा, यज्ञ के प्रणेता, मेधावान् और सर्वज्ञ हैं । वे महान् वन-क्षेत्र को जलाने पर भी स्वयं अजर हैं । वे अग्निदेव ही यज्ञ में अमृत को धारण करने वाले हैं ॥१ ॥

२६३४. अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम्।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥२ ॥

भरत के पुत्र देवश्रवा और देववात, इन दोनों ने उत्तम सामर्थ्यशाली और विपुल धन - संयुक्त अग्नि को मन्थन द्वारा उत्पन्न किया है । हे अग्निदेव ! आप हमारी ओर कृपा दृष्टि कर, हमें प्रभूत धन एवं प्रतिदिन विपुल अन्नादि प्राप्त कराने वाले हों ॥२ ॥

२६३५. दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम्।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३ ॥

दस अँगुलियों ने (मन्थन द्वारा) चिर पुरातन उस अग्नि को उत्पन्न किया । हे देवश्रवा ! अरणि रूप माताओं द्वारा उत्तम प्रकार से प्रकट होने वाले, देववात द्वारा मथित, सबके प्रिय इन अग्निदेव की स्तुति करें । वे स्तोताजनों के वशीभूत होते हैं ॥३ ॥

२६३६. नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हम इळा रूपिणी (अन्नवती) पृथ्वी के उत्कृष्ट स्थान में, उत्तम दिन के श्रेष्ठतम समय में, आपको विशेष रूप से स्थापित करते हैं । आप दृषद्वती (राजपूताना क्षेत्र में प्रवाहित घग्घर नदी), आपया (कुरुक्षेत्र में स्थित नदी) और सरस्वती के तटों पर रहने वाले मनुष्यों के गृह में धन से युक्त होकर दीप्तिमान् हों ॥४ ॥

२६३७. इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमें स्तोताओं के निमित्त शाश्वत, श्रेष्ठ, अनेक कार्यों के लिए उपयोगी और गौओं को पुष्टि प्रदान करने वाली भूमि प्रदान करें । हे अग्निदेव ! हमारे पुत्र-पौत्र वंश विस्तार में सक्षम हों । हमें आपकी उत्तम बुद्धि की अनुकूलता का अनुग्रह प्राप्त हो ॥५ ॥

[सूक्त - २४]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि । छन्द - गायत्री, १ अनुष्टुप् ।]

२६३८. अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रु सेनाओं को पराजित करें; विघ्नकर्त्ताओं को दूर हटायें । शत्रुओं द्वारा अपराजेय आप अपने शत्रुओं को जीतकर यज्ञकर्त्ता यजमान को प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥१ ॥

२६३९. अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञों से प्रीति रखने वाले और अविनाशी हैं । आप उत्तर वेदी में प्रज्वलित होते हैं । आप हमारे यज्ञ को भली-भाँति ग्रहण करें ॥२ ॥

२६४०. अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप तेज से सर्वदा चैतन्यवान् हैं । आप बल के पुत्र हैं । आप आदरपूर्वक आमंत्रित किये जाते हैं । आप हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर कुश के आसन पर अधिष्ठित हों ॥३ ॥

२६४१. अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ में जो याजक आपके निमित्त स्तुतियाँ करते हैं, उनकी स्तुतियों को सम्पूर्ण तेजस्वी ज्वालाओं से अधिकाधिक महत्ता प्रदान करें ॥४ ॥

२६४२. अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हविदाता को वीर पुत्रों से युक्त पर्याप्त धन प्रदान करें । हम पुत्र-पौत्र वाले हों । आप हमें तेजवान् बनायें ॥५ ॥

[सूक्त - २५]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि, ४ - अग्नीन्द्र । छन्द - विराट् ।]

२६४३. अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेतास्तना पृथिव्या उत विश्ववेदाः ।
ऋधग्देवाँ इह यजा चिकित्वः ॥१ ॥

सर्वज्ञाता, प्रबुद्ध, आकाश-पुत्र हे अग्निदेव ! आप पृथ्वी के विस्तारक हैं । हे ज्ञान-समृद्ध अग्निदेव ! आप इस यज्ञ में पृथक्-पृथक् देवों के निमित्त यज्ञ कार्य सम्पन्न करें ॥१ ॥

२६४४. अग्निः सनोति वीर्याणि विद्वान्त्सनोति वाजममृताय भूषन् ।
स नो देवाँ एह वहा पुरुक्षो ॥२ ॥

विद्वान् अग्निदेव उपासकों की क्षमताओं में वृद्धि करते हैं । वे अग्निदेव अपने को विभूषित (प्रज्वलित) करके, अमर देवों को हविष्यान्न प्रदान करते हैं । विविध प्रकार के वैभव से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त देवों को इस यज्ञ में ले आयें ॥२ ॥

२६४५. अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः ।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३ ॥

ज्ञान - सम्पन्न, सबके आश्रय स्थल, अत्यन्त तेजस्वी, बल और अन्न से युक्त हे अग्निदेव ! आप विश्व का

सृजन करने में समर्थ, देदीप्यमान तथा अजर-अमर द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं ॥३ ॥

२६४६. अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम्।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप और इन्द्रदेव दोनों यज्ञ के रक्षणकर्ता हैं । आप अभिषुत सोम-प्रदाता यजमान के घर में सोमपान के निमित्त आयें ॥४ ॥

२६४७. अग्ने अपां समिध्यसे दुरोणे नित्यः सूनो सहसो जातवेदः ।
सधस्थानि महयमान ऊती ॥५ ॥

बल के पुत्र, अविनाशी और सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आप अपनी संरक्षण शक्ति द्वारा आश्रय देकर, प्राणियों को अनुगृहीत करते हुए, जलों के (बरसने के) स्थान अन्तरिक्ष में, भली-भाँति प्रदीप्त होते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि -** विश्वामित्र गाथिन; ७ आत्मा । **देवता -** १ - ३ वैश्वानर अग्नि; ४ - ६ मरुद्गण; ७ - ८ आत्मा अथवा अग्नि; ९ विश्वामित्रोपाध्याय । **छन्द -** १ - ६ जगती; ७ - ९ त्रिष्टुप् ।]

२६४८. वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१ ॥

हम कुशिक-वंशज धन की अभिलाषा से हव्यादि प्रदान करते हुए रमणीय वैश्वानर अग्निदेव की स्तुति करते हुए बुलाते हैं । वे अग्निदेव सत्यमार्ग अनुगामी, स्वर्ग के सुखों को प्रदान करने वाले, उत्तम फल-प्रदायक और सर्वत्र गमनशील हैं ॥१ ॥

२६४९. तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२ ॥

यजमान के यज्ञ की रक्षा के लिए उन शुभ्र, अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप में गतिशील, ऋचाओं द्वारा स्तुत्य, वाणी के अधीश्वर, मेधावी, श्रोता एवं अतिथि रूप पूज्य तथा शीघ्र गमनशील, वैश्वानर अग्निदेव को हम बुलाते हैं ॥२॥

२६५०. अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३ ॥

हिनहिनाने वाला अश्व जैसे अपनी जननी द्वारा प्रवृद्ध होता है, वैसे ही ये वैश्वानर अग्निदेव कुशिक वंशजों द्वारा प्रतिदिन संवर्धित होते हैं । अमर देवों में सर्वदा जागरूक वे अग्निदेव हमें उत्तम अश्व, उत्तम पराक्रम, सामर्थ्य और रत्नादि धन प्रदान करें ॥३ ॥

२६५१. प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे सम्मिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४ ॥

अग्नि (यज्ञ) से उत्पन्न शक्तिशाली (ऊर्जा) धारायें श्रेष्ठ उद्देश्यों से युक्त होकर चलें । बलशाली मरुतों के साथ मिलकर पृषती (वायु को वाहन बनाने वाले मेघों) को एकत्रित करें । सर्वज्ञाता, अदम्य मरुद्गण जलयुक्त पर्वताकार (मेघों) को कम्पित करते हैं ॥४ ॥

[इस ऋचा में प्राणवान् वर्षा का क्रम एवं मर्म स्पष्ट किया गया है ।]

२६५२. अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५ ॥

रुद्र-पुत्र वे मरुद्‌गण अग्निदेव के आश्रित, विश्व को आकृष्ट करने वाले, ध्वनि करने वाले, जल की वर्षा करने वाले, सिंह के समान गर्जना करने वाले और उत्तम दानशील हैं । हम उनके उग्र और तेजस्वी संरक्षण-सामर्थ्यों की याचना करते हैं ॥५ ॥

२६५३. व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६ ॥

बिन्दुदार (चिह्नित) अश्वों वाले, अक्षय धन वाले, धीर मरुद्‌गण हव्य की कामना से यज्ञ में गमन करते हैं । सदैव समूह के साथ चलने वाले मरुद्‌गणों के बल और अग्नि के प्रकाशित ओज की कामना करते हुए, हम उत्तम स्तुतियों से उनका गुणगान करते हैं ॥६ ॥

२६५४. अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७ ॥

मैं अग्नि (आत्मा या ब्रह्म) जन्म से ही सर्वज्ञ हूँ । घृत (तेज) मेरे नेत्र हैं । मेरे मुख में अमृत (रस अथवा वाणी) है । मैं प्राणरूप में तीनों (जड़, वनस्पतियों एवं प्राणियों) का धारक एवं अन्तरिक्ष का मापक हूँ । सतत तेजोमय सूर्य, हवि एवं हविवाहक (अग्नि) मैं ही हूँ ॥७ ॥

२६५५. त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥८ ॥

(साधकगण) अपने अंतःकरण में मननीय परम ज्योति को भली-भाँति जानकर अग्नि, जल और सूर्य रूप पूजनीय आत्मा को परिमार्जित करते हैं । अग्नि के इन तीन रूपों द्वारा वे अपनी आत्मा को उत्कृष्टतम और रमणीय बनाते हैं । तदनन्तर वे द्यावा-पृथिवी को सब ओर से देखते हैं ॥८ ॥

२६५६. शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९ ॥

हे द्यावा-पृथिवि !सैकड़ों धाराओं वाले, जल-प्रवाहों के समान अक्षय, वचनों के पालक, संघटक, प्रवाहक, सत्यवादी और माता-पिता रूप आपकी गोद में प्रसन्न होने वाले अग्निदेव को आप सम्यक् रूप से पूर्ण करें ॥९॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अग्नि, १ अग्नि अथवा ऋतुएँ । **छन्द** - गायत्री ।]

२६५७. प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥१ ॥

हे ऋतुओ ! अन्न, तेज और ऐश्वर्य की अभिलाषा से ऋत्विग्गण घृत से पूर्ण स्रुवा और हविष्यान्न से युक्त होकर देवों का यजन करते हैं । सुख की इच्छा करने वाले वे देवों को प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

२६५८. ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥२ ॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करने वाले, प्रज्ञावान्, वेगवान् और धनवान् अग्निदेव का स्तुति गान करते हुए हम उनका पूजन-सम्मान करते हैं ॥२ ॥

२६५९. अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥३ ॥

हे दीप्तिमान् अग्निदेव ! हम हविष्यात्र तैयार करके आपको अपने पास रख सकें अर्थात् यजन कर सकें और पापों से पार हो सकें ॥३ ॥

२६६०. समिध्यमानो अध्वरे३ग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥४ ॥

अग्निदेव यज्ञ में प्रज्वलित होकर केश रूप ज्वाला वाले, पवित्रकारक और स्तुत्य हैं, उनसे हम इष्ट फल की याचना करते हैं ॥४ ॥

२६६१. पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक्स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥

महान् तेजस्वी, अजर-अमर, घृतवत् तेजोमय, भली-भाँति जिनका आवाहन और पूजन किया गया है, ऐसे अग्निदेव, यज्ञ में समर्पित हवियों को धारण करने वाले हैं ॥५ ॥

२६६२. तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६ ॥

विघ्न-बाधाओं को दूर करके यज्ञ सम्पन्न करने वाले, यज्ञ के साधनों से युक्त ऋत्विजों ने अपनी रक्षा के लिए हव्यपूरित स्रुचा को आगे बढ़ाकर स्तुतियों के साथ अग्निदेव को समर्पित किया । इस प्रकार उन्हें अपने अनुकूल बनाया ॥६ ॥

२६६३. होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७ ॥

देवों का आवाहन करने वाले, अविनाशी, प्रकाशमान अग्निदेव, याजकों को सत्कर्म की प्रेरणा देते हुए शीघ्र ही प्रकट होते हैं ॥७ ॥

२६६४. वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८ ॥

संग्राम में बलशाली अग्निदेव को, शत्रु नाश करने के निमित्त स्थापित करते हैं । यह ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को सिद्ध करने वाले साधन रूप हैं ॥८ ॥

२६६५. धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९ ॥

वे अग्निदेव सब यज्ञ कर्मों में प्रकट होने के कारण श्रेष्ठ हैं और सब प्राणियों में संव्याप्त हैं । विश्व पालक अग्निदेव को वेदी स्वरूपिणी दक्ष-पुत्री यज्ञादि के निमित्त धारण करती हैं ॥९ ॥

२६६६. नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप घर्षण-बल (अरणि-मन्थन) से प्रकट होने वाले, श्रेष्ठ, तेजस्वी घृतादि हविष्यात्र की कामना करने वाले और वरण करने योग्य हैं । आपको वे दो रूपों वाली दक्ष पुत्री 'इला' धारण करती हैं ॥१० ॥

२६६७. अग्निं यन्तुरमप्तुरमृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥११ ॥

मेधावी साधकगण जगन्नियन्ता, जल-प्रेरक अग्निदेव को हविष्यात्र द्वारा सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥११ ॥

२६६८. ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥१२ ॥

बलों को धारण करने वाले, द्युलोक को प्रकाशित करने वाले अग्निदेव की हम इस यज्ञ में स्तुति करते हैं ॥१२ ॥

२६६९. ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥१३ ॥

स्तुत्य, प्रणम्य, अन्धकार नाशक, दर्शनीय और शक्तिशाली हे अग्निदेव ! आप आहुतियों द्वारा भली प्रकार प्रज्वलित संवर्धित किये जाते हैं ॥१३ ॥

२६७०. वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥१४ ॥

बलशाली अश्व जैसे राजा के वाहन को खींच कर ले जाते हैं, उसी प्रकार अग्निदेव देवताओं तक हवि पहुँचाते हैं । ऐसे अग्निदेव उत्तम प्रकार से प्रदीप्त हुए, यजमान की स्तुतियों को प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

२६७१. वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! घृतादि की हवि प्रदान करने वाले हम, शक्तिशाली, तेजस्वी और महान् आपको (अग्नि को) प्रदीप्त करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - २८]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि । छन्द - १- २, ६ गायत्री; ३ उष्णिक् ; ४ त्रिष्टुप्; ५ जगती ।]

२६७२. अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातः सावे धियावसो ॥१ ॥

हे ज्ञातवेदा अग्निदेव ! हमारी स्तुतियाँ आपके पास निवास करती हैं । आप प्रातः सवन में हमारे पास आकर पुरोडाश और हव्यादि का सेवन करें ॥१ ॥

२६७३. पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥२ ॥

हे अतिशय युवा अग्निदेव ! आपके लिए पुरोडाश पकाया गया है और उसे घृतादि द्वारा सुसंस्कृत किया गया है, आप उसे ग्रहण करें ॥२ ॥

२६७४. अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! सन्ध्या वेला में समर्पित किये गये पुरोडाश का आप सेवन करें । आप बल के पुत्र हैं और यज्ञ में सर्वहितकारी हैं ॥३ ॥

२६७५. माध्यन्दिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥४ ॥

मेधावी और सर्वभूत ज्ञाता हे अग्निदेव ! इस यज्ञ में माध्यन्दिन सवन के समय समर्पित पुरोडाश का आप सेवन करें । यज्ञ में धीर अध्वर्युगण आपके भाग को नष्ट नहीं करते ॥४ ॥

२६७६. अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अधा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥५ ॥

बल के पुत्र हे अग्निदेव ! तीसरे सवन में दिए गए पुरोडाश को आप स्वीकार करें । तदनन्तर अविनाशी, रत्नधारक, चैतन्यस्वरूप सोम को देवों के पास पहुँचाएँ ॥५ ॥

२६७७. अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥६ ॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! विवर्धमान आप दिन के अन्त में समर्पित पुरोडाश रूपी आहुतियों का सेवन करें ॥६ ॥

[सूक्त - २९]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - अग्नि; ५ अग्नि, अथवा ऋत्विज् । छन्द - त्रिष्टुप्; १, ४, १०, १२ अनुष्टुप्; ६, ११, १४, १५ जगती]

२६७८. अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् । एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१ ॥

सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाली यह अरणी, मंथन करने का साधन है । इसके द्वारा ही अग्निदेव प्रकट होते हैं । इस अरणी को ले आयें । पूर्व की तरह हम मन्थन करके अग्निदेव को प्रकट करें ॥१ ॥

२६७९. अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२ ॥

गर्भिणी के पेट में सुरक्षित गर्भ की तरह ये सर्वज्ञ अग्निदेव अरणियों में समाहित रहते हैं । यज्ञ के लिए जागरूक रहने वाले होताओं द्वारा नित्य ही वन्दनीय हैं ॥२ ॥

२६८०. उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३ ॥

हे प्रतिभा - सम्पन्न (अध्वर्यु) ! आप उत्तान (ऊर्ध्व मुख सीधी वेदिका अथवा पृथ्वी) को भरें (पूरित करें) । पूरित होकर यह शीघ्र ही अभीष्ट वर्षा में समर्थ (यज्ञीय प्रवाह) को उत्पन्न करे । इसका तेज प्रकाशित होता है । इस प्रकार उज्ज्वल प्रकाश से युक्त इला (पृथ्वी) का पुत्र उत्पन्न होता है ॥३ ॥

[इस ऋचा का अर्थ अरणियों से अग्नि की उत्पत्ति पर भी घटित होता है ।]

२६८१. इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥४ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! पृथ्वी के केन्द्रीय स्थल उत्तरवेदी के मध्य में हम आपको स्थापित करते हैं । हमारे द्वारा समर्पित हवियों को आप ग्रहण करें ॥४ ॥

२६८२. मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५ ॥

हे याजकगणो ! मेधावी, प्रपंचरहित, प्रकृष्ट ज्ञानवान्, अमर और सुन्दर शरीर वाले अग्निदेव को मंथन द्वारा उत्पन्न करें । समाज का नेतृत्व करने वाले हे याजको ! सर्वप्रथम यज्ञ के पताका रूप प्रथम पूज्य, उत्तम सुखकारी अग्निदेव को प्रकट करें ॥५ ॥

२६८३. यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६ ॥

जिस समय हाथों से अरणि-मंथन किया जाता है, उस समय शीघ्रगामी अश्व की भाँति गमनशील अग्निदेव काष्ठों पर अरुणिम वर्ण से विशेष प्रकाशमान होते हैं । अश्विनीकुमारों के शीघ्रगामी रथ की भाँति विशिष्ट शोभायमान होते हैं । वे अग्निदेव अबाध गति से तृणों को जलाते हुए, दहन-स्थान से आगे बढ़ते जाते हैं ॥६ ॥

२६८४. जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥७ ॥

उत्पन्न अग्निदेव ज्ञानवान्, वेगवान् और मेधावान् हैं, अतएव मेधावी जन उनकी प्रशंसा करते हैं । उत्तम कर्मफल प्रदायक वे अग्निदेव सर्वत्र शोभायमान होते हैं । देवों ने उन स्तुत्य और सर्वज्ञाता अग्निदेव को यज्ञ में हव्य-हवनकर्त्ता के रूप में स्थापित किया ॥७ ॥

२६८५. सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥८ ॥

हे होता रूप अग्निदेव ! सब कर्मो के ज्ञाता आप अपने प्रतिष्ठित स्थान को सुशोभित करें और श्रेष्ठ कर्मरूपी यज्ञ को सम्पन्न करें । देवों को तृप्त करने वाले हे अग्निदेव ! आप याजकों द्वारा प्रदत्त आहुतियों से देवताओं को आनन्दित करते हुए, याजकों को धन-धान्य एवं दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥८ ॥

२६८६. कृणोत धूमं वृषणं सखायोऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।

अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥९ ॥

हे मित्रो ! पहले आप धूम्र युक्त बलशाली अग्नि को उत्पन्न करें, फिर शक्तिशाली होकर युद्ध में आगे आएँ । ये (उत्पन्न) अग्निदेव श्रेष्ठवीर एवं शत्रु विजेता हैं, इन्हीं की सहायता से देवगणों ने असुरों को पराजित किया ॥९ ॥

२६८७. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।

तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥१० ॥

हे अग्निदेव !यह अरणि ही आपकी उत्पत्ति का हेतु है, जिसके द्वारा आप प्रकट होकर शोभायमान होते हैं ।उस अपने मूल को जानते हुए आप उस पर प्रतिष्ठित हों और हमारी स्तुतियों (वाणी की सामर्थ्य) को बढ़ायें ॥१०

२६८८. तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।

मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥११ ॥

गर्भ में विद्यमान अग्निदेव को 'तनूनपात्' कहते हैं । जब यह अत्यधिक बलशाली (प्रकट) होते हैं, तब 'नराशंस' कहे जाते हैं । जब अन्तरिक्ष में वे अपने तेज को विस्तारित करते हैं, तब 'मातरिश्वा' होते हैं । इनके शीघ्र गमन करने पर वायु की उत्पत्ति होती है ॥११ ॥

२६८९. सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।

अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२ ॥

मेधावान् हे अग्निदेव ! आप उत्तम मथनी द्वारा मंथन से उत्पन्न होते हैं । आपको सर्वोत्तम स्थान में स्थापित किया गया है । हमारे यज्ञ को आप भली-भाँति सम्पन्न करें और देवत्व की कामना करने वाले हम याजकों के लिए देवों का यजन करें ॥१२ ॥

२६९०. अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।

दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३ ॥

मर्त्य ऋत्विजों ने अमर, अक्षय, सुदृढ़ दाँतों वाले, पापों से मुक्ति प्रदान करने वाले अग्निदेव को उत्पन्न किया । पुत्र की उत्पत्ति से प्रसन्न होने की तरह अग्नि के उत्पन्न होने पर दसों अँगुलियाँ परस्पर मिलकर अतिशय प्रसन्न होकर, शब्दायमान होते हुए प्रसन्नता व्यक्त करती हैं ॥१३ ॥

२६९१. प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।

न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४ ॥

यह सनातन अग्निदेव सात होताओं द्वारा दीप्तिमान् होते हैं । जब ये माता पृथ्वी के अंक में जल-स्थान के समीप शोभायमान होते हैं, तो वे आकर्षक दिखाई देते हैं । वे प्रतिदिन निद्रा न लेकर भी सदैव चैतन्य होते हैं; क्योंकि वे अत्यन्त बलवान् गर्भ से उत्पन्न हुए हैं ॥१४ ॥

२६९२. अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।

द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५ ॥

मरुतों की सेना के समान शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले और ब्रह्मा के पुत्रों में अग्रज कुशिक वंशज ऋषिगण विश्व को जानते हैं । वे तेजस्वी हविष्यान्न सहित स्तोत्रों से अग्निदेव की स्तुति करते हैं । अपने-अपने घरों में उन्हें नित्य यज्ञार्थ प्रदीप्त करते हैं ॥१५ ॥

२६९३. यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।

ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१६ ॥

यज्ञादिक श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादक, सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आज के इस यज्ञ में हम आपका वरण करते हैं । आप यहीं यज्ञ में सुदृढ़तापूर्वक स्थापित हों और सर्वत्र शान्तिकारक हों । हे विद्वान् अग्निदेव ! सोम को अभिषुत हुआ जानकर, आप उसके समीप पहुँचकर उसे ग्रहण करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२६९४. इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।

तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमयाग करने वाले सखा रूप ऋत्विग्गण आपके स्तवन के अभिलाषी हैं । वे आपके लिए सोमरस छान कर तैयार करते हैं और हविष्यान्न धारण करते हैं । वे शत्रुओं के हिंसक प्रहार को सहन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप से अधिक प्रसिद्ध और कौन है ? ॥१ ॥

२६९५. न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।

स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२ ॥

तीव्र गतिशील अश्वों से युक्त हे इन्द्रदेव ! अत्यन्त दूरस्थ लोक भी आपके लिए दूर नहीं है; क्योंकि आपके अश्व सर्वत्र गमन करते हैं । आप स्थिर बल-युक्त और अभीष्ट वर्षक हैं, आपके लिए ही ये यज्ञादि कार्य सम्पादित किये गये हैं । यहाँ अग्नि के प्रदीप्त होने पर सोम अभिषवण हेतु पाषाण खण्ड प्रयुक्त होते हैं ॥२ ॥

२६९६. इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।

यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥३ ॥

हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आप धनवान्, उत्तम शिरस्त्राण वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, महान् व्रतों को धारण करने वाले, विविध कर्मों को सम्पन्न करने वाले और विकराल हैं । युद्धों में (असुरों आदि को) बाधित करने वाले आप मनुष्यों के लिए जो पराक्रम करते हैं, वह सामर्थ्य कहाँ है ? ॥३ ॥

२६९७. त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।

तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अकेले ही अत्यन्त सुदृढ़ शत्रुओं को उनके स्थान से च्युत किया है और वृत्रों को मारते हुए सर्वत्र विचरण किया है । सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी और दृढ़ पर्वत आपके संकल्प के लिए ही अविचल होकर अनुकूल होते हैं ॥४ ॥

२६९८. उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।

इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ॥५ ॥

पुरुहूत (अनेकों के द्वारा आवाहन किये जाने वाले) ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! बल से युक्त होकर आपने अकेले ही वृत्र का हनन करके, जो अभय वचन कहे, वे सत्य से परिपूर्ण हैं। आपने दूर होते हुए भी द्यावा और पृथिवी को संयोजित किया। आपकी यह महिमा विख्यात है ॥५ ॥

२६९९. प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।

जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हरितवर्ण वाले अश्वों से युक्त आपका रथ उत्तम मार्ग से आगे बढ़े। आपका वज्र शत्रुओं को मारते हुए आगे बढ़े। आप आगे से आने वाले, पीछे से आने वाले और दूर से आने वाले शत्रुओं का हनन करें। लोगों में वह सामर्थ्य भरें, जिससे विश्व सत्य कर्म में प्रवृत्त हो सके ॥६ ॥

२७००. यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः।

भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७ ॥

हे पुरुहूत इन्द्रदेव ! ऐश्वर्यधारक आप, जिस मनुष्य को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वह पहले अप्राप्त पशु, गृह आदि वैभव प्राप्त करता है। घृत, हव्यादि से प्रफुल्लित मन से, प्राप्त आपका अनुग्रह कल्याणकारी होता है। आपका दान विपुल ऐश्वर्य से परिपूर्ण हो ॥७ ॥

२७०१. सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम्।

अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८ ॥

हे पुरुहूत इन्द्रदेव ! आप दानशीलों को आश्रय देने वाले हैं। आपने घोर गर्जनशील वृत्र को हस्तहीन कर, छिन्न-विच्छिन्न कर दिया। हे इन्द्रदेव ! आपने विवर्द्धमान और हिंसक वृत्र को पादहीन करके बलपूर्वक मारा था ॥८ ॥

२७०२. नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ।

अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अत्यन्त व्यापक विस्तार वाली पृथ्वी को अन्नादि फलों और समभाव सम्पन्न करके उपयुक्त स्थान पर स्थापित किया है। हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आपने अन्तरिक्ष और द्युलोक को भी धारण किया है। आपके द्वारा निस्सृत जल-प्रवाह यहाँ भूमि पर बहें ॥९ ॥

२७०३. अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार।

सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य रश्मि समूह पर आधिपत्य रखने वाला, संग्रहशील, वल नामक असुर आपके वज्र से भयभीत होकर क्षत-विक्षत हुआ। तदनन्तर आपने जल-प्रवाहों के बहने के लिए मार्ग को सुगम कर दिया। स्तुत्य और बहुतों द्वारा आवाहन किये गये इन्द्रदेव से प्रेरित होकर शब्द करते हुए जल-प्रवाह बहने लगे ॥१० ॥

२७०४. एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्।

उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११ ॥

इन्द्रदेव ने अकेले ही पृथिवी और द्यावा को परस्पर संगत और धन संयुक्त करके पूर्ण किया है। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! उत्तम रथी आप वेगपूर्वक गमनशील अश्वों को रथ से जोड़कर, हमारे बीच उपस्थित होने की कृपा करें ॥११ ॥

२७०५. दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः।

सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२ ॥

सूर्य, इन्द्रदेव द्वारा प्रेरित और गमन के लिए निश्चित दिशाओं का ही अनुसरण करते हैं । वे जब अश्वों द्वारा गमन पथ पूरा कर लेते हैं, तभी अश्वों को मुक्त करते हैं । यह भी इन्द्रदेव के लिए ही करते हैं ॥१२॥

२७०६. **दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।**
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥

रात्रि को समाप्त करती हुई उषा के उदित होने पर, सभी मनुष्य उन महान् और विचित्र सूर्यदेव के तेज के दर्शन की इच्छा करते हैं । जब उषा आगमन करती है, तब लोग इन्द्रदेव के कल्याणकारी यज्ञादि महान् कर्मों को करना अपना कर्तव्य समझते हैं ॥१३॥

२७०७. **महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।**
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४॥

इन्द्रदेव ने जल-प्रवाहों में महान् तेज को स्थापित किया है । उन्होंने जल से अधिक स्वादिष्ट दूध, घृतादि भोजन के लिए गौओं में स्थापित किया है । नव प्रसूता गाय दूध धारण करती हुई विचरण करती है ॥१४॥

२७०८. **इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।**
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥

हे इन्द्रदेव !आप दृढ़ हों, क्योंकि शत्रुओं ने अवरोध उत्पन्न किया है । आप यज्ञ और स्तुति करने वाले मित्रों को वाञ्छित मार्ग में प्रेरित करें ।शस्त्रादि प्रहारक, कुमार्गगामी, बाणादि धारक शत्रु आपके द्वारा मारने योग्य हैं ॥१५॥

२७०९. **सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।**
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥१६॥

हे इन्द्रदेव ! समीपस्थ शत्रुओं द्वारा छोड़े गये आयुधों का शब्द सुनाई देता है । संताप देने वाले आयुधों द्वारा आप उन शत्रुओं को विनष्ट करें; उन्हें समूल नष्ट करें । राक्षसों को प्रताड़ित करें, पराभूत करें और उनका वध करके यज्ञ में प्रवृत्त हों ॥१६॥

२७१०. **उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।**
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७॥

हे इन्द्रदेव ! आप राक्षसों का समूल उच्छेदन करें । उनके मध्य भाग का छेदन करें । उनके अग्रभाग को नष्ट करें । लोभी राक्षसों को दूर करें । श्रेष्ठ ज्ञान-कर्म से द्वेष करने वालों पर भीषण अस्त्रों का प्रहार करें ॥१७॥

२७११. **स्वस्तये वाजिभिश्च प्रणेतः सं यन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।**
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥

हे जगत्-नियामक इन्द्रदेव ! हमें कल्याण के लिए अश्वों से युक्त करें । जब आप हमारे निकट हों, तब हम विपुल अन्न और प्रभूत धनों के स्वामी हों । हमें पुत्र-पौत्रादि से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति हो ॥१८॥

२७१२. **आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्रेरके ।**
ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें तेजस्विता-सम्पन्न ऐश्वर्य से अभिपूरित करें । आप दानशील हैं । हम आपके दान को धारण करने वाले हों । हमारी कामनाएँ बड़वानल के सदृश प्रवृद्ध हुई हैं । हे धनों में श्रेष्ठ धन के स्वामी इन्द्रदेव ! आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१९॥

२७१३. इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारी अभिलाषा को पूर्ण करें । हमें गौ, अश्व और हर्षप्रद ऐश्वर्य से सम्पन्न करें । स्वर्गादि सुख के अभिलाषी और बुद्धिमान् कुशिक वंशजों ने बुद्धिपूर्वक स्तोत्रों का सम्पादन किया है ॥२० ॥

२७१४. आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥२१ ॥

हे स्वर्ग के स्वामी इन्द्रदेव !आप मेघों को विदीर्ण कर हमें जल प्रदान करें ।हमें उपभोग योग्य अन्न प्रदान करें ।आप द्युलोक में व्याप्त होकर स्थित हैं । हे सत्यबल-सम्पन्न और ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! ज्ञान-प्रदाता आप हमें सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान करें ॥२१ ॥

२७१५. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२ ॥

धन-धान्य से सम्पन्न, वैभवशाली, युद्धों में उत्साहपूर्वक विजय प्राप्त करने वाले, भयंकर शत्रुसेना का विनाश करने वाले, याजकों द्वारा किये गये स्तुति गान का श्रवण करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आश्रय की कामना करते हुए आपका आवाहन करते हैं ॥२२ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - कुशिक ऐषीरथि अथवा विश्वामित्र गाथिन । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

२७१६. शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१ ॥

विद्वान् पुत्रहीन पिता (वह्नि) , सामर्थ्यवान् जामाता का सत्कार करते हुए अपनी पुत्री के पुत्र को, पुत्र रूप में अपना लेता है ।जब पिता अपनी पुत्री को विवाह योग्य बना देता है, तब मन अत्यन्त सुख का अनुभव करता है ॥१ ॥

२७१७. न जामये तान्वो रिक्थमारैक्चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२ ॥

भाई अपनी बहिन को पैतृक धन का भाग नहीं देता; अपितु उसको पति के लिए नव निर्माण करने में सक्षम बनाता है । माता-पिता पुत्र और पुत्री को उत्पन्न करते हैं, तो उनमें से एक (पुत्र) सर्वोत्कृष्ट पैतृक कर्म सम्पन्न करता है और अन्य (पुत्री) सम्मान युक्त शोभा को धारण करती है ॥२ ॥

२७१८. अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान्गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३ ॥

महान् तेजस्वी हे इन्द्रदेव ! आपके यज्ञ के लिए ज्वालाओं से कम्पायमान अग्निदेव ने अनेकों पुत्रों (रश्मियों) को उत्पन्न किया है । इन रश्मियों का महान् गर्भ जलरूप है । ओषधि रूपी उत्पत्ति भी महान् है । हे इन्द्रदेव (हरि-अश्व वाहक) ! आपके यज्ञ के कारण ये रश्मियाँ महानता की ओर प्रवृत्त हुई हैं ॥३ ॥

[उक्त तीन ऋचाओं में यज्ञ से प्रकृति पोषण चक्र का आलंकारिक वर्णन है । पिता वह्नि (अग्नि) अपनी पुत्रियाँ वनौषधियों के पुत्र (हव्य) को अपने पुत्र (ऊर्जा प्रवाह) के रूप में धारण कर लेते हैं । पुत्र (यज्ञीय ऊर्जा प्रवाह) पिता के पोषण देने वाले कर्म को करते हैं तथा पुष्ट हुई वनौषधियाँ सम्मान प्राप्त करती हैं । यह महान् चक्र यज्ञीय प्रक्रिया के अंतर्गत चलता रहता है ।]

२७१९. अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।

तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥४ ॥

शत्रुओं पर हमेशा विजय प्राप्त करने वाले मरुद्गण युद्धरत इन्द्रदेव के साथ जुड़ गये ।उन्होंने महान् ज्योति (सूर्य) को गहन तमिस्रा से मुक्त किया, उसे जानकर उषायें भी उदित हुईं । इन सभी क्रियाओं के एक मात्र अधिपति इन्द्रदेव ही हैं ॥४ ॥

२७२०. वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः ।

विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥५ ॥

बुद्धिमान् और मेधावी सात ऋषियों ने सुदृढ़ पर्वत (विशाल आकार) द्वारा रोकी गई गौओं (रश्मि पुञ्ज) को देखा । ऊर्ध्वगामी श्रेष्ठ चिन्तनरत निर्मल मन से उन्होंने यज्ञ के मार्ग का अनुगमन करते हुए, उस रश्मि पुञ्ज को प्राप्त किया । ऋषियों के इन समस्त कर्मों के द्रष्टा इन्द्रदेव स्तोत्रों के साथ यज्ञ में प्रविष्ट हुए ॥५ ॥

२७२१. विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।

अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥६ ॥

सरमा ने पर्वताकाय वृत्र (अन्धकार) के भग्न स्थल को जान लिया, तब इन्द्रदेव ने एक सीधा और विस्तृत पथ विनिर्मित किया । उत्तम पैरों वाली सरमा इन्द्रदेव को उस पथ पर आगे ले गई । पर्वत में असुर द्वारा छिपाई गई गौओं (प्रकाश किरणों) के शब्द को सर्वप्रथम सुनकर सरमा ने इन्द्रदेव के साथ उनको प्राप्त किया ॥६ ॥

२७२२. अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः ।

ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥७ ॥

श्रेष्ठतम ज्ञानी और उत्तम कर्मा इन्द्रदेव अंगिराओं की मित्रता की इच्छा से पर्वत के समीप पहुँचे । पर्वताकार असुर ने अपने गर्भ में छिपी गौओं (किरणों) को प्रकट किया । इन्द्रदेव ने मरुतों की सहायता से युद्ध करके शत्रुओं को मारते हुए गौओं (किरणों) को प्राप्त किया । तदनन्तर अंगिराओं ने इन्द्रदेव की शीघ्र ही अर्चना प्रारम्भ की ॥७ ॥

२७२३. सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।

प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८ ॥

शुष्णासुर का वध करने वाले, युद्धों में अग्रणी रहकर सेना का नेतृत्व करने वाले इन्द्रदेव, उत्पन्न होने वाले समस्त पदार्थों को जानते हुए उनका प्रतिनिधित्व करते हैं । ऐसे सन्मार्गगामी और गो द्रव्य अभिलाषी इन्द्रदेव मित्ररूप पूजनीय होकर द्युलोक से हम मित्रों को पाप से छुड़ायें ॥८ ॥

२७२४. नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।

इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥९ ॥

अंगिरावंशी ऋषिगण ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा करते हुए यज्ञ में प्रवृत्त हुए । उन्होंने यज्ञ में बैठकर स्तोत्रों से अमरता प्राप्त करने के लिए उपाय किया । यह यज्ञ उनका वह विस्तृत स्थान है, जिसके माध्यम से उन्होंने महीनों का विभाजन किया ॥९ ॥

[ऋषियों ने ज्योतिर्विज्ञान- अध्ययन सम्बन्धी शोध करके, यज्ञ के माध्यम से १२ राशियों को खोजकर उनके आधार पर मासों का वर्गीकरण किया ।]

२७२५. सम्पश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।

वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१० ॥

अंगिरा ऋषि अपनी गौओं को सम्मुख देखकर पूर्व की तरह उनसे वीर्यवर्द्धक दूध दुहते हुए हर्षित हुए थे । उनका हर्षयुक्त उद्घोष आकाश और पृथ्वी में व्याप्त हुआ । उन्होंने गौओं की उत्पत्ति को भी निष्ठापूर्वक धारण किया और गौओं की रक्षा के लिए वीर पुरुषों को नियुक्त किया ॥१० ॥

[ऋषियों ने गौओं- किरणों का अध्ययन किया । उनसे दिव्य प्रवाहों का लाभ पाने के सूत्र खोजे तथा उनकी रक्षा के लिए उपयुक्त पुरुषों को नियुक्त किया ।]

२७२६. स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।

उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११ ॥

इन्द्रदेव ने मरुतों की सहायता द्वारा वृत्र का वध किया । वे पूजनीय और हव्य योग्य हैं । उन्होंने जल-प्रवाह उत्पन्न किया । घृत-दुग्ध धारण-कर्त्री, अतिशय पूज्य और प्रशंसनीय गाय ने उन इन्द्रदेव के लिए मधुर और स्वादिष्ट दूध उपलब्ध कराया ॥११ ॥

२७२७. पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।

विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२ ॥

अंगिराओं ने सर्वपालक इन्द्रदेव के लिए महान् दीप्तिमान् स्थान को संस्कारित किया, वहाँ वे स्तुति करने लगे । उत्तम कर्मशील अंगिराओं ने यज्ञ में आसीन होकर सबको उत्पन्न करने वाली द्यावा-पृथिवी के मध्य स्तम्भ रूप अन्तरिक्ष को थामकर वेगवान् इन्द्रदेव को द्युलोक में संस्थापित किया ॥१२ ॥

२७२८. मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं१ रोदस्योः ।

गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३ ॥

सबके हितों को धारण करने वाले, सतत वृद्धि करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान किया गया । इससे द्यावा-पृथिवी की समस्त शक्तियों पर उनका एकाधिकार हो गया ॥१३ ॥

२७२९. मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।

महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४ ॥

वृत्र नामक असुर का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आपकी मित्रता और महती शक्ति पाने के लिए आपसे प्रार्थना करते हैं । अनेक अश्व आपको वहन करने के लिए आते हैं । हम स्तोतागण आपके निमित स्तोत्र पहुँचाते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप ज्ञान-रक्षक हैं । हमें दिव्य ज्ञान से प्रेरित करें ॥१४ ॥

२७३०. महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।

इन्द्रो नृभिरजनद्दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५ ॥

सर्वविद् इन्द्रदेव ने अपने मित्रों के लिए महान् क्षेत्र और विपुल तेजस्वी धनों का दान किया । तदनन्तर उत्तम गौओं का भी दान किया । उन दीप्तिमान् इन्द्र देव ने मरुतों के साथ सूर्य, उषा एवं अग्नि को और उनके मार्ग को बनाया ॥१५ ॥

२७३१. अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।

मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६ ॥

शत्रुदमनशील इन्द्रदेव ने परस्पर संगठित होकर बहने वाले एवं सबको आनन्दित करने वाले जल को उत्पन्न किया । वे अन्न उत्पादक जल प्रवाह, अग्नि, सूर्य एवं वायु के द्वारा शोधित-पवित्र होकर मधुर सोमरसों को दिन-रात प्रेरित करते रहते हैं ॥१६ ॥

२७३२. अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सूर्यशक्ति के द्वारा अपार वैभव से सम्पन्न महिमामण्डित दिन और रात्रि एक दूसरे का अनुगमन करते हुए निरन्तर गतिशील हैं, उसी प्रकार सुगम मार्गों से निरन्तर प्रवाहित होने वाले मित्र और मरुद्देव शत्रुओं का विनाश करने का सम्पूर्ण बल आपसे ही प्राप्त करते हैं ॥१७ ॥

२७३३. पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ॥१८ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप अविनाशी, अभीष्टवर्षक और अन्न-प्रदाता हैं । हमारे द्वारा प्रेमपूर्वक की गई स्तुतियों को स्वीकार करें । आप यज्ञ में जाने के अभिलाषी और महान् हैं । अपनी महती और कल्याणकारी रक्षण-सामर्थ्यों से युक्त होकर मैत्री भाव सहित हम सब पर अनुग्रह करें ॥१८ ॥

२७३४. तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥१९ ॥

पुरातन दिव्यपुरुष हे इन्द्रदेव ! हम नमन-अभिवादन सहित आपकी पूजा करते हैं । आपके निमित्त हम नवीन स्तोत्रों को सम्पादित करते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! दैवीय गुणरहित द्रोहियों को हमसे दूर करें और हमारे उपयोग के लिए धनादि प्रदान करें ॥१९ ॥

२७३५. मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! पवित्र वर्षणशील (सिंचनकारी) जल चारों ओर फैला है । हमारे कल्याण के लिए जलाशयों के किनारों को जल से पूर्ण करें । तीव्रगामी रथ से युक्त हे देव ! हमें शत्रुओं से संघर्ष करने की सामर्थ्य तथा गौओं के रूप में अपार वैभव प्रदान करें ॥२० ॥

२७३६. अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१ ॥

वृत्रहन्ता और दिव्य शक्तियों के संगठक स्वामी इन्द्रदेव, हमें सर्वोत्तम ज्ञान से अभिपूरित करें । वे हमारे आन्तरिक शत्रुओं को अपने तेजस्वी पराक्रम द्वारा विनष्ट कर दें । यज्ञ में हमारी प्रीतिकर स्तुतियों को स्वीकार करते हुए वे हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों को दूर करें ॥२१ ॥

२७३७. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२ ॥

धन-धान्य से सम्पन्न ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! आप हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर युद्धों में अपना पराक्रम दिखाते हैं और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥२२ ॥

[सूक्त - ३२]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२७३८. इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१ ॥

सोम के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आप इस मध्य- दिवस के सवन पर समर्पित सोमरस का पान करें । ऐश्वर्यवान् और सोमाभिलाषी हे इन्द्रदेव ! आप अपने दोनों अश्वों को यहाँ खोलकर उनके मुख को (आहार से) परिपूर्ण करके उन्हें तृप्त करें ॥१ ॥

२७३९. गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भली प्रकार मथकर दुग्धादि मिश्रित तेजस्वी सोमरस का पान करें । हम आपके हर्ष के लिए सोम प्रदान करते हैं । स्तोता मरुद्‌गणों और रुद्रों के साथ संयुक्त होकर आप सोम से तृप्त हों तथा हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥२ ॥

२७४०. ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके शत्रुनाशक बल को, सैन्यबल को, पराक्रम तथा सामर्थ्य को ये मरुद्‌गण उत्तम स्तुतियों द्वारा बढ़ाते हैं । वज्रवत् हाथों वाले, शिरस्त्राण युक्त हे इन्द्रदेव ! उन रुद्रपुत्र मरुतों के साथ आप माध्यन्दिन सवन में सोम पान करें ॥३ ॥

२७४१. त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदाममर्णो मन्यमानस्य मर्म ॥४ ॥

इन्द्रदेव के सैन्यबल को बढ़ाने वाले मरुद्‌गणों ने उनको मधुर वचनों से प्रेरित किया । मरुद्‌गणों से प्रेरित होकर इन्द्रदेव ने मर्म न जान सकने वाले एवं अपने को महान् समझने वाले वृत्र के मर्म को जान लिया और उसका वध किया ॥४ ॥

[महत्वाकांक्षी व्यक्ति वास्तविकता से अनभिज्ञ स्वयं को सर्वोपरि मानने लगता है, यही उसके विनाश का कारण बनता है

२७४२. मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मनु के यज्ञ के समान हमारे यज्ञ का सेवन करते हुए शाश्वत बल प्राप्ति के लिए सोमपान करें । हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! यजनीय और गतिवान् मरुतों के साथ आप हमारे यज्ञ में आएँ तथा हमारे कल्याण के लिए जल वर्षा करें ॥५ ॥

२७४३. त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अन्तरिक्ष में विद्यमान जल को रोककर बैठे हुए तेजहीन, शयन करते हुए वृत्र को वेगवान् वज्र के प्रहार से मार दिया । उसके द्वारा रोकी गई जल- राशि को अश्वों की भाँति मुक्त करा दिया ॥६ ॥

२७४४. यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।

यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७ ॥

यज्ञों में समर्पित हव्यरूपी आहार पाकर प्रवृद्ध होने वाले महान् , अतिश्रेष्ठ, अजर, सर्वदा तरुण रहने वाले इन्द्रदेव की हम विधिवत् पूजा करते हैं । उन यजन योग्य इन्द्रदेव की महिमा को द्यावा-पृथिवी भी माप नहीं सकते ॥७ ॥

२७४५. इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।

दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥८ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को धारण करने वाले, उषा एवं सूर्यदेव को उत्पन्न करने वाले महान् पराक्रमी इन्द्रदेव के श्रेष्ठ कार्यों और व्रतों को समस्त देवशक्तियाँ मिलकर भी रोक नहीं सकतीं ॥८ ॥

२७४६. अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।

न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९ ॥

हे द्रोहरहित इन्द्रदेव !आपकी महिमा ही वास्तविक है, क्योंकि आप प्रकट होकर ही सोमपान करते हैं । आप अत्यन्त बलशाली हैं ।स्वर्ग आदि लोक तथा दिवस, मास और वर्ष भी आपके तेजका सामना नहीं कर सकते ॥९ ॥

२७४७. त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।

यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उत्पन्न होकर शीघ्र ही परम आकाश में रहकर हर्ष प्राप्ति के लिए सोमपान किया । जब आपने पृथ्वी और द्युलोक में व्यापक रूप से विस्तार कर लिया,तब सभी याजकों की मनोकामनाओं को पूर्ण किया॥१० ॥

२७४८. अहन्नहिं परिशयानमर्ण ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।

न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥११ ॥

महान् पराक्रमी हे इन्द्रदेव ! आप विभिन्न लोकों के समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाले हैं । आपने जल को घेरकर शयन करने वाले अहि नामक असुर को मारा । जब आपने जल से पृथ्वी को अभिषिक्त करके सँभाला, उस समय आपकी महिमा की समानता द्युलोक सहित अन्य कोई भी नहीं कर सका ॥११ ॥

२७४९. यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।

यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारा यज्ञ आपको प्रवर्धित करता है । यज्ञादि कार्य में अभिषुत किया हुआ सोम आपको अतिशय प्रिय है । यजन-योग्य आप हमारे यज्ञ में आकर उसको संरक्षित करें ॥१२ ॥

२७५०. यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।

यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३ ॥

जो इन्द्रदेव अति पुरातन, मध्यकालीन और नूतन स्तोत्रों से प्रवृद्ध हुए हैं, उनको स्तोतागण संरक्षण प्राप्ति के लिए यज्ञ के समीप ले आएँ । हम भी नवीनतम साधन एवं सुख प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव का आवाहन करें ॥१३ ॥

२७५१. विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।

अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४ ॥

जब हमारे मन में इन्द्रदेव की स्तुति करने की इच्छा उत्पन्न होती है, उसी समय हम स्तुति करते हैं । हम

दूरवर्ती (भावी) अमंगलकारी दिन के पहले ही स्तुति करते हैं, जिससे वे इन्द्रदेव हमें दुःखों से मुक्ति दिलाएँ । जैसे नाव वाले को दोनों तटों के लोग बुलाते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव को हमारे मातृ-पितृ दोनों पक्षों के लोग बुलाते हैं ॥१४॥

२७५२. आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।

समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५ ॥

यह सोमरस से परिपूर्ण कलश इन्द्रदेव के पीने के लिए है । जैसे सिंचनकर्ता क्षेत्र को सिंचित करते हैं, वैसे ही हम इन्द्रदेव को स्वाहाकार सहित सोमरस से सींचते हैं । प्रिय सोम इन्द्रदेव के मन को प्रमुदित करने के लिए प्रदक्षिणा करता हुआ उनके समीप पहुँचे ॥१५ ॥

२७५३. न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।

इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६ ॥

बहुतों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! मित्रों द्वारा प्रेरित होकर आपने रश्मि समूह को छिपाने वाले सुदृढ़ मेघों को फोड़ा । गम्भीर समुद्र और चारों ओर विस्तृत पर्वत भी आपको नहीं रोक सके ॥१६ ॥

२७५४. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।

शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१७ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव को बुलाते हैं । वे पवित्र करने वाले सभी मनुष्यों के नियन्ता, हमारी स्तुतियों को सुनने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले, धनों के विजेता और ऐश्वर्यवान् हैं ॥१७ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन; ४,६,८,१० नदियाँ (ऋषिका) । **देवता-** नदियाँ; ४,८,१० विश्वामित्र; ६,७ इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्; १३ अनुष्टुप् । **]**

२७५५. प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने ।

गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१ ॥

बन्धन से विमुक्त होकर हर्षयुक्त नाद करते हुए दो घोड़ियों की भाँति अथवा अपने बछड़ों से सस्नेह- मिलन के लिए उतावली, दो गायों की भाँति विपाट् (व्यास) और शुतुद्रि (सतलज) नाम की नदियाँ पर्वत की गोद से निकलकर समुद्र से मिलने की अभिलाषा के साथ प्रबल वेग से प्रवाहित हो रही हैं ॥१ ॥

२७५६. इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।

समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२ ॥

हे नदियो ! आप दोनों इन्द्र द्वारा प्रेरित होकर सम्यक् रूप से अनुकूलतापूर्वक प्रवहमान हों । हे उज्ज्वला ! अपनी तरंगों से सबको तृप्त करती हुई आप दोनों धान्य उत्पत्ति में समर्थ हों । दो रथियों के समान समुद्र की ओर गमन करें ॥२ ॥

२७५७. अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।

वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३ ॥

ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि हम स्नेह-सिक्त मातृ-तुल्य शुतुद्रि (सतलज) नदी के पास गये और विपुल

ऐश्वर्य-राशि से सम्पन्न विपाशा नदी के पास गये । बछड़े के प्रति स्नेहाभिलाषिणी गौओं के समान ये नदियाँ एक ही लक्ष्य-स्थान समुद्र की ओर सतत बहती हुई जा रही हैं ॥३ ॥

२७५८. एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४ ॥

हम नदियाँ अपने जल-प्रवाह से सबको तृप्त करती हुई देवों द्वारा स्थापित स्थान की ओर बहती हुई जा रही हैं । अनवरत प्रवहमान हम अपने प्रयास से कभी भी विश्राम नहीं लेती हैं (यह तो हमारा सहज सामान्य क्रम है), फिर ब्राह्मण विश्वामित्र द्वारा हमारी स्तुति क्यों की जा रही है ? ॥४ ॥

२७५९. रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५ ॥

हे जलवती नदियो ! आप हमारे नम्र और मधुर वचनों को सुनकर अपनी गति को एक क्षण के लिए विराम दे दें । हम कुशिक पुत्र अपनी रक्षा के लिए महती स्तुतियों द्वारा आप नदियों का भली प्रकार सम्मान करते हैं ॥५ ॥

२७६०. इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६ ॥

(नदियों की वाणी) हे विश्वामित्र ! वज्रधारी इन्द्रदेव ने हमें खोदकर उत्पन्न किया । नदियों के प्रवाह को रोकने वाले वृत्र को उन्होंने मारा । सबके प्रेरक, उत्तम हाथों वाले और दीप्तिमान् इन्द्रदेव ने हमें बढ़ने के लिए प्रेरित किया । उनकी आज्ञा के अनुसार ही हम जल से परिपूर्ण होकर गमन करती हैं ॥६ ॥

२७६१. प्रवाच्यं शश्वधा वीर्य१न्तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७ ॥

इन्द्रदेव ने अहि नामक असुर को मारा; उनके वे पराक्रम और कर्म सर्वदा वर्णनीय हैं । जब इन्द्रदेव ने अपने चारों ओर स्थित असुरों को मारा, तब जल-प्रवाह समुद्र से मिलने की इच्छा करते हुए प्रवाहित हुआ ॥७ ॥

२७६२. एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८ ॥

हे स्तोता (विश्वामित्र) ! अपने ये स्तुति-वचन कभी भूलना नहीं । भावी समय में यज्ञों में इन वचनों की उद्घोषणा द्वारा आप हमारी सेवा करें । हम (दोनों नदियाँ) आपको नमस्कार करती हैं । पुरुषों द्वारा सम्पादित कर्मों में कभी भी हमारी उपेक्षा न करें ॥८ ॥

२७६३. ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९ ॥

हे भगिनी रूप (दोनों) नदियो ! हमारी स्तुति भलीप्रकार सुनें । हम आपके पास अति दूरस्थ देश से रथ और शकट को लेकर आये हैं । आप अपने प्रवाहों के साथ इतनी झुक जायें कि रथ की धुरी से नीचे हो जाये, जिससे हम सरलता से पार हो जायें ॥९ ॥

२७६४. आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥१० ॥

हे स्तोता ! हम (दोनों नदियाँ) आपकी स्तुतियाँ सुनती हैं (आप दूरस्थ देश से रथ और शकट के साथ आए

है); इसलिए जैसे माता पुत्र को स्तन-पान कराने के लिए अवनत होती है अथवा धर्म पत्नी अपने पति के प्रति नम्र होती है, वैसे ही हम आपके लिए अवनत होती हैं (अपने प्रवाह को कम करके आपको जाने का मार्ग प्रदान करती हैं) ॥१०॥

२७६५. यदङ्ग त्वा भरताः सन्तरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥११॥

हे (दोनों) नदियो ! जब पोषणकर्त्ता पुरुष आपको पार करना चाहें; तब आपको पार करने के अभिलाषी वे जन-समूह इन्द्रदेव द्वारा प्रेरित होकर आपकी अनुकम्पा से पार हो जायें । आप यजन योग्य हैं । हम प्रतिदिन आपके वेगवान् जल-प्रवाहों की उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥११॥

२७६६. अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

हे नदियो ! भरण-पोषण को लक्ष्य करके आपके पार जाने के अभिलाषीजन पार हो गए । ज्ञानीजनों ने आपके निमित्त उत्तम स्तुतियों को अभिव्यक्त किया । आप अन्नों की प्रदात्री और उत्तम ऐश्वर्यवती होकर नहरों को जल से परिपूर्ण करें और शीघ्र गमन करें ॥१२॥

[विश्वामित्र आदि ऋषिगण व्यास आदि नदियों को पार करके देवसंस्कृति का संदेश लेकर अफगानिस्तान-ईरान आदि देशों की ओर गये थे; इन ऋचाओं से यह प्रमाणित होता है ।]

२७६७. उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥

हे नदियो ! आपकी तरंगें रथ की धुरी से टकराती रहें । हे दुष्कर्महीना, पापरहिता, अनिन्दनीया नदियो ! आपको कोई बाधा न हो ॥१३॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि**- विश्वामित्र गाथिन । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

२७६८. इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

शत्रुओं के गढ़ को ध्वस्त करने वाले महिमावान्, धनवान् इन्द्रदेव ने शत्रुओं को मारते हुए अपनी तेजस्विता से उन्हें भस्म कर दिया । स्तुतियों से प्रेरित और शरीर से वर्द्धित होते हुए विविध अस्त्र-धारक इन्द्रदेव ने द्यावा और पृथिवी दोनों को पूर्ण किया ॥१॥

२७६९. मखस्य ते तविषस्य प्र जूतिमियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूजनीय और बलशाली हैं । आपको विभूषित करते हुए हम अमरत्व-प्राप्ति के लिए प्रेरक स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । आप हम मनुष्यों और देवों के अग्रगामी हों ॥२॥

२७७०. इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥३॥

प्रसिद्ध नीतिज्ञ इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को रोका। कार्यकुशल इन्द्रदेव ने शत्रुवध की इच्छा करके मायावी असुरों को मारा। उन्होंने वन में छिपे स्कन्धविहीन असुर को नष्ट करके अन्धकार में छिपायी गयी गौओं (किरणों) को प्रकट किया ॥३॥

२७७१. **इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः।**
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥

स्वर्ग-सुख-प्रेरक इन्द्रदेव ने दिनों को उत्पन्न करके युद्धाभिलाषी मरुतों के साथ शत्रु सेना का पराभव कर उन्हें जीता। तदनन्तर मनुष्यों के लिए दिनों के प्रज्ञापक (बोधक) सूर्यदेव को प्रकाशित किया। उन्होंने महान् युद्धों में विजय प्राप्ति के निमित्त दिव्य ज्योति (तेजस्विता) को प्राप्त किया ॥४॥

२७७२. **इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि।**
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥

विपुल सामर्थ्यों को धारण करके नेतृत्व-कर्ता की भाँति इन्द्रदेव ने अवरोधक शत्रु-सेना के मध्य प्रविष्ट होकर उसे छिन्न-भिन्न किया। उन्होंने स्तुतिकर्त्ताओं के लिए उषा को चैतन्य किया और उनके शुभ्र वर्ण की दीप्ति को वर्द्धित किया ॥५॥

२७७३. **महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि।**
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

स्तोतागण महान् पराक्रमी इन्द्रदेव के श्रेष्ठ कर्मों का गुणगान करते हैं। वे इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्यों से शत्रुओं के पराभव-कर्त्ता हैं। उन्होंने अपने बल से युक्त माया द्वारा बलवान् दस्युओं को पूरी तरह से नष्ट किया ॥६॥

२७७४. **युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः।**
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

देव वृत्तियों के संगठक, अधिपति और मनुष्यों को शक्ति प्रदान करके उनकी इच्छापूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ने अपनी महत्ता से युद्धों में शत्रुओं को परास्त किया। उनका धन प्राप्त करके स्तोताओं को प्रदान किया। बुद्धिमान् स्तोतागण यजमान के घर में इन्द्रदेव के उन श्रेष्ठ कर्मों की चर्चा एवं प्रशंसा करते हैं ॥७॥

२७७५. **सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः।**
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

स्तोताजन शत्रु-विजेता, वरणीय, बल-प्रदाता, स्वर्ग-सुख और दीप्तिमान् जल के अधिपति इन्द्रदेव की उत्तम स्तुतियों से वन्दना करते हैं, उन्होंने इस द्युलोक और पृथ्वी लोक को अपने ऐश्वर्यों के बल पर धारण किया ॥८॥

२७७६. **ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्।**
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥

इन्द्रदेव ने अत्यों (लाँघ जाने वाले- अश्वों) का दान किया। सूर्य एवं पर्याप्त भोजन प्रदान करनेवाली गौओं (किरणों) का दान किया। स्वर्णिम अलंकारों एवं भोग्य पदार्थों का दान किया। दस्युओं (दुष्टों) को मारकर आर्यों (सज्जनों) की रक्षा की ॥९॥

२७७७. **इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम्।**
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥

इन्द्रदेव ने प्राणियों के कल्याण के लिए ओषधियाँ प्रदान की हैं, दिन (प्रकाश) का अनुदान दिया है। वनस्पतियों और अन्तरिक्ष को प्रदान किया है। उन्होंने बलासुर का विभेदन किया, प्रतिवादियों को दूर किया और युद्ध के अभिमुख हुए शत्रुओं का दमन किया है ॥१०॥

२७७८. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव पवित्र-कर्त्ता, मनुष्यों के नियन्ता, स्तुतियों को श्रवण करने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले, धन-विजेता और ऐश्वर्यवान् हैं ॥११॥

[सूक्त - ३५]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२७७९. तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! हरि नामक अश्व जिस रथ में नियोजित होते हैं; नियुत नामक अश्वों वाले वायु के समान आप उस रथ में बैठकर हमारी ओर आयें। हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न रूपी सोमरस का पान करें। हम आपके मन को प्रमुदित करने के लिए स्वाहा सहित सोमरस प्रदान करते हैं ॥१॥

२७८०. उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि।
द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥२॥

अनेक-जनों द्वारा जिनका आवाहन किया जाता है, ऐसे इन्द्रदेव के शीघ्रतापूर्वक आगमन के लिए वेगवान् दो अश्वों को रथ के अग्रभाग से संयोजित करते हैं। वे अश्व इन्द्रदेव को सब ओर से इस सर्वसाधन-सम्पन्न देवयज्ञ में अविलम्ब ले आयें ॥२॥

२७८१. उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥

हे इष्टवर्षक और अन्नवान् इन्द्रदेव ! आप बलवान् और शत्रुओं से रक्षा करने वाले अश्वों को समीप ले आयें तथा इस यजमान की रक्षा करें। अपने रक्त-वर्ण अश्वों को यहाँ विमुक्त करें; ताकि वे आहार ग्रहण कर सकें। आप प्रतिदिन उत्तम हविष्यान्न ग्रहण करें ॥३॥

२७८२. ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! मन्त्रों से नियोजित होने वाले, युद्धों में कीर्ति सम्पन्न, मित्र-भाव सम्पन्न हरि नामक दोनों अश्वों को हम मन्त्रों से योजित करते हैं। हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ और सुखकारी रथ में अधिष्ठित होकर आप सोमयाग के समीप आयें। आप सब यज्ञों को जानने वाले विद्वान् हैं ॥४॥

२७८३. मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपके बलवान् और सुन्दर पृष्ठभाग वाले हरि नामक अश्वों को अन्य यजमान संतुष्ट करें । हम अभिषुत सोमरस द्वारा आपको भलीप्रकार तृप्त करते हैं । आप अनेक यजमानों को छोड़कर हमारे पास आयें ॥५ ॥

२७८४. तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके निमित्त है । आप हमारी ओर अभिमुख हों तथा प्रफुल्लित मन से इस सोम का पान करें । हमारे इस यज्ञ में कुशों पर बैठकर इस सोम को अपने उदर में धारण करें ॥६ ॥

२७८५. स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त कुश का आसन बिछाया गया और सोमरस निचोड़ कर तैयार किया गया है । आपके दोनों अश्वों के खाने के लिए धान्य तैयार है । यह यज्ञ आपका निवास स्थान है । आप बहुत सामर्थ्यवान्, इष्टवर्षक और मरुतों की सेना से युक्त हैं । आपके निमित्त ये हवियाँ दी गई हैं ॥७ ॥

२७८६. इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन्विद्वान्पथ्या३ अनु स्वाः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त ऋत्विग्गणों ने पाषाण से निष्पन्न, जलसंयुक्त सोमरस तैयार किया है । दुग्ध-मिश्रित करके उसे अतिशय मधुर बनाया है । हे सर्व-द्रष्टा और विद्वान् इन्द्रदेव ! आप हमारी स्तुतियों को जानते हुए उत्तम मन से इसका पान करें ॥८ ॥

२७८७. याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन्गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव !जिन मरुतों को आप सोमयाग में सम्मानित करते हैं, जो आपको प्रवर्धित करते हैं, जो आपके सहायक होते हैं , उन सबके साथ सोम की अभिलाषा करते हुए आप अग्नि रूप जिह्वा से इस सोम का पान करें ॥९ ॥

२७८८. इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१० ॥

हे यजनीय इन्द्रदेव ! अपने पराक्रम से अभिषुत सोम का पान करें अथवा अग्नि रूप जिह्वा से सोम का पान करें । अध्वर्यु के हाथ से प्रदत्त सोम का पान करें अथवा होता के हव्यादि युक्त यज्ञ का सेवन करें ॥१० ॥

२७८९. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ।वे पवित्र कर्त्ता, मनुष्यों के नियन्ता, स्तुतियों के श्रवणकर्त्ता, उग्र, शत्रुओं का हनन करने वाले तथा धन-सम्पदाओं को जीतने वाले हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ३६]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन , १० घोर आङ्गिरस । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२७९०. इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सर्वदा संरक्षण-सामर्थ्यों से युक्त रहने वाले आप हमारे द्वारा की गई उत्तम स्तुतियों को सुनें तथा हविष्यान्न के रूप में समर्पित सोम को ग्रहण करें । आप महान् कर्मों से प्रसिद्ध हुए हैं । आप प्रत्येक सोम-सवन में पुष्टिकारक हव्यादि द्वारा प्रवर्धित होते हैं ॥१ ॥

२७९१. इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२ ॥

हम द्युलोक से इन्द्रदेव के लिए सोम प्राप्त करते हैं, जिसे पीकर इन्द्रदेव बलवान् , सुदृढ़, महान् और दीप्तिमान् होते हैं । हे इन्द्रदेव ! शत्रुओं को भयभीत करने वाले आप बल प्रदायक और पाषाणों द्वारा भलीप्रकार अभिषुत इस सोम का पान करें ॥२ ॥

२७९२. पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्यॉं इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोम-पान करके वर्द्धित हों । आपके निमित्त ये प्राचीन और नवीन सोम अभिषुत हुए हैं । हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! जैसे आपने पूर्वकाल में सोमपान किया, वैसे ही आज इस नवीन सोम का पान करें ॥३ ॥

२७९३. महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु१ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४ ॥

ये महान् इन्द्रदेव, शत्रुओं को परास्त करने वाले और अतिशय बलवान् हैं ।इनका उग्र बल और ओज सर्वत्र विस्तृत होता है ।जब वे सोम पीकर तृप्त होते हैं, तब पृथ्वी और द्युलोक भी उन्हें सँभालने में समर्थ नहीं होते ॥४ ॥

२७९४. महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५ ॥

ये महान् बल और पराक्रमशाली इन्द्रदेव शौर्य युक्त श्रेष्ठ कार्यों के लिए प्रसिद्ध हुए हैं । अभीष्ट प्रदान करने वाले और ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव की उत्तम स्तुतियों से प्रार्थना करते हैं । इनकी दिव्य रश्मियाँ पोषण प्रदान करने वाली हैं, इनके दान आदि कर्म भी बहुत प्रसिद्ध हैं ॥५ ॥

२७९५. प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६ ॥

जिस प्रकार समस्त नदियाँ कामनापूर्वक सुदूर समुद्र में जाकर मिलती हैं, उनका जल रथ के समान समुद्र की ओर गमन करता है । उसी प्रकार दुग्ध-मिश्रित अल्प सोमरस महान् इन्द्रदेव को परिपूर्ण करता है, जिससे तृप्त होकर इन्द्रदेव स्वर्ग से भी अधिक श्रेष्ठ और महान् हो जाते हैं ॥६ ॥

२७९६. समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७ ॥

समुद्र से मिलने की अभिलाषा वाली नदियाँ जैसे समुद्र को परिपूर्ण करती हैं, वैसे ही अध्वर्युगण पाषाणयुक्त हाथों से इन्द्रदेव के लिए अभिषुत करके सोम तैयार करते हैं । अपनी भुजाओं से वे सोमलता का दोहन करते हैं और छन्ने द्वारा एक धारा से सोम छानते हैं ॥७ ॥

२७९७. ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८ ॥

इन्द्रदेव का उदर सरोवर की भाँति विस्तार वाला है।इन्हें अनेकों सोम-सवन पूर्ण करते हैं।इन्द्रदेव ने सर्वप्रथम सोम रस रूप हविष्यान्न का भक्षण किया, तदनन्तर वृत्र को मारकरअन्य देवों के लिए सोम ग्रहण किया॥८॥

२७९८. आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम्।
इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! हमें शीघ्र ही अपार धन-वैभव प्रदान करें। आपको धन-दान से कौन रोक सकता है ? आपको हम श्रेष्ठ धनाधिपति के रूप में जानते हैं। हे हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी इन्द्रदेव ! आपके पास जो भी हमारे लिए उपयोगी धन हो; वह हमें प्रदान करें ॥९॥

२७९९. अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप उदारचेता हैं। आप सबके द्वारा वरणीय प्रभूत धन-ऐश्वर्य हमें प्रदान करें। हे उत्तम शिरस्त्राण वाले इन्द्रदेव ! हमें जीने के लिए सौ वर्ष की आयु प्रदान करें तथा बहुत से वीर पुत्र प्रदान करें ॥१०॥

२८००. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव, पवित्रता प्रदान करने वाले, मनुष्यों के नियन्ता, हमारी स्तुतियों को सुनने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥११॥

[सूक्त - ३७]

। **ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** - गायत्री; ११ अनुष्टुप्।।

२८०१. वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च। इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र नामक असुर का हनन करने के लिए तथा शत्रु सेना को पराजित करने की शक्ति-प्राप्ति के लिए हम आपसे निवेदन करते हैं ॥१॥

२८०२. अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो। इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥

सैकड़ों अश्वमेधादिक यज्ञ सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण स्तुति करते हुए आपकी प्रसन्नता, अनुग्रह और कृपा-दृष्टि को हमारी ओर प्रेरित करें ॥२॥

२८०३. नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥३॥

अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने वाले हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्ध में हम सम्पूर्ण स्तुति-सूक्तों द्वारा आपके यश एवं वैभव का बखान करते हैं ॥३॥

२८०४. पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि। इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥४॥

बहुतों द्वारा स्तुत्य, महान् तेजस्वी, मनुष्यों को धारण करने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४॥

२८०५. इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे। भरेषु वाजसातये ॥५॥

बहुतों द्वारा जिनका आवाहन किया जाता है, उन वृत्र-हन्ता इन्द्रदेव को हम भरण-पोषण के लिए बुलाते हैं ॥५॥

२८०६. वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो। इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥६ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं। वृत्र का हनन करने के लिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

२८०७. द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च। इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥७ ॥

हमारे अभिमानी शत्रुओं का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! युद्धों में तेजस्वी धन-प्राप्ति के लिए आप सभी बलवान् शत्रुओं को पराजित करें ॥७ ॥

२८०८. शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥८ ॥

हे शतकर्मा - इन्द्रदेव ! हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए आप अत्यन्त बल-प्रदायक, दीप्तिमान्, चेतनता लाने वाले सोमरस का पान करें ॥८ ॥

२८०९. इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! पाँच जनों (समाज के पाँचों वर्गों) में जो इन्द्रियाँ (विशेष सामर्थ्य) हैं, उन्हें आपकी शक्तियों के रूप में हम वरण करते हैं ॥९ ॥

२८१०. अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! यह महान् हविष्यान्न आपके पास जाये। आप शत्रुओं के लिए दुर्लभ तेजस्वी सोमरस ग्रहण करें। हम आपके बल को प्रवृद्ध करते हैं ॥१० ॥

२८११. अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आगहि ॥११ ॥

हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ प्रदेश से हमारे पास आएँ। दूरस्थ देश से भी आएँ। आपका जो उत्कृष्ट लोक है, उस लोक से भी आप यहाँ आएँ (अर्थात् प्रत्येक स्थिति में आप हम पर अनुग्रह करें) ॥११ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि-** प्रजापति वैश्वामित्र अथवा विश्वामित्र गाथिन। **देवता-** इन्द्र। **छन्द-** त्रिष्टुप्।]

२८१२. अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवींरिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः ॥१ ॥

हे स्तोता ! त्वष्टा (काष्ठ के शिल्पी) की तरह आप इन्द्रदेव के लिए उत्तम स्तोत्रों का निर्माण करें। श्रेष्ठ धुरी में योजित वेगवान् अश्व की भाँति कर्म में प्रवृत्त होकर और इन्द्रदेव के निमित्त प्रियकारी स्तुतियाँ करते हुए हम उत्तम मेधावान् कवियों (द्रष्टाओं) के दर्शन की इच्छा करते हैं ॥१ ॥

२८१३. इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उ ते प्रण्यो३ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! इन कवियों के जन्म के सम्बन्ध में उन आचार्य गणों से पूछें, जिन्होंने मनोबल को धारण करके अपने पुण्य-कर्मों से स्वर्ग का निर्माण किया था। इस यज्ञ में आपके मन को आनन्द प्रदान करने वाली आपके ही निमित्त प्रणीत स्तुतियाँ आपके पास जाती हैं ॥२ ॥

२८१४. नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३ ॥

कवियों ने गूढ़ कर्मों को सम्पादित करते हुए द्यावा-पृथिवी को बल-प्राप्ति के लिए परस्पर संगत किया और उन्हें मात्राओं से परिमित किया । परस्पर संगत, विस्तीर्ण और महती द्यावा-पृथिवी को नियंत्रित किया । उन दोनों के बीच मे धारण करने के लिए उन्होंने अन्तरिक्ष को स्थापित किया ॥३ ॥

२८१५. आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।

महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४ ॥

समस्त कवियों ने रथ में अधिष्ठित इन्द्रदेव को महिमामंडित किया । वे इन्द्रदेव अपनी दीप्ति से दीप्तिमान् होकर शोभायमान होते हुए विचरण करते हैं । सबके जीवन में प्राण संचार करने वाले, उनके श्रेष्ठ संकल्पों को पूर्ण करने वाले इन्द्रदेव की कीर्ति महान् है । सम्पूर्ण रूपों से युक्त होकर वे अमृत तत्वों पर स्थित होते हैं ॥४ ॥

२८१६. असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।

दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५ ॥

मनोवांछित फल प्रदान करने वाले, पुरातन और श्रेष्ठ देव इन्द्र ने जल-वृष्टि की । इस विपुल जल राशि ने पिपासा को दूर किया । द्युलोक के धारक दीप्तिमान् वरुण और इन्द्रदेव, तेजस्वी याजकों की स्तुतियों को सुनकर उनके लिए धनों को धारण करते हैं ॥५ ॥

२८१७. त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।

अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वौं अपि वायुकेशान् ॥६ ॥

हे इन्द्रावरुण ! आप इस यज्ञ में सम्पूर्ण और व्यापक तीनों सवनों को अलंकृत करें । हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ में गये थे; क्योंकि हमने इस यज्ञ मे वायु से स्पन्दित केश युक्त अश्वों को देखा है ॥६ ॥

२८१८. तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।

अन्यदन्यदसुर्यं१ वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७ ॥

इस वृषभ (बलशाली इन्द्र) की धेनु (वत्स को धारण करने वाली) तथा गौ (पोषण करने वाली सामर्थ्यों के सार तत्त्व) को जिन प्रतिभावानों ने दुहा; उन्होंने नई-नई शक्तियों के रूप में इस (इन्द्र) को पाया ॥७ ॥

[विभिन्न पदार्थों को उनके स्वरूप में बाँधे रखने वाली सत्ता-इन्द्र में धारण और पोषण करने की सामर्थ्य है । इनके मर्म को समझ कर उन्हें प्रकट करने के कौशल से नए-नए शक्ति स्रोतों (नान कन्वेंशनल सोर्सेज आफ एनर्जी) को प्राप्त करने का संकेत इस ऋचा में परिलक्षित होता है ।]

२८१९. तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।

आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८ ॥

इन सूर्यदेव की स्वर्णमयी दीप्ति को कोई नष्ट नहीं कर सकता । इस दीप्ति के आश्रय को जो स्वीकार करता है; वह उत्तम स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होता है । जैसे माता अपनी सन्तानों का वरण करती है, वैसे ही यह देव सर्वदात्री द्यावा-पृथिवी द्वारा वरण किया जाता है ॥८ ॥

२८२०. युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।

गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेव ! आप पुरातन स्तोताओं का हर प्रकार से कल्याण करते हैं, उनके निमित्त स्वर्गोपम श्रेय सम्पादित करते हैं । आप हमें सब ओर से संरक्षित करें ।समस्त मायावी शक्तियों में दक्ष आप, हमें अपने आश्रय में रखकर, संरक्षणकारी वचनों का आश्वासन दें- ऐसे आपके विविध कार्यों को हम देखते हैं ॥९ ॥

२८२१. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१० ॥

हम जीवन-संग्राम में संरक्षण की कामना से ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं; क्योंकि वे देव पवित्र करने वाले, श्रेष्ठतम नेतृत्व-कर्त्ता, स्तुतियों को सुनने वाले, उग्र, शत्रुओं का हनन करने वाले एवं धन-विजेता हैं ॥१०

[सूक्त - ३९]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

२८२२. इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१ ॥

हे सर्व-पालक इन्द्रदेव ! स्तोताओं द्वारा भावनापूर्वक उच्चारित स्तुतियाँ सीधे आपके पास पहुँचती हैं । आप को चैतन्य करने वाली जो स्तुतियाँ यज्ञ में उच्चारित की जाती हैं, जो आपके निमित्त उत्पन्न हैं, उन्हें आप जानें ॥१ ॥

२८२३. दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य से भी पहले उत्पन्न हुई ये स्तुतियाँ यज्ञ में उच्चरित होकर आपको चैतन्य करती हैं । जो कल्याणकारी और शुभ्र तेजस्विता को धारण करती हैं, वे हमारी स्तुतियाँ पूर्वजों से प्राप्त सनातन धरोहर हैं ॥२ ॥

२८२४. यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात्।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥३ ॥

अश्विनीकुमारों को उत्पन्न करने वाली उषा ने उन्हें इस समय उत्पन्न किया है । उनकी प्रशंसा करने को उत्कंठित जिह्वा का अग्रभाग चंचल हो उठा है । दिन के प्रारंभ में तमोनाशक अश्विनीकुमारों का यह जोड़ा जन्म के साथ ही स्तोत्रों से संयुक्त होता है ॥३ ॥

२८२५. नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४ ॥

असुरों से युद्ध करने में कुशल हमारे पितरों की निन्दा करने वाला हममें से कोई नहीं है । महिमावान् और उत्तम कर्मवान् इन्द्रदेव इन्हें और इनके गोत्रों को सुदृढ़ स्वर्ग लोक में स्थापित करते हैं ॥४ ॥

२८२६. सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन्।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५ ॥

नौ अश्वों (शक्ति धाराओं) से युक्त बलवान् मित्ररूप अंगिराओं के साथ इन्द्रदेव जब गौओं की खोज में निकले, तब गहन अन्धकार में छिपे हुए प्रकाशपुंज सूर्य को प्राप्त किया ॥५ ॥

२८२७. इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६ ॥

इन्द्रदेव ने दुग्ध प्रदात्री गौओं से मधुर दुग्ध को प्राप्त किया । अनन्तर चरण वाले पक्षी और खुरों वाले पशुओं से युक्त अपार धन प्राप्त किया । दानी इन्द्रदेव ने गुहास्थित तथा अन्तरिक्ष के जलों में स्थित गुह्य धनों को दाहिने हाथ में धारण किया ॥६ ॥

२८२८. ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७ ॥

विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न इन्द्रदेव ने गहन तमिस्रा में ज्योति को प्रकट किया । हम सब पापों से दूर होकर भय रहित स्थान में रहें । हे सोम पीने वाले तथा सोम से वृद्धि पाने वाले इन्द्रदेव ! श्रेष्ठतम स्तुतिकर्त्ता की इन स्तुतियों को ग्रहण करें ॥७ ॥

२८२९. ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८ ॥

(सृष्टि का संतुलन बनाये रखने वाले) यज्ञ के लिए सूर्यदेव द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करें । हम विविध पापों से दूर रहें । हे दुःखतारक वसुदेवो ! आप हम यजनकर्त्ता मनुष्यों को विपुल धन राशि से पूर्ण करें ॥८ ॥

२८३०. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥९ ॥

हम अपने जीवन-संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं, क्योंकि वे पवित्रकर्त्ता, श्रेष्ठ नेतृत्वकर्त्ता, हमारी स्तुतियों को कृपापूर्वक सुनने वाले, उग्र, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

२८३१. इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे। स पाहि मध्वो अन्धसः ॥१ ॥

साधकों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हे इन्द्रदेव ! अभिषुत सोम का पान करने के निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । आप अत्यन्त मधुर हविष्यान्न युक्त सोम का पान करें ॥१ ॥

२८३२. इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत। पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२ ॥

हे हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी और बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव ! आप अभीष्टवर्षक हैं । यह अभिषुत सोम आपको तृप्त करने के लिए इस यज्ञ में विधिवत् तैयार किया गया है । आप इसका पान करें ॥२ ॥

२८३३. इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः। तिर स्तवान विश्पते ॥३ ॥

हे स्तुत्य और प्रजापालक इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण पूजनीय देवों के साथ हमारे इस हव्यादि द्रव्यों से पूर्ण यज्ञ को संवर्द्धित करें ॥३ ॥

२८३४. इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते। क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४ ॥

हे सत्यव्रतियों के अधिपति इन्द्रदेव ! ये दीप्तियुक्त, आह्लादक और अभिषुत सोमरस आपके स्थान की ओर उन्मुख है (अर्थात् आपको समर्पित हैं), इसे ग्रहण करें ॥४ ॥

२८३५. दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम्। तव द्युक्षास इन्दवः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह अभिषुत सोम आपके द्वारा वरण करने योग्य है; क्योंकि यह दीप्तिमान् और आपके पास स्वर्ग में रहने योग्य है । आप इसे अपने उदर में धारण करें ॥५ ॥

२८३६. गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे। इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा शोधित सोमरस का आप पान करें, क्योंकि इस आनन्ददायी सोमरस की धाराओं से आप सिंचित होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी कृपा से ही हमें यश मिलता है ॥६ ॥

२८३७. अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७ ॥

देवपूजक यजमान के द्वारा समर्पित दीप्तिमान् और अक्षय सोमादियुक्त हवियाँ इन्द्रदेव की ओर जाती हैं । इस सोम को पीकर इन्द्रदेव विकसित होते हैं ॥७ ॥

२८३८. अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप समीपस्थ स्थान से हमारे पास आयें । दूरस्थ स्थान से भी हमारे पास आयें । हमारे द्वारा समर्पित इन स्तुतियों को ग्रहण करें ॥८ ॥

२८३९. यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दूरस्थ देश से, समीपस्थ देश से तथा मध्य के प्रदेशों से बुलाये जाते हैं, उन स्थानों से आप हमारे यज्ञ में आयें ॥९ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

२८४०. आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !सोमपान के लिए हम आपका आवाहन करते हैं, हमारे निकट हरिसंज्ञक अश्वों के साथ आयें ॥१॥

२८४१. सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥२ ॥

हमारे यज्ञ में ऋतु के अनुसार यज्ञकर्ता होता बैठे हैं । उन्होंने कुश के आसन बिछाये हैं और सोम-अभिषव के लिए पाषाण खण्ड को संयुक्त किया है । हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान के निमित्त आयें ॥२ ॥

२८४२. इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! स्तोतागण इन स्तुतियों को सम्पादित करते हैं । अतएव आप इस आसन पर बैठें और पुरोडाश का सेवन करें ॥३ ॥

२८४३. रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४ ॥

हे स्तुति-योग्य, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप यज्ञ में तीनों सवनों में किये गये स्तोत्रों और मंत्रों में रमण करें ॥४ ॥

२८४४. मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५ ॥

हमारी ये स्तुतियाँ महान् सोमपायी और बलों के अधिपति इन्द्रदेव को उसी प्रकार प्राप्त होती हैं, जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों को प्राप्त होती हैं ॥५ ॥

२८४५. स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! विपुल धनराशि दान देने के लिए आप सोम युक्त हविष्यान्न से अपने शरीर को प्रसन्न करें । हम स्तोताओं को निन्दित न होने दें ॥६ ॥

२८४६. वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥७ ॥

हे सबके आश्रय प्रदाता इन्द्रदेव ! आपकी अभिलाषा करते हुए हम हवियों से युक्त होकर आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

२८४७. मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥८ ॥

हे हरि संज्ञक अश्वों के प्रिय स्वामी इन्द्रदेव ! आप अपने घोड़ों को हमसे दूर जाकर न खोलें । हमारे पास आयें । इस यज्ञ में आकर हर्षित हों ॥८ ॥

२८४८. अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! दीप्तिमान् (स्निग्ध) केशवाले अश्व आपको सुखकर रथ द्वारा हमारे निकट ले आयें । आप यहाँ यज्ञस्थल पर कुश के पवित्र आसन पर सुशोभित हों ॥९ ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि-** विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

२८४९. उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! याजकों की अभिलाषा करते हुए आप अश्वों से योजित अपने रथ द्वारा हमारे पास आयें । हमारे द्वारा अभिषुत गोदुग्धादि मिश्रित सोम का पान करें ॥१ ॥

२८५०. तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृप्णवः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पाषाणों से निष्पन्न कुश के आसन पर सुसज्जित तथा हर्ष प्रदायक सोम के निकट आयें । प्रचुर मात्रा में इसका पान करके तृप्त हों ॥२ ॥

२८५१. इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३ ॥

इन्द्रदेव को बुलाने के लिए भेजी गई स्तुतियाँ, उनको सोमपान के लिए इस यज्ञस्थल पर भली-भाँति लायें ॥३ ॥

२८५२. इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४ ॥

हम इन्द्रदेव को सोमपान के लिए यहाँ इस यज्ञ में स्तुति गान करते हुए बुलाते हैं । स्तोत्रों द्वारा वे अनेक बार विभिन्न यज्ञों में आ चुके हैं ॥४ ॥

२८५३. इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥५ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके निमित्त सोम प्रस्तुत है ।इसे उदर में धारण करें ।आप अन्न-धन के अधीश्वर हैं ॥५ ॥

२८५४. विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६ ॥

हे क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव ! हम आपको शत्रुओं के पराभवकर्ता और धनों के विजेता के रूप में जानते हैं, अतएव हम आपसे धन की याचना करते हैं ॥६ ॥

२८५५. इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने बलवान् अश्वों द्वारा आकर हमारे द्वारा अभिषुत गो-दुग्ध तथा जौ मिश्रित सोमरस का पान करें ॥७ ॥

२८५६. तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम यज्ञ स्थल पर आपके निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं ।यह सोम आपके हृदय में रमण करे ॥८

२८५७. त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९ ॥

हे पुरातन इन्द्रदेव ! हम कुशिक वंशज आपकी संरक्षणकारी सामर्थ्यों की अभिलाषा करते हैं । सोमपान के लिए यज्ञस्थल पर हम आपका आवाहन करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ४३]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२८५८. आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! रथ में अधिष्ठित होकर आप हमारे पास आयें ।परिष्कृत, दीप्तिमान् सोमरस का पान करने के लिए आप अपने प्रिय घोड़ों को यज्ञ स्थल के निकट विमुक्त करें, क्योंकि ये ऋत्विग्गण आपका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

२८५९. आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२ ॥

हे स्वामी इन्द्रदेव !आप अनेक प्रजाजनों को लाँघकर हमारे पास आयें । हमारी प्रार्थना है कि आप अश्वों से हमारे पास आयें । आपकी मित्रता की इच्छा करती हुई स्तोताओं की ये स्तुतियाँ आपका आवाहन कर रही हैं ॥२॥

२८६०. आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३ ॥

हे दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! प्रसन्न हृदय से आप हमारे अन्नवर्द्धक यज्ञ के पास अश्वों द्वारा शीघ्र ही आयें । सोम-यज्ञों में घृतयुक्त सोम रूपी हव्य समर्पित करते हुए हम आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

२८६१. आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! बलवान्, उत्तम, धुरा (या जुआ) से योजित, पुष्ट अंगों वाले मित्र रूप आपके ये अश्व आपको हमारे पास लायें ।हविष्यान्न रूप में सोमरस का सेवन करते हुए आप मैत्री भावपूर्ण स्तोताओं की स्तुतियो का श्रवण करें ॥४ ॥

२८६२. कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५ ॥

सोमरस की कामना करने वाले ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! आप हमें लोगों का रक्षक बनायें । हमें प्रजाजनों का स्वामी बनायें । हमें दूरद्रष्टा ऋषि बनायें । हमें अभिषुत सोमपान कर्त्ता बनायें और हमें अक्षय धन प्रदान करें ॥५ ॥

२८६३. आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसम्मृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! रथ में योजित हरि संज्ञक विशालकाय अश्व आपको हमारी ओर ले आयें । हे इष्टवर्षक देव ! (प्रेरित किये गये) इन्द्रदेव के शत्रु नाशक ये अश्व दोनों ओर प्रभाव डालने वाले द्युलोक से आते हैं ॥६ ॥

२८६४. इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोम अभिलाषी हैं । श्येन पक्षी आपके निमित्त सोम लाया है । पाषाण द्वारा कूटे गये इष्ट प्रदायक सोम का आप पान करें । इसके द्वारा उत्पन्न हर्ष से आप शत्रुओं को दूर करते हैं ॥७ ॥

२८६५. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८ ॥

हम अपने जीवन - संग्राम में संरक्षण प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं; क्योंकि ये इन्द्रदेव पवित्रकर्त्ता, श्रेष्ठ नेतृत्वकर्त्ता, स्तुति श्रवण-कर्त्ता, उग्र , युद्धों में शत्रुनाशक और धनों के विजेता हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ४४]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- बृहती ।]

२८६६. अयं ते अस्तु हर्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! पाषाण द्वारा निष्पादित प्रीतिकर और सेवनीय यह सोम आपके लिए है । आप हरि संज्ञक अश्वों द्वारा ले जाये जाने वाले रथ पर अधिष्ठित होकर हमारे समीप आएँ ॥१ ॥

२८६७. हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥२ ॥

हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आप सोम की कामना करते हुए उषा और सूर्य को प्रकाशित करते हैं । आप विद्वान् और हमारी अभिलाषाओं के ज्ञाता हैं । आप हमारी समृद्धि और वैभव को बढ़ाएँ ॥२ ॥

२८६८. द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३ ॥

जिसके बीच में सूर्यदेव की हरित किरणें संचरित हैं, उस द्युलोक और रश्मियों को धारण करने से जिस पर हरियाली फैली है, ऐसी भरपूर भोजन सामग्री युक्त पृथ्वी को इन्द्रदेव ने धारण किया ॥३ ॥

[पदार्थों को संगठित रखने वाली शक्ति 'इन्द्र' ने द्युलोक में सूर्य एवं पृथ्वी को धारण किया, इस तथ्य को ऋषियों ने देखा ।

२८६९. जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४ ॥

इष्टवर्षक, इन्द्रदेव उत्पन्न होकर सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हैं । हरित वर्ण के अश्वों वाले इन्द्रदेव हाथों में दीप्तिमान् वज्र आदि आयुध धारण करते हैं ॥४ ॥

२८७०. इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५ ॥

इन्द्रदेव ने अभिलाषा योग्य, शुभ्र , तेज से परिपूर्ण, दीप्तिमान् और पाषाण द्वारा निष्पादित सोम प्राप्त किया । (सोमरस पीकर तृप्त हुए) इन्द्रदेव ने वज्र को धारण कर अश्वों द्वारा गमन कर अपहृत गौओं को विमुक्त किया ॥५ ॥

[सूक्त - ४५]

[ऋषि- विश्वामित्र गाथिन । देवता- इन्द्र । छन्द- बृहती ।]

२८७१. आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥१ ॥

जैसे यात्री रेगिस्तान को शीघ्र ही (बिना रुके) पार कर जाते हैं, उसी प्रकार हे इन्द्रदेव ! आनन्ददायक मोर पंखों के समान रोम युक्त घोड़ों (सात रंग युक्त सुन्दर किरणों) के साथ मार्ग की रुकावटों को हटाते हुये आप आएँ । जाल फैलाने वाले आपको पथ में रुकावट पैदा न कर सके ॥१ ॥

[रेगिस्तान में जालों से बचकर चलने का तात्पर्य मृग-मरीचिकाओं से बचने के संदर्भ में भी है ।]

२८७२. **वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।**
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळहा चिदारुजः ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव वृत्रासुर का हनन करने वाले, राक्षसों के बल को विदीर्ण करने वाले, उनके नगरों को ध्वंस करने वाले, जल वृष्टि करने वाले, घोड़ों से सज्जित रथ में विराजमान होकर शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं ॥२ ॥

२८७३. **गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गाइव ।**
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! गम्भीर समुद्र को जल धाराओं से पुष्ट करने के समान आप याज्ञिक को इष्ट फल देकर पुष्ट करते हैं । जिस प्रकार उत्तम गोपालक अपनी गौओं को श्रेष्ठ पौष्टिक आहार देकर पुष्ट करता है, जैसे गौएँ घास खाती हैं, नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार सोम की धाराएँ आपको पुष्ट करती हैं ॥३ ॥

२८७४. **आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।**
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र सम्पारणं वसु ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव जिस प्रकार पिता अपने ज्ञान सम्पन्न पुत्र को धन का भाग देता है, उसी प्रकार आप मुझे शत्रुओं को पराभूत करने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें । जिस प्रकार मनुष्य अंकुश (लग्गी) द्वारा पके फल वाले वृक्ष को हिलाकर फल पाता है, उसी प्रकार आप हमें अभीप्सित धन प्रदान करें ॥४ ॥

२८७५. **स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टि : स्वयशस्तरः ।**
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप धनवान् हैं । आप स्वर्गोपम तेज से युक्त हैं, सर्व नियन्ता और प्रभूत यश वाले हैं । हे बहुतों द्वारा स्तुत इन्द्रदेव ! आप बल से विकसित होकर हमारे निमित्त विपुल अन्न वाले हों ॥५ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२८७६. **युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।**
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्या३णीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप उत्तम योद्धा, इष्ट-प्रदाता, धनों के स्वामी, शूरवीर, तरुण, स्थायी, प्रतिष्ठावान्, शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, वज्रधारी तथा तीनों लोकों में प्रख्यात हैं । आप के वीरोचित कार्य भी महान् हैं ॥१ ॥

२८७७. **महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।**
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२ ॥

हे महान् उग्र इन्द्रदेव ! आप धनों से परिपूर्ण रहने वाले, अपने पराक्रम से शत्रुओं को पराभूत करने वाले और सम्पूर्ण लोकों के अधीश्वर हैं । आप शत्रुओं का विनाश करें और सत्यव्रती जनों को आश्रय प्रदान करें ॥२ ॥

२८७८. प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।

प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३ ॥

दीप्तिमान् और सब प्रकार से अपराजेय, सोम पीने वाले इन्द्रदेव सम्पूर्ण परिमित पदार्थों से भी महान् हैं । सम्पूर्ण देवों के बल से बड़े हैं ।द्यावापृथिवी से अधिक श्रेष्ठ हैं तथा व्यापक अन्तरिक्ष से भी अधिक उत्कृष्ट हैं ॥३॥

२८७९. उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।

इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् और गंभीर हैं, जन्म से अत्यन्त वीर हैं और विश्व में व्याप्त होने वाले हैं । आप स्तोताओं के रक्षक हैं । प्रकृष्ट, दीप्तिमान् अभिषुत सोम उसी प्रकार आप को प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार दूर तक गमन करती हुई नदियाँ समुद्र को ॥४ ॥

२८८०. यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।

तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माता अपने गर्भ को धारण करती है, उसी प्रकार द्यावा-पृथिवी आपकी अभिलाषा से सोम को धारण करती है । हे इष्टवर्षक इन्द्रदेव ! अध्वर्युगण उस सोम को शुद्ध करके आपके पीने के लिए प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४७]

| **ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२८८१. मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।

आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! मरुतों के सहयोग से आप जल की वर्षा करते हैं । हव्यादि युक्त सोम का पान कर हर्ष से प्रमुदित होते हुए आप युद्ध के लिए तत्पर हों । द्युलोक में विद्यमान दिव्य सोम के आप ही स्वामी हैं ॥१ ॥

२८८२. सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।

जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥२ ॥

मरुतों की सहायता से वृत्र का संहार करने वाले, देवताओं के मित्र, वीर, पराक्रमी हे इन्द्रदेव ! याजकों द्वारा समर्पित इस सोमरस का पान करें ।हिंसक प्राणियों तथा हमारे शत्रुओं का विनाश करके हमारे भय को दूर करें ॥२॥

२८८३. उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।

याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३ ॥

हे ऋतुपालक इन्द्रदेव ! अपने मित्ररूप देवों के साथ और मरुतों के साथ आप हमारे द्वारा अभिषुत सोम का पान करें । जिन मरुतों ने आपकी सहायता की और आपका अनुगमन किया, उन्होंने ही युद्ध में आपकी शक्ति को बढ़ाया; तब आपने वृत्र का हनन किया ॥३ ॥

२८८४. ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।

ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४ ॥

हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! जिन्होंने अहि नामक असुर को मारने, शम्बरासुर के वध

के लिए आपको आगे बढ़ाया; जिन मेधावी मरुद्गणों ने गौ-प्राप्ति के युद्ध में आपको प्रमुदित किया; उन सभी के साथ आप सोम पान करें ॥४ ॥

२८८५. मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥५ ॥

मरुद्गणों की सहायता से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले, दिव्यगुण-सम्पन्न, श्रेष्ठ शासक, वीर, पराक्रमी तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं । वे हमें हर प्रकार से संरक्षण प्रदान करें ॥५॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२८८६. सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥१ ॥

ये इन्द्रदेव उत्पन्न होते ही जल बरसाने वाले और रमणीय बन गये ।इन्होंने हविष्यान्न युक्त सोम-प्रदाताओं का रक्षण किया ।हे देव !सोमपान की अभिलाषा करने पर पहले आप दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करते हैं ॥१॥

२८८७. यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस दिन आप प्रकट हुए थे, उसी दिन तृषित होने पर आपने पर्वतस्थ सोमलता के रस का पान किया था । आपकी तरुणी माता अदिति ने आपके महान् पिता के गृह में स्तनपान कराने से पूर्व आपके मुख में इसी सोमरस का सिंचन किया था ॥२ ॥

२८८८. उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥३ ॥

उन इन्द्रदेव ने माता की गोद में जाकर पोषक आहार की याचना की । तब उन्होंने माता के स्तनों में दुग्ध रूपी दीप्तिमान् सोम को देखा । वृद्धि को प्राप्त करके वे अन्यान्य शत्रुओं को उनके स्थान से हटाने लगे । तदनन्तर विविध रूपों को धारण करके इन्द्रदेव ने महान् पराक्रम प्रदर्शित किया ॥३ ॥

२८८९. उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४ ॥

ये इन्द्रदेव शत्रुओं के लिए उग्ररूप, उन्हें शीघ्रता से पराजित करने वाले और विविध बलों को धारण करने वाले हैं । उन्होंने इच्छा के अनुरूप शरीर को बनाया । उन्होंने अपनी सामर्थ्य से त्वष्टा नामक असुर का पराभव किया और पात्रों में रखा सोम चुपचाप पी लिया ॥४ ॥

२८९०. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५ ॥

हम इस जीवन-संग्राम में अपने संरक्षण के लिए ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं; क्योंकि वे देव पवित्रता प्रदान करने वाले, देवमानवों का नेतृत्व करने वाले, उग्र, स्तुतियों को ध्यानपूर्वक सुनने वाले, युद्धों में शत्रुओं का विनाश करने वाले और धनों को जीतने वाले हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४९]

। ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।।

**२८९१. शंसा महामिन्द्रं यस्मिन्विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन्।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१ ॥**

हे स्तोताओ ! सोमपान करने वाले जिन इन्द्रदेव के पास समस्त प्रजाजन कामना पूर्ति के लिए जाते हैं; समस्त देवगण और द्यावा-पृथिवी भी जिन उत्तम कर्मा, रूपवान् और वृत्रों (पापों) के हन्ता इन्द्रदेव को प्रसन्न करते हैं; आप सभी उन्हीं महान् देव की स्तुति करें ॥१ ॥

**२८९२. यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२ ॥**

युद्धों में अपने तेज से दीप्तिमान् मनुष्यों के नियन्ता, हरि संज्ञक अश्वों से योजित रथ में अधिष्ठित इन्द्रदेव से कोई भी कुटिल पार नहीं पा सकता । वे इन्द्रदेव सेनाओं के उत्तम स्वामी हैं । वे अपनी सत्यरूप सामर्थ्य से शत्रुओं को क्षत-विक्षत कर देते हैं ॥२ ॥

**२८९३. सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान्।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३ ॥**

संग्राम में इन्द्रदेव अश्वों की तरह देवताओं के शत्रुओं का अतिक्रमण करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से द्यावा-पृथिवी को व्याप्त करने वाले और भगदेव के समान अत्यन्त ऐश्वर्यवान् होने से आवाहन करने योग्य हैं । वे अन्नों के धारक होने से उत्तम आवाहन योग्य हैं । वे स्तुतिकर्त्ताओं के पिता के समान पालन करने वाले हैं ॥३ ॥

**२८९४. धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान्।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४ ॥**

वे इन्द्रदेव द्युलोक और अन्तरिक्ष के धारक हैं । वे रथ के सदृश ऊर्ध्व गमनशील हैं । वे धनों और अश्वों से युक्त हैं । वे रात्रि के आच्छादनकारी हैं और सूर्य के उत्पत्तिकर्ता हैं । वे याजकों की स्तुति एवं कर्मफल के अनुसार अन्नों का विभाग करने वाले हैं ॥४ ॥

**२८९५. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५ ॥**

हम अन्न-प्राप्ति के अपने इस जीवन-संग्राम में ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव पवित्रता प्रदान करने वाले, मनुष्यों के नेतृत्वकर्ता और हमारी स्तुति को ध्यानपूर्वक सुनने वाले हैं । वे उग्र, वीर, युद्धों में शत्रुओं का हनन करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ५०]

। ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।।

**२८९६. इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः१ काममृध्याः ॥१ ॥**

जिनके लिए यह सोम है, वे इन्द्रदेव यज्ञ में भली प्रकार आहुति दिये गये सोम का पान करें । वे शत्रुओं को

नष्ट करने वाले तथा मरुतों के साथ जल की वर्षा करने वाले हैं । अत्यन्त व्यापक यश-सम्पन्न इन्द्रदेव हमारे यज्ञ मे आकर हविरूप अन्नों से तृप्त हों और हमारी हवियाँ उनके शरीर को प्रवृद्ध करें ॥१ ॥

२८९७. आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके इस यज्ञ में शीघ्र आने के लिए उत्तम परिचर्या करने वाले अश्वों को रथ से योजित करते हैं, जिनसे आप हमारे संरक्षण के लिए आएँ । वे अश्व आपको हमारे यज्ञ के लिए धारण करें । उत्तम शिरस्त्राण धारक हे इन्द्रदेव ! आप भलीप्रकार इस अभिषुत सोम का पान करें ॥२ ॥

२८९८. गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३ ॥

स्तोताओं की समस्त कामनाओं को पूर्ण कर उनके दुःखों का निवारण करने वाले इन्द्रदेव के लिए गो दुग्धादि मिश्रित सोमरस समर्पित करते हैं । वे हमें श्रेष्ठतम पोषण प्रदान करें । हे सोमपायी इन्द्रदेव ! हर्ष से उल्लसित होकर आप सोम का पान करें और हमारे लिए विविध भाँति की गौओं (पोषक-शक्तियों) को प्रेरित करें ॥३ ॥

२८९९. इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४ ॥.

हे इन्द्रदेव !गौ, अश्व और धन-ऐश्वर्य प्रदान करके आप हमारी कामनाओं को पूर्ण करें एवं प्रसिद्धि प्रदान करें ।स्वर्गादि सुख की अभिलाषा से मेधावी कुशिक वंशजों ने विचारपूर्वक आपके लिए स्तोत्रों की रचना की है ॥४ ।

२९००. शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५ ॥

हम अन्न प्राप्ति के लिए किये जाने वाले अपने इस संग्राम में ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव को संरक्षण प्राप्ति के लिए बुलाते हैं । वे इन्द्रदेव पवित्रता प्रदान करने वाले, मनुष्यों के नियामक और हमारी स्तुति को सुनने वाले हैं । वे उग्र, वीर, युद्धों में शत्रुओं का वध करने वाले और धनों के विजेता हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ५१]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप्; १-३ जगती ; १०-१२ गायत्री ।]

२९०१. चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥१ ॥

सभी मानवों के पोषक, ऐश्वर्यशाली, ख्यातियुक्त, वर्धमान, अमर तथा अनेकों स्तोत्रों से प्रतिदिन प्रशंसित होने वाले इन्द्रदेव की हम अनेक प्रकार से स्तुति करते हैं ॥१ ॥

२९०२. शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव शत (सैकड़ों) यज्ञ सम्पादक, जल से युक्त, सामर्थ्यवान् मरुतों के नियामक, अन्न प्रदाता, शत्रु-पुरों के भेदक, शीघ्र गमन करने वाले, जल के प्रेरक, तेजस्विता सम्पन्न शत्रुओं के पराभवकर्त्ता और स्वर्गीय सुख-प्रदाता हैं । उन इन्द्रदेव को हमारी स्तुतियाँ सब ओर से प्राप्त होती हैं ॥२ ॥

२९०३. आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३ ॥

धन-प्राप्ति के संग्राम में वे इन्द्रदेव स्तोताओं द्वारा प्रशंसित होते हैं । वे इन्द्रदेव निष्पाप स्तुतियों को स्वीकार करते हैं । वे यज्ञादि कर्म करने वालों के घर सोम युक्त हव्यादि सेवन कर अतिशय प्रसन्न होते हैं । हे स्तोताओ ! आप मरुतों के साथ शत्रुओं के पराभवकर्त्ता, अभिमानियों के संहारक इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥३ ॥

२९०४. नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मनुष्यों के नियामक और वीर हैं । असुरों द्वारा संतप्त ऋत्विग्गण स्तुतियों और मंत्रों द्वारा आपकी अर्चना करते हैं । विविध पराक्रमों से सम्पन्न आप बल के लिए युद्ध में गमन करते हैं । आप आकाशीय सोम के एकमात्र स्वामी हैं । आपको नमस्कार है ॥४ ॥

२९०५. पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५ ॥

अनेक मनुष्यों को इन्द्रदेव का अनुग्रह प्राप्त होता है । सर्व नियामक इन्द्रदेव के लिए पृथ्वी विविध धनों को धारण करती है । इन्द्रदेव की अनुज्ञा से ही सूर्यदेव सम्पूर्ण ओषधियों, जल , मनुष्यों और वनों की रक्षा करते हैं ॥५॥

२९०६. तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥६ ॥

हरि संज्ञक अश्वों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आपके लिए मन्त्रों और स्तोत्रों को सम्पूर्ण ऋत्विग्गण धारण करते हैं । हे मित्ररूप और सर्व निवासक इन्द्रदेव ! संरक्षण की प्राप्ति के लिए ये नूतन हवियाँ आपको प्रदान की गई हैं । आप इन्हें जानें और स्तोताओं को अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

२९०७. इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मरुद्‌गणों के साथ मिलकर जिस प्रकार शार्यात (शर्याति के पुत्र) के यज्ञ में पहुँच कर सोमरस का पान किया था, उसी प्रकार हमारे इस यज्ञ में उपस्थित होकर सोमरस का पान करें । हे वीर ! यज्ञस्थल पर याजकगण हविष्यान्न समर्पित करते हुए आपकी सेवा करते हैं ॥७ ॥

२९०८. स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोम की कामना करते हुए आप मित्ररूप मरुतों के साथ हमारे इस यज्ञ में अभिषुत सोम का पान करें । अनेकों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण देवों ने आपको महा संग्राम के लिए नियुक्त-प्रयुक्त किया था ॥८ ॥

२९०९. अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९ ॥

जल देने वाले मरुद्‌गण स्वामीरूप इन्द्रदेव को संग्राम में हर्षित करते हैं । वृत्र- संहारक इन्द्रदेव उन मरुद्‌गणों के साथ हविदाता यजमान के गृह में अभिषुत सोम का पान करें ॥९ ॥

२९१०. इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वस्य गिर्वणः ॥१० ॥

हे ऐश्वर्यों के स्वामी, स्तुति योग्य इन्द्रदेव ! बलपूर्वक निकाले गये इस सोमरस का रुचिपूर्वक पान करें ॥१० ॥

२९११. यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११ ॥

हे सोमपान के योग्य इन्द्रदेव ! आपके शरीर के लिए सोम अन्न तुल्य है । यज्ञ में उपस्थित होकर आप इसके पान से आनन्दित हों ॥११ ॥

२९१२. प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसे ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों पार्श्वों (कुक्षियों) में वह सोम भली- भाँति रम जाय । स्तुति के प्रभाव से वह आपके समस्त शरीर में संचरित हो । हे वीर इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आपकी भुजायें भी समर्थ हों ॥१२ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १-४गायत्री, ६ जगती ।]

२९१३. धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम दही और सत्तू से मिश्रित पकाये हुए पुरोडाश की हवि को मन्त्रोच्चार के साथ समर्पित करते हैं, आप प्रातः इसे स्वीकार करें ॥१ ॥

२९१४. पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! भली प्रकार पकाये गये इस पुरोडाश का सेवन करें । इसके सेवन के लिए पुरुषार्थ करें । यह हव्य रूप पुरोडाश आपके लिए समर्पित है ॥२ ॥

२९१५. पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश का भक्षण करें । हमारी इन स्तुतियों का आप वैसे ही सेवन करें (स्वीकारें), जैसे पुरुष अपनी अर्धांगिनी पत्नी को स्वीकार करता है ॥३ ॥

२९१६. पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४ ॥

हे प्रख्यात इन्द्रदेव ! प्रातः सवन में हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश का सेवन करें, जिससे आपके कर्म महान् हों ॥४ ॥

२९१७. माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत्स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! माध्यन्दिन सवन के समय हमारे द्वारा प्रदत्त भुने हुए जवादि धान्य और स्वाहुत हुए पुरोडाश का भक्षण करें । हे मेधावान् इन्द्रदेव ! आप ऋभुओं के साथ धन - धान्यों से सम्पन्न हैं । हम स्तुति करते हुए आपके लिए हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥५ ॥

२९१८. तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति बहुतों द्वारा की गई है । आप तीसरे सवन में हमारे भुने हुए जवादि पुरोडाश का सेवन करें । आप ऋभुओं, धन और पुत्रों से युक्त हैं । हवियों से युक्त स्तोत्रों से हम आपकी पूजा करते हैं ॥६ ॥

२९१९. पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पोषणकारी, दुःखहारी और हरि संज्ञक अश्वारोही हैं । आपके निमित्त हमने दही मिश्रित सत्तू और भुने जवादि धान्य तैयार किये हैं । मरुद्गणों के साथ आप इस पुरोडाश आदि का भक्षण करें और सोमरस का पान करें ॥७ ॥

२९२०. प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के लिए शीघ्र ही भुने जवादि धान्य (खील) और पुरोडाश विपुल परिमाण में दें, क्योंकि वे मनुष्यों के नेतृत्वकर्त्ताओं में सर्वोपम वीर हैं । हे शत्रुओं के पराभवकर्ता इन्द्रदेव ! हम सब एकत्रित होकर आपके निमित्त प्रतिदिन स्तुतियाँ करते हैं; वे स्तुतियाँ आपको सोमपान के लिए प्रेरित करें ॥८ ॥

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - इन्द्र , १ इन्द्र और पर्वत ; १५, १६ वाक् (ससर्परी) ; १७-२० रथाङ्ग; २१-२४ इन्द्र व अभिशाप । **छन्द** - त्रिष्टुप् ; १०, १६ जगती; १३ गायत्री; १२, २०, २२ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।]

२९२१. इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥१ ॥

हे इन्द्र और पर्वतदेव ! स्तुत्य, श्रेष्ठ सन्तान युक्त यजमान द्वारा समर्पित हविष्यान्न से हर्ष का अनुभव करने वाले, यज्ञ में हवि का भक्षण करने वाले आप हमें अन्न प्रदान करें एवं हमारे स्तोत्रों से यशस्वी हों ॥१ ॥

२९२२. तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे पास कुछ समय तक ठहरें । हमारे यज्ञ से दूर न जाएँ । हम आपके निमित्त शीघ्र ही अभिषुत सोम द्वारा यजन करते हैं । हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! जैसे पुत्र पिता का आश्रय ग्रहण करता है, वैसे हम मधुर स्तुतियों द्वारा आपका आश्रय ग्रहण करते हैं ॥२ ॥

२९२३. शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३ ॥

हे अध्वर्युगण ! हम इन्द्रदेव की स्तुति करेंगे । आप हमें प्रोत्साहित करें । हम उनके लिए प्रीतिकर स्तोत्रों का गान करें । आप यजमान के इस कुश के आसन पर बैठें, जिससे इन्द्रदेव के लिए उक्थ वचन प्रशस्त हों ॥३ ॥

२९२४. जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! स्त्री ही गृह होती है, वही पुरुष का आश्रय स्थान होती है । रथ से योजित अश्व आपको उसी (विश्रान्तिदायक) गृह में ले जाएँ । हम जब कभी सोम अभिषव करते हैं, तब हमारे द्वारा निवेदित सोम को दूतस्वरूप अग्निदेव सीधे आपके पास पहुँचायें ॥४ ॥

२९२५. परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५ ॥

सबको पोषण प्रदान करने वाले, ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ से दूर अपने गृह के समीप रहें अथवा

हमारे इस यज्ञ में आएं । दोनों ही जगह आपका प्रयोजन है । वहाँ घर में आपकी स्त्री है और यहाँ सोम है । जहाँ आप अपने महान् रथ को रोकते हैं; वहीं हर्षध्वनि करने वाले अश्वों को विमुक्त करते हैं ॥५ ॥

२९२६. अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यहाँ सोमपान करें, अनन्तर घर जायें; क्योंकि आपके घर में कल्याणकर्त्री स्त्री है और वहाँ मनोरम सुख है । आप जहाँ अपने रथ को रोकते हैं, वहीं अश्वों को विचरने के लिए विमुक्त करते हैं ॥६ ॥

२९२७. इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७ ॥

यज्ञ में भोज्य पदार्थ समर्पित करने वाले अंगिरा वंशज विभिन्न रूपों में देखे जाते हैं । ये देवों में श्रेष्ठ, वीर मरुद्गण हम विश्वामित्रों के लिए हजारों प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करें । हमारे धन-धान्य एवं आयु में वृद्धि करें ॥७ ॥

२९२८. रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम् ।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८ ॥

हम इन्द्रदेव के जिस स्वरूप का आवाहन करते हैं, वे उसी रूप के हो जाते हैं । अपनी माया से विविध रूप धारण करते हैं । वे ऋतु के अनुकूल सर्वदा सोम का पान करने वाले हैं । वे मंत्रों द्वारा बुलाये जाने पर तीनों सवनों में स्वर्गलोक से एक क्षण में ही आ जाते हैं ॥८ ॥

२९२९. महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९ ॥

अतिशय महान्, देवों से उत्पन्न एवं प्रेरित, सर्व द्रष्टा विश्वामित्र ऋषि ने जल से परिपूर्ण सिन्धु (नदी अथवा समुद्र) के वेग को अवरुद्ध किया । वहाँ से वे सुदास राजा के यज्ञ में गये । तब कुशिक वंशजों ने इन्द्रदेव को प्रिय स्थान (यज्ञस्थल) में सम्मानित किया ॥९ ॥

[जल के वेग को रोक कर उस शक्ति का नियोजन पूर्वकाल में भी किया जाता था, यह बात यहाँ स्पष्ट होती है ।]

२९३०. हंसाइव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१० ॥

अतीन्द्रिय क्षमतासम्पन्न, मेधावान् मनुष्यों के संरक्षक हे कुशिको !आप सब हंसों के सदृश पंक्ति में बैठकर स्तुति मंत्रों का उच्चारण करें, यज्ञ में पाषाण से सोमाभिषवण करें तथा सभी देवों के साथ सोमरस का पान करें ॥१० ॥

२९३१. उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११ ॥

हे कुशिक वंशजो ! आप सब अश्व के समीप जाएँ, अश्व को उत्साहित करें । राजा सुदास के अश्व को ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए विमुक्त कर दें । देवराज इन्द्र ने पूर्व, पश्चिम और उत्तर प्रदेशों में शत्रुओं का हनन किया है । अब सुदास राजा पृथ्वी के उत्तम स्थान में यज्ञ कार्य सम्पादित करें ॥११ ॥

२९३२. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम् । विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२ ॥

हे कुशिक वंशजो ! हम (विश्वामित्र) ने द्यावा-पृथिवी द्वारा इन्द्रदेव की स्तुति की । विश्वामित्र के वंशजों का यह स्तोत्र भरत-वंशजों की रक्षा करे ॥१२ ॥

२९३३. विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिन्नः सुराधसः ॥१३ ॥

विश्वामित्र के वंशजों ने वज्रधारी इन्द्रदेव के लिए स्तोत्र विनिर्मित किये ।इन्द्रदेव हमें उत्तम धनों से युक्त करें ॥१३

२९३४. किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अनार्य देश के कीकटवासियों की गौएँ आपके लिए क्या करती हैं ? आपके लिए न दुग्ध देती हैं और न यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करती हैं । उन गौओं को यहाँ ले आएँ । धन शोषकों के धन को हमारे लिए ले आएँ । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! नीच वंश वालों को आप नियमित करें ॥१४ ॥

२९३५. ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५ ॥

जमदग्नि के द्वारा प्रेरित, अज्ञान विनाशक, द्युलोक तक प्रवाहित वाणी द्युलोक में विपुल शब्दकारक होती है । सूर्य पुत्री (वह वाणी) सम्पूर्ण देवों को अमृतोपम पदार्थ और अक्षय अन्नादि प्रदान करती है ॥१५ ॥

२९३६. ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या३ नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६ ॥

पलस्ति, जमदग्नि आदि ऋषियों ने जो उत्तम वचन कहे, वे नवीन अन्नों को प्रदान कराने वाले थे । पंच जनों में जो अन्नादि विद्यमान है, उनसे अधिक अन्नादि हमारे निमित्त शीघ्र प्रदान करें ॥१६ ॥

२९३७. स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७ ॥

सुदास के यज्ञ में विश्वामित्र रथांगों की स्तुति करते हैं-योजित बैल स्थिर हों, रथ का अक्ष सुदृढ़ हो । रथ के दण्ड न टूटें । शकट न टूटे । धुरी की गिरने वाली कील को इन्द्रदेव ठीक कर दें । हे अबाधित रथ ! आप सदैव हमारे अनुकूल रहते हुए आगे बढ़ें ॥१७ ॥

२९३८. बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शरीरों में बल स्थापित करें । हमारे बैल आदि पशुओं में बल स्थापित करें । हमारे पुत्र और पौत्रों में दीर्घ जीवन के लिए बल स्थापित करें; क्योंकि आप बलों को प्रदान करने वाले हैं ॥१८ ॥

२९३९. अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! खदिर काष्ठ से विनिर्मित रथ के दण्ड को दृढ़ करें । रथ के स्पन्दनों में शीशम के काष्ठ से विनिर्मित रथ की धुरी और शकटादि में बल भरें । हे सुदृढ़ अक्ष ! हमारे द्वारा दृढ़ किये हुए आप और अधिक सुदृढ़ हों । वेग से गमन करते हुए आप हमें गिरा न दें ॥१९ ॥

२९४०. अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥२० ॥

वनस्पति से विनिर्मित यह रथ हमें न गिराये, संताप न दे । हमारे घर पहुँचने तक यह हमारा मंगल करे और

अश्वों के विमुक्त होने तक यह हमारी रक्षा करे ॥२० ॥

२९४१. इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१ ॥

हे शूरवीर और ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप विविध, श्रेष्ठ, संरक्षणकारी साधनों से हमारी रक्षा करें । हमारे शत्रुओं का विनाश कर हमें प्रसन्न करें । जो हमसे द्वेष करता है, उसका पतन करें । हम जिससे द्वेष करते हैं, उसके प्राणों का हरण करें ॥२१ ॥

२९४२. परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! फरसे से वृक्ष के संतप्त होने के समान हमारे शत्रु संतप्त हों । शाल्मलि पुष्प के शाखा से गिरने के समान हमारे शत्रु के अंग विच्छिन्न हों । पकाने के समय हाड़ी के फेन निकलने के समान हमारे हिंसक शत्रुओं के मुख से फेन निकालें ॥२२ ॥

२९४३. न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३ ॥

विश्वामित्र कहते हैं, वीर पुरुष बाणों के कष्ट को कुछ नहीं समझते । वे लोभी शत्रु को पशु मानकर ले जाते हैं । वे बलवानों से निर्बलों का उपहास नहीं कराते । गधों की तुलना अश्वों से नहीं करते ॥२३ ॥

२९४४. इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये भरत वंशज शत्रु को पृथक् करना जानते हैं, उनके साथ एक होकर रहना नहीं जानते । वे संग्राम में प्रेरित अश्व की भाँति धनुष की प्रत्यंचा की शक्ति प्रकट करते हैं ॥२४ ॥

[सूक्त - ५४]

[**ऋषि** - प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२९४५. इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१ ॥

स्तोतागण महान् यज्ञ के साधन रूप तथा स्तुति योग्य अग्निदेव के लिए इन उत्तम स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं । वे अग्निदेव अपने स्थान में तेजोमयी किरणों से उद्दीप्त होकर हमारी स्तुति का श्रवण करें ॥१ ॥

२९४६. महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! यज्ञादि कार्यों में, जिन द्यावा-पृथिवी में, स्तोत्रों को सुनते हुए पूजाभिलाषी देवगण एकाग्रता एवं प्रसन्न होते हैं । उन महती द्यावा-पृथिवी की सामर्थ्य को जानते हुए उनकी अर्चना करें । सम्पूर्ण भोगों की इच्छा से मेरा मन विचरणशील है ॥२ ॥

२९४७. युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥३ ॥

सत्यव्रतों से अनुबन्धित हे द्यावा-पृथिवि ! अति पुरातन ऋषिगणों ने आपके सत्य रहस्यों को जानकर स्तुति की है । युद्ध के लिए जाने वाले वीर-पुरुषों ने भी आप दोनों की महत्ता को जानकर सर्वदा वन्दना की है ॥३ ॥

२९४८. उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४ ॥

हे सत्य धर्म वाली द्यावा-पृथिवि ! सत्यव्रतधारी सनातन ऋषियों ने आपसे हितकारी वांछित फल प्राप्त किया था । हे पृथिवि ! युद्ध क्षेत्र में जाने वाले वीर योद्धा आपकी महिमा को जानते हुए आपको नमस्कार करते हैं ॥४ ॥

२९४९. को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५ ॥

कौन सा पथ देवों के अभिमुख पहुँचता है ? कौन इसे निश्चित रूप से जानता है ? कौन उसका वर्णन कर सकता है ? क्योंकि देवों के जो गुह्य और उच्च स्थान हैं, उनमें से जो निम्नतम स्थान हैं, वे ही दिखाई पड़ते हैं ॥५॥

२९५०. कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६ ॥

दूरदर्शी मनुष्यों के द्रष्टा सूर्यदेव इस द्यावा-पृथिवी को सब ओर से देखते हैं । रसवती, हर्ष प्रदात्री, समान कर्म से परस्पर संयुक्त यह द्यावा-पृथिवी पक्षियों के घोंसले बनाने के सदृश जल के गर्भस्थान अन्तरिक्ष में अपने लिए विविध स्थान बनाती है ॥६ ॥

[पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण जहाँ तक प्रभावशाली है, वहाँ तक का आकाश पृथ्वी के साथ जुड़ा हुआ है । पृथ्वी का अस्तित्व उस संयुक्त आकाश से पृथक् नहीं है, इसलिए उसे द्यावा-पृथिवी का संयुक्त सम्बोधन दिया गया है । पृथ्वी से सम्बद्ध आयन मण्डल (आयनोस्फियर) सहित अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य के चारों ओर घूमती है । इसलिए सूर्य उसे सब ओर से देखता है और वह (द्यावा-पृथिवी) जगह-जगह अपने आवास बनाती है-ऐसा कहा गया है ।]

२९५१. समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७ ॥

(गुरुत्वाकर्षण से) परस्पर जुड़े होने पर भी अलग-अलग रहने वाली द्यावा-पृथिवी कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होतीं । अक्षय, अनंत अन्तरिक्ष में दोनों दो बहिनों के समान एकरूप होकर रहती हैं । इस प्रकार ये सृष्टि क्रम को चला रही है ॥७ ॥

२९५२. विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते ।
एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥८ ॥

ये द्यावा-पृथिवी समस्त प्राणियों और वस्तुओं को पृथक्-पृथक् स्थान प्रदान करती हैं । ये महान् सूर्य एवं इन्द्रादि देवों को धारण करके भी व्यथित (कम्पित) नहीं होती हैं । स्थावर और जंगम समस्त प्राणियों को मात्र एक पृथ्वी पर ही आश्रय प्राप्त होता है ।पक्षी समूहों के विचरण के लिए द्यावा-पृथिवी के मध्य का स्थान सुनिश्चित है ॥८ ।

२९५३. सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः ।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप महान् पितारूप पोषण कर्त्री और मातारूप उत्पन्न-कर्त्री हैं । हम आपके सनातन और पुरातन इन सम्बन्धों को सर्वदा स्मरण करते हैं । आपके मध्य में स्तुति-अभिलाषी देवगण विस्तीर्ण और प्रकाशित पथों में अपने वाहनों से युक्त होकर अवस्थित होते हैं ॥९ ॥

२९५४. इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१० ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! हम आपके स्तोत्रों का भली प्रकार उच्चारण करते हैं । सोम को उदर में धारण करने वाले, अग्नि रूप जिह्वा से सोम पान करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी तरुण, मेधावान् , प्रख्यात कर्म वाले, मित्र, वरुण और आदित्य देव हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१० ॥

२९५५. हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११ ॥

स्वर्णिम ऐश्वर्य को दान के लिए हाथ में रखने वाले, उत्तम प्रेरणाएँ प्रदान करने वाले सवितादेव, यज्ञ के तीनों सवनों में आकाश से आते हैं ।वे देवों के बीच बैठकर हमारे स्तोत्रों को सुनें और हमें सम्पूर्ण इष्ट-फल प्रदान करें ॥१

२९५६. सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥१२ ॥

कल्याणकारी कर्मवाले, मंगलमय हाथों वाले, धन-सम्पन्न, सत्यव्रतों वाले त्वष्टादेव हमें अभीष्ट फल प्रदान करें । हे ऋभुओ ! सोमाभिषव हेतु पाषाण धारक ऋत्विजों ने यज्ञ किया है । अतएव आप पूषा के साथ उस सोम का पान करके हर्षित हों ॥१२ ॥

२९५७. विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३ ॥

विद्युत् के समान देदीप्यमान रथ वाले, आयुध धारण करने वाले, तेजस्वी, शत्रु-विनाशक, यज्ञ से उत्पन्न होने वाले, वेगवान् तथा यजन योग्य मरुद्गण और देवी सरस्वती हमारी स्तुतियों का श्रवण करें । हे शीघ्र गमनशील मरुद्गणो ! हमें उत्तम वीर पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१३ ॥

२९५८. विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४ ॥

सर्वदा तरुणी, सर्व-जनयित्री, विविध दिशाएँ जिन विष्णुदेव की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करतीं, वे विष्णुदेव बहुत पराक्रमी हैं । उन बहुकर्मा विष्णुदेव के पास यज्ञ में उच्चारित हमारे पूजनीय स्तोत्र उसी प्रकार पहुँचें, जैसे सभी कर्मनिष्ठ, धनवान् के पास पहुँचते हैं ॥१४ ॥

२९५९. इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः३ः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५ ॥

सम्पूर्ण सामर्थ्यों से युक्त वे इन्द्रदेव अपनी महत्ता से द्यावा-पृथिवी दोनों को परिपूर्ण कर देते हैं । शत्रु पुरियों के विध्वंसक, वृत्र-हन्ता, आक्रामक सेना युक्त वे पशुओं का संग्रह करके हमारे लिए विपुल वैभव प्रदान करें ॥१५ ॥

२९६०. नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६ ॥

असत्य से दूर रहने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों पिता के समान हम साधकों की अभिलाषा को पूछ कर उन्हें पूर्ण करने वाले हैं । आप दोनों का जन्म से प्रचलित नाम अति सुन्दर है ।आप दोनों अपार वैभव, धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं; हमें विपुल धन प्रदान करें । आप दोनों अविचलित रहकर हविदाता की रक्षा करें ॥१६ ॥

२९६१. महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७ ॥

हे देवो ! आपका यह नाम-यश अत्यन्त महान् और मनोहर है; जिसके कारण आप सब इन्द्रलोक में दिव्य स्थान पाते हैं । बहुतों द्वारा आवाहन किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! अपने प्रिय ऋभुओं के साथ आप सखाभाव रखते हैं । हमें धनादि लाभ प्रदान करने के लिए हमारी इन स्तुतियों को उनके साथ स्वीकार करें ॥१७ ॥

२९६२. अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८ ॥

अर्यमा, देवमाता अदिति, यजनीय देवगण और अविचल नियम-पालक वरुणदेव हमारी रक्षा करें । हमारे (जीवन) मार्गों से निःसन्तान के योग को दूर करें और घर को सन्तानों और पशुओं से युक्त करें ॥१८ ॥

२९६३. देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् ॥१९ ॥

विविध भाँति से प्रकट होने वाले, देवों के दूतरूप अग्निदेव हम निष्पाप लोगों को भली प्रकार उपदेश करें । पृथ्वी, द्युलोक और जल, सूर्य-नक्षत्रों से पूर्ण अन्तरिक्ष हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१९ ॥

२९६४. शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२० ॥

जल-वृष्टि करके मनुष्यों का कल्याण करने वाले, वनस्पति आदि से हर्षित करने वाले पर्वतदेव हमारी स्तुतियाँ सुनें । देवमाता अदिति, आदित्यों के साथ हमारी स्तुतियाँ सुनें ।मरुद्‌गण हमें कल्याणकारी सुख प्रदान करें ॥२०॥

२९६५. सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥२१ ॥

हमारे मार्ग सर्वदा सुगम हों और अन्नों से युक्त हों । हे देवो ! हमारी ओषधियों को मधुर रस से युक्त करें । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता में हमारा ऐश्वर्य विनष्ट न हो । हम आपके अनुग्रह से धनादि और अन्नों से परिपूर्ण गृह को प्राप्त करें ॥२१ ॥

२९६६. स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥२२ ॥

हे अग्ने !आप हव्य पदार्थों का आस्वादन करें और हमें अन्नादि प्रदान करें । सभी अन्नों को हमारी ओर प्रेरित करें ।आप शत्रुओं को संग्राम में जीतें । उल्लसित मन से युक्त होकर आप सभी दिवसों को प्रकाशित करें ॥२२ ॥

[सूक्त - ५५]

। **ऋषि**- प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य । **देवता**- विश्वेदेवा । **छन्द**- त्रिष्टुप्।

इस सूक्त में बार-बार कहा गया है कि सभी देवों का संयुक्त बल एक ही है । यह उक्ति सूर्य-अग्नि अथवा ऋत-यज्ञ पर घटित होती है -

२९६७. उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१ ॥

उदयकाल से पूर्व उषा जब प्रकाशित होती है, तब अविनाशी सूर्यदेव आकाश में प्रकट होते हैं । तभी यजमान यज्ञादि देवकर्म करते हुए देवों के समीप उपस्थित होते हैं । सभी देवों की महान् शक्ति संयुक्त (एक) ही है ॥१ ॥

२९६८. मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! यहाँ देवगण हमें हिंसित न करें । देवत्व पद को प्राप्त हमारे पूर्वज पितरगण भी हमारे लिए अनिष्ट रहित हों । यज्ञ के प्रकाशक पुरातन द्यावा-पृथिवी के बीच उदीयमान महान् ज्योतिरूप सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं । सभी देवताओं का महान् संयुक्त बल एक ही है ॥२ ॥

२९६९. वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी नानाविध आकांक्षाएँ विभिन्न दिशाओं में गतिशील होती हैं । अग्निष्टोमादि यज्ञों में अग्नि के प्रज्वलित होने पर हम पुरातन स्तोत्रों को जाग्रत् करते हैं । अग्नि प्रज्वलित होने पर हम स्तोत्रों का उच्चारण करेंगे । देवताओं का महान् पुरुषार्थ एक ही है ॥३ ॥

२९७०. समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४ ॥

सर्वसाधारण के शासक, दीप्तिमान् अग्निदेव अनेक स्थानों में यज्ञार्थ प्रतिष्ठित होते हैं । वे यज्ञवेदी के ऊपर शयन करते हैं तथा अरणि (काष्ठ) के माध्यम से प्रकट होते हैं । माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी इन्हें धारण करते हैं, वृष्टि आदि द्वारा द्युलोक परिपुष्ट करते हैं तथा वसुधा उन्हें आश्रय प्रदान करती है, सभी देवों का महान् शक्ति स्रोत एक ही है ॥४ ॥

२९७१. आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५ ॥

ये अग्निदेव अति प्राचीन और जीर्ण-शीर्ण वृक्षों में विद्यमान रहते हैं तथा जो पौधे नये-नये उगे हैं, उनमें भी रहते हैं । इन वनस्पतियों में कोई भी स्थूल प्रजनन क्रिया नहीं करता, फिर भी वे अग्नि द्वारा गर्भ धारण करके फल और फूलों को पैदा करती हैं, इन समस्त देव कार्यों का महान् बल एक ही है ॥५ ॥

२९७२. शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६ ॥

पश्चिम में सोने (अस्त होने) वाला, दो माताओं (उषा और द्युलोक) का यह शिशु (सूर्य) बिना किसी विघ्न-बाधा के अन्तरिक्ष में अकेले ही विचरण करता है । ये सभी कार्य मित्र और वरुण देवों के हैं । सभी देवताओं की महान् शक्ति संयुक्त ही है ॥६ ॥

२९७३. द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७ ॥

दोनों लोकों के निर्माता, यज्ञ के होता तथा यज्ञों के स्वामी अग्निदेव आकाश में सूर्यरूप में सबसे आगे विचरण करते हैं । ये सभी कर्मों के मूलभूत कारण के रूप में भूमि पर निवास करते हैं । स्तोताओं की वाणियाँ ऐसे देव का गुणगान करती हैं । समस्त देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥७ ॥

२९७४. शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत्।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥८ ॥

युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले, शूरवीर के समान ही तेजस्वी अग्निदेव के समक्ष आने वाले सभी प्राणी पराङ्मुख (नतमस्तक) होते हुए दिखाई देते हैं। सबके द्वारा जानने योग्य अग्निदेव जल को धारण करने वाले आकाश में विचरण करते हैं। सभी देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥८ ॥

२९७५. नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥९ ॥

सभी प्राणियों के पालक और देवों के दूत अग्निदेव वनस्पतियों के मध्य संव्याप्त हैं। अपनी तेजस्विता से ये महिमा युक्त अग्निदेव इनके अन्दर विचरण करते हैं। जब वे नानाविध रूपों को धारण करते हैं, तभी वे हमें दिखाई देते हैं। समस्त देवों की महान् शक्ति एक (संयुक्त) ही है ॥९ ॥

२९७६. विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१० ॥

अविनाशी, प्रिय, लोकों के धारणकर्त्ता और सर्वरक्षक विष्णुदेव अपने मार्ग से परम धाम की रक्षा करते हैं। अग्निदेव उन सम्पूर्ण लोकों के ज्ञाता हैं। देवताओं की महान् विलक्षण शक्ति का स्रोत एक ही है ॥१० ॥

२९७७. नाना चक्राते यम्या३ वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत्।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥११ ॥

दिन-रात्रि रूपी दो जुड़वाँ बहिनें नाना रूपों को धारण करती हैं। उनमें एक तेजस्विनी और दूसरी कृष्णवर्णा है। जो कृष्णवर्णा और प्रकाशयुक्त स्त्रियाँ हैं, वे दोनों परस्पर बहिनें हैं। समस्त देवकार्यों का बल संयुक्त ही है ॥११ ॥

२९७८. माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२ ॥

(पृथ्वी-द्युलोक) ये दोनों सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक, पोषक, तृप्तिदायक, अमृतमय पदार्थों के दाता तथा सम्पूर्ण विश्व को अपना रस प्रदान करने वाले हैं। सर्व उत्पादक होने से माता रूप तथा एक दूसरे से पोषक रस ग्रहण करने के कारण पुत्र-पुत्री रूप (द्यावा-पृथिवी) की हम स्तुति करते हैं। सभी देवताओं का महान् पराक्रम एक ही है ॥१२ ॥

२९७९. अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३ ॥

दूसरे के वत्स (बछड़े या शिशु) को (प्रेम से) चाटने वाली, (प्रसन्नता से) शब्द करने वाली, धेनु (गाय-धारण करने वाली पृथ्वी) अपने थनों में कहाँ से दूध भरती है? (सूर्य से उत्पन्न मेघों को प्यार करने वाली धरती में पोषण शक्ति कहाँ से आती है?) यह इला (पृथिवी) ऋत (यज्ञ) के दूध से सिंचित होती है, सभी देवों की शक्ति एक ही है ॥१३ ॥

२९८०. पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४ ॥

विराट् पुरुष के पैरों से उत्पन्न होने वाली (पृथ्वी) विभिन्न रूपों को धारण करती है। तीनों लोकों (द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी) को प्रकाशित करने वाले सूर्य की किरणों को चाटते हुए ऊर्ध्व गति पाती है। सत्यरूप सूर्यदेव के स्थान को जानते हुए हम उनकी वन्दना करते हैं। समस्त देवों का महान् बल एक ही है ॥१४ ॥

२९८१. पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या३ सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५ ॥

सुन्दर रूप वाले दिन और रात्रि दोनों अन्तरिक्ष में गमन करते हैं । उनमें एक रात्रि कृष्णवर्णा होने से छिपी हुई रहती है और दूसरा, 'दिन' प्रकाशयुक्त होने से सभी को दृष्टिगोचर होता है । इन दोनों (दिन और रात्रि) का मार्ग (अन्तरिक्ष) एक होते हुए भी अलग-अलग विभाजित है । समस्त देवों का महान् बल संयुक्त ही है ॥१५ ॥

२९८२. आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१६ ॥

शिशुओं से रहित, अमृत का दोहन करने वाली, तेजस्विता युक्त, दोहन न की गई तरुणी गौएँ (किरणें या दिशायें) प्रतिदिन नवीनता को धारण करके अमृत रस प्रदान करती हैं । समस्त देवों का महान् पुरुषार्थ एक ही है ॥१६ ॥

२९८३. यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७ ॥

जो वीर (तेजस्वी मेघ) किसी दिशा में गर्जन करता है, वह अन्य समूह में जाकर (वर्षा जल रूपी) अपने वीर्य का सिंचन करता है । इस प्रकार जल बरसाकर पृथ्वी का पालन करने और ऐश्वर्य प्रदान करने से वह सबके स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित होता है । देवों का महान् बल एक ही है ॥१७ ॥

२९८४. वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळहा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८ ॥

हे मनुष्यो ! (इस) वीर (इन्द्र या आत्मशक्ति) के उत्तम पराक्रम की हम प्रशंसा करें, इनके इस पराक्रम को देवगण भी जानते हैं । ये छः (षट् ऋतुओं-षट् सम्पत्ति) से युक्त हैं, (किन्तु) पाँच (पंच प्राण, पंचतत्त्व या पंच इन्द्रियों) द्वारा इसका वहन किया जाता है । देवों का महान् पराक्रम संयुक्त ही है ॥१८ ॥

२९८५. देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९ ॥

सबके उत्पादक, अनेक रूपों से युक्त त्वष्टादेव अनेक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं । वही इन्हें परिपुष्ट भी करते हैं । ये सम्पूर्ण भुवन इन्हीं त्वष्टादेव के द्वारा रचे गये हैं । समस्त देवों की महान् शक्ति एक ही है ॥१९ ॥

२९८६. मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२० ॥

परस्पर मिल-जुल कर चलने वाले द्युलोक और पृथ्वी लोक इन्द्रदेव की महिमा से ही प्रेरित होकर गतिमान् होते हैं । वे दोनों ही लोक इन्द्रदेव के तेज से संव्याप्त हैं । ऐसे शूरवीर इन्द्रदेव (कृपण) शत्रुओं के धनों को बलपूर्वक प्राप्त करते हैं । समस्त देवों का महान् पराक्रम एक ही है ॥२० ॥

२९८७. इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१ ॥

अपनी प्रजाओं के मित्र के समान हितैषी एक राजा जिस प्रकार सदैव अपनी प्रजा के समीप रहता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव भी हम सबको धारण करने वाली पृथ्वी के समीप रहते हैं । इन इन्द्रदेव के सहयोगी वीर मरुद्गण सदैव आगे बढ़ने वाले तथा कल्याण करने वाले हैं । समस्त देवताओं का महान् बल एक ही है ॥२१ ॥

२९८८. निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जल और ओषधियाँ आपके ऐश्वर्य से ही समृद्धिशाली हैं । पृथ्वी भी आपके ही ऐश्वर्य को धारण करती है । अतएव आपके मित्रस्वरूप हम, श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पन्न हों । समस्त देवों का महान् पराक्रम एक ही है ॥२२ ॥

[सूक्त - ५६]

[ऋषि - प्रजापति वैश्वामित्र अथवा प्रजापति वाच्य । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२९८९. न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि ।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥१ ॥

देवों के नियम प्रथम (शाश्वत अथवा सर्वोपरि) एवं अविचल हैं । मायावी (कर्म कुशल) व्यक्ति एवं बुद्धिमान् उन (प्रकृति के अनुशासनों) को खण्डित नहीं करते । द्रोह रहित , ज्ञान - सम्पन्न द्यावा-पृथिवी भी उनका उल्लंघन नहीं करते । स्थिर बनाये गये पर्वत कभी झुकते नहीं ॥१ ॥

[कुशल शिल्पियों (टेक्नॉलॉजी के विशेषज्ञों) तथा बुद्धिमानों से अपेक्षा की गयी है कि वे प्रकृतिगत दैवी नियमों की मर्यादा में रहें । प्रकृति के दिव्य सन्तुलन (इकॉलॉजिकल बैलेंस) को बिगाड़ें नहीं ।]

२९९०. षड्भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः ।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥२ ॥

एक स्थायी संवत्सर, वसन्त ग्रीष्मादि छः ऋतुओं को वहन करता है । ऋत (सत्य अनुशासन) पर चलने वाले तथा अति श्रेष्ठ आदित्यात्मक संवत्सर का प्रभाव सूर्य किरणों से प्राप्त होता है । सतत गतिशील एवं विस्तृत तीनों लोक क्रमशः उच्चतर स्थानों पर अवस्थित हैं । उनमें स्वर्ग और अन्तरिक्ष सूक्ष्म रूप में (अदृश्य) हैं तथा एक पृथ्वी लोक प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है ॥२ ॥

[ऋतुओं के परिवर्तन का स्रोत सूर्य है । वह प्रभाव किरणों के माध्यम से प्राप्त होता है । पृथ्वी पर ही परिवर्तन दिखाई देता है; परन्तु वह वास्तव में द्युलोक एवं अंतरिक्ष में हुए (अदृश्य) परिवर्तनों के प्रतिफल ही होते हैं ।]

२९९१. त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३ ॥

तीन प्रकार के बलों (सृजन, पोषण, परिवर्तन की क्षमताओं) से युक्त, वीर, अनेक रूपों से युक्त, तीन (द्यु, अन्तरिक्ष, पृथ्वी) से युक्त, अनेक रंगों से युक्त, प्रज्ञावान् , तीनों लोकों में स्थित, शक्तिरूपी तीनों सेनाओं से सम्पन्न सूर्यदेव का उदय होता है । वे अपनी किरणों द्वारा समस्त ओषधियों में रेतस् का (प्राण ऊर्जा का) संचार करते हैं ॥१३ ।

२९९२. अभीक आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नाम ।
आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग्व्रजन्तीः परि षीमवृञ्जन् ॥४ ॥

दिव्य जल (रस धाराओं) से सुसम्पन्न सूर्यदेव की आभा ही इन समस्त वनस्पतियों के वैभव रूप में बिखरी हुई है । उन आदित्यगणों के सुन्दर नाम का हम गुणगान करते हैं । सूर्यदेव से सम्बद्ध रस ही वर्षा (जल, प्राण-पर्जन्य) के रूप में पृथ्वी को तृप्त (परिपुष्ट) करते हैं ॥४ ॥

२९९३. त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५ ॥

हे नदियो ! आप तीनों लोकों में निवास करती हैं तथा तीन प्रकार के देवगण भी इन तीनों लोकों में विद्यमान है। इन तीनों लोकों के निर्माता सूर्यदेव समस्त यज्ञीय प्रवाहों के स्वामी हैं। (पोषक रसों से युक्त) इला, सरस्वती और भारती तीनों अन्तरिक्षीय देवियाँ (दिव्य रस धाराएँ) द्युलोक द्वारा तीनों सवनों से युक्त इस यज्ञ में पधारें ॥५ ॥

२९९४. त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६ ॥

हे सर्वप्रेरक सूर्यदेव ! आप दिव्यलोक से आकर प्रतिदिन तीन बार हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें। ऐश्वर्यवान् सबके रक्षक हे सूर्यदेव ! आप हमें दिवस के तीनों सवनों में तीनों प्रकार के धन प्रदान करें। हे बुद्धिमान् ! आप हमें धन प्राप्ति के योग्य बनायें ॥६ ॥

२९९५. त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७ ॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव हमें द्युलोक से तीन प्रकार के धनों को प्रदान करें। तेजस्वी कल्याणकारी हाथों से युक्त मित्र, वरुण, अन्तरिक्ष और विशाल द्यावा-पृथिवी भी सूर्यदेव से धन-वैभव के वृद्धि की याचना करते हैं ॥७ ॥

२९९६. त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८ ॥

क्षयरहित, सर्वजित् और द्युतिमान् तीन लोक (श्रेष्ठ स्थान) हैं। इन तीनों स्थानों में कलात्मक संवत्सर के अग्नि, वायु और सूर्य नामक तीन पुत्र शोभायमान होते हैं। सत्यनिष्ठ, उत्साहवर्धक कार्यों में तत्पर और कभी न झुकने वाले देवगणों का दिन में तीन बार (तीनों सवनों में) हमारे यज्ञ में आगमन हो ॥८ ॥

[सूक्त - ५७]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२९९७. प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥१ ॥

हे ज्ञानवान् इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ संरक्षण के अभाव में इधर-उधर भटकती हुई गौ की भाँति (अज्ञानता के अन्धकार में) भटकते हुए हम लोगों को आप संरक्षण प्रदान करें। अभीप्सित फल उपलब्ध कराने वाली हमारी (गौओं) स्तुतियों को इन्द्रदेव (अग्निदेव) स्वीकार करें ॥१ ॥

२९९८. इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२ ॥

अभीप्सित फल प्रदान करके सबका मंगल करने वाले मित्रावरुण, इन्द्रदेव, पूषादेव तथा अन्य देवगण प्रसन्न होकर अन्तरिक्षीय मेघ का दोहन करते हैं। सर्वदेवगण हमारी स्तुतियों से आनन्द प्राप्त करते हैं। अतएव हे वसुदेवो ! आपकी कृपादृष्टि से आपके द्वारा प्रदत्त सुखों को हम प्राप्त करें ॥२ ॥

२९९९. या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३ ॥

जो वनस्पतियाँ जल के रूप में प्राण-पर्जन्य की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव की शक्ति का अनुदान चाहती हैं,

वे विनम्रतापूर्वक उनकी सृजन-सामर्थ्य से परिचित हैं । फल की अभिलाषिणी ओषधियाँ (व्रीहि, यव, नीवारादि) विभिन्न फसलों के रूप में पुत्रों (प्राणियों) के पास पहुँचती हैं ॥३ ॥

३०००. अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४ ॥

यज्ञ में सोमाभिषवण करने वाले पाषाणों को धारण करते हुए हम अपनी मननशील बुद्धि से विशिष्ट रूप से शोभायमान द्यावा-पृथिवी की स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! अनेकों के द्वारा वरण करने योग्य, कमनीय और पूजनीय आपकी ज्वालाएँ, मनुष्यों का कल्याण करने के लिए ऊर्ध्वगामी हों ॥४ ॥

३००१. या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी मधुर, तेजस्वी, प्रज्ञा-सम्पन्न एवं सर्वत्र संव्याप्त ज्वालाएँ देवों का आवाहन करने के लिए प्रेरित होती हैं । उन ज्वालाओं के द्वारा समस्त पूजनीय देवों को इस यज्ञ में प्रतिष्ठित करें । देवों को मधुर सोमरस समर्पित करके दुष्टों से हमारी रक्षा करें ॥५ ॥

३००२. या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद्देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥६ ॥

हे दिव्यता से सम्पन्न अग्निदेव !आपकी कुमार्ग से बचाने वाली बुद्धि मेघों की धारा की भाँति सबको तृप्त करती है ।हे सबके आश्रयभूत जातवेदा(अग्निदेव) !आप हमें सारे संसार का हित करने वाली बुद्धि प्रदान करें॥६ ॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३००३. धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१ ॥

उषा अग्निदेव के योग्य प्रकृति रस का दोहन करती है ।उषा पुत्र सूर्य उनके मध्य विचरते हैं । शुभ्र दीप्ति से देदीप्यमान सूर्यदेवप्रकाश फैलाते हुए जाते हैं ।इसी उषाकाल में अश्विनीकुमारों के लिए स्तोत्र-गान होता है॥१ ॥

३००४. सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद्वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! श्रेष्ठ रथ में भली प्रकार से योजित अश्व आपको इस यज्ञ में लाने के लिए तैयार हैं । माता-पिता के पास पहुँचने वाले बच्चे की भाँति यज्ञ आपके पास पहुँचे । कुटिल बुद्धि वालों को हमसे दूर करें । हम आप दोनों के लिए हविष्यान्न तैयार करते हैं । आप हमारे पास आयें ॥२ ॥

३००५. सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥३ ॥

हे शत्रु-नाशक अश्विनीकुमारो ! सुन्दर चक्रों से युक्त, उत्तम अश्वों द्वारा योजित रथ पर सवार होकर यज्ञशाला में पधारें । सोम अभिषवण कर्त्ताओं के द्वारा गाये जाने वाले स्तोत्रों का श्रवण करें । पुरातन काल से ही मेधावीगण आपकी पुष्टि के लिए सोम के साथ ऐसी स्तुतियाँ करते रहे हैं ॥३ ॥

३००६. आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्रमित्रासो न ददुरुस्त्रो अग्रे ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो !आप हमारी इन स्तुतियों को स्वीकार करें, अश्वों से युक्त होकर आएँ । स्तोतागण आपका आवाहन करते हैं ।सूर्योदय के पूर्व दुग्ध मधुर मिश्रित सोम को ये मित्ररूप यजमान आपको निवेदित करते हैं ॥४॥

३००७. तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्त्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् अश्विनीकुमारो ! बहुत से लोकों को पार करके आप यहाँ पधारें । सम्पूर्ण स्तोताजनों के स्तोत्र आपके निमित्त उच्चारित होते हैं । हे शत्रुओं के संहारक अश्विनीकुमारो ! जिन मार्गों से देवगण गमन करते हैं, उन मार्गों से आप यहाँ आगमन करें, क्योंकि यहाँ आपके निमित्त मधुर सोम के पात्र तैयार किये गये हैं ॥५ ॥

३००८. पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६ ॥

हे नेतृत्वकर्ता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों की पुरातन मित्रता सबके लिए कल्याणकारी है । आपका धन सर्वदा हमारी ओर प्रवहमान रहे । आप दोनों की हितकारी मित्रता से हम बारम्बार लाभान्वित हों । मधुर सोम के द्वारा हम आपको तृप्त करते हुए प्रसन्न हो रहे हैं ॥६ ॥

३००९. अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप उत्तम, सामर्थ्यवान् , नित्य-तरुण, असत्यविहीन और उत्तम फलप्रदाता हैं । आप वायु के सदृश वेगवान् अश्वों से युक्त होकर अबाध गति से आगमन करें । यहाँ आकर दिवस के अन्त में अभिषुत सोम का प्रीतिपूर्वक पान करें ॥७ ॥

३०१०. अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपको सब ओर से प्रचुर मात्रा में हविष्यान्न प्राप्त होता है । कर्म-कुशल ऋत्विग्गण सब दोषों से रहित होकर अपनी स्तुतियों के साथ आपकी सेवा करते है । सोम वल्ली कूटने वाले पाषाण के शब्द सुनकर आपका रथ द्यावा-पृथिवी का परिभ्रमण करते हुए (सोमपान के लिए) यज्ञस्थल पर प्रकट होता है ॥८ ॥

३०११. अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! यह वांछित सोमरस अत्यन्त मधुर रसों से परिपूर्ण है, यहाँ आकर इसका पान करें । विपुल तेजस्विता विकीर्ण करता हुआ आपका रथ सोमाभिषवकारी यजमान के घर बार-बार आगमन करता है ॥९ ॥

[सूक्त - ५९]

। ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - मित्र । छन्द - त्रिष्टुप् , ६ - ९ गायत्री ।।

३०१२. मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१ ॥

मित्रदेव सभी मनुष्यों को कर्म में प्रवृत्त रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं । रस आदि उपलब्ध कराने वाले अपने श्रेष्ठ कर्मों से पृथ्वी और द्युलोक को धारण करते हैं । वे सभी सत्कर्मरत मनुष्यों के ऊपर निरन्तर अपने अनुग्रह की वर्षा करते हैं । हे मनुष्यो ! ऐसे मित्रदेव के निमित्त घृत युक्त हविष्यान्न प्रदान करें ॥१ ॥

३०१३. प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२ ॥

हे आदित्य और मित्रदेव ! जो मनुष्य यज्ञादि कर्म से युक्त होकर आपके लिए हविष्यान्न समर्पित करता है; वह अन्नवान् होता है । आपके संरक्षण में रहकर वह न तो विनष्ट होता है और न ही जीवन में दुःख पाता है । पाप उसके निकट नहीं पहुँचता है, न ही दूर से प्रभावित कर पाता है ॥२ ॥

३०१४. अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३ ॥

हे मित्रदेव ! हम रोगों से मुक्त होकर तथा पोषक अन्नों से परिपुष्ट होकर हर्षित हों । हम पृथ्वी के विस्तीर्ण क्षेत्र में नमन भाव से निवास करें । हम आदित्यदेव के व्रतों (नियमों) के अधीन रहकर जीवनयापन करें । हमें मित्रदेव का अनुग्रह सदैव मिलता रहे ॥३ ॥

३०१५. अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४ ॥

नमन योग्य, उत्तम, सुखकारी, स्वामी, उत्तम बल से युक्त, सबके मित्रस्वरूप ये सूर्यदेव उदित हुए हैं । हम यजमान उन पूजनीय सूर्यदेव का कल्याणकारी अनुग्रह सदैव प्राप्त करते रहें ॥४ ॥

३०१६. महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! आदित्यदेव अत्यन्त महान् हैं । वे समस्त मनुष्यों को कर्मों में प्रवृत्त करने वाले हैं । सभी लोग नमन करते हुए इनकी उपासना करें । ये स्तुति करने वालों को उत्तम सुखों से समृद्ध करते हैं । उन स्तुतियोग्य मित्रदेव के निमित्त अत्यन्त प्रीतियुक्त हवियाँ समर्पित करें ॥५ ॥

३०१७. मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६ ॥

जल (दिव्य रसों) की वर्षा के रूप में प्राप्त होने वाला सूर्यदेव का अनुग्रह सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा करने वाला है । ये सभी के लिए उपयोगी धन-धान्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३०१८. अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७ ॥

जिन सूर्यदेव ने अपनी महिमा से द्युलोक को संव्याप्त किया है, उन्हीं कीर्तिमान् सूर्यदेव ने अपनी किरणों से जल बरसाकर अन्नादि से पृथ्वी को लाभान्वित किया ॥७ ॥

३०१९. मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८ ॥

शत्रुओं को पराभूत करने में सक्षम, सामर्थ्यशाली मित्रदेव के लिये पाँचों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) आहुति प्रदान करते हैं । वे मित्रदेव अपनी सामर्थ्य से सभी देवताओं को धारण करते हैं ॥८ ॥

३०२०. मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥९ ॥

देवों और मनुष्यों के बीच सत्कार भावना रखने वाले साधकों के लिए मित्रदेव कल्याणकारी अन्नादि प्रदान

करते हैं । जो व्रतों एवं नियमादि का पालन करते हैं, उन्हें ही यह अनुदान प्राप्त होते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन । **देवता** - ऋभुगण, ५-७ ऋभुगण एवं इन्द्र । **छन्द** - जगती]

३०२१. इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१ ॥

शत्रुओं पर आक्रमण करके तेजस्विता प्रकट करने वाले, उत्तम धनुर्धारी, वीर हे ऋभुगण ! कुशलतापूर्ण कार्यों के द्वारा आप पूजनीय पद को उपलब्ध करते हैं । जो मनुष्य आपकी भाँति श्रेष्ठ कार्यों को विचारपूर्वक सम्पादित करते हैं, उन्हीं के साथ मन से आपका बन्धुभाव रहता है ॥१ ॥

३०२२. याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२ ॥

हे ऋभुगणो ! जिस सामर्थ्य से आपने चमसों (यज्ञ पात्र) का सुन्दर विभाजन किया, जिस बुद्धि से आपने गौ (पृथ्वी या इन्द्रियों) को चर्म (संरक्षक पर्त) से युक्त किया, जिस मानस से आपने इन्द्र (संगठक सत्ता) के अश्वों (पुरुषार्थ) को समर्थ बनाया; उन्हीं के कारण आपने देवत्व प्राप्त किया ॥२ ॥

३०२३. इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३ ॥

मनुष्यों की अवनति को रोकने वाले, उत्तम कर्मों को करने वाले ऋभुदेवों ने इन्द्रदेव की मित्रता को प्राप्त किया । सत्कर्मों के निर्वाहक तथा श्रेष्ठ धनुर्धारी ऋभुगणों ने अपनी सामर्थ्यों और सत्कर्मों के कारण सर्वत्र संव्याप्त होकर अमृतपद को उपलब्ध किया ॥३ ॥

३०२४. इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४ ॥

मेधावी और श्रेष्ठ धनुर्धर हे ऋभुदेवो ! आप सोमयाग में इन्द्रदेव के साथ एक ही रथ पर बैठकर पहुँचते हैं । जो साधक आपके प्रति मित्रभाव रखते हैं, उनके समीप आप धन एवं ऐश्वर्य साधन लेकर गमन करते हैं । आपके श्रेष्ठ, पराक्रमी कार्यों की कोई उपमा नहीं दी जा सकती ॥४ ॥

३०२५. इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः समुक्षितं सुतं सोममा वृषस्वा गभस्त्योः ।
धियेषितो मघवन्दाशुषो गृहे सौधन्वनेभिः सह मत्स्वा नृभिः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! बल-सम्पन्न ऋभुओं के साथ इस यज्ञ में आकर भली प्रकार अभिषुत सोम को ग्रहण करें । आप अपनी सद्‌भावपूर्ण बुद्धि से प्रेरित होकर सुधन्वा के पुत्रों के साथ, दानशीलों के घर जाकर आनन्दित हों ॥५ ॥

३०२६. इन्द्र ऋभुमान्वाजवान्मत्स्वेह नोऽस्मिन्त्सवने शच्या पुरुष्टुत ।
इमानि तुभ्यं स्वसराणि येमिरे व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः ॥६ ॥

अनेकों द्वारा प्रशंसनीय हे इन्द्रदेव ! आप सामर्थ्यशाली ऋभुओं और इन्द्राणी से युक्त होकर हमारे यज्ञ में आकर आनन्दित हों । समस्त मनुष्यों और देवों के श्रेष्ठ कर्म आपके ही कारण नियमानुकूल गतिमान् होते हैं ॥६ ॥

३०२७. **इन्द्र ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।**
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर आप उनके लिए प्रचुर अन्न उत्पन्न करें तथा बलशाली ऋभुओं के साथ इस यज्ञ में आगमन करें । मरुद्‌गण भी सौ गतिशील अश्वों के साथ यजमानों के द्वारा सत्कर्मों की वृद्धि के लिए सम्पन्न किये जा रहे इस श्रेष्ठ यज्ञ में पधारें ॥७ ॥

[सूक्त - ६१]

[ऋषि - विश्वामित्र गाथिन । देवता - उषा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३०२८. **उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।**
पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१ ॥

अन्नवती और ऐश्वर्यशालिनी हे उषा ! आप प्रखर ज्ञानवती होकर स्तोताओं के स्तोत्रों का श्रवण करें । सबके द्वारा धारण करने योग्य हे उषा देवि ! आप पुरातन होकर भी तरुणी की तरह शोभायमान हों । आप विशेष बुद्धिमती होकर इस यज्ञ की ओर आगमन करें ॥१ ॥

३०२९. **उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।**
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२ ॥

स्वर्णिम आभा वाले रथ पर विराजमान हे अमर उषा देवि ! आप प्रीति युक्त, सत्यरूप वचनों को उच्चारित करने वाली हैं । आप सूर्य किरणों द्वारा प्रकाशित हैं । विशेष बलशाली तथा सुवर्ण के समान तेजस्वी जो अश्व भली प्रकार रथ के साथ जोड़े जा सकते हैं, वे आपको लेकर यज्ञ स्थल पर पधारें ॥२ ॥

३०३०. **उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।**
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३ ॥

हे उषा देवि ! आप सम्पूर्ण भुवनों में भ्रमण करने वाली अमृत स्वरूपा हैं । सूर्यदेव के ध्वज के समान आकाश में उन्नत स्थान पर रहती हैं । हे नित्य नूतन उषा देवि ! आप एक ही मार्ग में गमन करती हुई, आकाश में विचरणशील सूर्यदेव के चक्राङ्गों के समान पुनः-पुनः उसी मार्ग पर चलती रहें ॥३ ॥

३०३१. **अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।**
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४ ॥

जो ऐश्वर्यशालिनी उषा वस्त्र के समान ढकने वाली (शोभा बढ़ाने वाली) हैं । वे विस्तृत अन्धकार को दूर करती हुई सूर्य की पत्नी रूप में गमन करती हैं । वही सौभाग्यशालिनी और सत्कर्मशीला उषा द्युलोक और पृथ्वी के अन्तिम भाग तक प्रकाशित होती हैं ॥४ ॥

३०३२. **अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।**
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसन्दृक् ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! आप सबके सम्मुख प्रकाशित होने वाली उषादेवी की नमनपूर्वक स्तुति करें । मधुरता को धारण करने वाली उषा द्युलोक के ऊँचे भाग पर अपनी तेजस्विता को स्थिर रखती हैं । रमणीय शोभा को धारण करने वाली तेजस्विनी उषा अत्यन्त दीप्तिमान् हो रही हैं ॥५ ॥

३०३३. ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६ ॥

सत्यवती उषा द्युलोक से परे आगमन करने वाली किरणों द्वारा प्रकट होती हैं। ऐश्वर्यशालिनी उषा विविध रूपों से युक्त होकर द्युलोक और पृथिवी को संव्याप्त करती हैं। हे अग्निदेव! सम्मुख प्रकट होने वाली प्रकाशित उषा से हविष्य की कामना करने वाले आप, श्रेष्ठधनों को उपलब्ध करते हैं ॥६ ॥

३०३४. ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७ ॥

वृष्टि के प्रेरक सूर्यदेव दिन के प्रारम्भ में उषा, को प्रेरित करते हुए द्यावा-पृथिवी के मध्य प्रकट होते हैं। तब उषा, मित्र और वरुणदेवों की प्रभारूपा होकर सुवर्ण के सदृश ही अपने प्रकाश को चारों ओर प्रसारित करती हैं

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - विश्वामित्र गाथिन; १६-१८ विश्वामित्र गाथिन अथवा जमदग्नि। **देवता** - १-३ इन्द्र - वरुण; ४-६ बृहस्पति; ७-९ पूषा; १०-१२ सविता; १३-१५ सोम; १६-१८ मित्रावरुण। **छन्द** - गायत्री, १-३ त्रिष्टुप्।

३०३५. इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व १ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१ ॥

हे इन्द्रावरुणो! शत्रुओं को वश में करने वाले आपके गतिशील शस्त्र, सज्जनों की रक्षा करने वाले हों, वे किसी के द्वारा नष्ट न हों। आप जिससे अपने मित्रबन्धुओं को अन्नादि प्रदान करते हैं; वह यश, कहाँ स्थित है ? ॥

३०३६. अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२ ॥

हे इन्द्रावरुणो !धनैश्वर्य की कामना करने वाले ये महान् यजमान अपने रक्षणार्थ (अन्न के लिए) आप दोनों का बार-बार आवाहन करते हैं। हे मरुद्‌गण ! द्यावा-पृथिवी के साथ मिलकर आप हमारे निवेदन को सुनें ॥२ ॥

३०३७. अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः।
अस्मान्वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान्होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥३ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! हमें वांछित धन की प्राप्ति हो। हे मरुद्‌गण ! आप हमें सर्व समर्थ वीर पुत्रों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें। सबके द्वारा वरण किये जाने योग्य देवशक्तियाँ शरण देकर हम लोगों को संरक्षण प्रदान करें। होता और भारती (अग्नि पत्नी और सूर्य पत्नी) सद्‌भावपूर्ण वाणी द्वारा हमारा पालन-पोषण करें ॥३ ॥

३०३८. बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥४ ॥

परिपूर्ण दिव्यगुण सम्पन्न हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश (हव्य) का सेवन करें। आप हविष्यान्न देने वाले दान-दाता यजमानों को श्रेष्ठ-उपयोगी धन प्रदान करें ॥४ ॥

३०३९. शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत। अनाम्योज आ चके ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! आप यज्ञों में अर्चन-योग्य, स्तोत्र वाणी द्वारा पवित्र बृहस्पतिदेव को नमन करें। हम उनसे शत्रुओं द्वारा अपराजेय बल-पराक्रम की कामना करते हैं ॥५ ॥

३०४०. वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम्। बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६ ॥

मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले, अनेक रूपों को धारण करने में समर्थ, किसी के भी दबाव में न आने वाले तथा वरण करने योग्य बृहस्पतिदेव की हम सब पूजा-अर्चना करते हैं ॥६ ॥

३०४१. इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७ ॥

हे पूषादेव ! ये नूतन और श्रेष्ठ स्तोत्र आपके लिए हैं । इन स्तुतियों का पाठ हम आपके निमित्त ही करते हैं

३०४२. तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥८ ॥

हे पूषादेव ! आप हमारी इस श्रेष्ठ वाणी का श्रवण करें और सामर्थ्य प्राप्ति की अभिलाषा करने वाली इस बुद्धि की उसी प्रकार रक्षा करें, जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी वधू (स्त्री) की सुरक्षा करता है ॥८ ॥

३०४३. यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥९ ॥

जो पूषादेव विश्व-ब्रह्माण्ड को विशिष्ट रीति से देखते है - निरीक्षण करते हैं, वे हम लोगों के संरक्षक हों ॥

३०४४. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१० ॥

जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं, उन सविता देवता के वरण करने योग्य, विकारनाशक, दिव्यता प्रदान करने वाले तेज को हम धारण करते हैं ॥१० ॥

३०४५. देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥११ ॥

जगत् के उत्पादक, प्रेरक, प्रकाशक सवितादेव के तेज को धारण करते हुए, उनसे वैभव की कामना करते हैं

३०४६. देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२ ॥

सद्बुद्धि से प्रेरित होकर, सत्कर्मशील ज्ञानीजन श्रेष्ठ रीति से स्तोत्रों द्वारा सवितादेव की स्तुति करते हैं ॥१२ ।

३०४७. सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३ ॥

सन्मार्गों के ज्ञाता सोमदेव सर्वत्र गतिशील हैं और देवों के लिए उपयुक्त, श्रेष्ठ यज्ञस्थल पर पहुँचते हैं ॥१३ ॥

३०४८. सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४ ॥

सोमदेव हम स्तोताओं तथा द्विपदों और चतुष्पद-पशुओं के निमित्त आरोग्यप्रद श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें ॥१४ ॥

३०४९. अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥१५ ॥

सोमदेव हमारे रोगों को दूर करके आयु को बढ़ाएँ, शत्रुओं को पराभूत करते हुए यज्ञस्थल पर प्रतिष्ठित हों

३०५०. आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६ ॥

हे मित्रावरुणदेव ! आप हमारी गौओं (इन्द्रियों) को घृत (स्नेह) से युक्त करें और हमारे आवासों-लोकों को भी श्रेष्ठ रसों (भावों) से सिंचित करें ॥१६ ॥

३०५१. उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७ ॥

हे पवित्रकर्मा मित्रावरुणो ! आप हविष्यान्न एवं स्तुतियों द्वारा पुष्ट होकर गरिमामय यश को प्राप्त करते हैं

३०५२. गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥१८ ॥

जमदग्नि ऋषि द्वारा स्तुत हे मित्रावरुणो ! आप यज्ञ स्थल पर विराजें और प्रस्तुत सोमरस का पान करें ॥१८

॥ इति तृतीयं मण्डलम् ॥

॥ अथ चतुर्थं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

| **ऋषि** - वामदेव । **देवता** - अग्नि, २-५ अग्नि अथवा अग्नीवरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ अष्टि, २ अति जगती, ३ धृति । |

३०५३. **त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।**
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥१ ॥

हे वरुणदेव ! आप अविनाशी तथा तेजस् सम्पन्न हैं । उत्साहयुक्त समस्त देव अपने पराक्रम द्वारा आपको प्राप्त करते हैं । अनश्वर, प्रकाशमान तथा अत्यन्त विद्वान् हे अग्निदेव ! देवताओं ने मानवों के लिए कल्याणकारी यज्ञ के निमित आपको पैदा किया । आप समस्त कर्मों को जानने वाले हैं । देवताओं ने समस्त यज्ञों में उपस्थित रहने के लिए आपको उत्पन्न किया ॥१ ॥

३०५४. **स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं**
यज्ञवनसम् । ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! वरुणदेव आपके बन्धु हैं । आहुतियों के योग्य, यज्ञ का सेवन करने वाले, जल को धारण करने वाले, यज्ञों में वन्दनीय, सद्बुद्धि वाले वरुणदेव अत्यन्त ओज से परिपूर्ण हैं । ऐसे वरुणदेव को आप याजकों की ओर प्रेरित करें ॥२ ॥

३०५५. **सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।**
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥३ ॥

हे श्रेष्ठ सखा अग्निदेव ! जैसे द्रुतगामी अश्व शीघ्र गमन करने वाले रथ को ले जाते हैं, उसी प्रकार आप अपने सखा वरुणदेव को हमारी ओर ले आएं । हे अग्निदेव ! आप वरुणदेव तथा तेजस्-सम्पन्न मरुद्गण के साथ सोमरस ग्रहण करें । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमारी सन्तानों को सुख प्रदान करें । हे दर्शनीय अग्निदेव ! आप हमें सुखी बनाएँ ॥३ ॥

३०५६. **त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेळोऽवयासिसीष्ठाः ।**
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वज्ञ, कान्तिमान् , पूजनीय और भली प्रकार आहुतियों को देवों तक पहुंचाने वाले हैं । आप हमारे लिए वरुण देवता को प्रसन्न करें और हमारे सब प्रकार के दुर्भाग्यों को नष्ट करें ॥४ ॥

३०५७. **स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।**
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! इस उषाकाल में अपनी रक्षक शक्ति सहित हमारे अत्यधिक निकट आकर, आप हमारी रक्षा करें तथा हमारी आहुतियों को वरुणदेव तक पहुँचाकर उन्हें तृप्त करें । सर्वदा आवाहन करने योग्य आप (अग्निदेव) स्वयं हमारी सुखदायी हवि को ग्रहण करें ॥५ ॥

३०५८. अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य सन्दृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६ ॥

जिस प्रकार गोपाल (गाय पालने वाले) के पास गो-दुग्ध तथा घृत, पवित्र और तेजस् युक्त होते हैं तथा गो दान करने वाले का दान प्रशंसनीय होता है; उसी प्रकार श्रेष्ठ धनवान् अग्निदेव का प्रार्थनीय तेज मानवों के बीच अत्यन्त पूजनीय तथा स्पृहणीय होता है ॥६ ॥

३०५९. त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥७ ॥

महान् गुण-सम्पन्न अग्निदेव के तीन श्रेष्ठ रूप (अग्नि, वायु और सूर्य के नाम से) जाने जाते हैं । वे अग्निदेव अनन्त अन्तरिक्ष में संव्याप्त, सबको पवित्र करने वाले आलोक से युक्त तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं । वे हमारे निकट यज्ञ स्थल पर पधारें ॥७ ॥

३०६०. स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८ ॥

वे अग्निदेव देवताओं का आवाहन करने वाले, सन्देशवाहक, स्वर्णिम रथ वाले तथा श्रेष्ठ ज्वालाओं वाले हैं । वे समस्त श्रेष्ठ गृहों में गमन करने की कामना करते हैं । रोहित वर्ण के घोड़ों वाले, सुन्दर, कान्तिमान् अग्निदेव धन-धान्य से सम्पन्न गृह की भाँति सुखकारी हैं ॥८ ॥

३०६१. स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥९ ॥

अध्वर्युगण रशना (अरणि मंथन की रस्सी) द्वारा अग्निदेव को प्रकट करते हैं । यज्ञ में सबके हितैषी बन्धु अग्निदेव सभी लोगों को ज्ञान-सम्पन्न बनाते हैं । वे याजक के घर में उसके अभीष्ट को सम्पादित करते हुए विद्यमान रहते हैं । वे प्रकाशमान अग्निदेव अपने उपासक (याजक) के साथ निवास करते हैं ॥९ ॥

३०६२. स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१० ॥

जिस उत्कृष्ट ऐश्वर्य को सभी श्रेष्ठजन भजते हैं; सर्वज्ञाता अग्निदेव के उस महान् ऐश्वर्य को हम प्राप्त करें । समस्त अविनाशी देवताओं ने यज्ञ के निमित्त अग्निदेव को पैदा किया । द्युलोक उनके पालन करने वाले हैं । याजकगण उस अनश्वर अग्नि को घृत आदि की आहुतियों से सिंचित करते हैं ॥१० ॥

३०६३. स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्तायोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥११ ॥

वे अग्निदेव (यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले) मनुष्यों के गृह में प्रथम अग्रणी होकर रहते हैं, तत्पश्चात् विशाल अन्तरिक्ष में, पुनः धरती पर पैदा हुए । वे अग्निदेव बिना सिर और पैर वाले हैं । वे सभी के अन्दर विद्यमान रहते हैं । वे जल बरसाने वाले बादलों के साथ (विद्युत् रूप में) अपने को मिला देते हैं ॥११ ॥

३०६४. प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्याँ ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥१२ ॥

अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सात होताओं ने स्पृहणीय, नित्य युवा तथा सुन्दर शरीर वाले तेजोयुक्त

अग्निदेव को प्रकट किया । हे अग्निदेव ! आपने जल के उत्पत्ति स्थान तथा जल बरसाने वाले मेघों के स्थान आकाश में विद्यमान रहकर, प्रार्थनाओं द्वारा सर्वश्रेष्ठ शक्तियों को ग्रहण किया ॥१२ ॥

३०६५. अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३ ॥

हमारे पितरों ने इस लोक में यजन करते हुए अग्निदेव को ग्रहण किया था । उन्होंने उषा की प्रार्थना करते हुए पर्वतों के मध्य अन्धकारपूर्ण गुफाओं में छिपी हुई दुधारू गौओं (पोषक रसधाराओं या प्रकाश किरणों) को मुक्त किया ॥१३ ॥

३०६६. ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४ ॥

उन पितरों ने पहाड़ों को नष्ट करके अग्निदेव को पवित्र बनाया । उनके इस कृत्य का अन्य लोगों ने सम्पूर्ण जगत् में वर्णन किया । उनको पशुओं की सुरक्षा का उपाय मालूम था । वाञ्छित फल प्रदान करने वाले अग्निदेव की उन्होंने प्रार्थना की तथा ज्योति-लाभ प्राप्त किया । अपने विवेक के द्वारा उन्होंने स्वयं को शक्ति से सम्पन्न बनाया ॥१४ ॥

३०६७. ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५ ॥

उन अंगिरस् गोत्रीय पितरों ने गो (पोषक धारा या प्रकाश किरण) प्राप्त करने की आकांक्षा से, अवरुद्ध द्वार वाले, भली-भाँति बन्द, सुदृढ़ गौओं से भरे हुए गोष्ठ (गोशाला) रूप पर्वत को अपने अग्नि विषयक वैदिक स्तोत्र की सामर्थ्य से खोल दिया ॥१५ ॥

३०६८. ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥१६ ॥

वाणी के शब्द स्तुत्य हैं, यह सर्वप्रथम समझकर अङ्गिरा आदि ऋषियों ने (गायत्री आदि) इक्कीस छन्दों में होने वाले स्तोत्रों को जाना । तत्पश्चात् उस वाणी से उषा की स्तुति की, जिस तेज से अरुण किरणें (सूर्य किरणें) प्रकट हुई ॥१६ ॥

३०६९. नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७ ॥

रात्रि द्वारा पैदा किया हुआ तम, उषा देवी की प्रेरणा से विनष्ट हो गया । उसके बाद आकाश आलोकित हो गया और उषादेवी की प्रभा प्रकट हो गयी । तत्पश्चात् मनुष्यों के अच्छे और बुरे कर्मों का निरीक्षण करते हुए सूर्य देव विशाल पर्वत के ऊपर आरूढ़ (प्रकट) हुए ॥१७ ॥

३०७०. आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८ ॥

सूर्योदय होने के बाद समस्त ऋषियों ने धरती पर अग्निदेव को प्रज्वलित किया तथा तेजोयुक्त आभूषणों को ग्रहण किया । उसके बाद समस्त पूजनीय देवगण सभी घरों में पधारे । बाधाओं का निवारण करने वाले तथा मित्ररूप हे अग्निदेव ! जो आपकी साधना करते हैं, उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हों ॥१८ ॥

३०७१. अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त प्रकाशवान् , देवताओं का आवाहन करने वाले तथा विश्व का पोषण करने वाले हैं । आप सर्वश्रेष्ठ तथा वन्दनीय हैं, अतः हम आपकी प्रार्थना करते हैं । याजक लोगों ने आपको आहुति प्रदान करने के लिए गौओं के स्तन से पवित्र दुग्ध नहीं दुहा है तथा सोम को अभिषुत नहीं किया है, फिर भी आप उनकी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१९ ॥

३०७२. विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२० ॥

वे अग्निदेव अदिति के समान समस्त यज्ञीय देवताओं को पैदा करने वाले हैं तथा समस्त मानवों के वंदनीय अतिथि हैं । मनुष्यों की प्रार्थनाओं को ग्रहण करने वाले अग्निदेव स्तोताओं के लिए सुख, समृद्धि तथा प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों ॥२० ॥

[सूक्त - २]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३०७३. यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥१ ॥

जो अविनाशी अग्निदेव मनुष्यों के बीच में यथार्थ रूप से विद्यमान रहते हैं, देवताओं के बीच में रिपुओं को पराजित करने वाले के रूप में रहते हैं, वे सर्वाधिक वंदनीय अग्निदेव देवताओं का आवाहन करने वाले हैं । वे अपनी महिमा से याजकों को आहुतियों द्वारा प्रदीप्त करने की प्रेरणा देते हैं ॥१ ॥

३०७४. इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च ॥२ ॥

हे शक्ति के पुत्र अग्निदेव ! आप देखने योग्य हैं । आज आप हमारे इस यज्ञ कृत्य में प्रकट हुए हैं । आप अपने शक्तिशाली, प्रकाशमान, कोमल तथा पुष्ट अश्वों को रथ में नियोजित करके, उपस्थित देवताओं तथा मनुष्यों के बीच में दूत बनकर पहुँचते हैं ॥२ ॥

३०७५. अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्तान् ॥३ ॥

हे सत्यरूप अग्निदेव ! आपके उन लाल रंग वाले तथा अन्न-जल की वर्षा करने वाले अश्वों की हम प्रार्थना करते हैं, जो मन से भी अधिक वेगवान् हैं । आप अपने प्रकाशवान् अश्वों को रथ में नियोजित करके मनुष्यों तथा देवताओं के बीच में विचरण करें ॥३ ॥

३०७६. अर्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ रथों, अश्वों तथा धनों से सम्पन्न हैं । आप इन मनुष्यों के बीच में श्रेष्ठ आहुतियों वाले याजक के लिए मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्‌गण, विष्णु तथा अश्विनीकुमारों को इस यज्ञस्थल पर ले आएँ ॥४ ॥

३०७७. गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥५ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! हमारा यह यज्ञ गौओं, अश्वों, भेड़ों, अन्न तथा मनुष्यों से सम्पन्न हो । यह यज्ञ आहुतियों तथा सन्तानों से सम्पन्न हो और हमेशा विद्यमान रहने वाले धन तथा श्रेष्ठ प्रेरणाओं से परिपूर्ण हो ॥५ ॥

[यहाँ यज्ञ गौओं, अश्वों तथा भेड़ों से युक्त हो, यह आलंकारिक उक्ति है । यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा गो- पोषण क्षमता तथा अश्व संचरित होने की क्षमता की प्रतीक है । 'अवि' - भेड़ की ऊन से छन्ने बनाये जाते थे, इसलिए 'अवि' पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाने की क्षमता के संदर्भ में वर्णित है ।]

३०७८. यस्त इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आपके लिए (यज्ञ के निमित्त) समिधाओं को चुनकर लाने वाले जो व्यक्ति पसीने से युक्त होते हैं, जो आपकी अभिलाषा से अपने सिर को लकड़ी के भार से पीड़ित करते हैं, उन व्यक्तियों का आप पोषण करें तथा उन्हें ऐश्वर्यवान् बनायें । इसके अलावा समस्त शत्रुओं से उनकी रक्षा करें ॥६ ॥

३०७९. यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन्रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! धन-धान्य की अभिलाषा से जो आपको हविष्यान्न, हर्ष प्रदायक सोमरस तथा अतिथि के सदृश सम्मान प्रदान करते हैं, जो देवत्व की कामना से अपने गृह में आपको प्रदीप्त करते हैं । उन व्यक्तियों की सन्तानें उदार हों तथा धर्म -कर्तव्य का दृढ़ता से पालन करने वाली हों ॥७ ॥

३०८०. यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति प्रातः तथा सायंकाल आपकी प्रार्थना करते हैं और हविष्यान्न समर्पित कर आपको हर्षित करते हैं, उन व्यक्तियों को गरीबी से उसी प्रकार पार करें, जिस प्रकार पथिक स्वर्णिम जीन वाले अश्वों से कठिन मार्गों को पार कर जाते हैं ॥८ ॥

३०८१. यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥९ ॥

हे अग्ने ! आप अविनाशी हैं । जो याजक आपके निमित्त आहुतियाँ प्रदान करते हैं तथा स्रुवा को हाथ में लेकर आपकी परिचर्या करते हैं, वे कभी भी धनाभाव से ग्रसित न हों तथा हिंसक प्राणी उन्हें पीड़ित न कर सकें ॥९ ॥

३०८२. यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः ॥१० ॥

हे तरुण अग्निदेव ! आप हर्ष तथा आलोक से सम्पन्न हैं । आप जिस व्यक्ति के श्रेष्ठ लोक कल्याणकारी भावनाओं से सम्पन्न यज्ञ भाग को ग्रहण करते हैं, वे याज्ञिक निश्चित रूप से हर्षित होते हैं । यज्ञादि सत्कर्मों को सम्पन्न करने वाले श्रेष्ठ याजकों का ही अनुसरण हम सभी करें ॥१० ॥

३०८३. चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान्पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार अश्वपालक अश्व के पृष्ठ (पीठ) पर कसे हुए साज को उससे अलग कर देता है, उसी प्रकार आप व्यक्तियों के पाप तथा पुण्य को अलग-अलग करें । हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें तथा दानशीलता प्रदान करके उदार बनाएँ ॥११ ॥

३०८४. कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान्पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप मेधावी हैं । आप श्रेष्ठ मनुष्यों के घरों में यज्ञाग्नि रूप में विद्यमान रहने वाले तथा परास्त न होने वाले हैं । देवों ने आपके मेधावी रूप की प्रार्थना की है । हे अग्निदेव ! आप अपने चलायमान तेज से समस्त देव मानवों को भी तेजस्वी बनाएँ ॥१२ ॥

३०८५. त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३ ॥

नेतृत्व करने वालों में श्रेष्ठ तेजयुक्त तथा नित्य तरुण हे अग्निदेव ! आप सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । सोमरस अभिषुत करने वाले, परिचर्या करने वाले तथा प्रार्थना करने वाले याजकों को आप अत्यन्त हर्षप्रदायक सम्पत्तियाँ प्रदान करते हुए उनकी सब प्रकार से रक्षा करें ॥१३ ॥

३०८६. अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार कोई शिल्पकार रथ को तैयार करता है, उसी प्रकार आपकी कामना करते हुए यज्ञ कर्म में निरत तथा उत्तम कर्म करने वाले अंगिरादि ऋषियों ने अपनी भुजाओं से (अरणि मंथन करके) सत्यरूप आपको प्रकट किया था । उसी के निमित्त हम भी अपने हाथों, पैरों तथा शरीर से कार्य करते हैं ॥१४ ॥

३०८७. अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५ ॥

हम सात सूर्य पुत्र सबसे पहले (जाग्रत् होने वाले) विद्वान् हैं । हमने माता उषा से (उषा काल में यज्ञ के निमित्त) अग्नि की किरणों को पैदा किया है । हम आलोकवान् सूर्यदेव के पुत्र अंगिरा हैं । हम तेज -सम्पन्न होकर ऐश्वर्य वाले पहाड़ों (जल से सम्पन्न मेघों) को विदीर्ण करें ॥१५ ॥

३०८८. अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१६ ॥

हमारे पूर्वजों ने श्रेष्ठ, प्राचीन और ऋतरूप यज्ञ कर्मों में निरत रहकर श्रेष्ठ स्थान तथा ओज को प्राप्त किया । उन लोगों ने स्तोत्रों को उच्चारित करके तम को नष्ट किया तथा अरुण रंगवाली उषा को प्रकाशित किया ॥१६ ॥

३०८९. सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७ ॥

जिस प्रकार लोहार धौंकनी द्वारा लोहे को पवित्र बनाते हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म में निरत तथा अभिलाषा करने वाले याजक यज्ञादि कर्म से मनुष्य जीवन को पवित्र बनाते हैं । वे अग्निदेव को प्रदीप्त करके इन्द्रदेव को समृद्ध करते हैं । चारों तरफ से घेर करके उन्होंने महान् गौओं (पोषक प्रवाहों) के झुण्ड को प्राप्त किया था ॥१७ ॥

[यज्ञ मात्र स्थूल कर्मकाण्ड नहीं है । जीवन को परिष्कृत एवं तेजस्वी बनाने की विद्या के रूप में ऋषिगण उसका प्रयोग करते रहे हैं ।]

३०९०. आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! जैसे अन्न से सम्पन्न घर मे पशुओं के झुण्ड की सराहना की जाती है , उसी प्रकार जो लोग देवताओं के निकट उनकी प्रार्थना करते हैं, उनकी सन्तानें समर्थ होती हैं और उनके स्वामी पालन करने में सक्षम होते हैं ॥१८ ॥

३०९१. अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९ ॥

हे आलोकवान् अग्निदेव ! हम आपकी उपासना करते हैं , जिससे हम सत्कर्म वाले होते हैं । आलोकमान उषाएँ आपके ही सम्पूर्ण तेज को धारण करती हैं । उस तेज से लाभान्वित होते हुए हम विविध प्रकार से, हर्षकारी आप की उपासना करते हैं ॥१९ ॥

३०९२. एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२० ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! आप विधाता हैं । आपके निमित्त हम समस्त स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं, आप इन्हें स्वीकार करके प्रदीप्त हों । आप हमें अत्यधिक ऐश्वर्यवान् बनाएँ । बहुतों द्वारा वरण करने योग्य हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठ सम्पत्तियाँ प्रदान करें ॥२० ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३०९३. आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१ ॥

हे सत्पुरुषो ! चंचल बिजली की तरह आने वाली मृत्यु के पूर्व ही अपनी रक्षा के लिए यज्ञ के स्वामी, देवों के आवाहक, रुद्र रूप, द्यावा-पृथिवी के बीच वास्तविक यजन प्रक्रिया चलाने वाले, स्वर्णिम आभायुक्त अग्निदेव का पूजन करें ॥१ ॥

३०९४. अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! श्रेष्ठ परिधानों से अलंकृत स्त्री, जिस प्रकार पति की अभिलाषा करती हुई उसे अपने निकट श्रेष्ठ आसन प्रदान करती है, उसी प्रकार हम भी आपको श्रेष्ठ आसन (उत्तर वेदी के रूप में) प्रदान करते हैं । वही स्थान आपके लिए उपयुक्त है । हे सत्कर्म करने वाले अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्विता से अलंकृत होकर पधारें । हम आपकी वन्दना करते हैं ॥२ ॥

३०९५. आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप याजकों द्वारा की गई स्तुतियों को ध्यान पूर्वक सुनने वाले, सम्पूर्ण जगत् का एक दृष्टि से दर्शन करने वाले, सज्जनों को सुख प्रदान करने वाले, प्रखर, तेजस्वी तथा अविनाशी हैं ॥३ ॥

३०९६. त्वं चित्रः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।

कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४ ॥

सत्कर्म करने वाले, विद्वान् हे अग्निदेव !आप ही हमारे यज्ञ के अनुष्ठान को समझें । आपके लिए गान किये गये स्तोत्र हमें कब हर्ष प्रदान करने वाले होंगे ? हमारे घर पर आपको मित्रभाव से प्रतिष्ठित करने का अवसर कब प्रकट होगा ? ॥४ ॥

३०९७. कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।

कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे पाप कर्मों की चर्चा वरुणदेव से क्यों करते हैं ? आप सूर्यदेव से हमारी निन्दा क्यों करते हैं ? हम लोगों का कौन सा अपराध है ? हर्ष प्रदाता मित्रदेव, पृथ्वी, अर्यमा और भगदेव नामक देवताओं से आपने हमारे प्रति कौन से वचन कहे हैं ? ॥५ ॥

३०९८. कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।

परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप जब यज्ञ की हवियों से संवर्द्धित होते हैं, तब उन कथाओं को क्यों कहते हैं ? महान् शक्तिशाली, कल्याणकारी, सभी स्थानों पर गमन करने वाले, सत्य के नायक वायुदेव से तथा पृथ्वी से उन बातों को क्यों कहते हैं ? हे अग्निदेव ! पाप करने वाले व्यक्तियों का संहार करने वाले रुद्रदेव से उस बात को क्यों कहते हैं ? ॥६ ॥

३०९९. कथा महे पुष्टिम्भराय पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।

कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! श्रेष्ठ पुष्टि-प्रदायक पूषादेव से उस पाप कथा को क्यों कहते हैं ? श्रेष्ठ यज्ञ वाली आहुतियों से समृद्ध रुद्रदेव से, बहुप्रशंसनीय विष्णुदेव से उस पाप कर्म को क्यों कहते हैं ? बृहत् संवत्सर से इस पाप युक्त बात को क्यों कहते हैं ? ॥७ ॥

३१००. कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।

प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! यथार्थभूत मरुतों से हमारे उस पापकर्म को क्यों कहते हैं ? पूछे जाने पर आदित्य से, अदिति तथा शीघ्रगामी वायु से उस पापकर्म को क्यों कहते हैं ? हे अग्निदेव ! आप समस्त पदार्थों को जानने वाले हैं । आप सब कुछ जानकर दिव्यता प्रदान करें ॥८ ॥

३१०१. ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।

कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! हम ऋत यज्ञ से सम्बद्ध ऋत गौ (यज्ञ से उद्‌भूत पोषक प्रवाह) की याचना करते हैं । वह (गौ) कच्ची अवस्था में भी मधुर परिपक्व दुग्ध (पोषक रस) संचरित करने में समर्थ होती है । वह श्यामवर्ण होने पर भी श्वेत पुष्टिवर्धक दुग्ध से प्रजा का पालन करती है ॥९ ॥

[ऊपर क्रमांक पाँच से आठ तक के मंत्रों में अग्निदेव से यह प्रार्थना की गई है कि सर्वज्ञाता होने के कारण हमारे पाप कर्मों को जानकर उन्हें प्रचारित न करें, बल्कि अपनी शक्ति से पापों को नष्ट करके हमें दिव्यता प्रदान करें । प्रचारित करने से दोष बढ़ते हैं, सत्पुरुषों को चाहिए कि वे उन्हें बढ़ाने के नहीं, समाप्त करने के माध्यम बनें ।]

३१०२. ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१० ॥

बलशाली तथा महान् अग्निदेव पोषण करने वाले दुग्ध से सिंचित होते हैं । अन्नप्रदाता वे अग्निदेव एक-एक स्थान पर विद्यमान रहकर भी अपनी सामर्थ्य से सभी जगह गमन करते हैं । पानी बरसाने वाले सूर्यदेव आकाश से दिव्यरस रूप प्राणपर्जन्य का दोहन करते हैं ॥१० ॥

३१०३. ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११ ॥

अङ्गिरावंशियों ने यज्ञ की सामर्थ्य से पर्वतों को नष्ट करके रिपुओं (बाधाओं) को दूर किया और गौओं (प्रकाश किरणों) को ग्रहण किया । उसके बाद मनुष्यों ने हर्षपूर्वक उषा को प्राप्त किया । उसी समय अग्निदेव के प्रकट होने पर सूर्यदेव उदित हुए ॥११ ॥

३१०४. ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित्स्रवितवे दधन्युः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! अमरधर्मा, अविरल रूप से प्रवाहित होने वाली, मीठे जल वाली दिव्य सरिताएँ, संग्राम में जाने वाले उत्साही घोड़े की तरह, यज्ञ द्वारा प्रेरित होकर हमेशा प्रवाहित होती हैं ॥१२ ॥

३१०५. मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! किसी हिंसा करने वाले के यज्ञ में आप कभी न जाएँ तथा पाप बुद्धि वाले हमारे पड़ोसी के यज्ञ में भी न जाएँ । हमें छोड़कर अन्य दुष्ट भ्राता के यज्ञ में न जाएँ और कपट स्वभाव वाले भाई की आहुति की अभिलाषा न करें । हम सभी किसी भी मित्र या शत्रु के अधीन न रहें ॥१३ ॥

३१०६. रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥१४ ॥

हे सुमुख (यज्ञ रूप) अग्निदेव ! आप हम सबके संरक्षक होकर प्रसन्नतापूर्वक रक्षण साधनों द्वारा हमारी सुरक्षा करें और हम सबको तेजस्वी बनाएँ । आप हमारे कठिन-से-कठिन पापों को विनष्ट करें तथा बढ़े हुए भयंकर असुरों का विनाश करें ॥१४ ॥

३१०७. एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे अर्चन-योग्य स्तोत्रों द्वारा हर्षित मन वाले हों । हे पराक्रमी ! आप हमारे हविरूप अन्नों को मननीय स्तोत्रों के साथ स्वीकार करें । हे अङ्गिरस् को जानने वाले अग्निदेव ! आप हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें तथा देवताओं को हर्षित करने वाली प्रार्थनाओं से आप समृद्ध हों ॥१५ ॥

३१०८. एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६ ॥

हे विधाता अग्निदेव ! आप विद्वान् तथा क्रान्तदर्शी हैं । हम विप्रगण आपके निमित्त फल प्रदायक, गूढ़, अत्यधिक व्याख्याओं से मथित (गुथे हुए) प्रार्थनाओं को मन्त्रों तथा उक्थों (स्तोत्रों) के साथ उच्चारित करते हैं ॥१६ ॥

[सूक्त - ४]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - रक्षोहा अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३१०९. कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप शत्रुओं को दूर करने में सक्षम हैं । जिस प्रकार सशक्त राजा हाथियों पर सवार होकर राक्षसी वृत्ति के शत्रुओं पर हमला करते हैं, वैसे ही आप भी हमला करें । पक्षियों को पकड़ने वाले विस्तृत आकार वाले जाल द्वारा दुष्टों को विविध प्रकार के कष्ट देकर प्रताड़ित करें ॥१ ॥

३११०. तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥२ ॥

वायु के सम्पर्क से डोलती हुई द्रुतगामी लपटों से असुरों को भस्म कर डालें । आहुति प्रदान करने पर आप बढ़ी हुई ज्वालाओं के द्वारा असुरों का संहार करें । इस हेतु टूटकर गिरने वाले तारे की गति से अपने तेज को प्रेरित करें ॥२ ॥

३१११. प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥३ ॥

हे अदम्य अग्निदेव ! हमारे निकटस्थ या दूरस्थ जो भी शत्रु है, उन सबको वश में करने के लिए अति गतिशील सैनिकों को भेजें । हमारी सन्तानों की रक्षा करें । कोई भी आपके भक्तों को पीड़ा न पहुँचा सके ॥३ ॥

३११२. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्यश्मित्राँ ओषतात्तिग्महेते।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप जीवन्त होकर अपनी ज्वालाओं का विस्तार करें । उन तीव्र ज्वालाओं के प्रभाव से शत्रुओं को पूर्णरूपेण भस्म कर डालें । हे ज्योतिर्मय ! हमारी प्रगति में जो बाधक हैं, उन्हें सूखे वृक्ष के समान ही समूल भस्म कर डालें ॥४ ॥

३११३. ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से युक्त होकर हमारे शत्रुओं को विध्वंस करें । प्राणियों को कष्ट देने वाले दुष्टों को विजय श्री से हीन करके, हमारे अपराजित शत्रुओं को विनष्ट करें ॥५ ॥

३११४. स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत्।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥६ ॥

हे नित्य युवा अग्निदेव ! आप तीव्र गति से ऊर्ध्वगमन करने वाले तथा महान् हैं । जो व्यक्ति आपकी प्रार्थना

करते हैं, वे आपकी कृपा प्राप्त करते हैं । आप यज्ञ के स्वामी हैं । आप उस व्यक्ति के निमित्त समस्त शुभ दिनों, ऐश्वर्यों तथा रत्नों को धारण करें । आप उसके घर के सम्मुख प्रकाशित हों ॥६ ॥

३११५. सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जो याजक मन्त्रोच्चारण करते हुए आहुतियाँ समर्पित करके प्रतिदिन आपको तुष्ट करने की कामना करते हैं, वे सभी श्रेष्ठ, सौभाग्यशाली तथा दानी हों । कठिनाई से प्राप्त करने योग्य सौ वर्ष के आयुष्य को वे प्राप्त करें । उनके सभी दिन शुभ हों और वे यज्ञीय साधनों से परिपूर्ण रहें ॥७ ॥

३११६. अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी कृपालु-श्रेष्ठ बुद्धि की पूजा करते हैं । आपके लिए उच्चारित की जाने वाली वाणी, आपके गुणों का गान करे । पुत्र-पौत्रों, श्रेष्ठ अश्वों तथा रथों से सम्पन्न होकर हम आपकी अभ्यर्थना करेंगे । आप नित्यप्रति हमारे निमित्त समस्त पोषक शक्तियों को धारण करें ॥८ ॥

३११७. इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप सदैव प्रज्वलित रहते हैं । इस जगत् में सभी आपकी समीपता का लाभ लेते हुए सदैव आपकी सेवा करते हैं । हम भी अपने शत्रुओं के ऐश्वर्यों को नियन्त्रित करते हुए उत्साह एवं हर्षपूर्वक आपकी उपासना करते हैं ॥९ ॥

३११८. यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! जो व्यक्ति यज्ञ के लिए उपयोगी धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा श्रेष्ठ घोड़ों से योजित स्वर्णिम रथों द्वारा आपके निकट पहुँचते हैं, साथ ही जो आपका अतिथि के सदृश स्वागत -सम्मान करते हैं; सच्चे मित्र की भाँति आप उनकी सुरक्षा करते हैं ॥१० ॥

३११९. महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११ ॥

हे सत्कर्मशील युवा, होतारूप अग्निदेव ! आपकी स्तुतियाँ करते हुए हमने जो बन्धुभाव अर्जित किया है, उससे हम बड़ी-बड़ी आसुरी शक्तियों को नष्ट करें । उन स्तोत्र वचनों को हमने अपने पिता 'गौतम' ऋषि से प्राप्त किया था । हे रिपुओं का दमन करने वाले अग्निदेव ! आप हमारी प्रार्थना को सुनें ॥११ ॥

३१२०. अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आपकी वे किरणें सदैव जाग्रत् रहने वाली, द्रुतगामी, हर्षप्रद, प्रमाद से दूर रहने वाली, हिंसा न करने वाली, न थकने वाली, परस्पर मिलकर चलने वाली तथा सुरक्षा करने वाली हैं । वे इस यज्ञ में पधार कर हमारी सुरक्षा करें ॥१२ ॥

३१२१. ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी रक्षक किरणों ने अनुग्रह करके ममता के अन्धे पुत्र को पापों से बचाया था । आप सर्वज्ञ हैं । आपने उसके सम्पूर्ण पुण्यों की सुरक्षा की थी । हानि पहुँचाकर पराजित करने की कामना करने वाले शत्रु आपके कारण सफल नहीं हो सके ॥१३ ॥

३१२२. त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान्।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४ ॥

(यज्ञस्थल पर) निःसंकोच पहुँचने वाले हे अग्निदेव ! हम याजक आपकी कृपा से आपके द्वारा संरक्षित होकर तथा आपके द्वारा निर्देशित पथ पर चलकर धन-धान्य का लाभ प्राप्त करें । हे सत्य का विस्तार करने वाले अग्निदेव ! आप हमारे निकटस्थ तथा दूरस्थ रिपुओं का विनाश करें और क्रम से सम्पूर्ण कार्य करें ॥१४ ॥

३१२३. अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं के द्वारा हम आपको प्रज्वलित करते हैं । आप हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें और स्तुतिरहित असुरों का विनाश करें । सखा के सदृश, वंदनीय हे अग्निदेव ! आप रिपुओं, निन्दकों तथा विद्रोहियों से हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५]

। **ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् । ।

३१२४. वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।
अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१ ॥

सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखने वाले हम याजकगण, उन सुखकारी एवं तेजस्वी वैश्वानर अग्निदेव के निमित्त, किस प्रकार आहुति प्रदान करें ? जिस प्रकार स्तम्भ छप्पर को धारण करता है, उसी प्रकार वे अग्निदेव अपने अत्यधिक बृहत् शरीर से समस्त जगत् को धारण करते हैं ॥१ ॥

३१२५. मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान्।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२ ॥

हे होताओ ! जो वैश्वानरदेव आहुतियों से सन्तुष्ट होकर, ज्ञानी तथा मरणधर्मा हम याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उनकी आलोचना न करें । वे अग्निदेव अत्यन्त मेधावान्, अविनाशी तथा बुद्धिमान् हैं, वे अत्यन्त श्रेष्ठ नायक तथा महिमावान् हैं ॥२ ॥

३१२६. साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३ ॥

वे अग्निदेव दोनों लोकों (द्यु तथा भूलोक) में अपनी लपटों को विस्तृत करने वाले, तीक्ष्ण ओजवाले, सहस्रों प्रकार की सामर्थ्यों वाले, अत्यन्त शौर्यवान् तथा साहसी हैं । वे गो पद के सदृश रहस्यमय हैं । विद्वानों के सहयोग से हम उनका ज्ञान प्राप्त करें ॥३ ॥

[गोपद गाय का खुर एक होते हुए भी दो भागों में विभक्त होता है, अग्निदेव भी एक होते हुए दो भागों में विभक्त होकर द्यावा-पृथिवी दोनों में सक्रिय होते हैं। मनुष्य का मस्तिष्क भी गोखुर की तरह विभक्त है। पूरे तंत्र को संचालित करने वाली रहस्यमय ऊर्जा उसी में सन्निहित है। इस मन्त्र से रहस्यमय मस्तिष्क का भी संकेत मिलता है।]

३१२७. प्रताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४ ॥

ज्ञानी मित्रदेव और वरुणदेव के प्रिय पात्रों को जो व्यक्ति विनष्ट करते हैं, उनको श्रेष्ठ धन वाले तथा तीक्ष्ण दाँतों वाले अग्निदेव अपने प्रखर तेज से भस्मसात् करें ॥४ ॥

३१२८. अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५ ॥

बन्धु विहीन तथा पति से विद्वेष करने वाली स्त्री जिस प्रकार दुःख पाती है, उसी प्रकार सत्यविहीन यज्ञानुष्ठान से रहित तथा अग्नि से विद्वेष करने वाले असत्यभाषी पापी व्यक्ति नरक जैसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं ॥५ ॥

३१२९. इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६ ॥

सभी को पवित्रता प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! जैसे कोई उदारचेता पुरुष कम याचना करने वाले को भी अधिक दान देता है, उसी प्रकार आप मुझ अहिंसक को, रिपुओं को परास्त करने योग्य बल से युक्त, गम्भीर तथा महान् आश्रय प्रदान करने वाले सप्त धातुओं से सम्पन्न प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

३१३०. तमिन्वे३व समना समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥७ ॥

अनेक रंगों वाली तथा समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने वाली धरती पर द्रुतगामी वैश्वानर देव को प्रजापति ने विचरण करने के लिए आरोपित किया। हमारे द्वारा यज्ञादि सत्कर्मों के समय पहले ही मनोयोगपूर्वक की गई पवित्रताकारक प्रार्थनाएँ उन समदर्शी वैश्वानर को प्राप्त होती हैं ॥७ ॥

३१३१. प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग्वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन्पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥८ ॥

विद्वानों का मत है कि गोपालक जिस दूध को पानी के सदृश दुहते हैं, उसी दूध को वैश्वानरदेव गुहा में छिपाकर रखते हैं। वे विस्तृत धरती के प्रीतियुक्त तथा उत्तम प्रदेश की सुरक्षा करते हैं। हमारे इस वक्तव्य में अनुचित कौन सी बात है ? ॥८ ॥

३१३२. इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ॥९ ॥

जिन अग्निदेव की दुग्ध प्रदान करने वाली गौएँ (जल वर्षा करने वाली किरणें) यज्ञादि कर्मों में सहायक होती हैं, जो स्वयं आलोकवान् हैं, गुहा में निवास करते हैं तथा जो द्रुतगति से गमन करते हैं, सूर्यमण्डल में व्याप्त उन वन्दनीय वैश्वानर देव के विषय में हम जानते हैं ॥९ ॥

३१३३. अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥१० ॥

माता-पिता के सदृश द्यावा-पृथिवी के मध्य में आलोकित होनेवाले (वैश्वानर) सूर्यदेव गाय के श्रेष्ठ दुग्ध का मुख से पान करते हैं । बलशाली, तेजोयुक्त तथा प्रयत्नशील वैश्वानर की जिह्वा, गो माता के उत्कृष्ट स्थान में स्थित दूध को पीने की इच्छा करती है ॥१० ॥

३१३४. ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११ ॥

किसी के द्वारा पूछे जाने पर हम यजमान नमस्कार करते हुए इस सत्य बात का निवेदन करते हैं कि हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से जो कुछ भी हमें प्राप्त हुआ है, उसके आप ही अधिकारी हैं । द्यावा-पृथिवी में विद्यमान समस्त ऐश्वर्यों के भी आप स्वामी हैं ॥११ ॥

३१३५. किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२ ॥

सभी प्राणियों के ज्ञाता हे अग्निदेव ! इस सम्पत्ति में से कौन सा ऐश्वर्य तथा रत्न हमारे लिए उपयुक्त है ? उसको आप बताएँ, क्योंकि आप सर्वज्ञाता हैं । हमारे योग्य गुफा में विद्यमान ऐश्वर्य को प्राप्त करने का श्रेष्ठ मार्ग हमें बताएँ, जिससे हम लक्ष्य पूर्ति के अभाव में निन्दित होकर अपने घर न लौटें ॥१२ ॥

३१३६. का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥१३ ॥

धन प्राप्त करने की क्या सीमा है ? वह मनोहर धन क्या है ? जिस प्रकार द्रुतगामी अश्व संग्राम की ओर गमन करते हैं, उसी प्रकार हम समस्त ऐश्वर्यों की तरफ गमन करते हैं । अविनाशी आदित्यदेव की तेजस्वी पत्नियाँ उषाएँ अपने द्युलोक से हमें कब प्रकाशित करेंगी ? ॥१३ ॥

३१३७. अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! रूखी, फलरहित, कठोर तथा अल्पाक्षर वाणी वाले अतृप्त लोग इस यज्ञ में आपकी क्या प्रार्थना करेंगे ? शौर्य एवं आयुधों से रहित मनुष्य दुःख प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

३१३८. अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५ ॥

प्रज्वलित रहने वाले, बल वाले तथा सबको निवास प्रदान करने वाले अग्निदेव का तेज यजमान के हित के लिए यज्ञमण्डप में सदैव आलोकित होता रहता है । शुभ्र तेजस्वी परिधान धारण करने के कारण उनका रूप मनोहर है । वे अनेकों के द्वारा आहूत होकर उसी प्रकार आलोकित होते हैं, जिस प्रकार धन-ऐश्वर्य को प्राप्त करके कोई राजपुरुष आलोकित होता है ॥१५ ॥

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३१३९. ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान् ।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१ ॥

यज्ञ के सम्पादक हे अग्ने ! आप सर्वश्रेष्ठ याज्ञिक हैं । अत: हम याजकों से आप ऊँचे स्थान पर विराजमान हों । आप ही हमारी स्तुतियों को सुनने वाले हैं । आप विद्वान् याजकों की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने वाले हैं ॥१ ॥

३१४०. अमूरो होता न्यसादि विक्ष्व१ग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेता: ।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२ ॥

ज्ञानवान्, यज्ञसम्पादक, हर्षप्रदायक तथा मेधावी अग्निदेव यज्ञ में याजकों के बीच प्रतिष्ठित होकर सुशोभित होते हैं । वे आदित्य के सदृश अपनी रश्मियों को ऊर्ध्वमुखी करते हैं तथा स्तम्भ के सदृश द्युलोक के ऊपर धूम्र को स्थापित करते हैं (अर्थात् यज्ञीय ऊर्जा का ऊर्ध्व लोकों तक विस्तार करते हैं) ॥२ ॥

३१४१. यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराण: ।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्र: पश्वो अनक्ति सुधित: सुमेक: ॥३ ॥

याजकों ने घृत से परिपूर्ण प्राचीन स्रुवा पात्र हाथ में सँभाल लिया है । यज्ञ संवर्धक अध्वर्युगण यज्ञ के चारों तरफ प्रदक्षिणा करते हैं तथा नवनिर्मित यूप सीधा खड़ा है । आक्रामक, प्रदीप्त, सर्वदर्शी तथा श्रेष्ठ प्रतिभाशाली अग्निदेव प्रज्वलित हो रहे हैं ॥३ ॥

३१४२. स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्यग्नि: पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराण: ॥४ ॥

कुश-आसनों के बिछाये जाने पर तथा अग्नि के प्रज्वलित होने पर याजक देवताओं को हर्षित करने के लिए खड़े होते हैं । यज्ञ सम्पादक, तेजस्वी तथा महान् गुण सम्पन्न अग्निदेव, समर्पित की गई आहुतियों को विस्तृत करते हुए तीनों लोकों में फैलाते हैं । इस प्रकार सबका पालन करते हैं ॥४ ॥

३१४३. परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५ ॥

देवों का आवाहन करने वाले, सबको हर्ष प्रदान करने वाले तथा मधुर ध्वनि करने वाले यज्ञाग्नि देव, सामान्य गति से चारों ओर घूमते हैं । उनकी रश्मियाँ वेगवान् अश्व की तरह चारों ओर दौड़ती हैं और उनके प्रज्वलित होने पर सभी लोक उनसे भयभीत हो जाते हैं ॥५ ॥

३१४४. भद्रा ते अग्ने स्वनीक सन्दृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारु: ।
न यत्ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धु: ॥६ ॥

हे श्रेष्ठ ज्वालाओं वाले अग्निदेव ! आप शत्रुओं को भयभीत करने वाले तथा सब जगह विद्यमान रहने वाले हैं । आपकी श्रेष्ठ तथा हितकारी छवि भली प्रकार दिखायी देती है; क्योंकि रात्रि के अंधकार द्वारा आपका आलोक ढका नहीं जा सकता । आसुरी वृत्ति के दुष्टजन आपके शरीर में पाप की स्थापना (आपका दुरुपयोग) नहीं कर सकते ॥६ ॥

३१४५. न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधित: पावकोऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥७ ॥

सबको पैदा करने वाले हे अग्निदेव ! आपके दान (पोषण या प्रकाश) को कोई रोक नहीं सकता । माता-पिता रूप द्युलोक तथा भूलोक भी आपकी कामना को तुरन्त पूर्ण करने में सक्षम नहीं होते । आप ज्ञानवान् तथा शुद्ध करने वाले हैं । आप सज्जनों के मध्य परम हितैषी मित्र की भाँति प्रकाशित होते हैं ॥७ ॥

३१४६. द्विर्यं पञ्च जीजनन्त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥८ ॥

बहिन रूप दसों अँगुलियाँ जिन अग्निदेव को अरणि मन्थन द्वारा प्रकट करती हैं; वे अग्निदेव प्रातः काल में जागने वाले, आहुतियों को ग्रहण करने वाले, तेज वाले तथा सुन्दर शरीर वाले हैं । वे तीक्ष्ण फरसे की तरह विरोधी असुरों का संहार करने वाले हैं ॥८ ॥

३१४७. तव त्ये अग्ने हरितो घृतस्ना रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः ।
अरुषासो वृषण ऋजुमुष्का आ देवतातिमह्वन्त दस्माः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आपके वे घोड़े (प्रकाश किरणें) यज्ञ में बुलाये जाते हैं । वे लाल रंग वाले, श्रेष्ठ चाल वाले, आलोक फैलाने वाले, सुगठित शरीर वाले, घृत बढ़ाने वाले, युवा तथा दर्शनीय हैं ॥९ ॥

३१४८. ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१० ॥

हे अग्ने ! आपकी वे किरणें रिपुओं को परास्त करने वाली, प्रकाशित होने वाली, गतिशील तथा वंदनीय हैं । वे अश्वों के सदृश अपने निर्धारित स्थान पर गमन करती हैं तथा मरुतों की तरह अत्यधिक शब्द करती हैं ॥१०॥

३१४९. अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११ ॥

हे प्रज्वलित अग्निदेव ! आपके निमित्त हम याजकों ने स्तोत्र रचित किये हैं । हम उक्थों (स्तोत्रों) का उच्चारण करते है तथा यज्ञ करते हैं । आप उन्हें ग्रहण करें । यजमानों द्वारा प्रार्थनीय होता रूप अग्निदेव की पूजा करते हुए श्रेष्ठ ऐश्वर्य की अभिलाषा से याजकगण यज्ञस्थल पर आसीन होते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १ - जगती, २ - ६ अनुष्टुप् ।]

३१५०. अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥१ ॥

देवों के आवाहक, यज्ञीय कर्मों के निर्वाहक अग्निदेव यज्ञों में ऋत्विजों के द्वारा प्रशंसनीय स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हैं । यज्ञीय कार्य हेतु इस यज्ञवेदी में इन्हें स्थापित किया गया है । यजमानों के उत्कर्ष हेतु भृगुवंशी ऋषियों ने इन विलक्षण एवं विस्तृत कर्मों के सम्पादक अग्निदेव को वनों में प्रज्वलित किया ॥१ ॥

३१५१. अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों द्वारा प्रार्थनीय तथा आलोक सम्पन्न हैं । सभी लोग आपको जीवन दाता के रूप में ग्रहण करते हैं । आपका आलोक हर तरफ कब विस्तृत होगा ? ॥२ ॥

३१५२. ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥३ ॥

वे अग्निदेव ज्ञान से युक्त, माया से रहित तथा समस्त यज्ञों को आलोकित करने वाले हैं । जैसे नक्षत्रों के द्वारा द्युलोक सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप मनुष्यों के यज्ञगृह को सुशोभित करते हैं ॥३ ॥

३१५३. आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४ ॥

जो अग्निदेव द्रुतगामी, याजकों के संदेशवाहक, केतुस्वरूप, तेजोमय तथा अपनी विशेषताओं से समस्त मनुष्यों का उपकार करने वाले हैं; उनको सभी मनुष्य अपने गृहों में प्रतिष्ठित करते हैं ॥४ ॥

३१५४. तमीं होतारमानुषक्चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥५ ॥

यज्ञ सम्पादक, ज्ञानवान्, मनोहर, पवित्र दीप्ति वाले, होताओं में सर्वश्रेष्ठ तथा सात रंग वाली प्रकाश किरणों से सम्पन्न अग्निदेव को यजमानों ने उपयुक्त स्थान पर स्थापित किया है ॥५ ॥

३१५५. तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६ ॥

अद्भुत ज्ञान वाले उन अग्निदेव को याजकों ने प्रतिष्ठित किया है, जो जल तथा वृक्षों के समूह में विद्यमान रहने वाले, गुफा में रहने वाले, आहुति ग्रहण करने वाले तथा कमनीय होकर भी पास में न रखने लायक हैं ॥६ ॥

३१५६. ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्नणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७ ॥

वे अग्निदेव साधकों द्वारा नित्य नमनपूर्वक सम्पन्न किये जाने वाले यज्ञों को जानते हैं । वे श्रेष्ठ सत्यवान् तथा आहुतियों को ग्रहण करने वाले हैं । याजकगण प्रातः काल निद्रा को त्यागकर यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करते हुए उन अग्निदेव को हर्षित करते हैं ॥७ ॥

३१५७. वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८ ॥

हे विद्वान् अग्निदेव ! आप यज्ञदूत के (अपने) कार्य के ज्ञाता हैं तथा द्यावा-पृथिवी के बीच में विद्यमान आकाश को जानने वाले हैं । आप अत्यन्त प्राचीन, सबको समृद्ध करने वाले, रिपुओं से पराजित न होने वाले तथा देवताओं के संदेशवाहक हैं । आप दिव्य लोक से भी ऊँचे स्थान में गमन करते हैं ॥८ ॥

३१५८. कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्व१ र्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९ ॥

हे तेजसम्पन्न अग्निदेव ! आपका पथ काले रंग का है तथा आपकी प्रभा श्रेष्ठ है । आपका गमनशील तेज तेजस्वी पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है । जब अरणियों के बीच में आप पैदा होते हैं, तब पैदा होकर आप यजमानों के संदेशवाहक हो जाते हैं ॥९ ॥

३१५९. सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१० ॥

अरणिमन्थन के पश्चात् पैदा हुए अग्निदेव का ओज दिखायी देने लगता है । जब अग्नि की लपटों को लक्ष्य बनाकर हवा चलती है, तब वे काष्ठ के ढेर में अपनी तीक्ष्ण लपटों को संयुक्त कर देते हैं और कठोर-से कठोर अन्नरूप काष्ठों को अपने तीक्ष्ण दाँतों (लपटों) से भक्षण कर जाते हैं ॥१० ॥

**३१६०. तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११ ॥**

वे अग्निदेव अपनी द्रुतगामी किरणों द्वारा अन्नरूप काष्ठों को शीघ्र ही भस्मीभूत कर देते हैं । उसके बाद वे अपने आप को संदेशवाहक बना लेते हैं । वे समिधाओं को जलाकर वायु प्रवाहों से युक्त हो जाते हैं । जिस प्रकार घुड़सवार घोड़े को परिपुष्ट करता है, उसी प्रकार अग्निदेव अपनी लपटों को तेजस्वी बनाते हुए सबको प्रेरणा देते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

३१६१. दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१ ॥

सम्पूर्ण ज्ञान से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हविवाहक हैं । आप समस्त देव शक्तियों के प्रतिनिधि हैं, यज्ञ के साधनरूप हैं । हम आपसे स्तुति के माध्यम से अनुकूल होने की प्रार्थना करते हैं । आप सदा कृपावान् बने रहें ॥१ ॥

३१६२. स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥२ ॥

महिमावान् वे अग्निदेव समस्त ऐश्वर्यों के ज्ञाता हैं । वे दिव्यलोक के श्रेष्ठतम स्थानों के भी ज्ञाता हैं । इसलिए वे समस्त इन्द्रादिदेवों का हमारे इस यज्ञ में आवाहन करें ॥२ ॥

३१६३. स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३ ॥

वे आलोकवान् अग्निदेव इन्द्रादिदेवों को नमन-वन्दन करने की विधि को जानते हैं । यज्ञ की कामना करने वालों को वे यज्ञ मण्डप में अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

३१६४. स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४ ॥

याजकों से प्राप्त हव्य को देवताओं तक पहुँचाने वाले वे होतारूप अग्निदेव दूत के कार्य को भली-भाँति जानने वाले हैं । वे स्वर्ग लोक के आरोहण-योग्य स्थान को जानने वाले तथा सब जगह विद्यमान रहते हैं ॥४ ॥

३१६५. ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५ ॥

जो याजक आहुति प्रदान करके उन अग्निदेव को हर्षित करते हैं; उन्हें समिधाओं द्वारा प्रज्वलित करते हुए समृद्ध करते हैं, ऐसे याजक के समान हम भी यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करते हुए अग्निदेव को प्रसन्न करें ॥५ ॥

३१६६. ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६ ॥

जो याजक अग्निदेव को हवि प्रदान करते हुए उनकी सेवा करते हैं, वे समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं । ऐसे याजक शक्तिशाली पुत्रों आदि से भी सम्पन्न होते हैं ॥६ ॥

३१६७. अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥७ ॥

अनेकों द्वारा स्पृहणीय ऐश्वर्य नित्य हमारे समीप आए । वे अग्निदेव हमारे यज्ञों में विविध प्रकार से धन-धान्य प्रदान करें ॥७ ॥

३१६८. स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८ ॥

वे मेधावी अग्निदेव अपनी सामर्थ्य द्वारा मानवों के कष्टों को द्रुतगामी बाणों के सदृश तीक्ष्ण प्रहार करके पूर्णरूपेण नष्ट कर देते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ९]

। **ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री । ।

३१६९. अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप उपासकों को समृद्ध और सुखी बनाएँ, क्योंकि आप सामर्थ्यवान् हैं- महान् है । उपासक यजमानों के समीप पवित्र कुश- आसन पर बैठने के लिये आप पधारें ॥१ ॥

३१७०. स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२ ॥

असुरों द्वारा किये गये प्रहार जिनको नष्ट नहीं कर सकते, मनुष्यलोक में स्वतन्त्र रूप से विचरने वाले वे अनश्वर अग्निदेव सम्पूर्ण देवताओं के दूत हैं ॥२ ॥

३१७१. स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ॥३ ॥

वे अग्निदेव यज्ञ मण्डप के चारों तरफ ले जाये जाते हैं । सोमयज्ञों में प्रार्थनीय वे अग्निदेव यज्ञ सम्पादक, होता तथा परिशोधक के रूप में विराजते हैं ॥३ ॥

३१७२. उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ॥४ ॥

वे अग्निदेव प्रार्थनीय एवं यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले होतारूप हैं । वे यज्ञ-मण्डप में गृहस्वामी तथा ब्रह्मा रूप में विद्यमान रहते हैं ॥४ ॥

३१७३. वेषि ह्यध्वरीयतामुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञों में याजकों द्वारा प्रदत्त आहुतियों की अभिलाषा करते हैं । (यज्ञ में विद्यमान मनुष्यों को) श्रेष्ठ प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं ॥५ ॥

३१७४. वेषीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळहवे ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आहुतियां ग्रहण करने के लिए आप जिस याजक के यज्ञ को स्वीकार करते हैं, उसके हव्य को देवताओं तक पहुँचाकर दूत का कार्य भी करते हैं ॥६ ॥

३१७५. अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७ ॥

अङ्गिरारूप हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञ में हव्य को ग्रहण करें तथा हमारी स्तुति को सुनें ॥७ ॥

३१७६. परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥८ ॥

किसी से प्रभावित न होने वाला आपका वह रथ जिससे आप (लोकहित हेतु) दान देने वालों की रक्षा करते हैं, उससे हम सबकी चारों ओर से भली-भाँति रक्षा करें ॥८ ॥

[सूक्त - १०]

। **ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - पद पंक्ति, ४, ६,७ पदपंक्ति अथवा उष्णिक् ५ - महापद पंक्ति, ८ उष्णिक् । ।

३१७७. अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आज हम याजकगण यज्ञ के समान (हितकारी) , अश्व के समान गतिशील, आपके यश को

बढ़ाने के लिए ओह नामक हृदयस्पर्शी स्तोत्रों का प्रयोग करते हैं ॥१ ॥

३१७८. अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! कल्याणकारी, बलवर्द्धक, अभीष्ट प्रदान करने वाले और सत्य स्वरूप आप महान् हैं तथा हमारे यज्ञ के मुख्य आधार हैं ॥२ ॥

३१७९. एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्स्व१र्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः॥३ ॥

हे अग्निदेव ! सूर्य के समान तेजस्वी, श्रेष्ठमना, आप पूज्य इन्द्रादि देवों के साथ हमारे यज्ञ मे पधारें ॥३ ॥

३१८०. आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम । प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आज हम श्रेष्ठतम स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए आपकी प्रार्थना करते हैं । हम आपको आहुतियाँ प्रदान करते हैं । आपकी तेजस्वी लपटें मेघसदृश ध्वनि करती हैं ॥४ ॥

३१८१. तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः । श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी प्रीतियुक्त प्रभा आभूषण के सदृश है । समस्त पदार्थों को आश्रय देने के लिए वह रात-दिन सुशोभित होती है ॥५ ॥

३१८२. घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् । तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६ ॥

हे अन्नसम्पन्न अग्निदेव ! आपका स्वरूप शुद्ध घृत के सदृश पापरहित है । आपका पवित्र तथा मनोहर तेज आभूषण के सदृश आलोकवान् है ॥६ ॥

३१८३. कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्तात् । इत्था यजमानादृतावः ॥७ ॥

हे सत्य से सम्पन्न अग्ने ! यज्ञ करने वाले मनुष्यों के प्राचीन से प्राचीन पाप को भी आप दूर कर देते हैं ॥७ ॥

३१८४. शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे । सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! देवताओं तथा आपके साथ हमारी मित्रता और बन्धुत्व भाव कल्याणकारी हो । यह मित्रता यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के रूप में हम सबका मंगल करे ॥८ ॥

[सूक्त - ११]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३१८५. भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥१ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आपका हितकारी तेजस् दिन में भी चारों तरफ आलोकित होता है तथा सुन्दर और देखने योग्य तेजस् रात्रि में भी दिखाई देता है । आप सौंदर्यवान् हैं । स्निग्ध आज्य (घृत) हव्य के रूप में आपको समर्पित किया जाता है ॥१ ॥

३१८६. वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद्वावनः शुक्र देवैस्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥२ ॥

विभिन्न रूपों में प्रकट होने वाले हे अग्निदेव ! यज्ञादि कर्मों के साथ प्रार्थना करने वालों से आप प्रशंसित होकर उनके लिए स्वर्गलोक के द्वार (उन्नति का मार्ग) खोल देते हैं । श्रेष्ठतम तेज से सम्पन्न हे अग्निदेव ! समस्त देवताओं तथा याजकों को जो महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वही हमको भी प्रदान करें ॥२ ॥

३१८७. त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषास्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥३ ॥

हे अग्ने ! उत्कृष्ट चिन्तन करने वाली बुद्धि (प्रज्ञा) तथा आराधनीय स्तोत्र आपके द्वारा उत्पन्न किये गये हैं । शुभ कर्म करने वाले तथा दान देने वाले मनुष्य के निमित्त पुष्टिकारक ऐश्वर्य भी आपके द्वारा प्रकट किये गये हैं ॥३ ॥

३१८८. त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥४ ॥

हे अग्ने ! बलशाली, अन्न से सम्पन्न, श्रेष्ठ यज्ञ कर्म तथा सत्यबल से सम्पन्न (पुरुष या पुत्र) आपके द्वारा ही पैदा होते हैं । देवताओं के द्वारा प्रेरित हर्षप्रदायक ऐश्वर्य तथा द्रुतगामी (अश्व) भी आपके द्वारा ही उत्पन्न होते हैं ॥४ ॥

३१८९. त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥५ ॥

हे अविनाशी अग्ने ! आप देवताओं में सर्वश्रेष्ठ, महान् गुणसम्पन्न, हर्षप्रदायक जिह्वा वाले, असुरों के संहारक, दुष्टों के विनाशक, गृहपति तथा ज्ञानी हैं । देवाभिलाषी याजकगण विवेक द्वारा आपकी परिचर्या करते हैं ॥५ ॥

३१९०. आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥६ ॥

बल से उत्पन्न होने वाले हे अग्निदेव ! आप रात्रि के समय कल्याणकारी तथा तेजस्वी होकर हमारे हित के लिए हमारी सुरक्षा करते हैं । जिस प्रकार आप याजकों का पोषण करते हैं, उसी प्रकार हमारे अविवेक को दूर करें । हमारे समीप से पाप तथा दुर्बुद्धि को भी दूर करें ॥६ ॥

[सूक्त - १२]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३१९१. यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! जो व्यक्ति स्रुक् (स्रुवा या इन्द्रियों) को संयमित करके आप (अग्नि या प्राणाग्नि) को प्रदीप्त करते हैं तथा जो नित्य तीनों सवनों में हवि रूप अन्न प्रदान करते हैं, वे इन तुष्टिकारक कार्यों द्वारा आपके तेज को प्राप्त करते हैं । उस तेजस्विता के द्वारा सभी शत्रुओं को परास्त करते हैं ॥१ ॥

[इन्द्रिय संयम से प्राणाग्नि तेजस्वी बनती है, उसके माध्यम से सभी बाधाओं को परास्त किया जाना सम्भव है ।]

३१९२. इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन्रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप महान् हैं । जो मनुष्य परिश्रमपूर्वक आपके निमित्त समिधाएँ लाते हैं और सभी जगह विद्यमान आपके तेज की उपासना करते हैं, जो प्रातः- सायं आपको प्रज्वलित करते हैं, वे सभी बलशाली होकर अपने रिपुओं का विनाश करते हैं तथा ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

३१९३. अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्याग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥३ ॥

शौर्य एवं पराक्रम के धनी वे अग्निदेव श्रेष्ठ अन्न तथा धनों के स्वामी हैं । अत्यन्त शक्ति तथा धन-धान्य से सम्पन्न अग्निदेव, स्तोताओं को परम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३ ॥

३१९४. यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठाचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान्व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥४ ॥

चिरयुवक हे अग्निदेव ! यदि आपके उपासकों के बीच हमने भूलवश कोई पाप किया हो, तो आप हमें उन समस्त पापों से मुक्त करें । सब जगह विद्यमान रहने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारे पापों को शिथिल करें ॥४ ॥

३१९५. महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद्रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे मित्र होने के कारण आप हमें इन्द्र आदि देवताओं अथवा मानवों के प्रति अज्ञानवश किये गये पापों से दण्डित न करें । आप हमारे पुत्र तथा पौत्रों को हर्ष और आरोग्य प्रदान करें ॥५ ॥

३१९६. यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षितामभुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६ ॥

हे पूजनीय तथा सबको आश्रय प्रदान करने वाले अग्निदेव ! जिस प्रकार आपने पैर बँधी गौ को छुड़ाया था, उसी प्रकार हमारे पापों से हमें मुक्त करें । हे अग्निदेव ! आप हमारी आयु को और भी अधिक बढ़ायें ॥६ ॥

[सूक्त - १३]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - अग्नि (लिङ्गोक्त देवता) । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३१९७. प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१ ॥

सुन्दर मनवाले अग्निदेव उषाओं के पूर्व ही रत्न के सदृश देदीप्यमान अपने ओज को फैलाते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप यज्ञादि सत्कर्म करने वालों के गृह में गमन करें । तेजस्वी सूर्यदेव उदित हो रहे हैं ॥१ ॥

३१९८. ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२ ॥

जिस प्रकार बलशाली वृषभ गौओं की इच्छा करके धूल को उड़ाते हैं, उसी प्रकार तेजस्वी आदित्य अपनी रश्मियों को ऊपर की ओर फैलाते हैं । जब रश्मियाँ आदित्य को द्युलोक में चढ़ाती हैं, तब मित्रावरुण अपने-अपने कर्मों का अनुगमन करते हैं ॥२ ॥

३१९९. यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३ ॥

अपने स्थान पर दृढ़ रहने वाले तथा अपने कर्म का परित्याग न करने वाले देवताओं ने चारों तरफ की तमिस्रा को नष्ट करने के लिए जिन आदित्यदेव का सृजन किया, उन सम्पूर्ण जगत् का अवलोकन करने वाले आदित्यदेव को सात अश्व वहन करते हैं ॥३ ॥

[संचरित होने वाली किरणों को अश्व कहा जाता है । सूर्य का प्रकाश सात रंग की किरणों से मिलकर बना है । इसीलिए उसे सात अश्वों से संचालित कहा गया है ।]

३२००. वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्व१न्तः ॥४॥

हे आलोकवान् सूर्यदेव ! आप अपनी रश्मियों को बिखेरते हुए तथा काली रात रूपी आवरण को नष्ट करते हुए अपने शक्तिशाली अश्वों द्वारा सब जगह गमन करते हैं। कम्पायमान आपकी रश्मियाँ आकाश के बीच में चर्म के समान विद्यमान अंधकार को दूर करती हैं ॥४॥

३२०१. अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

बिना आश्रय तथा बन्धन के ये सूर्यदेव किस शक्ति से ऊपर की ओर गमन करते हैं? वे नीचे क्यों नहीं पतित होते? इसे किसने देखा है? द्युलोक के आश्रय रूप होकर वे सत्यरूप सूर्यदेव स्वर्ग की सुरक्षा करते हैं ॥५॥

[सूक्त - १४]

[ऋषि - वामदेव गौतम। देवता - अग्नि (लिङ्गोक्त देवता)। छन्द - त्रिष्टुप्।]

३२०२. प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१॥

देवत्व सम्पन्न, सर्वज्ञाता अग्निदेव (सूर्य रूप में) अपने ओज द्वारा तेजयुक्त उषा को आलोकित करते हैं। हर प्रकार से प्रार्थनीय हे अश्विनीकुमारो ! आप भी अपने रथ द्वारा हमारे यज्ञ में पधारें ॥१॥

३२०३. ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन्।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

वे सवितादेव, सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हुए अपनी ऊर्ध्वमुखी रश्मियों का आश्रय लेते हैं। वे सबका अवलोकन करने वाले हैं। अपनी रश्मियों के द्वारा द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं ॥२॥

३२०४. आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु१षा ईयते सुयुजा रथेन ॥३॥

ऐश्वर्य धारण करने वाली, रक्तवर्ण वाली, ज्योति से सम्पन्न रश्मियों के माध्यम से सुन्दर उषा प्रकट होती हैं। वे प्राणियों को जाग्रत् करती हुई उनका कल्याण करने के निमित्त अपने श्रेष्ठ रथ द्वारा सर्वत्र गमन करती हैं ॥३॥

३२०५. आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन्यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! उषा के आलोकित होने पर, रथ को खींचने में अत्यन्त सक्षम आपके घोड़े हमारे इस यज्ञ में आप दोनों को ले आएँ। हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! यह सोमरस आपके लिए है, अतः इस यज्ञ में सोमरस पान करके आनन्दित हों ॥४॥

३२०६. अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

बिना आश्रय तथा बन्धन के सूर्यदेव किस शक्ति से ऊपर की ओर गमन करते हैं? वे नीचे क्यों नहीं पतित होते? इसे किसने देखा है? द्युलोक के आश्रय रूप होकर वे सत्यरूप सूर्यदेव स्वर्ग की सुरक्षा करते हैं ॥५॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि-** वामदेव गौतम । **देवता -** अग्नि, ७- ८ सोमक साहदेव्य, ९-१० अश्विनीकुमार । **छन्द** -गायत्री ।]

३२०७. अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥१ ॥

यज्ञ के होता, देवों के भी देव तथा यजनीय अग्निदेव यज्ञ मण्डप में द्रुतगामी अश्वों के द्वारा लाये जाते हैं ॥१॥

३२०८. परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२ ॥

वे देव देवों के निमित्त अन्न ग्रहण करके रथी के सदृश यज्ञस्थल के चारों ओर तीन बार चक्कर लगाते हैं ॥२ ॥

३२०९. परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३ ॥

सर्वज्ञ, अन्नों के स्वामी अग्निदेव याजकों द्वारा दिये गये हवनीय पदार्थों को स्वीकार करते हैं तथा परमार्थ-परायणों को धन-धान्य से परिपूर्ण बनाते हैं ॥३ ॥

३२१०. अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४ ॥

रिपुओं का संहार करने वाले, देदीप्यमान अग्निदेव को देवताओं के द्वारा इच्छित विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से सबसे आगे प्रदीप्त किया जाता है ॥४ ॥

३२११. अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥५ ॥

तेजस्वी ज्वालाओं वाले, इच्छित परिणाम वाले तथा गमन करने वाले अग्निदेव की भक्ति करने वाले व्यक्ति पराक्रमी बनकर समस्त धनों के स्वामी बनते हैं ॥५ ॥

३२१२. तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६ ॥

द्रुतगामी अश्वों और द्युलोक पुत्र आदित्य के सदृश प्रकाशमान तथा सबके द्वारा प्रार्थनीय अग्निदेव की याजकगण नित्य प्रति परिचर्या करते हैं ॥६ ॥

३२१३. बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥७ ॥

जब 'सहदेव' के पुत्र सोमक नामक राजा ने हमें अश्व प्रदान करने का विचार किया, तब हम भली प्रकार उनके समीप पहुँचे । वहाँ से सन्तुष्ट होकर लौटे ॥७ ॥

३२१४. उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥८ ॥

उन प्रशंसा के योग्य तथा प्रयत्नशील अश्वों को हमने सहदेव के पुत्र 'सोमक' से ग्रहण किया ॥८ ॥

३२१५. एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके प्रीति पात्र 'सहदेव' पुत्र 'सोमक' दीर्घ आयुष्य वाले हों ॥९ ॥

३२१६. तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! 'सहदेव' के पुत्र 'सोमक' को आप दोनों लम्बी आयु प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२१७. आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१ ॥

व्यवहार कुशल, सत्यनिष्ठ तथा धनवान् इन्द्रदेव हमारे समीप पधारें । दौड़ते हुए उनके अश्व (उन्हें साथ लेकर) हमारे समीप शीघ्र ही पहुँचें । उन इन्द्रदेव के निमित्त हम याजक अन्नरूप सोमरस अभिषुत करते हैं । तृप्त होकर वे हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१ ॥

३२१८. अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! जिस प्रकार लक्ष्य पर पहुँचे हुए अश्वों को मुक्त करते हैं, उसी प्रकार आप हमें मुक्त करें; ताकि हम इस यज्ञ में आपको हर्षित करने के लिए भली-भाँति परिचर्या कर सकें । हे इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञाता तथा असुरों का संहार करने वाले हैं । याजकगण 'उशना' ऋषि के सदृश उत्तम स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं ॥२ ॥

[इन्द्रदेव लक्ष्य पर पहुँचकर अपने अश्वों को मुक्त कर देते हैं, यह कथन एक सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया को स्पष्ट करता है । इन्द्रदेव संगठन (संयुक्त रखने) की सामर्थ्य के रूप में मान्य हैं । किसी-किसी ऊर्जा स्रोत से उभरने वाले ऊर्जा प्रवाह (अश्व) इन्द्रशक्ति के कारण अपने स्रोत से जुड़े रहते हैं । वे ऊर्जा प्रवाह जब किसी पदार्थ या प्राणी तक पहुँच जाते हैं, तो वे उन (पदार्थों - प्राणियों) के द्वारा धारण किये जाते हैं और उन्हीं के अंगों के तन्त्र बनने के लिए ऊर्जा स्रोत के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं । जैसे सूर्य की हर किरण सूर्य से जुड़ी है, जब वह किसी वृक्ष की पत्ती पर पड़ जाती है, तो वह वृक्ष के (रस पकाने जैसे) प्राण चक्र का अङ्ग बन जाती है । सूर्य उसे मुक्त कर देता है ।]

३२१९. कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३ ॥

जब यज्ञों को सम्पादित करते हुए तथा सोमपान ग्रहण करते हुए वे इन्द्रदेव पूजे जाते हैं, तब वे द्युलोक से सप्त रश्मियों को उत्पन्न करते हैं । जैसे विद्वान् गूढ़ अर्थों को जानते हैं, उसी प्रकार कामना की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव समस्त कार्यों को जानते हैं । उनकी रश्मियों की सहायता से याजकगण अपने कर्मों को सम्पन्न करते हैं ॥३॥

३२२०. स्व१ र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४ ॥

जब विस्तृत तथा तेजोयुक्त द्युलोक प्रकाशित होकर दर्शनीय बनता है, तब सभी के आवास भी आलोकित होते हैं । जगत् के श्रेष्ठ नायक सूर्यदेव ने उदित होकर मनुष्यों के देखने के निमित्त सघन तमिस्रा को विनष्ट कर दिया है ॥४ ॥

३२२१. ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१ भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५ ॥

अपरिमित महिमा को धारण करने वाले इन्द्रदेव ने समस्त भुवनों पर अपना अधिकार कर लिया है । सोमरस पान करने वाले वे इन्द्रदेव अपनी महिमा के द्वारा द्यावा-पृथिवी दोनों को पूर्ण करते हैं । इसीलिए इनकी महानता की कोई तुलना नहीं की जा सकती ॥५ ॥

३२२२. विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६ ॥

वे इन्द्रदेव मनुष्यों के समस्त कल्याणकारी कार्यों के ज्ञाता हैं । कामना करने वाले सखाभाव युक्त मरुतों के निमित्त उन्होंने जल वृष्टि की । जिन मरुतों ने अपनी ध्वनि के द्वारा मेघों को भी विदीर्ण कर दिया, उन आकांक्षा करने वाले मरुतों ने गौओं (किरणों) के भण्डार खोल दिये ॥६ ॥

३२२३. अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुरक्षा करने वाले आपके वज्र ने जब पानी को अवरुद्ध करने वाले मेघ को विनष्ट किया, तब पानी बरसने से धरती चैतन्य हुई । हे रिपुओं के संहारक, पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपने अपनी शक्ति से लोकपति होकर आकाश में स्थित जल को प्रेरित किया ॥७ ॥

३२२४. अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८ ॥

बहुतों के द्वारा आहूत किये जाने वाले हे इन्द्रदेव ! जब 'सरमा' ने आपके निमित्त गौओं (प्रकाश किरणों) को प्रकट किया, तब आपने जल से परिपूर्ण मेघों को विदीर्ण किया । अंगिरा वंशियों से स्तुत्य होकर आप हमें प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥८ ॥

३२२५. अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! मनुष्य आपका सम्मान करते हैं । ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आप 'कुत्स' के पास गये थे । उनके द्वारा प्रार्थना करने पर रिपुओं के विप्लव से आपने उन्हें रक्षित किया था । कुटिल याजकों के कार्यों को आपने अपनी बुद्धि से जाना और कुत्स के ऐश्वर्य की कामना करने वाले रिपुओं को संग्राम में नष्ट किया था ॥९ ॥

३२२६. आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मन में रिपुओं का संहार करने की कामना करके 'कुत्स' के घर में आगमन किया था । कुत्स भी आपके संग मित्रता करने के लिए अत्यधिक लालायित हुए थे । इसके बाद आप दोनों अपने घर में बैठे थे, तब सत्यावलोकन करने वाली 'शची' आप दोनों की एक जैसी आकृति देखकर द्विविधा में पड़ गई थी ॥१० ॥

३२२७. यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११ ॥

जिस दिन दूरदर्शी कुत्स (कुण्ठाग्रस्त साधक) योग्य अन्न (आहार) की तरह ऋजुता (सरलता) को अपनाकर (संकट से) पार होने के लिए तत्पर होता है, तब उसके रक्षण की कामना से शत्रुहन्ता, वायु वेगवाले अश्वों के स्वामी आप (इन्द्रदेव) कुत्स के साथ एक ही रथ पर आरूढ़ हो जाते हैं ॥११ ॥

[जब कुण्ठाग्रस्त साधक अपनी दूरदर्शिता का प्रयोग करके सहजभाव से कुण्ठा के कारणों को पार करने के लिए संकल्पित होता है, तब इन्द्र (आत्मबल) उसके मनोरथ को पूर्ण करने के लिए उसके साथ हो जाता है ।]

३२२८. कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! 'कुत्स' की सुरक्षा के लिए आपने अत्यन्त बलशाली 'शुष्ण' नामक असुर का संहार किया था । आपने दिवस के पूर्व भाग (पूर्वाह्न) में ही सहस्रों सैनिकों वाले 'कुयव' राक्षस का संहार किया । अनेकों स्वजनों से घिर कर आपने उसी क्षण अपने वज्र से दस्युओं का भी विनाश किया तथा युद्ध में सूर्य के सदृश तेजस्वी शस्त्रास्त्रों को नष्ट किया ॥१२ ॥

३२२९. त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! वैदथि के पुत्र 'ऋजिश्वा' के निमित्त आपने, अत्यन्त शक्तिशाली असुर 'पिप्रु' तथा 'मृगया' को विनष्ट किया । आपने पचास हजार श्याम वर्ण वाले राक्षसों का संहार किया । जिस प्रकार बुढ़ापा सौन्दर्य को नष्ट कर देता है अथवा पुराने वस्त्रों को फाड़ दिया जाता है; उसी प्रकार आपने रिपुओं के नगरों को नष्ट किया था ॥१३ ॥

३२३०. सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत्ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥१४ ॥

हे अविनाशी इन्द्रदेव ! जब आप सूर्य के समीप अपने देह को धारण करते हैं, तब आपका रूप और अधिक आलोकित होने लगता है । हे इन्द्रदेव ! आप शक्तिशाली हाथी के सदृश विकराल रिपुओं की सेनाओं को भस्मसात् करते हैं । जब आप हथियार धारण करते हैं, तब सिंह की तरह भयंकर होते हैं ॥१४ ॥

[इन्द्र, सूक्ष्मकणों को परस्पर सम्बद्ध किये रहने वाली शक्ति सहज रूप में पोषक एवं रक्षक है, किन्तु जब उसका उपयोग हथियार (अणु-आयुध-एटामिक वैपन) के रूप में होता है, तब वह भयानक हो जाता है ।]

३२३१. इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन्त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थैरोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥१५ ॥

असुरों द्वारा पैदा किये गये भय को दूर करने की तथा धन की कामना करने वाले याजकगण, युद्ध के समान यज्ञों में देदीप्यमान इन्द्रदेव से अन्न की याचना करते हैं । वे याजकगण स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करते हुए उनके पास गमन करते हैं । वे इन्द्रदेव निवास स्थान के सदृश हर्षदायक और मनोहर हैं तथा श्रेष्ठ धन के समान दर्शनीय हैं ॥१५

३२३२. तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥१६ ॥

स्पृहणीय ऐश्वर्य वाले जिन इन्द्रदेव ने मनुष्यों के कल्याण के लिए अनेकों ख्यातिपूर्ण कार्य सम्पन्न किये तथा जो हम याजकों के निमित्त ग्रहणीय अन्न तुरन्त प्रदान करते हैं, ऐसे श्रेष्ठ आवाहन योग्य इन्द्रदेव को हम सबकी सहायता के लिए बुलाते हैं ॥१६ ॥

३२३३. तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥१७ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! जब मनुष्यों के किसी भी संग्राम में हम याजकों के ऊपर तीक्ष्ण वज्रपात हो अथवा घमासान युद्ध हो, तब आप हमारे शरीरों के संरक्षक बनें ॥१७ ॥

[ऋषियों के पास इन्द्रशक्ति के आयुध रूप में उपयोग के साथ-साथ उसके 'कवच' रूप में उपयोग की भी विद्या थी । वर्तमान विज्ञान अभी उसका प्रयोग केवल आयुध रूप में ही कर सका है, रक्षक कवच के रूप में प्रयोग की विधि अभी तक खोजी नहीं जा सकी है ।]

३२३४. भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! 'वामदेव' ऋषि द्वारा सम्पन्न किये जा रहे यज्ञ-कृत्य के आप संरक्षक हों । आप कपट रहित होकर संग्राम में हमारे सखा हों । हम श्रेष्ठ ज्ञानी बनकर आपका अनुसरण करें और आप हम स्तोताओं के निमित्त सदैव प्रार्थनीय हों ॥१८ ॥

३२३५. एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥१९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! हम समस्त युद्धों में धन से सम्पन्न हों । द्युलोक के सदृश ओजस्वी अपने सहायक मरुतों के साथ होकर आप रिपुओं को परास्त करें । हम अनेक वर्षों तक रात-दिन आपको हर्षित करते रहें ॥१९ ॥

३२३६. एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥२० ॥

जिस प्रकार भृगुवंशियों ने इन्द्रदेव को रथ प्रदान किया था, उसी प्रकार हम शक्तिशाली तथा इच्छाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्र पाठ करते हैं । इस प्रकार हमारी उनकी मित्रता परिपक्व हो । वे हमारे शरीर के पोषक तथा संरक्षक हों ॥२० ॥

३२३७. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सरिताएँ जल प्रदान करती हैं, उसी प्रकार आप स्तुतियों द्वारा प्रशंसित होकर हम याजकों के लिए अन्न प्रदान करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम आपके निमित्त अभिनव स्तोत्रों को रचते हैं, जिससे हम रथों से युक्त होकर आपके सेवक बने रहें ॥२१ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, १५ एकपदा विराट् ।]

३२३८. त्वं महाँ इन्द्र तुभ्यं ह क्षा अनु क्षत्रं मंहना मन्यत द्यौः ।
त्वं वृत्रं शवसा जघन्वान्त्सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानान् ॥१ ॥

हे महान् इन्द्रदेव ! आपके क्षात्र-बल का धरती अनुसरण करती है तथा आपके महत्त्व को महिमावान् द्युलोक स्वीकार करता है । आपने अपनी सामर्थ्य से वृत्र का संहार किया तथा 'अहि' द्वारा अवरुद्ध की गयी सरिताओं को प्रवाहित किया ॥१ ॥

३२३९. तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौ रेजद्भूमिर्भियसा स्वस्य मन्योः ।
ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आपः ॥२ ॥

महान् तेजस्विता से सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आपके पैदा होते ही, आपके मन्यु से भयभीत होकर आकाश-पृथिवी काँपने लगे तथा बृहत् मेघों के समूह भयभीत होने लगे । इन मेघों ने जीवों की प्यास को बुझाते हुए मरुस्थल में भी जल को प्रेरित किया (बरसाया) ॥२ ॥

३२४०. भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३ ॥

रिपुओं को परास्त करने वाले इन्द्रदेव ने अपने ओज को प्रकट करके अपनी शक्ति से वज्र को प्रेरित किया और मेघों को विदीर्ण किया । उन्होंने सोमपान से हर्षित होकर अपने वज्र द्वारा वृत्र का संहार किया । वृत्र के नष्ट हो जाने पर जल आवरण (अवरोध) रहित होकर वेग के साथ प्रवाहित होने लगा ॥३ ॥

३२४१. सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत्।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रशंसनीय श्रेष्ठ वज्र को धारण करने वाले, अपने स्थान से च्युत न होने वाले तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं । आपको पैदा करने वाले प्रकाशमान प्रजापति ने स्वयं को श्रेष्ठ सन्तानवान् स्वीकारा । आपको जन्म देने वाले प्रजापति, श्रेष्ठ कर्म करने वाले थे ॥४॥

३२४२. य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥

समस्त मनुष्यों के राजा, अनेकों द्वारा आवाहन किये जाने वाले इन्द्रदेव अकेले होकर भी अनेकों रिपुओं को अपने स्थान से च्युत कर देते हैं । समस्त धनवान् मनुष्य उन इन्द्रदेव को आनन्दित करते हैं; जो महान् गुणों से सम्पन्न तथा याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥५॥

३२४३. सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६॥

समस्त सोमरस उन इन्द्रदेव के निमित्त है । यह हर्षप्रदायक सोमरस उनको तृप्त करता है । वे समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं । हे इन्द्रदेव ! आप समस्त मनुष्यों का पोषण करते हुए उन्हें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥६॥

३२४४. त्वमध प्रथमं जायमानोऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः।
त्वं प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण मघवन्वि वृश्चः ॥७॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! पैदा होते ही सर्वप्रथम आपने समस्त मनुष्यों को वृत्र के प्रकोप से बचाया । प्रवाहशील जल को अवरुद्ध करके सोने वाले 'अहि' को आपने अपने वज्र से विनष्ट किया ॥७॥

३२४५. सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम्।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥८॥

शत्रु समूह के संहारक, उन्हें भयभीत करने वाले, (पराजित करके) भगा देने वाले, अत्यधिक शक्तियुक्त, श्रेष्ठ वज्रधारक, वृत्रहन्ता, अन्नदायक, धनरक्षक इन्द्रदेव अपने उपासकों को धन प्रदान करने वाले हैं ॥८॥

३२४६. अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९॥

जो संग्राम में अकेले ही विजय प्राप्त करने वाले के रूप में विख्यात हैं, ऐसे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ने एकत्रित हुए रिपुओं को विनष्ट कर दिया । वे इन्द्रदेव जिस व्यक्ति को अन्न प्रदान करने की कामना करते हैं, उसे देते ही रहते हैं । उनके साथ हमारी मित्रता प्रीतियुक्त हो ॥९॥

३२४७. अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळहं भयत एजदस्मात् ॥१०॥

वे इन्द्रदेव रिपुओं को युद्ध में जीतकर उनका विनाश करते हुए ख्याति प्राप्त करते हैं । वे शत्रुओं से गौएँ छीनकर लाते हैं । वे इन्द्रदेव जब सचमुच क्रोध करते हैं, तब समस्त स्थावर-जंगम जगत् उनसे भयभीत होने लगता है ॥१०॥

३२४८. समिन्द्रो गा अजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११ ॥

जिन्होंने शत्रुओं से युद्ध करके उनके स्वर्ण भण्डार, गौओं, अश्वों तथा उनकी विशाल सेनाओं को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया । सभी शक्तिशाली, धनवान् तथा श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा उन इन्द्रदेव की स्तुति की जाती है । वे इन्द्रदेव सभी को अपना ऐश्वर्य वितरित कर देते हैं; फिर भी सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न बने रहते है ॥११ ॥

३२४९. कियत्स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत्पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥१२ ॥

वे इन्द्रदेव अपने माता-पिता के पास से कितनी शक्ति प्राप्त करते हैं ? जिन्होंने अपने उत्पन्न करने वाले प्रजापति के पास से इस दिखायी पड़ने वाले जगत् को प्रकट किया तथा उन्हीं के पास से इस जगत् को बारम्बार सामर्थ्य प्रदान किया, वे इन्द्रदेव गर्जना करने वाले मेघों द्वारा प्रेरित वायु के समान बुलाये जाते हैं ॥१२ ॥

३२५०. क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप निराश्रितों को आश्रय प्रदान करते हैं तथा किये गये पापों को विनष्ट करते हैं । आप द्युलोक के सदृश सुदृढ वज्र धारण करने वाले हैं और रिपुओं का संहार करने वाले हैं । आप धनवान् हैं, इसलिए स्तोताओं को भी धन प्रदान करते हैं ॥१३ ॥

३२५१. अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४ ॥

उन इन्द्रदेव ने आदित्य के चक्र को प्रेरित किया और संग्राम के निमित्त गमन करने वाले 'एतश' को लौटाया । कुटिल चाल वाले और काले रंग वाले मेघों ने तेजस्वी जल के मूल स्थान आकाश में विद्यमान इन्द्रदेव को अभिषिक्त किया ॥१४ ॥

३२५२. असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५ ॥

रात्रि के समय याजकगण सोमरस के द्वारा इन्द्रदेव का अभिषेक करते हैं । वे भी रात्रि में ही सभी मनुष्यों को परम ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥१५ ॥

३२५३. गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६ ॥

हम ज्ञानी याजक गौओं, घोड़ों, अन्नों तथा स्त्रियों की कामना करते हैं । जिस प्रकार पिपासु जल-कुण्ड में से जलपूर्ण पात्र को निकालते है, उसी प्रकार हम भी सृजनात्मक क्षमता प्रदान करने वाले तथा कभी नष्ट न होने वाले रक्षण - साधनों से सम्पन्न उन इन्द्रदेव को अपनी ओर बुलाते हैं ॥१६ ॥

३२५४. त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप रक्षक की तरह सबका अवलोकन करते हुए हमारी सुरक्षा करें । सोम अभिषवकर्ता साधकों के लिए आप हर्षित करने वाले सखा हैं । प्रजापति की तरह आपकी प्रसिद्धि है । आप पालन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ पालक हैं । आप इस लोक के स्रष्टा हैं और याजकों के अन्नप्रदाता है ॥१७ ॥

३२५५. सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८ ॥

हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! हम आपकी मित्रता की कामना करते हैं । आप हमारे संरक्षक और हमारे मित्र हों । आप याजकों के निमित्त अन्न धारण करें । हे इन्द्रदेव ! हम संकटग्रस्त होकर इन स्तोत्रों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हुए आपको आहूत करते हैं ॥१८ ॥

३२५६. स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥१९ ॥

जब धनवान् इन्द्रदेव हम मनुष्यों के द्वारा प्रशंसित होते हैं, तब वे पीछे न हटने वाले अनेक रिपुओं को अकेले ही विनष्ट कर देते हैं । उन इन्द्रदेव की शरण में रहने वाले प्रिय याजक को न तो देवता नष्ट कर सकते हैं और न ही मनुष्य नष्ट कर सकते हैं ॥१९ ॥

३२५७. एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२० ॥

अनेक प्रकार के शब्द करने वाले, मनुष्यों के धारणकर्त्ता, रिपुरहित तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमारी सत्य अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले हैं । हे इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण जन्मधारियों के सम्राट् हैं । स्तुति करने वाले लोग जिस महान् कीर्ति को आप से प्राप्त करते हैं, उस कीर्ति को आप हम मनुष्यों को प्रचुर परिमाण में प्रदान करें ॥२० ॥

३२५८. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस तरह सरिताओं को जल प्रवाह पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार आप प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होकर तथा हमारे द्वारा स्तुत होकर हम याजकों को अन्न से पूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हमने अपनी बुद्धि द्वारा आपके निमित्त स्तोत्र तैयार किया है; अतः हम रथवान् हों और आपकी सेवा करें ॥२१ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम, १ - इन्द्र, ४ का उत्तरार्द्ध एवं ७ अदिति । **देवता** - १ वामदेव, २-४ पूर्वार्द्ध मंत्र का तथा ८ - १३ इन्द्र, ४, ५-६ का उत्तरार्द्ध तथा ७ वामदेव । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३२५९. अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१ ॥

यह पथ सनातन है । समस्त देवता और मनुष्य इसी मार्ग से पैदा हुए हैं तथा प्रगति की है । हे मनुष्यो ! आप अपने उत्पन्न होने की आधाररूपा अपनी माता को विनष्ट न करें ॥१ ॥

[मनुष्य अपनी प्रतिभा इस प्रकार प्रकट न करे, जिससे माता-प्रकृति नष्ट होने लगे ।]

३२६०. नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥२ ॥

यह पूर्वोक्त मार्ग अत्यन्त दुरूह है; अतः हम इस मार्ग से गमन नहीं करेंगे । हम बगल के मार्ग से निकलेंगे । अन्यों के द्वारा करने योग्य अनेकों कार्य हमें करने हैं । हमें एक साथ लड़ना है तथा एक-एक से पूछना है ॥२ ॥

। प्रकृति नष्ट न हो, प्रगति के ऐसे मार्ग खोजने हैं । माता प्रकृति की रक्षार्थ एक साथ संघर्ष करना है, हर एक से परामर्श करना है ।]

३२६१. परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥३ ॥

मरणासन्न हुई माता को हम देख चुके हैं, अतः हम प्राचीन मार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे । तुरन्त ही अन्य मार्ग पर अनुगमन करेंगे । लकड़ी के बर्तन में सोमरस अभिषुत करने वाले त्वष्टा के गृह में इन्द्रदेव ने अनेकों प्रकार से लाभ प्रदान करने वाले सोमरस का पान किया ॥३ ॥

३२६२. किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥४ ॥

अदिति ने उन शक्तिशाली इन्द्रदेव का अनेकों वर्षों तथा महीनों तक पालन किया । इसलिए वे इन्द्रदेव विपरीत कार्य क्यों करेंगे ? अब तक पैदा हुए तथा पैदा होने वालों में से कोई भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता ॥४॥

३२६३. अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५ ॥

माता ने गर्भ-गुहा में पैदा होने वाले इन्द्रदेव को समर्थ मानकर शक्तिपूर्वक बाहर निकाला । पैदा होते ही इन्द्रदेव अपने ओज को धारण करके स्वयं उठ खड़े हुए और द्यावा-पृथिवी को अपने तेज से पूर्ण कर दिया ॥५ ॥

३२६४. एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव सङ्क्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६ ॥

हर्ष ध्वनि करती हुई जल से पूर्ण ये सरिताएँ कल-कल करती हुई प्रवाहित हो रही हैं । हे ऋषे ! ये सरिताएँ क्या कहती हैं ? इनसे पूछें । क्या ये इन्द्रदेव का गुणगान करती हैं ? उन इन्द्रदेव के आयुध जल को आवृत करने वाले मेघों को विदीर्ण करते हैं ॥६ ॥

३२६५. किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७ ॥

इन्द्रदेव द्वारा वृत्र का संहार करने पर लगे ब्रह्महत्या के पाप के विषय में वेद-वाणी क्या निर्देश देती है ? उनके पाप कर्म को पानी ने फेन रूप में ग्रहण किया । मेरे पुत्र इन्द्रदेव ने अपने हथियार वज्र से वृत्र का संहार किया और इन सरिताओं को प्रवाहित किया ॥७ ॥

३२६६. ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी माता अदिति ने हर्षित होकर, आपको उत्पन्न किया । एक बार 'कुषवा' नाम वाली राक्षसी ने आपको निगलने का प्रयास किया था । सूतिका गृह में आप राक्षसी का वध करने के लिए तैयार हो गये थे । जब आप बालक थे, तब जल ने आपको हर्षित किया था । उसके बाद आप अत्यधिक सामर्थ्यवान् होकर उठ खड़े हुए ॥८ ॥

३२६७. ममच्चन ते मघवन्व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवाञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥९ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! 'व्यंस' नामक राक्षस ने मदयुक्त होकर आपकी ठोड़ी पर प्रहार किया । इसके बाद अत्यधिक बलशाली होकर आपने उस राक्षस के सिर को वज्र से विदीर्ण कर दिया ॥९ ॥

३२६८. गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागामनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम् ॥१० ॥

जैसे गौ बछड़े को पैदा करती है, उसी प्रकार अदिति माता अपनी इच्छानुसार विचरण करने के लिए इन्द्रदेव को उत्पन्न करती हैं । वे इन्द्रदेव उम्र से प्रौढ़, अत्यन्त शक्तिशाली , रिपुओं से अजेय, प्रेरक, न मारे जाने वाले तथा स्वयं गमन के लिए शरीर की अभिलाषा करने वाले हैं ॥१० ॥

[इन्द्र संगठक शक्ति (यूनाइटिंग फोर्स) के पर्याय हैं । अदिति (विभक्त न होने वाली) चेतन सत्ता इन्द्र की माता है । वह परमाणु (एटम) को सूक्ष्म उपकणों (सब एटामिक पार्टिकल्स) में विभक्त न होने देने के लिए संगठक शक्ति इन्द्र को उत्पन्न करती है ।]

३२६९. उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११ ॥

माता अदिति ने अपने महिमावान् वत्स इन्द्र से निवेदन किया कि ये देवगण आपका परित्याग कर रहे हैं । इसके बाद वृत्र का संहार करने की अभिलाषा करते हुए इन्द्रदेव ने विष्णु से कहा कि हे सखा विष्णु ! आप श्रेष्ठ पराक्रमी हों ॥११ ॥

[इन्द्र (संगठक शक्ति) के प्रभाव से पदार्थ बन जाते हैं । तब देवशक्तियों को उनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । अदिति-विभाजन न चाहने वाली चेतना, तब पोषण करने वाली विष्णु शक्ति को विकसित करती है । इन्द्र अपनी संगठक शक्ति को विष्णु (पोषण) के समर्थन में लगाने लगते हैं ।]

३२७०. कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपके पिता के चरण को पकड़कर फेंका गया, तब आपकी माता अदिति को किस देव ने विधवा किया ? जिस समय आप शयन कर रहे थे तथा गमन कर रहे थे, उस समय आपको किस देव ने मारने की अभिलाषा की थी ? आपकी अपेक्षा और कौन देवता अधिक सुख प्रदान करते हैं ? ॥१२ ॥

३२७१. अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३ ॥

हमने क्षुधा से पीड़ित होकर कुत्ते की अभक्षणीय अँतड़ियों को भी पकाया । हमने देवताओं में इन्द्रदेव के अलावा किसी दूसरे देवता को सुख प्रदान करने वाला नहीं पाया । जब हमने अपनी पत्नी को अपमानित होते हुए पाया, तब वे इन्द्रदेव ही हमारे लिए मधुर आहार लाये ॥१३ ॥

[सूक्त - १९]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३२७२. एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥१ ॥

वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! सुरक्षा करने वाले समस्त देवगण तथा द्यावा-पृथिवी वृत्र का संहार करने के लिए आपका आवाहन करते हैं । आप प्रार्थनीय, वृद्ध, महान् तथा दर्शनीय हैं ॥१ ॥

३२७३. अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार वृद्ध पिता तरुण पुत्र को प्रेरणा देते हैं, उसी प्रकार समस्त देवता रिपुओं का विनाश करने के लिए आपको प्रेरणा देते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप सत्य के आश्रय स्थान हैं । आप सम्पूर्ण लोकों के अधिष्ठाता हैं । जल के चारों ओर शयन करने वाले 'अहि' का विनाश करके, सबको हर्षित करने वाली सरिताओं को आपने ही प्रेरित किया है ॥२ ॥

३२७४. अतृष्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अतृप्त इच्छाओं से युक्त, शिथिल अंग वाले, अज्ञानी, शयन करने की कामना करने वाले, सप्त सरिताओं को आवृत करने वाले तथा अंतरिक्ष में निवास करने वाले वृत्र का वज्र द्वारा संहार किया ॥३ ॥

३२७५. अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत्ककुभः पर्वतानाम् ॥४ ॥

जैसे वायुदेव अपनी शक्ति द्वारा पानी को हिलाते हैं, उसी प्रकार इन्होंने अपनी शक्ति द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को कँपा दिया । बलाकांक्षी इन्द्रदेव ने अत्यन्त शक्तिशाली रिपुओं का विनाश किया तथा पर्वतों (मेघों) के पंखों को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४ ॥

३२७६. अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथाइव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार माताएँ अपने पुत्र के समीप जाती हैं, उसी प्रकार मरुद्गण आपके समीप जाते हैं । जिस प्रकार संग्राम में रथ साथ गमन करते हैं, उसी प्रकार आयुध आपके साथ गमन करते हैं । आपने मेघों को विदीर्ण करके, नदियों को तुष्ट किया तथा अवरुद्ध की हुई नदियों को प्रवाहित किया ॥५ ॥

३२७७. त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! राजा 'तुर्वीत' तथा -'वय्य' के लिए आपने पृथ्वी को, तुष्ट करने वाली, धान्य प्रदान करने वाली तथा अन्न-जल से समृद्ध बनाया । हे इन्द्रदेव ! आपने सरिताओं को सरलतापूर्वक पार करने योग्य बनाया ॥६ ॥

३२७८. प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥७ ॥

उन इन्द्रदेव ने रिपु सहायक सेनाओं के सदृश किनारों को नष्ट करने वाली, पानी से भरी हुई तथा अन्न पैदा करने वाली सरिताओं को परिपूर्ण किया । उन्होंने मरुस्थलों तथा प्यासे व्यक्तियों को तृप्त किया और दस्युओं द्वारा नियन्त्रित गौओं को दुहा ॥७ ॥

३२७९. पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८ ॥

इन्द्रदेव ने घने अन्धकार में आवृत उषाओं को एवं वर्षों (१२ महीनों के समुच्चय) को वृत्रासुर का वध करके विमुक्त किया । उन्होंने मेघों को विदीर्ण कर वृत्र द्वारा अवरुद्ध नदियों को प्रवाहित कर पृथ्वी को तृप्त किया ॥८ ॥

३२८०. वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ।
व्य१ न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥९ ॥

हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! आपने दीमकों द्वारा भक्ष्यमान 'अग्रु' के पुत्र को उनके स्थान (बिल) से बाहर निकाला । बाहर निकाले जाते समय अन्धे 'अग्रु' - पुत्र ने अहि (सर्प) को भली प्रकार देखा । उसके बाद चींटियों द्वारा काटे गये अंगों को आपने (इन्द्रदेव ने) संयुक्त किया (जोड़ा) ॥९ ॥

३२८१. प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्तापांसि राजन्नर्याविवेषीः ॥१० ॥

तेजस् सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञाता तथा स्वयं प्रशंसित हैं । आपने मनुष्यों के लिए कल्याणकारी तथा पराक्रम से सम्पन्न कर्मों को जिस प्रकार पूर्ण किया, उन समस्त ज्ञानयुक्त कर्मों के ज्ञाता हम 'वामदेव' ऋषि उन सबका वर्णन करते हैं ॥१० ॥

३२८२. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होकर तथा हमारे द्वारा स्तुत होकर हमें सरिताओं के सदृश अन्न से पूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी मेधा द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों को रचते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २०]

। **ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।

३२८३. आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१ ॥

अभीष्ट को पूर्ण करने वाले, अत्यन्त तेजस्वी, बलों से युक्त, मनुष्यों के पालक, वज्रधारी, अनेक छोटे-बड़े युद्धों में शत्रुओं का मर्दन करने वाले, इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित दूरस्थ देश से आयें और यदि निकट हों, तो वहाँ से भी आयें ॥१ ॥

३२८४. आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२ ॥

महान् ऐश्वर्यवान् वज्रधारी इन्द्रदेव हमारी रक्षा के निमित्त और धन देने के निमित्त हमारे लिये अनुकूल होकर हरिनामक अश्वों से भली प्रकार पधारें । हमारे इस यज्ञ में अपने उपयुक्त हविष्यान्न के भाग को ग्रहण करने के लिए यहाँ (यज्ञशाला में) विराजमान हों ॥२ ॥

३२८५. इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिञ्जयेम ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम लोगों का मित्र की भाँति हित चाहते हुए, आप हमारे द्वारा किये जाने वाले यज्ञों को ग्रहण करें । वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार शिकारी हरिण का शिकार करता है, उसी प्रकार हम आपकी सहायता से ऐश्वर्य लाभ के लिए किये जा रहे युद्धों में विजय प्राप्त करें ॥३ ॥

३२८६. उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४ ॥

हे अन्नवान् इन्द्रदेव ! आप हर्षित मन से हमारे समीप पधारें तथा हमारे द्वारा अभिषुत मधुर सोमरस का पान करें । हमारे पृष्ठ भाग में विद्यमान अन्न रूप सोमरस का पान करके हर्षित हों ॥४ ॥

३२८७. वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभिमन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५ ॥

जो इन्द्रदेव फल वाले वृक्ष के समान तथा आयुध संचालन में कुशल योद्धा के समान नवीन ऋषियों द्वारा अनेक प्रकार से प्रशंसित होते हैं, उन बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रदेव की हम वैसे ही प्रार्थना करते हैं, जैसे मनुष्य अपनी पत्नी की प्रशंसा करता है ॥५ ॥

३२८८. गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥६ ॥

जो महान् तथा पराक्रमी इन्द्रदेव पर्वत के सदृश बलशाली हैं । वे रिपुओं को विजित करने के लिए पुरातन काल से ही पैदा हुए हैं तथा जल से पूर्ण कलश के सदृश तेज से युक्त विशाल वज्र को धारण करते हैं ॥६ ॥

३२८९. न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति न राधस आमरीता मघस्य ।
उद्वावृषाणस्तविषीव उग्रास्मभ्यं दद्धि पुरुहूत रायः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके पैदा होने मात्र से ही कोई विनाशक नहीं रहा तथा आपके द्वारा प्रदान किये गये ऐश्वर्य का भी कोई विनाशक नहीं रहा । हे शक्तिशाली, पराक्रमी तथा बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रदेव ! आप अत्यधिक सामर्थ्यवान् हैं । आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

[अणु-विखंडित-विभाजित होने पर विध्वंसकारी असुर शक्ति के रूप में कार्य करने लगते हैं । इन्द्र-संगठक शक्ति के उत्पन्न होते ही वे संयुक्त हो जाते हैं, विनाशक शक्ति कण (डिस्ट्रक्टिव पावर पार्टिकल्स) का अस्तित्व समाप्त हो जाता है । इसीलिए अदिति (विखंडित न होने देने वाली चेतना) को देवों की माता तथा दिति (विखंडित चेतना) को असुरों की माता कहा गया है ।]

३२९०. ईक्षे रायः क्षयस्य चर्षणीनामुत व्रजमपवर्तासि गोनाम् ।
शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मनुष्यों के ऐश्वर्य तथा घर पर नियंत्रण करने वाले हैं और गौओं के गोष्ठ को खोलने वाले हैं । आप ज्ञान के द्वारा मनुष्य को ऊँचा उठाने वाले तथा संग्राम में रिपुओं पर प्रहार करने वाले हैं । आप प्रचुर धन-सम्पदा को प्राप्त कराने वाले हैं ॥८ ॥

३२९१. कया तच्छृण्वे शच्या शचिष्ठो यया कृणोति मुहु का चिदृष्वः ।
पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहोऽथा दधाति द्रविणं जरित्रे ॥९ ॥

शक्तिशाली तथा महान् इन्द्रदेव किस सामर्थ्य के द्वारा विख्यात हैं ? वे जिसके द्वारा बारम्बार कर्म करते हैं, वह कौन सी सामर्थ्य है ? वे इन्द्रदेव दानदाता के पापों को नष्ट करते हैं तथा याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥९॥

३२९२. मा नो मर्धीरा भरा दद्धि तन्नः प्र दाशुषे दातवे भूरि यत्ते ।
नव्ये देष्णे शस्ते अस्मिन्त उक्थे प्र ब्रवाम वयमिन्द्र स्तुवन्तः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हम मनुष्यों का वध न करें, बल्कि हमारा पोषण करें । हे इन्द्रदेव ! आपका जो प्रचुर धन हविप्रदाता को प्रदान करने के लिए है, उस धन को हमें प्रदान करें । हम आपका स्तवन करते हैं । इस अभिनव, दान देने योग्य, अनुशासित यज्ञ में हम आपका विशेष रूप से गुणगान करते हैं ॥१० ॥

३२९३. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा प्रशंसित होकर तथा हमारे द्वारा स्तुत होकर, हमें सरिताओं के सदृश अन्नों से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी मेधा के द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों को रचते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों (सेवकों) से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २१]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३२९४. आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥१ ॥

वे इन्द्रदेव द्युलोक की तरह तेजस् सम्पन्न हैं । उनके प्रभूत बल है । वे हमारी सुरक्षा के लिए पधारें । स्तुतियों से सन्तुष्ट होकर इस यज्ञ में हमें हर्ष प्रदान करें तथा रिपुओं को पराजित करने वाले बल को पुष्ट करें ॥१ ॥

३२९५. तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥२ ॥

जो इन्द्रदेव शासक के समान रिपुओं को पराजित तथा उनका विनाश करने वाले हैं, उनकी कुशलता और सामर्थ्य मनुष्यों पर नियन्त्रण करती है । हे याजको !ऐसे ओजस्वी और प्रचुर ऐश्वर्य वाले देव की आप प्रार्थना करें ॥२ ॥

३२९६. आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी मरुद्गणों के साथ दिव्यलोक से, भूलोक से, अन्तरिक्ष लोक से, जल से, सूर्यलोक से, दूर प्रदेश से तथा यज्ञस्थल से हमारी सुरक्षा के लिए पधारें ॥३ ॥

३२९७. स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥४ ॥

जो इन्द्रदेव समस्त महान् ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, जो प्राणरूपी शक्ति के सहयोग से गौओं की प्राप्ति के निमित्त संग्राम में शत्रु की सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं । जो याजकों को श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उन इन्द्रदेव की हम इस यज्ञमण्डप में स्तुति करते हैं ॥४ ॥

३२९८. उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥५ ॥

जो इन्द्रदेव समस्त लोकों को आश्रय प्रदान करते हैं और यज्ञ करने वाले याजकों के निमित्त गर्जनापूर्वक जल बरसाते-अन्न उपलब्ध कराते हैं । जो स्तोत्रों द्वारा वंदनीय हैं तथा कर्मों को पूर्ण करने वाले हैं; उन इन्द्रदेव को याजकगण यज्ञों में हर्षित करते हैं ॥५ ॥

३२९९. धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ॥६ ॥

उशिक् वंशज के आवास पर स्तोतागण स्तुति करते हुए जब सोम कूटने के लिए तत्पर होते हैं, तब वे इन्द्रदेव आगमन करते हैं । वे संग्राम में हम मनुष्यों की सहायता करने वाले हैं । वे याजकों द्वारा आयोजित यज्ञ के सम्पादक हैं । उनका क्रोध अत्यन्त भयंकर है ॥६ ॥

३३००. सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७ ॥

जगत् का पालन-पोषण करने वाले प्रजापति के पुत्र तथा अभीष्ट की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव की सामर्थ्य स्तुति करने वाले याजकों की सुरक्षा करती है । वह सामर्थ्य याजकों का पोषण करने के लिए उनके गुफा रूप हृदय में प्रकट होती है । वह सामर्थ्य याजकों के अंतरंग तथा कर्म में विद्यमान रहती है । उनके हर्ष तथा कामनाओं की प्राप्ति के लिए पैदा होकर उनका सदैव पालन करती है ॥७ ॥

३३०१. वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥८ ॥

इन्द्रदेव ने मेघों को आवरणरहित किया और सरिताओं के प्रवाह को जल से परिपूर्ण किया, उन शक्तिशाली इन्द्रदेव के लिए मेधावी यजमान जब यज्ञमण्डप पर सोमरस तैयार करते हैं तब वे याजकों को गौ आदि धन-धान्य प्रदान करते हैं ॥८ ॥

३३०२. भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके हितकारी दोनों हाथ श्रेष्ठ कर्म करने वाले हैं तथा याजक को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं । हे इन्द्रदेव ! आपका निवास स्थान कहाँ है ? आप हमें हर्षित क्यों नहीं करते ? हमें ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आप शीघ्र ही प्रसन्न क्यों नहीं होते ? ॥९ ॥

३३०३. एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥१० ॥

इस प्रकार प्रशंसित होकर सत्यनिष्ठ, धन के स्वामी तथा वृत्र को मारने वाले, इन्द्रदेव याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । हे बहुप्रशंसित इन्द्रदेव ! हम मनुष्यों की प्रार्थनाओं से सन्तुष्ट होकर आप हमें धन-धान्य प्रदान करें, जिससे हम श्रेष्ठ ऐश्वर्य का सेवन कर सकें ॥१० ॥

३३०४. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें सरिताओं के सदृश अन्नों से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का गान करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २२]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३३०५. यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१ ॥

महाबलशाली इन्द्रदेव हम मनुष्यों के हविष्यान्न का सेवन करते हैं । वे अपने वज्र को धारण करते हुए शक्ति के साथ पधारते हैं । वे आहुति, स्तुति, सोमरस तथा स्तोत्रों को स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

३३०६. वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२ ॥

कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव अपनी भुजाओं द्वारा वर्षणकारी चार धाराओं वाले वज्र को रिपुओं के ऊपर फेंकते हैं । वे अत्यन्त पराक्रमी, श्रेष्ठ नायक तथा कर्मवान् होकर परुष्णी नदी को परिपूर्ण करते हैं । उन्होंने 'परुष्णी' नदी के विभिन्न प्रदेशों को मित्रता के लिए आवृत किया था ॥२ ॥

३३०७. यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥३ ॥

जो ओजस्वी, महान् इन्द्रदेव पैदा होते ही विशाल अन्न तथा बृहत् बल से सम्पन्न हुए थे; वे अपनी दोनों भुजाओं में सुन्दर वज्र धारण करके अपनी शक्ति द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को प्रकम्पित करते थे ॥३ ॥

३३०८. विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत्परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४ ॥

उन महान् इन्द्रदेव के पैदा होते ही समस्त पर्वत, जल से पूर्ण नदियाँ, द्युलोक तथा पृथ्वी लोक कम्पित होने लगे । वे बलशाली इन्द्रदेव सूर्य की माताओं द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं । उनके द्वारा प्रेरणा पाकर वायुदेव मनुष्य के सदृश ध्वनि करते हैं ॥४ ॥

[इन्द्रदेव इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं । उनके द्वारा प्रेरित-कंपित वायुदेव ही शब्द रूप में वाणी को प्रकट करते हैं ।]

३३०९. ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५ ॥

हे शूरवीर तथा रिपुओं को दबाने वाले इन्द्रदेव ! आपने समस्त भुवनों को धारण करके रिपुओं को परास्त करने वाले वज्र द्वारा शक्तिपूर्वक 'अहि' का विनाश किया था । हे इन्द्रदेव ! आप महिमावान् हैं और आपके कर्म भी महिमावान् हैं । आप सम्पूर्ण सवनों में प्रार्थना करने योग्य हैं ॥५ ॥

३३१०. ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद्वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥६ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपके वे समस्त कर्म निश्चित रूप से सत्य हैं । हे इन्द्रदेव ! आप अभिलाषाओं की वर्षा करने वाले हैं । आपके डर से गौएँ अपने थनों से दूध टपकाती हैं । हे श्रेष्ठ मनोबल वाले इन्द्रदेव ! आपके भय से सरिताएँ वेग के साथ प्रवाहित होती हैं ॥६ ॥

३३११. अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः ।
यत्सीमनु प्र मुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७ ॥

जब आपने वृत्र द्वारा अवरुद्ध की हुई विशाल सरिताओं को प्रवाहित होने के निमित्त मुक्त किया, तब हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! अवरुद्ध की हुई सरिताओं ने आपके द्वारा संरक्षित होने के लिए आपकी प्रार्थना की ॥७ ॥

३३१२. पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक्शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त, हर्षप्रदायक सोमरस पीसकर, उसमें जल मिलाकर तैयार कर दिया गया है । जिस प्रकार सारथी द्रुतगामी अश्वों की लगाम को सँभालते हैं, उसी प्रकार बलशाली सोमरस, तेजस् सम्पन्न तथा प्रार्थना के योग्य इन्द्रदेव को हमारी ओर ले आएँ ॥८ ॥

३३१३. अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥९ ॥

हे सहिष्णु इन्द्रदेव ! आप हमारे निमित्त रिपुओं को पराजित करने वाला, महान् तथा प्रशंसनीय पुरुषार्थ करें । विनाश करने योग्य रिपुओं को हमारे अधीन करें तथा हिंसा करने वाले व्यक्तियों के आयुधों को विनष्ट करें ॥९ ॥

३३१४. अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरन्धीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हम मनुष्यों की प्रार्थनाओं को सुनें तथा अनेक प्रकार के अन्न प्रदान करें । आप हमारे निमित्त सम्पूर्ण ज्ञान को प्रेरित करें तथा हमें ज्ञान सम्पन्न करें । हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए गौओं को प्रदान करने वाले हों ॥१० ॥

३३१५. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें नदियों के सदृश अन्न से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का गान करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २३]

। **ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र, ८-१० के इन्द्र अथवा ऋत । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।।

३३१६. कथा महामवृधत्कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥१ ॥

हम मनुष्यों द्वारा की गई प्रार्थनाएँ उन महान् इन्द्रदेव को कैसे संवर्द्धित करेंगी ? वे किस यज्ञ सम्पादक के यज्ञ में प्रेमपूर्वक पधारेंगे ? वे महान् इन्द्रदेव सोमपान करते हुए तथा अभिलाषापूर्वक अन्न ग्रहण करते हुए किस याजक को प्रदान करने के लिए तेजस्वी धन धारण करते हैं ? ॥१ ॥

३३१७. को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥२ ॥

कौन वीर उन इन्द्रदेव के साथ सोम पान करता है ? कौन व्यक्ति उनकी श्रेष्ठ बुद्धि से सम्पन्न होता है ? उनके अद्‌भुत धन कब बाँटे जायेंगे ? वे इन्द्रदेव स्तुति करने वाले याजकों को संवर्द्धित करने के लिए रक्षण साधनों से कब सम्पन्न होंगे ? ॥२ ॥

३३१८. कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आहूत करने वालों की स्तुतियों का आप कैसे श्रवण करते हैं ? स्तुतियों का श्रवण करके स्तोताओं के मार्ग को आप कैसे जानते हैं ? आपके प्राचीन दान कौन से हैं ? वे दान इन्द्रदेव को याजकों की इच्छाओं की पूर्ति करने वाले क्यों कहते हैं ? ॥३ ॥

३३१९. कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभियज्जुजोषत् ॥४ ॥

जो याजक विपत्तिग्रस्त होकर उन इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं और यज्ञ द्वारा तेज सम्पन्न बनते हैं, वे उनके ऐश्वर्य को कैसे प्राप्त करेंगे ? जब प्रकाशवान् इन्द्रदेव आहुति ग्रहण करके हमारे ऊपर हर्षित होते हैं, तब वे हमारी प्रार्थनाओं को अच्छी तरह जानने वाले होते हैं ॥४ ॥

३३२०. कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे ॥५ ॥

प्रकाशमान इन्द्रदेव उषा के प्रकट होने पर मनुष्यों के बन्धुत्व को कैसे और कब प्राप्त करेंगे ? जो याजकगण उन इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ तथा मनोहर आहुतियों को विस्तृत करते हैं, उन मित्रों के निमित्त अपनी मित्रता को वे कब और कैसे प्रकाशित करेंगे ? ॥५ ॥

३३२१. किमादमत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम याजक, रिपुओं के आक्रमण से सुरक्षा करने वाली आपकी मित्रता का वर्णन, स्तुति करने वालों के समीप किस प्रकार करें ? आपके बन्धुत्व भाव का वर्णन कब करें ? सुन्दर दिखायी देने वाले इन्द्रदेव का कार्य स्तुतिकर्त्ताओं के हित के लिए है । सूर्यदेव के समान तेजसम्पन्न तथा सर्वत्र गमन करने वाले इन्द्रदेव के मनोहर तेज की सभी मनुष्य कामना करते हैं ॥६ ॥

३३२२. द्रुहं जिघांसन्ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७ ॥

विद्रोह करने वाली, हिंसक कार्य करने वाली तथा इन्द्रदेव को न मानने वाली राक्षसी का संहार करने के लिए उन्होंने अपने तीक्ष्ण आयुधों को और अधिक तीक्ष्ण किया । ऋण (देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण) भी हम मनुष्यों को उषा काल में (ध्यानादि साधनाओं में) बाधा पहुँचाता है । पराक्रमी इन्द्रदेव उन उषाओं में हमारे ऋण को (उनसे मुक्ति पाने की क्षमता प्रदान करके) दूर से ही नष्ट कर देते हैं ॥७ ॥

३३२३. ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८ ॥

ऋत (सत्य, सूर्य या यज्ञ) के पास अनेकों शक्तियाँ हैं । ऋतदेव की प्रार्थना दुष्कर्मों को विनष्ट कर देती है ।

उनकी सद्‌बुद्धि प्रदान करने वाली प्रार्थनाएँ कान से बहरे मनुष्यों को भी लाभान्वित करती हैं ॥८ ॥

३३२४. ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥९ ॥

ऋत के पुष्ट, धारक, हर्षप्रदायक आदि अनेकों रूप हैं । ऋतदेव के समीप मनुष्य प्रचुर अन्न की कामना करते हैं तथा उनकी सहायता से यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों में दानार्थ गौएँ प्रयुक्त होती हैं ॥९ ॥

३३२५. ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१० ॥

ऋतदेव को वशीभूत करने के लिए याजकगण उनकी भक्ति करते हैं । ऋतदेव की शक्ति गौओं तथा अश्वों को प्रदान करने वाली है । इनसे ही प्रेरणा पाकर द्यावा-पृथिवी विस्तीर्ण तथा गम्भीर हुए हैं तथा उनके लिए ही गौएँ दूध प्रदान करती हैं ॥१० ॥

३३२६. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर , हमें नदियों के सदृश अन्न से - घी से पूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का निर्माण करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २४]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप्, १० - अनुष्टुप् ।]

३३२७. का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१ ॥

बल के पुत्र तथा हमारी ओर पधारने वाले इन्द्रदेव को कौन सी प्रार्थना ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए प्रवृत्त करेगी ? हे याजको ! पराक्रमी तथा गौओं के पालक इन्द्रदेव हम मनुष्यों को रिपुओं का ऐश्वर्य प्रदान करें । हम उनकी प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

३३२८. स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२ ॥

वृत्र का संहार करने वाले इन्द्रदेव युद्ध में बुलाये जाते हैं । वे प्रशंसनीय हैं । श्रेष्ठ रीति से प्रार्थना किये जाने पर वे यथार्थ ऐश्वर्य के प्रदाता बनते हैं । वे धनवान् इन्द्रदेव स्तोताओं तथा सोमाभिषव करने वाले याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३३२९. तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३ ॥

अपनी सहायता के लिए सभी मनुष्य उन इन्द्रदेव को ही आहूत करते हैं । याजकगण तप द्वारा शरीर को क्षीण करके उनको ही अपना संरक्षक बनाते हैं । याजक तथा स्तोता दोनों मिलकर पुत्र-पौत्रादि प्राप्ति के निमित्त उनके समीप जाते हैं ॥३ ॥

३३३०. क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली हैं। समस्त दिशाओं में विद्यमान मनुष्य, जल (पोषक रस) प्राप्त करने के लिए संयुक्तरूप से यजन करते हैं। जब युद्ध करने वाले मनुष्य संग्राम में एकत्रित होते हैं, तब सभी उन इन्द्रदेव की इच्छा करते हैं ॥४॥

३३३१. आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात्।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥५॥

इसके बाद युद्ध में योद्धागण बलशाली इन्द्रदेव का पूजन करते हैं तथा पकाने वाले पुरोडाश पकाकर उनको प्रदान करते हैं। सोम अभिषव करने वाले याजक, सोम अभिषव न करने वाले याजकों को ऐश्वर्य से दूर करते हैं। अन्य लोग कामनाओं की पूर्ति करने वाले बलशाली इन्द्रदेव के निमित्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥५॥

३३३२. कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥६॥

कल्याण करने की अभिलाषा करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त जो मनुष्य सोम अभिषव करते हैं, उन्हें वे ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। श्रेष्ठ मानस से उनकी इच्छा करने वाले तथा सोम निचोड़ने वाले याजकों के साथ वे इन्द्रदेव युद्धों में मित्रता की भावना से सम्बन्ध स्थापित करते हैं ॥६॥

३३३३. य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन्तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥

आज जो मनुष्य इन्द्रदेव के लिए सोम रस निचोड़ते हैं, पुरोडाश पकाते हैं, धान की खीलों को भूनते हैं; उनकी स्तुतियों का श्रवण करके इन्द्रदेव उन्हें अत्यधिक सामर्थ्य प्रदान करते हैं ॥७॥

३३३४. यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥८॥

जब रिपुओं का संहार करने वाले इन्द्रदेव रिपुओं को विशेष प्रकार से जानते हैं तथा बड़े युद्ध में विद्यमान रहते हैं, तब उनकी पत्नी सोम अभिषव करने वालों द्वारा प्रोत्साहित किये गये तथा कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्रदेव के यश का वर्णन करती हैं ॥८॥

३३३५. भूयसा वस्नमचरत्कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन्।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९॥

किसी ने प्रचुर ऐश्वर्य (धन) प्रदान करके थोड़ी सी वस्तु प्राप्त कर ली। जब उस वस्तु का विक्रय नहीं हुआ, तब वह पुनः जाकर अपने धन की माँग करता है। बाद में विक्रेता प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करके थोड़ी सी वस्तु लेने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने कहा- चाहे आप सक्षम हों या अक्षम, विक्रय के समय आपने जो बोल दिया है, अब वही रहेगा ॥९॥

[मनुष्य प्रचुर जीवनी शक्ति खर्च करके थोड़ा सा भोग सुख प्राप्त करता है। वे भोग आत्मसन्तोष दिलाने में अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। तब मनुष्य चाहने पर भी किया हुआ सौदा बदल नहीं सकता, जो ले लिया, उसे ही भोगना पड़ता है।]

३३३६. क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः। यदा वृत्राणि जंघनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥

दस गौओं द्वारा हमारे इन्द्रदेव को कौन खरीदेगा (दस इन्द्रियजन्य कामनाओं को समर्पित करके आत्मशक्ति कौन प्राप्त करेगा) ? जब वे (इन्द्र) रिपुओं का संहार करेंगे, तब उनको पुनः हमें वापस दें ॥१० ॥

३३३७. नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन ऋषियों द्वारा स्तुत होकर तथा हमारे द्वारा प्रशंसित होकर हमें नदियों के सदृश अन्नों से परिपूर्ण करें । हे अश्ववान् इन्द्रदेव ! हम अपनी बुद्धि द्वारा आपके लिए अभिनव स्तोत्रों का गान करते हैं, जिससे हम रथों तथा दासों से सम्पन्न हों ॥११ ॥

[सूक्त - २५]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३३३८. को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥१ ॥

देवताओं जैसी अभिलाषा करते हुए आज कौन मनुष्य इन्द्रदेव के साथ मित्रता करना चाहते हैं ? सोम अभिषव करने वाले कौन याजक संकटों से पार होने के लिए तथा महान् सुरक्षा के लिए अग्नि के प्रदीप्त होने पर उनकी स्तुति करते हैं ? ॥१ ॥

३३३९. को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥२ ॥

कौन याजक अपनी वाणी से सोमपान करने वाले इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं ? कौन उनके द्वारा प्रदान की गयी गौओं का पालन करते हैं ? कौन उनकी सहायता की कामना करते हैं ? कौन उनके साथ मित्रता की कामना करते हैं । कौन उनके बन्धुत्व की कामना करते हैं ? तथा कौन उन दूरदर्शी इन्द्रदेव के संरक्षण की कामना करते हैं ? ॥२ ॥

३३४०. को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३ ॥

आज देवताओं का संरक्षण करने के लिए कौन कामना करते हैं ? आदित्य, अदिति तथा प्रकाशरूपी उषा की कौन प्रार्थना करते हैं ? इन्द्रदेव, अग्निदेव तथा अश्विनीकुमार प्रार्थना से हर्षित होकर किस याजक के द्वारा अभिषुत सोमरस का इच्छानुसार पान करते हैं ? ॥३ ॥

३३४१. तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥४ ॥

जो याजक मनुष्यों के मित्र तथा नायकों में सर्वश्रेष्ठ नायक इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस अभिषव करेंगे, भरण-पोषण करने वाले अग्निदेव उस याजक को सुख प्रदान करें तथा उदित होते हुए सूर्यदेव को वे याजक (चिरकाल तक) देखें ॥४ ॥

३३४२. न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५ ॥

जो याजक इन्द्रदेव के निमित्त सोम निचोड़ते हैं । वे शत्रुओं द्वारा पीड़ित नहीं होते । उन याजकों को माता अदिति अत्यधिक हर्ष प्रदान करती हैं । इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले, यज्ञ करने वाले, सन्मार्ग पर गमन करने वाले तथा सोम यज्ञ करने वाले याजक उनके स्नेही बनते हैं ॥५ ॥

३३४३. सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥६ ॥

रिपुओं का संहार करने वाले, पराक्रमी इन्द्रदेव केवल सन्मार्ग पर गमन करने वाले तथा सोम अभिषव करने वाले याजकों के ही पुरोडाश को ग्रहण करते हैं । वे सोम अभिषव न करने वाले याजकों के मित्र अथवा बन्धु नहीं होते । बुरे मार्ग पर गमन करने वालों तथा प्रार्थना न करने वालों के वे संहार करने वाले होते हैं ॥६ ॥

३३४४. न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७ ॥

सोमपान करने वाले इन्द्रदेव सोम अभिषव न करने वाले, ऐश्वर्य वाले तथा कंजूस व्यापारियों के साथ मित्रता स्थापित नहीं करते । वे उनको तथा उनके अनावश्यक ऐश्वर्य को नष्ट कर देते हैं । सोमरस निचोड़ने वाले तथा पुरोडाश पकाने वाले याजकों के ही वे मित्र होते हैं ॥७ ॥

३३४५. इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥८ ॥

उत्कृष्ट, निकृष्ट तथा मध्यम प्रकार के मनुष्य इन्द्रदेव को आहूत करते हैं । गमन करने वाले तथा बैठे रहने वाले मनुष्य भी उनको आहूत करते हैं । घर में विद्यमान रहने वाले तथा युद्ध करने वाले मनुष्य भी उनका आवाहन करते हैं । इसके अलावा अन्न की कामना करने वाले मनुष्य भी उनका आवाहन करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम १ - ३ वामदेव अथवा इन्द्र । **देवता** - १ - ३ इन्द्र अथवा आत्मा ४ - ७ श्येन ।
छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३३४६. अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१ ॥

मैं ही मनु के रूप में हुआ हूँ । मैं ही आदित्य हूँ तथा मैं ही विवेकी कक्षीवान् ऋषि हूँ । मैं ही अर्जुनी पुत्र 'कुत्स' के रूप में हूँ और मैं ही क्रान्तदर्शी उशना ऋषि हूँ । हे याजको ! आप मुझे भली प्रकार देखें ॥१ ॥

३३४७. अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२ ॥

मैंने सत्पुरुषों के निमित्त भूमि प्रदान की तथा दानी मनुष्यों के निमित्त जल बरसाया है । ध्वनि करते हुए जल प्रवाहों को मैंने ही आगे बढ़ाया था । अतः समस्त देवता मेरे संकल्प का अनुसरण करें ॥२ ॥

३३४८. अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३ ॥

सोमरस पान से हर्षित होकर मैंने शम्बरासुर की निन्यानवे पुरियों को एक साथ ध्वस्त किया था । यज्ञ में

अतिथियों को गौएँ प्रदान करने वाले राजर्षि 'दिवोदास' की मैंने रक्षा की थी । इसके बाद उनके लिए सौवीं पुरी को निवास के योग्य बनाया था ॥३ ॥

३३४९. प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥४ ॥

हे मरुद्गण ! (तीव्रगति के लिए विख्यात) बाज़ पक्षियों की तुलना में वह सुपर्ण अधिक शक्तिशाली और द्रुतगामी है । देवों द्वारा ग्रहण किये जाने वाले सोमरस रूपी हव्य को श्रेष्ठ पंखों वाले पक्षी ने चक्र विहीन रथ द्वारा स्वर्गलोक से लाकर मनुष्यों को (प्रजापति मनु को) प्रदान किया था ॥४ ॥

३३५०. भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥५ ॥

जब समस्त लोकों को कम्पायमान करते हुए वह बाज़ पक्षी द्युलोक से सोमरस को लेकर चला, तब उसने विस्तृत आकाश मार्ग में मन के सदृश वेग से उड़ान भरी । शान्ति प्रदायक तथा मधुर रस को शीघ्रतापूर्वक लाने के बाद उस बाज़ पक्षी ने इस जगत् में प्रचुर यश-लाभ प्राप्त किया ॥५ ॥

३३५१. ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥६ ॥

सुदूर प्रदेश से सोमरस को लेकर ऋजु मार्ग से गमन करने वाले तथा देवताओं के संग निवास करने वाले श्येन पक्षी ने मीठे तथा हर्ष प्रदायक सोमरस को उच्च द्युलोक से ग्रहण करके, उसे दृढ़तापूर्वक पृथ्वी पर पहुँचाया ॥६ ॥

३३५२. आदाय श्येनो अभरत्सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरन्धिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥७ ॥

उस श्येन पक्षी ने सहस्र संख्यक यज्ञों के माध्यम से सोमरस को प्राप्त करके उड़ान भरी । इसके बाद अनेक सत्कर्म करने वाले तथा ज्ञान सम्पन्न इन्द्रदेव ने सोमरस के पान से हर्षित होकर मूढ़ रिपुओं का संहार किया ॥७ ॥

[सूक्त - २७]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - श्येन अथवा इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप्, ५ - शक्वरी ।]

३३५३. गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१ ॥

(तत्वज्ञानी ऋषि वामदेव का कथन) गर्भ (समाधि अवस्था) में रहकर ही मैंने इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओं के जन्मों को भली-भाँति जान लिया था । सैकड़ों लोहे की पुरियों ने गर्भावस्था में मेरी सुरक्षा की थी । उसके बाद मैं श्येन पक्षी के समान वेग के साथ बाहर निकल आया था ॥१ ॥

३३५४. न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥२ ॥

उस अवस्था में मुझे मोह आदि दोष प्रभावित नहीं कर पाये । मैंने ही अपने तीक्ष्ण बल (ज्ञान) से उन दुःखों को आवृत कर लिया । सबको प्रेरणा देने वाले परमात्मा ने गर्भस्थ रिपुओं का संहार किया था तथा बढ़कर गर्भ में विद्यमान वायु के सदृश वेग वाले रिपुओं का विनाश किया था ॥२ ॥

३३५५. अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३ ॥

सोम हरण करते समय जब श्येन पक्षी ने द्युलोक से गर्जना की , तब सोमपालों ने बुद्धिवर्धक सोमरस को छीनने का प्रयत्न किया । उसके बाद मन के वेग से गमन करने वाले सोमरक्षक कृशानु ने प्रत्यञ्चा चढ़ाई तथा श्येन पक्षी पर बाण छोड़ा ॥३ ॥

३३५६. ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४ ॥

जिस प्रकार अश्विनीकुमारों ने बलवान् इन्द्रदेव के द्वारा संरक्षित स्थान से 'भुज्यु' को अपहृत किया था, उसी प्रकार सरल मार्ग से गमन करने वाले श्येन पक्षी ने इन्द्रदेव द्वारा संरक्षित द्युलोक से सोम का अपहरण किया था । उस समय संग्राम में 'कृशानु' के आयुधों से घायल होकर उस पक्षी का एक पतनशील पंख गिर गया था ॥४ ॥

३३५७. अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः । अध्वर्युभिः
प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५ ॥

पवित्र कलश में रखे हुए, गो-दुग्ध मिश्रित, तेजोयुक्त, तुष्टिदायक, मीठे रसों में सर्वश्रेष्ठ, अन्नरूप सोमरस को अध्वर्युओं के द्वारा प्रदान किये जाने पर, आनन्द प्राप्त करने के लिए धनवान् इन्द्रदेव पान करें तथा उसकी सुरक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र अथवा इन्द्रासोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३३५८ त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१ ॥

हे सोम ! आपसे मित्रता करके तथा आपका सहयोग प्राप्त करके इन्द्रदेव ने प्रवाहित जल को मनु के लिए उत्पन्न किया । उन्होंने 'अहि' का संहार करके सप्त-सरिताओं को प्रवाहित किया तथा वृत्र द्वारा अवरुद्ध किये हुए द्वारों को खोला ॥१ ॥

३३५९. त्वा युजा नि खिदत्सूर्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२ ॥

हे सोम ! इन्द्रदेव ने आपके सहयोग से, विस्तृत द्युलोक में गमन करने वाले सूर्य चक्र को अपने सामर्थ्य के द्वारा अपने नियन्त्रण में किया था । उन्होंने ही सर्वत्र गमन करने वाले महान् द्रोह शक्ति सम्पन्न (नष्ट-भ्रष्ट करने की शक्ति) से सूर्य-चक्र पर अधिकार किया था ॥२ ॥

३३६०. अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥३ ॥

हे सोम ! आपकी सहायता से इन्द्रदेव ने मध्याह्न से पूर्व ही (युद्ध में) रिपुओं का विनाश कर दिया तथा अग्निदेव ने उन्हें भस्मसात् कर दिया । जिस प्रकार रक्षारहित दुर्गम प्रदेश से गमन करने वाले मनुष्य को चोर मार डालते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव ने अपने बल के द्वारा अनेकों सहस्र शत्रु सेनाओं को विनष्ट कर दिया ॥३ ॥

३३६१. विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ने इन दस्युओं को पतित किया तथा हीनभाव वाले मनुष्यों को निन्दित किया । हे इन्द्रदेव तथा सोमदेव ! आप दोनों उन रिपुओं को अवरुद्ध करते हैं तथा उन्हें आयुधों द्वारा विनष्ट करते हैं और उसके बाद सम्मान प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

३३६२. एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५ ॥

हे सोमदेव ! यह सच है कि आप और इन्द्रदेव ने महान् अश्वों तथा गौओं के झुण्ड का दान किया था । हे धनवान् सोम तथा इन्द्रदेवो ! आप दोनों ने पाषाणों द्वारा अवरुद्ध गौ-समूहों तथा धरती को बल द्वारा मुक्त किया था और रिपुओं का संहार किया था ॥५ ॥

[सूक्त - २९]

[ऋषि - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् । **]**

३३६३. आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रशंसित होकर हम याजकों को संरक्षण प्रदान करने के लिए हमारे अन्न से सम्पन्न अनेकों यज्ञों में घोड़ों के साथ पधारें । आप आनन्दमय, स्वामी, स्तोत्रों द्वारा प्रशंसित तथा अविनाशी धन से सम्पन्न हैं ॥१ ॥

३३६४. आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२ ॥

मनुष्यों के लिए कल्याणकारी तथा सर्वज्ञाता हे इन्द्रदेव ! आप सोम अभिषव करने वालों के द्वारा आवाहित होकर हमारे यज्ञ के समीप पधारें । श्रेष्ठ अश्वों से सम्पन्न, निर्भय तथा सोम अभिषव करने वालों के द्वारा प्रशंसित इन्द्रदेव मरुतों के साथ आनन्दित होते हैं ॥२ ॥

३३६५. श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३ ॥

हे मनुष्यो ! इन्द्रदेव को बलिष्ठ बनाने के लिए तथा समस्त दिशाओं में हर्षित होने के लिए, आप उनके कानों में उत्तम स्तोत्र सुनायें । सोमरस से सम्पन्न शक्तिशाली इन्द्रदेव हम मनुष्यों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए श्रेष्ठ तीर्थों को भयमुक्त करें ॥३ ॥

३३६६. अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्या३ शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४ ॥

वज्रबाहु इन्द्रदेव, सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में द्रुतगामी अश्वों को रथ वहन करने के स्थान में नियोजित करके, सुरक्षा के निमित्त याचना करने वालों, आवाहन करने वालों, प्रार्थना करने वालों तथा मेधावी याजकों के समीप गमन करते हैं ॥४ ॥

३३६७. त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हम मनुष्य आपकी स्तुति करने वाले हैं । हम ज्ञानी तथा स्तुति करने वाले लोग आपके द्वारा संरक्षित हैं । आप अत्यन्त तेज सम्पन्न, प्रार्थना योग्य तथा अन्न से युक्त हैं । ऐश्वर्य दान करने के समय हम मनुष्य आपकी प्रार्थना करें ॥५ ॥

[सूक्त - ३०]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र, ९-११ इन्द्र - उषा । छन्द - गायत्री, ८, २४ अनुष्टुप् ॥

३३६८. नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥१ ॥

हे शत्रु संहारक इन्द्रदेव ! आप से अधिक श्रेष्ठ और महान् कोई नहीं है । आपके समान अन्य और कोई देव नहीं है ॥१ ॥

३३६९. सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! सब जगह व्याप्त चक्र जिस प्रकार गाड़ी का अनुगमन करता है, उसी प्रकार समस्त प्रजाएँ आपका अनुगमन करती हैं । आप सचमुच महान् हैं तथा गुणों के द्वारा विख्यात हैं ॥२ ॥

[प्रकृति का चक्र सब जगह व्याप्त है । यह चक्र प्राणियों के लिए अन्नादि पोषक पदार्थों को उपज रूपी शकट के माध्यम से पहुँचाता है । प्रजाओं को इन्द्रादि देवों द्वारा प्रदत्त अनुदानों को यज्ञों के माध्यम से सब तक पहुँचाकर सृष्टि चक्र संचालन में देवों का सहयोगी बनना चाहिए ।]

३३७०. विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! विजय की अभिलाषा करने वाले समस्त देवों ने शक्ति के रूप में आपका सहयोग प्राप्त करके असुरों के साथ युद्ध किया था । उस समय आपने सभी रिपुओं का सम्पूर्ण विनाश किया था ॥३ ॥

३३७१. यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रंकुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! उस संग्राम में युद्ध करने वाले 'कुत्स' तथा उनके सहयोगियों के विनाश के लिए आपने सूर्य के रथ चक्र को उठाया तथा अपने भक्तों की सुरक्षा की थी ॥४ ॥

३३७२. यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! उस युद्ध में देवताओं के अवरोधक सम्पूर्ण असुरों के साथ आपने अकेले ही संग्राम किया तथा उन हिंसा करने वालों का संहार किया ॥५ ॥

३३७३. यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस संग्राम में आपने ऋषि 'एतश' के लिए सूर्य पर भी चढ़ाई की थी, उस संग्राम में लड़ाई करके आपने 'एतश' की सुरक्षा की थी ॥६ ॥

३३७४. किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥७ ॥

वृत्र का संहार करने वाले ऐश्वर्यवान् हे इन्द्रदेव ! उसके बाद क्या आप अत्यधिक क्रोधित हुए थे ? इस आकाश में आपने 'दानु' के पुत्र 'वृत्र' का संहार किया था ॥७ ॥

३३७५. एतद्घेदुत वीर्य१मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् । स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने बल से सम्पन्न पुरुषार्थ किया था । जिस प्रकार सूर्यदेव द्युलोक की पुत्री उषा का नाश करते हैं, उसी प्रकार आप विशाल शत्रु सेना का संहार करते हैं ॥८ ॥

३३७६. दिवश्चिद्घा दुहितरं महान्महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं । विशाल शत्रुसेना को उसी प्रकार चूर-चूर कर दें, जिस प्रकार सूर्यदेव उषा को छिन्न-भिन्न कर देते हैं ॥९ ॥

३३७७. अपोषा अनसः सरत्संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत्सीं शिश्नथद्वृषा ॥१० ॥

बलशाली इन्द्रदेव ने जब उषा के रथ को विदीर्ण कर दिया था, तब भयभीत होने वाली उषा विदीर्ण रथ से दूर होकर प्रकट हुई थी ॥१० ॥

३३७८. एतदस्या अनः शये सुसम्पिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥११ ॥

उस उषा देवी का इन्द्रदेव द्वारा विदीर्ण हुआ रथ 'विपाशा' नदी के किनारे गिर पड़ा और उस स्थान से उषा देवी दूर देश में चली गई ॥११ ॥

३३७९. उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने समस्त जल को तथा परिपूर्ण रूप से भरी हुई वेग से प्रवाहित होने वाली सिन्धु नदी को अपनी बुद्धि के द्वारा धरती पर सब जगह स्थापित किया था ॥१२ ॥

३३८०. उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वर्षण करने वाले हैं । जब आपने 'शुष्ण' नामक असुर के नगरों को विदीर्ण किया था; तब आपने उसके ऐश्वर्य का भी अपहरण किया था ॥१३ ॥

३३८१. उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने 'कुलितर' के पुत्र विनाशक 'शम्बर' को विशाल पर्वत के ऊपर से नीचे की ओर धकेल कर मार डाला था ॥१४ ॥

३३८२. उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधींरिव ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! चक्र के अरों के समान नियोजित संगठित होकर रहने वाले वर्चस्वी दास के रिपुओं के पाँच लाख सैनिकों को आपने विनष्ट कर दिया था ॥१५ ॥

३३८३. उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६ ॥

सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ने 'अग्रु' के पुत्र 'परावृक्त' को स्तोत्र पाठ में भाग लेने योग्य बनाया ॥१६ ॥

३३८४. उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७ ॥

ययाति के शाप से पतित, विख्यात शासक 'यदु' तथा 'तुर्वश' को शची के पति ज्ञानी इन्द्रदेव ने अभिषेक के योग्य बनाया ॥१७ ॥

३३८५. उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! सरयू नदी के किनारे निवास करने वाले 'अर्ण' तथा 'चित्ररथ' नामक आर्य शासकों को आपने तत्काल मार दिया था ॥१८ ॥

३३८६. अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! समाज के द्वारा परित्याग किये गये अन्धों तथा पंगुओं को आपने अनुकूल रास्ते पर चलाया था। आपके द्वारा प्रदान किये गये सुख को हटाने में कोई सक्षम नहीं हो सकता ॥१९ ॥

३३८७. शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥२० ॥

रिपुओं के सैकड़ों पाषाण विनिर्मित नगरों को इन्द्रदेव ने हवि प्रदाता दिवोदास के लिए प्रदान किया ॥२० ॥

३३८८. अस्वापयद्भीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः। दासानामिन्द्रो मायया ॥२१ ॥

उन इन्द्रदेव ने 'दभीति' के कल्याण के लिए अपनी सामर्थ्य के द्वारा असुरों के तीस हजार वीरों को हथियारों से मारकर सुला दिया ॥२१ ॥

३३८९. स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप उन समस्त रिपुओं को हिला देते हैं। हे वृत्र का संहार करने वाले इन्द्रदेव ! आप गौओं के पालक हैं। आप समस्त याजकों के साथ समान व्यवहार करते हैं ॥२२ ॥

३३९०. उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम्। अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥२३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपनी इन्द्रियों का जो बल तथा पराक्रम प्रदर्शित किया है, उसे कोई भी विनष्ट नहीं कर सकता ॥२३ ॥

३३९१. वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४ ॥

रिपुओं का संहार करने वाले हे इन्द्रदेव ! 'अर्यमा' देवता आपको वह मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करें। दन्तहीन 'पूषा' तथा 'भग' देवता आपको वह रमणीय ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२४ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - गायत्री, ३ पादनिचृत् गायत्री ।]

३३९२. कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥१ ॥

निरन्तर प्रगतिशील हे इन्द्रदेव ! आप किन-किन तृप्तिकारक पदार्थों के भेंट करने से, किस तरह की पूजा विधि से प्रसन्न होंगे ? आप किन दिव्य शक्तियों सहित हमारे सहयोगी बनेंगे ? ॥१ ॥

३३९३. कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥२ ॥

सत्यनिष्ठों को आनन्द प्रदान करने वालों में सोम सर्वोपरि है; क्योंकि हे इन्द्रदेव ! यह आपको दुर्धर्ष शत्रुओं के ऐश्वर्य को नष्ट करने की प्रेरणा देता है ॥२ ॥

३३९४. अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥३ ॥

स्तुतियों से प्रसन्न करने वाले अपने मित्रों के रक्षक हे इन्द्रदेव ! हमारी हर प्रकार से रक्षा करने के लिये आप उच्चकोटि की तैयारी से प्रस्तुत हों ॥३ ॥

३३९५. अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः। नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम याजकगण आपका अनुगमन करते हैं। आप हम याजकों की प्रार्थनाओं से हर्षित होकर, हमारे सम्मुख गोल पहिए के समान पधारें ॥४ ॥

[वृत्ताकार चक्र सतत प्रगतिशीलता का प्रतीक है। इन्द्र का अनुगमन करते हुए हम सतत प्रगतिशील रहें, यह भाव है।]

३३९६. प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ मण्डप में अपने स्थान को ज्ञात करके पधारते हैं । सूर्यदेव के साथ हम आपकी उपासना करते हैं ॥५ ॥

३३९७. सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब हम आपकी प्रार्थना करते हैं, तब वे प्रार्थनाएँ चक्र के सदृश आपकी ओर गमन करती हैं । वे प्रार्थनाएँ सर्वप्रथम आपके समीप जाती हैं, बाद में सूर्यदेव के समीप गमन करती हैं ॥६ ॥

३३९८. उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७ ॥

शक्तियों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! स्तोतागण आपको ऐश्वर्यवान्, धन प्रदायक तथा तेजस्वी कहते हैं ॥७ ॥

३३९९. उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरू चिन्मंहसे वसु ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तुति करने वालों तथा सोम अभिषव करने वालों को आप शीघ्र ही प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥८ ॥

३४००. नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः । न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सैकड़ों प्रकार के ऐश्वर्य को हिंसा करने वाले शत्रु नहीं प्राप्त कर सकते । रिपुओं का विनाश करने वाली आपकी सामर्थ्य को वे रोक नहीं सकते ॥९ ॥

३४०१. अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः । अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सैकड़ों रक्षण-साधन हमारी सुरक्षा करें, आपके सहस्रों रक्षण-साधन हमारी सुरक्षा करें और आपकी समस्त प्रेरणाएँ हमारी सुरक्षा करें ॥१० ॥

३४०२. अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें अपनी मित्रता की छत्रछाया में रखकर हमारा कल्याण करें तथा हम याजकों को तेजस्वी वैभव प्रदान करें ॥११ ॥

३४०३. अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा । अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने महान् धनों तथा सम्पूर्ण रक्षण-साधनों द्वारा प्रतिदिन हमारी सुरक्षा करें ॥१२ ॥

३४०४. अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार वीर मनुष्य गृह-द्वार को खोलते हैं, उसी प्रकार आप हम मनुष्यों के निमित्त गौओं के गोष्ठ को खोलें ॥१३ ॥

३४०५. अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रिपुओं को परास्त करने वाले, अत्यधिक तेज वाले, विनष्ट न होने वाले तथा गौओं (किरणों) से युक्त हैं । आप अश्वों से युक्त रथ द्वारा सर्वत्र गमन करने वाले हैं । आप उस रथ के साथ हम याजकों की सुरक्षा करें ॥१४ ॥

३४०६. अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥१५ ॥

सबके प्रेरक हे सूर्यदेव ! जिस तरह आपने अत्यधिक ओजस्वी द्युलोक की स्थापना ऊपर की है, उसी प्रकार देवताओं के बीच में हमारे यज्ञों को श्रेष्ठता प्रदान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ३२]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्र , २३-२४ इन्द्राश्व । छन्द - गायत्री]

३४०७. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१ ॥

हे वृत्रहन्ता ! आप महान् बनकर, संरक्षण के विविध साधनों सहित हमारे पास आएँ ॥१ ॥

३४०८. भृमिश्चिद्घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पुरुषार्थ करने वाले तथा हमें समृद्ध करने वाले हैं । हे अद्‌भुत शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप अद्‌भुत कर्म करने वाले मनुष्यों को, सुरक्षा के लिए विलक्षण बल प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३४०९. दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो याजक आपके साथ निवास करते हैं, उन थोड़े से मित्रों के सहयोग से आप उच्छृंखलता बरतने वाले बड़े-बड़े रिपुओं को भी विनष्ट कर देते हैं ॥३ ॥

३४१०. वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँ अस्माँ इदुदव ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके साथ निवास करते हैं तथा आपकी प्रार्थना करते हैं, अतः आप हमें विशेष रूप से संरक्षण प्रदान करें ॥४ ॥

३४११. स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अनेक प्रकार के प्रार्थनीय तथा रिपुओं द्वारा परास्त न किये जाने योग्य रक्षण-साधनों से सम्पन्न होकर हमारे समीप पधारें ॥५ ॥

३४१२. भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके समान गौओं से सम्पन्न व्यक्तियों के मित्र हों । प्रचुर अन्न-धन के निमित्त हम आपके साथ मिलते हैं ॥६ ॥

३४१३. त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौओं (प्रकाशयुक्त किरणों) से पैदा हुए अन्न पर आप अकेले ही शासन करते हैं; अतः आप हमें प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥७ ॥

३४१४. न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् । स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८ ॥

हे प्रार्थनीय इन्द्रदेव ! जब आप प्रशंसित होकर स्तुति करने वालों को ऐश्वर्य प्रदान करने की अभिलाषा करते हैं, तब कोई भी किसी तरह आपको रोक नहीं सकता ॥८ ॥

३४१५. अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋषि 'गौतम' अपनी प्रार्थनाओं के द्वारा आपको समृद्ध करते हैं तथा श्रेष्ठ अन्न दान करने के निमित्त आपकी प्रार्थना करते हैं ॥९ ॥

३४१६. प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरस पान से हर्षित होकर आपने दासों की पुरियों पर चढ़ाई करके उन्हें विदीर्ण कर दिया; अतः हम आपके उस शौर्य का वर्णन करते हैं ॥१० ॥

३४१७. ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥११ ॥

हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आपने जिस शौर्य को प्रकट किया । सोम रस तैयार होने पर ज्ञानी जन आपके उस शौर्य की प्रशंसा करते हैं ॥११ ॥

३४१८. अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । ऐषु धा वीरवद्यशः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्रशंसा करने वाले 'गौतम' ऋषि आपकी कीर्ति को समृद्ध करते हैं । इसलिए आप इन्हें सन्तानों से सम्पन्न करें तथा अन्न प्रदान करें ॥१२ ॥

३४१९. यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! यद्यपि समस्त याजकों के लिए आप सहज उपलब्ध देव हैं, फिर भी हम स्तुति करने वाले आपको विशेष रूप से आहूत करते हैं ॥१३ ॥

३४२०. अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥१४ ॥

सबको निवास प्रदान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोमरस पान करने वाले हैं । आप हम याजकों के सम्मुख पधारें तथा सोमरस पान करके हर्षित हों ॥१४ ॥

३४२१. अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपकी स्तुति करने वाले हैं । हमारी स्तुतियाँ आपको हमारे समीप ले आएँ । आप अपने अश्वों को हमारी ओर प्रेरित करें ॥१५ ॥

३४२२. पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥१६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे पुरोडाश रूपी अन्न का सेवन करें । जिस तरह स्त्री की अभिलाषा करने वाले पुरुष स्त्री के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं, उसी प्रकार आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनें ॥१६ ॥

३४२३. सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७ ॥

हम स्तुति करने वाले लोग द्रुतगामी, कुशल, शिक्षित तथा रिपुओं को परास्त करने वाले सहस्रों अश्वों को इन्द्रदेव से माँगते हैं । इसके अलावा सैकड़ों की संख्या में सोम की खारियों (कलशों) की याचना करते हैं ॥१७ ॥

[खारी एक पुरातन माप है । १ खारी = १६ द्रोण । १ द्रोण = १ बाल्टी के लगभग होता है ।]

३४२४. सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपकी सैकड़ों तथा हजारों की संख्या वाली गौओं को आपसे प्राप्त करते हैं । आपका धन भी हमारे समीप आए ॥१८ ॥

३४२५. दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके स्वर्ण से पूर्ण दस कलशों को प्राप्त करते हैं । हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आप प्रचुर दान प्रदान करने वाले हैं ॥१९ ॥

३४२६. भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२० ॥

प्रचुर दानदाता हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करें । आप हमें थोड़ा धन नहीं, वरन् विपुल धन प्रदान करें; क्योंकि आप प्रचुर ऐश्वर्य प्रदान करने की अभिलाषा करते हैं ॥२० ॥

३४२७. भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥२१ ॥

हे वृत्रहन्ता, शूरवीर इन्द्रदेव ! आप अत्यधिक ऐश्वर्य प्रदाता के रूप में अनेकों मनुष्यों में प्रसिद्ध हैं । आप अपने ऐश्वर्य में हमें भागीदार बनाएँ ॥२१ ॥

३४२८. प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्। माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२ ॥

मेधावी तथा विनाशक हे इन्द्रदेव ! आप गौओं के पालन करने वाले हैं । हम आपके भूरे वर्ण के अश्वों की प्रशंसा करते हैं । इन अश्वों के द्वारा आप हमारी गौओं को नष्ट न करें ॥२२ ॥

३४२९. कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके भूरे रंग के अश्व दृढ़ काष्ठ निर्मित कठपुतली की तरह (पूरी तरह नियंत्रित होकर) यज्ञ में शोभा पाते हैं ॥२३ ॥

३४३०. अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब हम बैलों से युक्त रथ पर गमन करें या पैरों द्वारा गमन करें, तब आपके भूरे रंग के हिंसा रहित घोड़े हमारे लिए हितकारी हों ॥२४ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - ऋभुगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

क्र० ३३ से ३७ तक के सूक्त ऋभुदेवों के लिए हैं । पौराणिक सन्दर्भ में वे मनुष्य थे, जो श्रेष्ठ कर्मों के आधार पर देव बने । सूर्य से विकिरित किरणों को भी ऋभु कहा गया है । प्रतीत होता है कि ये विकिरण (रेडिएशन) प्रक्रिया के अधिष्ठाता देवता हैं । ये तीन भाई हैं - ऋभु, विभु एवं वाज । ये क्रमशः शिल्पी पदार्थों के रूपान्तरण कर्त्ता, विस्तारक तथा बल संचारक हैं । ये तीनों गुण किरणों में पाये जाते हैं । विभिन्न ऋचाओं में ऋभुओं के कौशल एवं सामर्थ्य का वर्णन है -

३४३१. प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१ ॥

जो ऋभुगण वायु के सदृश वेग वाले और उपकारजनक कर्म करने वाले हैं, जो अपने चतुर अश्वों के द्वारा शीघ्र ही द्युलोक को परिव्याप्त करते हैं, उन ऋभुओं के निमित्त हम यजमान सन्देशवाहक के सदृश प्रार्थनाओं को प्रेरित करते हैं । सोमरस को उत्कृष्ट बनाने के लिए हम उनसे दुधारू गौओं की याचना करते हैं ॥१ ॥

३४३२. यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२ ॥

जब ऋभुओं ने अपने माता-पिता की परिचर्या करके अपनी महानता का परिचय दिया तथा श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा स्वयं को बलशाली बनाया, तब उन्होंने इन्द्र आदि देवताओं की बन्धुता को प्राप्त किया । उसके बाद उन मेधावी ऋभुओं ने अपने मन को भी बलशाली बनाया ॥२ ॥

[श्रेष्ठ कर्म करके तथा मन की शक्ति बढ़ाकर व्यक्ति देवों की श्रेणी में पहुँच सकते हैं ।]

३४३३. पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३ ॥

उन ऋभुओं ने यूप के सदृश जीर्ण होकर लेटे हुए अपने माता-पिता को सदैव के लिए युवा बना दिया । इन्द्रदेव की अनुकम्पा से युक्त होकर तथा मधुर सोमरस पान करके वाज, विभु तथा ऋभु हमारे यज्ञ की सुरक्षा करें ॥३ ॥

३२३४. यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४ ॥

उन ऋभुओं ने एक वर्ष पर्यन्त मरणासन्न गाय का पालन किया । उन्होंने एक वर्ष पर्यन्त उसे अवयवों से युक्त किया तथा उसे सौन्दर्य प्रदान किया । एक वर्ष पर्यन्त उन्होंने उसमें तेज स्थापित किया । इन सम्पूर्ण कार्यों के द्वारा उन्होंने अमरत्व को प्राप्त किया ॥४ ॥

[भूमि को गौ कहा गया है । मृतप्राय अर्थात् ऊसर, शक्तिहीन भूमि को किरणों के उपचार से पुनः उर्वर बनाने की प्रक्रिया का बोध इस ऋचा से होता है ।]

३४३५. ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५ ॥

ज्येष्ठ ऋभु ने कहा-हम एक चमस को दो भागों में करेंगे, उससे भी छोटे ऋभु ने कहा-हम चार भाग करेंगे । हे ऋभुगण ! त्वष्टा देवता ने आपके इन वचनों की प्रशंसा की ॥५ ॥

[चमस द्वारा यज्ञ को संवर्धित करने के लिए आहुतियाँ दी जाती हैं । अग्निहोत्र यज्ञ में उसके प्रयोग का विधान है । ऋभुओं (किरणों) ने यज्ञ संवर्धन की तीन प्रक्रियाएँ और विकसित कर दीं । (१) सूक्ष्म कणों को प्रकृति पोषण के लिए उपयुक्त स्वरूप देना । (२) उन्हें प्रकृति में व्यापक रूप से संचारित एवं स्थापित करना । (३) प्रकृति के घटकों को पुष्ट-सशक्त बनाना । प्रकृति पोषण-संचालन यज्ञ के लिए आहुतियाँ प्रदान करने के यह तीन क्रम ऋभुओं ने जोड़े । इन्हें त्वष्टा-यज्ञ उपकरण गढ़ने वाले देवता ने सराहा ।]

३४३६. सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६ ॥

मनुष्य रूपी ऋभुओं ने सच ही कहा था; क्योंकि उन्होंने जो कहा, वही किया था । उसके बाद ऋभुओं ने हव्य को ग्रहण किया । दिन की तरह तेजोयुक्त चार चमसों को त्वष्टादेव ने देखा और उन्हें प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारा ॥६ ।

३४३७. द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७ ॥

जब ऋभुगणों ने द्यु (आकाश) के बारह प्रभागों (आर्द्रा आदि वर्षा कारक १२ नक्षत्रों) में सुखपूर्वक निवास किया, तब उन्होंने खेतों को श्रेष्ठ बनाया और सरिताओं को प्रेरित किया । जलरहित स्थानों में ओषधियों को उत्पन्न किया तथा जलों को नीचे की तरफ प्रवाहित किया ॥७ ॥

३४३८. रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८ ॥

जिन ऋभुओं ने भली-भाँति बँधे हुए तथा मनुष्यों के आरूढ़ होने योग्य रथ का निर्माण किया । जिन्होंने समस्त जगत् को प्रेरित करने वाली तथा अनेकों रूपों वाली गाय को उत्पन्न किया; वे सत्कर्म करने वाले, अन्नों वाले तथा श्रेष्ठ हाथ वाले ऋभुगण हमें धन प्रदान करें ॥८ ॥

३४३९. अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९ ॥

देवताओं ने इन ऋभुओं के रथ निर्माण आदि कर्मों को वरदान के रूप में प्रसन्न हृदय से स्वीकारा । श्रेष्ठ कर्म करने वाले वाज देवताओं के प्रिय पात्र, बड़े ऋभु इन्द्रदेव के प्रियपात्र तथा विभु वरुणदेव के प्रियपात्र बने ॥९ ॥

[ऋभु पदार्थों को उपयोगी स्वरूप देते हैं, वे पदार्थों के संगठक इन्द्र के सहयोगी हैं । विभु विस्तारक हैं, वे विद्वान् वरुण के प्रिय हैं । बल संचारक वाज देवताओं , दिव्य क्षमताओं के विकासक हैं ।]

३४४०. ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१० ॥

जिन ऋभुओं ने उक्थों (स्तोत्रों) से हर्षित होकर अपनी प्रज्ञा के द्वारा दो अश्वों को बलिष्ठ किया था तथा जिन्होंने इन्द्रदेव के लिए सरलता से रथ में नियोजित होने वाले दो अश्वों को तैयार किया था, मित्र के सदृश वे ऋभुगण कल्याण की कामना करने वाले हम मनुष्यों को ऐश्वर्य पुष्टि तथा गौ आदि धन प्रदान करें ॥१० ॥

३४४१. इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११ ॥

हे ऋभुओ ! देवताओं ने आपको तीसरे सवन में सोमरस तथा हर्ष प्रदान किया था । तप किये बिना देवतागण मित्रता नहीं करते । हे ऋभुगण ! हम मनुष्यों को आप इस तीसरे सवन में निश्चित रूप से ऐश्वर्य प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३४]

। ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - ऋभुगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।

३४४२. ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१ ॥

हे ऋभु, विभु, वाज तथा इन्द्रदेवो ! हमें रत्न प्रदान करने के निमित्त आप सब हमारे यज्ञ मण्डप में पधारें । आज दिन में स्नेहपूर्वक स्तुतिगान करते हुए आप सबकी तृप्ति के लिए सोमरस प्रस्तुत किया गया है । ये हर्ष प्रदायक सोमरस आपके साथ संयुक्त हो ॥१ ॥

३४४३. विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२ ॥

हे अन्न से सुशोभित ऋभुओ ! आप समस्त जीवों के जन्मों को जान करके सम्पूर्ण ऋतुओं में हर्ष प्राप्त करें । हर्ष प्रदायक सोमरस तथा श्रेष्ठ बुद्धि आपको हमेशा प्राप्त होती रहे । आप हमारी ओर श्रेष्ठ सन्तति से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रेरित करें ॥२ ॥

३४४४. अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।
प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३ ॥

हे ऋभुगण ! यह यज्ञ आप सब के लिए किया गया है । आप ओजस्वी व्यक्ति के समान इस यज्ञ को ग्रहण करें । हर्षित करने वाला सोमरस आपकी ओर प्रेरित होता है । हे बलशाली ऋभुओ ! आप सब सर्वश्रेष्ठ हैं ॥३ ॥

३४४५. अभूदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबत वाजा ऋभवो ददे वो महि तृतीयं सवनं मदाय ॥४ ॥

श्रेष्ठ नायक हे ऋभुगण ! आपका रत्न आदि धन, परिचर्या करने वाले तथा आहुति प्रदान करने वाले यजमान के निमित्त हो । हे बलवान् ऋभुगण ! हम आपको तृतीय सवन मे, हर्षित होने के लिए प्रचुर सोमरस प्रदान करते हैं । इसलिए आप सब उसे पान करें ॥४ ॥

३४४६. आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥५ ॥

हे बलवान् नायक ऋभुओ ! आप अत्यधिक ऐश्वर्यवान् के रूप में विख्यात हैं । आप हमारे समीप पधारें । जिस प्रकार नव प्रसूता गौएँ घर की तरफ गमन करती हैं, उसी प्रकार ये सोमरस आपकी तरफ आगमन करते है ॥५ ॥

३४४७. आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।

सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥६ ॥

हे बलशाली ऋभुओ ! आप स्तुतियों द्वारा आवाहित होकर इस यज्ञ मण्डप में पधारें । आप इन्द्रदेव के मित्ररूप तथा मेधावान् हैं; क्योंकि आप सब उनके सम्बन्धी हैं । आप सब इन्द्रदेव के साथ संयुक्त होकर रत्न प्रदान करते हुए मधुर सोमरस का पान करें ॥६ ॥

३४४८. सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।

अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वरुणदेव के साथ तथा मरुद्गणों के साथ प्रेमपूर्वक सोमरस पान करें । सर्वप्रथम सोमरस पान करने वाले और ऋतुओं के अनुसार सोमरस पान करने वाले देवताओं के साथ तथा श्रेष्ठ धन को धारण करने वाली उनकी पत्नियों के साथ आप सोमरस पान करें ॥७ ॥

३४४९. सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।

सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८ ॥

हे ऋभुओ ! आप आदित्यों तथा पर्वतों के साथ प्रेमपूर्वक हर्षित हों । आप देवताओं के हितैषी सविता देवता तथा रत्न-प्रदाता सागरों के साथ संगत होकर हर्षित हों ॥८ ॥

३४५०. ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।

ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९ ॥

जिन ऋभुओं ने अपने रक्षण साधनों से अश्विनीकुमारों को सक्षम बनाया, अपने माता-पिता को तरुण बनाया, गौओं को दुधारू तथा अश्वों को बलशाली बनाया; जिन्होंने कवचों को विनिर्मित किया, द्यावा-पृथिवी को पृथक् किया तथा जिन बलशाली नायकों ने उत्तम कर्मों को सम्पन्न किया, वे सर्वप्रथम सोम पान करने वाले हैं ॥९ ॥

[अश्विनीकुमार आरोग्यवर्धक सूक्ष्म प्रवाह हैं । ऋभुओं-किरणों द्वारा उनकी क्षमता बढ़ती है । उन्होंने गौ (प्रकृति-भूखण्डों) को उपजाऊ बनाया है । पृथ्वी और आकाश के बीच सुरक्षा कवच के रूप में आयन मण्डल (आयनो स्फियर) किरणों के प्रभाव से ही बना है । इसी कवच ने ही पृथ्वी और आकाश के बीच विभाजक सीमा बनायी है ।]

३४५१. ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१० ॥

हे ऋभुओ ! आप गौओं, अश्वों तथा श्रेष्ठ पराक्रमी सन्तानों से सम्पन्न द्रव्य तथा प्रचुर अन्न वाले ऐश्वर्य को धारण करते हैं । आपके ऐश्वर्य की सब जगह प्रशंसा होती है । आप सर्वप्रथम सोम पान करके हर्षित होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१० ॥

३४५२. नापाभूत न वोऽतीतृषामानिः शस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।

समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११ ॥

हे ऋभुओ ! आप सब हमसे दूर न जायें । हम भी आपको तृषित नहीं रखेंगे । हे ऋभुओ ! आप देवत्व से सम्पन्न होकर तथा आनन्दित होकर इन्द्रदेव के साथ इस यज्ञ में हर्षित हों । हे देवो ! रत्न दान के निमित्त आलोकमान मरुतों के साथ आप हर्षित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ३५]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - ऋभुगण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३४५३. इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन्हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१ ॥

सुधन्वा के बलशाली पुत्र हे ऋभुओ ! आप हमारे समीप पधारें, हमसे दूर न जायें । इस यज्ञ मण्डप में रत्नप्रदाता इन्द्रदेव को प्रदान किया जाने वाला हर्षकारक सोमरस आपको भी प्राप्त हो ॥१ ॥

३४५४. आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२ ॥

हे ऋभुओ ! आपका रत्न आदि दान हमारे समीप आए । आप भली प्रकार अभिषुत सोमरस का पान करते रहें; क्योंकि आपने अपने कौशल तथा कर्म की इच्छा द्वारा एक चमस को चार प्रकार से विनिर्मित किया है ॥२ ॥

३४५५. व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत ।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३ ॥

हे ऋभुओ ! आपने एक चमस को चार प्रकार से बनाया था तथा कहा था - हे मित्र (अग्नि) देव ! आप कृपा करें । (तब अग्नि ने उत्तर दिया) हे ऋभुओ ! आप अविनाशी पथ पर गमन करें । आप कुशल हाथ वाले हैं । आप देव पथ पर चलते हुए अमरता प्राप्त करें ॥३ ॥

३४५६..किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र ।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४ ॥

हे ऋभुओ ! जिस चमस को आपने अपने कौशल द्वारा चार प्रकार का बनाया, वह चमस किस वस्तु से विनिर्मित था । हे ऋत्विजो ! हर्षित होने के लिए आप सब सोमरस अभिषुत करें । हे ऋभुओ ! आप सब मधुर सोमरस का पान करें ॥४ ॥

३४५७. शच्याकर्त पितरा युवाना शच्याकर्त चमसं देवपानम् ।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५ ॥

हे ऋभुओ ! आपने कर्म-कौशल के द्वारा अपने माता-पिता को युवा बनाया तथा चमस को देवताओं के पीने योग्य बनाया । रमणीय ऐश्वर्य वाले हे ऋभुओ ! आपने अपने कौशल के द्वारा इन्द्रदेव को वहन करने वाले अश्वों को बाण से भी ज्यादा वेगवान् बनाया ॥५ ॥

३४५८. यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीरमा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥६ ॥

हे ऋभुओ ! आप सब अन्न से सम्पन्न हैं । दिन के अवसान काल में याजकगण आपको आनन्द प्रदान करने के लिए सोमरस अभिषुत करते हैं । हे बलशाली ऋभुओ ! आप हर्षित होकर उन याजकों को हर प्रकार से पराक्रमी, उत्तम सन्तानों से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३४५९. प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखीयाँ इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥७ ॥

श्रेष्ठ अश्वों से सुशोभित हे इन्द्रदेव ! आप प्रातः काल अभिषुत किये गये सोमरस का पान करें । मध्याह्न-काल का सोमरस भी आपके निमित्त ही है । हे इन्द्रदेव ! उत्तम कार्य करते हुए आपने जिन रत्न-प्रदाता ऋभुओं से मित्रता स्थापित की है, उनके साथ सोमरस का पान करें ॥७ ॥

३४६०. ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।

ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८ ॥

हे ऋभुओ ! आप सत्कर्म करने के कारण देवता बने हैं । अमरत्व प्रदान करने वाले हे सुधन्वा के पुत्रो ! आप श्येन पक्षी के समान द्युलोक में प्रतिष्ठित हों तथा सभी प्रकार से धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८ ॥

३४६१. यत्तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।

तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९ ॥

श्रेष्ठ हाथों वाले हे ऋभुओ ! आपने तृतीय सवन को अपने सत्कर्मों के द्वारा ऐश्वर्य प्रदान करने वाला बनाया है । हे ऋभुओ ! हर्षित इन्द्रियों के साथ अभिषुत सोमरस को आप ग्रहण करें ॥९ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - ऋभुगण । **छन्द** - जगती; ९ त्रिष्टुप् ।]

३४६२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।

महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१ ॥

हे ऋभुओ ! आप लोगों का कार्य प्रशंसनीय है । आपके द्वारा अश्विनीकुमारों को प्रदान किये गये तीन पहियों वाले रथ, अश्वों तथा लगाम के बिना ही आकाश में चारों तरफ विचरण करते हैं । उस रथ के माध्यम से आप द्यावा-पृथिवी का पोषण करते हैं । यह महान् कार्य आपकी दिव्यता का परिचायक है ॥१ ॥

[अश्विनीकुमार आरोग्य के देवता हैं । ऋभुओं ने उनके लिए तीन चक्रों से युक्त रथ बनाया । तीन ऋभुओं की विशेषताओं के चक्र (सतत गतिशील प्रक्रियाएँ) हैं - पदार्थों का आरोग्यप्रद संस्कार, उनका विस्तार (रोगनाश) तथा बलसंवर्धन । इन तीन चक्रों के माध्यम से अश्विनीदेव सभी जगह सक्रिय रहते हैं ।]

३४६३. रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।

ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२ ॥

श्रेष्ठ अन्तःकरण वाले हे ऋभुओ ! आपने मन के संकल्प द्वारा भली-भाँति घूमने वाले कुटिलतारहित रथ को विनिर्मित किया था । हे वाजगण तथा ऋभुगण ! हम सोमरस पीने के लिए आप लोगों को आमन्त्रित करते हैं ॥२ ॥

३४६४. तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।

जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३ ॥

हे वाजगण ! हे ऋभुगण ! तथा हे विभुगण ! आपने अपने अत्यधिक वृद्ध तथा जीर्ण माता-पिता को चलने-फिरने के लिए पुनः युवा बना दिया था ।आपका वह महान् कार्य देवताओं के बीच अत्यन्त प्रशंसनीय हुआ ॥३ ॥

३४६५. एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।

अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४ ॥

हे ऋभुओ ! आपने एक चमस को चार हिस्सों में विभाजित किया था तथा अपने कार्यों के द्वारा केवल चमड़े वाली गौ को बलिष्ठ किया था । इसलिए आप लोगों ने देवताओं के बीच में

अमरता को प्राप्त किया । हे वाजगण तथा ऋभुगण ! आपके वे कार्य अतिप्रशंसनीय हैं ॥४ ॥

३४६६. ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५ ॥

वाजगण तथा प्रसिद्ध नायक ऋभुओं ने जिस ऐश्वर्य को पैदा किया था, वह प्रचुर अन्न रूप ऐश्वर्य उनके द्वारा हमें प्राप्त हो । युद्ध में ऋभुओं द्वारा विनिर्मित रथ विशेष रूप से प्रशंसा के योग्य होता है । हे देवताओ ! आप लोग जिसको संरक्षण प्रदान करते हैं, वह प्रख्यात होता है ॥५ ॥

३४६७. स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६ ॥

वाजगण, विभुगण तथा ऋभुगण जिस मनुष्य को संरक्षण प्रदान करते हैं, वह बलशाली होकर युद्ध में कुशल होता है, मन्त्र द्रष्टा ऋषि होकर प्रशंसनीय होता है, पराक्रमी होकर आयुध फेंकने वाला होता है तथा संग्राम में अपराजेय होता है, वह मनुष्य ऐश्वर्य, पुष्टि तथा श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करता है ॥६ ॥

३४६८. श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७ ॥

हे वाजगण तथा हे ऋभुगण ! आप लोग श्रेष्ठ तथा देखने योग्य रूप धारण करते हैं । हमने आपके लिए स्तोत्र की रचना की है, आप उसे ग्रहण करें । आप लोग धैर्यवान्, दूरदर्शी तथा मेधावी हैं । हम अपने स्तोत्रों द्वारा आपको आहूत करते हैं ॥७ ॥

३४६९. यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८ ॥

हे ऋभुगण ! आप ज्ञान से सम्पन्न होकर हमारी आशा से भी अधिक, मनुष्यों के लिए हितकारिणी सम्पत्ति हमें प्रदान करें । आप लोग हमारे लिए दीप्तिमान् ऐश्वर्य से युक्त अधिकार, श्रेष्ठ अन्न- धन तथा बल प्रदान करें ॥८ ॥

३४७०. इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥९ ॥

हे ऋभुगण ! आप लोग हमारे इस यज्ञ में हर्षित होकर हमें संतान, ऐश्वर्य तथा पराक्रम देने वाला अन्न प्रदान करें । हमें ऐसा श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें , जिससे हम लोग दूसरों से आगे बढ़ सकें ॥९ ॥

[सूक्त - ३७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । देवता - ऋभुगण । छन्द - त्रिष्टुप्; ५-८ अनुष्टुप् ॥]

३४७१. उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३ सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥१ ॥

हे मनोहर ऋभुगण ! आप जिस प्रकार दिनों की श्रेष्ठता प्रदान करने के लिए याजकों के यज्ञों को धारण करते हैं , उसी प्रकार देवताओं के मार्गों द्वारा आप हमारे यज्ञ में पधारें ॥१ ॥

३४७२. ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२ ॥

आज आपके मन तथा हृदय को ये यज्ञ, हर्ष प्रदान करने वाले हों । घृत मिला हुआ प्रचुर सोमरस आपकी ओर गमन करे । उत्साह से पूर्ण अभिषुत सोमरस आपकी अभिलाषा करता है । सोमरस पीकर आप सत्कर्म करने की स्फूर्ति प्राप्त करें ॥२ ॥

३४७३. त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३ ॥

हे वाजगण तथा ऋभुगण ! जिस प्रकार आपको स्तुतियाँ समर्पित की जाती हैं, उसी प्रकार हम आपके लिए, तीनों सवनों में अभिषुत किया जाने वाला तथा देवताओं का कल्याण करने वाला सोमरस समर्पित करते हैं । श्रेष्ठ मनुष्यों के बीच तेजस्वी जीवन जीने वाले हम आपके लिए सोमरस प्रदान करते हैं ॥३ ॥

३४७४. पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४ ॥

हे ऋभुओ ! आप बलिष्ठ अश्वों वाले, तेजोयुक्त रथों वाले तथा लौह-कवचों को धारण करने वाले हैं । आप अन्नवान् तथा श्रेष्ठ धन वाले हैं । इन्द्रदेव के पुत्र तथा बल से उत्पन्न हे ऋभुओ ! आप सबके हर्ष के लिए यह उत्तम सोमरस प्रदान किया जाता है ॥४ ॥

३४७५. ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् । इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥५ ॥

हे ऋभुओ ! हम अत्यधिक संवर्धनशील ऐश्वर्य का आवाहन करते हैं, युद्ध में अत्यधिक बलशाली संरक्षक का आवाहन करते हैं तथा हमेशा उदार, इन्द्रदेव के प्रिय, श्रेष्ठ अश्वों वाले आपके गणों का आवाहन करते हैं ॥५ ॥

३४७६. सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् । स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥६ ॥

हे ऋभुओ ! आप तथा इन्द्रदेव जिस व्यक्ति को संरक्षण प्रदान करते हैं, वही व्यक्ति महान् होता है । वही व्यक्ति अपने कर्मों द्वारा धन का भागीदार तथा यज्ञों में अश्वों से सम्पन्न होता है ॥६ ॥

३४७७. वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥७ ॥

हे वाजगण तथा ऋभुगण ! आप हमारे लिए सत्कर्म करने (यज्ञ) का श्रेष्ठ मार्ग प्रशस्त करें । हे ज्ञानियो ! आप लोग प्रशंसित होकर सम्पूर्ण दिशाओं में सफलतापूर्वक आगे बढ़ने के लिए हमें मार्ग दिखायें ॥७ ॥

३४७८. तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८ ॥

हे वाजगण ! हे ऋभुगण ! हे अश्विनीकुमारो तथा हे इन्द्रदेव ! आप सब हम स्तोताओं को प्रचुर ऐश्वर्य तथा अश्वों (शक्ति) की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त - ३८]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - दधिक्रा; १ द्यावापृथिवी । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

अग्नि - ऊर्जा का एक रूप दधिक्रादेव अश्व संज्ञक अग्नि कहा गया है । सूक्त ३८ से ४० उन्हीं के प्रति हैं । सवार या भार को धारण करके गन्तव्य की ओर गमन करता है । 'दधत्' - धारण करने 'क्रा' संचरण के संदर्भ में प्रयुक्त शब्द हैं । अग्नि में अपने साथ सुगन्धि तथा विविध प्रकार के क्षमतावान् कणों को लेकर संचरित होने की क्षमता प्रत्यक्ष है । वर्तमान विज्ञान के अन्तर्गत ऊर्जा प्रवाहों की विद्युत् चुम्बकीय (इलैक्ट्रो मैग्नेटिक) तरंगों पर शब्द (रेडियो प्रणाली से) तथा चित्र (टेलीविजन प्रणाली

से) संस्थापित (सुपर इम्पोज) करके संचरित किये जाते हैं। प्राचीन काल में इसी प्रकार अनेक प्रकार के संचार करने की विधि ऋषियों को ज्ञात थी, ऐसा इन मंत्रों से आभास होता है --

३४७९. उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥१ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! दान दाता त्रसदस्यु ने याजकों को जो सम्पत्ति प्रदान की, वह आपका ही वैभव है। आपने ही उन्हें जमीन जोतने वाले अश्व तथा जमीन को उर्वर बनाने वाले पुत्र प्रदान किये थे। आपने उन्हें (रिपुओं को) पराभूत करने वाले तीक्ष्ण हथियार प्रदान किये थे ॥१ ॥

३४८०. उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम्।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥२ ॥

शक्तिशाली, अनेकों रिपुओं के संहारक, समस्त मनुष्यों के हितकारक, श्येन पक्षी के सदृश सरलगामी, ओजस्वी रूप वाले, महान् लोगों के द्वारा प्रशंसनीय, राजा के सदृश शूरवीर, द्रुत गति से गमन करने वाले दधिक्रा देवता (अश्वरूपी अग्नि) को ये द्यावा-पृथिवी धारण करते हैं ॥२ ॥

३४८१. यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३ ॥

समस्त मनुष्य बलिष्ठ होकर जिन दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं, वे नीचे बहने वाले जल के समान गमनशील, युद्ध की कामना करने वाले, शूरवीर के समान पैर के द्वारा समस्त दिशाओं को लाँघने की कामना करने वाले तथा वायु के समान द्रुतगामी हैं ॥३ ॥

३४८२. यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन्।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४ ॥

जो देव संग्राम में एकत्रित पदार्थों को अवरुद्ध करते हैं तथा महान् ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हैं, जो समस्त दिशाओं में गमन करते हुए तीव्र गति से सब जगह व्याप्त होते हैं तथा अपने आयुधों को प्रकट करके संग्राम में विख्यात होते हैं; वे दधिक्रादेव हमारे रिपुओं को हमसे दूर करते हैं ॥४ ॥

३४८३. उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५ ॥

जिस प्रकार वस्त्राभूषण चुराने वाले तस्कर को देखकर सभी चीत्कार करते हैं, उसी प्रकार युद्ध में दधिक्रादेव को देखकर रिपुगण चीत्कार करने लगते हैं। जिस प्रकार नीचे की ओर झपट्टा मारते हुए श्येन (बाज पक्षी) को देखकर पक्षीगण भाग जाते हैं, उसी प्रकार अन्न तथा पशु समूह की तरफ सीधे गमन करने वाले दधिक्रादेव को देखकर समस्त रिपुगण भागने लगते हैं ॥५ ॥

३४८४. उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम्।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥६ ॥

वे दधिक्रादेव, रिपु-सेनाओं के मध्य जाने की कामना से रथों की पंक्तियों से सम्पन्न हैं। जिस प्रकार महत्त्वाकांक्षी लोग अपने शरीर को मालाओं से अलंकृत करते हैं, उसी प्रकार मालाओं को पहनकर अत्यधिक मनोहर लगने वाले दधिक्रादेव, लगाम को दाँतों से खींचते हुए धूलि-धूसरित हो जाते हैं ॥६ ॥

३४८५. उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७ ॥

वे बलशाली, संग्राम में रिपुओं का संहार करने वाले, अनुशासन पालने वाले, अपने को चाटकर शरीर की परिचर्या करने वाले, द्रुतगति से गमन करने वाली सेनाओं पर चढ़ाई करने वाले तथा ऋजु मार्ग से गमन करने वाले हैं। वे दधिक्रादेव पैरों से धूलि को उड़ाकरके अपनी भौंहों के ऊपर फैलाते हैं ॥७ ॥

३४८६. उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८ ॥

तेजस्वी तथा ध्वनि करने वाले, वज्र के समान शत्रुओं की हिंसा करने वाले दधिक्रादेव से युद्ध की अभिलाषा करने वाले मनुष्य भयभीत होते हैं। जब वे चारों तरफ सहस्रों रिपुओं से लड़ते हैं, तब उत्तेजित होकर भयंकर तथा अजेय हो जाते हैं ॥८ ॥

३४८७. उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥९ ॥

मनुष्यों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले तथा तीव्र वेग वाले दधिक्रादेव के, शौर्य व गति को मनुष्यगण प्रार्थना करते हैं। संग्राम में जाने वाले योद्धा इनके बारे में कहते हैं कि ये दधिक्रादेव सहस्रों रिपुओं को भी पराभूत करके आगे बढ़ जाते हैं ॥९ ॥

३४८८. आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१० ॥

जिस प्रकार आदित्यगण अपने तेज के द्वारा आकाश को व्याप्त कर देते हैं, उसी प्रकार दधिक्रादेव अपने तेज के द्वारा पाँचों प्रकार के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) को व्याप्त कर देते हैं। शत तथा सहस्र प्रकार के ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले बलशाली दधिक्रादेव , हमारी स्तुतियों को मधुरता (मधुर प्रतिफल) से संयुक्त करें ॥१० ॥

[सूक्त - ३९]

| **ऋषि** - वामदेव गौतम। **देवता** - दधिक्रा। **छन्द** - त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप् ।|

३४८९. आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१ ॥

उन द्रुतगामी दधिक्रादेव की हम लोग प्रार्थना करेंगे और द्यावा-पृथिवी की भी प्रार्थना करेंगे। तम का निवारण करने वाली उषाएँ हमें उत्साहित करें तथा समस्त विपत्तियों से हमें पार करें ॥१ ॥

३४९०. महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२ ॥

हम यज्ञ सम्पन्न करने वाले हैं। अनेकों के द्वारा वरण करने योग्य, महान् तथा अभीष्ट की वर्षा करने वाले दधिक्रादेव की हम प्रार्थना करते हैं। हे मित्रावरुण ! आप दोनों तेजस्वी अग्नि के सदृश स्थित तथा विपत्तियों से पार लगाने वाले दधिक्रादेव को याजकों के कल्याण के लिए धारण करते हैं ॥२ ॥

३४९१. यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३ ॥

जो मनुष्य उषा के प्रकट होने पर तथा अग्नि के प्रदीप्त होने पर अश्वरूप दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं। ऐसे मनुष्य को मित्र, वरुण तथा अदिति के साथ दधिक्रादेव पाप रहित करें ॥३ ॥

३४९२. दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥४ ॥

हम अन्न-प्रदाता, बल-प्रदाता, श्रेष्ठ तथा याजकों का हित करने वाले दधिक्रादेव तथा मरुतों के नाम की प्रार्थना करते हैं। मित्र, वरुण, अग्नि तथा हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव को हम आहूत करते हैं ॥४ ॥

३४९३. इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥५ ॥

जो मनुष्य युद्ध करने के लिए पराक्रम करते हैं तथा जो यज्ञ करने के लिए प्रयत्न करते हैं। वे दोनों ही दधिक्रादेव को इन्द्रदेव के समान आवाहित करते हैं। हे मित्रावरुण ! आपने मनुष्यों को प्रेरित करने वाले द्रुतगामी अश्वरूप दधिक्रादेव को हमारे लिए धारण किया ॥५ ॥

३४९४. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६ ॥

हम विजय से सम्पन्न, व्यापक तथा वेगवान् दधिक्रादेव की प्रार्थना करते हैं। वे हमारी मुख आदि इन्द्रियों को सुरभित (श्रेष्ठ) बनायें तथा हमारी आयु की वृद्धि करें ॥६ ॥

[सूक्त - ४०]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - दधिक्रा, ५ सूर्य । छन्द - जगती, १ त्रिष्टुप् ।]

३४९५. दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥१ ॥

हम दधिक्रादेव की बार-बार प्रार्थना करेंगे। समस्त उषाएँ हमें प्रेरणा प्रदान करें। हम जल, अग्नि, सूर्य, उषा, बृहस्पति तथा आंगिरस जिष्णु की प्रार्थना करेंगे ॥१ ॥

३४९६. सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥२ ॥

शक्तिशाली, भरण-पोषण करने वाले, गौओं को प्रेरित करने वाले, भक्तों के बीच में निवास करने वाले तथा द्रुतगति से गमन करने वाले दधिक्रादेव, उषाकाल में अन्न की कामना करें। सत्यगमनशील, वेगवाले, दूसरों को भी वेग प्रदान करने वाले तथा उछलते हुए गमन करने वाले दधिक्रादेव हमारे निमित्त अन्न, बल तथा हर्ष पैदा करें ॥२ ॥

३४९७. उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३ ॥

जिस प्रकार पक्षियों का अनुगमन उनके पंख करते हैं, उसी प्रकार गमन करने वाले, वेगपूर्वक भागने वाले तथा प्रतिस्पर्धा करने वाले दधिक्रादेव का अनुगमन मनुष्य करते हैं। बाज़ पक्षी के समान गमन करने वाले तथा

सुरक्षा करने वाले दधिक्रादेव के शरीर को एकत्र होकर अन्नादि के लिए सब लोग घेर लेते हैं ॥३ ॥

३४९८. उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४ ॥

वे दधिक्रादेव बलशाली अश्व की तरह काँख तथा मुँह से बँधे होने पर भी अपने रिपुओं की ओर तीव्र गति से गमन करते हैं । वे अत्यधिक शक्तिशाली होकर यज्ञों का अनुगमन करके, कुटिल मार्गों को पार कर जाते हैं ॥ ४ ॥

३४९९. हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५ ॥

हंस (सूर्य) तेजोमय आकाश में एवं वसु (वायु) अन्तरिक्ष में अवस्थित हैं । होता (अग्नि) वेदिका पर अतिथि की तरह पूज्य होकर घरों में वास करते हैं । ऋत (सत्य या ब्रह्म) का वास मनुष्यों, वरणीय स्थानों, यज्ञस्थल एवं अन्तरिक्ष में होता है । वे जल में, रश्मियों में, सत्य एवं पर्वतों में उत्पन्न हुए हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४१]

। **ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।

३५००. इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँअमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥१ ॥

हे इन्द्र तथा वरुणदेवो ! हमारे द्वारा विवेकपूर्वक तथा विनम्रतापूर्वक उच्चारित किया हुआ कौन-सा स्तोत्र है, जो आपके हृदय को स्पर्श कर सके ? हे इन्द्र तथा वरुण देवो ! अविनाशी तथा आहुति से सम्पन्न अग्नि के सदृश प्रदीप्त वह स्तोत्र आपके अन्तः स्थल में प्रवेश करे ॥१ ॥

३५०१. इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२ ॥

जो व्यक्ति आहुति से सम्पन्न होकर इन्द्र तथा वरुण दोनो देवताओं की मित्रता को प्राप्त करने के लिए उनको अपना बन्धु बनाता है, वह व्यक्ति अपने पापों को विनष्ट करता है, युद्ध में रिपुओं का विनाश करता है तथा महान् सुरक्षा प्राप्त करने के कारण विख्यात होता है ॥२ ॥

३५०२. इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३ ॥

हे विख्यात इन्द्र तथा वरुणदेवो ! आप दोनों देव, हम स्तोता मनुष्यों के निमित्त मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों । यदि आप दोनों परस्पर मित्र हैं और मित्रता के लिए अभिषुत सोमरस तथा उत्तम अन्नों से हर्षित है, तो हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥३ ॥

३५०३. इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४ ॥

हे पराक्रमी इन्द्र तथा वरुणदेवो ! जो हमारे अकल्याण करने वाले अदाता तथा हिंसक हैं; आप दोनों अपने विनाशकारी तेज को उन पर प्रकट करें । आप दोनों इस शत्रु के ऊपर अपने तेजस्वी तथा अत्यधिक ओजस्वी वज्र से प्रहार करें ॥४ ॥

३५०४. इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५ ॥

हे इन्द्र तथा वरुणदेवो ! जिस प्रकार वृषभ गाय से प्रीति करते हैं, उसी प्रकार आप दोनों हमारी प्रार्थनाओं के प्रेमी हों । जैसे एक महान् गाय घास आदि खाकर सहस्र धाराओं वाले दुग्ध को दोहन के लिए प्रस्तुत रहती है, उसी प्रकार वे प्रार्थनाएँ हमारी अभिलाषाओं को पूर्णता प्रदान करें ॥५ ॥

३५०५. तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप अपने रक्षण - साधनों से सम्पन्न होकर रिपुओं का विनाश करने के लिए रात्रि में भी तैयार रहें, जिससे हम लोग पुत्र-पौत्र और उपजाऊ जमीन से लाभान्वित हो सकें । लम्बे समय तक सूर्यदेव का दर्शन कर सकें तथा सन्तान उत्पन्न करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें ॥६ ॥

३५०६. युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! गौओं की कामना करने वाले हम मनुष्य आप दोनों के पुरातन संरक्षण की अभिलाषा करते हैं । आप दोनों बलशाली, पराक्रमी तथा अत्यन्त वन्दनीय हैं । हम मनुष्य आप दोनों के समीप हर्षप्रदायक, पिता के समान मित्रता तथा प्रेम की प्रार्थना करते हैं ॥७ ॥

३५०७. ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८ ॥

हे श्रेष्ठ फल प्रदाता इन्द्र तथा वरुणदेवो ! जिस प्रकार आपके उपासक युद्ध में अपनी सुरक्षा के लिए आपके समीप आगमन करते हैं, उसी प्रकार रक्षण और धन आदि की अभिलाषा करने वाली हमारी प्रार्थनाएँ आपके समीप गमन करती हैं । जिस प्रकार गौएँ तेज की अभिवृद्धि के निमित्त सोमरस के समीप गमन करती हैं, उसी प्रकार विवेकपूर्वक की गई हमारी प्रार्थनाएँ आप दोनों के समीप गमन करें ॥८ ॥

३५०८. इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९ ॥

जिस प्रकार ऐश्वर्य की कामना करने वाले लोग धनिक के समीप गमन करते हैं, उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाएँ, ऐश्वर्य-लाभ की कामना से इन्द्र और वरुणदेवों के समीप गमन करती हैं । जिस प्रकार अन्न की याचना करने वाले भिक्षुक दानियों के समीप गमन करते हैं, उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाएं इन्द्र तथा वरुणदेवो के समीप गमन करती हैं ॥९ ॥

३५०९. अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१० ॥

हम लोग अपने बल के द्वारा ही अश्वों, रथों, पोषक - पदार्थों तथा अविनाशी ऐश्वर्यों के अधिपति हों । गमनशील वे दोनों देव अपने नये रक्षण साधनों के द्वारा हमें अश्वों तथा धनों से संयुक्त करें ॥१० ॥

३५१०. आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद्दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान्तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥११ ॥

हे महान् इन्द्र तथा वरुणदेवो ! संग्राम में आप हमारी सुरक्षा के लिए अपने बृहत् रक्षण साधनों से सम्पन्न होकर हमारे समीप पधारें । जिन संग्रामों में शत्रु-सेना के हथियार क्रीड़ा करते हैं, उन संग्रामों में आप दोनों की अनुकम्पा से हम लोग विजय प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य । **देवता** - त्रसदस्यु (आत्मस्तुति) ; ७ - १० इन्द्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५११. **मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।**
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥१ ॥

हम क्षत्रिय जाति में उत्पन्न तथा समस्त मनुष्यों के राजा हैं । हमारे दो तरह के राष्ट्र हैं । जिस प्रकार समस्त देवता हमारे हैं, उसी प्रकार समस्त मनुष्य भी हमारे ही हैं । हम सौन्दर्यवान् तथा समीपस्थ वरुण हैं । समस्त देवता हमारे यज्ञ की परिचर्या करते हैं । हम मनुष्यों के भी शासक हैं ॥१ ॥

३५१२. **अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।**
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२ ॥

हम ही अधिपति वरुण हैं । समस्त देवता हमारे ही महान् सामर्थ्य को धारण करते हैं, हम सौन्दर्यवान् तथा समीपस्थ वरुण हैं । समस्त देवता हमारे यज्ञ की परिचर्या करते हैं और हम मनुष्यों के भी स्वामी हैं ॥२ ॥

३५१३. **अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गभीरे रजसी सुमेके ।**
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥३ ॥

हम ही इन्द्र तथा वरुण हैं । अपनी महानता के कारण विस्तृत, गम्भीर तथा श्रेष्ठ रूप वाली द्यावा-पृथिवी हम ही हैं । हम मेधावी हैं । हम त्वष्टा देवता की तरह समस्त भुवनों को प्रेरित करते हैं तथा द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं ॥३ ॥

३५१४. **अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।**
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥४ ॥

हमने ही सिंचनीय जल की वर्षा की है तथा जल के स्थानभूत स्वर्ग लोक में आदित्य की स्थापना की है । हम अदिति के पुत्र जल के लिए यज्ञवान् हुए हैं । हमने ही तीन भुवनों वाली सृष्टि को विस्तारित किया है ॥४ ॥

३५१५. **मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।**
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५ ॥

हम ही श्रेष्ठ अश्वों वाले तथा युद्ध करने वाले योद्धा आहूत करते हैं । वे वीर युद्ध में रिपुओं से आवृत हो जाने पर हमें ही आहूत करते हैं । हम धनवान् इन्द्रदेव के रूप में युद्ध करते हैं । हम पराजित करने वाले बल से सम्पन्न होकर धूल उड़ाते हैं ॥५ ॥

३५१६. **अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।**
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६ ॥

हमने ही समस्त लोकों का सृजन किया है । हम कहीं भी न रुकने वाले दैव-बल से सम्पन्न हैं । कोई भी हमें रोक नहीं सकता । जब सोमरस तथा स्तोत्र हमें हर्षित करते हैं, तब असीम द्यावा-पृथिवी भयभीत हो जाती है ॥६ ॥

३५१७. विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! आपके कर्म को समस्त लोक जानते हैं । हे स्तुति करने वालो ! आप वरुणदेव की प्रार्थना करें । हे इन्द्रदेव ! आपने रिपुओं का संहार किया है, इसलिए आप विख्यात हैं । आपने अवरुद्ध की हुई नदियों को प्रवाहित किया है ॥७ ॥

३५१८. अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥८ ॥

'दुर्गह' के पुत्र पुरुकुत्स को बाँध दिये जाने पर इस राष्ट्र का पालन करने वाले सप्त ऋषि हुए थे । उन्होंने इन्द्र और वरुणदेवों की अनुकम्पा से पुरुकुत्स की स्त्री के लिए यजन किया तथा त्रसदस्यु को उपलब्ध किया । वह त्रसदस्यु इन्द्रदेव के सदृश रिपुओं के संहारक तथा वे देवों के अर्धभूत(समीपस्थ) इन्द्रदेव के समान थे ॥८ ॥

३५१९. पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥९ ॥

हे इन्द्रावरुणो !ऋषियों के द्वारा प्रेरणा दिये जाने पर पुरुकुत्स की स्त्री ने आपको आहुतियों तथा प्रार्थनाओं से हर्षित किया था । इसके पश्चात् आप दोनों ने उसे रिपु संहारक अर्धदेव राजा त्रसदस्यु को प्रदान किया था ॥९ ॥

३५२०. राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥१० ॥

सत्य का विस्तार करने वाले हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की तृप्ति के लिये सोमरस प्रस्तुत है । यज्ञशाला में पधारें, हम आपका आवाहन करते हैं । हे सोम ! उपयाम पात्र में इन्द्र और वरुण देवों के लिए ही आपको नियमानुसार तैयार किया है, उन्हीं के निमित्त समर्पित करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ४३]

| **ऋषि** - पुरुमीळ्ह सौहोत्र और अजमीळ्ह सौहोत्र । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।|

३५२१. क उ श्रवत्कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१ ॥

यजनीय देवताओं के बीच में कौन देवता हमारी स्तुति सुनेंगे ? कौन से देवता वन्दन योग्य स्तोत्रों का सेवन करेंगे ? देवताओं के बीच में किस देवता के लिए हम अत्यन्त प्रिय, प्रकाशमान तथा हवि युक्त प्रार्थना करें ॥१ ॥

३५२२. को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥२ ॥

कौन से देव हम मनुष्यों को हर्षित करते हैं तथा हमारे यज्ञ मण्डप में पधारने के लिए सबसे ज्यादा आतुरता प्रकट करते हैं ? देवताओं के बीच में कौन से देवता हम मनुष्यों को सबसे ज्यादा हर्षित करते हैं ? किसका रथ द्रुतगामी तथा वेगवान् अश्वों से सम्पन्न है, जिसको सूर्य की पुत्री ने स्वीकार किया था ? ॥२ ॥

३५२३. मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३ ॥

हे दिव्य और श्रेष्ठ पर्ण वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों द्युलोक से पधारने वाले हैं । अनेक बलों में किस बल के कारण आप अत्यधिक बलशाली बन जाते हैं ? रात्रि में आप इन्द्रदेव के समान बल प्रकट करते हैं । अभिषवण काल में होने वाले कार्यों के प्रति आप अतिशीघ्र गमन करते हैं ॥३ ॥

३५२४. का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४ ॥

हे मधुर स्वभाव वाले तथा रिपुओं का विनाश करने वाले अश्विनीकुमारो ! कौन-सी प्रार्थना आप दोनों के अनुकूल होगी ? आप किस स्तुति से आहूत किये जाने पर हमारे समीप पधारेंगे । आपके अत्यधिक क्रोध को कौन व्यक्ति सहन कर सकता है ? अपने रक्षण के साधनों द्वारा आप हमारी सुरक्षा करें ॥४ ॥

३५२५. उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो !आप दोनों का विशाल रथ द्युलोक में चारों ओर गमन करता है ।वह समुद्र से आपकी ओर पधारता है ।आप दोनो के निमित्त परिपक्व जौ के साथ सोमरस संयुक्त हुआ है ।हे मधुर जल को पैदा करने वाले तथा रिपुओं के विनाशक अश्विनीकुमारो !याजकगण आपके लिए सोमरस में दूध मिश्रित कर रहे हैं ॥५ ॥

३५२६. सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान्घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६ ॥

विशाल नदी ने आपके अश्वों का रसयुक्त जल के द्वारा सिंचन किया है । पक्षी के सदृश द्रुतगामी, प्रकाशवान् तथा रक्त वर्ण वाले घोड़े चारों तरफ गमन करते हैं । आपका वह द्रुतगामी रथ विख्यात है, जिसके द्वारा आप दोनों सूर्या का पालन करने वाले बनते हैं ॥६ ॥

३५२७. इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥

हे शक्तिरूपी अन्न को अपने समीप रखने वाले अश्विनीकुमारो ! समान विचार वाले आप दोनों के लिए हम स्तुतियाँ समर्पित करते हैं । वे श्रेष्ठ स्तुतियाँ हम याजकों के लिए फल देने वाली हों । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी सुरक्षा करें । हमारी कामनाएँ आपकी ओर गमन करती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि** - पुरुमीळ्ह सौहोत्र और अजमीळ्ह सौहोत्र । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३५२८. तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आज हम आपके प्रसिद्ध वेगवाले तथा गौ प्रदान करने वाले रथ को आहूत करते हैं । काष्ठ स्तम्भयुक्त वह रथ सूर्या को भी धारण करता है । वह स्तुतियों को ढोने वाला, विशाल तथा ऐश्वर्यवान् है ॥१॥

३५२९. युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२ ॥

हे द्युलोक को रोकने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों देवता हैं । आप दोनों उस श्रेष्ठता को अपने बल के

द्वारा प्राप्त करते हैं । जब विशाल अश्वों वाले रथ आपको वहन करते हैं, तब आप दोनों के शरीर को सोमरस पुष्ट करता है ॥२ ॥

३५३०. को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कै: ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३ ॥

कौन से सोमरस प्रदाता आज अपनी सुरक्षा के लिए अथवा अभिषुत सोमरस को पीने के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं ? नमन करने वाले कौन लोग आप दोनों को यज्ञ के लिए प्रवृत्त करते हैं ॥३ ॥

३५३१. हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥४ ॥

हे अनेकों प्रकार से अपनी सत्ता को प्रकट करने वाले तथा सत्य का पालन करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों इस यज्ञ में स्वर्णिम रथ द्वारा पधारें, मधुर सोमरस पियें तथा पुरुषार्थी मनुष्यों को मनोहर ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

३५३२. आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५ ॥

श्रेष्ठ, स्वर्णिम रथ द्वारा आप दोनों द्युलोक अथवा भूलोक से हमारी तरफ पधारें । आपके अभिलाषी अन्य याजक आपको बीच में ही अवरुद्ध न कर सकें, क्योंकि पुरातनकाल से ही हमने स्तुतियाँ प्रस्तुत की हैं ॥५ ॥

३५३३. नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६ ॥

हे रिपुओं के संहारक अश्विनीकुमारो ! आप अनेक वीरों से सम्पन्न प्रचुर ऐश्वर्य को हम दोनों के लिए प्रदान करें । हे अश्विनीकुमारो ! पुरुमीळ्ह के स्तोताओं ने आपको स्तुति द्वारा प्राप्त किया है और अजमीळ्ह के स्तोताओं की प्रशंसा भी उसी के साथ सम्मिलित है ॥६ ॥

३५३४. इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७ ॥

हे शक्तिरूप अन्न को अपने समीप रखने वाले अश्विनीकुमारो ! समान विचार वाले आप दोनों के लिए हम स्तुतियाँ समर्पित करते हैं । वे श्रेष्ठ स्तुतियाँ हम याजकों के लिए फल देने वाली हों । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी सुरक्षा करें । हमारी कामनाएँ आपकी ओर गमन करती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - जगती; ७ त्रिष्टुप् ।]

३५३५. एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥१ ॥

प्रकाशमान सूर्यदेव उदित होते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के रथ चारों ओर विचरण करते हैं । वे रथ आलोकमान सूर्यदेव के साथ ऊँचे स्थान (द्युलोक) में मिलते हैं । इस रथ के ऊपर जोड़े से तीन प्रकार के अन्न रखे हैं तथा सोमरस का चौथा पात्र विशेष रूप से सुशोभित होता है ॥१ ॥

३५३६. उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२ ॥

उषाओं के उदित होने पर मधुरअन्न तथा अश्वों से सम्पन्न आपके रथ, चारों तरफ विद्यमान तमिस्रा को नष्ट करते हुए, सूर्यदेव के समान प्रदीप्त तेज को चारों तरफ फैलाते हुए ऊर्ध्वमुखी होकर विचरण करते हैं ॥२ ॥

३५३७. मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप मधुर रस का पान करने वाले मुख के द्वारा सोमरस का पान करें तथा मधुर रस को प्राप्त करने के लिए अपने प्रिय रथ को अश्वों से नियोजित करके याजक के घर पधारें । आप दोनों जाने के मार्ग को मधुर रस से परिपूर्ण करें तथा सोमरस से पूर्ण पात्र को धारण करें ॥३ ॥

३५३८. हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४ ॥

आप लोगों के द्रुतगामी, मधुरतायुक्त, विद्रोह न करने वाले, स्वर्णिम पंखों वाले, उषाकाल में जागने वाले, दूर तक गमन करने वाले, पसीने की बूंदों को गिराने तथा हर्षित करने वाले अश्व आपको वहन करते हैं । जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु की ओर गमन करती हैं, उसी प्रकार आप हमारे सवनों में आगमन करते हैं ॥४ ॥

३५३९. स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५ ॥

जब कार्य पूरा करने वाले मेधावी याजक मन्त्रपूरित जल के द्वारा हाथ को पवित्र करते हुए, पाषाणों से कूटकर मधुर सोमरस अभिषुत करते हैं, तब प्रत्येक उषाकाल में मधुरता युक्त, श्रेष्ठ अहिंसित कर्म करने वाले, अग्नि के सदृश तेजस्वी याजक अश्विनीकुमारों की प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

३५४०. आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६ ॥

निकट में अवतरित होने वाली किरणें दिन के द्वारा तमिस्रा को नष्ट करती हुई, सूर्यदेव के समान प्रदीप्त तेज को फैलाती हैं । अश्वों को नियोजित करते हुए सूर्यदेव भी गमन करते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी धारक शक्ति के द्वारा समस्त मार्गों को अनुक्रम से बतलाते हैं ॥६ ॥

३५४१. प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम स्तोता आप दोनों की प्रार्थना करते हैं । आप दोनों के श्रेष्ठ अश्वों वाला, कभी जीर्ण न होने वाला रथ; जिसके द्वारा पल भर में आप तीनों लोकों का परिभ्रमण करते हैं, उसी के द्वारा आप हवि वाले, शीघ्र गमन करने वाले तथा भोजन प्रदान करने वाले यज्ञ में आगमन करें ॥७ ॥

[सूक्त - ४६]

। ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - इन्द्रवायु; १ वायु । छन्द - गायत्री ।

३५४२. अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥१ ॥

हे वायु देवता ! यज्ञों मे आसीन होकर आप, निचोड़े गये मधुर सोमरस का सर्वप्रथम पान करें; क्योंकि आप सबसे पहले सोमरस का पान करने वाले हैं ॥१ ॥

३५४३. शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः । वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥२ ॥

हे वायु देवता ! आप श्रेष्ठ अश्वों वाले हैं और इन्द्रदेव आपके सारथि हैं । आप कामनाओं को पूर्ण करने के लिए सैकड़ों अश्वों द्वारा हमारे समीप पधारें । आप तथा इन्द्रदेव अभिषुत सोमरस का पान करें ॥२ ॥

३५४४. आ वां सहस्रं हरय इन्द्रवायू अभि प्रयः । वहन्तु सोमपीतये ॥३ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों को हजारों संख्या वाले घोड़े द्रुतगति से सोम पान के लिए ले आएँ ॥३ ॥

३५४५. रथं हिरण्यवन्धुरमिन्द्रवायू स्वध्वरम् । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥४ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों सोने से जड़े हुए, यज्ञ को भली-प्रकार सिद्ध करने वाले तथा अंतरिक्ष को स्पर्श करने वाले रथ पर आकर आसीन होते हैं ॥४ ॥

३५४६. रथेन पृथुपाजसा दाश्वांसमुप गच्छतम् । इन्द्रवायू इहा गतम् ॥५ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों अत्यधिक सामर्थ्यशाली रथ के द्वारा हविप्रदाता यजमान के निकट गमन करें तथा इस यज्ञ मण्डप में पधारें ॥५ ॥

३५४७. इन्द्रवायू अयं सुतस्तं देवेभिः सजोषसा । पिबतं दाशुषो गृहे ॥६ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! यह सोमरस आपके लिए अभिषुत किया गया है । देवताओं के साथ समान रूप से स्नेह करने वाले होकर आप दोनों हविप्रदाता यजमान के यज्ञ मण्डप में उसका पान करें ॥६ ॥

३५४८. इह प्रयाणमस्तु वामिन्द्रवायू विमोचनम् । इह वां सोमपीतये ॥७ ॥

हे इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों का इस यज्ञ मे पदार्पण हो । यहाँ पधार कर सोमपान के निमित्त आप दोनों अपने अश्वों को मुक्त करें ॥७ ॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्रवायु; १ वायु । **छन्द** - अनुष्टुप ।]

३५४९. वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१ ॥

हे वायो ! निर्दोष हम, आपके लिए यज्ञ मे सर्वप्रथम सोमरस भेंट करते हैं । हे देव ! आदर के योग्य आप नियुत (नामक) अश्व पर बैठ कर सोमपान के निमित्त पधारें ॥१ ॥

३५५०. इन्द्रश्च वायवेषां सोमानां पीतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२ ॥

हे वायु और इन्द्रदेवो ! आप दोनों सोमपान की पात्रता से युक्त हैं, इसीलिए नीचे की ओर जलधारा के समान ही आप दोनों तक सोमरस के प्रवाह पहुँचते हैं ॥२ ॥

३५५१. वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३ ॥

हे वायु और इन्द्रदेवो ! आप दोनों बल के स्वामी और सामर्थ्यवान् हैं । नियुत नामक घोड़े से युक्त आप

दोनों ही हमारी रक्षा के लिए सोमरस पान हेतु एक साथ पधारें ॥३ ॥

३५५२. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४ ॥

हे नायक तथा यज्ञ सम्पादक इन्द्र और वायुदेवो ! आप दोनों के पास अनेकों द्वारा कामना किये जाने योग्य जो अश्व हैं, उन अश्वों को मुझ दानदाता यजमान को प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - वायु । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

३५५३. विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१ ॥

हे वायुदेव ! रिपुओं को प्रकम्पित करने वाले योद्धा की तरह अन्यों के द्वारा न पिये गये सोमरस का आप पान करें तथा स्तोताओं के ऐश्वर्य की वृद्धि करें । हे वायुदेव ! आप सोमरस पीने के लिए शीतलतादायक रथ द्वारा आगमन करें ॥१ ॥

३५५४. निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२ ॥

हे वायुदेव ! आप वर्णन न किये जाने योग्य, तरुणता से युक्त अश्वों को नियोजित करते हैं । इन्द्रदेवता आपके सारथि हैं । हे वायुदेव ! आप सोमरस पीने के लिए तेजस्वी रथ द्वारा पधारें ॥२ ॥

३५५५. अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३ ॥

हे वायुदेव ! काले रंगों वाली, ऐश्वर्यों को धारण करने वाली, बहुत रूपों वाली द्यावा-पृथिवी आपका ही अनुगमन करती हैं । आप सोमरस पान के निमित्त तेजस्वी रथ द्वारा पधारें ॥३ ॥

३५५६. वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४ ॥

हे वायुदेव ! मन के समान वेग वाले, परस्पर नियोजित होने वाले निन्यानवे घोड़े आपको ले जाते हैं । हे वायुदेव ! आप तेजस्वी रथ द्वारा सोमपान के निमित्त पधारें ॥४ ॥

३५५७. वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥५ ॥

हे वायुदेव ! आप अपने सैकड़ों संख्या वाले पोषण योग्य अश्वों को रथ में नियोजित करें । आपके हजारों अश्वों वाले रथ वेगपूर्वक पधारें ॥५ ॥

[सूक्त - ४९]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - इन्द्राबृहस्पती । **छन्द** - गायत्री ।]

३५५८. इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥१ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! यह स्नेह युक्त आहुतियाँ हम आपके मुख (यज्ञाग्नि) में समर्पित करते हैं । आप दोनों को हम स्तोत्र तथा हर्षप्रदायक सोमरस प्रदान करते हैं ॥१ ॥

३५५९. अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! आपके हर्ष के लिए तथा सोमरस पान के लिए यह मनोहर सोमरस अभिषुत किया जाता है ॥२ ॥

३५६०. आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥३ ॥

हे सोमपान करने वाले इन्द्र तथा बृहस्पतिदेवो ! सोमरस पान के निमित्त आप तथा इन्द्रदेव हमारे घर में पधारें ॥३ ॥

३५६१. अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! आप हमें सैकड़ों गौओं तथा हजारों अश्वों से सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करें ॥४ ॥

३५६२. इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! सोमरस के निचोड़े जाने पर हम सोमरस के निमित्त प्रार्थनाओं द्वारा आपको आवाहित करते हैं ॥५ ॥

३५६३. सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पतिदेवो ! आप दोनों हवि प्रदाता यजमान के गृह में सोमपान करें तथा उसके गृह में वास करके हर्षित हों ॥६ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - बृहस्पति; १०-११ इन्द्राबृहस्पती । छन्द - त्रिष्टुप्; १० जगती ।]

३५६४. यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१ ॥

तीनों लोकों में निवास करने वाले जिन बृहस्पतिदेव ने धरती की दशों दिशाओं को स्तम्भित किया, उन मीठी बोली वाले बृहस्पतिदेव को पुरातन ऋषियों तथा तेजस्वी विद्वानों ने पुरोभाग में स्थापित किया ॥१ ॥

३५६५. धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जिनकी गति रिपुओं को प्रकम्पित करने वाली है, जो आपको आनन्दित करते हैं तथा आपकी प्रार्थना करते हैं; उनके लिए आप फल प्रदान करने वाले, वृद्धि करने वाले तथा हिंसा न करने वाले होते हैं । आप उनके विस्तृत यज्ञ को सुरक्षा प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३५६६. बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! दूरवर्ती प्रदेश में जो अत्यधिक श्रेष्ठ स्थान है, वहाँ से आपके अश्व यज्ञ में पधारते हैं । जिस प्रकार गहरे जलकुण्ड से जल स्रवित होता है, उसी प्रकार आपके चारों ओर प्रार्थनाओं के साथ पत्थरों द्वारा निचोड़ा गया सोम, मधुर रस का अभिषिंचन करता है ॥३ ॥

३५६७. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४ ॥

सप्त छन्दोमय मुख वाले, बहुत प्रकार से पैदा होने वाले तथा सप्त रश्मियों वाले बृहस्पतिदेव, महान् सूर्यदेव के परम आकाश में सर्वप्रथम उत्पन्न होकर अपनी ज्योति के द्वारा तमिस्रा को नष्ट करते हैं ॥४ ॥

३५६८. स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५ ॥

बृहस्पतिदेव ने तेजस्वी तथा प्रार्थना करने वाले अंगिरागणों के साथ ध्वनि के द्वारा मेघ और बल नामक राक्षस का वध किया। उन्होंने हवि प्रेरित करने वाली तथा रँभाने वाली गौओं को ध्वनि करते हुए बाहर निकाला ॥५ ॥

३५६९. एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६ ॥

इस प्रकार सबके पालनकर्त्ता, समस्त देवों के स्वामी तथा बलशाली बृहस्पतिदेव की हम लोग यज्ञों, आहुतियों तथा प्रार्थनाओं के द्वारा सेवा करेंगे। हे बृहस्पतिदेव ! उनके प्रभाव से हम लोग श्रेष्ठ सन्तानों तथा पराक्रम से सम्पन्न ऐश्वर्य के स्वामी हो सकें ॥६ ॥

३५७०. स इद्राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥७ ॥

जो शासक सर्वप्रथम श्रेष्ठ, पोषक वस्तुओं के द्वारा बृहस्पतिदेव का सत्कार करते हैं, प्रार्थना करते हैं तथा नमन करते हैं। वे शासक समस्त शत्रुओं के बल को अपनी सामर्थ्य के द्वारा जीत लेते हैं ॥७ ॥

३५७१. स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८ ॥

जिस शासक के शासन में ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सबसे वन्दनीय होकर अग्रगमन करते हैं, वही शासक भली-प्रकार तुष्ट होकर अपने घर में निवास करता है। उसके लिए धरती सभी समय में फल उत्पन्न करती है। उसके सामने प्रजाएँ स्वयं ही सम्मानपूर्वक नमन करती हैं ॥८ ॥

३५७२. अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९ ॥

जो राजा सुरक्षा की कामना करने वाले ब्रह्मज्ञानी को ऐश्वर्य आदि प्रदान करके उसकी सुरक्षा करते हैं, उस राजा को देवता लोग संरक्षित करते हैं तथा वे अप्रतिहत रूप से रिपुओं तथा प्रजाओं के ऐश्वर्य को विजित करते हुए महान् बनते हैं ॥९ ॥

३५७३. इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१० ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप तथा इन्द्रदेव इस यज्ञ में हर्षित होकर याजकों को ऐश्वर्य प्रदान करें। सब जगह विद्यमान रहने वाले सोमरस आप दोनों के अन्दर प्रवेश करें। आप हमें पराक्रमी सन्तानों से सम्पन्न धन प्रदान करें ॥१० ॥

३५७४. बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥११ ॥

हे बृहस्पति और इन्द्रदेवो ! आप दोनों हमें संवर्द्धित करें । आप दोनों ही हमारे यज्ञ का संरक्षण करें तथा हमारी मेधा को जाग्रत् करें । आपकी प्रार्थना करने वाले हम याजकों के रिपुओं का आप विनाश करें ॥११ ॥

[सूक्त - ५१]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - उषा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३५७५. इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥१ ॥

वह अत्यधिक विशाल तथा कर्मों में मनुष्यों को संलग्न करने वाला कांतिमान् तेज, पूर्व दिशा में तमिस्रा के बीच से ऊपर निकल रहा है । निश्चित रूप से सूर्य की पुत्री तथा दीप्तिमती उषाएँ याजकों के जाने के लिए मार्ग बता रही हैं ॥१ ॥

३५७६. अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥२ ॥

जिस प्रकार यज्ञ मण्डप में यूप खड़े रहते हैं, उसी प्रकार मनोहारिणी उषाएँ पूर्व दिशा में संव्याप्त हो रही हैं । वे उषाएँ गौओं के गोष्ठों के तमिस्रामय द्वारों को उद्घाटित करती हैं और अपने शुद्ध - विमल प्रकाश से संसार को व्यापती हैं ॥२ ॥

३५७७. उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३ ॥

आज अंधकार का निवारण करने वाली तथा ऐश्वर्य वाली उषाएँ भोजनदाता को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए जाग्रत् करती हैं । न जाग्रत् होने वाले जो कंजूस वणिक हैं, वे अत्यधिक अंधकार में सोते रहें ॥३ ॥

३५७८. कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४ ॥

हे देवी उषाओ ! आप लोगों का वह पुरातन अथवा नवीन रथ आज इस यज्ञ में अनेकों बार गमन करता रहे । उस रथ के द्वारा नवग्व, दशग्व तथा सप्त मुख वाले अंगिरागणों (सात छन्द युक्त मुख वाले) के निमित्त आप ऐश्वर्य - सम्पन्न होकर प्रकाशित होती रहें ॥४ ॥

३५७९. यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५ ॥

हे देवी उषाओ ! आप यज्ञ में गमन करने वाले घोड़ों के द्वारा समस्त लोकों में चारों तरफ विचरण करती रहें तथा निद्राग्रस्त दो पैर वाले (मनुष्यों) और चार पैर वाले (पशुओं) जीवों को परिभ्रमण करने के लिए जाग्रत् करती रहें ॥५ ॥

३५८०. क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६ ॥

जिन उषाओ के निमित्त ऋभुओं ने चमस आदि विनिर्मित किया था, वे पुरानी उषाएँ कौन सी और कहाँ हैं ? जब प्रदीप्त उषाएँ सौन्दर्य को प्रदर्शित करती हैं, तब नित्य नूतन होने पर एक रूप होकर रहती हैं । इसमें से कौन नयी और कौन पुरानी हैं, यह पता नहीं लगता ॥६ ॥

३५८१. ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७ ॥

याज्ञिकगण जिन उषाओं का उक्थों स्तोत्रों द्वारा स्तवन करके तत्काल ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, वे ही हित करने वाली उषाएँ प्राचीन काल से ही, पहुँचते ही ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं । वे यज्ञ के निमित्त प्रकट हुई हैं तथा सत्य परिणाम प्रदान करती हैं ॥७ ॥

३५८२. ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८ ॥

वे उषाएँ समान रूप से पूर्व दिशा में चारों ओर विस्तृत हो रही हैं । वे एक जैसी उषाएँ समान आकाश के स्थान से फैलती हैं और यज्ञ स्थान को ज्ञापित करती हैं । वे देवी उषाएँ गौओं के झुण्ड के सदृश प्रशंसित होती हैं ॥८ ॥

३५८३. ता इन्न्वे३व समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥९ ॥

वे उषाएँ एक जैसी रंग-रूप वाली तथा अपरिमित रंगों से सम्पन्न होकर संचरित होती हैं । वे विस्तृत तमिस्रा को आच्छादित (निरस्त) कर देती हैं तथा अपने कान्तिपूर्ण शरीरों के द्वारा पवित्र प्रकाश को और भी देदीप्यमान कर देती हैं ॥९ ॥

३५८४. रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१० ॥

हे द्युलोक की दुहिता उषाओ ! आप द्योतमान् देवियाँ हैं । आप हम लोगों को सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । हे देवियो ! हम मनुष्य हर्ष प्राप्ति के लिए आपसे निवेदन करते हैं, जिससे हम लोग श्रेष्ठ सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य के स्वामी हो सकें ॥१० ॥

३५८५. तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११ ॥

हे प्रकाशमान सूर्य-पुत्री उषाओ ! हम याजक यज्ञ के निदेशक हैं । आपके समीप हम लोग स्तुति करते हैं, जिससे मनुष्यों के बीच में हम लोग यश तथा अन्न के अधिपति हो सकें । हमारी उस कामना को द्यावा-पृथिवी सफल करें ॥११ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - उषा । **छन्द** - गायत्री ।]

३५८६. प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१ ॥

सब प्राणियों की प्रेरक, फल प्रदायक, अपनी बहिन के तुल्य रात्रि के अन्त में प्रकाश फैलाने वाली सूर्य पुत्री उषा को सब देखते हैं ॥१ ॥

३५८७. अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२ ॥

चपला (बिजली) के समान अद्‌भुत दीप्तिमान् किरणों की माता, यज्ञ आरम्भ करने वाली उषा अश्विनीकुमारों की मित्र है ॥२ ॥

[अश्विनीकुमार रोगों का उपचार करते हैं, उषा इस कार्य में सहायक है ।]

३५८८. उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३ ॥

आप अश्विनीकुमारों की मित्र हैं और दीप्तिमान् रश्मियों की रचयित्री हैं, इसलिए हे उषा देवि ! आप स्तुति योग्य हैं ॥३ ॥

३५८९. यावयद्‌द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि । प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥४ ॥

हे मधुर बोलने वाली उषा देवि ! आप रिपुओं को अलग करने वाली हैं । आप ज्ञान सम्पन्न हैं । स्तुतियों के द्वारा हम आपको जाग्रत् करते हैं ॥४ ॥

३५९०. प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः । ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५ ॥

हितकारी रश्मियाँ गौओं के समूह के समान दिखायी पड़ रही हैं । वे देवी उषा विशेष तेजस् को सब जगह भर देती हैं ॥५ ॥

३५९१. आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६ ॥

हे दीप्तिमती उषा देवि ! आप संसार को तेज के द्वारा पूर्ण करने वाली हैं, अंधकार को प्रकाश के द्वारा दूर करने वाली हैं । इसके बाद आप अपनी धारण करने वाली शक्ति को संरक्षित करने वाली हों ॥६ ॥

३५९२. आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् । उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७ ॥

हे उषा देवि ! आप अपनी रश्मियों के द्वारा द्युलोक को पूर्ण कर देती हैं तथा पवित्र प्रकाश के द्वारा प्रीतियुक्त विशाल आकाश को भी पूर्ण कर देती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ५३]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - सविता । छन्द - जगती ।]

३५९३. तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१ ॥

हम प्राण शक्ति प्रदाता तथा मेधावी सविता देव के उस वरण करने योग्य तथा श्रेष्ठ तेज की कामना करते हैं, जिस तेजस् के द्वारा वे हविप्रदाता यजमान को हर्ष प्रदान करते हैं । वे महान् सवितादेव हमें उस तेज को प्रदान करते हुए निशा के अवसान के समय उदित होते हैं ॥१ ॥

३५९४. दिवो धर्त्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत्सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥२ ॥

द्युलोक के धारक, समस्त भुवनों की प्रजाओं के पालक तथा विद्वान् सवितादेव अपने स्वर्णिम कवच को उतारते हैं । सबको देखने वाले सवितादेव अपने तेजस् को प्रकट करते हुए समस्त जगत् को परिपूर्ण करते हैं, तथा प्रार्थना के योग्य प्रचुर सुख को उत्पन्न करते हैं ॥२ ॥

३५९५. आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे।
प्र बाहू अस्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥३॥

वे सवितादेव अपने तेजस् द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को पूर्ण करते हैं और अपने कर्म की सराहना करते हैं। वे जगत् को अपने कर्म में नित्य प्रति स्थापित करते हैं तथा प्रेरित करते हैं। वे सृजन के लिए अपनी भुजाओं को फैलाते हैं ॥३॥

३५९६. अदाभ्यो भुवनानि प्रचाकशद् व्रतानि देवः सविताभि रक्षते।
प्रास्राग्बाहू भुवनस्य प्रजाभ्यो धृतव्रतो महो अज्मस्य राजति ॥४॥

वे सवितादेव हिंसारहित होकर समस्त लोकों को आलोकित करते हैं तथा सभी व्रतों की सुरक्षा करते हैं। वे समस्त लोकों के मनुष्यों के हित के लिए अपनी भुजाओं को प्रसारित करते हैं। व्रत को धारण करने वाले सवितादेव श्रेष्ठ जगत् के ईश्वर हैं ॥४॥

३५९७. त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना।
तिस्रो दिवः पृथिवीस्तिस्र इन्वति त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना ॥५॥

वे सवितादेव अपने तेजस् के द्वारा अन्तरिक्ष त्रय को परिपूर्ण करते हैं तथा अपनी महिमा द्वारा तीनों लोकों को परिपूर्ण करते हैं। वे सर्वश्रेष्ठ सवितादेव अग्नि, वायु तथा सूर्य को संव्याप्त करते हैं। वे तीन द्युलोक तथा तीन पृथ्वियों को व्याप्त करते हैं। वे अपने तीन व्रतों के द्वारा हमारी सुरक्षा करें ॥५॥

३५९८. बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥६॥

जो अपने पास प्रचुर ऐश्वर्य रखते हैं, सबको उत्पन्न तथा स्थिर करते हैं, स्थावर तथा जंगम को अपने अधीन रखते हैं, वे सवितादेव हमारे पापों को विनष्ट करने के लिए तीनों लोकों के सुख को हमें प्रदान करें ॥६॥

३५९९. आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७॥

उदित होते हुए सवितादेव समस्त ऋतुओं में हमारे सुखों की वृद्धि करें तथा हमें श्रेष्ठ सन्तानों से सम्पन्न अन्न प्रदान करें। वे हम लोगों को रात-दिन समृद्धि से तुष्ट करें तथा हमें प्रजाओं से सम्पन्न धन प्रदान करें ॥७॥

[सूक्त - ५४]

[ऋषि - वामदेव गौतम। देवता - सविता। छन्द - जगती; ६ त्रिष्टुप्।]

३६००. अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥

सवितादेव उदित हो रहे हैं, हम उनकी वन्दना करते हैं। जो मानवों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं तथा हमारे इस यज्ञ में हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं; वे सवितादेव दिन के इस भाग में याजकों के द्वारा प्रशंसनीय होते हैं ॥१॥

३६०१. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥

हे सवितादेव ! उदयकाल में आप यज्ञ के योग्य देवों को अमृतमय सार तत्त्वों का उत्तम भाग प्रदान करते

हैं, फिर उदित होकर दीप्तिमान् रश्मियों को विस्तीर्ण करते हैं और प्राणियों के निमित्त रश्मियों के द्वारा जीवन का विस्तार करते हैं ॥२ ॥

३६०२. अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३ ॥

हे सवितादेव ! हमने भूल से दुर्बलता के कारण , धनाभिमानवश अथवा मनुष्य होने के गर्व से आपके प्रति, देवताओं या मनुष्यों के प्रति जो पाप किया हो, आप इस यज्ञ में हमें उस पाप से मुक्त करें ॥३ ॥

३६०३. न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४ ॥

जिससे समस्त लोकों को धारण करते हैं, सवितादेव की वह सामर्थ्य कभी विनष्ट नहीं होगी । सुन्दर हाथों वाले जो सवितादेव पृथ्वी तथा द्युलोक को विस्तृत होने के निमित्त प्रेरित करते हैं, उन सविता देव का कर्म सत्य है ॥४ ॥

३६०४. इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५ ॥

हे सवितादेव ! अत्यधिक धनवान् इन्द्रदेव हम याजकों के बीच वंदनीय हैं । आप हम मनुष्यों को विशाल पर्वतों से भी अधिक बड़ा बनाएँ । इन याजकों को आप घरों से युक्त स्थान प्रदान करें, जिससे वे आपके जाने के समय आपके द्वारा नियन्त्रित हों तथा आपकी आज्ञा में चलें ॥५ ॥

३६०५. ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६ ॥

हे सवितादेव ! जो याजक आपके लिए नित्य प्रति तीन बार सौभाग्यजनक सोमरस अभिषुत करते हैं । उन याजकों के लिए तथा हमारे लिए, इन्द्रदेव, द्यावा-पृथिवी, जल पूर्ण नदियाँ तथा आदित्यों के साथ अदिति देवी सुख प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ५५]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप्; ८-१० गायत्री ।]

३६०६. को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१ ॥

हे वसुओ ! आप लोगों के बीच में रक्षक कौन है ? दुःखों का निवारण करने वाला कौन है ? हे अखण्डनीया द्यावा-पृथिवि ! आप हमारी सुरक्षा करें । हे मित्रावरुण ! आप लोग बलशाली रिपुओं से भी हमारी सुरक्षा करें । हे देवो ! आप लोगों के बीच में कौन से देव यज्ञ में हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ? ॥१ ॥

३६०७. प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२ ॥

जो देवता स्तुति करने वालों को प्राचीन स्थान प्रदान करते हैं तथा अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं, वे फल प्रदायक देवता सदैव श्रेष्ठ फल प्रदान करते हैं । वे सत्कर्म करने वाले देवता दर्शनीय होकर सुशोभित होते हैं ॥२ ॥

३६०८. प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम्।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३ ॥

सबको आश्रय प्रदान करने वाली अदिति, सिन्धु तथा स्वस्ति देवी की मित्रता प्राप्त करने के लिए हम स्तोत्रों द्वारा उनकी प्रार्थना करते हैं। द्यावा-पृथिवी हमारी सुरक्षा करें। अहोरात्र की अधिष्ठात्री देवी उषासानक्ता हमारी कामनाओं को सम्पादित करें ॥३ ॥

३६०९. व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४ ॥

अर्यमा तथा वरुणदेव यज्ञ मार्ग को प्रकाशित करें तथा अन्न के अधिपति अग्निदेव हर्षकारी मार्ग को दिखलाये। इन्द्र और विष्णुदेव भली-भाँति प्रशंसित होकर हम लोगों को, सन्तानों तथा बलों से युक्त मनोहर सुख प्रदान करें ॥४ ॥

३६१०. आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य।
पात्पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५ ॥

पर्वत, मरुद्गण तथा संरक्षक भगदेव की रक्षण सामर्थ्यों की हम कामना करते हैं। सबका पालन करने वाले वरुणदेव, मनुष्य सम्बन्धी पापों से बचायें। मित्रदेव सखा भाव से हमारी सुरक्षा करें ॥५ ॥

३६११. नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥६ ॥

हे देवी द्यावा-पृथिवि ! जिस प्रकार ऐश्वर्य प्राप्त करने की कामना करने वाले लोग बीच में जाने के लिए समुद्र की प्रार्थना करते हैं, उसी प्रकार इच्छित कार्य लाभ के निमित्त 'अहिर्बुध्न्य' नामक देव के साथ हम आपकी प्रार्थना करते हैं। तेज ध्वनि करने वाली सरिताओं को आप मुक्त करें ॥६ ॥

३६१२. देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७ ॥

देवताओं के साथ अदिति देवी हमारा पोषण करें तथा संरक्षण करने वाले इन्द्रदेव प्रमादरहित होकर हमारी सुरक्षा करें। हम मित्र, वरुण तथा अग्निदेवों के सोम रूप पोषक अन्नों में बाधा नहीं डाल सकते, उन्हें यज्ञादि से संवर्धित कर सकते हैं ॥७ ॥

३६१३. अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य। तान्यस्मभ्यं रासते ॥८ ॥

वे अग्निदेव ऐश्वर्य तथा सौभाग्य के अधिपति हैं, अतः हम लोगों को वे ऐश्वर्य तथा सौभाग्य प्रदान करें ॥८ ॥

३६१४. उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु। अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९ ॥

हे धनसम्पन्न, सत्यरूप वचन वाली तथा अन्न प्रदान करने वाली उषादेवि ! हम लोगों को आप अत्यन्त मनोहर धन प्रदान करें ॥९ ॥

३६१५. तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा। इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१० ॥

जिस ऐश्वर्य के साथ सविता, भग, मित्रावरुण, इन्द्र तथा अर्यमा देवगण पधारते हैं, उस ऐश्वर्य को वे सब देव हमें प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - ५६]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - द्यावा - पृथिवी । छन्द - त्रिष्टुप्; ५-७ गायत्री ।]

३६१६. मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन्रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥१ ॥

जब अत्यन्त श्रेष्ठ तथा बृहद् द्यावा-पृथिवी को हवाओं से प्रेरित होने वाले बादल चारों ओर से आवृत कर लेते हैं तथा ध्वनि करते हैं, तब ज्येष्ठ तथा महान् द्यावा-पृथिवी तेजस्वी स्तोत्रों द्वारा तेज-सम्पन्न हों ॥१ ॥

३६१७. देवी देवेभिर्यजते यजत्रैरमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥२ ॥

पूजन करने योग्य, हिंसा न करने वाली, अभीष्ट की वर्षा करने वाली, यज्ञ से सम्पन्न, विद्रोह न करने वाली, देवताओं को पैदा करने वाली तथा यज्ञ सम्पन्न करने वाली तेजस्वी द्यावा-पृथिवी देवियाँ, देवताओं के साथ यजन योग्य तेजस्वी मन्त्रों से सम्पन्न हों ॥२ ॥

३६१८. स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३ ॥

जिन सद्‌बुद्धि प्रदाता देव ने अपने कौशल के द्वारा विस्तृत, गम्भीर तथा आधाररहिता द्यावा-पृथिवी को उत्पन्न किया तथा दोनों लोकों को विनिर्मित किया, वही सत्कर्म करने वाले देव समस्त लोकों में संव्याप्त हैं ॥३ ॥

३६१९. नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों हमारे लिए अन्न प्रदान करने की कामना वाली तथा परस्पर प्रेम से रहने वाली हों । आप दोनों विशाल क्षेत्र वाली तथा सबके द्वारा पूजने वाली होकर हमें गृहिणी से सम्पन्न श्रेष्ठ भवन प्रदान करें तथा हमारी सुरक्षा करें । हम अपने सत्कर्म के द्वारा दासों तथा रथों से सम्पन्न हों ॥४ ॥

३६२०. प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५ ॥

हे पवित्र एवं तेजस्वी आकाश-भूमण्डल ! स्तुति के लिए आपके निकट आकर हम आप दोनों के लिए पर्याप्त मात्रा में स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥५ ॥

३६२१. पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥६ ॥

हे दोनों देवियो ! अपनी अतुलित शक्ति से आप द्युलोक और पृथिवी लोक इन दोनों को पवित्र करती हुई प्रदीप्त होती हैं और सदैव यज्ञ का निर्वाह करने वाली हैं ॥६ ॥

३६२२. मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् । परि यज्ञं नि षेदथुः ॥७ ॥

हे व्यापक आकाश और भू देवियो ! आप अपने सखा यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करती हैं । यज्ञ की पूर्णता के लिए संरक्षण देती हुई यज्ञ को अवलम्बन प्रदान करती हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ५७]

[ऋषि - वामदेव गौतम । देवता - १- ३ क्षेत्रपति; ४ शुन; ५, ८ शुनासीर; ६-७ सीता । छन्द - अनुष्टुप् ; ५ पुर उष्णिक्; २, ३, ८ त्रिष्टुप् ।]

३६२३. क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वंपोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥१ ॥

सखा के समान हित करने वाले क्षेत्रपति के सहयोग से हम क्षेत्रों को विजित करें । वे क्षेत्रपति देव हमें गौओं तथा अश्वों को बलिष्ठ करने वाले ऐश्वर्य प्रदान करें तथा ऐसे ऐश्वर्य से हमें हर्षित करें ॥१ ॥

३६२४. क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥२ ॥

हे क्षेत्रपतिदेव ! जिस प्रकार गौएँ दुग्ध प्रदान करती है, उसी प्रकार आप हमें मधुरता तथा प्रवाह से सम्पन्न जल (रस) प्रदान करें । जिस प्रकार मधुरता टपकाने वाला तथा भली-भाँति पवित्र किया जाने वाला जल सुख प्रदान करता है, उसी प्रकार सत्कर्मों के पालक आप लोग हमें सुख प्रदान करें ॥२ ॥

३६२५. मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥३ ॥

वनौषधियाँ हमारे लिए मधुरता से पूर्ण हों तथा द्युलोक, अन्तरिक्ष और जल हमारे लिए मीठे हों । क्षेत्र के स्वामी हमारे लिए मधु-सम्पन्न हों । हम रिपुओं द्वारा अहिंसित होकर उनका अनुगमन करें ॥३ ॥

३६२६. शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४ ॥

अश्व आदि वाहन हमारे निमित्त हर्षकारी हों ।मानव हमारे लिए हर्षकारी हों तथा हल हर्षित होकर कृषि कर्म करें ।हल सुखपूर्वक खेतों में चलें । हल के जुवे सुखपूर्वक बाँधे जाएँ तथा चाबुक भी मधुरता के साथ प्रयुक्त हों ॥ ४ ॥

३६२७. शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः । तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५ ॥

हे शुना और सीर ! आप दोनों हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार करें । आप दोनों ने द्युलोक में जिस जल को उत्पन्न किया है, उस जल के द्वारा आप इस धरती को सिंचित करें ॥५ ॥

[शौनक के मत से शुनः इन्द्र तथा सीर वायु हैं । निरुक्त के अनुसार शुनः वायु और सीर आदित्य हैं ।]

३६२८. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६ ॥

हे श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करने वाली सीते ! आप हमारे ऊपर अनुकम्पा करने वाली हों । हम आपकी वन्दना करते हैं, जिससे आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें तथा श्रेष्ठ फल प्रदान करें ॥६ ॥

३६२९. इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७ ॥

इन्द्रदेव हल की मूठ सँभालें । पूषादेव उसकी देख-भाल करें, तब धरती श्रेष्ठ धान्य तथा जल से परिपूर्ण होकर हमारे लिए धान्य आदि का दोहन करे ॥७ ॥

३६३०. शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८ ॥

हल के नीचे लगी हुई लोहे से विनिर्मित श्रेष्ठ फाले खेत को भली-प्रकार से जोतें और किसान लोग बैलों के पीछे-पीछे आराम के साथ जाएँ । हे वायु और सूर्यदेवो ! आप दोनों हविष्य से प्रसन्न होकर पृथ्वी को जल से सींचकर इन ओषधियों को श्रेष्ठ फलों से युक्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - वामदेव गौतम । **देवता** - अग्नि अथवा सूर्य अथवा आपः देवता अथवा गौएँ अथवा घृत । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ११ जगती ।]

३६३१. समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१ ॥

समुद्र से मधुर लहर ऊपर को उद्भूत होती है, वह सोमरस के संग अमृतत्व को प्राप्त हो गयी । घृत (तेज) का जो रहस्यपूर्ण रूप है, वह देवताओं की जिह्वा तथा अमृत की नाभि है ॥१ ॥

३६३२. वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन्यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥२ ॥

हम याजक उस घृत की स्तुति करते हैं । इस यज्ञ मण्डप में नमन के द्वारा हम उसे धारण करते हैं । हमारे द्वारा गान किये जाने वाले स्तवनों को ब्रह्मा जी श्रवण करें । चार वेदरूपी शृंग वाले गौर वर्ण देव ने इस जगत् का सृजन किया ॥२ ॥

३६३३. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥३ ॥

इस यज्ञाग्नि देव के चार सींग हैं और तीन पैर, दो सिर तथा सात हाथ हैं । वे बलशाली देव तीन तरह से बद्ध होकर ध्वनि करते हैं तथा मनुष्यों के बीच में प्रवेश करते हैं ॥३ ॥

३६३४. त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४ ॥

देवताओं ने पणियों के द्वारा गौओं के बीच तीन तरह से छिपाकर रखे हुए घृत (तेज) को ज्ञात कर लिया । उनमें से प्रथम को इन्द्रदेव ने पैदा किया, दूसरे को आदित्यदेव ने पैदा किया तथा तीसरे को देवताओं ने अपने बल के द्वारा ओजस्वी अग्नि से उत्पन्न किया ॥४ ॥

३६३५. एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५ ॥

ये धाराएँ मनोहर समुद्र से सैकड़ों गतियों से प्रवाहित हो रही हैं । रिपु उसे देख नहीं सकते । घृत की उन धाराओं को हम देख सकते हैं । उन धाराओं के बीच में विद्यमान अग्नि को भी हम देख सकते हैं ॥५ ॥

३६३६. सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६ ॥

अन्तःकरण के बीच से निकलकर तथा चित्त के द्वारा शुद्ध की गयी तेज की धाराएँ हर्षप्रदायक सरिताओं के सदृश भली-भाँति प्रवाहित होती हैं । जिस प्रकार शिकारी से भयभीत होकर हिरण भागते हैं, उसी प्रकार घृत की धाराएँ तीव्र गति से प्रवाहित होती हैं ॥६ ॥

३६३७. सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७ ॥

जिस प्रकार नदी का जल नीचे की ओर तेजी से गमन करता है, उसी प्रकार वायु के समान बलशाली होकर घृत की बड़ी धाराएँ द्रुतगति से गमन करती हैं । तेजस्वी अश्वों के समान ये घृत धाराएँ अपनी परिधि को भेद करके लहरों के द्वारा वर्धित होती हैं ॥७ ॥

३६३८. अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्य१: स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८ ॥

जिस प्रकार समान विचार वाली तथा हँसने वाली स्त्रियाँ अपने पति के पास गमन करती हैं, उसी प्रकार घृत की धाराएँ अग्नि की ओर गमन करती हैं । ये घृत-धाराएँ प्रज्वलित होकर सब जगह व्याप्त होती हैं । वे जातवेदा अग्निदेव हर्षित होकर उन धाराओं की इच्छा करते हैं ॥८ ॥

३६३९. कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९ ॥

जहाँ सोमरस अभिषुत किया जाता है तथा यज्ञ सम्पन्न किया जाता है; वहाँ पर ये घृत-धाराएँ उसी प्रकार प्रवाहित होती हैं, जिस प्रकार पति (वर) के समीप जाने के लिए कन्याएँ अलंकृत होती हैं । उन घृत-धाराओं को हम देखते हैं ॥९ ॥

३६४०. अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१० ॥

हे याजको ! देवताओं के लिए आप श्रेष्ठ स्तुतियाँ करें । हे देवताओ ! हम याजकों के लिए आप प्रशंसनीय ऐश्वर्य, गौ तथा विजय धारण करें । हमारे इस यज्ञ को आप देवताओं के समीप पहुँचाएँ । घृत की मधुर धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं ॥१० ॥

३६४१. धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११ ॥

हे परमात्मन् !आपका तेज समुद्र के बीच में बड़वाग्नि के रूप में, आकाश में सूर्यदेव के रूप में, हृदय के बीच में वैश्वानर के रूप में, अन्न में प्राण के रूप मे, जल में विद्युत् के रूप में तथा युद्ध में शौर्याग्नि के रूप में विद्यमान है ।समस्त लोक आपके आश्रित हैं ।आपके उस मिठास से पूर्ण रस का उपयोग करने में हम समर्थ हों ॥११ ॥

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ अथ पञ्चमं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि - बुध और गविष्ठिर आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३६४२. अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।

यह्वाइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥१ ॥

उषाकाल में जाग्रत् गौओं की तरह याजकों की समिधाओं (श्रद्धा) से जाग्रत्-प्रज्वलित इस (दिव्य) अग्नि की ज्वालाएँ, फैली हुई वृक्ष की डालियों के समान (अपनी किरणों से) द्युलोक तक फैल जाती हैं ॥१ ॥

३६४३. अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।

समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि ॥२ ॥

यज्ञ के आधार अग्निदेव, यजन कार्य के निमित्त देवों द्वारा प्रदीप्त होते हैं । वे अग्निदेव प्रातःकाल श्रेष्ठ मानसिकता से ऊर्ध्वगामी होते हैं । उस समय इनका तेजस्वी रूप प्रत्यक्ष हो उठता है । ये महान् देव, जगत् को तम से मुक्त कर देते हैं ॥२ ॥

३६४४. यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।

आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥३ ॥

जब ये अग्निदेव बाधा डालने वाले अन्धकार को हर लेते हैं, तो शुभ्र किरणों से तेजस्वी बने अग्निदेव जगत् को प्रकाशित कर देते हैं । इन्हें बल देने के लिए जब घृतधारा यज्ञ पात्र से प्रवाहित होती है, तो अग्निदेव ऊँचे उठकर जिह्वाओं (ज्वालाओं) से घृतधारा का पान करते हैं ॥३ ॥

३६४५. अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।

यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४ ॥

लोगों की आँखे जैसे सूर्योदय की प्रतीक्षा में निरत रहती हैं, वैसे ही देव-याजकों के मन अग्नि की कामना से सब ओर घूमते हैं । आकाश और पृथिवी, विचित्र रूप वाली उषा के साथ जिन अग्निदेव को प्रकट करते हैं, वे अग्निदेव उज्ज्वल कान्तियुक्त और बलयुक्त हैं ॥४ ॥

३६४६. जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५ ॥

उत्पादित होने योग्य ये अग्निदेव उषाकाल में उत्पन्न होते हैं । वनों के काष्ठों में हितकारी अग्निदेव प्रदीप्त होते हैं । ये प्रत्येक घर में सात रत्न रूपी दीप्तियाँ धारण कर यज्ञ के योग्य 'होता' रूप में अधिष्ठित होते हैं ॥५ ॥

३६४७. अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।

युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६ ॥

यज्ञ के योग्य 'होता' रूप में प्रतिष्ठित ये अग्निदेव, माता (पृथ्वी) की गोद में सुरभित वेदी पर विराजित होते

हैं। ये तरुण, विद्वान्, अति निष्ठावान्, सत्यस्वरूप और धारण करने योग्य अग्निदेव, मनुष्यों के मध्य प्रदीप्त होते हैं ॥६॥

३६४८. प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं। यजमान उन ज्ञानी, यज्ञ कार्य सिद्ध करने वाले, 'होता' रूप अग्निदेव का स्तोत्रों से स्तवन करते हैं। यजमान अन्न के स्वामी अग्निदेव का घृत-आहुतियों द्वारा नित्य यजन करते हैं ॥७॥

३६४९. मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

सबको पवित्र करने वाले, विकारों का शमन करने वाले, ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अतिथि सदृश पूजनीय, हम सबका कल्याण करने वाले ओजस्वी ये अग्निदेव अपने स्थान पर पूजे जाते हैं। हे अग्ने ! आप अपनी सामर्थ्य से सबको पूर्ण करते हैं ॥८॥

३६५०. प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यानाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥९॥

हे अग्ने ! आप यज्ञ मे उत्पन्न सुन्दर रूप में प्रकट होते हैं। आप शीघ्र ही अन्यों को पार कर आगे बढ़ते हैं। आप मनुष्यों में अत्यन्त स्तुत्य, सुन्दर रूपवान्, प्रकाशवान् और प्रिय हैं। आप प्रजाओं में अतिथि रूप हैं ॥९॥

३६५१. तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत्ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥१०॥

हे युवा (सामर्थ्यवान्) अग्ने ! आपके उपासक लोग दूर से अथवा पास से आपके लिए भोज्य पदार्थ अर्पित करते हैं। आप शुद्ध उच्चारणयुक्त स्तुति करने वाले की श्रेष्ठ बुद्धि को जानें। हे अग्निदेव ! आपका महान् आश्रय अति कल्याणकारी है ॥१०॥

३६५२. आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्व १न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप तेजस्वी और सुन्दर रथ पर पूज्य देवों के साथ बैठकर आयें। सब देवों को जानने वाले आप उन्हें हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए व्यापक अन्तरिक्ष के सुगम मार्गों से यहाँ इस यज्ञ में लायें ॥११॥

३६५३. अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥

त्रिकालदर्शी, शक्तिशाली तथा सेचन (प्राण तत्त्व प्रदान करने) में समर्थ यज्ञाग्नि का स्तोत्र पाठ से हम स्तवन करते हैं। वाणी में स्थिर, हविदाता, आवाहित अग्नि में मंत्रोच्चारणपूर्वक हविष्यान्न उसी प्रकार समर्पित करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक में प्रकाशमान आदित्य को संध्योपासना के समय कही गई विशिष्ट महिमायुक्त प्रार्थनाएँ समर्पित की जाती हैं ॥१२॥

[सूक्त - २]

[ऋषि - कुमार आत्रेय अथवा वृश जान (जार) अथवा दोनों; २,९-वृश जान (जार)। देवता - अग्नि। छन्द - त्रिष्टुप्; १२ शक्वरी]

३६५४. कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥

तरुणी माता (काष्ठ अरणियाँ) अपने पुत्र (अग्नि) को गर्भ में भली प्रकार गुप्त रखती है। इसका पोषण स्वयं करती हैं, पिता को नहीं देती हैं। प्रकट होने पर इस गुप्त शिशु को लोग साक्षात् देखते हैं, तब इसके तेज को लोग विनष्ट नहीं कर सकते ॥१॥

३६५५. कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२॥

हे महान् तरुणी ! आप बालक (अग्नि) को गर्भ में धारण करती हैं, उत्पन्न करती हैं और उसका भली प्रकार पोषण करती हैं। गर्भ में यह बालक पूर्व के अनेक वर्षों तक पुष्ट होता है। जब आपने इसे उत्पन्न किया, तब इस उत्पन्न बालक को सबने देखा ॥२॥

३६५६. हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम्।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३॥

हमने निकटस्थ स्थान से स्वर्ण सदृश ज्वाला वाले, उज्ज्वल वर्ण वाले, आयुध रूप दीप्तियों वाले अग्निदेव को देखा। हमने उन्हें अमृतमय स्तोत्र निवेदित किया। वे इन्द्रदेव को न मानने वाले और स्तुति न करने वाले भला हमारा क्या करेंगे ? ॥३॥

३६५७. क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम्।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥

पशुओं के झुण्ड के समान, अपने स्थान (अरणि) में गुप्त अग्नि को विचरते हुए हमने देखा है। अग्निदेव जब उत्पन्न होते हैं, तो उनकी दीप्त ज्वालाओं का स्पर्श नहीं कर सकते। युवतियों के वृद्धा होने के समान क्षीण होती ज्वालाएं हविष्यान्न प्राप्त कर जरावस्था से पुनः युवतियों के समान पुष्ट होती जाती हैं ॥४॥

३६५८. के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५॥

जो कोई राष्ट्र के स्वामी और भूमिपति नहीं हैं; वे कौन हैं, जो मुझे भूमि से पृथक् कर सकते हैं ? जो इस भूमि पर अतिक्रमण करते हैं, उनसे हमें मुक्त करें। वे ज्ञानवान् अग्निदेव हमारे पशुओं के समीप रक्षक रूप में उपस्थित हों ॥५॥

३६५९. वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥

ये अग्निदेव सब प्राणियों के स्वामी और सबको आश्रय देने वाले हैं। शत्रुओं ने इन अग्निदेव को मर्त्यलोक में छिपा कर रखा। अत्रि वंशजों ने मंत्र युक्त स्तोत्रों से उन्हें मुक्त किया। उन अग्निदेव की निन्दा करने वाले निन्दा के पात्र हों ॥६॥

३६६०. शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! शुनः शेप ऋषि के स्तुति करने पर आपने उन्हें सहस्रों यूप (स्तम्भों) के बंधन से मुक्त किया । हे मेधावी अग्निदेव ! आप 'होता' रूप में इस यज्ञ में अधिष्ठित हों और हमें भी बंधनों से मुक्त करें ॥७ ॥

३६६१. हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप जब क्रुद्ध होते हैं, तब हमसे दूर हो जाते हैं । नियमों के पालक इन्द्रदेव ने यह उपदेश हमें किया था । विद्वान् इन्द्रदेव ने आपको देखा है और उनके द्वारा प्रेरित होकर हम आपके सम्मुख उपस्थित हैं ॥८ ॥

३६६२. वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥९ ॥

वे अग्निदेव अपने महान् तेजों से प्रकाशित होते हैं । वे अपनी महत्ता से सब पदार्थों को प्रकट करते हैं । वे अपनी सामर्थ्य से असुरों की दुःखप्रद माया को विनष्ट करते हैं । राक्षसों के विनाश के निमित्त अपनी ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हैं ॥९ ॥

३६६३. उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१० ॥

अग्नि की शब्द करने वाली ज्वालाएँ तीक्ष्ण आयुधों के समान राक्षसों का विनाश करने के लिए द्युलोक में प्रकट होती हैं । (हव्यादि से) पुष्ट होकर ज्वालाएँ अति विकराल रूप धारण कर राक्षसों को संतप्त करती हैं । आसुरी बाधाएँ अग्निदेव की सीमा को प्रतिबन्धित नहीं कर सकतीं ॥१० ॥

३६६४. एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११ ॥

अनेक रूपों में उत्पन्न हे अग्निदेव ! आप धैर्यवान्, ज्ञानी और उत्तम कार्य करने वाले हैं । रथ के निर्माण के सदृश मनोयोगपूर्वक हमने आपके निमित्त स्तोत्रों को तैयार किया है । हे अग्निदेव ! आप इन स्तोत्रों से हर्षित होकर विजय प्राप्त करने वाले स्वर्गिक सुख से युक्त हों ॥११ ॥

३६६५. तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः । इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥१२ ॥

असंख्यों ज्वालाओं वाले, अभीष्ट वर्षक, अबाध वृद्धि-युक्त, शत्रुरहित अग्निदेव श्रेष्ठ पुरुषों को धन देते हैं । अतएव अमर देवगण इन अग्निदेव से कहते हैं- 'आप कुशा के आसन बिछाने वाले तथा हवि देने वाले याजक को निश्चय ही सुख प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त -३]

[ऋषि - वसुश्रुत आत्रेय । देवता - अग्नि, ३ मरुद्गण, रुद्र तथा विष्णु । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३६६६. त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप प्रकट होते हैं, तो वरुण के सदृश गुण वाले होते हैं और जब आप प्रदीप्त होते हैं, तो मित्र के सदृश होते हैं । आप में ही सम्पूर्ण देवगण स्थित हैं । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप हविदाता यजमान के लिए इन्द्रदेव के सदृश पूज्य हैं ॥१ ॥

३६६७. त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि ।

अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि ॥२ ॥

हे स्वधावान् अग्निदेव ! गुप्त नाम से आप कन्याओं के अर्यमा (नियंत्रक) रहते हैं ।जब आप पति-पत्नी द्वारा गो (गौओं अथवा इन्द्रियों) के रस से सिञ्चित किये जाते हैं, तब आप उन्हें समान मन वाले बनाकर सुख देते हैं ॥ २ ॥

[कन्याओं का कोई प्रत्यक्ष स्वामी नहीं कहा जा सकता, किन्तु परोक्ष रूप में अग्निदेव उनके तंत्र को अपने नियंत्रण में रखते हुए विकसित करते हैं । दम्पती यदि स्वार्थरत रहें, तो विग्रह होता है, यज्ञीय अनुशासन से वे एक मन वाले होकर सुख पाते हैं ।]

३६६८. तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम् ।

पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी शोभा बढ़ाने के लिए मरुद्‌गण शोधन प्रक्रिया चलाते हैं । हे रुद्ररूप ! आपका जन्म सुन्दर और विलक्षण है । विष्णुदेव आपके निमित्त उपमा योग्य पद निर्धारित करते हैं । आप देवों के इन गुह्य अनुग्रहों को संरक्षित करें ॥३ ॥

[यज्ञाग्नि के लिए स्थान एवं पदार्थों का शोधन मरुत् करते हैं । विकारनाशक रुद्र-अग्नि का जन्म विलक्षण है । पोषण के देवता विष्णु ने यज्ञ को अपना पद प्रदान किया है । याजकों को इन मर्यादाओं के अनुरूप ही अग्नि-प्रयोग करना चाहिए ।]

३६६९. तव श्रिया सुदृशो देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।

होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥४ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपकी समृद्धि से ही सभी देवगण सुन्दर रूप और अत्यन्त तेज को धारण करते हुए अमृत तत्त्व की प्राप्ति करते हैं । कामना करने वाले मनुष्य स्तुतियों के साथ घृत की हवियाँ देते हुए होता रूप अग्निदेव की सेवा करते हैं ॥४ ॥

३६७०. न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।

विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्तान् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपसे पूर्व अन्य कोई होता नहीं था । यज्ञ करने वाला भी अन्य कोई नहीं था । हे अन्न अभिपूरित अग्निदेव ! भविष्य में भी आपके सदृश अन्य कोई काव्य स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य नहीं होगा । आप जिसके यहाँ अतिथि रूप होते हैं, वह यजमान यज्ञ के द्वारा पुत्र-पौत्रादि प्रजाओं को प्राप्त करता है ॥५ ॥

३६७१. वयमग्ने वनुयाम त्वोता वसूयवो हविषा बुध्यमानाः ।

वयं समर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया सहसस्पुत्र मर्तान् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! धन की कामना करने वाले हम आपको प्रज्वलित कर हवियों से प्रदीप्त करते हैं । आपके अनुग्रह से हम धनों से युक्त होकर आपसे संरक्षित हों । हम सभी छोटे-बड़े युद्धों में नित्य विजय हस्तगत करें । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! हम धनों से और सन्तानों से युक्त होकर सुखी हों ॥६ ॥

३६७२. यो न आगो अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।

जही चिकित्वो अभिशस्तिमेतामग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जो मनुष्य हमारे प्रति अपराध या पापपूर्ण व्यवहार करता है, उस पाप को आप उस पापी में ही विस्थापित कर दें । हे ज्ञानी अग्निदेव ! जो हमें पाप या अपराध से प्रताड़ित करता है, आप उस पापी को मार डाले ॥७ ॥

३६७३. त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥८ ॥

हे अग्ने !रात्रि की समाप्ति अर्थात् उषा की प्राकट्य वेला में पुरातन लोग आपको देवों का दूत बनाकर हवियों से यजन करते हैं ।उन श्रेष्ठ मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित होकर आप धनों औरयोग्य धामों से संपन्न करते हैं ॥८ ॥

३६७४. अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान्पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदाँ ऋतचिद्यातयासे ॥९ ॥

हे बल के द्वारा उत्पन्न अग्निदेव ! पुत्र द्वारा पिता की सेवा करने के समान जो विद्वान् आपकी सेवा करता है, उसे आप संकटों से पार करें और पापों से मुक्त करें । हे ज्ञानी और यज्ञपालक अग्निदेव ! आप हम पर अपनी कृपा दृष्टि कब करेंगे ? और हमे कब श्रेष्ठ मार्ग पर प्रेरित करेंगे ? ॥९ ॥

३६७५. भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद्देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१० ॥

हे आश्रयदाता अग्निदेव ! आप पिता रूप में सबके पालनकर्त्ता हैं । स्तुतियों के साथ हवि देने वाले यजमान की हवियों से संतुष्ट होकर आप उन्हें बहुत यश प्रदान करते हैं । वृद्धि को प्राप्त होते हुए, तेजयुक्त शोभा और अतीव बलों से संयुक्त ये अग्निदेव उपासक को अत्यन्त सुख देते हैं ॥१० ॥

३६७६. त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११ ॥

हे प्रिय युवा अग्निदेव ! जो आपको चोर दिखाई देते हैं तथा जो कुटिल शत्रु अनजान मनुष्यों को प्रताड़ित करते हैं, ऐसे सम्पूर्ण आगत संकटों से आप हम स्तोताओं को पार लगायें ॥११ ॥

३६७७. इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! स्तुति करने वाले हम उपासक अब आपकी ओर अभिमुख हुए हैं । हम अपने अपराधों को आपके सम्मुख निवेदन कर आपके आश्रय की कामना करते हैं । हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध ये अग्निदेव हमें निन्दकों की ओर और हिंसकों की ओर जाने से बचायें ॥१२ ॥

[सूक्त - ४]

[ऋषि - वसुश्रुत आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३६७८. त्वामग्ने वसुपतिं वसूनामभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमाभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥१ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप धनों के अधीश्वर हैं । हम यज्ञों में आपकी स्तुति करते हैं । बल प्राप्ति की कामना वाले हम आपके द्वारा बलों को प्राप्त करें । शत्रु सेनाओं को मार भगाकर हम विजय प्राप्त करें ॥१ ॥

३६७९. हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ॥२ ॥

हव्यादि का हवन करने वाले अग्निदेव सदैव अजर रूप में स्थित हैं । वे पिता रूप में हमारे पालनकर्त्ता हैं । वे सर्वव्यापक रूप में सर्वत्र प्रकाशित होते हुए अति दर्शनीय होते हैं । हे उत्तम गार्हपत्य अग्निदेव ! हमारे निमित्त उत्तम अन्न प्रदान करें । हमारी ओर कीर्ति भी प्रेरित करें ॥२ ॥

३६८०. विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्याणि ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! आप मनुष्यों के अधीश्वर, ज्ञानी, स्वयं पवित्र रहकर मनुष्यों को पवित्र करने वाले, दीप्तिमान् शरीर वाले, सर्वभूत-ज्ञाता इन अग्निदेव को यज्ञ में होता रूप में धारण करें । वे देवों द्वारा धारण करने योग्य धन हमें प्रदान करें ॥३ ॥

३६८१. जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! वेदी में प्रतिष्ठित होकर प्रज्वलित हुए आप, सूर्यरश्मियों के साथ हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें । हे सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव ! आप हमारी समिधाओं को ग्रहण करते हुए देवों को यहाँ हवि भक्षण के निमित्त ले आयें ॥४ ॥

३६८२. जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५ ॥

घर में आये प्रिय और विनयशील अतिथि के समान पूज्य आप हमारे इस यज्ञ में आयें । सभी आक्रामक शत्रुओं का हनन कर शत्रुवत् व्यवहार करने वालों का धन हमारे पास ले आयें ॥५ ॥

३६८३. वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! अपने शरीर के लिए अन्न ग्रहण करते हुए आप हमारे शत्रुओं का आयुधों से नाश करें । हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आप देवों को तृप्त करते हैं । हे मनुष्यों में अग्रणी स्तुत्य अग्निदेव ! संग्राम में आप हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

३६८४. वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी श्रेष्ठ वचनों और हवियों से सेवा करते हैं । हे पवित्रकर्त्ता, कल्याणकारी तेज संयुक्त अग्निदेव ! आप हमें सबके द्वारा वरणीय श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें । हमें सब प्रकार के धनों को धारण करायें ॥७ ॥

३६८५. अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥८ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! जल, थल और पर्वत इन तीन सदनों में निवास करने वाले आप हमारे यज्ञ में प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न का सेवन करें । हम देवों के निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले हों । आप तीनों (कायिक वाचिक, मानसिक) पापों से हमारी रक्षा करें । उत्तम आश्रय स्थान देकर हमें सुखी करें ॥८ ॥

३६८६. विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिपर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानो३स्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥९ ॥

हे सर्वभूत-ज्ञाता अग्निदेव ! जैसे नाविक नाव द्वारा लोगों को नदी के पार करता है, वैसे ही आप आगत सम्पूर्ण संकटों से हमें पार करें । अत्रि के समान अभिवादन योग्य स्तुतियाँ हम आपको निवेदित करते हैं; आप हमारे इस निवेदन को जानें, हमारे शरीरों की आप ही रक्षा करें ॥९ ॥

३६८७. यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप अविनाशी हैं और हम मरणधर्मा हैं । हम स्तुतिपूर्ण हृदय से आपको नमस्कार करते हुए बुलाते हैं । हे ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! हमें यश प्रदान करें । हम आपके अविनाशी रूप में स्थित होकर सन्तानों से युक्त हों ॥१० ॥

३६८८. यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११ ॥

हे ऐश्वर्यों के स्वामी अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ कर्म करने वाले जिस यजमान पर अनुग्रह करते हैं; वह यजमान अश्वों, पुत्रों, वीरों और गौओं से युक्त कल्याणकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥११ ॥

[सूक्त - ५]

[**ऋषि** - वसुश्रुत आत्रेय । देवता - आप्री सूक्त (१ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि; २- नराशंस ; ३- इळ; ४-बर्हि; ५- देवीद्वार; ६- उषासानक्ता; ७-दिव्य होता प्रचेतस; ८-सरस्वती, इळा, भारती; ९-त्वष्टा; १०-वनस्पति; ११-स्वाहाकृति) । **छन्द** - गायत्री ।]

३६८९. सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥१ ॥

(हे यजमान !) श्रेष्ठ, भली-भाँति प्रज्वलित, जाज्वल्यमान, सर्वज्ञ (जातवेदा), देदीप्यमान यज्ञाग्नि में शुद्ध पिघले हुए घृत की आहुतियाँ प्रदान करें ॥१ ॥

३६९०. नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२ ॥

मनुष्यों द्वारा अति प्रशंसित ये अग्निदेव इस यज्ञ को भली प्रकार सम्पन्न करें । वे अग्निदेव अडिग, ज्ञान-सम्पन्न और मधुर रश्मियुक्त हैं ॥२ ॥

३६९१. ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबके द्वारा स्तुत्य हैं । आप हमारी रक्षा के निमित्त प्रिय और विलक्षण शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव को यहाँ सुखकारी रथों से ले आयें ॥३ ॥

३६९२. ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! आप ऊन के समान मृदु एवं सुखप्रद आसनों को बिछायें; क्योंकि स्तोताओं ने स्तुतियाँ आरम्भ कर दी हैं । हे शुभ्र अग्निदेव ! स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त हुए आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हों ॥४ ॥

३६९३. देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥५ ॥

हे इळियो ! आप उत्तम गुणों वाली, दिव्य द्वारों को खोलने वाली और श्रेष्ठ कर्म वाली हैं । आप हमारी रक्षा के निमित्त यज्ञ को परिपूर्ण करें ॥५ ॥

३६९४. सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥६ ॥

सुन्दर रूप वाली, आयु बढ़ाने वाली, महान् कर्मों को सम्पन्न कराने वाली, यज्ञ कर्मों की निर्मात्री रात्रि और उषा देवियों की हम उत्तम स्तुति करते हैं ॥६ ॥

३६९५. वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७ ॥

हे अग्नि और आदित्य रूप दिव्य होताओ ! आप दोनों हम मनुष्यों के इस यज्ञ में स्तुति से प्रेरित होकर वायु की गति से आयें ॥७ ॥

३६९६. इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८ ॥

इला, सरस्वती और मही (महान् भारती) तीनों देवियाँ सुखकारक हैं । ये मार्ग में अबाधित होकर हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों ॥८ ॥

३६९७. शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोष उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥९ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप व्यापक सामर्थ्य-सम्पन्न और कल्याणकारी कर्म करने वाले हैं । आप हमारे यज्ञ में आगमन करें । हमारे प्रत्येक यज्ञ कर्म के उत्तम पद में प्रतिष्ठित होकर हमारे रक्षक हों ॥९ ॥

३६९८. यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गामय ॥१० ॥

हे वनस्पते ! जहाँ-जहाँ आप देवों के गुप्त स्थानों को जानते हैं, वहाँ-वहाँ इन हव्यादि साधनों को पहुँचायें ॥१० ॥

३६९९. स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥११ ॥

यह हवि अग्नि और वरुण देवों के लिए समर्पित है । यह हवि इन्द्रदेव और मरुद्गणों के लिए समर्पित है ॥११ ॥

[सूक्त - ६]

[ऋषि - वसुश्रुत आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - पंक्ति ।]

३७००. अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१ ॥

सबके आश्रय स्थल उन अग्निदेव से हम परिचित हैं, जिन अग्निदेव को प्रदीप्त जानकर गौएँ गोधूलि वेला में अपने-अपने बाड़े में वापिस लौटती हैं तथा तीव्रगामी अश्व नित्य ही उन अग्निदेव को प्रदीप्त देखकर अश्वशाला में लौटते हैं । हे अग्निदेव ! ऐसे आप याजकों के लिए प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥१ ॥

३७०१. सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२ ॥

जो सबके आश्रयरूप एवं सहायक हैं, उन्हीं अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । जिनके समीप गौएँ आती हैं और शीघ्र गतिमान् अश्व भी जिनके समीप आते हैं, ऐसे अग्निदेव की श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होकर सुसंस्कार सम्पन्न विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं । इन गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! याजकों के लिए आप प्रचुर धन-धान्य प्रदान करें ॥२ ॥

३७०२. अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।

अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३ ॥

ये अग्निदेव निश्चय ही यजमान को अन्न देने वाले, पूज्य और सब पर दृष्टि रखने वाले हैं । वे प्रसन्न होकर यज्ञ में सबको ऐश्वर्य प्रदान करने में किञ्चित् मात्र संकोच नहीं करते । हे अग्निदेव !आप स्तोताओं को पर्याप्त पोषण दें ॥३ ॥

३७०३. आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।

यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! प्रकाशयुक्त एवं जरारहित (नित्य युवा) आपको हम प्रज्वलित करते हैं । आपकी श्रेष्ठ ज्योति द्युलोक में प्रकाशित होती है । आप स्तोताओं को अन्न (पोषण) से परिपूर्ण कर दें ॥४ ॥

३७०४. आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।

सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥५ ॥

विश्व का पोषण करने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, देवताओं को हवि पहुँचाने वाले, आनन्दवर्द्धक, स्वप्रकाशित हे अग्निदेव ! ऋचाओं का उच्चारण करते हुए, याजकगण आपकी ज्वालाओं में आहुति दे रहे हैं; उन स्तोताओं को आप ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

३७०५. प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६ ॥

ये अग्निदेव अन्य सब अग्नियों में वरण करने योग्य, सब धनों को पुष्ट करते हैं । वे आनन्द प्रदायक अग्निदेव सबको श्रेष्ठ मार्ग में प्रेरित करते हैं । वे हविष्यान्न की कामना करते हैं, ऐसे हे अग्निदेव ! आप स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से समृद्ध करें ॥६ ॥

३७०६. तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।

ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी किरणें आहुतियों से युक्त होकर वृद्धि पाती हैं । आपकी तेजस्वी किरणें शब्दवान् होकर हवि की कामना करती हैं । हे अग्निदेव ! स्तोताओं को अन्नादि से पूर्ण करें ॥७ ॥

३७०७. नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।

ते स्याम य आनृचुस्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं को नवीन अन्नों से युक्त उत्तम आवास प्रदान करें, जिससे हम घर-घर में आपकी पूजा करें और आपको दूत रूप में पाकर सुखी हों । हे अग्निदेव ! स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से अभिपूरित करें ॥८ ॥

३७०८. उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।

उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥९ ॥

प्रजा का पालन करने वाले, शक्ति-सम्पन्न, देदीप्यमान हे अग्निदेव ! आहुति प्रदान करते समय दोनों पात्र आपके मुख तक पहुँचते हैं । हविष्यान्न द्वारा आपको प्रसन्न करने वाले स्तोताओं को महान् ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९ ॥

३७०९. **एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक्।**
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥

हम लोग यज्ञों में उत्तम वाणियों के द्वारा अग्निदेव का पूजन करते हैं। वे अग्निदेव हमें उत्तम, वीर पुत्र-पौत्रादि और बलशाली अश्वों को प्रदान करें। स्तोताओं को अभीष्ट अन्नादि से समृद्ध करें ॥१०॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - इष आत्रेय। देवता - अग्नि। **छन्द** - अनुष्टुप्, १० पंक्ति।]

३७१०. **सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये।**
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

हे मित्र ऋत्विजो ! जल के पौत्र रूप ये वरिष्ठ अग्निदेव, श्रेष्ठ बलों को प्रदान करने वाले हैं। आप इनके निमित्त श्रेष्ठ स्तवनों का गान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करें ॥१॥

३७११. **कुत्रा चिद्यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने।**
अर्हन्तश्चिद्यमिन्धते सञ्जनयन्ति जन्तवः ॥२॥

जिनके प्रकट होने पर मनुष्य प्रसन्न होते हैं; जिनकी स्तुतियाँ कर ऋत्विग्गण यज्ञ स्थान में उन्हें प्रज्वलित करते हैं। सभी प्राणी भी जिनका दर्शन करने के लिए प्रकट हो जाते हैं, वे अग्निदेव कहाँ हैं ? ॥२॥

३७१२. **सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम्। उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥३॥**

जब हम अन्न प्राप्ति की कामना करते हैं और हम मनुष्यों के द्वारा अग्निदेव को हवियाँ दी जाती हैं, तब वे (अग्निदेव) अपनी सामर्थ्य से देदीप्यमान होकर ऋत (सत्य) रूप रश्मियों को धारण करते हैं ॥३॥

३७१३. **स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आसते।**
पावको यद्वनस्पतीन्प्र स्मा मिनात्यजरः ॥४॥

ये जरारहित और पवित्र करने वाले अग्निदेव जब वनस्पतियों को जलाने लगते हैं, तब वे रात्रि में भी गहन तमिस्रा को दूर करते हुए अपनी ज्वालाओं को फैलाते हैं ॥४॥

३७१४. **अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति। अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥**

यज्ञ-मार्गों के पथिक ऋत्विग्गण, अग्नि की परिचर्या करते हुए घृत की आहुतियाँ देते हैं। तब वे घृत धारायें ज्वालाओं में उसी प्रकार आरूढ़ होती हैं; जैसे पुत्र पिता की पीठ पर आरूढ़ होते हैं ॥५॥

[यज्ञ में डाले गये पोषक हव्य पदार्थ नष्ट नहीं होते; बल्कि ऊर्जा प्रवाहों पर आरूढ़ होकर संचरित होते हैं।]

३७१५. **यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे। प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥**

अग्निदेव अनेकों द्वारा चाहे जाने वाले, सबको धारण करने वाले, अन्नों का स्वाद लेने वाले और यजमानों को उत्तम आश्रय देने वाले हैं। यजमान उनके गुणों को जानते हैं ॥६॥

३७१६. **स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः। हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥**

तृणों को उखाड़कर खाने वाले पशु की तरह वे अग्निदेव निर्जन प्रदेश में स्थित शुष्क काष्ठों को पृथक् कर भस्मीभूत करते हैं। वे अग्निदेव स्वर्णिम मूँछ (ज्वाला) वाले और शुभ्र दाँतों वाले, बड़े विस्तृत और अपराजित सामर्थ्य वाले हैं ॥७॥

३७१७. शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८ ॥

जिन अग्निदेव की ऋत्विग्गण अत्रि ऋषि के समान परिचर्या करते हैं, जो कुल्हाड़ी के समान काष्ठों को विनष्ट करते हैं, जो हविष्यान्न का उपभोग करते हैं; उन दीप्तिमान् अग्निदेव को अरणि स्वेच्छा से उत्पन्न करती है ॥८ ॥

३७१८. आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे । ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९ ॥

हे अग्निदेव !आप हव्य पदार्थों का भक्षण करने वाले हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के धारणकर्ता हैं । हमारी स्तुतियाँ आपको सुख देने वाली हों । मरणधर्मा स्तोताओं को आप तेजस्वी अन्नों और उत्तम मन(स्नेह) प्रदान करें ॥९ ॥

३७१९. इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥१० ॥

हे अग्ने !मन्यु को धारण करने वाले ऋषिगण आपके द्वारा प्रदत्त पशु (हवनीय पदार्थों) को प्राप्त करते हैं । आप हवि न देने वाले कृपण को अत्रिऋषि के वशीभूत करें और अन्नों को चुराने वाले दस्युओं को वशीभूत करें ॥१० ॥

[सूक्त - ८]

[ऋषि - इष आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द -जगती ।]

३७२०. त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१ ॥

हे बल से उत्पन्न अग्निदेव ! यज्ञ कर्म करने वाले पुरातन ऋषिगण अपने संरक्षण के निमित्त आपको भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं ।आप चिर पुरातन, आनन्ददायक, जगत् को धारण करने वाले, पूज्य, श्रेष्ठ गृह-पालक हैं ॥१ ॥

३७२१. त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! यजमानों ने आपको यज्ञ-वेदी में स्थापित किया है । आप अतिथि के समान पूजनीय और गृह स्वामी हैं । आप दीप्तिमान् ज्वालाओं वाले, उच्च केतु रूप ज्वालाओं वाले, अनेक रूप वाले, धन देने वाले, अतीव सुखकारी, समिधाओं को जलाने वाले और हमें सब प्रकार से उत्तम संरक्षण देने वाले हैं ॥२ ॥

३७२२. त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३ ॥

हे उत्तम धनों के स्वामी अग्निदेव ! मनुष्यगण आपकी स्तुति करते हैं । आप यज्ञ-कर्मों को जानने वाले, सत्य-विवेचक, रत्न-दान करने वालों में श्रेष्ठ, गुह्य रूप में रहने वाले, सबके लिए दर्शनीय, अति शब्दवान्, उत्तम रूप से पूजनीय और घृत-सिञ्चन से अति शोभायमान होते हैं ॥३ ॥

३७२३. त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम ।
स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप सबको धारण करने वाले हैं । हम प्रचुर स्तोत्रों से स्तुति करते हुए, नमस्कारपूर्वक अभिवादन करते हुए आपके सम्मुख आते हैं । हे अंगिराओं में श्रेष्ठ देव ! आप भली प्रकार प्रदीप्त होकर उत्तम दीप्तिमान् ज्वालाओं से हमारी हवियों को ग्रहण करें । हम मनुष्यों को कीर्ति प्रदान करें ॥४ ॥

३७२४. त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत।
पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

हे अग्निदेव ! विविध रूपों वाले आप सभी यजमानों को पहले के समान अन्नों से अभिपूरित करते हैं। आप बारम्बार सभी कर्मों में पूजित होते हैं। आप अपनी सामर्थ्य से विविध अन्नों के स्वामी हैं। आपकी तेजस्वी दीप्तियों को कोई दबा सकने में समर्थ नहीं है ॥५॥

३७२५. त्वामग्ने समिधानं यविष्ठ्य देवा दूतं चक्रिरे हव्यवाहनम्।
उरुज्रयसं घृतयोनिमाहुतं त्वेषं चक्षुर्दधिरे चोदयन्मति ॥६॥

हे युवा अग्निदेव ! आप उत्तम प्रकार से प्रज्वलित होने वाले हैं। देवों ने आपको हवि वहन करने वाले दूत रूप में प्रतिष्ठित किया है। घृत आधार से प्रदीप्त होकर हवि ग्रहण करने वाले हे अग्निदेव ! अत्यन्त वेगवान् और तेजस्वीरूप आपको लोगों ने बुद्धि का प्रेरक और चक्षुरूप मानकर धारण किया है ॥६॥

[अग्नि के प्रकाश से ही सभी वस्तुएँ देखी जाती हैं। नेत्रों के देखने की शक्ति को भी नेत्र ज्योति कहते हैं। इसलिए अग्नि को चक्षु रूप कहा गया है।]

३७२६. त्वामग्ने प्रदिव आहुतं घृतैः सुम्नायवः सुषमिधा समीधिरे।
स वावृधान ओषधीभिरुक्षितो३भि ज्रयांसि पार्थिवा वि तिष्ठसे ॥७॥

हे अग्निदेव ! सुख की अभिलाषा करने वाले पुरातन यजमान आपको उत्तम समिधाओं से, आहुतियों और घृत से प्रदीप्त करते हैं। ओषधियों आदि से सिञ्चित होकर वृद्धि को प्राप्त हुए, आप पृथ्वी की सतहों पर अन्नों में व्याप्त होकर अवस्थित हैं ॥७॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि** - गय आत्रेय। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - अनुष्टुप्, ५, ७ पंक्ति।]

३७२७. त्वामग्ने हविष्मन्तो देवं मर्तास ईळते। मन्ये त्वा जातवेदसं स हव्या वक्ष्यानुषक् ॥१॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! हम मनुष्य हवि पदार्थों से युक्त होकर आपकी उत्तम स्तुति करते हैं। आप सम्पूर्ण उत्पन्न जीवों को जानने वाले हैं। आप हमारी हवियों को देवों तक पहुँचाने वाले हैं ॥१॥

३७२८. अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२॥

सभी यज्ञ जिन अग्निदेव का अनुगमन करते हैं। अन्न और यश की कामना करने वाले यजमानों के हव्य जिन्हें प्राप्त होते हैं; वे अग्निदेव हविदाताओं और कुश उच्छेदक यजमानों के घर, 'होता' रूप में प्रतिष्ठित होते हैं ॥२॥

३७२९. उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी। धर्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३॥

मनुष्यों का पोषण करने वाले अग्निदेव उत्तम रीति से यज्ञ-सम्पन्न करने वाले हैं। दो अरणियाँ इन अग्निदेव को नये शिशु की तरह उत्पन्न करती हैं ॥३॥

३७३०. उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम्। पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४॥

हे अग्निदेव ! कुटिल गति वाले सर्प या अश्व के शिशु के समान आप अति दुर्गमता से धारण किए जाने वाले हैं। जौ के खेत में प्रविष्ट हुआ पशु जैसे जौ को खा जाता है, उसी प्रकार वनों में प्रविष्ट हुए आप वनों को भस्म कर देते हैं ॥४॥

३७३१. अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५ ॥

अग्नि की धूम्रयुक्त शिखायें सर्वत्र व्याप्त होती हैं । लोहार अस्त्रादि द्वारा अग्नि को प्रवृद्ध करते हैं । यह संवर्द्धित अग्नि तीनों लोकों में व्याप्त होती है । कर्मकार (लुहार आदि) जिस प्रकार धौंकनी (धमन यन्त्र) द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, ये अग्निदेव उसी प्रकार स्वयं तेजस्वी बन जाते हैं ॥५ ॥

३७३२. तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः । द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपके मित्र भाव से युक्त होकर आपके निमित्त प्रशंसात्मक स्तोत्रों से आपका स्तवन करते हैं । आप अपने रक्षण सामर्थ्यों से संरक्षित कर हमें पाप कर्मों से पार करें और द्वेष करने वाले बाहरी शत्रुओं से भी पार करें ॥६ ॥

३७३३. तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत्स पोषयद्भुवद्वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! आप हम मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न बनायें । आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करें और हमें सब प्रकार से पोषण प्रदान करें । अन्नों की प्राप्ति हमारे निमित्त सुगम हो । हे अग्ने ! युद्धों में हमें अग्रणी बनाने का यत्न करें ॥७ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - गय आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्, ४, ७ पंक्ति ।]

३७३४. अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१ ॥

हे निर्बाध गति वाले अग्निदेव ! ओजस्विता प्रदान करने वाली सम्पदा हमें प्रदान करें । हे देव ! हमें प्रशंसनीय धन और शक्ति प्राप्ति के मार्ग का दिग्दर्शन करायें ॥१ ॥

३७३५. त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्य१ मारुहत्क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥२ ॥

हे अग्ने ! आप अत्यन्त विलक्षण कर्मों का सम्पादन करने वाले हैं ।हमारे उत्तम यज्ञादि कर्मों से प्रसन्न होकर आप हमें श्रेष्ठ बल प्रदान करें ।आप असुरों को पराभूत करने में समर्थ हैं ।आप सूर्य सदृश चारों ओर व्याप्त हों ॥२॥

३७३६. त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय । ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करने वाले मनुष्यों को आप श्रेष्ठ धनादि प्राप्त कराते हैं । आपकी स्तुति करने वाले हम भी उत्तम धनादि की वृद्धि करते हुए पुष्टि को प्राप्त हों ॥३ ॥

३७३७. ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद्येषां बृहत्सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥४ ॥

हे आह्लाद प्रदायक अग्निदेव ! जो मनुष्य उत्तम वाणियों से आपका स्तवन करते हैं, वे अश्वयुक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं । आपके उत्तम बलों से वे बलवान् होते हैं । उनकी उत्तम कीर्ति स्वर्ग से भी अधिक विस्तृत होती है; ऐसे लोगों को आप निश्चय ही जानते हैं ॥४ ॥

३७३८. **तव त्ये अग्ने अर्चयो भ्राजन्तो यन्ति धृष्णुया ।**

परिज्मानो न विद्युतः स्वानो रथो न वाजयुः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी अत्यन्त चंचल और दीप्तिमती रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होती हैं । वे विद्युत् के समान शब्द करती और अन्न की कामना से गमनशील मनुष्यों और वेगवान् रथ के समान सर्वत्र संचरित होती हैं ॥५ ॥

३७३९. **नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये ।**

अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप शीघ्र ही हमारी रक्षा करें । हमें धनादि ऐश्वर्य से युक्त करके हमारी आपत्तियों का निवारण करें । हमारे पुत्र-बन्धु आदि आपकी स्तुतियाँ करते हुए सम्पूर्ण अभिलाषाओं को प्राप्त करने वाले हों ॥६ ॥

३७४०. **त्वं नो अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवान आ भर ।**

होतर्विभ्वासहं रयिं स्तोतृभ्यः स्तवसे च न उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥७ ॥

हे अंगिराओं में श्रेष्ठ अग्निदेव ! पुरातन ऋषियों ने आपकी स्तुतियाँ की हैं, आप उपास्य रहे हैं । वैभवशाली शत्रुओं का ऐश्वर्य आप हमें प्रदान करें । हम यज्ञादि कार्यों में होता रूप में आपकी स्तुति करने वाले हैं । हमारी स्तुतियों को बल दें । युद्ध में भी अपने बलों से हमारी वृद्धि करें ॥७ ॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि** - सुतम्भर आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - जगती ।]

३७४१. **जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।**

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः शुचिः ॥१ ॥

प्रजा की रक्षा करने वाले, जागृति एवं दक्षता प्रदान करने वाले अग्निदेव याजकों को प्रगति का नवीन पथ प्रशस्त करने के लिए प्रकट हुए हैं । घृत की आहुतियों से अधिक प्रदीप्त होकर विराट् आकाश का स्पर्श करने में समर्थ, तेज से युक्त पवित्रता प्रदान करने वाले आप साधकों के लिए (अनुदान देने हेतु) चमकते हैं ॥१ ॥

३७४२. **यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।**

इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥२ ॥

यज्ञ की पताका वाले रथ पर देवताओं के साथ बैठने वाले पुरोहित अग्निदेव को, याजक तीन स्थानों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में भली-भाँति प्रज्वलित करते हैं । सत्कर्म में निरत यज्ञ करने के इच्छुक अग्निदेव अपने स्थान पर (यज्ञकुण्ड में) यज्ञ करने के लिए स्थित होते हैं ॥२ ॥

३७४३. **असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचिर्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।**

घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद्दिवि श्रितः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप मातृ रूप दो अरणियों से निर्विघ्न रूप से जन्म लेते हैं । आप मेधावी, पवित्र करने वाले और स्तुत्य हैं । आपको यजमान अपनी हितकामना से प्रज्वलित करते हैं । पूर्वकालीन ऋषियों ने आपको घृत से प्रवृद्ध किया था । आहुतियों से प्रवृद्ध आपका धूम्र, केतु रूप में आकाश तक व्याप्त होता है ॥३ ॥

३७४४. **अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुयाग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।**

अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनोऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥४ ॥

सब श्रेष्ठ कार्यों को सिद्ध करने वाले अग्निदेव हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों । सभी मनुष्य घर-घर में अग्निदेव की स्थापना करते हैं । वे हव्यवाहक अग्निदेव देवों के दूत रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । स्तोतागण ज्ञान-सम्पन्न यज्ञ कर्म में अग्निदेव की सम्यक् स्तुतियाँ करते हैं ॥४ ॥

३७४५. तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वचस्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।

त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्महीरा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे अतिशय मधुर वचन आपके निमित्त निवेदित हैं । ये स्तोत्र आपके हृदय में सुख प्रदायक हों । जैसे नदियाँ समुद्र को पूर्ण कर उसका बल बढ़ाती हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियाँ आपको पूर्ण कर आपका बल बढ़ाने वाली हों ॥५ ॥

३७४६. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने ।

स जायसे मथ्यमानः सहो महत्त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! अंगिरावंशी ऋषियों ने गहन स्थलों में स्थित और विभिन्न वनस्पतियों में व्याप्त आपको, अन्वेषण करके प्राप्त किया । आप अत्याधिक बलपूर्वक घर्षण करने के उपरान्त अरणियों से उत्पन्न होते हैं । अतएव मनीषीगण आपको शक्ति के पुत्र कहकर सम्बोधित करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि - सुतम्भर आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३७४७. प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म ।

घृतं न यज्ञ आस्ये३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम् ॥१ ॥

ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से अतिशय महान्, यज्ञ-योग्य, जल की वृष्टि करने वाले, प्राणों के आधार और अभीष्टवर्षक हैं । यज्ञ के मुख में सिञ्चित घृत धारा के सदृश हमारी स्तुतियाँ अग्निदेव के लिए प्रीतिकारक हों ॥१ ॥

३७४८. ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।

नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हमारी स्तुतियों को आप जानने वाले हैं, हमारी स्तुतियों का अनुमोदन करें । प्रचुर जल-वृष्टि के लिए हमारे अनुकूल हों । हम बल-संयुक्त होकर यज्ञ में कोई विघ्न उत्पन्न नहीं करते और न ही वैदिक कार्य के विधान को भंग करते हैं । आप अत्यन्त दीप्तिमान् हैं और कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । आपका हम स्तवन करते हैं ॥२ ॥

३७४९. कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।

वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप जल-वृष्टि करने वाले हैं । आप हमारे किस श्रेष्ठ यज्ञ-कर्म द्वारा हमारे नवीन स्तोत्रों को जानने वाले होंगे ? ऋतुओं का संरक्षण करने वाले अग्निदेव हमें जानें । सर्वदा यजन करने वाले हम, क्या धनों के अधीश्वर अग्निदेव को नहीं जानते ? (अर्थात् निश्चित ही जानते हैं ।) ॥३ ॥

३७५०. के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।

के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! कौन शत्रुओं को बांधने वाले हैं ? कौन लोगों का पोषण करते हैं ? कौन अति दीप्तिमान् और दानशील हैं ? कौन असत्य-धारकों की रक्षा करते हैं ? असत्य वचनयुक्तों की रक्षा कौन कर सकता है ? (अर्थात् आपके कृपा पात्र व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं) ॥४ ॥

३७५१. सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! सर्वत्र व्याप्त आपके ये मित्रजन आपकी उपासना न करने से दुःखी हुए थे, तदनन्तर आपकी उपासना करके वे सुखों से युक्त हुए । हम आपके निमित्त सरल आचरण करते हैं; फिर भी जो हमारे साथ कुटिल वचनों से युक्त व्यवहार करते हैं, वे शत्रु स्वयं अपना अनिष्ट करके नष्ट होते हैं ॥५ ॥

३७५२. यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप दीप्तिमान् और इच्छित कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । जो यजमान हृदय से नमस्कारयुक्त स्तोत्रों से आपका स्तवन करते हैं और यज्ञ का सम्यक् पालन करते हैं, उनका घर विस्तीर्ण हो । आपकी भली प्रकार परिचर्या करने वाले वे यजमान कामनाओं को सिद्ध करने वाले पुत्रादि प्राप्त करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - सुतम्भर आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

३७५३. अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोता अर्चन करते हुए आपका आवाहन करते हैं एवं स्तुति करते हुए हम अपनी रक्षा के निमित्त आपको प्रज्वलित करते हैं ॥१ ॥

३७५४. अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥२ ॥

द्रव्य लाभ की कामना से हम आकाशव्यापी, तेजस्वी अग्निदेव के सिद्धि प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तवन करते हैं ॥२ ॥

३७५५. अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३ ॥

यज्ञ के साधन रूप और मनुष्यों के सहायक, अग्निदेव हमारी स्तुतियों को सुनें और देवताओं तक हमारे हव्य को पहुंचाएं ॥३ ॥

३७५६. त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हर्ष प्रदायक, वरणीय और यज्ञ साधक आप महान् हैं । सब यजमान आपको प्रतिष्ठित कर यज्ञ अनुष्ठान पूर्ण करते हैं ॥४ ॥

३७५७. त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अन्नों को प्रदान करने वाले और उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किये जाने योग्य हैं । मेधावी स्तोतागण सम्यक् स्तुतियों से आपको प्रवृद्ध करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमें उत्तम पराक्रमयुक्त तेजस्वी बलों को प्रदान करें ॥५ ॥

३७५८. अग्ने नेमिररॉं इव देवॉंस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार चक्र की नाभि के चारों ओर 'आरे' लगे होते हैं, उसी प्रकार आप देवों के सब ओर व्याप्त होते हैं । आप हमें विविध प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - १४]

[ऋषि - सुतम्भर आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

३७५९. अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! इन अविनाशी अग्निदेव को उत्तम स्तोत्रों से प्रवृद्ध करें । भली प्रकार प्रज्वलित होने पर वे हमारे हव्य पदार्थों को देवों तक पहुंचाएं ॥१ ॥

३७६०. तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥२ ॥

साधकगण यज्ञों में दिव्य गुण-सम्पन्न, अमर और मनुष्यों के मध्य में परम पूजनीय उन अग्निदेव की उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ॥२ ॥

३७६१. तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळहवे ॥३ ॥

अनेकों स्तोतागण यज्ञ में स्रुक् के साथ घृत-धारा बहाते हुए देवों के लिए हवियाँ वहन करने के उद्देश्य से दिव्य गुण-सम्पन्न अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥३ ॥

३७६२. अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्दद्गा अपः स्वः ॥४ ॥

अरणि-मंथन से उत्पन्न अग्निदेव अपने तेज से अन्धकार और राक्षसों को विनष्ट करते हुए प्रकाशित होते हैं । इन अग्निदेव से ही किरण, जल और सूर्यदेव प्रकट होते हैं ॥४ ॥

३७६३. अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! आप स्तुति किये जाने योग्य और ज्ञानी अग्निदेव का पूजन करें । वे घृत की आहुतियों से प्रदीप्त ज्वालाओं वाले हैं । वे अग्निदेव हमारे आवाहन को सुनें और जानें ॥५ ॥

३७६४. अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६ ॥

ऋत्विग्गण स्तोत्रों के साथ घृत की आहुतियों द्वारा, स्तुति की कामना वाले ध्यानगम्य देवों के साथ सर्वद्रष्टा अग्निदेव को प्रवृद्ध करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १५]

[ऋषि - धरुण आङ्गिरस । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३७६५. प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥१ ॥

ये अग्निदेव हविरूप घृत से प्रसन्न होते हैं । ये अतिशय बलशाली, अत्यन्त सुखकारी, धनों के अधीश्वर, हव्यवाहक, गृहप्रदाता, विधाता, क्रान्तदर्शी, यशस्वी, श्रेष्ठ, जानने योग्य और मेधावी हैं । ऐसे अग्निदेव के लिए हम स्तुतियों की रचना करते हैं ॥१ ॥

३७६६. ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजातॉं अभि ये ननक्षुः ॥२ ॥

जो यजमान ऋत्विजों द्वारा स्वर्ग को धारण करने वाले, यज्ञ में आसीन, नेतृत्वकर्त्ता, देवों को आवाहित कर प्रतिष्ठित करते हैं, वे (यजमान) यज्ञ के धारक, सत्यस्वरूप प्रतिष्ठित अग्निदेव को स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥२ ॥

३७६७. अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥३ ॥

जो यजमान श्रेष्ठ अग्नि के निमित्त दुष्टों द्वारा दुष्प्राप्य हविष्यान्न अर्पित करते हैं, वे यजमान निष्पाप शरीर से युक्त होकर वृद्धि पाते हैं । वे नवजात अग्निदेव क्रुद्ध सिंह की भाँति हमारे सभी संगठित शत्रुओं को विनष्ट करें और वर्तमान शत्रुओं को हमसे दूर स्थित करें ॥३ ॥

३७६८. मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४ ॥

सर्वत्र प्रख्यात ये अग्निदेव माता के सदृश सभी जीवों का पोषण करते हैं । ये जन-जन को धारण करने और सबके द्रष्टा रूप होने के कारण स्तुत्य हैं । प्रज्वलित होकर ये सभी अन्नों को जीर्ण (पक्व) कर देते हैं और विविध रूपों में ये अपनी शक्ति से परिव्याप्त होते हैं ॥४ ॥

३७६९. वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५ ॥

विस्तीर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाले, धन के धारक हे दिव्य अग्निदेव ! हविष्यान्न आपके सम्पूर्ण बलों की उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे तस्कर अपहृत धन को गुफा में छिपाकर उसकी रक्षा करता है । हे अग्निदेव ! हमें विपुल धन-प्राप्ति का उत्तम मार्ग प्रदर्शित करें; अत्रि मुनि को प्रसन्न करें ॥५ ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - पूरु आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

३७७०. बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये । यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥१ ॥

याजकगण मित्र के समान, तेजस्वी अग्निदेव को स्तुति के लिए अपने सम्मुख स्थापित करके उसमें प्रचुर मात्रा में हविष्यान्न की आहुति प्रदान करते हैं ॥१ ॥

३७७१. स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥२ ॥

जो अग्निदेव देवताओं के लिए अनुकूल मार्गों से हव्यादि पदार्थों को पहुँचाते हैं, जो बाहुबल की दीप्तियों से प्रकाशित होते हैं, वे अग्निदेव यजमानों के लिए देवों का आह्वान करने वाले हैं । वे सूर्यदेव के सदृश सम्पूर्ण वरणीय धनों को प्रदान करने वाले हैं ॥२ ॥

३७७२. अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥३ ॥

सब ऋत्विग्गण हव्य पदार्थों और उत्तम स्तोत्रों द्वारा बहुत शब्द युक्त विशिष्ट अग्निदेव में बलों को भली-भाँति स्थापित करते हैं । हम सब इस प्रवृद्ध, तेजस् सम्पन्न और ऐश्वर्यवान् अग्निदेव के साथ मित्र भाव में रहकर स्तुतियाँ करते हैं ॥३ ॥

३७७३. अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना। तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥४॥

हे अग्निदेव ! हमें अभिलषित, श्रेष्ठ, पराक्रमयुक्त बलों से युक्त करें । जैसे पृथ्वी और आकाश महान् सूर्यदेव के आश्रय पर अवस्थित हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण अन्न और धन आपके आश्रय से हम प्राप्त करते हैं ॥४॥

३७७४. नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

हे अग्निदेव ! हम यजमान आपकी स्तुति करते हैं । आप शीघ्र ही हमारे यज्ञ में अधिष्ठित हों और हमारे निमित्त वरणीय धन को धारण करें । हम स्तोतागण आपकी स्तुति करते हैं । आप युद्ध में हमें रक्षण-साधनों से समृद्ध करें ॥५॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि** - पुरु आत्रेय । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

३७७५. आ यज्ञैर्देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये। अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार पूरु ऋषि ने अपने द्वारा सम्पादित उत्तम यज्ञ में अपनी रक्षा की कामना से आपकी स्तुति की, उसी प्रकार मनुष्यगण भी अपने यज्ञ में अपनी रक्षा के लिए उत्तम स्तुतियों के साथ आपका आवाहन करते हैं ॥१॥

३७७६. अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२॥

हे धर्मानुयायी स्तोताओ ! आप अत्यन्त श्रेष्ठ और यशस्वी कर्म वाले हैं । जो स्तुत्य हैं, जिनका तेज अति विलक्षण है और जो दुःखरहित हैं, ऐसे उन अग्निदेव की आप (स्तोतागण) अपनी श्रेष्ठ बुद्धियुक्त वाणियों से स्तुति करें ॥२॥

३७७७. अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥

जो अग्निदेव अपने बल और स्तुतियों से सामर्थ्ययुक्त हैं, जो सूर्यदेव की भाँति दीप्तिमान् हैं; जिनकी विस्तीर्ण ज्वालाओं और तेजों से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशयुक्त होता है, इनके वर्चस् से सूर्यदेव भी प्रकाशयुक्त हुए हैं ॥३॥

३७७८. अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४॥

श्रेष्ठ बुद्धि-सम्पन्न ऋत्विग्गण उन दर्शनीय अग्निदेव का यजन करके धन-संयुक्त रथ प्राप्त करते हैं । हव्यवाहक वे अग्निदेव सम्पूर्ण प्रजाओं द्वारा सम्यक् रूप से प्रशंसित होते हैं ॥४॥

३७७९. नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

हे अग्निदेव ! जिस धन को स्तोतागण आपकी स्तुतियों द्वारा प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमें शीघ्र प्राप्त करायें । हे बल संयुक्त अग्निदेव ! हमें अभीष्ट अन्नों को देकर रक्षित करें । हमें कल्याणकारी पशुधन से संयुक्त करें और संग्राम में हमारी वृद्धि का यत्न करें ॥५॥

[सूक्त - १८]

[ऋषि - मृक्तवाह द्वित आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

३७८०. प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१ ॥

ये अग्निदेव बहु प्रिय (सभी के प्रिय) हैं । ये प्रातः सवन में प्रजाओं में अतिथि के तुल्य पूजनीय और स्तुत्य हैं । ये अविनाशी अग्निदेव यजमानों के मध्य सम्पूर्ण हव्य-पदार्थों की कामना करते हैं ॥१ ॥

३७८१. द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक्स्तोता चित्ते अमर्त्य ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! अत्रि पुत्र द्वित ऋषि आपके निमित्त पवित्र हव्य लेकर पहुँचते हैं । उन्हें आप अपने बल से महत्ता प्रदान करें, क्योंकि वे आपके निमित्त सर्वदा ही सोमरस और स्तुतियाँ प्रस्तुत करते हैं ॥२ ॥

३७८२. तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३ ॥

हे अश्वदाता अग्निदेव ! आप दीर्घ आयु वाले और तेजस्वी स्वरूप वाले हैं । हम अपने धनी यजमानों के लिए आपका उत्तम स्तुतियों से आवाहन करते हैं; जिससे उन धनिकों का रथ जीवन-संग्राम में निर्बाधित होकर गमन करता रहे ॥३ ॥

३७८३. चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४ ॥

जो ऋत्विग्गण अनेक प्रकार से यज्ञादि कार्यों का सम्पादन करते रहते हैं, जो उत्तम स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञादि कर्मों की रक्षा कर इन्हें चैतन्य बनाये रखते हैं, वे ऋत्विग्गण अपने यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में, विस्तृत कुशाओं पर विपुल हविष्यान्न स्थापित करते हैं ॥४ ॥

३७८४. ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५ ॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! आपकी स्तुति करने के बाद जो धनिक यजमान हमें पचास अश्व प्रदान करता है । आप उस यजमान को दीप्तिमान् और बहुत सेवकों से युक्त महान् अन्न प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - १९]

[ऋषि - वव्रि आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - गायत्री; ३-४ अनुष्टुप्; ५ विराड्रूपा ।]

३७८५. अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थेमातुर्वि चष्टे ॥१ ॥

वे अग्निदेव माता रूप पृथ्वी की गोद में प्रकट होकर सबको देखते हैं । वे अग्निदेव वव्रि ऋषि की स्थिति के अनुरूप उनकी हवियाँ ग्रहण करें, अथवा शरीर धारियों के शरीर की स्थिति के अनुरूप उनका पोषण करें ॥१ ॥

३७८६. जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपके प्रभाव को जानकर जो याज्ञिक सर्वदा आपका आवाहन करते हैं और हवि तथा स्तोत्रों

[सूक्त - २१]

[ऋषि - सस आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति ।]

३७९४. मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! हम मनु के सदृश आपको स्थापित करते और मनु के सदृश ही प्रज्वलित करते हैं । हे अंगिरा अग्निदेव ! मनु के सदृश ही देवों के अभिलाषी यजमानों के निमित्त आप देवों का यजन करें ॥१ ॥

३७९५. त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे । स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! स्तोत्रों द्वारा भली प्रकार प्रसन्न होकर आप मनुष्यों के लिए प्रदीप्त होते हैं । भली प्रकार उत्पन्न हे अग्निदेव ! घृतयुक्त हवियों से भरे पात्र आपको निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

३७९६. त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत । सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३ ॥

हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! सब देवों ने प्रसन्न होकर, आपको देवों के दूत रूप में नियुक्त किया है । अतः यज्ञों में यजमान आपकी परिचर्या करते हुए देवों को बुलाने के लिए आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

३७९७. देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।

समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! मनुष्यगण देवों का यजन करने के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं । आप हवियों द्वारा प्रवृद्ध होकर दीप्तिमान् होते हैं । आप 'सस' ऋषि के यज्ञ की वेदी में प्रतिष्ठित हों अथवा कृषि-हरीतिमा के रूप में प्रकट हों ॥४ ॥

[सूक्त - २२]

[ऋषि - विश्वसामा आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति ।]

३७९८. प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे । यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१ ॥

हे विश्वसामा ऋषे ! आप पवित्र दीप्ति युक्त उन अग्निदेव का अत्रि ऋषि के समान पूजन करें । ये अग्निदेव सब ऋषियों द्वारा स्तुत्य हैं । ये देवों के आवाहक और अत्यन्त पूजनीय हैं ॥१ ॥

३७९९. न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् । प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२ ॥

हे यजमानो ! सब प्राणियों को जानने वाले, दिव्य यज्ञकर्त्ता अग्निदेव को आप स्थापित करें; जिससे देवों के लिए प्रीतिकर और यज्ञ के साधन रूप हवि-पदार्थ हम अग्निदेव के निमित्त प्रदान करें ॥२ ॥

३८००. चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये । वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप ज्ञान से सम्पन्न और मन से दीप्तिमान् हैं । अपनी रक्षा के निमित्त हम सब मनुष्य आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं और आपको श्रेष्ठ हवियों से सन्तुष्ट करते हुए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

३८०१. अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।

तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४ ॥

हे बलपुत्र अग्निदेव ! आप हमारे इन उत्तम वचनों को जानें । हे सुन्दर हनु (ठोड़ी) और नासिका वाले गृहपालक अग्निदेव ! अत्रि वंशज आपको उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं और उत्तम वाणियों द्वारा सुशोभित करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - २३]

[ऋषि - द्युम्न विश्वचर्षणि आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप्; ४ पंक्ति ।]

३८०२. अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! 'द्युम्न' ऋषि के लिए शत्रुओं का ऐश्वर्य जीतकर लाने वाला एक वीर पुत्र प्रदान करें; जो स्तोत्रों से युक्त होकर युद्धों में सम्पूर्ण शत्रुओं को पराभूत कर सके ॥१ ॥

३८०३. तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप सत्यस्वरूप, अद्‌भुत और गवादियुक्त अन्नों को देने वाले हैं । आप हमारे निमित्त शत्रुओं की सेना का ऐश्वर्य जीतकर हमें प्रदान करें ॥२ ॥

३८०४. विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों का आह्वान करने वाले 'होता' रूप और सबके हितकारी हैं । ये सम्यक् प्रीति रखने वाले और यज्ञार्थ कुश लाने वाले ऋत्विग्गण आपसे वरणीय धनों की याचना करते हैं ॥३ ॥

३८०५. स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! वे विश्वचर्षणि ऋषि शत्रुओं के संघर्षक बल को धारण करें । हे तेजस्वी अग्निदेव ! हमारे घरों में धनों का प्रकाश विस्तीर्ण करें । हे पापशोधक अग्निदेव ! आप उत्तम तेजों से युक्त होकर देदीप्यमान हों ॥४ ॥

[सूक्त - २४]

[ऋषि - बंधु - सुबन्धु - श्रुतबन्धु तथा विप्रबन्धु गौपायन अथवा लौपायन । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

३८०६. अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे अति निकट रहने वाले हों, हमारे श्रेष्ठ संरक्षक और मंगलकारी हों ॥१ ॥

३८०७. वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥२ ॥

सभी को आश्रय देने वाले, धनवानों में अग्रगण्य हे अग्निदेव ! आप हमारे पास सहजता से आएँ और तेजस्वितायुक्त होकर हमें धन प्रदान करें ॥२ ॥

३८०८. स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥३ ॥

हे अग्निदेव !हम लोगों को आप जानें । हमारे आवाहन को सुनें और समस्त पापाचारियों से हमें रक्षित करें ॥३ ॥

३८०९. तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४ ॥

हे तेजस्वी और प्रकाशवान् अग्निदेव ! मित्र आदि स्नेही परिजनों के लिए सुख की कामना करते हुए निश्चित ही हम आपकी प्रार्थना करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - २५]

[ऋषि - वसूयु आत्रेय । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप् ।]

३८१०. अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१ ॥

हे यजमानो ! अपनी रक्षा की कामना से आप दिव्य अग्निदेव का स्तवन करें । वे अग्निदेव हमें आश्रय-स्थान प्राप्त करायें । ऋषियों द्वारा पुत्र रूप में पोषित, सत्य-स्वरूप वे अग्निदेव हमें शत्रुओं से पार लगायें ॥१ ॥

३८११. स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२ ॥

पूर्वकाल के ऋषियों और देवों ने जिन अग्निदेव को प्रज्वलित किया था । जो अग्निदेव देवों के आह्वानकर्त्ता, प्रसन्नतादायी जिह्वा (ज्वाला) वाले, उत्तम दीप्तियों वाले तथा शुभ्र प्रभा वाले हैं । वे अग्निदेव सत्य-संकल्पों से अटल हैं ॥२ ॥

३८१२. स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने वाले और वरणीय हैं । आप अपनी श्रेष्ठ धारणायुक्त और उत्कृष्ट बुद्धि से हमारे हव्यादियुक्त स्तोत्र से संतुष्ट होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

३८१३. अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् । अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४ ॥

जो अग्निदेव, देवों में प्रतिष्ठित हैं और मनुष्यों के आवाहन से उनके बीच भी प्रविष्ट हैं । जो देवों के लिए हव्यादि पदार्थ वहन करने वाले हैं । हे यजमानो ! उन अग्निदेव की आप बुद्धिपूर्वक स्तुतियों द्वारा सेवा करें ॥४ ॥

३८१४. अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् । अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५ ॥

अग्निदेव हविदाता यजमानों को ऐसा पुत्र दें, जो विविध अन्नों से युक्त, बहुत स्तोत्र करने वाला, उत्तम, अवध्य और उत्तम कर्मों से पूर्वजों का यश बढ़ाने वाला हो ॥५ ॥

३८१५. अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६ ॥

अग्निदेव हम लोगों को ऐसा पुत्र दें, जो हमारा साथ देने वाला, शत्रुओं को परास्त करने वाला और सत्यपालक हो । साथ ही अग्निदेव हमें शत्रु-विजेता, अपराजेय, द्रुतगामी अश्व भी प्रदान करें ॥६ ॥

३८१६. यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७ ॥

अग्निदेव की शीघ्र प्रभावकारी स्तोत्रों से स्तुति की जाती है । वे दीप्तिमान् अग्निदेव, हमें अपरिमित धन-धान्य प्रदान करने की कृपा करें ॥७ ॥

३८१७. तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी शिखायें सर्वत्र दीप्ति से युक्त हैं । आप सोमलता कूटने वाले पाषाण की तरह महत्ता से युक्त हैं । आप स्वयं प्रकाश से युक्त हैं । आप मेघ-गर्जन के सदृश शब्द से युक्त है ॥८ ॥

३८१८. एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९ ॥

हम धन के अभिलाषी मनुष्य बलवान् अग्निदेव की स्तोत्रों से भली प्रकार स्तुति करते हैं। वे उत्तमकर्मा अग्निदेव हम लोगों को शत्रुओं से वैसे ही पार करें, जैसे नाव नदी से पार कर देती है ॥९ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि** - वसूयु आत्रेय। **देवता** - अग्नि; ९ विश्वेदेवा। **छन्द** - गायत्री।]

३८१९. अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१ ॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! देवताओं को प्रसन्न करने वाली ज्वालारूपी जिह्वा द्वारा, देवताओं को आमंत्रित करें और उनके निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥१ ॥

३८२०. तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥२ ॥

घृत से उत्पन्न होने वाले, अद्‌भुत तेजस्वी, सबको देखने वाले हे अग्ने ! आपकी हम प्रार्थना करते हैं। हवि के सेवन के लिए आप देवों को यहाँ बुलायें ॥२ ॥

३८२१. वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३ ॥

हे ज्ञानी अग्ने ! यज्ञानुरागी, तेजस्वी तथा महान् आपको हम यज्ञ में प्रज्वलित करते हैं ॥३ ॥

३८२२. अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये। होतारं त्वा वृणीमहे ॥४ ॥

हे अग्ने ! आप सम्पूर्ण देवों के साथ हविदाता यजमान के लिए यज्ञ में आकर अधिष्ठित हों। हम देवों का आवाहन करने वाले होतारूप में आपका वरण करते हैं ॥४ ॥

३८२३. यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप सोम-सवन करने वाले यजमान के लिए श्रेष्ठ पराक्रम को धारण करें और आप देवों के साथ यज्ञ में बिछाये कुशाओं पर विराजमान हों ॥५ ॥

३८२४. समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः ॥६ ॥

हे सहस्रों शत्रु-जेता अग्निदेव ! आप हव्य-पदार्थों से प्रदीप्त होकर, स्तोत्रों से प्रशंसित होकर, देवों के दूत रूप में सभी धर्म-अनुष्ठानों को सम्यक्‌रूप से पुष्ट करते हैं ॥६ ॥

३८२५. न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम्। दधाता देवमृत्विजम् ॥७ ॥

हे यजमानो ! आप सब अग्निदेव को भली प्रकार स्थापित करें। वे अग्निदेव प्राणिमात्र को जानने वाले, यज्ञ-सम्पादक, अति युवा तथा दीप्तिमान् हैं ॥७ ॥

३८२६. प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः। स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८ ॥

हे ऋत्विजो ! आप अग्निदेव के विराजमान होने के लिए कुश बिछाये, जिससे तेजस्वी स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न आज देवों को भली प्रकार प्राप्त हो ॥८ ॥

३८२७. एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः। देवासः सर्वया विशा ॥९ ॥

मरुद्‌गण, दोनों अश्विनीकुमार, मित्रदेव, वरुणदेव और अन्यान्य सभी देवगण अपनी प्रजाओं के साथ हमारे यज्ञ-स्थान में अधिष्ठित हों ॥९ ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - त्र्यरुण त्रैवृष्ण, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य तथा अश्वमेध भारत अथवा अत्रिभौम । **देवता** - अग्नि; ६ इन्द्राग्नी । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ४-६ अनुष्टुप् ।]

इस सूक्त की ऋचा क्र० १, २, ३ में 'त्रिवृष्ण', 'त्र्यरुण' तथा 'त्रसदस्यु' संबोधन आये हैं। पौराणिक सन्दर्भ में राजर्षि त्रिवृष्ण के पुत्र ऋषि त्र्यरुण हैं, इन्हें त्रिधातु का पुत्र भी कहा गया है। त्र्यरुण के पुत्र 'त्रसदस्यु' कहे गये हैं। उक्त पौराणिक संदर्भ में भी इन ऋचाओं के अर्थ किये जाते हैं। भावार्थ के अनुसार यह सभी संबोधन अग्निदेव के विभिन्न रूपों के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे-त्रिवृष्ण - तीन स्थानों (द्यु, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी) पर वर्षणशील ऊर्जा प्रवाह (कॉस्मिक शॉवर) को कहा जाता है। वे ऊर्जा प्रवाह ही तीनों स्थानों के धारणकर्त्ता हैं, इसलिए उन्हें त्रिधातु (तीन को धारण करने वाले) भी कहा गया है। त्रिवृष्ण या त्रिधातु के पुत्र हैं 'त्र्यरुण'-तीन स्थानों पर प्रकट अरुण रंग वाली (सूर्य, विद्युत् तथा गार्हपत्य रूप) अग्नि। इन्हें तीन गुणवाले (उत्पन्नकर्त्ता, पोषक तथा परिवर्तनकर्त्ता) वैश्वानर (विश्व के अग्रणी) भी कहा जाता है। त्र्यरुण (तीनों लोकों में प्रकट अग्नि के रूपों) से पोषक प्रवाहों के साथ-साथ विकारों को नष्ट कर देने वाली क्षमता भी प्रकट होती है। इस क्षमता को 'त्रसदस्यु' (भयकारक साहसी) कहकर संबोधित किया गया है। इस नाते 'त्रसदस्यु' को 'त्र्यरुण' का पुत्र भी कहते हैं।

यहाँ ऋचाओं का अर्थ इस प्रकार करने का प्रयत्न किया गया है कि उक्त दोनों संदर्भों में वे समीचीन सिद्ध हो सकें -

३८२८. अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१ ॥

हे अग्ने ! हे वैश्वानर ! आप सज्जनों के स्वामी, ज्ञानवान्, बलशाली और ऐश्वर्यवान् हैं । त्रिवृष्ण के पुत्र त्र्यरुण ने शकट सहित दो वृषभ और दस सहस्र सुवर्णमुद्रा प्रदान करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी ॥१ ॥

३८२९. यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥२ ॥

जिनने हमें सैकड़ों गौएँ (पोषक-प्रवाह) तथा बीसियों श्रेष्ठ धुरों (प्रयोजनों) से योजित अश्व (शक्ति-प्रवाह) प्रदान किये हैं; हे वैश्वानर अग्ने ! आप श्रेष्ठ मंत्रों से वर्धित होकर ऐसे त्र्यरुण को सुखप्रद आश्रय प्रदान करें ॥२ ॥

३८३०. एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥३ ॥

पूर्वकाल में हमारी वाणी से (अनेक स्तुतियों से) युक्त (प्रभावित) होकर 'त्र्यरुण' ने (हमें अनुदान देते हुए) कहा था - 'यह लो' । उसी प्रकार हे अग्ने ! हमारी नवीन स्तुतियों से युक्त (प्रसन्न) होकर, आपसे सुमति चाहने वाले हम (साधकों) से 'त्रसदस्यु' ने भी (हमें अनुदान देते हुए) कहा - 'यह लो' ॥३ ॥

ऋचा क्र० ४,५,६, में अश्वमेध का उल्लेख है। पौराणिक संदर्भ में इस नाम के ऋषि अथवा राजा का उल्लेख भी मिलता है। व्यापक रूप में अश्व का अर्थ है- तीव्र गति से संचरित होने वाली शक्ति धारा अथवा राष्ट्र। मेध का अर्थ होता है- दिव्य चेतना युक्त विचार शक्ति। अश्व को मेध से जोड़ना, मेधा का व्यापक संचार अथवा राष्ट्र की सामर्थ्य को श्रेष्ठ मेधा से जोड़ना अश्वमेध है। ऋचा के प्रस्तुत अर्थ दोनों ही संदर्भों में लिए जा सकते हैं -

३८३१. यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये । दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥४ ॥

हे अग्नि- परमेश्वर ! जब कोई विद्वान् पुरुष 'अश्वमेध' को लक्ष्य करके कहता है 'यह मेरा है', तब आप उस यत्नशील को ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) के लिए ऋचारूप में दिव्य सम्पदा एवं श्रेष्ठ मेधा प्रदान करते हैं ॥४ ॥

३८३२. यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः । अश्वमेधस्य दानाः सोमाइव त्र्याशिरः ॥५ ॥

जिस अश्वमेध से प्राप्त सौ (सैकड़ों) उक्षण (वृषभ या सेचन प्रवाह) हमें हर्षित करते हैं, उस अश्वमेध (दिव्य

मेधा प्रवाह या राष्ट्र) के दान त्र्याशिर (तीन को मिलाकर एकाकार किये गये) सोम (पोषक तत्त्व) की भाँति हमें आनन्दित करें ॥५ ॥

३८३३. इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् । क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! सैकड़ों प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले अश्वमेध को आप श्रेष्ठ पौरुष एवं क्षात्रबल के साथ सूर्य के समान विशालता एवं अजरता प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - २८]

[ऋषि - विश्ववारा आत्रेयी । **देवता -** अग्नि । **छन्द -** १,३ त्रिष्टुप् ; २ जगती; ४ अनुष्टुप् ; ५-६ गायत्री ।]

३८३४. समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥१ ॥

सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त अग्निदेव दीप्तिमान् अन्तरिक्ष में अपने तेजों से प्रकाशित होते हैं और उषा के सम्मुख विस्तीर्ण होकर विशेष प्रभायुक्त होते हैं । उस समय इन्द्रादि देवों का स्तवन करती हुई पुरोडाश आदि और घृतादि से युक्त स्रुक् को लेकर विश्ववारा पूर्व की ओर से झाँकती हुई अग्नि की ओर बढ़ती हैं ॥१ ॥

३८३५. समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप भली-भाँति प्रज्वलित होकर अमृततत्त्व को प्रकाशित करते हैं । हव्यदाता यजमान को आप कल्याण से युक्त करते हैं । आप जिस यजमान के समीप जाते हैं, वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य को धारण करता है । हे अग्निदेव ! आपके आतिथ्य के अनुकूल हव्यादि पदार्थों को वह यजमान आपके सम्मुख स्थापित करता है ॥२ ॥

३८३६. अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप हम लोगों के उत्तम सौभाग्य (विपुल ऐश्वर्य) के लिए शत्रुओं को पराभूत करें ।आपका तेज श्रेष्ठतम हो । आप दाम्पत्य सम्बन्ध को सुखी और सुनियमित करें और शत्रुओं के तेज को दबा दें ॥३ ॥

३८३७. समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जब आप प्रज्वलित होकर दीप्तिमान् होते हैं, तो आपकी शोभा का हम स्तवन करते हैं । आप अभीष्ट प्रदाता और तेजस्वी हैं तथा यज्ञों में भली प्रकार प्रदीप्त होते हैं ॥४ ॥

३८३८. समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप यजमानों द्वारा आहूत होते हैं । आप शोभायुक्त यज्ञ के सम्पादक हैं । आप सम्यक् प्रदीप्त होकर इन्द्रादि देवों का यजन करें; क्योंकि आप ही हव्यादि पदार्थों को वहन करने वाले हैं ॥५ ॥

३८३९. आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! आप लोग हमारे यज्ञ में प्रवृत्त होकर हव्य वहन करने वाले अग्निदेव को आहुतियाँ अर्पित करें । स्तुतियों द्वारा उनकी परिचर्या करें और देवों के दूतरूप में उनका वरण करें ॥६ ॥

[सूक्त - २९]

[ऋषि - गौरिवीति शाक्त्य । देवता - इन्द्र; ९ के प्रथमपाद के इन्द्र अथवा उशना । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८४०. त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !मनु के यज्ञ में जो तीन गुण हैं और अन्तरिक्ष में उत्पन्न तीन दिव्य तेज हैं, उन्हें मरुद्‌गणों ने धारण किया है ।हे इन्द्रदेव ! पवित्र बलों से युक्त मरुद्‌गण आपकी स्तुति करते हैं । आप इन मरुतों के द्रष्टा हैं ॥१ ॥

३८४१. अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥२ ॥

जब मरुद्‌गणों ने अभिषुत सोम के पान से हर्षित इन्द्रदेव की स्तुति की, तब इन्द्रदेव ने वज्र हाथ में धारण करके वृत्र को मारा और उसके द्वारा रोके गये बृहद् जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया ॥२ ॥

३८४२. उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥३ ॥

हे महान् मरुतो !इन्द्रदेव सहित आप सब भली प्रकार अभिषुत हुए इस सोमरस का पान करें । इस सोम युक्त हवि का पान करते हुएआप यजमानों को गौएं प्राप्त करायें । इसी सोम को पीकर इन्द्रदेव ने वृत्र को मारा था॥३॥

३८४३. आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥४ ॥

सोमपान करने के बाद इन्द्रदेव ने द्यावा-पृथिवी को निश्चल किया तथा आक्रामक मुद्रा में इन्द्रदेव ने मृगवत् माया करने वाले वृत्र को भयभीत किया । भय से छिपकर वह वृत्र लम्बी श्वास ले रहा था, तब इन्द्रदेव ने उसके प्रपंच को नष्ट कर उसे मार डाला ॥४ ॥

३८४४. अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! सूर्य की आगे बढ़ने वाली घोड़ियों (किरणों) को आपने एतश (अश्व संज्ञक शक्तिशाली प्रवाह) के साथ संयुक्त किया । आपके कार्य से हर्षित होकर विश्वेदेवों ने आपके पान के लिए सोम प्रस्तुत किया ॥५ ॥

[आचार्य सायण ने पौराणिक संदर्भ में 'एतश' को ऋषि विशेष कहा है, किन्तु निगमार्थ के अनुसार उसे अश्व संज्ञक माना है । कहा है " स्वश्च पुत्रेण सूर्येण सह स्पर्धामकरोदिति यावत्" अर्थात् एतश अपने अश्वरूप पुत्र सूर्य के साथ स्पर्धा करते हैं । सूर्य जिनके लिए पुत्रवत् हैं, वह एतश अश्व (संचरित होने वाला) शक्तिशाली अंतरिक्षीय प्रवाह है, जो सूर्य को ऊर्जा प्रदान करता है । वर्तमान विज्ञान इतना तो मानता है कि सूर्य को ऊर्जा देने वाला कोई सूक्ष्म प्रवाह अंतरिक्ष में है । इन्द्र (संगठक देव शक्ति) सूर्य किरणों के साथ 'एतश' को संयुक्त करके उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाते है । यह प्रक्रिया अभी वर्तमान विज्ञान के लिए खोज का विषय है ।]

३८४५. नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥६ ॥

महान् इन्द्रदेव ने शत्रु के निन्यानवे नगरों को एक ही क्षण में वज्र से ध्वस्त कर दिया और द्युलोक को थामकर स्थित किया, तब मरुद्‌गणों ने संग्राम-स्थल में त्रिष्टुप् छन्द युक्त ऋचाओं से इन्द्रदेव की स्तुतियाँ सम्पन्न कीं ॥६ ॥

३८४६. सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥७ ॥

इन्द्रदेव के मित्ररूप अग्नि ने इन्द्र की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए तीन सौ महिषों (प्राणधाराओं) को पकाया (परिपक्व किया) । वृत्र को मारने के लिए इन्द्रदेव ने मनुष्यों द्वारा निष्पन्न सोम के तीन पात्रों का एक साथ पान किया ॥७ ॥

[शत० ब्रा० ६/७/४/५ में प्राणों को ही महिष कहा है- प्राणा वै महिषः ।]

३८४७. त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने तीन सौ महिषों (प्राण-प्रवाहों) को स्वीकार किया और सोम के तीन पात्रों का पान किया, तब आपने वृत्र को मारा । देवों ने कुशल कर्मकार की भाँति इन्द्रदेव का आवाहन किया ॥८ ॥

३८४८. उशना यत्सहस्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप और 'उशना' (कवि-दूरदर्शी) दोनों संघर्षक और वेगवान् अश्वों के द्वारा घर गए, तब आपने शत्रुओं को मारा तथा कुत्स और देवों के साथ रथ पर आरूढ़ हुए । हे इन्द्रदेव ! आपने 'शुष्ण' असुर का भी हनन किया ॥९ ॥

३८४९. प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सूर्य के चक्रों में एक चक्र को पृथक् कर दिया और अन्य चक्र 'कुत्स' को प्रतिष्ठा देने के लिए तैयार किया । आप नाकरहित (स्वर्गच्युत) और उच्च शब्द करने वाले दस्युओं को वज्र से मारकर संग्राम में विजयी हुए ॥१० ॥

[पौराणिक सन्दर्भ से कुत्स एक ऋषि हैं । भावार्थक संदर्भ में कठोरतम को काटने- छेदने में सक्षम को 'कुत्स' कहा गया है । जल प्रवाहों के अवरोधकों वृत्र एवं शुष्ण को विखण्डित करने के लिए इन्द्र को 'कुत्स' शक्ति की भी आवश्यकता हुई । सूर्य के सामान्य क्रम (चक्र) के स्थान पर अन्य क्रम (विशिष्ट चक्र) द्वारा कुत्स को प्रतिष्ठा प्रदान करना, सूर्य शक्ति प्रयोग का आलंकारिक उल्लेख किया गया प्रतीत होता है ।]

३८५०. स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौरिवीति के स्तोत्रों ने आपको प्रवर्द्धित किया, तो आपने विदथि पुत्र ऋजिश्वा के लिए 'पिप्रु' (असुर) को मारा । तब ऋजिश्वा ने आपकी मित्रता के पूरक रूप में आपके निमित्त पुरोडाश पकाकर निवेदित किया और उनके द्वारा निवेदित सोम का भी आपने पान किया ॥११ ॥

३८५१. नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥१२ ॥

सोमों का अभिषवण करने वाले 'नवग्वा' और 'दशग्वा' ने इन्द्रदेव के अभिमुख अर्चनीय स्तोत्रों से स्तुतियाँ कीं । तब प्रशंसित इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुद्गणों द्वारा असुरों को मारकर छिपे हुए गौ- समूहों को मुक्त किया ॥१२ ॥

३८५२. कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपने जो पराक्रमयुक्त कार्य प्रकट किया है; उन्हें जानने वाले हम आपकी परिचर्या किस प्रकार करें ? हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपने जो नये पराक्रम के कार्य सम्पादित किये हैं, आपके उन पराक्रमों का हम अपने यज्ञों में सम्यक् वर्णन करेंगे ॥१३ ॥

३८५३. एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं में अटल (अडिग) संघर्षक हैं । आपने जन्म लेकर अपने बल से सम्पूर्ण भुवनों को बनाया । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने शत्रुओं को मारते हुए जिन पराक्रमों को किया है, आपके उस बल का निवारण करने वाला अन्य कोई नहीं है ॥१४ ॥

३८५४. इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५ ॥

हे अतीव बलशाली इन्द्रदेव ! हमने आपके निमित्त जिन नवीन स्तोत्रों की रचना की है, हम लोगों द्वारा निवेदित उन स्तोत्रों को आप ग्रहण करें । हम स्तोता उत्तम कर्म करने वाले, बुद्धिमान् और धनाभिलाषी हैं । हम उत्तम वस्त्रों और उत्तम रथ के निर्माण की तरह इन स्तोत्रों का निर्माण करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ३०]

[ऋषि - बभ्रु आत्रेय । देवता - इन्द्र और ऋणञ्चय (राजा) । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८५५. क्व१स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१ ॥

असंख्यों द्वारा आवाहित किये जाने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव, धन से युक्त होकर संरक्षण-साधनों के साथ, अभिषुत सोम की इच्छा से यजमान के घर जाते हैं । वे पराक्रमी इन्द्रदेव कहाँ हैं ? अपने दोनों अश्वों से सुसज्जित, सुखदायक रथ पर जाने वाले इन्द्रदेव को किसने देखा है ? ॥१ ॥

३८५६. अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२ ॥

हमने इन्द्रदेव के गुह्य और उग्र स्थान को देखा है । दर्शन की अभिलाषा से हम इन्द्रदेव के आश्रय स्थल में गये । हमने अन्यों से भी पूछा, तब उन्होंने बताया कि उत्तम ज्ञान के अभिलाषी मनुष्य ही इन्द्रदेव को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

३८५७. प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जिन कार्यों को किया है, उनका हम सोम-सवन वाले स्थानों में वर्णन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपने हमारे निमित्त जिन कर्मों को प्रयुक्त किया है, उन्हें सभी जान लें । जानने वाले साधक अनजान लोगों को सुनायें । सब सेनाओं से युक्त ये ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव अश्वों पर आरूढ़ होकर उन जानने वालों और सुनने वालों की ओर गमन करें ॥३ ॥

३८५८. स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! उत्पन्न होते ही आपने शत्रु-विजयी होने के लिए मन को संकल्प से स्थिर किया। आपने युद्ध में अकेले ही अनेक शत्रुओं को नष्ट किया तथा दृढ़ पर्वत के आवरण को विदीर्ण कर बन्द दुधारू गौओं के समूह को विमुक्त किया ॥४ ॥

३८५९. परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत्।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सबमें प्रमुख और श्रेष्ठतम हैं। आप जब अत्यन्त दूर तक श्रवणीय नाम को धारण कर प्रकट हुए, तो सभी देवगण भयभीत हुए। इन्द्रदेव ने वृत्र द्वारा प्रभुत्व स्थापित किये हुए जल को जीत लिया ॥५ ॥

३८६०. तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! उत्तम सेवा करने वाले ये मरुद्गण स्तोत्रों से आपकी ही अर्चना करते हैं और सोम निवेदित करते हैं। इन्द्रदेव ने जल को बन्द करने वाले और देवों को पीड़ित करने वाले मायावी 'अहि' को नष्ट कर दिया ॥६ ॥

३८६१. वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप सबके द्वारा प्रशंसित किये जाते हैं। आपने जन्म लेते ही 'दान' असुर को मारा और अन्यान्य हिंसक शत्रुओं को भी मारा। हे इन्द्रदेव ! इस युद्ध में मनु के लिए मार्ग बनाने की इच्छा से युक्त होकर 'नमुचि' नामक दस्यु के सिर को आप काट डाले ॥७ ॥

[दान शब्द 'दा' धातु (दो अवखण्डने) से बना है। इन्द्र संगठन शक्ति (बाइंडिङ्ग फोर्स) के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस शक्ति के प्रकट होते ही पदार्थ का विखण्डन रुक जाता है। इसलिए इन्द्र द्वारा जन्म लेते ही 'दान' असुर के वध का भाव सिद्ध होता है। 'नमुचि' का अर्थ न छोड़ने वाला किया गया है। जल प्रवाहों अथवा प्रकाश किरणों को मुक्त न करने वाले 'नमुचि' को इन्द्र ने मारा, यह तथ्य सर्वमान्य है]

३८६२. युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने गर्जनशील मेघ के समान गर्जना करने वाले दास नमुचि के सिर को टुकड़े-टुकड़े कर दिया, फिर हमें मित्र बनाया। उस समय मरुतों की सहायता से आपने आकाश-पृथिवी को चक्र की तरह परिभ्रमणशील बनाया ॥८ ॥

३८६३. स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९ ॥

दास 'नमुचि' ने जब स्त्रियों को युद्ध का साधन बनाया, तब 'इसकी यह निर्बल सेना मेरा क्या कर लेगी ? यह सोचकर इन्द्रदेव ने उसकी दो प्रमुख स्त्रियों को बन्दी बना लिया और नमुचि से लड़ने के लिए अग्रसर हुए ॥९ ॥

३८६४. समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन्।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१० ॥

'नमुचि' असुर द्वारा बभ्रु ऋषि की अपहृत गौएँ (किरणें) बछड़ों (प्राणियों) से विलग होकर इधर-उधर भटक रही थीं, तब अभिषुत सोम ने इन्द्रदेव को हर्षित किया और इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुतों के द्वारा गौओं को बछड़ों से युक्त किया ॥१० ॥

३८६५. यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११ ॥

जब बभ्रु (भरण-पोषण करने वाले) के अभिषुत सोम ने इन्द्रदेव को प्रफुल्लित किया, तब बलवान् इन्द्रदेव ने संग्राम में घोर गर्जना की । शत्रु नगरों के विध्वंसक इन्द्रदेव ने सोम पान किया और बभ्रु (ऋषि या अग्नि) को दुधारू गौएँ पुनः प्राप्त करायीं ॥११ ॥

३८६६. भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! ऋणञ्चय राजा के अधीनस्थ रुशमवासियों ने हमें चार सहस्र गौएँ देकर कल्याणकारी काम किया । मनुष्यों के नेतृत्वकर्त्ता श्रेष्ठ ऋणञ्चय (धनसंग्रह करने वाले) द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्यों को भी हमने ग्रहण किया ॥१२ ॥

३८६७. सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रमममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! रुशमवासियों ने सहस्रों गौओं से युक्त और सुन्दर सुशोभित गृह हमें प्रदान किया है । रात्रि के अवसान काल (उषः काल) में हमने अभिषुत हुए तीक्ष्ण सोम को निवेदित कर इन्द्रदेव को हर्षित किया ॥१३ ॥

३८६८. औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४ ॥

रुशमवासियों के राजा ऋणञ्चय के पास जाने पर अन्धकारयुक्त रात्रि जो उपस्थित थी, उसके बीत जाने पर बभ्रु ऋषि ने निरंतर गतिमान् अश्वों की तरह द्रुतगामिनी चार सहस्र गौओं को प्राप्त किया ॥१४ ॥

३८६९. चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! हम मेधावी हैं । हमने रुशमवासियों से चार सहस्र गौ रूप पशुओं को प्राप्त किया और यज्ञ में पशुओं के दुग्ध दुहने के निमित्त अधिक तपाये हुए (अधिक शुद्ध) स्वर्णमय कलश को भी प्राप्त किया ॥१५ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि** - अवस्यु आत्रेय । **देवता** - इन्द्र; ८ वें के तृतीय पाद के इन्द्र अथवा कुत्स; चतुर्थ पाद के इन्द्र अथवा उशना; ९ इन्द्र एवं कुत्स । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३८७०. इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१ ॥

ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव जिस रथ पर अधिष्ठित होते हैं, उसे वे अतिवेग से संचालित करते हैं । ग्वाला जिस प्रकार अपने पशुओं को प्रेरित करता है, उसी प्रकार आप अपनी सेना को प्रेरित करते हैं । युद्ध में अहिंसित रहते हुए आप शत्रुओं के धन की कामना करते हैं ॥१ ॥

३८७१. आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२ ॥

हे हरि नामक अश्व वाले इन्द्रदेव ! आप हमारे पास शीघ्र आएँ, हमें निराश न करें। हे धनवान् इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा निवेदित पदार्थों को स्वीकार करें। हे इन्द्रदेव ! आप से श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। आप भार्याहीनों को पत्नी प्रदान करते हैं ॥२ ॥

३८७२. उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३ ॥

जब सूर्यदेव के तेज से उषा का तेज फैला, तब इन्द्रदेव ने लोगों को सभी इन्द्रियाँ देकर सक्रिय किया। पर्वत के आवरण में छिपी दुधारू गौओं को विमुक्त किया और सर्वत्र आच्छादित तमिस्रा को अपने तेजस् से दूर किया ॥३॥

३८७३. अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४ ॥

बहुतों द्वारा आवाहनीय हे इन्द्रदेव ! ऋभुओं ने आपके रथ को अश्वों से योजित करने के योग्य बनाया। त्वष्टादेव ने आपके निमित्त तीक्ष्ण वज्र बनाया। मन्त्रयुक्त स्तोत्रों से यजन (पूजा) करने वालों ने आपको वृत्र-वध के निमित्त स्तोत्रों से प्रवर्द्धित किया ॥४ ॥

३८७४. वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५ ॥

हे अभीष्टवर्षक इन्द्रदेव ! उन बलवान् मरुतों ने जब स्तोत्रों से आपकी स्तुति की; उस समय दृढ़ पाषाण सोम अभिषवण के लिए संयुक्त हुए थे। आपके द्वारा प्रेरित होने पर अश्वहीन और रथहीन मरुतों ने पलायन करने वाले शत्रुओं को पराभूत किया ॥५ ॥

३८७५. प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपने अपने बलों से जिन कर्मों को सम्पादित किया है; उन नये और पुराने कर्मों का हम वर्णन करते हैं। हे इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के लिए अद्भुत विविध जल (रसों) को धारण किया ॥६ ॥

३८७६. तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वंयन्नप दस्यूँरसेधः ॥७ ॥

हे दर्शनीय और ज्ञानी इन्द्रदेव ! आपने वृत्र को मारकर जो अपने बल को इस लोक में प्रकाशित किया; वह आपका ही कर्म है। आपने 'शुष्ण' असुर की माया को जानकर उसे पकड़ा और युद्धस्थल में जाकर असुरों का संहार किया ॥७ ॥

३८७७. त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! विपत्तियों से पार करने वाले आपने 'यदु' और 'तुर्वश' के लिए वनस्पतियों को बढ़ाने वाले जल को प्रवाहित किया। आपने 'कुत्स' पर आक्रमण करने वाले 'शुष्ण' असुर से 'कुत्स' की रक्षा की; तब उशना कवि तथा देवों ने आपकी स्तुति की ॥८ ॥

३८७८. इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे कुत्स ! आप दोनों एक रथ पर आरूढ़ होकर द्रुतगामी अश्वों द्वारा यजमानों के समीप आएँ । आपने 'शुष्ण' असुर को उसके आश्रय स्थान जल से निकालकर मारा था । आपने सम्पन्न यजमानों के हृदयों से (पाप रूप) तमिस्रा को दूर किया था ॥९ ॥

३८७९. वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! इस क्रान्तदर्शी 'अवस्यु' ने वायु के समान वेगवान् और रथ में उत्तम प्रकार से योजित होने वाले अश्वों को प्राप्त किया । हे इन्द्रदेव ! आपके सब मित्ररूप मरुतों ने स्तोत्रों से आपके बल को प्रवर्धित किया ॥१० ॥

३८८०. सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११ ॥

पूर्व में जब 'एतश' का सूर्य के साथ संग्राम हुआ था, तब इन्द्रदेव ने सूर्यदेव के अति वेगवान् रथ को भी गतिहीन कर दिया था । तत्पश्चात् इन्द्रदेव ने सूर्य के रथ के एक चक्र का हरण कर उसी से शत्रुओं का संहार किया था-ऐसे वे इन्द्रदेव हमारे स्तोत्रों से वृद्धि को प्राप्त होते हुए हमारे यज्ञ का सेवन करें ॥११ ॥

३८८१. आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२ ॥

हे यजमानो ! आप लोगों को देखने के लिए और मित्ररूप आप यजमानों द्वारा अभिषुत सोम की इच्छा करते हुए इन्द्रदेव यहाँ आये हैं । अध्वर्युगण शब्द करते हुए सोम अभिषवण के पाषाण को तेजी से चलाते हैं, अनन्तर अभिषुत सोम वेदी पर लाया जाता है ॥१२ ॥

३८८२. ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३ ॥

हे अविनाशी इन्द्रदेव ! हम मनुष्य आपके आश्रय में सुखी हैं और सुखी ही रहें । हम कभी अनिष्टों से युक्त न हों । आप हम यजमानों की सेवा स्वीकार करें । मनुष्यों के बीच में हम आपके हैं, आप हममें बल स्थापित करें ॥१३ ॥

[सूक्त - ३२]

[**ऋषि** - गातु आत्रेय । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

३८८३. अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव !आपने बादलों को भेदकर जल धाराओं को प्रकट करने के लिए बाधाओं को दूर किया और ऊँची तरंगों वाले समुद्र को अधिक जल प्रदान करके प्रसन्न किया । आपने ही राक्षसों का संहार किया ॥१ ॥

३८८४. त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप वर्षाकाल में अवरुद्ध मेघों के बन्धनों को तोड़कर मेघों के बल को नष्ट करने वाले

हैं। हे उग्र इन्द्रदेव ! आपने सोये हुए बलवान् वृत्र को मारकर अपने बल को विख्यात किया ॥२ ॥

३८८५. त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।

य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३ ॥

एक मात्र इन्द्रदेव ही अतुलनीय हैं। उन्होंने वृत्र के पृथ्वी पर चलने (प्रयोग किये जाने) वाले अस्त्रों को नष्ट कर दिया। उससे (वृत्र के प्रभाव से) एक अन्य बलशाली (असुर) प्रकट हुआ ॥३ ॥

३८८६. त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।

वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥४ ॥

वर्षणशील मेघ पर प्रहार कर गिराने वाले और वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव ने उस 'शुष्ण' असुर को वज्र से मार गिराया, जो वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न होकर तम से आच्छादित करता था। मेघों को अवरुद्ध कर गिरने (बरसने) नहीं देता था और प्राणियों के अन्नों को स्वयं खाकर हर्षित होता था ॥४ ॥

[वृत्र (वर्षा अवरोधक) के प्रभाव से दैत्य शुष्ण (सूखा रूप दुर्भिक्ष) पैदा होता है। इन्द्रदेव उसे भी नष्ट करते हैं।]

३८८७. त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।

यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिसके मर्म को कोई नहीं जान सकता, उस वृत्र के गुह्य मर्म को आपने अपने कर्मों (पुरुषार्थ) से जान लिया। उत्तम बल सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! सोमपान से प्रमुदित होकर आपने युद्धाभिलाषी वृत्र को तमिस्रा पूर्ण स्थान में भी खोज लिया ॥५ ॥

३८८८. त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।

तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६ ॥

वृत्र सुखकारी जल में सोते हुए, गहन तमिस्रा में पुष्ट होता था। अभिषुत सोमपान से प्रमुदित होकर अतीव बलशाली इन्द्रदेव ने वज्र को ऊँचा उठाकर उस वृत्र को मारा ॥६ ॥

३८८९. उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।

यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७ ॥

जब इन्द्रदेव ने उस भीमकाय दानव को मारने के लिए अजेय वज्र को उठाया और जब वृत्र पर उसके द्वारा प्रचण्ड प्रहार किया; तब उसे सब प्राणियों की अपेक्षा निम्नतम स्थिति में पहुँचा दिया ॥७ ॥

३८९०. त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।

अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ्मृध्रवाचम् ॥८ ॥

उग्रवीर इन्द्रदेव ने, विकराल मेघों को घेरकर सोने वाले, शत्रुओं का संहार करने वाले और सबको आच्छादित करने वाले उस असुर वृत्र को पकड़ लिया। संग्राम में इन्द्रदेव ने उस पादरहित, परिमाणरहित, दुष्ट वचन बोलने वाले वृत्र को क्षत-विक्षत किया ॥८ ॥

३८९१. को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।

इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९ ॥

इन्द्रदेव के शोषक बल का निवारण कौन कर सकता है ? अप्रतिद्वन्द्वी इन्द्रदेव अकेले ही शत्रुओं के धन का हरण कर लेते हैं। दीप्तिमती द्यावा-पृथिवी भी वेगवान् इन्द्रदेव के बल से भयभीत होकर चलती हैं ॥९ ॥

३८९२. न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१० ॥

यह दीप्तिमान्, स्वयं धारणशील आकाश भी इन इन्द्रदेव के लिए नम्र होकर रहता है । जिस प्रकार कामना करने वाली स्त्रियाँ पति को आत्मसमर्पण कर देती हैं, उसी प्रकार पृथ्वी इन्द्रदेव के आगे आत्मसमर्पण कर देती है । जब ये इन्द्रदेव अपने सम्पूर्ण बल को प्रजाओं के मध्य स्थापित करते हैं, तब प्रजाएँ इन बलवान् इन्द्रदेव को नमन करती हैं ॥१० ॥

३८९३. एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम मनुष्यों से सुनते हैं कि आप सज्जनों के पालक, पंचजनों के हितैषी और अतिशय यशस्वी हैं । एक मात्र आप ही इस वरीयता के साथ उत्पन्न हुए हैं । दिन-रात स्तुतियों के साथ हवि देने वाली और कामना करने वाली हमारी सन्तानें अतिशय स्तुत्य इन्द्रदेव को प्राप्त करें ॥११ ॥

३८९४. एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम सुनते हैं कि आप समय-समय पर प्राणियों के प्रेरक बनते हैं । आप ज्ञानियों को धनादि दान करने वाले हैं । हे इन्द्रदेव ! जो स्तोतागण आपमें अपनी कामनाओं को स्थापित करते हैं, आपके वे ज्ञानी मित्र आपसे क्या पाते हैं ? ॥१२ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि - संवरण प्राजापत्य । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८९५. महि महे तवसे दीध्ये नॄनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान् ।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१ ॥

ये इन्द्रदेव युद्धों में वीर पुरुषों से युक्त होकर अतिशय प्रकृष्ट पराक्रमों वाले जाने जाते हैं और अपनी उत्तम बुद्धि से सब मनुष्यों पर प्रभुत्व रखते और स्तुत्य होते हैं । हम निर्बल स्तोतागण मनुष्यों को बल सम्पन्न बनाने के लिए बलशाली इन्द्रदेव की प्रचुर स्तुतियाँ करते हैं ॥१ ॥

३८९६. स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः ।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२ ॥

हे इष्टवर्षक इन्द्रदेव ! आप हमारी स्तुतियों पर ध्यान देकर प्रीतिपूर्वक रथ में योजित अश्वों की लगाम हाथ में धारण करें । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं को भी उसी प्रकार वशीभूत करें ॥२ ॥

३८९७. न ते त इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥३ ॥

हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! जो मनुष्य आपके भक्तों से भिन्न हैं और आपके साथ नहीं रहते हैं, जो ब्रह्म कर्मों से रहित हैं, वह आपके भक्त नहीं हो सकते । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमारे यज्ञ में दीप्तिमान् और उत्तम अश्वों से युक्त उस रथ से पधारें, जिसे आप स्वयं नियंत्रित करते हैं ॥३ ॥

३८९८. पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन्।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अनेक वर्णनीय स्तोत्र हैं। आपने जल अवरोधकों को नष्ट कर उपजाऊ भूमि में जल वर्षण के लिए मार्ग बनाया है और हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपने युद्ध में 'नमुचि' दास के नाम को भी विनष्ट कर दिया ॥४ ॥

३८९९. वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम सब ऋत्विज् और यजमान आपके हैं। यज्ञ द्वारा आपके बल को प्रवर्द्धित करते हैं और आहुतियाँ प्रदान करने आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं। हे इन्द्रदेव ! आपकी शक्ति सर्वत्र संचरित है। युद्धों (जीवन समर) में भगरूप सेवक हमें आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ॥५ ॥

३९००. पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६ ॥

आपके सम्पूर्ण बल अत्यन्त पूजनीय हैं। आप मनुष्यों में व्याप्त होकर भी अविनाशी (अमरणशील) हैं। आप अपनी सामर्थ्य से जगत् के आश्रयदाता हैं। आप हमें उज्ज्वल वर्ण के धनों को प्रदान करें। आप अत्यन्त धन-सम्पन्न और श्रेष्ठ दाता हैं। आपके दान की हम सम्यक् स्तुति करते हैं ॥६ ॥

३९०१. एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून्।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥७ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हम यजमान आपकी स्तुति करते हैं और आपका यजन करते हैं। अपनी रक्षण-सामर्थ्यों से आप हमारी रक्षा करें। संग्रामों में आप आवरण (कवच) रूप में हमारी रक्षा करें। हमारे द्वारा भली प्रकार अभिषुत मधुर सोमरस को प्राप्त कर आप तृप्त हों ॥७ ॥

३९०२. उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥८ ॥

गिरिक्षित गोत्र में उत्पन्न 'पुरुकुत्स' के विद्वान् पुत्र 'त्रसदस्यु' स्वर्ण सम्पदाओं से युक्त हैं। उनके द्वारा प्रदत्त दस श्वेत वर्ण वाले अश्व हमें वहन करें। हम भी श्रेष्ठ कर्त्तव्यों से युक्त रहें ॥८ ॥

३९०३. उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥९ ॥

'मरुताश्व' के पुत्र 'विदथ' के यज्ञ में हमें उन्होंने रक्तवर्ण वाले द्रुतगामी अश्व प्रदान किये और सहस्रों प्रकार के धन देकर हमारे श्रेष्ठ शरीर को अलंकारों से युक्त किया ॥९ ॥

३९०४. उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१० ॥

'लक्ष्मण' के पुत्र 'ध्वन्य' ने जो हमें उत्तम दीप्तियुक्त और पराक्रमी अश्व प्रदान किये, वे हमने स्वीकार किये। जैसे गौएँ चरने के स्थान को जाती हैं, वैसे उनके द्वारा प्रदत्त प्रभूत (विपुल) धन 'सम्वरण' ऋषि के स्थान में गया है ॥१० ॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि** - संवरण प्राजापत्य । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

३९०५. **अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।**
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१ ॥

जिनके शत्रु उत्पन्न ही नहीं हुए है, ऐसे दर्शनीय इन्द्रदेव को क्षीण न होने वाले, सुखप्रद और अपरिमित हविष्यान्न प्राप्त होते हैं । वे इन्द्रदेव बहुतों द्वारा स्तुत एवं स्तोत्रों को धारण करने वाले हैं । हे ऋत्विजो ! उन इन्द्रदेव के निमित्त लोग पुरोडाश पकायें और श्रेष्ठ यज्ञादि कर्म सम्पादित करें ॥१ ॥

३९०६. **आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।**
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२ ॥

इन्द्रदेव ने सोमरस द्वारा अपने पेट को भर लिया और मधुर हविष्यान्न द्वारा हर्ष से युक्त हुए, तब 'मृग' नामक असुर को मारने की इच्छा करते हुए महावधी इन्द्रदेव ने सहस्रधार वाले वज्र को हाथ में उठाया ॥२ ॥

३९०७. **यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।**
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३ ॥

जो यजमान इन्द्रदेव के लिए दिन और रात सोम अभिषवण करते हैं, वे दीप्तिमान् होते हैं । जो यज्ञादि कार्य का आडंबर कर सन्तति की कामना करते हैं ; जो अपने शरीर को सजाने वाले, आडम्बर करने वाले और बुरे आचरण करने वालों के मित्र होते हैं; ऐसों को इन्द्रदेव छोड़ देते हैं ॥३ ॥

३९०८. **यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।**
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥४ ॥

जो मनुष्य यजमान के पिता-माता और भ्राता का वध करता है, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव उस दुष्ट के पास नहीं जाते । उसके द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को भी स्वीकार नहीं करते । वे धनों के अधीश्वर और सर्व-नियामक इन्द्रदेव पाप से दूर रहते हैं ॥४ ॥

३९०९. **न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।**
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५ ॥

युद्ध में इन्द्रदेव पाँच या दस मित्रों की सहायता की कामना नहीं करते । जो सोम सवन नहीं करता और बन्धुओं का पोषण नहीं करता, इन्द्रदेव उनकी संगति नहीं करते । शत्रुओं को कँपाने वाले इन्द्रदेव अयाज्ञिक को जीतकर उसे मारते हैं और याज्ञिकों को गौओं से युक्त गृह प्रदान करते हैं ॥५ ॥

३९१०. **वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।**
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६ ॥

संग्राम में शत्रु-सामर्थ्य को क्षीण करने वाले इन्द्रदेव रथचक्र को वेग से चलाने वाले हैं । वे सोमयाग न करने वालों से दूर रहते और सोमयाग करने वालों को प्रवर्द्धित करते हैं । सम्पूर्ण विश्व के नियामक, शत्रुओं के लिए भयंकर वे श्रेष्ठ इन्द्रदेव 'नमुचि' दास को अपने वश में कर लेते हैं ॥६ ॥

**३९११. समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७ ॥**

इन्द्रदेव कृपण बनिये के धन का हरण कर लेते हैं और उस धन को हविदाता यजमान को देकर उसे शोभावान् बनाते हैं । जो मनुष्य इन्द्रदेव के बल को कुपित करता है, इन्द्रदेव उसे विपदाओ के दुर्ग में कैद कर देते हैं ॥७ ॥

**३९१२. सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८ ॥**

उत्तम धन वाले, अत्यन्त बलशाली दो मनुष्य जब शुभ्र गौओं के लिए परस्पर संघर्ष करते हैं; तो ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव उनमें से याज्ञिक की ही सहायता करते हैं । अपने बलों से शत्रुओं को कँपाने वाले इन्द्रदेव इस याज्ञिक को गौओं का समूह दान करते हैं ॥८ ॥

**३९१३. सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९ ॥**

हे तेजस्वी गुण-सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम सहस्रों प्रकार के धन-दाता, 'अग्निवेशि' के पुत्र 'शत्रि' ऋषि की स्तुति करते हैं; जो ध्वज के सदृश शिरोमणि रूप और श्रेष्ठ उपमा योग्य हैं । संयत जल-प्रवाह उन्हें सम्यक् रूप से तृप्त करें । आपका धन बलयुक्त और तेजोयुक्त हो ॥९ ॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि** - प्रभूवसु आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - अनुष्टुप्; ८ पंक्ति ।]

**३९१४. यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपका जो विशिष्ट प्रभायुक्त कर्म है, उसे हमारे संरक्षण के लिए प्रयुक्त करें । आपका कर्म शत्रुओं को पराभूत करने वाला अति शुद्ध और संग्राम में कठिनता से पार पाये जाने वाला है ॥१ ॥

३९१५. यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः । यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके जो चार वर्णों में रक्षण साधन हैं । तीनों लोकों में जो रक्षण-साधन स्थित हैं अथवा पंचजनों के निमित्त जो रक्षण साधन हैं, उन सभी रक्षण साधनों से हमें अभिपूरित करें ॥२ ॥

३९१६. आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे । वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इष्ट-फलों के प्रदाता, वृष्टिकर्ता और शत्रुओं के शीघ्र संहारक हैं । आपके सम्पूर्ण रक्षण साधनों की हम कामना करते हैं । आप सर्वत्र विद्यमान एवं सहायक मरुतों के साथ मिलकर हमारे लिए श्रेष्ठ दाता सिद्ध हों ॥३ ॥

३९१७. वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः । स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इष्ट-प्रदायक हैं । यजमानों को धन-ऐश्वर्य देने के लिए ही आप उत्पन्न हुए हैं । आपका बल इष्टवर्षक है । आपका मन संघर्ष शक्ति से युक्त है । आपका बल शत्रुओं को वश में करने वाला है । आपका पौरुष शत्रु-संहारक है ॥४ ॥

३९१८. त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः । सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सैकड़ों यज्ञादि कर्मों के सम्पादक हैं । आपका रथ सर्वत्र अबाधगति से जाता है । जो मनुष्य आपके प्रति शत्रुवत् व्यवहार करते हैं, आप उनके विरुद्ध चलते हैं ॥५ ॥

३९१९. त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! यज्ञों में कुश के आसन बिछाकर अभिवादन करने वाले मनुष्य, जीवन-संग्राम में आपका आवाहन करते हैं । आप उग्र, वीर और सम्पूर्ण प्रजाओं में चिर पुरातन हैं ॥६ ॥

३९२०. अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु । सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे रथ की रक्षा करें । यह रथ युद्धों में ऐश्वर्य की कामना करने वाला है । यह अनुचरों के साथ अग्रगमन करने वाला और दुस्तर है ॥७ ॥

३९२१. अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएँ । अपनी प्रकृष्ट बुद्धि से हमारे रथ की रक्षा करें । आप अत्यन्त बलशाली हैं । आपके निमित्त हम ग्रहणीय एवं दीप्तिमान् अन्नों को हवि द्वारा स्थापित करते हैं और दिव्य स्तुतियों का उच्चारण करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - प्रभूवसु आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ३ जगती ।]

३९२२. स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१ ॥

जो धनों को देना जानते हैं, जो धनों के अनुपम दाता हैं; ऐसे इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आएँ । जैसे धनुर्धारी वीर शिकार की कामना करता है; वैसे ही तृषित इन्द्रदेव सोम की कामना करते हुए दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करें ॥१ ॥

३९२३. आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२ ॥

हे अश्वयुक्त शूर इन्द्रदेव ! जैसे सोम पर्वत के पृष्ठ भाग पर रहता है; वैसे यह सोम आपके सुन्दर होठ पर चढ़े । बहुतों के द्वारा आवाहन किए जाने वाले दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! जैसे अश्व तृण खाकर तृप्त होता है, वैसे आप हमारी स्तुतियों को पाकर तृप्त हों, जिससे हम भी प्रमुदित हों ॥२ ॥

३९२४. चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥३ ॥

बहुतों के द्वारा स्तुत, वज्रधारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! जैसे गोल चक्र घूमते हुए काँपता है, उसी प्रकार हमारा मन बुद्धिहीनता के कारण भय से काँपता है । हे सर्वदा वर्धमान इन्द्रदेव ! आप असंख्यों धनों के अधीश्वर और अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हैं । हम स्तोतागण बारम्बार आपका स्तवन करते हैं । आप धन से युक्त रथ पर आरूढ़ होकर हमारे पास आएँ ॥३ ॥

३९२५. एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४ ॥

जैसे सोम अभिषव करने वाला पाषाण शब्द करता है, वैसे हम स्तोता स्तुति करते हुए शब्द करते हैं । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप विपुल धन-सम्पन्न हैं । आप बाँयें और दायें दोनों हाथों से धन दान करने वाले हैं, हे दो अश्वों वाले इन्द्रदेव ! आप हमारी कामनाओं को विफल न करें ॥४ ॥

३९२६. वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! बल-संयुक्त आकाश आपके बलों को संवर्द्धित करे । बल -सम्पन्न आप अति बलवान् अश्वों द्वारा वहन किये जाते हैं । उत्तम शिरस्त्राण और वज्र धारण करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप अतीव बल-सम्पन्न कर्म करने वाले हैं । अत्यन्त बलशाली रथ पर अधिष्ठित होने वाले आप संग्राम में भली-भाँति हमारी रक्षा करें ॥५ ॥

३९२७. यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६ ॥

इन्द्रदेव के सहायक हे मरुतो ! अन्नवान् श्रुतरथ राजा ने समान गति वाले एवं रोहित वर्ण वाले दो अश्व और तीन सौ गौएँ हमें प्रदान कीं । ऐसे तरुण श्रुतरथ के लिए उनकी समस्त प्रजाएँ सेवा भाव से युक्त होकर नमन करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३९२८. सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१ ॥

उत्तम रूप से आवाहित और घृत आहुतियों से दीप्तिमान् अग्नि की ज्वालाएँ सूर्यरश्मियों से सुसंगत होकर चलती हैं । उस समय जो यजमान "इन्द्रदेव के लिए सोम-सवन करें" - ऐसा कहता है, उसके निमित्त उषा अत्यन्त सुखकारी होकर प्रकाशित होती है ॥१ ॥

३९२९. समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२ ॥

अध्वर्यु अग्नि को प्रज्वलित करके, आसन विस्तीर्ण कर यजन कार्य में प्रवृत्त होता है । वह सोम अभिषवण के पाषाण से युक्त होकर स्तुति करते हुए पाषाण से तीव्र शब्द करता है । वह अध्वर्यु सोमयुक्त हविष्यान्न लेकर नदी तट पर यजन कार्य सम्पन्न करता है ॥२ ॥

३९३०. वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥३ ॥

जिस प्रकार श्रेष्ठ कामनाएँ करती हुई पत्नी यज्ञ में पति की अनुगामिनी होती है, उसी प्रकार इन्द्रदेव भी अपनी अनुगामिनी रानी को यज्ञ में वहन करते हैं । प्रभूत ऐश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव के रथ की कीर्ति चतुर्दिक् फैलकर गुंजरित हो । वे इन्द्रदेव सहस्रों विपुल धनों को चारों ओर से हमारे पास लायें ॥३ ॥

३९३१. न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४ ॥

जिसके राज्य में इन्द्रदेव सर्वदा गो-दुग्ध मिश्रित सोमरस का पान करते हैं, वे राजा कभी व्यथित नहीं होते ।

अपने सत्य सेवकों के साथ सर्वत्र विचरते हैं। अपने शत्रुओं को मारते हैं। प्रजाओं को सुरक्षित रखते हैं। वे अपने सौभाग्य और नाम-यश को पुष्ट करते हैं ॥४ ॥

३९३२. पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति।

प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५ ॥

जो इन्द्रदेव के निमित्त सोम अभिषवण कर उन्हें शुद्ध सोम प्रदान करता है। वह अपने बन्धुओं और सन्तानों का सम्यक् पोषण करता हुआ प्राप्त धन की रक्षा करने और अप्राप्त धन को प्राप्त करने में समर्थ होता है। वह सभी जीवन-संग्रामों के उपस्थित होने पर विजयी होता है। वह सूर्यदेव और अग्निदेव के लिए प्रिय होता है ॥५ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि** - अत्रि भौम। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** - अनुष्टुप्।]

३९३३. उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो।

अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१ ॥

सर्वज्ञ, श्रेष्ठदानी, सौ अश्वमेध (सैकड़ों यज्ञादि सत्कर्म) करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप महिमाशाली धन प्रदान कर हमें भी ऐश्वर्य-सम्पन्न बनायें ॥१ ॥

३९३४. यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे। पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२ ॥

हे अत्यन्त बलशाली इन्द्रदेव ! आप स्वर्ण सदृश कान्ति से युक्त हैं। आप अत्यन्त यशस्वी अन्नों को धारण करने वाले हैं। वह आपका यश दुर्गमता से पार पाने (अनिवारणीय) योग्य है और दीर्घकाल तक अबाधित गति से फैलने वाला है ॥२ ॥

३९३५. शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः। उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अत्यन्त पूजनीय, सर्वत्र व्याप्त, प्रभूत बल-सम्पन्न तथा सहायकरूप मरुतों के साथ द्युलोक और पृथ्वीलोक में स्वेच्छा से विचरण करते हुए सब पर शासन करते हैं ॥३ ॥

३९३६. उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन्।

अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४ ॥

वृत्रनामक असुर का विनाश करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम आपके बल-सामर्थ्य का वर्णन करते हैं। आप हमें किसी भी बल-सम्पन्न शत्रु का धन लाकर देते हैं; क्योंकि आप हम सबको धनवान् बनाने के अभिलाषी हैं ॥४ ॥

३९३७. नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो। इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५ ॥

सौ यज्ञ (सैकड़ों सत्कर्म) करने वाले हे इन्द्रदेव ! हम सब आपकी शरण में रहते हुए आपकी रक्षण-सामर्थ्यों द्वारा भली प्रकार सुरक्षित हों। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हम सब भली प्रकार संरक्षित हों ॥५ ॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - अत्रि भौम। **देवता** - इन्द्र। **छन्द** - अनुष्टुप्, ५ पंक्ति।]

३९३८. यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१ ॥

अद्भुत वज्र को धारण करने वाले ऐश्वर्यशाली हे इन्द्रदेव ! हमारे पास आपके समर्पण योग्य धन का अभाव है। अतएव मुक्त हस्त से हमें प्रचुर धन प्रदान करें ॥१ ॥

३९३९. यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर । विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस धन-सामर्थ्य को श्रेष्ठ और तेजस्वितायुक्त मानते हैं, वह धन हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें । हम उस धन को (लोक कल्याणार्थ) दान देने की स्थिति में भी रहें ॥२ ॥

३९४०. यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने सब दिशाओं में स्तुत्य, प्रसिद्ध और व्यापक मन (आन्तरिक शक्ति-इच्छा शक्ति) से हमें स्थिर धन और सामर्थ्य प्रदान करें ॥३ ॥

३९४१. मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् । इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥

इन्द्रदेव धनवानों में अनुपम शिरोमणि रूप हैं । वे मनुष्यों के अधीश्वर हैं । स्तोतागण प्राचीन स्तोत्रों से उनकी प्रशंसा के लिए सर्वदा उद्यत होकर सम्यक् सेवा करते हैं ॥४ ॥

३९४२. अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५ ॥

इन्द्रदेव के लिए ही यह काव्य, स्तुति वचन और उक्थ वचन कहने योग्य हैं । उन स्तोत्रों को वहन करने वाले इन्द्रदेव के यज्ञ को अत्रि वंशज ऋषि स्तुतियों से संवर्धित करते हुए शुभ (उज्ज्वल) बनाते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - इन्द्र; ५ सूर्य ; ६-९ अत्रि । **छन्द** - १-३ उष्णिक् ; ५, ९ अनुष्टुप् , ४, ६-८ त्रिष्टुप् ।]

३९४३. आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥१ ॥

हे सोमपालक इन्द्रदेव ! पाषाण से कूटकर निष्पन्न इस सोमरस का आप पान करें । हे इन्द्रदेव ! आप इष्टवर्षक मरुतों के साथ वृत्र का हनन कर वृष्टि करने वाले हैं ॥१ ॥

३९४४. वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२ ॥

सोम- अभिषव में प्रयुक्त पाषाण (दोनों) वर्षणशील हैं । सोम से उत्पन्न हर्ष भी वर्षणशील है । यह अभिषुत किया हुआ सोम भी वर्षणशील है । इष्टवर्षक, वृत्रहन्ता हे इन्द्रदेव ! आप वर्षणकारी मरुतों के साथ सोमरस का पान करें ॥२ ॥

३९४५. वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥३ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सोम के सिंचनकर्त्ता और वृष्टिकर्त्ता हैं । आपके संरक्षण साधनों से रक्षित होने के लिए हम आपका आवाहन करते हैं । इष्टवर्षक, वृत्रहन्ता हे इन्द्रदेव ! आप वर्षणकारी मरुतों के साथ सोमपान करें ॥३ ॥

३९४६. ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४ ॥

इन्द्रदेव सोम धारणकर्ता, वज्रधारी, अभीष्टवर्षक, शत्रु- संहारक, शत्रुबलों के शोषक, सर्व अधीश्वर, वृत्रहन्ता और सोमपानकर्त्ता हैं । ऐसे इन्द्रदेव अपने अश्वों को रथ से युक्त करके हमारे समीप आयें और माध्यन्दिन सवन में सोमपान कर हर्षित हों ॥४ ॥

३९४७. यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५ ॥

हे सूर्यदेव ! जब आपको स्वर्भानु (राहु) ने तमिस्रा से आच्छादित कर दिया था, तब जैसे मनुष्य अन्धकार में अपने क्षेत्र को न जानकर भ्रमित हो जाता है, वैसे ही सभी लोक तमिस्रा में सम्मोहित हो गये ॥५ ॥

३९४८. स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने आकाश के नीचे विद्यमान स्वर्भानु की मायाओं को दूर कर दिया । तमिस्रा से आच्छादित सूर्य को अत्रि ऋषि ने अत्यन्त प्रकृष्ट मंत्रों द्वारा प्रकाशित किया ॥६ ॥

३९४९. मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७ ॥

(सूर्य का कथन) हे अग्ने ! आपके विद्यमान रहते यह द्रोहकारक, असुररूप, भयोत्पादक तमिस्रा हमें निगल न जाए । आप सत्यपालक और मित्र स्वरूप हैं । आप और तेजोमय वरुण दोनों मिलकर हमें संरक्षित करें ॥७ ॥

३९५०. ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८ ॥

ऋत्विज् अत्रि ऋषि ने पाषाणों को संयुक्त कर इन्द्रदेव के निमित्त सोम निष्पादित किया । स्तोत्रों से देवों का पूजन-अर्चन किया और हवियों से उन्हें तृप्त किया । द्युलोक में सूर्यदेव को उपदेश देकर उनके चक्षु को स्थापित किया और स्वर्भानु की माया को दूर कर दिया ॥८ ॥

३९५१. यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥९ ॥

जिन सूर्यदेव को स्वर्भानु ने तमिस्रा से आच्छादित किया था, अत्रि वंशजों ने उनको मुक्त किया । अन्य कोई ऐसा करने में समर्थ नहीं हुए ॥९ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ; ६ - १७ अतिजगती; २० एकपदा विराट् ।]

३९५२. को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१ ॥

हे मित्रावरुण देव ! कौन यजमान आपके यजन में समर्थ होता है ? हम आपका यजन करने वाले हैं । आप द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक के स्थान से हमारी रक्षा करें । हमें पशु , अन्न, धन आदि से युक्त करें ॥१॥

३९५३. ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥२ ॥

हे मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु (वायु) , इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुत् देवो ! आप सब देवगण हमारे शुभ स्तोत्रों को ग्रहण करें । आप सब मंगलकारी रुद्रदेव के साथ मिलकर हमारे नमस्कार और अभिवादन युक्त स्तोत्रों को प्रीतियुक्त मन से स्वीकार करें ॥२ ॥

३९५४. आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! वायु के सदृश वेगवान् अश्वों को रथ के मजबूत स्थान से आप भली प्रकार नियंत्रित करते हैं । आपका हम यज्ञ-सेवनार्थ आवाहन करते हैं । हे ऋत्विजो ! आप दीप्तिमान् , अतिशय पूज्य और प्राण-प्रदाता रुद्रदेव के लिए उत्तम स्तोत्र और हविष्यान्न प्रस्तुत करें ॥३ ॥

३९५५. प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥४ ॥

मेधावी जन जिनका आवाहन करते हैं, जो अत्यन्त दिव्य हैं, शत्रुविनाशक हैं, वे वायु , अग्नि , पूषा और भगदेव सम्मिलित होकर तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले सूर्यदेव के साथ मिलकर प्रीतिपूर्वक यज्ञ में आएँ । सभी देवगण यज्ञ में सम्पूर्ण हविरूप भोज्य पदार्थ ग्रहण करने के लिए युद्ध क्षेत्र में जाते हुए वेगवान् अश्व की भाँति अतिशीघ्र आगमन करें ॥४ ॥

३९५६. प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥५ ॥

हे मरुतो ! उत्तम अश्वों से युक्त ऐश्वर्य को हमारे निमित्त स्थापित करें । हम स्तोता धन प्राप्ति के निमित्त और रक्षा के निमित्त उत्तम बुद्धि से आपका स्तवन करते हैं । हे मरुतो ! आपके जो वेगवान् अश्व हैं , उन अश्वों को पाकर 'औशिज' के होतागण सुखी हों ॥५ ॥

३९५७. प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! आप अत्यन्त द्युतिमान् , ज्ञानी , स्तुति योग्य वायुदेव को अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा रथ से संयुक्त करें । सर्वत्र गमन करने वालों , यज्ञ ग्रहण करने वाली रूपवती देवपत्नियाँ हमारी स्तुतियों को धारण कर यज्ञ में आगमन करें ॥६ ॥

३९५८. उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥७ ॥

हे उषा और रात्रि देवियो ! आप दोनों अत्यन्त महान् हैं । हम वन्दनीय स्वर्ग के देवों के साथ आप दोनों को श्रेष्ठ हवि प्रदान करते हैं । आप दोनों विदुषियों की तरह मनुष्य को सम्पूर्ण यज्ञादि कर्मों में प्रेरित करती हैं ॥७ ॥

३९५९. अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधी राय एषे ॥८ ॥

धन प्राप्ति के लिए हम मनुष्यों के पोषक वास्तोष्पति और त्वष्टा देव की उत्तम स्तोत्रों द्वारा अर्चना करते हैं । हव्यादि द्वारा उन्हें संतुष्ट करते हैं । धन देने वाली, आनन्द देने वाली धिषणा (वाणी) की स्तुति करते हैं । वनस्पतियों और ओषधियों की हम स्तुति करते हैं ॥८ ॥

३९६०. तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९ ॥

वीरों के सदृश जगत् के आश्रय-भूत मेघ , स्वेच्छा से सर्वत्र विहार करते हैं । वे विपुल दान के विषय में

हमारे प्रति अनुकूल हों । वे हमारे द्वारा स्तुत्य, ज्ञानी, यजनीय और मनुष्यों के हितैषी हैं । वे हम लोगों की स्तुति से तुष्ट होकर अभीष्ट फल प्रदान कर हमें समृद्ध करें ॥९ ॥

३९६१. वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१० ॥

वृष्टि द्वारा भूमि को सींचने में समर्थ मेघ के गर्भ में स्थित जल के रक्षक अग्निदेव की हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं । तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले वे अग्निदेव जाते हुए अपनी सुखकर रश्मियों से हमें प्रताड़ित नहीं करते; किन्तु अपनी प्रदीप्त ज्वालाओं रूपी केशों से वनों को जलाकर भस्मीभूत कर देते हैं ॥१० ॥

३९६२. कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११ ॥

हम महान् रुद्र-पुत्र मरुद्गणों की किस प्रकार स्तुति करें ? धन प्राप्त करने की आकांक्षा से ज्ञान सम्पन्न भगदेव का स्तवन कैसे करें ? जलदेव, ओषधियाँ, आकाशदेव, वन और वृक्ष रूप केश वाले पर्वतदेव हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ॥११ ॥

३९६३. शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥१२ ॥

अन्तरिक्ष में सर्वत्र संचरित होने वाले, पृथ्वी के चतुर्दिक् परिभ्रमणशील, बलों के अधिपति वायुदेव हमारी स्तुतियों का श्रवण करें । नगरों के सदृश उज्ज्वल, विशाल पर्वत के चतुर्दिक् निस्सृत जल-धारा हमारे वचनों का श्रवण करे ॥१२ ॥

३९६४. विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३ ॥

हे महान् मरुतो ! आप हमारे स्तोत्रों को जानें । हे दर्शनीय मरुतो ! हम लोग वरणीय हविष्यान्न को धारण करते हुए उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । आप क्षुब्ध होकर आने वाले शत्रुओं को आयुधों से मारकर हम लोगों के सम्मुख आयें ॥१३ ॥

३९६५. आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४ ॥

हम द्युलोक और पृथिवी लोक से जल की उत्तम स्तुतियाँ करके यज्ञ को भली प्रकार सम्पादित करते हैं । सूर्य , चन्द्र आदि ग्रह-नक्षत्र भी हमारी स्तुतियों को प्रवृद्ध करें । जल से परिपूर्ण नदियाँ जल से हमें संवर्द्धित करें ॥१४ ॥

३९६६. पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५ ॥

माता भूमि के प्रति प्रत्येक पद में हमारी स्तुतियाँ समाहित हैं । वे माता अपने रक्षण-साधनों और सामर्थ्यों से हमारी रक्षा करने वाली हों । वे हमारी स्तुतियों को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें और प्रसन्न होकर अनुकूल हाथों से कल्याणकारी दान करने वाली हों । वे माता अपने दिव्य रसों से हमारा सिंचन करें ॥१५ ॥

३९६७. कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६ ॥

हम लोग उत्तम दानशील मरुतों का स्तवन किस प्रकार करें ? स्तोत्रों के उच्चारण द्वारा हम किस प्रकार मरुतों की सेवा करें ? हविष्यान्न देकर हम किस प्रकार मरुतों की सेवा करें ? हे अहिर्बुध्न्य देव ! हमें हिंसकजन अपने वश में न कर सकें । आप हमारे शत्रुओं को विनष्ट करने वाले हों ॥१६ ॥

३९६८. इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७ ॥

हे देवो ! यजमान, सन्तान और पशुओं की प्राप्ति के लिए हम आपकी उपासना करते हैं । हे देवो ! सभी मनुष्य आपकी उपासना करते हैं । निर्ऋतिदेव कल्याणकारी अन्न देकर हमारे शरीर का पोषण करें और हमारे बुढ़ापे को निगलकर दूर करें ॥१७ ॥

३९६९. तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८ ॥

हे प्रकाशवान् वसुओ ! हम उत्तम स्तुतियों द्वारा आपकी सुमतिरूप गौ से बल प्रदायक अन्न (पोषण) प्राप्त करें । वे दानवती, सुखदायिनी देवी हमें सुख देती हुई हमारे पास आएँ ॥१८ ॥

३९७०. अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९ ॥

गौ समूह की पोषणकर्त्री इला और उर्वशी, नदियों की गर्जना से संयुक्त होती हमारी स्तुतियों को सुनें । अत्यन्त दीप्तिमती उर्वशी हमारी स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारे यज्ञादि कर्म को सम्यकरूप से आच्छादित कर हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥१९ ॥

३९७१. सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२० ॥

बल वृद्धि और सम्यक् पोषण के लिए देवगण हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें ॥२० ॥

[सूक्त - ४२]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - विश्वेदेवा; ११ रुद्र । **छन्द** - त्रिष्टुप्; १७ एकपदा विराट् ।]

३९७२. प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१ ॥

हमारी सुखकर स्तुतियाँ हव्यादि पदार्थों के साथ वरुण, मित्र, भग और अदिति को निश्चय ही प्राप्त हों । पंच प्राणों के आधार भूत, विचित्र वर्ण वाले, अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले, अबाधितगति वाले, प्राण-प्रदाता और सुखदाता वायुदेव हमारी स्तुतियाँ सुनें ॥१ ॥

३९७३. प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२ ॥

जैसे माता अपने पुत्र को प्रीतिपूर्वक धारण करती है, वैसे ही अदिति हमारे इन स्तोत्रों को हृदय से धारण करें ।देवों के प्रिय और हितकारी हमारे जो स्तोत्र हैं, उन्हें हम मित्र और वरुणदेव के निमित्त अर्पित करते हैं ॥२ ॥

३९७४. उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! आप लोग ज्ञानियों में अति श्रेष्ठ इन सवितादेव को प्रमुदित करें । इन देव को मधुर सोमरस और घृतादि द्वारा अभिषिक्त कर तृप्त करें । सवितादेव हमें शुद्ध ,हितकारी, आह्लादक और जीवन को प्रकाशित करने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

३९७५. समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ मन, गौओं, अश्वों, ज्ञानीजनों तथा श्रेष्ठ, कल्याणकारी भावनाओं से युक्त करें । देवों का हित करने वाला जो ज्ञान है, उससे तथा यज्ञीय (सत्कर्मशील) देवों की सुमति से हमें जोड़ें ॥४ ॥

३९७६. देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५ ॥

दीप्तिमान् भगदेव, सर्वप्रेरक सवितादेव, धन के स्वामी त्वष्टादेव, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव और धनों के विजेता ऋभुक्षा, वाज और पुरन्धि आदि समस्त अमरदेव शीघ्र ही हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर हम लोगों की रक्षा करें ॥५ ॥

३९७७. मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥६ ॥

हम यजमान मरुतों की सहायता पाने वाले इन्द्रदेव के महान् कार्यों का वर्णन करते हैं । ये इन्द्रदेव युद्ध से कभी पलायन नहीं करते । ये सर्वदा विजयशील और जरारहित हैं । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपके पराक्रम को न तो पूर्वकाल में किसी पुरुष ने पाया है, न आगे कोई प्राप्त करने वाला है; न ही किसी नवीन ने भी आपके पराक्रम को प्राप्त किया है ॥६ ॥

३९७८. उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥७ ॥

हे ऋत्विजो ! आप सर्वश्रेष्ठ, रत्न धारणकर्त्ता और धनों के प्रदाता बृहस्पतिदेव की स्तुति करें । वे हवि प्रदाताओं को प्रभूत धनों से युक्त करने के लिए आगमन करते हैं । वे प्रशंसा करने वालों और स्तुति करने वालों को अतिशय सुख प्रदान करते हैं ॥७ ॥

३९७९. तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥८ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर हम मनुष्य हिंसा से मुक्त, ऐश्वर्यवान् और उत्तम वीर पुत्रों से युक्त होते हैं । आपके अनुग्रह से जो मनुष्य उत्तम अश्वों, गौओं और वस्त्रों का दान करने वाला होता है, उनमें सौभाग्यशाली ऐश्वर्य स्थापित होता है ॥८ ॥

३९८०. विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो धनवान् स्तुति करने वालों को धन दान न करके उसका स्वयं ही उपभोग करता है, ऐसे मनुष्यों के धन को नष्ट हो जाने वाला करें । जो व्रत धारण नहीं करता और मन्त्र से द्वेष करता है, अमर्यादित सन्तान उत्पत्ति द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, ऐसे लोगों को आप सूर्यदेव से दूर करें ॥९ ॥

३९८१. य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते सिष्विदानः ॥१०॥

हे मरुतो ! जो मनुष्य यज्ञ मे राक्षसी वृत्तियों से युक्त होता है; जो आपके लिए स्तुति करने वाले की निन्दा करता है; जो अन्न, पशु आदि कामनाओं की पूर्ति के लिए तुच्छता को अपनाता है, ऐसे मनुष्यों को आप चक्रविहीन रथ द्वारा अन्धकूप में निमग्न करें ॥१०॥

३९८२. तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥

हे ऋत्विज् ! आप रुद्रदेव की सम्यक् स्तुतियाँ करें, जो उत्तम बाण और धनुष से युक्त है, जो सम्पूर्ण ओषधियों द्वारा रोग निवारक हैं, उन रुद्रदेव का यजन करें। महान् मंगलकारी जीवन के लिए दीप्तिमान् और प्राणप्रदाता रुद्रदेव की नमनपूर्वक सेवा करें ॥११॥

३९८३. दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥

उदार मन वाले, निर्माण कार्य में कुशल हाथ वाले ऋभुदेव, विभुओं द्वारा निर्मित मार्ग वाली सरस्वती, वर्षणशील इन्द्रदेव की पत्नी रूप नदियाँ, तेजोयुक्त रात्रि आदि समस्त देवशक्तियाँ साधकों की मनोकामना पूर्ण करने वाली हैं। आप सब हमें धन प्रदान करें ॥१२॥

३९८४. प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

महान् और उत्तम रक्षक अनेक रूपों में स्तुत्य इन्द्रदेव को हम नवीन रचनाएँ (स्तुतियाँ) बुद्धिपूर्वक समर्पित करते हैं। वर्षणकर्ता इन्द्रदेव ने कन्या रूपिणी पृथ्वी के हितार्थ नदियों में जल उत्पन्न कर उन्हें प्रवहमान बनाया ॥१३॥

३९८५. प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥

हे स्तोताओ ! आपकी उत्तम स्तुतियाँ उन गर्जनकारी, शब्दकारी, जल के स्वामी मेघों को निश्चय ही प्राप्त हों। वे मेघ जल से अभिपूरित हैं, वर्षणशील हैं और विद्युत् आलोक से सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी को आलोकित करते हुए गमन करते हैं ॥१४॥

३९८६. एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥

हमारे ये स्तोत्र रुद्रदेव के पुत्र रूप तरुण मरुतों को प्राप्त हों। कल्याणप्रद धन प्राप्ति की इच्छा हमें निरन्तर प्रेरित करती है। बिन्दुदार चिह्नित अश्वों वाले मरुद्गण, जो यज्ञ की ओर गमन करते हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं ॥१५॥

३९८७. प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतींरोषधी राये अश्याः।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१६॥

धन-प्राप्ति की अभिलाषा से हमारे द्वारा निवेदित ये स्तोत्र पृथ्वी, अन्तरिक्ष, वनस्पति और ओषधियों को प्राप्त हों। हमारे यज्ञ में सम्पूर्ण दीप्तिमान् देवों का उत्तम आवाहन हो। माता पृथ्वी हमें दुर्मति में स्थापित न करें ॥१६॥

३९८८. उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१७ ॥

हे देवो ! हम सब आपके अनुग्रह से निर्विघ्न होकर अतिशय सुख में निमग्न हों । ।१७ ॥

३९८९. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१८ ॥

हम अश्विनीकुमारों के मंगलकारी, सुखकारी अनुग्रहों और उन रक्षण साधनों से संयुक्त हों, जो नूतन हों । हे अमर अश्विनीकुमारो ! आप हमें उत्तम ऐश्वर्य, वीर पुत्रों और सम्पूर्ण सौभाग्यों को प्रदान करें ॥१८ ॥

[सूक्त - ४३]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ; १६ एकपदा विराट् ।]

३९९०. आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥१ ॥

द्रुत वेग से प्रवाहित होने वाली, (जल से परिपूर्ण) नदियाँ अनुकूल होकर हमारे निकट आगमन करें । ज्ञान सम्पन्न स्तोतागण धन प्राप्ति की कामना से सुखदायिनी सप्त महानदियों का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

३९९१. आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥२ ॥

हम अन्न प्राप्ति के लिए उत्तम स्तुतियों और नमन-अभिवादन द्वारा अहिंसक आकाश और पृथिवी का आवाहन करते हैं । वे मधुर वचन वाले, कुशल हाथों वाले और यशस्वी पिता रूप आकाश और माता पृथिवी प्रत्येक युद्ध में हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

३९९२. अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥३ ॥

हे अध्वर्युगण ! आप मधुर सोमरस का अभिषव करते हुए सुन्दर और दीप्तिमान् रस सर्वप्रथम वायुदेव को अर्पित करें । हे वायुदेव ! आप होता रूप में हमारे द्वारा प्रदत्त सोमरस का सर्वप्रथम पान करें । हम आपको हर्षित करने के लिए यह मधुर सोमरस निवेदित करते हैं ॥३ ॥

३९९३. दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥४ ॥

ऋत्विजों की दसों अँगुलियाँ और दोनों भुजाएँ पाषाण से युक्त होकर सोमरस-अभिषव में प्रयुक्त होती हैं । कुशल हाथों वाले ऋत्विज् अत्यन्त हर्षयुक्त मन से पर्वत पर उत्पन्न सोम वल्ली से रसों का दोहन करते हैं, जिससे दीप्तिमान् सोमरस की धारा बहती है ॥४ ॥

३९९४. असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी परिचर्या के लिए, पराक्रमयुक्त कार्य के लिए, बल के लिए और महान् हर्ष के लिए हम सोमाभिषव करते हैं । हे इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा आवाहन किये जाने पर आप उत्तम धुरी वाले रथ से योजित प्रिय अश्वों के साथ हमारे यज्ञ में आएँ ॥५ ॥

३९९५. आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम्।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित होकर आप सर्वत्र व्याप्त, यज्ञ को जानने वाली महान् तेजस्विनी 'ग्ना' देवी को देवों द्वारा गन्तव्य मार्ग से हमारे पास लाएँ । वह देवी हमारे द्वारा नम्रतापूर्वक निवेदित हव्य पदार्थों और मधुर सोमरस को ग्रहण करके हर्षित हों ॥६ ॥

['ग्ना' उसे कहते हैं, जो सबके लिए सहज प्राप्य है । अग्नि की सहज प्राप्य शक्ति को 'ग्ना' कहकर आवाहित किया गया प्रतीत होता है ।]

३९९६. अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥७ ॥

रूपवान् शरीर को अलंकारों से पूर्ण करने के समान ज्ञानी पुरुष यज्ञ कुण्ड को यज्ञ-साधन हव्यादि से पूर्ण करते और अग्नि से तपाते हैं । यह यज्ञकुण्ड यज्ञ सम्पन्न करने के लिए अपने भीतर अग्नि को उसी प्रकार धारण करता है, जिस प्रकार पिता अपने प्रिय पुत्र को गोद में धारण करता है ॥७ ॥

३९९७. अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥८ ॥

पूज्य, महान् और सुखप्रद हमारी वाणी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ-स्थल पर बुलाने के लिए दूत रूप में सीधी गमन करे ।हे सुखदायक अश्विनीकुमारो !गमनशील रथ की धुरी की नाभि में लगी हुई कील के समान आप हमारे यज्ञ के मुख्य आधार हैं ।अतएव आप रथ पर आरूढ़ होकर हमारे यज्ञ में निधि के रूप में दर्शनीय हों ॥८ ॥

३९९८. प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९ ॥

अत्यन्त बलशाली और वेगपूर्वक गमन करने वाले पूषा और वायुदेव के लिए हम नमस्कारपूर्वक स्तुति वचनों को कहते हैं । ये पूषा और वायुदेव आराधना किए जाने पर बुद्धि को प्रेरित करते हैं और आराधक को उत्तम अन्न एवं बल से युक्त करते हैं ॥९ ॥

३९९९. आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥१० ॥

प्राणिमात्र को जानने वाले हे अग्निदेव ! हमारे आवाहन किये जाने पर आप विभिन्न नामों वाले और विभिन्न रूपों वाले मरुतों के साथ उपस्थित हों । हे मरुतो ! आप सब स्तोताओं की वाणी युक्त उत्तम स्तुतियों को श्रवण कर उत्तम रक्षण-साधनों सहित हमारे यज्ञस्थल पर पधारें ॥१० ॥

४०००. आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥११ ॥

हम सभी लोगों द्वारा पूजनीय सरस्वती देवी द्युलोक से और पर्वतों से हमारे यज्ञ में पहुँचे । घृत सदृश कान्तिमती वे देवी हमारी हवियों को स्वीकार करती हुई स्वेच्छा से हमारे सुखकारी वचनों का श्रवण करें ॥११ ॥

४००१. आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२ ॥

अत्यन्त मेधावी, नील वर्ण प्रभायुक्त शरीर वाले, महान् बृहस्पतिदेव हमारे यज्ञगृह में अधिष्ठित हों। यज्ञगृह के मध्य श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित दीप्तिमान, स्वर्णिम आभा सम्पन्न, प्रकाशक देव बृहस्पति की हम सब सेवा करें ॥१२॥

४००२. आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३ ॥

सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले अग्निदेव, सम्पूर्ण रक्षण साधनों के साथ हमारे यज्ञस्थल पर आगमन करें। वे अत्यन्त दीप्तिमान् , आनन्दप्रद और सबके द्वारा आवाहन किये जाने वाले हैं। वे अग्निदेव प्रज्वलित शिखावाले, ओषधि से आच्छादित होने वाले, अबाधगति वाले, त्रिवर्ण (रोहित, शुक्ल और कृष्ण वर्ण) ज्वालाओं वाले हैं। वे अभीष्टवर्षक और अन्नों के धारणकर्ता हैं ॥१३ ॥

४००३. मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४ ॥

सम्पूर्ण होता और ऋत्विग्गण मातृरूप पृथ्वी के शुभ्र और अत्यन्त उच्च स्थान (उत्तर वेदी) पर गमन करते हैं। जैसे कोमल शिशु को वस्त्रों से आच्छादित करते हैं, वैसे ही नवजात सुखकारक अग्नि पर हविदाता यजमान स्तुतियों के साथ हविष्यान्न का आवरण बनाते हैं ॥१४ ॥

४००४. बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त महान् स्वरूप वाले हैं। आपकी स्तुति करते हुए बुढ़ापे को प्राप्त ये दम्पती (पति-पत्नी) एक साथ आपको विपुल अन्न देते रहे हैं। हे देवों के देव अग्निदेव ! आप हमारे उत्तम आवाहन से बुलाए जाते हैं। मातृरूप पृथ्वी हमें दुर्बुद्धि में स्थापित न करे ॥१५ ॥

४००५. उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६ ॥

हे देवो ! हम आपके अनुग्रह से निर्बाधित रहकर अतिशय विस्तृत सुखों में निमग्न रहें ॥१६ ॥

४००६. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७ ॥

हम लोग अश्विनीकुमारों के मंगलकारी, सुखकारी अनुग्रहों और उनके रक्षण-साधनों से संयुक्त हों, जो अतिशय नूतन हों। हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! आप हमें उत्तम ऐश्वर्य, वीर सन्तान और सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करें ॥१७ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि** - अवत्सार काश्यप । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती; १४, १५ त्रिष्टुप् ।]

४००७. तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥१ ॥

पुरातन समय के याजकों, हमारे पुरखों तथा इस काल के सभी प्राणियों की भाँति हम भी इन्द्रदेव की स्तुतियाँ करके अपने मनोरथ पूर्ण करें। वे इन्द्रदेव देवताओं में ज्येष्ठ, सर्वज्ञाता, हम सबके सामने कुशासीन, बली, गतिमान् और विजयशील हैं। उन्हें स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करें ॥१ ॥

४००८. श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वर्गलोक में अपनी आभा से प्रकाशित होते हैं । आप अवृष्टिकारक मेघों के मध्य स्थित सुन्दर जलराशि को बहाते हैं और सम्पूर्ण दिशाओं को शोभा से युक्त करते हैं । आप वृष्टि आदि उत्तम कर्मो द्वारा प्रजाओं के रक्षक हैं । आप प्राणियों की हिंसा न करने वाले और प्रपंचों को दूर करने वाले हैं; इसीलिए आपका नाम सत्यलोक में चिरकाल से विद्यमान है ॥२ ॥

४००९. अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥

वे अग्निदेव अबाध गति वाले, अरणि मंथन से बलपूर्वक उत्पन्न होने वाले और यज्ञ-सम्पादक हैं । वे स्थिर और अस्थिर सत्यरूप हवियों को प्राप्त करते हैं । प्रारम्भ में वे अग्निदेव कुश पर बैठकर शिशु रूप होते हैं, तदनन्तर समिधाओं के मध्य विराजित होकर अत्यन्त तरुण और अजर अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥३ ॥

४०१०. प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥

सूर्यदेव की ये किरणें यज्ञ को बढ़ाने वाली, याज्ञिक को धन-ऐश्वर्य देने वाली, यज्ञ में गमन करने की कामना करती हुई अवतीर्ण होती हैं । सूर्यदेव से उत्पन्न ये रश्मियाँ उत्तम वेग से अवतीर्ण होने वाली, सब पर शासन करने वाली और अन्तरिक्ष मार्ग से जल राशि का शोषण करने वाली हैं ॥४ ॥

४०११. सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त सरल पथ से गमन करने वाले हैं । समिधाओं से प्रदीप्त होकर आप आयुवर्द्धक अभिषुत सोमरस का पान करने वाले हैं । विद्वान् साधकों की हृदय गुहा में स्थापित होकर अत्यन्त शोभायमान होते हैं । यज्ञ में चैतन्य होकर आप पत्नीरूप ज्वालाओं को प्रवर्धित करें ॥५ ॥

४०१२. यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६॥

ये देवगण जिस प्रकार दृष्टिगत होते हैं, वैसे ही वर्णित भी होते हैं । इन देवों ने अपने सिद्ध तेजों से जल के आवरण में समायी पृथ्वी को धारण किया । ये देवगण हमें महान् विजय, उत्तम वीर पुत्र, अक्षय धन और विराट् बल प्रदान करें ॥६ ॥

[पृथ्वी के चारों ओर जलवाष्प का आवरण है, उसी के कारण आकाश नीला दिखता है । उस आवरण के बाहर-अन्तरिक्ष में (अन्तरिक्ष यात्रियों को) आकाश नीला नहीं दिखता ।]

४०१३. वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥

सर्व उत्पादक, श्रेष्ठ क्रान्तदर्शी सूर्यदेव अपने उत्कंठित मन के कारण सभी स्पर्धावान् ग्रह-नक्षत्रों से अग्रणी रहते हैं । सम्पूर्ण विश्व की चारों ओर से रक्षा करने वाले तेजस्वी सूर्यदेव की हम सम्यक् रूप से स्तुतियाँ करें । वे सूर्यदेव हमें दीप्तिमान् एवं श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अतिशय सुख प्रदान करें ॥७ ॥

४०१४. ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।

यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८ ॥

श्रेष्ठ यज्ञ सम्पादक हे अग्निदेव ! ऋषियों की स्तुतिपरक वाणी आपके निकट ही गमन करती है । इन स्तुतियों से आपका नाम (यश) संवर्द्धित होता है । वे ऋषिगण जिसकी कामना करते हैं; उसे अपने पराक्रम से प्राप्त कर लेते हैं । जिस कार्य-भार को स्वयं वहन करते हैं, उसे सिद्ध भी कर लेते हैं ॥८ ॥

४०१५. समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।

अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९ ॥

इन स्तोत्रों में सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र (प्रकाश के) समुद्र के समान, सूर्यदेव तक पहुँचकर प्रतिष्ठित हों । जिन यज्ञों में इन स्तोत्रों का विस्तार होता है, वे कभी नष्ट नहीं होते हैं । जहाँ पवित्र भावों से बँधी हुई बुद्धि रहती है, वहाँ याज्ञिकों के हृदयगत मनोरथ कभी विफल नहीं होते ॥९ ॥

४०१६. स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।

अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१० ॥

वे सवितादेव हम सबके द्वारा अत्यन्त रमणीय स्तोत्रों से स्तुति किये जाने योग्य हैं । सम्पूर्ण विद्वानों द्वारा भी अतिशय पूज्य हैं । हम क्षत्र, मनस, अवद, यजत, सधि और अवत्सार नामक ऋषिगण सूर्यदेव की स्तुतियों द्वारा श्रेष्ठ बलों और अन्नों की कामना करते हैं ॥१० ॥

४०१७. श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।

समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११ ॥

यह सोमरस जनित हर्ष कक्षा (उदर) को परिपूर्ण करने वाला, श्येन के सदृश सर्वत्र गमनशील और अदिति की तरह व्यापक है । यह सोमरस विश्ववार, यजत और मायी ऋषियों द्वारा अभिषुत होता है । ये सभी इसका पान करके हर्षित और पुष्ट होने की कामना करते हैं ॥११ ॥

४०१८. सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।

उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२ ॥

जो देवगणों की उत्तम स्तुतियाँ करने वाले हैं, वे सदापृण, यजत, बाहुवृक्त, श्रुतवित् और तर्य ऋषिगण सब मिलकर अपने शत्रुओं का संहार करें । वे ऋषिगण दोनों लोकों- इस लोक और परलोक के मनोरथों को प्राप्त करते हुए तेजस्विता से दीप्तिमान् हों; क्योंकि वे विश्वेदेवों की विशेष स्तुतियाँ करते हैं ॥१२ ॥

४०१९. सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।

भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३ ॥

यजमान अवत्सार के यज्ञ में सुतम्भर ऋषि, सत्यधर्म (यज्ञादि) कार्यों के पालक हैं । वे सम्पूर्ण यज्ञादि कार्यों में स्तुतियों के स्रोत स्वरूप हैं । इस यज्ञ में गौएँ रसरूप पेय पदार्थों को प्रदान करती हैं । सभी स्तोतागण इस यज्ञ के सारभूत फलों को प्राप्त करते हैं, अन्य सोने वाले व्यक्ति नहीं ॥१३ ॥

४०२०. यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।

यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४ ॥

जो जाग्रत् हैं, उन्हीं से ऋचाएँ अपेक्षा रखती हैं । जाग्रतों को ही सामगान का लाभ मिलता है । जाग्रतों से

ही सोम कहता है कि "मैं तुम्हारे मित्र भाव में ही रहता हूँ" ॥१४ ॥

४०२१. अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५ ॥

अग्निदेव जाग्रत् रहते हैं, इसीलिए वह ऋचाओं द्वारा चाहे जाते हैं । अग्निदेव चैतन्यवान् हैं, अतः साम उसका गान करते हैं । चैतन्य (प्रज्वलित) अग्नि से ही सोम कहता है- " मैं सदा आपके मित्रभाव में आश्रय स्थान प्राप्त करूँ " ॥१५ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि** - सदापृण आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ९ पुरस्ताज्ज्योति ।]

४०२२. विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥१ ॥

अंगिराओं की स्तुतियों से इन्द्रदेव ने स्वर्ग से वज्र द्वारा मेघों पर संघात किया, जिससे आने वाली उषा की रश्मियों का द्वार खुला और किरणें सर्वत्र व्याप्त हो गयीं । घनीभूत तमिस्रा विनष्ट हुई और सूर्यदेव प्रकट हुए । उन सूर्यदेव ने सब मनुष्यों के द्वारों को खोला ॥१ ॥

४०२३. वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्य१: खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥२ ॥

जैसे मनुष्य आकर्षक वस्त्रालंकारों से सुन्दर रूप पाता है, वैसे ही सूर्यदेव विभिन्न वर्ण वाली दीप्तियों से शोभायमान होते हैं । प्रकाशक रश्मियों की मातृरूप उषा, सूर्योदय का दर्शन करते हुए विशाल आकाश से अवतीर्ण होती हैं । तट से तीव्र संघात करती हुई प्रवहमान नदियाँ अतिवेग से प्रवाहित होती हैं । घर में स्थित सुदृढ़ स्तम्भ की भाँति द्युलोक तीव्र प्रकाश से सुदृढ़ हुआ है ॥२ ॥

४०२४. अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥३ ॥

इन चिर-पुरातन स्तोत्रों द्वारा भूमि को उत्पादनशील बनाने के लिए मेघ का गर्भ रूप वृष्टि जल बरसता है । आकाश वृष्टि कार्य में साधन रूप में प्रयुक्त होता है । निरन्तर कर्मशील मनुष्य अधिक परिश्रम में उद्यत होते हैं ॥३॥

४०२५. सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! हम अपनी रक्षा के लिए देवों द्वारा सेवनीय सूक्त रूप वचनों से आप दोनों का आवाहन करते हैं । उत्तम प्रकार से आपका यज्ञ सम्पादन करने वाले मरुतों के सदृश आपकी परिचर्या करने वाले ज्ञानीजन आपकी पूजा करते हैं ॥४ ॥

४०२६. एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५ ॥

(हे देवो !) आप हमारे इस यज्ञ में शीघ्र आगमन करें । हम उत्तम कर्मों को करने वाले हों । आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें । प्रच्छन्न शत्रुओं को अतिशय दूर ही रखें और यज्ञ के निमित्त यजमानों की ओर गमन करें ॥ ५ ॥

४०२७. एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातॉं ऋणुत व्रजं गोः ।

यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६ ॥

हे मित्रो ! आओ हम स्तुतियाँ करें, जिसके द्वारा मातृरूप उषा ने विस्तृत किरण समूह को उत्पन्न किया; जिसके द्वारा मनु ने विशिशिप्र (वृत्र) को जीता था, और वंकु वणिक् ने विस्तृत जल-राशियों को प्राप्त किया था ॥६ ॥

४०२८. अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।

ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७ ॥

जिस पाषाण से सोमरस का अभिषवण करके नवग्वों ने दस मास तक पूजा-अर्चना की, वही पत्थर इस यज्ञ में हाथों से संयुक्त होकर निनादित होता है । यज्ञ के अभिमुख होकर सरमा ने स्तुतियों को प्राप्त किया; तदनन्तर अङ्गिरा ने सभी कर्म सफल कर दिखाये ॥७ ॥

४०२९. विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।

उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥८ ॥

इन पूजनीय उषा के प्रकट होने पर सभी अंगिराओं ने अपनी गौओं से दुग्ध प्राप्त किया । गौओं के दूध को उन्होंने यज्ञस्थल के उच्च-स्थान में स्थापित किया । सरमा ने यज्ञ मार्ग से गमन करते हुए उनकी स्तुतियों को जाना ॥८ ॥

४०३०. आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।

रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥९ ॥

सात अश्वों से संयुक्त होकर सूर्यदेव हमारे सम्मुख आएँ, क्योंकि उन्हें दीर्घ प्रवास के लिए अत्यन्त दूर स्थित गंतव्य की ओर जाना है । वे श्येन पक्षी की तरह द्रुतगामी होकर हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न प्राप्त करने के लिए अवतीर्ण हों । वे अत्यन्त युवा और क्रान्तदर्शी सूर्य किरणों के मध्य अवस्थित होकर देदीप्यमान हों ॥९ ॥

४०३१. आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।

उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१० ॥

जब सूर्यदेव ने कान्तिमान् शरीर वाले अश्वों को रथ से युक्त किया, तब सूर्यदेव अन्तरिक्षव्यापी जल पर आरूढ़ हुए । तदनन्तर जैसे जल में डूबी नाव को बाहर निकालते हैं, वैसे ही विद्वानों ने स्तोत्रों से सूर्यदेव को बाहर निकाला । उनकी स्तुतियों से जल राशि भी नीचे अवतीर्ण हुई ॥१० ॥

४०३२. धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।

अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥११ ॥

हे देवो ! जिन स्तुतियों से नवग्वों ने दस मास तक साध्य यज्ञ-अनुष्ठान किया था । जल प्राप्त कराने वाली, उत्तम ऐश्वर्य देने वाली उन स्तुतियों को हम धारण करते हैं । इन स्तुतियों से हम देवों द्वारा रक्षित हों और पाप-कर्मों से भी संरक्षित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि** - प्रतिक्षत्र आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा ७-८ देवपत्नियाँ । **छन्द** - जगती; २,८ त्रिष्टुप् ।]

४०३३. हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।

नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१ ॥

अश्व जिस प्रकार रथ के जुए में जुड़ जाता है; उसी प्रकार विद्वान् (प्रतिक्षत्र) धुरी (यज्ञ) के साथ स्वयं योजित हो जाते हैं । हम भी उस विघ्नहर्त्ता और रक्षणकर्त्ता यज्ञ के भार को वहन करते हैं । इस भार-वहन से विमुक्त होने की इच्छा हम नहीं करते, बल्कि बारम्बार भार को धारण करने की कामना करते हैं । हे मार्ग जानने वाले देव ! आप हमारे मार्ग में अग्रगामी होकर सरल मार्ग द्वारा हमें ले चलें ॥१ ॥

[प्रतिक्षत्र सम्बोधन शौर्य- सम्पन्नों के लिए प्रयुक्त होता है । शौर्य सम्पन्न विद्वान् ही दायित्वों का भार उठाते हैं ।]

४०३४. अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२ ॥

हे अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र , मरुत् और विष्णु आदि देवताओ ! आप हमें सामर्थ्य प्रदान करें । दोनों अश्विनीकुमार, रुद्र, देवपत्नियाँ, पूषा, भग, सरस्वती हमारी हवियाँ ग्रहण करें ॥२ ॥

४०३५. इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३ ॥

इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, द्युलोक, आदित्य, मरुत्, पर्वत समूह, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भगदेव और सविता आदि देवों का हम आवाहन करते हैं; वे इस यज्ञशाला में शीघ्र पधारें एवं हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

४०३६. उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४ ॥

विष्णुदेव और अहिंसक वायुदेव तथा धन प्रदाता सोमदेव हमें सर्व सुख प्रदान करें । ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, त्वष्टा और विभुगण; ये सभी देव हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए अनुकूल प्रेरणा प्रदान करें ॥४ ॥

४०३७. उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५ ॥

वे स्वर्ग में रहने वाले एवं पूजनीय मरुद्गण हमारे यज्ञ में कुशाओं पर बैठने के लिए आगमन करें । बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमादेव हमें गृह सम्बन्धी सभी सुख प्रदान करें ॥५ ॥

४०३८. उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१ स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६ ॥

वे उत्तम स्तुति के योग्य और दान देने वाली नदियाँ, हमारे परित्राण के लिए उद्यत हों । वे धनों को बाँटने वाले भगदेव अपने बल और संरक्षण साधनों के साथ हमारे निकट आगमन करें । व्यापक प्रभावयुक्त अदिति देवी हमारे आवाहन को सुनें ॥६ ॥

४०३९. देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७ ॥

इन्द्रादि देवों की पत्नियाँ (स्तुतियों से) उत्साहित होकर हमारी रक्षा करें । उनके संरक्षण में हम पुत्रों और अन्न आदि के लाभ प्राप्त करें । ये देवियाँ चाहे पृथ्वी पर हों या अन्तरिक्ष और द्युलोक में हों, हमारे उत्तम आवाहन को सुनकर हमें सभी सुख प्रदान करने हेतु पधारें ॥७ ॥

४०४०. उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८ ॥

सभी देवियाँ, देवपत्नियाँ भली प्रकार हमारी रक्षा करें । इन्द्राणी, अग्नायी, दीप्तिमती, अश्विनी, रोदसी, वरुणानी हमें परिरक्षित करें । इनके मध्य जो ऋतुओं की जन्मदात्री देवी है, वे भी हमारी स्तुतियाँ श्रवण करें ॥८ ॥

[सूक्त - ४७]

[ऋषि - प्रतिरथ आत्रेय । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४०४१. प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१ ॥

ये स्तुत्य, अत्यन्त विस्तृत मातृरूप उषादेवी अपनी पुत्री पृथ्वी को चैतन्य करती हैं । प्राणियों को अपने कर्मों में योजित करती हुई ये आकाश से प्रकाशित होती हैं । सबकी परिचर्या करने वाली ये तरुणी उषा बुद्धिपूर्वक स्तोत्रों से आवाहित होने पर यज्ञ-गृह में पितृ रूप देवों के साथ आगमन करती हैं ॥१ ॥

४०४२. अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२ ॥

सतत गमनशील, प्रकाशित होकर कर्मों को सम्पादित करती हुई अमृत रूप सूर्यदेव की नाभि में स्थित रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होकर अनन्त पथों से द्यावा और पृथिवी का परिभ्रमण करती हैं ॥२ ॥

४०४३. उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३ ॥

समुद्र में जल को सिंचित करने वाले दीप्तिमान्, सुन्दर रश्मियों से युक्त ये सूर्यदेव अपने पितृ रूप आकाश के पूर्व स्थान में समाविष्ट हुए हैं । विविध दीप्तियुक्त उल्का के सदृश ये सूर्यदेव आकाश के मध्य में स्थापित होकर परिभ्रमण करते हैं और अन्तरिक्ष जगत् की सीमाओं की रक्षा करते हैं ॥३ ॥

४०४४. चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४ ॥

अपने कल्याण की कामना करते हुए चार ऋत्विग्गण हव्यादि देकर इन सूर्यदेव को धारण करते हैं । दसों दिशाएँ अपने गर्भ से उत्पन्न सूर्यदेव को गति के लिए प्रेरित करती हैं । तीनों लोकों में गमनशील सूर्यदेव की श्रेष्ठ किरणें द्रुतवेग से आकाश के सीमा प्रदेशों में भी परिभ्रमण करती हैं ॥४ ॥

४०४५. इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३ सबन्धू ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके कारण ये नदियाँ प्रवाहशील हैं और जल स्थिर रहते हैं; उन सूर्यदेव का शरीर स्तुत्य है । माता पृथ्वी के स्वयं उत्पादक उन सूर्यदेव को विश्व-नियामक और बंधुत्व युक्त दो लोक धारण करते हैं ॥५ ॥

[सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति विज्ञान भी मानता है । विश्व नियामक एवं बन्धुत्व सम्पन्न लोक-द्युलोक एवं अन्तरिक्ष हैं]

४०४६. वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६ ॥

जैसे माताएँ अपने पुत्रों के वस्त्र बुनती हैं, वैसे यजमान इन सूर्यदेव के लिए स्तुतियाँ और यज्ञादि कर्म की रचना करते हैं । इन वर्षणशील सूर्यदेव के प्रकट होने पर इनकी पत्नीरूप रश्मियाँ हर्षित होती हुई आकाश-पथ से होकर हमारे पास आती हैं ॥६ ॥

४०४७. तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥७ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! यह स्तोत्र आपके निमित्त है । हे अग्निदेव ! यह स्तोत्र हमारे सुख प्राप्ति के लिए आपके निमित्त है । हमे उत्तम स्थान एव प्रतिष्ठा की प्राप्ति हो । सभी को श्रेष्ठ आश्रय प्रदान करने वाले सूर्यदेव को हम नमस्कार करते है ॥७ ॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - प्रतिभानु आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती]

४०४८. कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१ ॥

हम अपने बल के निमित्त, अपने यश के लिए और प्रीतिकर महान् तेज के लिए किस तरह की अर्चना करें ? यह माया रूप आच्छादन विस्तृत करने वाली शक्ति अपरिमित अन्तरिक्ष में मेघों के ऊपर जल राशि को फैलाती है ॥१ ॥

४०४९. ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२ ॥

उन उषाओं ने वीर पुरुषों के कर्मो मे उत्साह को विस्तारित किया । एक समान प्रकाशक आवरण से सम्पूर्ण लोकों को व्याप्त किया । देवत्व की अभिलाषा वाले मनुष्य अवतीर्ण होने वाली एवं निवर्तमान उषाओं को त्यागकर वर्तमान उषा के सामने ही अपने कर्मो (यज्ञादि) का विस्तार करते हैं ॥२ ॥

४०५०. आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥३ ॥

सम्पूर्ण दिन और रात्रि में लगातार पत्थरों से अभिषुत सोम द्वारा हर्षित होकर इन्द्रदेव ने उस मायावी वृत्र के ऊपर अपने उत्कृष्ट वज्र का संघात किया । इन्द्र रूप सूर्यदेव की सैकड़ों किरणें दिनों के चक्र में प्रवृत्त और निवृत्त होती हुई अपने गृह-आकाश में परिभ्रमण करती रहती हैं ॥३ ॥

४०५१. तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४ ॥

परशु के समान तीक्ष्ण उन अग्निदेव के स्वभाव को हम जानते हैं । रूपवान् , आदित्यरूप अग्निदेव के किरण समूह की स्तुति हम ऐश्वर्य के उपयोग के लिए करते हैं । ये अग्निदेव सहायक होकर यज्ञ-स्थान में यजमान को अन्नों से अभिपूरित गृह और उत्तम रत्न प्रदान करते हैं ॥४ ॥

४०५२. स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥५ ॥

रमणीय तेजरूपी आच्छादन धारण कर अग्निदेव अन्धकार रूप शत्रु को मारते हैं । वे चारों ओर ज्वालाओं को विस्तृत कर जिह्वा रूप ज्वाला से घृतादि का पान करते हैं । जिसके माध्यम से भग और सवितादेव वरणीय धनों को प्रदान करते हैं । उन अग्निदेव के धनैश्वर्य-दान के पराक्रमों का ज्ञान हमें नहीं है ॥५ ॥

[सूक्त - ४९]

[**ऋषि** - प्रतिप्रभ आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४०५३. देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥१ ॥

यजमानों के लिए आज हम सवितादेव को और भगदेव को आवाहित करते हैं; क्योंकि वे दानशीलों को रत्न बाँटने वाले हैं । हे बहुत पदार्थों के उपभोगकर्त्ता, नेतृत्वकर्ता अश्विनीकुमारो ! हम आपसे मैत्री की अभिलाषा करते हुए प्रतिदिन आप दोनों का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४०५४. प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥२ ॥

हे स्तोताओ ! आप सब उन प्राण-प्रदायक सवितादेव के प्रत्यागमन को जानकर उत्तम वचनों से उनकी स्तुति करें । यजमानों को श्रेष्ठ रत्न बाँटने वाले उन सवितादेव को जानकर नमस्कारपूर्वक उनकी स्तुतियाँ करें ॥२ ॥

४०५५. अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥३ ॥

पूषा, भग और अदिति-ये देव वरण करने योग्य हविष्यान्न को ग्रहण करते और वरणीय अन्न को यजमानों को देते हैं । इन्द्र, विष्णु , वरुण, मित्र और अग्नि आदि दर्शनीय देव कल्याणकारी दिवस को उत्पन्न करते हैं ॥३ ॥

४०५६. तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥४ ॥

हम यज्ञ के सम्पादनकर्ता देव की स्तुतियाँ करते हैं । वे अपराजित सवितादेव हमें ग्रहणीय धन दें । प्रवाहशील नदियाँ भी उस धन को प्रदान करें । हम ऐश्वर्यों के अधिपति होकर अन्न-रत्नों के अधिपति बनें ॥४ ॥

४०५७. प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५ ॥

जो यजमान वसुओं को हवियाँ प्रदान करते हैं, मित्र और वरुण देव के निमित्त उत्तम सूक्त वचनों द्वारा स्तुतियाँ करते हैं । हे देवगणो ! उन्हें ऐश्वर्य से युक्त करें । हम द्युलोक और पृथिवी लोक का संरक्षण प्राप्त कर हर्षित हों ॥५ ॥

[सूक्त - ५०]

[**ऋषि** - स्वस्ति आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - अनुष्टुप्; ५ पंक्ति ।]

४०५८. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥१ ॥

सभी मनुष्य सर्वप्रेरक सवितादेव की मित्रता का वरण करते हैं । वे मनुष्य अपने पोषण के लिए दीप्तिमान् धनों को प्राप्त करते हैं और ऐश्वर्य के अधिपति होते हैं ॥१ ॥

४०५९. ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे । ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२ ॥

हे अग्रणी देव ! जो मनुष्य आपकी और अन्य देवों की उपासना करते हैं, वे सब आपके ही हैं । वे सब धनों से युक्त होकर पूर्णकाम हों ॥२ ॥

४०६०. अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत । आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! आप हमारे इस यज्ञ में अतिथि के समान पूज्य देवों की सेवा करें । उन देवों की पत्नियों की भी सेवा करें । वे विघ्नविनाशक सवितादेव हमारे सम्पूर्ण पथों के विघ्नों और शत्रुओं को दूर करें ॥३ ॥

४०६१. यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद्द्रोण्यः पशुः । नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४॥

जहाँ अग्नि स्थापित होने के अनन्तर यूप योग्य पशु , यूप के निकट स्तुत्य होता है; वहाँ यजमान सवितादेव के अनुग्रह से उत्साहपूर्ण मन और पुत्र-पौत्रादि एवं भार्यायुक्त गृह प्राप्त करता है ॥४ ॥

४०६२. एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५ ॥

हे सर्वनियामक सवितादेव ! आपका यह रथ ऐश्वर्य प्रदाता, सुखदाता और पालन करने वाला है । हम स्तोता सुखकर ऐश्वर्य और सुखकर कल्याण के लिए आपकी स्तुति करते हैं । देवों की स्तुतियों के साथ आपकी भी बारम्बार स्तुति करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ५१]

[**ऋषि** - स्वस्ति आत्रेय । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - १-४ गायत्री; ५-१० उष्णिक् ; ११-१३ जगती अथवा त्रिष्टुप्; १४-१५ अनुष्टुप् ।]

४०६३. अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप सोमरस का पान करने के निमित्त सभी संरक्षक देवों के साथ हव्य-प्रदाता यजमान के पास आयें ॥१ ॥

४०६४. ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२ ॥

हे सत्य स्तुति योग्य देवो ! हे सत्य धारणकर्त्ता देवो ! आप सब हमारे यज्ञ में आयें । अग्नि की जिह्वा रूप ज्वालाओं द्वारा सोमरस अथवा घृतादि का पान करें ॥२ ॥

४०६५. विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥३ ॥

हे मेधावी सेव्य (सेवा के योग्य) अग्निदेव ! आप प्रातः काल में आने वाले ज्ञानियों और देवों के साथ सोमपान के निमित्त यहाँ आयें ॥३ ॥

४०६६. अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४ ॥

पाषाणों द्वारा कूटकर अभिषुत हुआ सोम पात्रों में छानकर भरा जाता है । यह सोम इन्द्र और वायुदेवों के लिए अत्यन्त प्रीतिकर है ॥४ ॥

४०६७. वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५ ॥

हे वायुदेव ! सोम पान करने के लिए और हविदाता यजमान की प्रीति के लिए आप हव्य प्राप्त करने पधारें; हविष्यान्न ग्रहण करें और अभिषुत सोम का पान करें ॥५ ॥

४०६८. इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६ ॥

हे वायुदेव ! आप और इन्द्रदेव इस अभिषुत हुए सोम का पान करने योग्य हैं । अहिंसक होकर आप आयें और हव्य रूप सोम का सेवन करें ॥६ ॥

४०६९. सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥७ ॥

इन्द्र और वायु देवों के लिए दधि मिश्रित सोमरस अभिषुत हुआ है । हे इन्द्र और वायुदेवो ! नीचे की ओर प्रवाहित नदियों के समान यह हविष्यान्न आपकी ओर ही जाता है ॥७ ॥

४०७०. सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! सम्पूर्ण देवों के साथ अश्विनीकुमारों और उषा के साथ समान प्रीतियुक्त होकर इस यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में हर्षित होते हैं, वैसे आप हमारे अभिषुत सोम से हर्षित हों ॥८ ॥

४०७१. सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप मित्र और वरुण के साथ तथा विष्णु और सोम के साथ हमारे यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में प्रमुदित होते हैं, वैसे ही आप भी हमारे अभिषुत सोम से प्रमुदित हों ॥९ ॥

४०७२. सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप आदित्य और वसुओं के साथ तथा इन्द्र और वायु के साथ समान प्रीतियुक्त होकर हमारे यज्ञ में आगमन करें । जैसे अत्रि ऋषि यज्ञ में हर्षित होते हैं, वैसे आप हमारे अभिषुत सोम से हर्षित हों ॥१० ॥

४०७३. स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११ ॥

दोनों अश्विनीकुमार हमारे निमित्त कल्याण करें । भगदेवता और देवी अदिति हमारा कल्याण करें । अपराजित और प्राण दाता पूषादेव हमारा कल्याण करें । उत्तम ज्ञानी (प्रचेता) द्यावा-पृथिवी हमारा कल्याण करें ॥११ ॥

४०७४. स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२ ॥

हम अपने कल्याण के लिए वायुदेव का स्तवन करते हैं । सम्पूर्ण भुवनों के अधिपति सोम की स्तुति हम कल्याण के लिए करते हैं । सर्वगणों के अधीश्वर बृहस्पतिदेव की स्तुति हम कल्याण के लिए करते हैं । देवरूप आदित्य के पुत्र, देवरूप अरुणादि द्वादशदेव हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥१२ ॥

४०७५. विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३ ॥

इस यज्ञ में सम्पूर्ण देवगण हमारे कल्याण के रक्षक हों । सम्पूर्ण विश्व के नियामक और आश्रयदाता अग्निदेव हमारे कल्याण के रक्षक हों । दीप्तिमान् ऋभुगण हमारी रक्षा करते हुए कल्याणकारी हों । रुद्रदेव हमें पापों से रक्षित कर कल्याणकारी हों ॥१३ ॥

४०७६. स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! आप हमारा कल्याण करें । हे मार्गप्रदर्शिका और धनवती देवि ! आप हमारा कल्याण करें । इन्द्र और अग्निदेव हमारा कल्याण करें । हे अदिति देवि ! आप हमारा कल्याण करें ॥१४ ॥

४०७७. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५ ॥

सूर्य और चन्द्रमा के सदृश हम बाधारहित पथों के अनुगामी हों । निरन्तर दान से युक्त होकर, ज्ञान से युक्त होकर, परस्पर टकराव या हिंसा से रहित होकर हम सुखपूर्वक सहगमन करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५२]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - मरुद्गण । छन्द - अनुष्टुप् ; ६, १७ पंक्ति ।]

४०७८. प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥१ ॥

हे श्यावाश्व ऋषे ! आप संघर्षक शक्ति-सम्पन्न, स्तुत्य मरुतों की प्रकृष्ट अर्चना करें । ये यज्ञ के योग्य मरुद्गण अहिंसक हविरूप अन्नों को धारण कर हर्षित होते हैं ॥१ ॥

४०७९. ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२ ॥

वे स्थायी बलों के सहायक रूप हैं । वे शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले हैं । वे भ्रमण करते हुए हमारे वीर पुत्रों को विजयशील सामर्थ्य देकर उन्हें परिरक्षित करते हैं ॥२ ॥

४०८०. ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३ ॥

ये स्पन्दनयुक्त और वृष्टिकारक मरुद्गण रात्रि का अतिक्रमण करके आगे बढ़ते हैं । इसलिए अब हम मरुतों के आकाश और भूमि में व्याप्त तेजों की स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४०८१. मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४ ॥

आक्रामक सामर्थ्य से युक्त मरुतों के लिए हम स्तुति और यज्ञ के साधन हव्यादि अर्पित करते हैं । ये मरुद्गण मानवी युगों मे हिंसकों से, मरणशील मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥४ ॥

४०८२. अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५ ॥

हे ऋत्विजो ! जो पूजनीय, उत्तम दानशील, असीम बल सम्पन्न, नेतृत्वकर्ता वीर हैं; उन यज्ञ योग्य और प्रकाशक मरुद्गणों के लिए यज्ञ के साधन हविष्यान्न अर्पित कर विशिष्ट अर्चना करें ॥५ ॥

४०८३. आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६ ॥

दीप्तिमान् , अलंकारों से विभूषित , आयुधों से युक्त होकर महान् नेतृत्वकर्ता मरुद्गण विशेष शोभायमान होते हैं । ये अपने विशेष आयुधों द्वारा मेघों पर संघात करते हैं । विशेष शब्द करती हुई प्रवाहित नदियों के समान विद्युत् , मरुतों की अनुगामिनी होती है । दीप्तिमान् मरुद्गणों का तेज स्वयं ही निस्सृत होता है ॥६ ॥

[वायु के घर्षण से मेघों में विद्युत् उत्पन्न होने की बात भौतिक विज्ञान द्वारा भी मान्य है ।]

४०८४. ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥७ ॥

पृथ्वी पर अवस्थित, विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में अवस्थित, नदियों के प्रवाह में अवस्थित, संग्राम क्षेत्रों में और महान् द्युलोक के मध्य में अवस्थित ये मरुद्गण सब प्रकार से प्रवर्धित होते हैं ॥७ ॥

४०८५. शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥८ ॥

सत्य बल से निरन्तर विवर्धमान मरुतों के उत्कृष्ट बल की स्तुति करें । ये स्पंदनशील और नेतृत्वकर्ता मरुद्गण प्रत्येक शुभकार्य में स्वयं योजित होते हैं ॥८ ॥

४०८६. उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः । उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥९ ॥

वे मरुद्गण परुष्णी नामक नदी में अवस्थित रहते हैं । सबको शुद्ध करने वाली दीप्ति द्वारा स्वयं को आच्छादित करते हैं । वे अपने बल से रथ चक्रों (चक्रवातों) को प्रेरित कर पर्वतों (मेघों) का भी भेदन करते हैं ॥९ ॥

४०८७. आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः । एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१० ॥

जो मरुद्गण 'आपथयः' (सामने के मार्गों से गमन करने वाले) , 'विपथयः' (विविध मार्गों से गमन करने वाले) , 'अन्तः पथाः' (गुह्य मार्गों से गमन करने वाले) और 'अनुपथाः' (अनुकूल मार्गों से गमन करने वाले)-इन चारों नामों से विख्यात हुए हैं; वे मरुद्गण हमारे लिए यज्ञ के हविष्यान्न वहन करते हैं ॥१० ॥

४०८८. अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११ ॥

(वे मरुद्गण) कभी अग्रणी होकर, कभी नियुक्त (सहयोगी) होकर, कभी दूर रहकर ही (संसार को) धारण करते हैं । इस प्रकार इनके विभिन्न स्वरूप विचित्र और दर्शनीय होते हैं ॥११ ॥

४०८९. छन्दः स्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२ ॥

छन्दों द्वारा स्तुति करने वाले और जल की इच्छा करने वाले स्तोताओं के निमित्त मरुतों ने जल-प्रवाह प्रेरित किया । उनमें कुछ मरुद्गणों ने तस्करों की भाँति अदृश्य होकर रक्षा की थी और कुछ साक्षात् दृष्टिगत होकर उन्हें तेजस्वी बल प्रदान करते थे ॥१२ ॥

४०९०. य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३ ॥

हे ऋषिगण ! जो मरुद्गण विद्युतरूपी आयुधों से दीप्तिमान् होते हैं, जो महान् , क्रान्तदर्शी और मेधा-सम्पन्न हैं; उन मरुद्गणों का हर्षप्रद स्तुतियों से अभिवादन करें ॥१३ ॥

४०९१. अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४ ॥

हे ऋषिगण ! प्रिय मित्र के पास जाने की तरह आप हविष्यान्न लेकर मरुतों के पास उपस्थित हों । हे आक्रामक बल से पराभव करने वाले मरुतो ! आप लोग द्युलोक या अन्य लोकों से हमारे यज्ञ में पधारें और स्तुतियाँ ग्रहण करें ॥१४ ॥

४०९२. नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५ ॥

स्तोतागण मरुतों की स्तुति करके अन्य देवों की स्तुति करने की इच्छा नहीं करते । वे ज्ञान सम्पन्न, शीघ्रगमनकारी, प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठफलदाता मरुतों से ही अभीष्ट दान प्राप्त कर लेते हैं ॥१५ ॥

४०९३. प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६ ॥

उन ज्ञानी मरुतों ने बंधुओं के जानने की इच्छा से यह वचन कहा कि - "गौएँ (किरणें) और पृथ्वी हमारी माताएँ हैं " और सामर्थ्यवान् मरुतों ने यह भी कहा कि - "वेगवान् रुद्र हमारे पिता हैं " ॥१६ ॥

४०९४. सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७ ॥

सात-सात संख्यक समर्थ मरुद्गण एक होकर हमें सौ (सैकड़ों) गौओं और अश्व (पोषक एवं शक्तिवर्द्धक प्रवाह) प्रदान करें । उनके द्वारा प्रदत्त प्रसिद्ध गौओं के समूह को हम यमुना नदी के किनारे पवित्र करते हैं और अश्व रूप धन को भी वहीं पवित्र करते हैं ॥१७ ॥

[प्रतीत होता है, इस मंत्र के ऋषि का आश्रम यमुना किनारे रहा होगा, जहाँ प्राप्त गौओं और अश्वों का शोधन (अर्थात् उनकी गुणवत्ता में वृद्धि) के प्रयोग किये जाते होंगे । भावार्थ रूप में यमुना यम की बहिन है । उनके संसर्ग से यम-यातना नहीं होती । पोषक एवं शक्ति प्रवाहों का शोधन यम-यातना के भय से ऊपर उठकर ही किया जा सकता है ।]

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - १,५,१०-११, १५ ककुप् ; २ बृहती ; ३ अनुष्टुप् ; ४ पुर उष्णिक् ; ६-७, ९, १३-१४, १६ सतो बृहती; ८,१२ गायत्री ।]

४०९५. को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् । यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१ ॥

मरुतों ने जब बिन्दुदार (चिह्नित) मृगों को अपने रथ में नियोजित किया, तब इनकी उत्पत्ति को कौन जानता था ? कौन भला पहले मरुतों के सुख में आसीन था ? ॥१ ॥

४०९६. ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२ ॥

ये मरुद्गण रथ पर अधिष्ठित हैं-यह कौन जानता है ? ये किस प्रकार गमन करते हैं ? इनके रथ की ध्वनि को किसने सुना है ? ये मित्ररूप हितैषी, वृष्टिकारक मरुद्गण किस यजमान के लिए बहुत अन्नों के साथ अवतीर्ण होंगे ? ॥२ ॥

४०९७. ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे । नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥३ ॥

तेजस्वी सोमपान से उत्पन्न हर्ष के लिए वे मरुद्गण हमारे निकट उपस्थित हुए तथा कहा- "हम नेतृत्वकर्त्ता मनुष्यों के हितैषी और निर्दोष मरुद्गण हैं ।" स्तोतागण (ऐसे मरुतों की) स्तुतियाँ करें ॥३ ॥

४०९८. ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु । श्राया रथेषु धन्वसु ॥४॥

ये मरुद्गण जिन दीप्तियों से स्वयं अति प्रकाशमान होते हैं, वे दीप्तियाँ अलंकारों में, मालाओं में, आयुधों में, स्वर्णिम हारों में, कंगनों में, रथों में तथा धनुषों में आश्रयभूत हैं । हम उनकी वन्दना करते हैं ॥४ ॥

४०९९. युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः । वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥५ ॥

हे शीघ्र दानशील मरुतो ! वृष्टि के सदृश वेगपूर्वक सर्वत्र गमनशील दीप्तिमान् आपके रथ को देखकर हम हर्षित होते हैं और आपका स्तवन करते हैं ॥५ ॥

४१००. आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६ ॥

वे नेतृत्वकर्ता और उत्तम दानशील, दीप्तिमान् हविदाता यजमान के लिए जिस खजाने को सञ्चित कर धारण करते हैं, उसे वे वृष्टि के समान इनमें बाँट देते हैं । वे मरुद्गण द्यावा-पृथिवी में व्यापक जल के साथ मेघों के समान संचरित होते और वृष्टि करते हैं ॥६ ॥

४१०१. ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥७ ॥

जैसे धेनु दुग्ध सिंचन करती है; वैसे उदक के साथ मेघों को फोड़ती हुई जलराशि अन्तरिक्ष में प्रसारित होती हुई सिंचित होती है । द्रुतगामी अश्व की भाँति वेगपूर्वक प्रवाहित नदियाँ अपने मार्गों को विमुक्त करती जाती हैं ॥७ ॥

४१०२. आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥८ ॥

हे मरुतो ! आप सब द्युलोक से, अन्तरिक्ष लोक से या इसी लोक से यहाँ आगमन करें । दूरस्थ प्रदेशों में आप रुके न रहें ॥८ ॥

४१०३. मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥९ ॥

हे मरुतो ! रसा, अनितभा, कुभा नदियाँ और वेगपूर्वक गमनशील सिन्धु नदी हमें अवरुद्ध न करें । जल से परिपूर्ण सरयू नदी हमें सीमित न करें । हम आपसे रक्षित होकर सुख में स्थित हों ॥९ ॥

४१०४. तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् । अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१० ॥

रथों के बल से युक्त तेजस्वी मरुद्गणों का स्तवन हम करते हैं । मरुद्गणों के साथ वृष्टि वेगपूर्वक गमन करती है ॥१० ॥

४१०५. शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणङ्गणं सुशस्तिभिः । अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११ ॥

हे मरुतो ! हम आपके प्रत्येक बल का, प्रत्येक समुदाय का और प्रत्येक गण का उत्तम स्तुतियों द्वारा बुद्धिपूर्वक अनुसरण करते हैं ॥११ ॥

४१०६. कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः । एना यामेन मरुतः ॥१२ ॥

आज मरुद्गण इस रथ द्वारा किस हविदाता यजमान और किस उत्तम मानव की ओर गमन करेंगे ? ॥१२ ॥

४१०७. येन तोकाय तनयाय धान्यं१ बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३ ॥

जिस सहृदयता से आप पुत्र-पौत्रों के लिए अक्षय धान्य-बीज वहन करते हैं, उसी हृदय से वह हमें भी दें । हम आपसे सम्पूर्ण आयु और सौभाग्यपूर्ण ऐश्वर्य की याचना करते हैं ॥१३ ॥

४१०८. अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४ ॥

हे मरुतो ! हम कल्याण द्वारा पाप वृत्तियों को विनष्ट कर अपने शत्रुओं और गुप्त निंदकों का पराभव करें । हमें सम्पूर्ण शक्तियुक्त सुख, जल और दीप्तियुक्त ओषधि संयुक्त रूप से प्राप्त हो ॥१४ ॥

४१०९. सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः । यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५ ॥

हे नेतृत्वकर्ता मरुतो ! जिसकी आप रक्षा करते हैं, वह मनुष्य उत्तम तेजवान् , महिमायुक्त और उत्तम पुत्र-पौत्रादि से युक्त होता है, हम भी वैसे ही अनुगृहीत हों ॥१५ ॥

४११०. स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६ ॥

हे स्तोताओ ! तृणादि खाने के लिए जाती हुई गौओं के समान यजमान के यज्ञ में भोजन के लिए जाते हुए हर्षित हुए मरुतों की आप स्तुति करें; क्योंकि वे पूर्व परिचित प्रिय मित्रों के समान प्रीतिकर हैं । उन्हें समीप बुलाकर स्तुतियों से प्रशंसित करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ५४]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - मरुद्‌गण । छन्द - जगती; १४ त्रिष्टुप् ।]

४१११. प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१ ॥

हे यजमानो ! इन स्वयंप्रकाशित , पर्वतों को कँपा देने वाले मरुतों के बल की प्रशंसा के लिए प्रयुक्त अपनी वाणी (स्तोत्र) को सुशोभित करें । इन अतिशय तेजसम्पन्न, सूर्यरूप, दीप्तिमान् यश वाले मरुतों की, याजक प्रभूत हविष्यान्न प्रदान कर अर्चना करें ॥१ ॥

४११२. प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥२ ॥

हे मरुतो ! आपके गण बलशाली, संसार के पोषणरूप जल देने वाले, अन्न बढ़ाने वाले, अश्वों को रथ में जोड़ने वाले और चतुर्दिक् गमनशील हैं । जब आप विद्युत् के साथ सम्मिलित होते हैं, तो तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं और गर्जना करते हुए पृथ्वी पर चतुर्दिक् गमनशील जलराशि बरसाते हैं ॥२ ॥

४११३. विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥३ ॥

विद्युत् के सदृश तेजसम्पन्न, नेतृत्वकर्ता, आयुधयुक्त, द्युतिमान् , वेगवान् पर्वतों के प्रकंपक, वज्र-प्रक्षेपक, गर्जनशक्ति से युक्त तथा उग्र बल वाले मरुद्‌गण बारम्बार जल प्रदान करने के लिए आविर्भूत होते हैं ॥३ ॥

४११४. व्य१क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४ ॥

हे समर्थ, रुद्र पुत्र मरुतो ! आप रात्रि और दिन सतत परिभ्रमण करें । अन्तरिक्ष के सब लोकों में गमन करें । नौकाएँ जैसे नदियों में गमन करती हैं, वैसे आप विभिन्न प्रदेशों में गमन करें । हे शत्रुओं को कँपाने वाले मरुतो ! हमारी हिंसा न करें ॥४ ॥

४११५. तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५ ॥

हे मरुतो ! सूर्यदेव जिस प्रकार अपनी दीप्ति को बहुत दूर तक विस्तारित करते हैं । अश्व जिस प्रकार पर्वतों

पर भी दूर तक विस्तारित होते हैं, उसी प्रकार आपकी महत्ता और शक्ति को स्तोतागण दूर तक विस्तारित करते हैं ॥५ ॥

४११६. अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६ ॥

हे विधातारूप मरुतो ! आपका बल प्रखरता को प्राप्त हुआ है । भयंकर आँधी के समान आप वृक्षों को मरोड़ कर गिरा देते हैं । हे प्रसन्नचेता मरुतो ! आँख जैसे राही का पथ-प्रदर्शन करती है, वैसे आप हमारे मार्ग-प्रदर्शक रूप में अनुकूल पथ से हमें चलाएँ ॥६ ॥

४११७. न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७ ॥

हे मरुद्गणो ! आप जिस ऋषि या राजा को सत्कार्य में प्रेरित करते हैं, वह किसी से पराजित नहीं होता, वह न हिंसित होता है, न क्षीण होता है, न व्यथित होता है और न बाधित होता है । उसके ऐश्वर्य और संरक्षण सामर्थ्य कभी नष्ट नहीं होते ॥७ ॥

४११८. नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कवन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८ ॥

नियुत संज्ञक अश्वों से युक्त, ग्राम विजेता, नेतृत्वकर्त्ता, जल धारक, मरुद्गण जब अर्यमा के समान वेग से गमन करते हैं, तो शब्दवान् होते हैं । वे वृष्टि आदि से जल प्रवाहों को परिपूर्ण करते हैं और भूमि पर मधुर अन्नों को प्रवृद्ध करते हैं ॥८ ॥

४११९. प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९ ॥

यह भूमि मरुद्गणों के लिए विस्तीर्ण पथ वाली है । द्युलोक भी वेगपूर्वक गमनशील मरुतों के लिए विस्तीर्ण पथ बनाते हैं । अन्तरिक्ष के सम्पूर्ण पथ भी मरुद्गणों के लिए विस्तृत होते हैं । मेघ भी मरुतों के लिए विस्तृत होकर शीघ्र वर्षा करने वाले होते हैं ॥९ ॥

४१२०. यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१० ॥

हे मरुद्गणो ! आप समान भारवाहक और द्युलोक के नियामक हैं । हे तेजस्वी नेतृत्वकर्त्ता मरुतो ! आप सूर्यदेव के उदित होने पर अत्यन्त हर्षित होते हैं । सतत गमनशील आपके ये अश्व शिथिल नहीं होते, आप तीनों लोकों के सभी मार्गों को पार कर जाते हैं ॥१० ॥

४१२१. अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११ ॥

हे रथों में शोभायमान मरुतो ! आप कन्धों पर आयुध, पैरों में कड़े (कटक) , वक्षस्थल पर रमणीक हार, भुजाओं पर अग्नि सदृश प्रकाशमान वज्र और शीर्ष पर स्वर्णिम शिरस्त्राण धारण किये हुए हैं ॥११ ॥

४१२२. तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२ ॥

हे पूजनीय मरुद्गणो ! गमन करते हुए आप उस दीप्तिमान् अबाधित आकाश को और तेजस्वी जल को प्रकम्पित करते हैं । आप अपने बलों को संगठित कर अति तेजस्विता से युक्त हों । आप जलवर्षण की इच्छा करते हुए भयंकर गर्जना द्वारा वृष्टि का उद्घोष करते हैं ॥१२ ॥

४१२३. युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।

न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३ ॥

हे विशिष्ट ज्ञानी मरुतो ! हम आपके द्वारा प्रदत्त अन्नों से युक्त हों, हम रथों एवं ऐश्वर्य के स्वामी हों । हे मरुतो ! हमें आकाश में वर्तमान नक्षत्रों के सदृश नष्ट न होने वाले सहस्रों धनों से हर्षित करें ॥१३ ॥

४१२४. यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।

यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४ ॥

हे मरुद्गणो ! आप हमें स्पृहणीय धन और पुत्रादि प्रदान करें । आप सामगान करने वाले विप्र का रक्षण करते हैं । आप प्रजा का भरण-पोषण करने वाले राजा को अश्व, अन्न और ऐश्वर्य से उसे भली प्रकार पुष्ट करते हैं ॥१४ ॥

४१२५. तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नूँरभि ।

इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५ ॥

हे शीघ्र रक्षणशील मरुतो ! हम आपके उस धन-ऐश्वर्य की याचना करते हैं, जिसे हम सूर्य-रश्मियों के समान वितरित करें । हे मरुतो ! हमारे इन उत्तम स्तोत्रों को ग्रहण करें, जिसके बल से हम सौ वर्ष के पूर्ण जीवन का उपयोग करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - जगती; १० त्रिष्टुप् ।]

४१२६. प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।

ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१ ॥

प्रकृष्ट यजनीय, दीप्तिमान् आयुध वाले, वक्षस्थल पर रमणीक हार धारण करने वाले मरुद्गण महान् बलों को धारण करते हैं । ये उत्तम नियामक मरुद्गण वेगवान् अश्वों द्वारा गमन करते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याण युक्त कार्यों में गमन करने वाले मरुतों के रथादि भी उनके अनुगामी होते हैं ॥१ ॥

४१२७. स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ ।

उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२ ॥

हे मरुतो ! जैसा आप का ज्ञान है, उसी के अनुरूप आप स्वतः बल भी धारण करते हैं । भूमि को उर्वर बनाने की आपकी सामर्थ्य अति महान् है और अतिशय प्रकाशमान है । आप अपने बल से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों में गतिशील मरुतों के रथ साधन भी उनके अनुगामी होते हैं ॥२ ॥

४१२८. साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।

विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३ ॥

ये मरुद्गण एक साथ उत्पन्न हुए और एक साथ जलवर्षक हैं, एक साथ बल- उत्पादक और नेतृत्वकर्त्ता हैं । अतिशय शोभा के लिए ये अत्यन्त प्रवर्धित होते हैं । सूर्य रश्मियों की भाँति विशिष्ट आभा से संयुक्त हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील मरुतों के रथादि भी इनके अनुगामी होते हैं ॥३ ॥

४१२९. आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

हे मरुतो ! आपकी विशिष्ट महत्ता स्तोत्रों आदि द्वारा विभूषित होती है । वह सूर्य के रूप सदृश दर्शनीय है । आप हमें अमरता प्रदान करें । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि साधन भी आपके अनुगामी होते हैं ॥४॥

४१३०. उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥

हे जल सम्पन्न मरुतो ! आप अन्तरिक्ष से समुद्र के जल को प्रेरित करते हैं और जल वर्षण प्रारम्भ करते हैं । हे शत्रु संहारक मरुतो ! आपके निमित्त स्तुतियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील, आपके रथादि भी आपके अनुगामी होते हैं ॥५॥

४१३१. यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम्।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

हे मरुद्‌गणो ! जब आप बिन्दुदार (चिह्नित) अश्वों को अपने रथ से योजित करते हैं और स्वर्णमय कवच को धारण करते हैं, तब स्पर्धा रखने वाले सभी शत्रुओं को क्षत-विक्षत कर देते हैं । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि भी आपके अनुगामी होते हैं ॥६॥

४१३२. न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥

हे मरुतो ! पर्वत और नदियाँ आपके मार्ग को अवरुद्ध न करें । आप जहाँ जाने की इच्छा करें, वहाँ जाएँ । द्यावा-पृथिवी में सर्वत्र गमन करें । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील आपके रथादि साधन आपके अनुगामी होते हैं ॥७॥

४१३३. यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥

हे सर्व निवासक मरुतो ! जो यज्ञादि अनुष्ठान पहले सम्पादित किये गये हैं, जो नूतन यज्ञ हो रहे हैं, उनके जो मन्त्रगान और स्तोत्रपाठ होते हैं, उन्हें आप जानने वाले हों । जल वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील रथादि आपके अनुगामी होते हैं ॥८॥

४१३४. मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

हे मरुतो ! हमें सुखी बनायें, अपने क्रोध से नष्ट न करें, सुख प्रदान करें । हमारे मित्र भाव से युक्त स्तोत्रों से अवगत हों । जल-वृष्टि आदि कल्याणकारी कार्यों के निमित्त गमनशील रथादि साधन आपके अनुगामी होते हैं ॥९॥

४१३५. यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

हे स्तुत्य मरुद्‌गणो ! आप हमें पापों से विमुक्त करें और ऐश्वर्ययुक्त स्थान की ओर ले चलें । हे यजनीय मरुतो ! हमारे द्वारा प्रदत्त हव्यादि पदार्थ को ग्रहण करें, जिससे हम विविध ऐश्वर्यों के स्वामी हों ॥१०॥

[सूक्त - ५६]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - मरुद्गण । छन्द - बृहती; ३,७ सतोबृहती ।]

४१३६. अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१ ॥

हे अग्ने ! आज आप दीप्तिमान् अलंकारों से विभूषित, शत्रु संहारक वीर मरुद्गणों और उनकी प्रजाओं को आहूत करें । हम देदीप्यमान द्युलोक से उनका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४१३७. यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥२ ॥

हे अग्ने ! जिस प्रकार आप मरुद्गणों को हृदय से पूज्य मानते हैं, उसी प्रकार के हमारे सम्मानित भावों से वे हमारे निकट आगमन करें । ये जब हमारे हवनों के निकट आगमन करें, तब उन विकराल स्वरूप वाले मरुतों को आप हव्य द्वारा प्रवृद्ध करें ॥२ ॥

४१३८. मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३ ॥

पृथ्वी पर प्रभावित होकर व्यक्ति समर्थों के पास जाते हैं, उसी प्रकार हर्षित मरुतों की सेना हमारे निकट आ रही है । हे मरुतो ! आप वृषभ के सदृश सेचन में समर्थ (उत्पादन में समर्थ) और विशिष्ट सामर्थ्यवान् हैं ॥३ ॥

४१३९. नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४ ॥

दुर्धर्ष बैल के समान ये मरुद्गण अपने बल से सुगमतापूर्वक शत्रुओं का विनाश करते हैं । गर्जना करते हुए गमनशील ये मरुद्गण अपने आघात से मेघों को खण्ड-खण्ड कर वृष्टि करते हैं ॥४ ॥

४१४०. उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् । मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५ ॥

हे मरुतो ! आप उठें । स्तोत्रों से निश्चय ही समृद्ध हुए आप मरुद्गणों के, सर्वश्रेष्ठ और अपूर्व बलों की हम वन्दना करते हैं ॥५ ॥

४१४१. युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६ ॥

हे मरुतो ! आप अपने रथ में अरुणिम मृगों को योजित करें अथवा रोहित वर्ण मृग को योजित करें अथवा वेगवान्, वहन कार्य में समर्थ अश्वों को भ्रमणशील धुरी को खींचने के लिए योजित करें ॥६ ॥

४१४२. उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७ ॥

हे मरुतो ! उन अरुणिम आभा से युक्त, बड़े शब्दकारी, दर्शनीय अश्वों को रथ से योजित कर इस प्रकार प्रेरित करें कि वे आपकी यात्राओं में विलम्ब न करें ॥७ ॥

४१४३. रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८ ॥

हम मरुतो के अन्नों से अभिपूरित, उस रथ का आह्वान करते है, जिसमे उत्तम रमणीय द्रव्यो की धारणकर्त्री मरुतो की माता अधिष्ठित हैं ॥८ ॥

४१४४. तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९ ॥

हम मरुतों के रथ में शोभायमान, उस तेजस्वी और स्तुत्य संघ शक्ति का आह्वान करते हैं, जिसमें सुजाता और सौभाग्यवती कल्याणकारिणी देवी मरुद्गणों के साथ महत्ता को प्राप्त होती है ॥९ ॥

[सूक्त - ५७]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - मरुद्गण । छन्द - जगती ; ७-८ त्रिष्टुप् ।]

४१४५. आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१ ॥

इन्द्र के अनुचर, समान प्रीति वाले, स्वर्णिम रथों पर आरूढ़ होने वाले, रुद्रों के पुत्ररूप हे मरुतो ! आप हमारे इस उद्देश्यपूर्ण यज्ञ में आगमन करें । हम आपके निमित्त बुद्धिपूर्वक स्तवन करते हैं । हे तेजस्वी मरुतो ! तृषित और जल अभिलाषी गौतम के निमित्त आपने जैसे जल प्रवाह प्रदान किया, उसी प्रकार हमें भी अनुगृहीत करें ॥१ ॥

४१४६. वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२ ॥

हे मेधावी मरुतो ! आप कुठारों से युक्त, भालों से युक्त, उत्तम धनुषों से युक्त, बाणों से युक्त, तूणीर धारक, उत्तम अश्वों तथा रथों से युक्त और उत्तम आयुधों से युक्त हैं । आप हमारे कल्याण के निमित्त आगमन करें ॥२ ॥

४१४७. धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३ ॥

हे मरुतो ! आप अन्तरिक्ष में मेघों को कम्पित करें । उस हविदाता यजमान को धन प्रदान करें । आपके आगमन के भय से वन भी प्रकम्पित होते हैं । हे मातृरूप पृथ्वी के पुत्रो ! जल वृष्टि आदि शुभ कार्य के निमित्त बिन्दुदार (चिह्नित) मृगों को रथ से योजित कर जब आप उग्रता को धारण करते हैं, तो आपके क्रोध से पृथ्वी भी क्षुब्ध हो जाती है ॥३ ॥

४१४८. वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४ ॥

ये वीर मरुद्गण अत्यन्त तेजस्वी, वृष्टिजल के आच्छादक, जुड़वाँ के तुल्य (समानरूप वाले), उत्तम दर्शनीय और अति रूपवान् हैं । ये बभ्रु वर्ण और अरुणिम वर्ण अश्वों से युक्त, निष्पाप, शत्रुओं के महाविनाशक हैं । अपनी महत्ता से ये आकाश के सदृश विस्तृत हैं ॥४ ॥

४१४९. पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥५ ॥

विपुल जलवर्षक, अलंकारों से विभूषित, दानशील, तेजोयुक्त मूर्तिमान्, अक्षय धन से संयुक्त, जन्म से सुजन्मा हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, पूजनीय दीप्तिमान् मरुद्गण अपने शुभ कार्यों से अमर कीर्ति पाते हैं ॥५ ॥

४१५०. ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६ ॥

हे मरुतो ! आपके कन्धों पर भाले रखे हैं । आपकी दोनों भुजाओं में शत्रु-संघर्षक बल सन्निहित है । शीर्षों पर शिरस्त्राण और रथों में सम्पूर्ण आयुध वर्तमान हैं । आपके शरीर विशिष्ट कान्ति से युक्त हैं ॥६ ॥

४१५१. गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७ ॥

हे मरुतो ! आप हमें गौओं से युक्त, अश्वों से युक्त, रथों से युक्त, उत्तम पुत्रों और स्वर्णादि से युक्त अन्नों को प्रदान करें । हे रुद्र पुत्रो ! हमारी समृद्धि बढ़ायें । आपकी दिव्य संरक्षण शक्ति का हम उपभोग करें ॥७ ॥

४१५२. हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ॥

हे मरुतो ! आप हमें सुख से परिपूर्ण करें । आप नेतृत्वकर्ता, प्रभूत धन-सम्पन्न, अविनाशी, यज्ञ के ज्ञाता, वास्तविक ख्याति सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, युवा, प्रचण्ड बलवान् और सर्वत्र स्तुति किये जाने योग्य हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ५८]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - मरुद्‌गण । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४१५३. तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम्
य आश्वश्वा अमवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१ ॥

हम निश्चय ही उन बल-सम्पन्न, स्तुत्य मरुद्‌गणों की स्तुति करें । वे मरुद्‌गण द्रुतगामी अश्वों के स्वामी, वेगपूर्वक गमन करने वाले तथा अमृत के शासक हैं ॥१ ॥

४१५४. त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम्।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२ ॥

हे ज्ञानी पुरुष ! उन तेजस्वी, बल-सम्पन्न, हाथ में कड़े धारण करने वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले, कुशल वीर, धन प्रदाता मरुतों की स्तुति करें । जो अत्यन्त सुखदायक हैं, महत्ता से परिपूर्ण हैं, अत्यन्त सामर्थ्यवान् और विपुल ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उनकी वन्दना करें ॥२ ॥

४१५५. आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३ ॥

ये सभी मरुद्‌गण जो वृष्टि को प्रेरित करते हैं, जल को वहन करते हैं, आज हमारे अभिमुख आगमन करें । हे तरुण और ज्ञानी मरुतो ! आपके निमित्त जो अग्नि प्रज्वलित है; उससे हव्यादि का प्रीतिपूर्वक सेवन करें ॥३ ॥

४१५६. यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४ ॥

हे यजनीय मरुतो ! आप जनकल्याण के लिए यजमान को पुत्र प्राप्त कराते हैं, जो तेजस्वी, शत्रु संहारक और क्षमतावान् हों । हे मरुतो ! आपसे ही लोग मुष्टि युद्धों मे बाहुबल प्राप्त करते हैं और आपसे ही लोग अश्वों के नियन्ता उत्तम वीर पुत्र प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

४१५७. अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।

पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५ ॥

पहिये के आरों के सदृश सभी मरुद्‌गण एक समान दीखते हैं । ये अवर्णनीय मरुद्‌गण दिवस के सदृश अति महान् तेजों से संयुक्त होकर एक समान प्रकट होते हैं । भूमि-पुत्र ये मरुद्‌गण समान मास में जन्मे हैं । अतिशय वेगवान् ये मरुद्‌गण सम्मिलित होकर स्वयं प्रवृत्त होकर वृष्टि आदि कार्यों का सम्पादन करते हैं ॥५ ॥

४१५८. यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।

क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६ ॥

हे मरुतो ! जब बिन्दुदार अश्वों और सुदृढ़ चक्रों से योजित रथों द्वारा आप आगमन करते हैं, तब जलराशि क्षुब्ध होकर बरसने लगती है । वनों का नाश होता है और सूर्य रश्मि संयुक्त वर्षणकारी मेघों से आकाश भी भीषण शब्द से गुंजायमान होता है ॥६ ॥

४१५९. प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।

वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७ ॥

मरुद्‌गणों के आगमन से पृथ्वी उर्वरता को प्राप्त होती है । पति द्वारा गर्भ की स्थापना करने के समान ये मरुद्‌गण अपने बल से वृष्टि जल को भूमि में प्रस्थापित करते हैं । ये रुद्रपुत्र मरुद्‌गण अपने द्रुतगामी अश्वों को रथ के अग्रभाग में नियोजित कर पराक्रमपूर्वक वृष्टि कार्य सम्पादित करते हैं ॥७ ॥

४१६०. हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।

सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ॥

हे मरुतो ! हमें सुख से परिपूर्ण करें । आप नेतृत्वकर्ता, प्रभूत धन-सम्पन्न, अविनाशी, सत्य ज्ञाता, सत्ययशा, क्रान्तदर्शी, युवा, प्रचण्ड-बलवान् और सर्वत्र स्तुति किये जाने योग्य हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ५९]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुद्‌गण । **छन्द** - जगती ; ८ त्रिष्टुप् ।]

४१६१. प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।

उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१ ॥

हे मरुतो ! अपने कल्याण के लिए हविदाता यजमान यजन कर्म प्रारम्भ कर रहा है । हे याजक ! आप प्रकाशक द्युलोक की पूजा करें । हम पृथ्वी माता के लिए स्तोत्रों का गान करते हैं । ये मरुद्‌गण अपने अश्वों को प्रेरित करते हैं और अन्तरिक्ष में दूर तक गमन करते हैं । वे अपने तेज से मेघों की विद्युत् को विस्तारित करते हैं ॥१ ॥

४१६२. अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।

दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२ ॥

जैसे मनुष्यों से पूर्ण नौका नदी के मध्य कम्पित होकर गमन करती है, वैसे इन मरुद्‌गणों के बल से भयभीत पृथ्वी प्रकम्पित हो उठती है । वे मरुद्‌गण दूर से दृश्यमान होने पर भी अपनी गतियों से जाने जाते हैं । ये नेतृत्वकर्ता मरुद्‌गण अन्तरिक्ष के मध्य अधिक हव्यादि ग्रहण करने के लिए यत्न करते हैं ॥२ ॥

४१६३. गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने।
अत्या इव सुभ्व१श्चारवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३ ॥

हे मरुतो ! आप गौओं के शृंग के सदृश शोभायमान शिरोभूषण धारण करते हैं । तमिस्रा दूर करने वाले सूर्य की रश्मियों के समान आप निज किरणें विकीर्ण करते हैं । आप द्रुतगामी अश्वों के सदृश वेगवान् और उत्तम आभा से युक्त होकर दर्शनीय हैं । आप भी मनुष्यों की भाँति यज्ञादि कर्मों के ज्ञाता हैं ॥३ ॥

४१६४. को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४ ॥

हे मरुतो ! आपकी महत्ता की समानता कौन कर सकता है ? कौन आपके निमित्त स्तोत्र रचना कर सकता है ? कौन आपके समान पोषण सामर्थ्य से परिपूर्ण हुआ है ? हे मरुतो ! जब आप श्रेष्ठ हविदाता यजमान के हविष्यान्न से पूर्ण होते हैं, तब आप वृष्टिपात करके किरण के समान भूमि को प्रकम्पित करते हैं ॥४ ॥

४१६५. अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५ ॥

ये मरुद्गण अश्वों के समान तेजस्वी हैं । ये बन्धु-बान्धवों से प्रीतिपूर्वक संयुक्त हैं । ये विशिष्ट योद्धा वीरों के समान वृष्टि आदि कार्य में प्रकृष्ट युद्ध करने वाले हैं । मनुष्यों के समान ही ये मरुद्गण भली प्रकार प्रवर्द्धमान हैं । वे वृष्टि आदि से सूर्य के तेज को भी क्षीण कर देते हैं ॥५ ॥

४१६६. ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६ ॥

उन मरुद्गणों में कोई ज्येष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं है और न कोई मध्यम श्रेणी का है । वे सभी समान तेज से युक्त हैं । वे मेघों का भेदन करने वाले हैं । वे सुजन्मा, मातृरूप पृथ्वी के पुत्र और मानवों के हितैषी हैं । वे दीप्तिमान् मरुद्गण हमारे अभिमुख आगमन करें ॥६ ॥

४१६७. वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥७ ॥

हे मरुद्गणो ! आप पंक्तिबद्ध होकर उड़ने वाले पक्षियों के समान सम्मिलित होकर बलपूर्वक आकाश की सीमाओं तक और विस्तृत पर्वत शिखरों पर परिगमन करते हैं । आपके अश्व मेघों को खण्ड-खण्ड करके वृष्टि-पात करते हैं । आपके ये कर्म सभी देवगण और मनुष्यगण जानते हैं ॥७ ॥

४१६८. मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम्।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८ ॥

द्युलोक और पृथ्वी हमारे पोषण के लिए संलग्न हों । विविध दान देने वाली देवी उषा हमारे कल्याण के निमित्त यत्न करें । हे ऋषिगण ! ये रुद्रपुत्र मरुद्गण आपकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर जल की वर्षा करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - श्यावाश्व आत्रेय । **देवता** - मरुत् अथवा अग्नामरुत् । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ७-८ जगती ।]

४१६९. ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः।

रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१ ॥

हम श्यावाश्व ऋषि इस यज्ञ में भली प्रकार रक्षा करने वाले अग्निदेव की स्तोत्रों से नमनपूर्वक स्तुति करते हैं । वे हम पर प्रसन्न होकर हमारे स्तुति आदि कर्मों को जानें । लक्ष्य तक पहुँचने वाले रथों के समान हम भी स्तोत्रों द्वारा अभीष्ट अन्नादि से अभिपूरित हों । प्रदक्षिणा के साथ हम मरुतों का स्तोत्रपाठ करके प्रवृद्ध हों ॥१ ॥

४१७०. आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२ ॥

हे रुद्रपुत्र मरुतो ! जब आप बिन्दुदार अश्वों से युक्त, प्रसिद्ध और सुखदायक रथों में अधिष्ठित होते हैं, तो आपके भय से वन भी कम्पित होते हैं । मेघों के कम्पन के साथ पृथ्वी भी कम्पायमान होती है ॥२ ॥

४१७१. पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३ ॥

हे मरुतो ! आपके द्वारा किये गये भीषण शब्द से अत्यन्त पुराने और महान् पर्वत भी भययुक्त होकर कम्पित हो उठते हैं । द्युलोक का शिखर भी प्रकम्पित होता है । हे मरुतो ! विशिष्ट आयुधों को धारण कर जब आप क्रीड़ा करते हैं, तो मेघों के समान सम्मिलित होकर विशेष दौड़ लगाते हैं ॥३ ॥

४१७२. वराइवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४ ॥

धनवान् वर जैसे अपने शरीर को अलंकारों से सुसज्जित करते हैं, वैसे ये मरुद्गण अपनी शोभा के लिए स्वर्ण अलंकारों और उदक से अपने शरीरों को विभूषित करते हैं । ये कल्याणप्रद और बलशाली मरुद्गण रथ में संयुक्त बैठकर अपने शरीरों में तेज को धारण करते हैं ॥४ ॥

४१७३. अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५ ॥

इन मरुद्गणों में कोई ज्येष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं है । ये परस्पर भ्रातृभाव से संयुक्त रहते हैं । ये सौभाग्य प्राप्ति के लिए सतत प्रवृद्ध होते हैं । नित्य तरुण और उत्तम-कर्मा मरुद्गणों के पिता रुद्र और मातृ स्वरूपा दोहन योग्या पृथ्वी हैं, जो मरुतों के लिए उत्तम दिनों की निर्मात्री हैं ॥५ ॥

४१७४. यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१ स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६ ॥

हे सौभाग्यशाली मरुतो ! आप सब द्युलोक के उत्कृष्ट भाग, मध्यम भाग या अधोभाग में अवस्थित होते हैं । हे शत्रु- संहारक मरुतो (रुद्र रूप मरुतो) ! आप इन तीनों भागों से हमारी रक्षा के निमित्त आगमन करें । हे अग्निदेव ! हमारी आहुतियों को आप जानें ॥६ ॥

४१७५. अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७ ॥

हे सर्वज्ञ मरुतो ! आप और अग्निदेव द्युलोक के उच्चतम स्थान से अश्वों पर विराजित होकर इस सोमयाग में आगमन करें । सोमपान से हर्षित होकर हमारे शत्रुओं को प्रकम्पित करें, उनकी हिंसा करें और सोमयाग वाले यजमान के लिए वाञ्छित धन प्रदान करें ॥७ ॥

४१७६. अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८ ॥

हे सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर अत्यन्त शोभनीय, तेजों से युक्त, गणों का आश्रय लेकर रहने वाले (समूह में रहने वाले) , पवित्रकर्ता, सबके तृप्तिकारक, आयुवर्द्धक मरुद्गणों के साथ सोमपान कर प्रमुदित हों ॥८ ॥

[सूक्त - ६१]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - १-४, ११-१६ मरुद्गण; ५-८ तरन्त महिषी शशीयसी; ९ वैददश्वि पुरुमीळ्ह; १० वैददश्वि तरन्त ; १७-१९ दार्भ्य रथवीति । छन्द - गायत्री, ३निचृत् गायत्री; ५ अनुष्टुप् ; ९ सतोबृहती ।]

४१७७. के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय । परमस्याः परावतः ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ नेतृत्व कर्ता ! आप सब कौन हैं ?जो अतिशय सुदूरवर्ती आकाश प्रदेशों से यहाँ आगमन करते हैं ॥१॥

४१७८. क्व१ वोऽश्वाः क्वा३ भीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२ ॥

हे मरुतो ! आपके अश्व कहाँ हैं ? उनके लगाम कहाँ हैं ? कैसे गमन में समर्थ होते हैं ? कैसे गमन करते हैं ? उनकी पीठ पर की जीन और नथुने में डाली जाने वाली रस्सी कहाँ स्थित है ? ॥२ ॥

४१७९. जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥३ ॥

अश्व नियामक मरुद्गण जब इन घोड़ों की जाँघों पर चाबुक लगाते हैं, तो घोड़े अपनी जाँघों को प्रसूति के समय नारियों की भाँति फैला लेते (गतिशील हो जाते) हैं ॥३ ॥

४१८०. परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥४ ॥

हे वीर मरुद्गणो ! आप मनुष्यों के हितैषी, कल्याणरूप जन्म वाले, अग्नि में तपाये गये के सदृश तेजोमय हैं । आप जैसे स्थित हैं, वैसे ही हमारे अभिमुख आगमन करें ॥४ ॥

इस सूक्त की ऋचा क्र० ५ से ९ तक में कुछ विशिष्ट सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है, श्यावाश्व, तरंत, उनकी पत्नी शशीयसी आदि; इन्हें सामान्य अर्थों में व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में लिया गया है; किन्तु भाववाचक-गुणवाचक संज्ञा के रूप में भी इनके अर्थों की संगति बैठती है । श्यावाश्व का अर्थ तैलीय रंग का अश्व भी होता है । यह सम्बोधन धूम्रयुक्त यज्ञाग्नि के लिए अनुकूल बैठता है । तरन्त-प्लवन्-उफान के लिए प्रयुक्त होता है । यज्ञ से एक सूक्ष्म उफान उमड़ता है, उसकी सहधर्मिणी शक्ति शशीयसी प्रशंसा योग्य है । वह अश्व (शक्ति कणों) , गौ (पोषक कणों) तथा अवि (रक्षक कणों) के अनुदान देती है । प्रकारांतर से इसे यज्ञीय प्रक्रिया का सूक्ष्म दर्शन कहा जा सकता है -

४१८१. सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् । श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥

श्यावाश्व के द्वारा स्तुत उन वीरों (मरुद्गणों) के अभिवादन के लिए उन तरन्त महिषी शशीयसी देवी ने अपनी दोनों भुजाओं को फैलाया । उस देवी ने (मुझ श्यावाश्व को) अश्व, गौ और सौ भेड़ें (अवि) प्रदान की ॥५ ॥

४१८२. उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥६ ॥

जो पुरुष देवों की उपासना नहीं करता है, धनादि दान नहीं करता है, उसकी अपेक्षा स्त्री शशीयसी सब प्रकार से श्रेष्ठ है ॥६ ॥

४१८३. वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ॥७ ॥

वे शशीयसी देवी प्रताड़ितों को जानती हैं, प्यासों को भी जानती हैं, धन की कामना वालों को जानती हैं और वे चिरन्तन देव पूजा में अपने चित्त को लगाती हैं ॥७ ॥

४१८४. उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥८ ॥

उन शशीयसी के अर्धांग पुरुष तरन्त की स्तुति करके भी हम कहते हैं कि स्तुति ठीक प्रकार नहीं हुई; क्योंकि दान के क्रम में वे सदैव समान हैं ॥८ ॥

४१८५. उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥९ ॥

सर्वदा प्रमुदित रहने वाली युवती शशीयसी ने श्यावाश्व का मार्ग प्रदर्शित किया था । उनके रोहित वर्णवाले अश्व उन्हें बहुप्रशंसित, महान् यशस्वी विप्र के मार्ग की ओर वहन करते हैं ॥९ ॥

४१८६. यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥१० ॥

विददश्व के पुत्र ने भी हमें तरन्त के समान सौ गाय और तेजस्वी धन प्रदान किया ॥१० ॥

४१८७. य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥११ ॥

वे मरुद्गण द्रुतगामी अश्वों पर अधिष्ठित होकर अत्यन्त हर्षप्रद मधुर सोमपान करने के निमित्त आते हैं और हमें विपुल अन्न प्रदान करते हैं ॥११ ॥

४१८८. येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्मइवोपरि ॥१२ ॥

जिन मरुतों की शोभा से द्यावा-पृथिवी भी परिव्याप्त होती है । वे मरुद्गण ऊपर आकाश में प्रकाशमान सूर्यदेव के सदृश रथों में विशिष्ट आभा विस्तारित करते हैं ॥१२ ॥

४१८९. युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥१३ ॥

यह मरुद्गणों का समुदाय सदा तरुण और अनिन्दनीय है । ये तेजस्वी रथ में विराजित होकर वृष्टि आदि शुभ कार्य के निमित्त अबाधगति से गमन करते हैं ॥१३ ॥

४१९०. को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥१४ ॥

यज्ञादि कर्मों से उत्पन्न हुए ये मरुद्गण शत्रुओं को कँपाने वाले और पाप रहित हैं । ये जहाँ हर्षित होते हैं, उस स्थान को कौन जानता है ? ॥१४ ॥

४१९१. यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५ ॥

हे स्तुतियोग्य मरुतो ! आप मनुष्यों के प्रकृष्ट नियन्ता हैं । उनके बुद्धिपूर्वक किये गये आवाहन को सुनकर आप शीघ्र आगमन करते हैं ॥१५ ॥

४१९२. ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६ ॥

विविध प्रकाशक धनों के स्वामी, शत्रुसंहारक, पूजनीय हे मरुतो ! हमें वाञ्छित धनादि प्रदान करें ॥६ ॥

४१९३. एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥१७ ॥

हे रात्रिदेवि ! हमारे इन स्तोत्ररूप वाणियों को उन मरुद्गणों के निमित्त उसी प्रकार वहन करें, जैसे कोई रथी अपने गन्तव्य स्थान तक जाते हैं ॥१७ ॥

४१९४. उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥१८ ॥

हे रात्रि देवि ! रथवीति द्वारा सम्पादित सोमयाग में हमारी कामनाएँ विफल नहीं हुई, ऐसे मेरे वचन उनसे कहें ॥१८॥

४१९५. एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥

यह धनवान् रथवीति गोमती नदी के किनारे निवास करते हैं और पर्वतों में भी उनका निवास है ॥१९॥

[सूक्त- ६२]

[**ऋषि** - श्रुतवित् आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४१९६. ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥१॥

हे मित्रावरुण ! आप सबके अटल आश्रय स्थान हैं, जहाँ सूर्यदेव के अश्वों (रश्मियों) को विमुक्त किया जाता है । सूर्यदेव का ऋत (सत्य) रूप, ऋत (यज्ञ) से ढंका हुआ है । वहाँ सहस्र संख्यक अश्व (रश्मियाँ) स्थित हैं । उन सुन्दर रूपवान् देवों के श्रेष्ठ सौन्दर्य का दर्शन हमने किया है ॥१॥

[ऋत का अर्थ सनातन सत्य एवं यज्ञ होता है । सूर्य का ऋत सत्य या यज्ञरूप है । अन्दर क्या है, यह पता नहीं, ऊपर आवरण भी सत्य या यज्ञरूप है, जो सबको दिखायी देता है । ऋषियों ने उस दिव्य मर्म को दिव्य दृष्टि से देखा-समझा है ।]

४१९७. तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥२॥

हे मित्र ! हे वरुण ! आप दोनों का महत्त्व बहुत विख्यात है । आप में से एक सतत परिभ्रमणशील सूर्यदेव के साथ दिन में स्थावर का रस दोहन करते हैं । आप स्वयं भ्रमणशील सूर्यदेव की सम्पूर्ण दीप्तियों को प्रवर्धित करते हैं । आपमें से एक का चक्र सर्वत्र गतिशील रहता है ॥२॥

४१९८. अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥३॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण ! आप अपने तेजों से द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं । हे शीघ्र दानकर्तादेव ! आप ओषधियों को प्रवर्धित करते हैं और गौओं को पुष्ट करते हैं । आपने हमारे निमित्त वृष्टि को प्रवाहित किया है ॥३॥

४१९९. आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्वर्वाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥४॥

हे मित्रावरुणदेवो ! उत्तम प्रकार से प्रयोजित अश्व आप दोनों को वहन करें । सारथी लगाम से उन्हें नियन्त्रित करें । यज्ञ में घृतधारा के प्रवाहित होने के समान आपके द्वारा द्युलोक से नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥४॥

४२००. अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥

हे बलसम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों शरीर की कान्ति को और भी प्रवर्धित करते हैं । यजुर्वेद के मंत्रों से जैसे यज्ञों की रक्षा होती है, उसी प्रकार आप पृथ्वी की रक्षा करें । हे अन्नवान् ! आप दोनो रथ पर विराजित होकर हमारे यज्ञ स्थान के मध्य आकर अधिष्ठित हों ॥५॥

४२०१. अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों सिद्धहस्त, अदृश्य रक्षक और हिंसा न करने वाले हैं । हे तेजस्वीदेवो ! आप दोनों जिस उत्तमकर्मा यजमान के यज्ञों में उसकी रक्षा करते हैं, उसे धनादि से पूर्ण सहस्र स्तंभोयुक्त गृह भी प्रदान करते हैं ॥६ ॥

४२०२. हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१ श्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७ ॥

इन मित्र और वरुणदेवों का रथ स्वर्णमय है, इनके स्तम्भ भी स्वर्णिम हैं । इससे यह रथ आकाश में विद्युत् के सदृश विशिष्ट आभा विकीर्ण करता है । इस (रथ) के कल्याणकारी स्थान में अवस्थित यह रस पात्र, रस से भरा है । हम इस रथ में रखे मधुर रस को प्राप्त करें ॥७ ॥

४२०३. हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप उषा के प्रकाशित होने तथा सूर्यदेव के उदित होने पर स्वर्णिम स्तम्भों वाले रथ पर आरोहण करते हैं और उस रथ से आप पृथ्वी और पृथ्वी के प्राणियों को देखते हैं ॥८ ॥

४२०४. यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९ ॥

हे उत्तम दानशील, लोकरक्षक मित्र और वरुणदेवो ! आपका जो घर अत्यन्त विशाल, आघातों से मुक्त और अखण्डित है, उसी घर से हमारी रक्षा करें । हम अभीष्ट धन प्राप्त करें और शत्रुजेता हों ॥९ ॥

[सूक्त - ६३]

[**ऋषि** - अर्चनाना आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - जगती ।]

४२०५. ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१ ॥

हे जल-रक्षक, सत्य-धर्मपालक मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों हमारे यज्ञ में आने के लिए परम आकाश में रथ पर अधिष्ठित होते हैं । आप दोनों इस यज्ञ में जिस यजमान की रक्षा करते हैं, उसे आकाश से मधुर जल की वृष्टि कर पुष्ट करते हैं ॥१ ॥

४२०६. सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२ ॥

हे स्वर्ग के द्रष्टा मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों इस लोक के सम्राट् हैं । आप यज्ञ में दीप्तिमान् होते हैं । हम आप दोनों से अनुकूल वृष्टि, ऐश्वर्य और अमरता की याचना करते हैं । आपकी प्रकाशमान किरणें आकाश और पृथ्वी में विचरण करती हैं ॥२ ॥

४२०७. सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनो अत्यन्त प्रकाशमान, उग्र बल-सम्पन्न और वृष्टिकर्त्ता हैं । आप द्युलोक और पृथ्वीलोक के अधिपति और विशिष्ट द्रष्टारूप हैं । आप विलक्षण मेघों के साथ गर्जनशील होकर अधिष्ठित हैं । अपने भयंकर बल से कुशलतापूर्वक आप द्युलोक से वृष्टि करते हैं ॥३ ॥

४२०८. माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की माया (सामर्थ्य) द्युलोक में आश्रित है, जिससे सूर्यदेव का विलक्षण आयुधरूप प्रकाश सर्वत्र विचरता है । तब आप दोनों उन सूर्यदेव को वर्षणशील मेघों से आच्छादित करते हैं । हे पर्जन्य ! इन देवों से प्रेरित होकर आपसे मधुर जल राशि क्षरित होती है ॥४ ॥

४२०९. रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! युद्धों में जाने की अभिलाषा वाले वीर जैसे अपने रथ को सुसज्जित करते हैं, उसी प्रकार मरुद्‌गण आपसे प्रेरित होकर वृष्टि के लिए सुखकर रथ को नियोजित करते हैं । आकाश-निवासक वे मरुद्‌गण विविध लोकों में वृष्टि के लिए विचरते हैं । हे अत्यन्त प्रकाशक देवो ! मरुतों के सहयोग से आप उत्तम जल वृष्टि से हमें सिञ्चित करें ॥५ ॥

४२१०. वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आपके द्वारा मेघ अन्नोत्पादक, तेजोमयी, विचित्र गर्जनायुक्त वाणी कहता है । ये मरुद्‌गण अपनी सामर्थ्य से मेघों को भली प्रकार विस्तारित करते हैं । आप दोनों अरुणिम वर्ण और निर्मल आकाश से वृष्टि करते हैं ॥६ ॥

४२११. धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७ ॥

हे मेधावान् मित्रावरुण देवो ! आप दोनो जगत्- कल्याणकारी वृष्टि आदि कर्मों से यज्ञादि व्रतों की रक्षा करते हैं । जल वर्षक मेघों की सामर्थ्य द्वारा आप यज्ञों से सम्पूर्ण लोकों को विशेष प्रकाशित करते हैं । आप पूजनीय और वेगवान् सूर्यदेव को द्युलोक में स्थापित करते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ६४]

[ऋषि - अर्चनाना आत्रेय । देवता - मित्रावरुण । छन्द - अनुष्टुप् ; ७ पंक्ति ।]

४२१२. वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे । परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१ ॥

जिस प्रकार गौएँ अपने गोचर स्थान में जाती हैं, उसी प्रकार सर्वत्र गमनशील, मित्र और वरुणदेवों को हम ऋचाओं से आवाहित करते हैं । ये मित्र और वरुणदेव अपनी सामर्थ्य से सर्वत्र गमन करते हैं । ये स्वर्णधन देने वाले और शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं ॥१ ॥

४२१३. ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते । शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम उत्साहपूर्ण मन से आपका पूजन करते हैं । हम पूजकों को आप दोनों हाथ फैलाकर (उदारतापूर्वक) प्रशंसित सुख प्रदान करें । हम आपकी प्रशस्ति का गान सभी लोकों में करें ॥२ ॥

४२१४. यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा । अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ।।३।।

हम मित्रदेव के पथों का अनुगमन करते हुए निश्चित गति प्राप्त करें । हमारे प्रिय और अहिंसक मित्रदेव के सुख हमें प्राप्त हों ॥३ ॥

४२१५. युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा । यद्ध क्षये मघोनां स्तोतृणां च स्पूर्धसे ।।४ ।।

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम आपके उस धन को धारण करें, जो धनिक स्तोताओं के घर में परस्पर स्पर्धा का कारण बनता हो ॥४ ॥

४२१६. आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ । स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे।।५ ।।

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों उत्तम तेजों से युक्त होकर हमारे घर आगमन करें । आप निश्चित ही आयें और धनिक मित्रों को समृद्धियुक्त करें ॥५ ॥

४२१७. युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः । उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये।।६ ।।

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप यज्ञों में जो अति व्यापक बल धारण करते हैं, उस बल से हमारे अन्न , धन और कल्याण में वृद्धि करें ॥६ ॥

४२१८. उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ।।७ ।।

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप नेतृत्वकर्त्ता और पूजनीय हैं । उषाकाल में स्वर्णिम रश्मियों के प्रकाशित होने पर उपासकों को दोनों हाथों में धनादि धारण कराते हैं । यज्ञ में हमारे द्वारा अभिषुत सोम को ग्रहण करने के लिए आप शकटरूपी हाथों और चक्ररूपी पैरों वाले रथों से दौड़ते हुए आयें ॥७ ॥

[सूक्त - ६५]

[**ऋषि** - रातहव्य आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - अनुष्टुप्; ६ पंक्ति ।]

४२१९. यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः । वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ।।१ ।।

जो स्तोता देवों के मध्य में इन मित्र और वरुणदेवों की स्तुति जानता है और उत्तम कर्म करते हुए स्तुतियाँ करता है, ये देवगण उनकी स्तुतियां ग्रहण करते हैं । वे स्तोतागण हमें उपदेश करें ॥१ ॥

४२२०. ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा । ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने।।२।।

ये मित्र और वरुणदेव प्रभूत तेज-सम्पन्न, अधिष्ठातारूप और दूरस्थ प्रदेशों से भी आवाहन को सुनने वाले हैं । ये सत्यशील यजमानों के अधिपति, यज्ञ को बढ़ाने वाले और प्रत्येक मनुष्य में सत्य के स्थापनकर्त्ता हैं ॥२ ॥

४२२१. ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ।।३ ।।

पुरातन, उत्तम ज्ञान सम्पन्न हे मित्रावरुणदेवो ! हम आपके सम्मुख उपस्थित होकर अपनी रक्षा के लिए आपकी स्तुतियाँ करते हैं । उत्तम अश्वों के स्वामी हम अन्नों के दान के लिए आपकी प्रकृष्ट स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४२२२. मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते । मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः।।४ ।।

मित्रदेव पापी स्तोता को भी संरक्षण के लिए महान् आश्रय प्राप्ति का उपाय बताते हैं । हिंसक भक्त के लिए भी मित्रदेव की उत्तम बुद्धि रहती है ॥४ ॥

४२२३. वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे । अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥५ ॥

हम मित्रदेव के अत्यन्त व्यापक संरक्षण में स्थित हों । वरुणदेव के सन्तानरूप हम लोग आप से रक्षित होकर तथा निष्पाप होकर संयुक्तरूप से रहें ॥५ ॥

४२२४. युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६ ॥

हे मित्रावरुण देवो ! जो मनुष्य आप दोनों का स्तवन करते हैं, उन्हें आप उत्तम मार्ग से ले जाते हैं । हे ऐश्वर्यशालीदेवो ! हम यजमानों का त्याग न करें, ऋषियों की संतानों का त्याग न करें । सोमदेव यज्ञादि कार्य में हमारी रक्षा करें ॥६ ॥

[सूक्त - ६६]

[ऋषि - रातहव्य आत्रेय । देवता - मित्रावरुण । छन्द - अनुष्टुप् ।]

४२२५. आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा । वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१॥

हे ज्ञान-सम्पन्न मनुष्य ! आप शत्रुओं के हिंसक और उत्तम कर्म करने वाले दोनों देवों मित्र और वरुण को आवाहित करें । उदकरूप वाले, अन्न- उत्पादक, महान् वरुणदेव के लिए जल प्रदान करें । ॥१ ॥

४२२६. ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१ माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥२ ॥

आप दोनों देवों का बल सज्जनों के लिए अहिंसक और असुरों के लिए विनाशक है । आप दोनों सम्पूर्ण बलों के अधिष्ठाता हैं । जैसे मनुष्यों में कर्म-सामर्थ्य और सूर्यदेव में प्रकाश स्थापित होकर दर्शनीय होता है, उसी प्रकार आप में बल स्थापित होकर दर्शनीय होता है ॥२ ॥

४२२७. ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् । रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों रातहव्य (हव्य प्रदाता) की उत्तम स्तुतियों से स्तुत होते हैं और आवाहित होने पर अत्यन्त विस्तृत मार्गों से भी गमन करते हैं ॥३ ॥

४२२८. अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता । नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४ ॥

हे अद्भुत कार्य करने वाले, बल-सम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! हम कुशल साधकों की स्तुतियों से आप दोनों प्रशंसित होते हैं । आप दोनों अनुकूल मन से यजमानों के स्तोत्रों को जानें ॥४ ॥

४२२९. तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५ ॥

हे पृथिवीदेवि ! हम ऋषियों की, अन्न की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए आप विपुल जल-राशि से परिपूर्ण हैं । ये मित्र और वरुणदेव अपने गमनशील साधनों से वह विपुल जल-वर्षण करते हैं ॥५ ॥

४२३०. आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६ ॥

हे दूरद्रष्टा मित्र और वरुणदेवो ! हम स्तोताजन आप दोनों का आवाहन करते हैं, जिससे हम आपके अत्यन्त विस्तीर्ण और बहुतों द्वारा संरक्षित राज्य में आवागमन करें ॥६ ॥

[सूक्त - ६७]

[ऋषि - यजत आत्रेय । देवता - मित्रावरुण । छन्द - अनुष्टुप् ।]

४२३१. बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् । वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥१ ॥

हे दीप्तिमान् आदित्य पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमादेवो ! आप निश्चय ही अपराजेय, पूजनीय और अत्यन्त महान् बल को धारण करते हैं ॥१ ॥

४२३२. आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः । धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! जब आप अत्यन्त रमणीय यज्ञभूमि में आकर अधिष्ठित होते हैं, तब हमें सुख प्रदान करें ॥२ ॥

४२३३. विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा । व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३ ॥

सर्वज्ञाता वरुण, मित्र और अर्यमा- ये सभी देव हमारे यज्ञों में अपने स्थान के अनुरूप सुशोभित होते हैं और हिंसकों से मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥३ ॥

४२३४. ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने । सुनीथासः सुदानवोऽंहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४ ॥

वे देवगण (वरुण, मित्र और अर्यमा) सत्यस्वरूपवान्, यज्ञ-व्रतावलम्बी और यज्ञ-रक्षक हैं । वे प्रत्येक यजमान को सत्पथ पर प्रेरित करने वाले और उत्तम- दानशील हैं । वे वरुणादि देवगण पापी स्तोताओं को भी (शुद्ध करके) ऐश्वर्य देने वाले हैं ॥४ ॥

४२३५. को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् । तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों के मध्य ऐसे कौन हैं, जो मनुष्यों में स्तुत नहीं होते ? हमारी बुद्धि आपकी स्तुति में नियोजित होती है । अत्रि वंशजों की बुद्धि भी आपकी स्तुति में नियोजित होती है ॥५ ॥

[सूक्त - ६८]

[ऋषि - यजत आत्रेय । देवता - मित्रावरुण । छन्द - गायत्री ।]

४२३६. प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! आप मित्र और वरुणदेव हेतु तेज ध्वनि से गायन करें । महानतायुक्त, क्षात्रबल से सम्पन्न वे दोनों यज्ञ-स्थल पर विस्तृत स्तोत्रगान-श्रवण हेतु उपस्थित हों ॥१ ॥

४२३७. सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२ ॥

तेजस्विता के उत्पत्ति केन्द्र, मित्र और वरुण दोनों अधिपतियों की देवगणों के बीच प्रशंसा होती है ॥२ ॥

४२३८. ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३ ॥

देवताओं में प्रसिद्ध, पराक्रमी, हे मित्र और वरुणदेवो ! आप हमें पृथ्वी एवं द्युलोक का अपार वैभव प्रदान करें, हम आपका स्तवन करते हैं ॥३ ॥

४२३९. ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥४ ॥

सत्य से सत्य का पालन करने वाले अभीष्ट बल प्राप्त करते हैं । द्रोह न करने वाले मित्र और वरुणदेव अपनी सामर्थ्य से वृद्धि पाते हैं ॥४ ॥

४२४०. वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥५ ॥

वर्षा के लिए जिनकी वंदना की जाती है, नियमानुसार सब कुछ प्राप्त करने वाले, दान की प्रवृत्ति वाले, अन्नों के अधिपति वे मित्र और वरुणदेव श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ६९]

[**ऋषि** - उरुचक्रि आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४२४१. त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप तीन विशिष्ट तेजों, तीन द्युलोकों और तीन अन्तरिक्ष लोकों को धारण करते हैं । आप दोनों, क्षत्रियों की सामर्थ्य को प्रवर्द्धित करते हैं और अक्षय कर्मों की रक्षा करते हैं ॥१ ॥

४२४२. इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों की अनुकम्पा से गौएँ दुधारू होती हैं और नदियाँ मधुर जल का दोहन करती हैं । आप दोनों के साथ संयुक्त होकर जल-वर्षक, उदक-धारक और दीप्तिमान् तीन देव (अग्नि, वायु और आदित्य), तीन लोकों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) के अधिपति रूप में स्थित हैं ॥२ ॥

४२४३. प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३ ॥

हम प्रातः सवन में देवी अदिति का आवाहन करते हैं और माध्यन्दिन सवन में सूर्यदेव का स्तवन करते हैं । हे मित्रावरुण देवो !हम धन-प्राप्ति के लिए, पुत्र और पौत्रों के कल्याण के लिए यज्ञ में आपकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४२४४. या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४ ॥

हे आदित्य-पुत्र मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों द्युलोक और तेजस्वी पृथ्वीलोक को धारण करने वाले हैं । आप दोनों के अटल नियमों की अवहेलना इन्द्रादि अमरदेव भी नहीं करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ७०]

[**ऋषि** - उरुचक्रि आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - गायत्री ।]

४२४५. पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनो के पास प्रचुर मात्रा मे उपयोगी साधन उपलब्ध हैं । आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की अनुकूलता हमें सदैव प्राप्त होती रहे ॥१ ॥

४२४६. ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥२ ॥

द्वेष न करने वाले आप दोनों (मित्र और वरुण) की हम भली-भाँति वन्दना करते हैं । हमें आपकी मित्रता का लाभ मिले तथा धन-धाम की प्राप्ति हो ॥२ ॥

४२४७. पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! श्रेष्ठ संरक्षक के रूप में अपने साधनों से हमारा संरक्षण एवं पालन करें । उस

सामर्थ्य के बल पर हम भी शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥३ ॥

४२४८. मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ॥४ ॥

हे अद्‌भुतकर्मा मित्र और वरुणदेवो ! हम अपने शरीर द्वारा किसी अन्य के धन का उपभोग न करें । अपने सम्बन्धियों द्वारा भी किसी अन्य के धन का उपभोग न करें ॥४ ॥

[दूसरों के धन के अधिकार की कामना ही पतन का कारण बनती है, इसलिए ऋषि अपने को और अपनों को उससे बचाकर चलना चाहते हैं ।]

[सूक्त - ७१]

[**ऋषि** - बाहुवृक्त आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - गायत्री ।]

४२४९. आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! आप दोनों शत्रु-हिंसक और शत्रु-नाशक है । आप दोनों हमारे अत्यन्त निर्मल यज्ञ में पधारने की कृपा करें ॥१ ॥

४२५०. विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२ ॥

हे प्रकृष्ट ज्ञानसम्पन्न मित्र और वरुणदेवो ! आप सम्पूर्ण विश्व के प्रशासक हैं और सब पर प्रभुत्व रखने वाले हैं । आप हमारी अभिलषित बुद्धि को तृप्त करें ॥२ ॥

४२५१. उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! हम अभिषुत-सोम युक्त हव्यादि देने वाले हैं । आप हमारे द्वारा अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे पास आगमन करें ॥३ ॥

[सूक्त - ७२]

[**ऋषि** - बाहुवृक्त आत्रेय । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - उष्णिक् ।]

४२५२. आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥१ ॥

अत्रि वंशजों की तरह हम भी मित्र और वरुणदेवों का स्तुतियों द्वारा आवाहन करते हैं । हे देवो ! सोमपान के निमित्त कुशाओं पर अधिष्ठित हों ॥१ ॥

४२५३. व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥२ ॥

हे शत्रुविनाशक मित्र और वरुणदेवो ! आप अपने धर्मयुक्त नियमों के कारण अटल-आश्रय में स्थित हैं । आप सोमपान के निमित्त कुश के आसन पर अधिष्ठित हों ॥२ ॥

४२५४. मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥३ ॥

हे मित्रावरुणो !हमारे यज्ञ को स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करें । आप सोमपान के निमित्त कुशाओं पर आसीन हों ॥३ ॥

[सूक्त - ७३]

[**ऋषि** - पौर आत्रेय । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

४२५५. यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना । यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१ ॥

हे अनेक स्थानों (यज्ञों) में भोज्य पदार्थ पाने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दूरस्थ देश में हों अथवा निकटवर्ती

बहुत प्रदेशों में हों अथवा अन्तरिक्ष में हों, आप जहाँ भी हों, उन स्थानों से हमारे पास पधारें ॥१ ॥

४२५६. इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता । वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥

इन अश्विनीकुमारों का सम्बन्ध अनेक यजमानों से है, जो विविध रूपों को धारण करने वाले और वरणीय हैं । ये अबाधित गति वाले और सर्वोत्कृष्ट बलों वाले हैं । इन्हें उत्तम आहुतियों के निमित्त हम आवाहित करते हैं ॥२ ॥

४२५७. ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः । पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने रथ के एक चक्र को सूर्य की शोभा बढ़ाने के लिए नियमित किया तथा अन्य (दूसरे) चक्र से मनुष्यों के युगों (कालों) को प्रकट करने के लिए आप सब ओर विचरते हैं ॥३ ॥

[अश्विनीकुमारों के रथ (दायित्व) का एक चक्र (व्यवस्थाक्रम) सूर्य के प्रभाव को बनाये रखने के लिए सक्रिय है तथा दूसरा चक्र (सर्किट) पृथ्वी की गति के आधार पर दिन-रात रूप काल विभाजन क्रम के साथ गतिशील रहता है ।]

४२५८. तद् षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे । नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४ ॥

हे सर्वत्र व्याप्त अश्विनीकुमारो !हम जिन स्तोत्रों द्वारा आप दोनों के अनुकूल स्तुति करते हैं, वे भली प्रकार सम्पादित हों ।हे निष्पाप और विभिन्न कर्मों के लिए प्रसिद्ध देवो !आप हमारे साथ बन्धुभाव में ही संयुक्त हों ॥४ ॥

४२५९. आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा । परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों के रथ पर सूर्या (उषा) आरोहित होती हैं, तब अत्यन्त दीप्त अरुणिम रश्मियाँ आपको चारों ओर से घेर लेती हैं ॥५ ॥

४२६०. युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा । घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६ ॥

हे नेतृत्ववान् अश्विनीकुमारो ! अत्रि ऋषि ने जब आप दोनों की स्तुति करते हुए अग्नि के सुखप्रद रूप को जाना था, तब उन्होंने कृतज्ञ चित्त से आपका स्मरण किया था ॥६ ॥

४२६१. उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः । यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्तति ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप जब गमन करते हैं, तो आपके सुदृढ़, ऊँचे , सतत गमनशील रथ का शब्द सुनायी पड़ता है, तब अत्रि ऋषि अपने कार्यों से आप दोनों को आकृष्ट करते हैं ॥७ ॥

४२६२. मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८ ॥

हे मधु मिश्रित करने वाले रुद्रपुत्र अश्विनीकुमारो ! हमारी सुमधुर स्तुतियाँ आपमें मधुरता का सिंचन करती हैं । आप दोनों अन्तरिक्ष की सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं और पके हुए हविष्यान्नों से परिपूर्ण होते हैं ॥८ ॥

४२६३. सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा । ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! विद्वज्जन आप दोनों को अत्यन्त सुखदायक बताते हैं, वह (कथन) निश्चय ही सत्य है । यज्ञ में आगमन के निमित्त आप आवाहित होते हैं, अतएव यहाँ आगमन कर हमारे निमित्त सुखप्रदायक हों ॥९ ॥

४२६४. इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँइवावोचाम बृहन्नमः ॥१० ॥

रथों के समान निर्मित ये मन्त्रादि स्तोत्र अश्विनीकुमारों के निमित्त विरचित किये गये हैं । ये स्तोत्र उनके निमित्त सुखकारी और प्रीतिवर्द्धक हों । नमनयुक्त स्तोत्र भी उनके निमित्त निवेदित हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ७४]

[ऋषि - पौर आत्रेय । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द - अनुष्टुप् ।]

४२६५. कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू । तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१॥

हे उत्कृष्ट मन-सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों द्युलोक से आगमन कर यज्ञ-भूमि पर स्थित हों । हे धनवर्षक देवो ! आप अत्रि ऋषि के उन स्तोत्रों का श्रवण करें, जो आपके निमित्त निवेदित किये गये हैं ॥१ ॥

४२६६. कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२ ॥

हे असत्यरहित दीप्तिमान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों कहाँ हैं ? द्युलोक में किस स्थान में आप सुने जाते हैं ? किस यजमान के गृह आप आगमन करते हैं ? तथा किस स्तोता की स्तुतियों के साथ आप संयुक्त होते हैं ? ॥२॥

४२६७. कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप किस यजमान के लिए गमन करते हैं ? किसके पास संयुक्त होते हैं ? किसके अभिमुख गमन करने के लिए रथ नियोजित करते हैं ? किसके स्तोत्रों से प्रसन्नचित्त होते हैं ? हम आप दोनों की प्राप्ति की कामना करते हैं ॥३ ॥

४२६८. पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः । यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप पौर ऋषि के लिए जलयुक्त मेघों को प्रेरित करें । जैसे वन में व्याध सिंह को प्रताड़ित करता है, वैसे आप इन मेघों को प्रताड़ित करें ॥४ ॥

४२६९. प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपने जराजीर्ण हुए च्यवन ऋषि की कुरूपता को कवच के सदृश उतार दिया और उन्हें पुनः युवक रूप बना दिया, तब वे वधू के द्वारा कामना योग्य सुन्दर रूप से युक्त हुए ॥५ ॥

४२७०. अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके स्तोतागण इस यज्ञ-स्थल में विद्यमान हैं । इस समृद्धि के लिए आपके दृष्टि क्षेत्र में अवस्थित हों । हे सेनारूप धनों से युक्त अश्विनीकुमारो ! हमारी पुकार सुनें । अपने संरक्षण साधनों के साथ यहाँ आगमन करें ॥६ ॥

४२७१. को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७ ॥

हे ज्ञानियों द्वारा वन्दनीय और विपुल सेनारूप धन वाले अश्विनीकुमारो ! अनेकों प्रजाओं में से कौन ज्ञानी आपको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता है ? कौन यजमान आपको यज्ञों द्वारा सम्यक् रूप से तृप्त करता है ? ॥७ ॥

४२७२. आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अन्य देवों के रथों के मध्य सर्वाधिक वेगवान् आपका रथ इधर आगमन करे । मानवों में हमारी कामना करने वाला, अनेकों शत्रुओं का संहार और यजमानों द्वारा प्रशंसित यह रथ इधर आगमन करे ॥८ ॥

४२७३. शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९ ॥

हे मधुयुक्त अश्विनीकुमारो ! आपके निमित्त निवेदित स्तोत्र हमारे लिए सुखदायक हों । हे विशिष्ट ज्ञान-सम्पन्न देवो ! श्येन पक्षी के समान वेगवान् अश्वों से हमारे सम्मुख आगमन करें ॥९ ॥

४२७४. अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे आवाहन का श्रवण करें । चाहे जहाँ आप स्थित हों, सुनें । हम यज्ञ में आपके निमित्त उत्तम अन्नों को भली प्रकार मिश्रित कर हविरूप प्रशंसित भोज्य-पदार्थ निवेदित करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ७५]

[ऋषि - अवस्यु आत्रेय । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द - पंक्ति ।]

४२७५. प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके अत्यन्त प्रिय बलयुक्त, धनवाहक रथ को स्तोता ऋषि अपने स्तोत्रों से विभूषित करते हैं । हे मधुविद्या के ज्ञाताओ ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥१ ॥

४२७६. अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अन्यों को लाँघकर हमारे निकट आएँ । हम अपने शत्रुओं पर विजय पाने में सफल हों । शत्रुनाशक, स्वर्ण रथयुक्त, उत्तम धनसम्पन्न, नदियों की भाँति प्रवहमान, हे मधुविद्याविद् ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥२ ॥

४२७७. आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३ ॥

स्वर्णरथी, शत्रु उत्पीड़क, रत्नधारक, धन-धान्ययुक्त, यज्ञप्रेमी हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ में आकर प्रतिष्ठित हों । हे मधु विद्याविशारद ! आप हमारे आवाहन का श्रवण करें ॥३ ॥

४२७८. सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४ ॥

हे धनवर्षक अश्विनीकुमारो ! हम स्तोताजन आप दोनों की उत्तम स्तुति करते हैं । अपनी वाणी (मंत्रशक्ति) को आपके रथ में स्थापित किया है । आपका महान् अन्वेषक (साधक-याजक) आपके निमित्त हविष्यान्न तैयार करता है । हे मधुविद्याविद् देवो ! आप हमारे आवाहन को सुनें ॥४ ॥

४२७९. बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५ ॥

हे अश्विनीदेवो ! आप दोनों द्रुतगामी रथ पर आरूढ़ रहने वाले, बोधयुक्त मन वाले एवं स्तुतियाँ सुनने वाले हैं। आप निश्छल मन वाले च्यवन ऋषि के समीप अश्वों से पहुँचे थे। हे मधुविद्या के ज्ञातादेवो ! आप हमारे आवाहन को सुनें ॥५ ॥

४२८०. आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६ ॥

हे नेतृत्वकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! मन के संकेत मात्र से योजित होने वाले, बिन्दुदार चिह्नों वाले, वेगवान् अश्व आप दोनों को सोमपान के निमित्त सम्पूर्ण सुखों के साथ हमारी ओर लायें। हे मधुविद्याविशारद देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥६ ॥

४२८१. अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७ ॥

हे अडिग, असत्यरहित अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे अभिमुख आगमन करें। हमारा निवेदन अस्वीकार न करें। हे सर्वदा विजयशील देवो ! आप दोनों अत्यन्त दूरस्थ प्रदेश से भी हमारे यज्ञगृह में आगमन करें। हे मधुविद्या के ज्ञाता देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥७ ॥

४२८२. अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८ ॥

हे शुभ कर्मों के पालक, अडिग, अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में आप दोनों, स्तुति करने वाले अवस्यु के समीप जाकर उन्हें आप दोनों विभूषित करें। हे मधुविद्याविद् देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥८ ॥

४२८३. अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९ ॥

हे धनवर्षक, शत्रुनाशक, अश्विनीकुमारो ! उषा प्रकाशित हुई है। ऋतु के अनुरूप तेजस्वी किरणों वाले अग्निदेव वेदी पर पूर्णतया संस्थापित हुए हैं। आपका अनश्वर रथ योजित किया गया है। हे मधु विद्याविद् देवो ! आप दोनों हमारा आवाहन सुनें ॥९ ॥

[सूक्त - ७६]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४२८४. आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥१ ॥

उषा के मुखरूप ये अग्निदेव दीप्तिमान् हो गये हैं (उषाकाल में अग्निहोत्र प्रारंभ हो गया है) तथा दिव्य स्तुतियाँ भी प्रारंभ हो गयी हैं। हे रथ में विराजित अश्विनीकुमारो ! हमें दर्शन देकर यज्ञ में पीने योग्य सोम के समीप उपस्थित होने की कृपा करें ॥१ ॥

४२८५. न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप संस्कारितों (प्राणियों, पदार्थों, क्रियाओं) को क्षति नहीं पहुँचाते हैं। इस यज्ञ में

उपस्थित होने वाले , आपके निमित्त स्तुति की जाती है । दिन के प्रारंभ होते ही हव्य पदार्थ लेकर आते हुए हविदाता (याजक) को आप सुख प्रदान करने वाले हैं ॥२ ॥

४२८६. उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन में गाय दुहने (सायं गोधूलि वेला) के समय, प्रात: सूर्योदय के समय, मध्याह्न काल में, दिन के प्रखर रूप (अपराह्न काल) में अर्थात् सम्पूर्ण दिन-रात्रि में हमेशा सुखदायी, रक्षा करने के साधनों सहित पधारें । अभी सोमपान की क्रिया प्रारंभ नहीं हुई है । अत: आप शीघ्र पधारें ॥३ ॥

४२८७. इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्‌भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए यह उत्तर वेदी आपका पुरातन निवास योग्य स्थान है । ये सम्पूर्ण गृह और आश्रय-स्थान भी आपके ही हैं । आप उदक पूर्ण मेघों द्वारा अन्तरिक्ष से हमारे निमित्त अन्न और बल वहन करके यहाँ आएँ ॥४ ॥

४२८८. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५ ॥

हम सब अश्विनीकुमारों के नूतन संरक्षण-सामर्थ्यों, सुखदायक अनुग्रहों और उत्तम नेतृत्व से संयुक्त हों । हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! हमारे निमित्त सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौभाग्य और वीर पुत्रों को प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७७]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४२८९. प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! प्रात: काल में सब देवों से पहले आने वाले अश्विनीकुमारों का आप पूजन करें । वे अदानशील और लोभी (राक्षसों) से पूर्व ही आकर सोमपान करते हैं । वे प्रात: यज्ञ को सम्यक् रूप से धारण करते हैं । पूर्वकालीन ऋषिगण उनकी प्रशंसा करते हैं ॥१ ॥

४२९०. प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! अश्विनीकुमारों के लिए प्रात: काल यजन करें । उन्हें हव्यादि प्रदान करें । सायंकालीन प्रदत्त हव्य देवों को सेवनीय नहीं होता । वह देवों के पास गमन करने वाला नहीं होता । हमसे अन्य जो कोई पूर्व में यजन करता है, वह सब देवों को तृप्त करता है । हमसे पहले जो यजन करने वाला होता है, वह देवों के लिए विशिष्ट प्रीतिकारक होता है ॥२ ॥

४२९१. हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों का स्वर्ण से आच्छादित, मनोहरवर्ण, जलवर्षक, अन्नधारक, मन के तुल्य

वेगवान्, वायु के सदृश गमनशील रथ हमारी ओर आगमन करता है । आप उस रथ द्वारा सम्पूर्ण बाधाओं का अतिक्रमण करते हुए आगमन करें ॥३ ॥

४२९२. यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥४ ॥

जो यजमान यज्ञ में हविर्विभाग करने के समय अश्विनीकुमारों को विपुल हव्यादि प्रदान करता है; वह अपने पुत्रों का शुभ कर्मों से पालन करता है । जो यज्ञादि कर्मों के निमित्त अग्नि उद्दीप्त नहीं करता; वह सर्वदा हिंसित होता है ॥४ ॥

४२९३. समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५ ॥

हम सब अश्विनीकुमारों के नूतन संरक्षण सामर्थ्यों, सुखदायक अनुग्रहों और उत्तम नेतृत्व से संयुक्त हों । हे अविनाशी अश्विनीकुमारो ! हमारे निमित्त आप सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौभाग्य और वीर पुत्रों को प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७८]

[ऋषि - सप्तवध्रि आत्रेय । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द - अनुष्टुप्; १-३ उष्णिक्, ४त्रिष्टुप् ।]

४२९४. अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे यज्ञ में पधारें । जैसे दो धवल हंस जल की ओर जाते हैं, वैसे आप दोनों सोम के निकट आएँ ॥१ ॥

४२९५. अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जैसे हरिण और गौर मृग तृणादि के प्रति दौड़ते हैं और हंस जैसे उदक के प्रति अवतीर्ण होते हैं; उसी प्रकार आप दोनों अभिषुत सोम के निकट अवतीर्ण हों ॥२ ॥

४२९६. अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३ ॥

हे सेना एवं धन रखने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे इष्ट सिद्धि के लिए यज्ञ को ग्रहण करें । जैसे हंस उदक के प्रति अवतीर्ण होते हैं, उसी प्रकार आप दोनों अभिषुत सोम के निकट अवतीर्ण हों ॥३ ॥

४२९७. अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! निवेदन करती हुई स्त्री के समान अत्रि ऋषि ने गहन तमिस्रा से व्याप्त लोक से मुक्ति के लिए आपका आवाहन किया था । तब आप अपने सुखकारी और नूतन रथ से श्येन पक्षी के सदृश वेगपूर्वक आये थे ॥४ ॥

४२९८. वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५ ॥

हे वनस्पतिदेव ! आप प्रसवोन्मुख योनि की भाँति विस्तृत (नव जीवन प्रदायक के रूप में प्रकट-विकसित) हों । हे अश्विनीकुमारो ! हमारा आवाहन सुनकर आप आएँ और मुझ सप्तवध्रि (इस नाम के व्यक्ति अथवा सात स्थानों से बँधे हुए प्राणी) को मुक्त करें ॥५ ॥

[आगे की ऋचाओं से स्पष्ट होता है कि इस ऋचा में वनस्पति (वनौषधियों) द्वारा निर्विघ्न प्रसूति का संकेत है। गर्भस्थ शिशु अथवा जीव शरीर के सप्त धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं वीर्य) के विकारों से बँधा होता है। वह मुक्ति की कामना से अश्विनीकुमारों का आवाहन करता है।]

४२९९. भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथ: ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! सप्तवध्रि ने भयभीत होकर मुक्ति के लिए निवेदन किया, तो आप दोनों ने अपनी माया (कुशलता) से वनस्पति को विदीर्ण कर दिया ॥६ ॥

४३००. यथा वात: पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वत:। एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्य: ॥७ ॥

वायु जिस प्रकार सरोवर को स्पन्दित करता है, उसी प्रकार आपका गर्भ दस मास का होकर, स्पन्दन युक्त होकर प्रकट हो ॥७ ॥

४३०१. यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति। एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८ ॥

जैसे वायु , वन और समुद्र प्रकम्पित होते रहते हैं; उसी प्रकार दस मास का गर्भस्थ जीव जरायु के साथ बाहर प्रकट हो ॥८ ॥

४३०२. दश मासाञ्छशयान: कुमारो अधि मातरि।

निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९ ॥

माता के गर्भ में दस मास पर्यन्त सोता हुआ बालक जीवित और क्षतिरहित अवस्था में जननी से सुखपूर्वक जन्म ग्रहण करे ॥९ ॥

[सूक्त - ७९]

[**ऋषि** - सत्यश्रवा आत्रेय। **देवता** - उषा। **छन्द** - पंक्ति ।]

४३०३. महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।

यथा चिन्नो अबोधय: सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१ ॥

हे सुप्रकाशित उषादेवि ! पूर्व की भाँति हमें ज्ञान युक्त बनायें, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए बोध दें। हे श्रेष्ठ कुल वाली, सत्य भाषिणी , वय्य के पुत्र सत्यश्रवा (सच्ची कीर्ति वाले) को अपनी कृपा का पात्र बनायें ॥१ ॥

४३०४. या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिव:।

सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२ ॥

हे द्युलोक की पुत्री उषादेवि ! आप शुचद्रथ के पुत्र सुनीथ के लिए अन्धकार को दूर करके प्रकाशित (प्रकट) हुईं। ऐसी आप, वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह (प्रकाश) वृष्टि करें ॥२ ॥

४३०५. सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिव:।

यो व्यौच्छ: सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ ३ ॥

हे आदित्य पुत्री उषादेवि ! आप हमें प्रचुर धन दें और आज हमारे अन्धकार को मिटायें। हे बलयुक्त , तमनाशक , प्रसिद्ध , सत्यरूपिणि उषादेवि ! वय्य के पुत्र सत्यश्रवा पर कृपा करें ॥३ ॥

४३०६. अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।

मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४ ॥

हे प्रकाशवती उषादेवि ! ये (स्तोतागण) दीप्तिमान् उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । वे ऐश्वर्य द्वारा उत्तम शोभावान् और उत्तम दानशील हैं । हे धनवती, जन्म से शोभावती उषादेवि ! स्तोतागण अश्व प्राप्ति के लिए आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥४ ॥

४३०७. यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।

परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५ ॥

हे उषादेवि ! जो स्तोतागण धन-प्राप्ति के लिए आपका स्तवन करते हैं, वे निश्चय ही ऐश्वर्य धारण करते हैं और अक्षय हव्यादि रूप धन देते रहते हैं । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्वप्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥५ ॥

४३०८. ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।

ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६ ॥

हे धनवती उषादेवि ! इन स्तोताओं को उत्तमवीर पुत्रों से युक्त अन्न प्रदान करें, जिससे वे धन-सम्पन्न होकर हमें विपुल धन दें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥६ ॥

४३०९. तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।

ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥७ ॥

हे धनवती उषादेवि ! जो यजमान-स्तोता हमें गौओं, अश्वों से युक्त धन प्रदान करते हैं; उनके लिए आप तेजस्वी धन और प्रभूत अन्न प्रदान करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के लिए स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥७ ॥

४३१०. उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।

साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥८ ॥

हे सूर्य पुत्री उषादेवि ! सूर्य एवं अग्नि की शुभ्र, प्रदीप्त रश्मियों के साथ हमारी ओर आगमन करें । हमें गौओं से युक्त अन्न प्रदान करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥८ ॥

४३११. व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।

नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९ ॥

हे सूर्य पुत्री प्रकाशवती उषादेवि ! हमारे कर्म के लिए विलम्ब न करें । जैसे राजा अपने शत्रु और चोर को सन्ताप करते हैं, वैसे सूर्यदेव अपने तेज से आपको सन्तप्त न करें । हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥९ ॥

४३१२. एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।

या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१० ॥

हे उषादेवि ! आप अभिलषित धन और अतिरिक्त धन भी प्रदान करने में समर्थ हैं । आप स्तोताओं का तम

(अन्तर्तम) विनष्ट करने वाली हैं और उनका सन्ताप दूर करने वाली हैं। हे जन्म से शोभावती उषादेवि ! अश्व प्राप्ति के निमित्त स्तोताजन आपको उत्तम स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ८०]

[ऋषि - सत्यश्रवा आत्रेय । देवता - उषा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४३१३. द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१ ॥

दीप्तिमान् रथ पर आरोहित रहने वाली, सर्वव्यापिनी, यज्ञ द्वारा पूजनीय, अरुणिम वर्णयुक्त, दीप्तिमती तथा सूर्यदेव के आगे चलने वाली उषा देवी के प्रति ज्ञानीजन विचारपूर्वक श्रेष्ठ स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥१ ॥

४३१४. एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२ ॥

ये दर्शनीय उषादेवी प्रसुप्तजनों को चैतन्य करती हैं और मार्गों को सुगम बनाती हुई अत्यन्त व्यापक रथों पर आरूढ़ होकर सूर्यदेव के आगे-आगे गमन करती हैं। महती और विश्वव्यापिनी उषादेवी दिन के आरम्भ में प्रकाश विस्तीर्ण करती हैं ॥२ ॥

४३१५. एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३ ॥

ये उषादेवी अरुणाभ वृषभों (किरणों) को नियोजित करने वाली हैं और अक्षय धनों को स्थिर रखती हैं। ये अत्यन्त दीप्तिमती, बहुतों द्वारा स्तुत और सबके द्वारा वरण करने योग्य हैं, जो मार्गों को प्रकाशित करती हुई स्वयं प्रकाशमती हैं ॥३ ॥

४३१६. एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४ ॥

ये उषादेवी रात्रि और दिवस दोनों कालों में ऊर्ध्व और निम्न द्युलोक में गमन करती हुई पूर्व दिशा में प्रकट होती हैं। ये सूर्यदेव के मार्ग का अनुवर्तन करती हैं। ज्ञानवती स्त्री के सदृश ये दिशाओं का विस्मरण नहीं करतीं ॥४ ॥

४३१७. एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५ ॥

स्नान करके ऊपर (जल से बाहर) निकलती हुई शुभ्रवर्णा स्त्री की भाँति ये उषादेवी अपने शरीर को प्रकाशित करती हुई हमारे सम्मुख पूर्व से उदित होती हैं। ये सूर्यपुत्री उषादेवी द्वेषरूपी तमिस्रा को विदीर्ण करती हुई प्रकाश के साथ आगमन करती हैं ॥५ ॥

४३१८. एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६ ॥

पश्चिम की ओर गमन करती ये सूर्य पुत्री उषादेवी कल्याणकारी रूप वाली स्त्री की भाँति अपने रूपों को प्रकट करती हैं। सर्वदा तरुणी ये उषादेवी अपने ज्योतिरूप को पूर्व की भाँति प्रकाशित करती हैं। ये हविदाता यजमान को वरणीय धन प्रदान करती हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८१]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - सविता । छन्द - जगती ।]

४३१९. युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१ ॥

अकेले ही यज्ञ को धारण करने वाले, सभी मार्गों के ज्ञाता सवितादेव महान् स्तुतियों के पात्र हैं । महान् बुद्धिमान् एवं ज्ञानी जन अपने मन एवं बुद्धि को उन प्रेरक सविता के साथ नियोजित करते हैं ॥१ ॥

४३२०. विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२ ॥

वे अत्यन्त मेधावी सवितादेव अपने सम्पूर्ण रूपों को प्रकट करते हैं । वे मनुष्यों और पशुओं के लिए कल्याणकारी हैं । वे सबके द्वारा वरणीय सवितादेव द्युलोक को प्रकाशित करते हैं । उषादेवी के प्रयाण के अनन्तर वे प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

४३२१. यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥३ ॥

अग्नि आदि सम्पूर्ण देवगण, जिन सवितादेव के महिमायुक्त मार्गों का अनुगमन करके ओज (बल) को धारण करते हैं, जिन सवितादेव ने अपनी महत्ता से पृथ्वी आदि लोकों को परिव्याप्त किया, वे देव अत्यन्त शोभायमान हैं ॥३ ॥

४३२२. उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४ ॥

हे सवितादेव ! आप तीनों प्रकाशित लोकों में गमन करते हैं और सूर्य रश्मियों से संयुक्त होते हैं । आप रात्रि के दोनों छोरों को प्रभावित करके परिगमन करते हैं । हे देव ! आप कल्याणकारी कर्मों से संसार के मित्र रूप होते हैं ॥४ ॥

४३२३. उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५ ॥

हे सवितादेव ! आप अकेले ही सम्पूर्ण उत्पन्न जगत् के अधीश्वर हैं । आप अपनी गमन-सामर्थ्य से जगत् के पोषक रूप हैं । आप सम्पूर्ण लोकों में विशिष्टरूप से देदीप्यमान हैं । तेजस्वी अश्वों-पराक्रमों से युक्त श्यावाश्व ऋषि आपके निमित्त स्तोत्रों को निवेदित करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ८२]

[ऋषि - श्यावाश्व आत्रेय । देवता - सविता । छन्द - जगती; १ अनुष्टुप् ।]

४३२४. तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१ ॥

हम सवितादेव के उस प्रसिद्ध और उपभोग योग्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं तथा उन भगदेव के श्रेष्ठ, सर्वधारक, शत्रुविनाशक ऐश्वर्य को भी धारण करें ॥१ ॥

४३२५. अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२ ॥

अपने यश को विस्तृत करने वाले इन सवितादेव के अत्यन्त प्रिय और प्रकाशित ऐश्वर्य को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥२ ॥

४३२६. स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥३ ॥

वे सविता और भगदेव हविदाता यजमान को उत्तम वरणीय रत्नादि प्रदान करते हैं । हम भी उन देवों से उस विलक्षण ऐश्वर्य के भाग की याचना करते हैं ॥३ ॥

४३२७. अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥४ ॥

हे सवितादेव ! आप आज हमें पुत्र-पौत्रों सहित पवित्र ऐश्वर्य प्रदान करें । दुःखदायी स्वप्नों की तरह दरिद्रता को हमसे दूर करें ॥४ ॥

४३२८. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥५ ॥

हे सवितादेव ! आप हमारे सम्पूर्ण दुःखों (पाप मूलक दुर्गुणों) को दूर करें और जो हमारे निमित्त कल्याणकारी हो, उसे हमारे अभिमुख प्रेरित करें ॥५ ॥

४३२९. अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥६ ॥

हम सवितादेव की आज्ञा में रहकर माता अदिति (अखण्ड- भूमि) के लिए निरपराधी हों । हम सम्पूर्ण वाञ्छित धनों को धारण करें ॥६ ॥

४३३०. आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥७ ॥

आज सबके देवस्वरूप, सत्यव्रतियों के पालक, सत्यव्रतों के रक्षक सवितादेव को यज्ञ में सूक्तों के माध्यम से बुलाते हैं ॥७ ॥

४३३१. य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥८ ॥

जो सवितादेव उत्तम कर्म करते हुए दिन और रात्रि के सन्धि भाग में गमन करते हैं, हम उत्तम स्तोत्रों से उनका वरण करते हैं ॥८ ॥

४३३२. य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥९ ॥

जो सवितादेव इन सम्पूर्ण प्राणियों को उत्तम कर्मों में प्रेरित करते हैं और उन्हें अपना यश सुनाते हैं (हम उन्हें आवाहित करते हैं) ॥९ ॥

[सूक्त - ८३]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - पर्जन्य । छन्द - त्रिष्टुप् ; २-४ जगती; ९ अनुष्टुप् ।]

४३३३. अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१ ॥

हे यजमानो ! उन बलसम्पन्न पर्जन्यदेव के सम्मुख उनकी स्तुति करें । हव्यादि और उत्तम वाणियों द्वारा उनका स्तवन करें । ये देव जलवर्षक, दानशील एवं गर्जनकारी हैं, जो ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करते हैं ॥१॥

४३३४. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२ ॥

ये पर्जन्यदेव (अनुपयुक्त) वृक्षों का विनाश करते हैं । राक्षसों का हनन करते हैं । अपने भयंकर आघातों से सम्पूर्ण लोकों को भयाक्रान्त कर देते हैं । गर्जना करते हुए ये पापियों को विनष्ट करते हैं और जल वृष्टि करके निरपराधियों की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

४३३५. रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।

दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥३ ॥

जिस प्रकार रथी अपने घोड़ों को चाबुक से उत्तेजित करता है, उसी प्रकार पर्जन्य, गर्जनकारी, शब्दों से मेघों को प्रेरित करते हैं ।जब मेघ जलराशिसे पूर्ण होते हैं, तब सिंह के सदृश गर्जना करते हैं, जो दूर तक सुनाई देता है॥३ ॥

४३३६. प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।

इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४ ॥

जब पर्जन्यदेव जलराशि से युक्त होकर पृथ्वी की ओर अवतीर्ण होते हैं, तब वायु विशेष प्रवाहयुक्त होती है, विद्युत् चमकती है और ओषधिरूप वनस्पतियाँ वृद्धि पाती हैं, आकाश स्रवित होता है तथा यह पृथ्वी सम्पूर्ण जगत् के हितार्थ पुष्ट होती है ॥४ ॥

४३३७. यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।

यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५ ॥

हे पर्जन्यदेव !आपके कर्मों के कारण पृथ्वी उत्पादनशील होती है तथा सभी प्राणी पोषण प्राप्त करते हैं ।आपके कर्मों से ओषधिरूप वनस्पतियाँ नाना रूप धारण करती हैं । हे देव ! आप हमें महान् सुख प्रदान करें ॥५ ॥

४३३८. दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप हमारे निमित्त वृष्टि करें । वर्षणशील मेघ की जलधाराएँ हमें पोषण प्रदान करें । हे पर्जन्यदेव ! आप गर्जनशील मेघों के साथ जल का सिंचन करते हुए हमारी ओर आगमन करें । आप प्राणवर्धक रूप में हमारे पिता स्वरूप पोषणकर्त्ता हैं ॥६ ॥

४३३९. अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।

दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७ ॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट की गर्जना से युक्त होकर ओषधिरूप वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करें । उदक धारक रथ से गमन करें । उदकपूर्ण (जलपूर्ण) मेघों के मुख को नीचे करें और इसे खाली करें; ताकि उच्च और निम्न प्रदेश समतल हो सकें ॥७ ॥

[जब मेघ गरजते हैं, तब विद्युत् के प्रभाव से नाइट्रोजन के उर्वर यौगिक (कम्पाउण्ड) बनते हैं । उनसे वनस्पतियों को शक्ति मिलती है ।]

४३४०. महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।

घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८ ॥

हे पर्जन्यदेव ! अपने जलरूपी महान् कोश को विमुक्त करें और उसे नीचे बहायें, जिससे ये जल से परिपूर्ण नदियाँ अबाधित होकर पूर्व की ओर प्रवाहित हों । आप जल-राशि से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करें; ताकि हमारी गौओं को उत्तम पेय जल प्राप्त हो ॥८ ॥

४३४१. यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९ ॥

हे पर्जन्यदेव ! गड़गड़ाहट युक्त गर्जना करते हुए जब आप पापियों (मेघों) को विदीर्ण करते हैं; तब सम्पूर्ण जगत् और इसमें अधिष्ठित प्राणी अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं ॥९ ॥

४३४२. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१० ॥

हे पर्जन्यदेव ! आपने बहुत वृष्टि की है । अभी वृष्टि को थाम लें । आपने मरुभूमि को भी जल से पूर्ण कर दिया है । आपने सुखकर उपभोग के लिए ओषधिरूप वनस्पतियाँ उत्पन्न की हैं । आपने प्रजाओं द्वारा उत्तम स्तुतियाँ भी प्राप्त की हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ८४]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - पृथिवी । **छन्द** - अनुष्टुप् ।]

४३४३. बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१ ॥

हे प्रकृष्ट गुणवती और महिमावती पृथिवीदेवि ! आप भूमिचर प्राणियों को अपनी सामर्थ्य से पुष्ट करती हैं और साथ ही अत्यन्त विस्तृत पर्वत-समूहों को भी धारण करती हैं ॥१ ॥

४३४४. स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२ ॥

हे विविध- विध विचरणशीला और शुभ्र वर्ण वाली पृथिवीदेवि ! आप जब अश्वों के समान भयंकर शब्द करने वाले मेघों को वर्षण के निमित्त प्रेरित करती हैं, तब स्तोतागण आपके प्रति उत्तम स्तोत्रों से स्तुतियाँ निवेदित करते हैं ॥२ ॥

४३४५. दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥३ ॥

हे पृथिवी माता ! जब अन्तरिक्ष में स्थित मेघों से विद्युत् द्वारा वृष्टि होती है, तब आप अपनी दृढ़ -सामर्थ्य से वनस्पतियों को धारण करती हैं ॥३ ॥

[सूक्त - ८५]

[**ऋषि** - अत्रि भौम । **देवता** - वरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४३४६. प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥१ ॥

हे अत्रि वंशजो ! आप विशिष्ट प्रकाशमान, प्रसिद्ध वरुणदेव के लिए अत्यन्त विस्तृत, गंभीर और प्रीतिकर स्तुतियाँ करें । जैसे व्याध- पशुओं के चर्म को विस्तृत करता है, उसी तरह इन देव ने सूर्यदेव के परिभ्रमण के लिए आकाश को विस्तृत किया है ॥१ ॥

४३४७. वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्त्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥२ ॥

वरुणदेव ने वन में वृक्षों के ऊपरी भाग पर (मूर्त पदार्थों के अभाव में) अन्तरिक्ष को विस्तृत किया । अश्वों या मनुष्यों में वीर्य-पराक्रम की वृद्धि की । गौओं में दुग्ध को प्रतिष्ठित किया । हृदय में संकल्पशक्ति युक्त मन को, प्राणियों में (पाचन के लिए) जठराग्नि को, द्युलोक में सूर्यदेव को तथा पर्वत पर सोम (आदि ओषधियों) को उत्पन्न किया ॥२ ॥

४३४८. नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३ ॥

वरुणदेव ने द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों के हितार्थ मेघों के मुख को नीचे करके विमुक्त किया । जैसे वृष्टि से यवादि अन्न पुष्ट होते हैं, वैसे उन देव ने वृष्टि से भूमि को उर्वर बनाया है ॥३ ॥

४३४९. उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४ ॥

वरुणदेव जब वृष्टिरूप जल की इच्छा करते हैं; तब वे पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश में जल- सिंचन कर देते हैं, अनन्तर पर्वत शिखर मेघों से आच्छादित होते हैं और मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से उत्साहित होकर मेघों को शिथिल करते हैं ॥४ ॥

४३५०. इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥५ ॥

जिन वरुणदेव ने मान-दण्ड के समान सूर्यदेव के द्वारा अन्तरिक्ष-पृथिवी को प्रभावित किया, उन प्राण-प्रदाता और प्रसिद्ध वरुणदेव की इस महती क्षमता की हम प्रशंसा करते हैं ॥५ ॥

४३५१. इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥६ ॥

जिस प्रकार जल-सिंचन करने वाली प्रवहमान नदियाँ अपने जल से एक समुद्र को भी पूर्ण नहीं कर पातीं, उसी प्रकार उन ज्ञान-सम्पन्न वरुणदेव की इस महती क्षमता का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता है ॥६ ॥

४३५२. अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७ ॥

हे सर्वदा वरणीय वरुणदेव ! यदि हमने कभी अपने दातापुरुष, मित्र, सखा, भ्राता, सर्वदा समीपस्थ पड़ोसी अथवा मूक के प्रति कोई अपराध किया हो, तो उस अपराध से हमें विमुक्त करें ॥७ ॥

४३५३. कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८ ॥

हे वरुणदेव ! द्यूतक्रीड़ा में (जुआ खेलने में) यदि हमने कोई प्रवंचना की हो अथवा जानकर या अज्ञानतावश अपराध किया हो; तो हे वरुणदेव ! बन्धनों को शिथिल करने के समान हमें उन सम्पूर्ण अपराधों से विमुक्त करें; ताकि हम आपके प्रिय-पात्र हों ॥८ ॥

[सूक्त - ८६]

[ऋषि - अत्रि भौम । देवता - इन्द्राग्नी । छन्द - अनुष्टुप् ; ६ विराट्पूर्वा ।]

४३५४. **इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।**

दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥१ ॥

हे इन्द्राग्नि देवो ! आप दोनों युद्धों में जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, वह मनुष्य वेदों की तीनों वाणियों का मर्म समझ लेता है और सुदृढ़ तथा दीप्तिमान् होकर शत्रु सेना को छिन्न-विच्छिन्न कर देता है ॥१ ॥

४३५५. **या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।**

या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥२ ॥

जो युद्धों में अपराजेय हैं, जो यज्ञों में अत्यन्त पूज्य हैं, जो पंचजनों द्वारा स्तुत्य हैं, उन इन्द्राग्नि देवों का हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

४३५६. **तयोरिदमवच्छवस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।**

प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥३ ॥

इन इन्द्राग्नि देवों का बल शत्रु संहारक है । वे देवगण स्तुतियों को प्राप्त करने, शत्रुओं का संहार करने के निमित्त द्रुतगति से रथ में गमन करते हैं । वे ऐश्वर्यवान् इन्द्राग्नि, अपने दोनों हाथों में तीक्ष्ण वज्र धारण करते हैं ॥३ ॥

४३५७. **ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।**

पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४ ॥

वेगवान् धनों के अधिपति, सर्वज्ञाता, अतिशय पूजनीय हे इन्द्राग्नि देवो ! हम युद्ध में रथों को प्रेरित करने के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

४३५८. **ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।**

अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥५ ॥

मनुष्यों के लिए प्रवर्धित हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों अहिंसनीय हैं । हम अश्वों की प्राप्ति के लिए आप दोनों की स्तुति करते हैं और सोमरस की भाँति आगे स्थापित करते हैं ॥५ ॥

४३५९. **एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।**

ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६ ॥

हमने बलकारक, घृत के समान तेजस्वी, पाषाण द्वारा कूटकर निष्पन्न सोम से युक्त हवि को इन्द्र और अग्निदेवों के लिए निवेदित किया है । वे देवगण हम स्तोताओं को प्रभूत धन युक्त समृद्धि और विपुल अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ८७]

[ऋषि - एवयामरुत् आत्रेय । देवता - मरुद्गण । छन्द - अति जगती ।]

४३६०. **प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।**

प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१ ॥

'एवया' नामक ऋषि द्वारा की गई स्तुतियाँ महान् इन्द्रदेव आपको तथा मरुत् सहित विष्णुदेव को प्राप्त हों। उत्तम आभूषणों से अलंकृत, कल्याणकारी याज्ञिक को उन्नतिशील मरुतों का बल प्राप्त हो ॥१ ॥

[एवया मरुत् का शाब्दिक अर्थ गतिशील या तीव्र तेज है। यह विष्णु अथवा मरुत् के वैशिष्ट्य ज्ञापन हेतु भी प्रयुक्त होता रहा है। अन्यत्र इसका अर्थ मरुतों द्वारा संरक्षित भी किया गया है।]

४३६१. प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२ ॥

जो मरुद्‌गण अपनी महत्ता से प्रकट हुए और अपनी विद्या से विख्यात हुए, उन मरुद्‌गणों का वर्णन एवया-मरुत् ऋषि करते हैं। हे मरुतो ! आपका बल अनेक विशिष्ट कर्तृत्वों, दान आदि से युक्त होने के कारण महान् है। आप शत्रु द्वारा अपराभूत तथा पर्वत के सदृश अटल हैं ॥२ ॥

४३६२. प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्पन्द्रासो धुनीनाम् ॥३ ॥

अत्यन्त दीप्तिमान् और प्रभावान् ये मरुद्‌गण विस्तृत आकाश से गमन करते हुए भी प्रजाओं के आमन्त्रण को सुनें। एवयामरुत् ऋषि उन मरुतों का वर्णन अपनी वाणियों से करते हैं। इन्हें कोई अपने स्थान से विचलित नहीं कर सकता। ये अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशमान हैं और घोर शब्दवान् भयंकर शत्रुओं को भी स्पन्दित कर डालते हैं ॥३ ॥

४३६३. स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत्।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥४ ॥

इन मरुद्‌गणों के स्वेच्छा से विचरणशील अश्व, जब इनके निवास के समीप रथ में नियोजित होते हैं, तब एवयामरुत् उनसे अपेक्षा रखते हैं। वे मरुत् अपने महान् संघ के साथ परस्पर स्पर्धारहित भाव से अपने समान निवास स्थान से बाहर आते हैं। वे विलक्षण तेजों से युक्त और सुखवर्द्धक हैं ॥४ ॥

४३६४. स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत्।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपका वह बल-सम्पन्न जलवर्षक, तेजस्वी, गमनशील, प्रभावकारी शब्द एवयामरुत् ऋषि को भयभीत न करे, जिस शब्द से आप शत्रुओं को पराभूत कर, वश में कर लेते हैं। हे मरुतो ! आप स्वयं दीप्तिमान्, स्थिर रश्मियों वाले, स्वर्णमय अलंकृत, उत्तम आयुधों से सज्जित और अन्न प्रदाता हैं ॥५ ॥

४३६५. अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत्।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥६ ॥

हे प्रवर्द्धमान शक्तिशाली मरुतो ! आपकी महिमा निश्चय ही अपार है। आपका तेजस्वी बल एवयामरुत् ऋषि की रक्षा करे। शत्रुओं के आक्रमणों में आप स्थिर स्थान में अविचलित हुए दीखते हैं। आप अग्निदेव के सदृश तेजस्वी हैं। हमें अपने निंदकों से रक्षित करें ॥६ ॥

४३६६. ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत्।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥७ ॥

हे उत्तम पूजनीय, अग्निवत् अतिशय दीप्तिमान्, रुद्रपुत्र मरुद्‌गणो ! आप एवयामरुत् ऋषि को संरक्षित

करें । आप अपने अत्यन्त दीर्घ और विस्तीर्ण निवास स्थान के कारण विख्यात हुए हैं । आप पापरहित हैं । गमन करते हुए महान् तेजों के साथ प्रकाशित होते हैं ॥७ ॥

४३६७. अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।

विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८ ॥

हे द्वेषरहित मरुद्‌गणो ! आपके निमित्त काव्य स्तोत्रों के गान के समय आप यहाँ आगमन करें । स्तुतिकर्त्ता एवयामरुत् ऋषि के स्तोत्रों का श्रवण करें । हे उत्कंठित मन वाले मरुतो ! आप रथ से योजित होने वाले अश्वों के समान व्यापक विष्णुदेव की शक्तियों से प्रयोजित होकर हमारे स्तोत्रों से प्रशंसित हों । हे मरुतो ! अपने पराक्रमों से हमारे गुप्त शत्रुओं को दूर हटायें ॥८ ॥

४३६८. गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।

ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९ ॥

हे यजनीय मरुद्‌गणो ! हमारे यज्ञ की सिद्धि हेतु यज्ञ में आगमन करें । अरक्षित एवयामरुत् ऋषि की प्रार्थना सुनकर उन्हें संरक्षित करें । हमारे रक्षण कार्य में आप पर्वत की भाँति अडिग और महान् हैं । हे प्रकृष्ट ज्ञान-सम्पन्न मरुतो ! आप हमारे निन्दकों के मध्य अजेय होकर उनके शासक बनें ॥९ ॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

॥ अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - अनुष्टुप्; ११ शक्वरी ।]

४३६९. त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवताओं में श्रेष्ठ हैं, उन्हें आप अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं । इस जगत् में आप ही दर्शन के योग्य हैं । होता द्वारा किये जा रहे इस बुद्धिपूर्ण कार्य (यज्ञ कार्य) को सम्पन्न करने में आप ही सहयोगी हैं । हे बलवान् देव ! हमें अपरिमित बल प्रदान करें, जिससे हम बलिष्ठ शत्रुओं को जीतने में समर्थ हों ॥१ ॥

४३७०. अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप यजन करने योग्य, हवि ग्रहण करने वाले एवं स्तुति करने योग्य हैं । देवों में प्रथम पूज्य हे अग्निदेव ! दिव्य धन की इच्छा से यज्ञानुष्ठान करने वाले ऋत्विग्गण आपको ही सर्वप्रथम आहूत करते हैं । आप यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित हों ॥२ ॥

४३७१. वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यै३ स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३ ॥

तेजस्वी, दर्शनीय हे अग्निदेव ! आप सर्वदा ज्योतित रहते एवं आहुतियों को ग्रहण करते हैं । आप वसुओं के मार्ग से गमन करते है । ऐश्वर्य के इच्छुक साधक ही आपका अनुगमन करते हैं ॥३ ॥

४३७२. पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥४ ॥

यश-वैभव प्राप्ति की कामना करने वाले याजक, स्तोत्रों से अग्निदेव को प्रसन्न करते हुए यज्ञशाला में उनका आवाहन करते हैं । हे अग्निदेव ! वे आपका दर्शन पाकर, आनन्दित होकर, स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं और इच्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

४३७३. त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित करके यजमान आपको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं । अध्वर्युगण भी दोनों (लौकिक एवं दैवी) सम्पदाओं को प्राप्त करने की इच्छा से आपको बढ़ाते (प्रज्वलित करते) हैं । हे दुःखनाशक अग्निदेव ! आप स्तुतियों से प्रसन्न होकर माता एवं पिता की तरह अनुदान एवं संरक्षण प्रदान करें ॥५॥

४३७४. सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥६ ॥

प्रजाजनों के हित में यज्ञ कर्म सम्पन्न करने वाले, दान देने में समर्थ, पूज्य, यजनीय अग्निदेव को हम वेदी पर स्थापित करते हैं । हे अग्निदेव ! आप घर को देदीप्यमान करने वाले हैं । हम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हुए वन्दना करते हैं ॥६ ॥

४३७५. तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम सद्बुद्धि सम्पन्न सुख की कामना से आपकी स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आप तेज को धारण करने वाले हैं । आप सूर्यदेव के समान देदीप्यमान होकर हमें दिव्यलोक तक ले चलें ॥७ ॥

४३७६. विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥८ ॥

प्रजापालक, ज्ञानी, शत्रुहन्ता, परम बलशाली, कामनाओं की पूर्ति करने वाले, अन्न दान करने वाले तथा प्रजाजनों के पास जाने वाले हे तेजस्वी अग्निदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं । आप हमें अन्न, धन एवं तेजस्विता प्रदान करें ॥८ ॥

४३७७. सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! याजकगण स्तुति करते हुए आपके निमित्त हवि प्रदान करते हुए यजन करते हैं । वे आपकी कृपा के द्वारा इच्छानुसार धन प्राप्त करें ॥९ ॥

४३७८. अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप महान् हैं । हम आपको नमस्कार करते हैं, आपका स्तवन करते हैं और आपके निमित्त हवि प्रदान करते हैं । यज्ञ स्थल पर अपनी वाणियों तथा स्तोत्रों द्वारा हम आपका पूजन करते हैं । आपकी कृपा से हम सुमति को धारण करें, जिससे हमारी प्रगति हो ॥१० ॥

४३७९. आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१ स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आपने अपनी दीप्ति को द्यावा-पृथिवी में विशेष रूप से विस्तृत किया है । आप तारक हैं, हम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । आप समीपस्थ वेदी पर प्रदीप्त होकर हमारे लिए अन्न और धन के प्रदाता बनें ॥११ ॥

४३८०. नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! हमारा घर पुत्र-पौत्रों और परिजनों से परिपूर्ण रहे । आप ऐश्वर्यवान् से प्राप्त ऐश्वर्य द्वारा हमारे पुत्र-पौत्रों तथा परिजनों का पोषण एवं कल्याण करें तथा हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हम निष्पाप और कल्याण के मार्ग पर चलते हुए यशस्वी बनें ॥१२ ॥

४३८१. पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३ ॥

हे ज्योतिस्वरूप अग्निदेव ! हमें आप अश्व , गौ सहित धन प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप ऐश्वर्यवान् , रमणीय एवं वरणीय हैं । आप प्रचुर धन के स्वामी हैं ॥१३ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - अनुष्टुप् ; ११ - शक्वरी ।]

४३८२. त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे । त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सभी के मित्र हैं, अन्न और तेज के अधिपति हैं । हे अग्निदेव ! आप सर्वद्रष्टा हैं, पोषक पदार्थों से हमें पुष्ट बनाएं ॥१ ॥

४३८३. त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।

त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! हव्य और स्तोत्रों द्वारा याजकगण आपकी ही पूजा करते हैं । कुटिलता रहित, लोकों को तारने वाले, विश्वद्रष्टा (सूर्य) आपको ही प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

४३८४. सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।

यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ के शिरोमणि ध्वज की तरह हैं । मनु पुत्र सुख-समृद्धि की इच्छा से, बिना किसी पारस्परिक द्वेष के, यज्ञशाला में आपका आवाहन करते हैं । आप अपने दिव्य तेज सहित प्रदीप्त होने की कृपा करें ॥३ ॥

४३८५. ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।

ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४ ॥

उदार मन वाले हे अग्निदेव ! जो मनुष्य बुद्धिपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं, वे सम्पन्न बनते हैं । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपके संरक्षण एवं साधनों को प्राप्त कर साधक पापों के समान द्वेष करने वालों को नष्ट करके, उन्नतिशील होता है ॥४ ॥

४३८६. समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।

वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जो याजक समिधा सहित पवित्र आहुतियाँ आपके प्रति निवेदित करता है, वह सुसंतति से भरे-पूरे परिवार में आनन्दपूर्वक रहते हुए शतायु होता है ॥५ ॥

४३८७. त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।

सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥६ ॥

प्रदीप्त होने के पश्चात् अग्नि का धवल धूम्र अंतरिक्ष में फैलकर दृष्टिगोचर होता है । हे पावन अग्निदेव ! स्तुति के प्रभाव से आप प्रकाशित होते हैं ॥६ ॥

४३८८. अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः । रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्तुत्य हैं । आप अतिथि की तरह परम प्रिय हैं । नगरवासी, हितैषी, उपदेशक वृद्ध की तरह आश्रय योग्य हैं एवं पुत्रवत् पालनीय हैं ॥७ ॥

[अग्नि की देखभाल बच्चों की तरह करनी पड़ती है, किन्तु वे परम अनुभवी हितैषी के समान हितकारी हैं, इसलिए उन्हें एक साथ वृद्ध एवं बालक जैसा कहा गया है ।]

४३८९. क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपको अरणिमन्थन क्रिया द्वारा प्राप्त करते हैं । आप वायु के समान सर्वत्रगमनशील हैं । आप अश्वरूप होकर हवि को लक्ष्य तक पहुँचाते हैं । बालवत् पवित्र स्वभाव वाले हे अग्निदेव ! आप हमें अन्न और निवास प्रदान करें ॥८ ॥

४३९०. त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे । धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप कठिन काष्ठों को उसी प्रकार आत्मसात् कर लेते हैं, जैसे अश्व आदि पशु घास का भक्षण कर लेते हैं । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपकी तेजस्वी शिखाएँ वनों (समूहों) को भस्म करने में समर्थ हैं ॥९ ॥

[स्थूल अग्नि काष्ठ समूहों को, ज्ञानाग्नि अज्ञान समूहों को, तप की अग्नि पाप समूहों को नष्ट करने में समर्थ है ।]

४३९१. वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् । समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ करने के इच्छुक याजक के घर होता रूप में प्रवेश करते हैं । हे अग्निदेव ! आप हमारी आहुतियों को ग्रहण करें । आप पालक हैं, हमें समृद्धिशाली बनाएँ ॥१० ॥

४३९२. अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः । वीहि स्वस्तिं
सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११ ॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव ! शांत और विकराल दोनों गुणों वाले आप, द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त हैं । आप हमारी वाणी (स्तुतियों) और आहुतियों को देवताओं तक पहुँचाएँ । हम स्तुतिकर्त्ताओं को सुव्यवस्थित आवास तथा सौभाग्य प्रदान करें । हमें शत्रुओं, संकटों और पापों से बचाएँ । हे अग्निदेव ! आप द्वारा रक्षित हम निर्विघ्न जीवनयापन करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४३९३. अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप उनको दीर्घायुष्य प्रदान करें, जो यज्ञ से उत्पन्न और यज्ञपालक याजक हैं । आप मित्र और वरुण जैसी प्रीति करने वाले हैं । देवत्व प्राप्ति की कामना वाले याजक को, आप अपने तेज के द्वारा पापों से बचाते हैं और उनकी सब प्रकार रक्षा करते हैं ॥१ ॥

४३९४. ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२ ॥

श्रेष्ठ, वैभवशाली अग्निदेव के निमित्त आहुति देने वाले याजक को पुत्रादि प्राप्त होते हैं । वह पापरहित और निरभिमानी होकर श्रेष्ठ जीवनयापन करता है ॥२ ॥

४३९५. सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३ ॥

जिन (अग्निदेव) का दर्शन सूर्यदेव की तरह दोष मुक्त करने वाला है, उनकी प्रज्वलित (प्रखर) धी (मेधा अथवा ऊर्जा) सब ओर (दोषों- पापों के लिए) भयानक होकर फैलती है । रात्रि में शोक (अथवा अंधकार) रोधक गंभीर शब्द करते हुए वे सबको आवास देने वाले अग्निदेव वनों में अथवा कहीं भी शोभा पाते हैं ॥३ ॥

४३९६. तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४ ॥

इन (अग्निदेव) का मार्ग (कार्य करने का ढंग) तीक्ष्ण है और स्वरूप तेजस्वी है । वे कुठार की तरह अपनी जिह्वा (ज्वालाओं) को दारु (कठोर वस्तुओं) पर प्रयुक्त करते हैं । गलाई करने वाले (धातु कर्मी) की तरह (पदार्थों को) गला देती है ॥४ ॥

[वैल्डिंग के समय अग्नि ज्वाला जीभ की तरह निकलकर कठोर पदार्थों को काट डालती है और धमन भट्टियों में धातु आदि को गला देती है । अग्नि के कुछ इसी प्रकार के प्रयोग का संकेत इस ऋचा में भासित होता है ।]

४३९७. स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥५ ॥

बाण चलाने वाला जैसे प्रतिघात करता है, वैसे ही अग्निदेव भी, परशु की तरह तीक्ष्ण ज्वालाओं द्वारा लक्ष्य वेधन करते हैं । तीव्रगामी पक्षी जैसे शीघ्रता से वृक्ष की शाखा पर बैठ जाता है, वैसे ही शीघ्रता से अग्नि भी लकड़ी (समिधा) पर बैठ, लकड़ी को जलाती है और प्रदीप्त होकर रात्रि के अन्धकार का नाश करती है ॥५ ॥

४३९८. स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नृनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नृन् ॥६ ॥

स्तुति करने योग्य अग्निदेव भी सूर्यदेव के समान अपनी ज्वालाओं की दीप्ति फैलाते हैं । मित्रवत् प्रकाश को फैलाते हुए शब्द भी करते हैं । वे अमर अग्निदेव प्रदीप्त ज्वालाओं सहित प्रज्वलित रहें ॥६ ॥

४३९९. दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७ ॥

सूर्य के समान तेजस्वी, बलवान् अग्निदेव, प्रदीप्त होकर ओषधियुक्त काष्ठादि को जलाते समय विशेष शब्द करते हैं । जो धधकते हुए तेज के साथ इधर-उधर तथा ऊर्ध्वगमन करते हैं, वे हमारे शत्रुओं को पराजित करते हुए द्यावा-पृथिवी को धन से समृद्ध करें ॥७ ॥

४४००. धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८ ॥

जो अग्निदेव, हविवाहक एवं रथ-नियोजित अश्व के समान कान्तियुक्त (शक्तियुक्त) हैं, वे स्वयं के तेज से विद्युत् के समान देदीप्यमान होने वाले तथा मरुद्गणों से भी अधिक बलशाली हैं । ऐसे सूर्यदेव के समान कान्ति युक्त अग्निदेव वेग से प्रदीप्त होते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ४]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४४०१. यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवगणों को आहूत करने में समर्थ, बल के पुत्र हैं । इस यज्ञ में अपने समान बलशाली इन्द्रादि देवगणों का हवि द्वारा वैसे ही यजन करें, जैसे कि विज्ञजनों के यज्ञ में करते हैं ॥१ ॥

४४०२. स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥२ ॥

वे अग्निदेव हमें यशस्वी एवं धन-सम्पन्न बनाएँ, जो सूर्यदेव के समान तेजस्वी, प्रकाशक, अमर, बुद्धि से जानने योग्य, अतिथिरूप एवं उषा के समय प्रदीप्त होते हैं ॥२ ॥

४४०३. द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥३ ॥

जो सूर्यदेव के समान उज्ज्वल प्रकाश के विस्तार करने वाले, पावन बनाने वाले, अपने अजर (सदैव प्रखर) प्रकाश के द्वारा समस्त पदार्थों को दृष्टिगोचर करने वाले, शत्रु को पराजित करने वाले एवं शत्रु नगरों को ध्वस्त करने वाले हैं, उन्हीं अग्निदेव के महान् कर्मों का यशोगान स्तोतागण करते हैं ॥३ ॥

४४०४. वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥४ ॥

सर्वप्रेरक हे अग्निदेव ! आप स्तुति करने योग्य हैं । आप याजक द्वारा प्रदत्त आहुतियों से प्रसन्न होकर उन्हें अन्न और आवास प्रदान करते हैं । हे अन्नदाता अग्निदेव ! आप यज्ञ वेदी पर प्रतिष्ठित होकर हमें अन्न प्रदान करें और शत्रुओं का संहार करें ॥४ ॥

४४०५. नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥५ ॥

जो अग्निदेव अपने तमोनाशक तेजस्वी प्रकाश को और प्रखर करते हैं, वे अग्निदेव रात्रि को भी पार करते हैं । वे हवि ग्रहण करने वाले हैं । वायुदेव प्राणरूप हो, जैसे सब पर शासन करते हैं, वैसे ही अग्निदेव सभी पर शासन करें । यज्ञीय अनुशासन को न मानने वालों पर हम विजय प्राप्त करें (अर्थात् प्रेरणा देकर यज्ञीय अनुशासन में चलाएँ) । हे अग्निदेव ! आप तीव्रगामी अश्व के समान आक्रामकों का संहार करें ॥५ ॥

४४०६. आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप द्यावा-पृथिवी में अपनी कान्ति से उसी तरह व्याप्त होते हैं, जिस प्रकार सूर्यदेव अपनी तेजस्वी किरणों से व्याप्त हैं । आकाश मार्गगामी सूर्यदेव जैसे अन्धकार को नष्ट करते हैं; वैसे ही तेजस्वी अद्भुत अग्निदेव अन्धकार को दूर करते हैं ॥६ ॥

४४०७. त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७ ॥

हे आनन्ददायक, पूजनीय अग्निदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं । आप हमारे श्रेष्ठ स्तोत्रों को सुनें । नेतृत्व करने में समर्थ आपको (याजक) हव्य द्वारा वायु एवं इन्द्रदेवों की भाँति ही तुष्ट करते हैं ॥७ ॥

४४०८. नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हम आपकी कृपा से अहिंसापूर्वक उत्तम मार्गों से सुख एवं धन-सम्पदा प्राप्त करें । हमें पाप कर्मों से बचाएं । आप विज्ञजनों को जो सुख देते हैं, वही सुख हम स्तोताओं को प्रदान करें । हम सौ वर्षों तक सुसन्तति सहित आनन्दपूर्वक रहें ॥८ ॥

[सूक्त - ५]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४४०९. हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम् ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप बल के पुत्र, द्रोह शून्य, चिरयुवा, मेधावी एवं स्तुति करने योग्य हैं । ऐसे गुण-सम्पन्न अग्निदेव का स्तोत्रों द्वारा हम आवाहन करते हैं । वे अग्निदेव स्तुति करने वाले मनु पुत्रों को इच्छित धन और यश प्रदान करते हैं ॥१ ॥

४४१०. त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप बहुत सी ज्वालाओं वाले और देवताओं को आहूत करने में समर्थ हैं । यज्ञकर्ता यजमान रात और दिन आपके लिए ही हविष्यान्न प्रदान करते रहते हैं । जिस तरह पृथ्वी पर सभी प्राणी स्थित हैं, उसी तरह अग्निदेव समस्त धन-ऐश्वर्य धारण करते हैं ॥२ ॥

४४११. त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से श्रेष्ठ इच्छाओं की पूर्ति करते हैं । आप उत्तम सम्पत्तिवानों में प्रमुख हैं । हे ज्ञान स्वरूप देव ! आप अपने याजकों को सदैव ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३ ॥

४४१२. यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन दोनों प्रकार के शत्रुओं का संहार करें, जो छिपकर अथवा अन्दर प्रविष्ट होकर हमारा नाश करना चाहते हैं । आपका तेज चिरयुवा एवं पर्जन्य का कारण रूप है ॥४ ॥

४४१३. यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! जो याजक हव्य पदार्थों द्वारा यज्ञ करके आपकी सेवा करता है एवं स्तोत्रों से स्तवन करता है, वह यजमान श्रेष्ठ ज्ञान, अन्न एवं धन प्राप्त कर मनु पुत्रों में सुशोभित होता है ॥५ ॥

४४१४. स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान् ।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रकाशमान तेज से युक्त एवं शक्तिशाली हैं । अतएव अपनी उस शक्ति के द्वारा हमारे शत्रुओं का नाश करें । श्रेष्ठ वाणियों द्वारा की जा रही स्तुति को स्वीकार करें । आप कृपा करके, उस कार्य को पूर्ण करें, जिसके निमित्त आप नियुक्त किये गये हैं ॥६ ॥

४४१५. अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी कृपा से हमारी कामनाएँ पूर्ण हों । ऐश्वर्यों के स्वामी हे अग्निदेव ! हम सुसंतति से युक्त एवं ऐश्वर्यवान् हों । हे अन्नदाता ! हमें अन्न प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप अजर हैं, अपने तेजस्वी अमर यश से हमें यशस्वी बनायें ॥७ ॥

[सूक्त - ६]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४४१६. प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥१ ॥

सुरक्षा की कामना करने वाले याजक, यज्ञीय जीवनयापन करते हुए, स्तुति के योग्य एवं बल-पुत्र अग्निदेव के निकट जाते हैं । वे अग्निदेव, कृष्ण (धूम्र) मार्ग वाले, तेजस्वी, वनों को भस्म करने में समर्थ तथा दिव्य होता हैं ॥१ ॥

४४१७. स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावक : पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥२ ॥

वे अग्निदेव, श्वेत (उज्ज्वल) वर्ण वाले, अनेक किरणों वाले तेजस्वी, प्रकाश फैलाने वाले तथा, चिरयुवा हैं । बहुत शब्द करते हुए वे पवित्र अग्निदेव बड़ी समिधाओं का भक्षण करते हुए गमन करते हैं ॥२ ॥

४४१८. वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालाएँ वायु से और अधिक प्रखर होकर काष्ठों को जलाती हैं । वे वनों को भी भस्म करने में समर्थ होती हैं । प्रज्वलित अग्नि शिखाएँ गति करती हुई सर्वत्र व्याप्त होती हैं ॥३ ॥

४४१९. ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालाएँ छोड़े गये अश्वों जैसी सर्वत्र गति करती हुई पृथ्वी पर क्रीड़ा करती हैं । वे वनों को भी जलाने में समर्थ हैं ॥४ ॥

४४२०. अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥५ ॥

बलशाली अग्निदेव की लपलपाती अग्नि शिखाएँ ऐसे प्रतीत होती हैं , जैसे कि इन्द्रदेव अपने वज्र को बार-बार उठा रहे हों । शूरवीर के द्वारा फेंके गये पाश के समान निर्बाध गति करती हुई अग्नि की ज्वालाएँ वनों को जला डालती हैं ॥५ ॥

४४२१. आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने प्रकाश की प्रेरक किरणों द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को आच्छादित करें और हमसे (अर्थात् यज्ञकर्ता देव वृत्तिवालों से) द्वेष करने वाले शत्रुओं को अपनी शक्ति से नष्ट करें ॥६ ॥

४४२२. **स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्।**
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! हम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । आप अद्‌भुत रूप वाले, यशदाता तथा अन्न को देने वाले हैं । आप हमें पुत्र -पौत्रादि एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

[सूक्त - ७]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - वैश्वानर अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्; ६-७ जगती ।]

४४२३. **मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम्।**
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१ ॥

सर्वोपरि द्युलोकवासी, भूलोक के स्वामी, वैश्वानर अग्निदेव सभी प्राणियों में स्थित हैं । वे ज्ञानी अतिथि तुल्य एवं पूज्य देवों के मुख रूप अग्निदेव, देवों द्वारा प्रकट किये गये हैं ॥१ ॥

४४२४. **नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त।**
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥२ ॥

यज्ञ के केन्द्रस्थल, धन के भण्डार, महान् आहुतियों से युक्त, समस्त विश्व के नेता, अहिंसक यज्ञ के संचालक, यज्ञ की पताकारूपी अग्नि को याज्ञिकों ने मन्थन द्वारा उत्पन्न किया । उसकी हम सभी वन्दना करते हैं ॥२ ॥

४४२५. **त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः।**
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्त्स्पृहयाय्याणि ॥३ ॥

हे तेजस्वी वैश्वानर अग्निदेव ! आप हमें पर्याप्त धन दें । हे देव ! हविष्यान्न से यजन करने वाले को आप दिव्य ज्ञान देते हैं और योद्धा आपकी कृपा से ही प्राप्त सामर्थ्य द्वारा शत्रुओं को पराजित करते हैं ॥३ ॥

४४२६. **त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते।**
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥४ ॥

हे अमृतस्वरूप अग्निदेव ! समस्त देवमानव उत्पन्न होते हुए आपको, बालक के समान आदरणीय मानते हैं । हे विश्व के नायक ! जब द्युलोक और भूलोक के मध्य आप दीप्तिमान् हुए, तब यजमानों ने आपके द्वारा सम्पादित यज्ञ से देवत्व (अमरत्व) को प्राप्त किया ॥४ ॥

४४२७. **वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष।**
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५ ॥

हे वैश्वानर (विश्व के नेता) अग्निदेव ! आपने जब पितरों (द्यावा-पृथिवी अथवा दो अरणियों) के मध्य जन्म लिया, तब यज्ञकर्म में प्रतिष्ठित होकर दिन के केतु (सूर्य अथवा ज्वालाओं) को प्राप्त किया । आपके इन महान् कर्मों में कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥५ ॥

[द्यावा-पृथिवी के बीच प्रकृति ने अग्नि का यज्ञीय प्रयोग किया तो, सूर्य की सृष्टि हुई । अरणियों से यज्ञीय प्रयोग द्वारा यज्ञकुण्ड की ज्वालाएँ प्रकट होती हैं । ऋषि की दृष्टि में दोनों के प्रयोग स्पष्ट रूप से आते हैं ।]

४४२८. **वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना।**
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६ ॥

सर्वहितकारी अथवा प्रकाशक वैश्वानर के अमृत केतु से द्युलोक के शिखर प्रकाशित होते हैं । उसके मूर्धा भाग से ही शाखाओं की भाँति सप्त धाराएँ प्रवाहित होती हैं ॥६ ॥

[वैश्वानर का अर्थ होता है विश्व का नेतृत्व-संचालन करने वाले । प्राणियों के शरीर में अग्निदेव वैश्वानर रूप में रहते हैं, यह सर्वविदित है । उनके तेज से ही प्राणियों में सप्तधाराओं के रूप में सप्तधातुओं का प्रवाह बनता है । विराट् यज्ञ पुरुष के मूर्धा भाग से सप्तलोकों को पोषण देने वाली सप्तधाराएँ प्रवाहित होती हैं ।]

४४२९. वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७ ॥

श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादक ये अग्निदेव समस्त भुवनों के निर्माता हैं । द्युलोक से भी परे नक्षत्रों को भी उन्होंने ही प्रकाशित किया है । समस्त भुवनों के विस्तारकर्त्ता, अजेय और अमृत के संरक्षक ये अग्निदेव ही हैं ॥७ ॥

[सूक्त - ८]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - वैश्वानर अग्नि । छन्द - जगती ; ७ त्रिष्टुप् ।]

४४३०. पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥१ ॥

दीप्तिमान् , तेजस्वी, सर्वव्यापी अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं । याज्ञिक कृत्यों में अग्नि के लिए बोले जाने वाले ये पवित्र और सुन्दर स्तोत्र, सभी होताओं के हितकारक अग्निदेव के समीप उसी प्रकार जाते हैं , जैसे यज्ञ के समीप सोम पहुँचता है ॥१ ॥

४४३१. स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२ ॥

वे सर्वव्यापी, जगत्-हितकारी, व्रत-पालक अग्निदेव दिव्य आकाश में प्रकाशित होकर दैवी और लौकिक दोनों प्रकार के सत्कर्मों (यज्ञ कर्मों) के रक्षक एवं पालक हैं । अन्तरिक्ष के पदार्थों को बनाने वाले ये देव ही हैं । वे अपनी महिमा से स्वर्ग का स्पर्श करते हैं ॥२ ॥

४४३२. व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३ ॥

इन अद्भुत मित्ररूप वैश्वानरदेव ने द्युलोक एवं पृथ्वी को यथा स्थान स्थापित किया तथा अपने तेज से अन्धकार को नष्ट किया । उन्होंने पृथ्वी की त्वचा के रूप में अन्तरिक्ष को फैलाया । उन वैश्वानरदेव ने ही विश्व के समस्त बलों (अथवा वर्षण क्षमताओं) को धारण कर रखा है ॥३ ॥

[त्वचा के माध्यम से शरीर पूरी तरह सुरक्षित रहता है । अन्दर के विकार बाहर निकल जाते हैं, किन्तु बाहर के विकार अन्दर नहीं आने पाते । वायु-प्रकाश, ताप आदि के रूप में उपयोगी प्रवाह अन्दर प्रवेश करते रहते हैं । त्वचा कहीं कट जाए, तो जरा से विकार से इन्फैक्सन- टिटनेस जैसे संकट पैदा हो सकते हैं । इसी प्रकार पृथ्वी की रक्षा के लिए अन्तरिक्ष में त्वचारूप अयन मण्डल (आयनोस्फियर) वैश्वानर ने स्थापित किया है ।]

४४३३. अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४ ॥

दूत के रूप में मातरिश्वा (वायु) दूरस्थ आदित्य मण्डल से वैश्वानर अग्निदेव को इस लोक में ले आये । महान् कर्मवाले मरुद्गणों ने उन्हें अन्तरिक्ष में जल के बीच धारण किया । विज्ञमनुष्यों ने उन श्रेष्ठ स्वामी की स्तुति की ॥४ ॥

४४३४. युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन्हें यशस्वी सन्तान एवं धन-ऐश्वर्य प्रदान करें, जो यज्ञ करते समय नवीन स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । हे अजर (सदैव-प्रखर) तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमारे शत्रु को उसी प्रकार नष्ट करें, जैसे वज्र वृक्ष को नष्ट कर देता है ॥५ ॥

४४३५. अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६ ॥

हे अग्निदेव !आप हविष्यान्न एवं धन-ऐश्वर्य से समृद्ध जनों में कभी न झुकने वाला, चिर-युवा श्रेष्ठ बल, वीर्ययुक्त क्षात्रबल स्थापित करें । हे वैश्वानर अग्निदेव ! आपके संरक्षण में हम हजार गुना अधिक सामर्थ्य- ऐश्वर्य आदि प्राप्त करें ॥६ ॥

४४३६. अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७ ॥

हे त्रिलोक में स्थित अग्निदेव ! आप अविनाशी हैं । हे वैश्वानर अग्निदेव ! आप स्तोताओं और याजकों की, अपने संरक्षक बल द्वारा रक्षा करें और कृपा कर हमारे दुःखों को दूर करें ॥७ ॥

[सूक्त - ९]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - वैश्वानर अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४४३७. अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१ ॥

कृष्ण वर्ण रात्रि एवं शुक्ल वर्ण दिवस अपने वर्णों से संसार को नियमित रूप से रंगते रहते हैं । हे वैश्वानर अग्निदेव ! आप तेजस्वी स्वामी के तुल्य प्रकट होकर अन्धकार को नष्ट करते हैं ॥१ ॥

४४३८. नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२ ॥

हम सीधे अथवा तिरछे (तिर्यक) तन्तुओं (ताने-बाने) को नहीं जानते हैं । सतत प्रयत्नशीलों द्वारा बुने गए वस्त्रों के सम्बन्ध में भी अज्ञानी हैं । इस लोक में किसका पुत्र श्रेष्ठ होकर, अपने पिता से मिलकर इस अव्यक्त (विश्व एवं जीवन के ताने-बाने) के सम्बन्ध में सुनिश्चित ढंग से कह सकता है ? ॥२ ॥

[सीधे एवं तिरछे से जीवन के लिए प्राप्त प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रवाहों की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है ।]

४४३९. स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥३ ॥

वे वैश्वानर अग्निदेव सीधा (ताना) और तिरछा (बाना) दोनों को जानते हैं । ऋतु के अनुसार कर्मों का उपदेश वही करते हैं । जो अग्निदेव अमरता के रक्षक होकर भूलोक में विचरण करते हैं, वे ही दूर आकाश में रहकर आदित्यरूप से सबके द्रष्टा हैं ॥३ ॥

[यहाँ स्पष्ट कर दिया गया है कि वैश्वानर केवल शरीरों तक ही सीमित नहीं है । वह भिन्न रूप में पृथ्वी से द्युलोक तक ऋतु-चक्र एवं जीवन के ताने-बाने बुनते रहते हैं ।]

४४४०. अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु ।

अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः ॥४ ॥

ये वैश्वानर अग्निदेव ही प्रथम होता हैं । हे मनु पुत्रो ! इन्हें भली-भाँति जानो । वे अग्निदेव अविनाशी, स्थिर, सर्वत्र व्याप्त एवं शरीर से नित्य बढ़ने वाले हैं । वे ही मरणधर्मा प्राणियों के बीच अमर-ज्योति स्वरूप हैं ॥४ ॥

४४४१. ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः ।

विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥५ ॥

स्थिर रहते हुए भी मन की अपेक्षा तीव्रगामी वैश्वानर अग्निदेव, समस्त प्राणियों में आनन्ददायक मार्गों को दिखाने के निमित्त निवास करते हैं । समस्त देवगण, एक मन एवं समान प्रज्ञा वाले होकर, श्रेष्ठ कर्म करने वाले वैश्वानरदेव के सम्मुख आते हैं ॥५ ॥

४४४२. वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वी३दं ज्योतिर्हृदय आहितं यत् ।

वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥६ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! हमारे कान आपके गुणों को सुनने के लिए एवं हमारे नेत्र आपके दिव्य दर्शन के निमित्त लालायित हैं । अन्तः स्थित ज्योति, बुद्धि आपके स्वरूप को जानने की कामना करती है । दूरस्थ ज्योति का विचार करने वाला यह मन इधर-उधर फिरता है । हम और अधिक क्या सोचें और क्या कहें ? ॥६ ॥

४४४३. विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम् ।

वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥७ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! अन्धकार में (ज्योति की तरह) निवास करने वाले आपको समस्त देवगण प्रणाम करते हैं । अन्धकार से डरे हुए हम सबकी रक्षा ये अमर वैश्वानर अग्निदेव करें ॥७ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ७- द्विपदा विराट् ।]

४४४४. पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।

पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१ ॥

हे विद्वजनो ! आप लोग इस यज्ञ को निर्दोष एवं निर्विघ्न सम्पन्न करने के लिए स्तोत्रों का गान करते हुए कल्याणकारी अग्निदेव को अपने सम्मुख स्थापित करें । वे देदीप्यमान अग्निदेव हमारे यज्ञों को सफल बनाते हैं ॥१ ॥

४४४५. तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।

स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२ ॥

अनेक देदीप्यमान ज्वालाओं वाले हे अग्निदेव ! आप देवगणों का आवाहन करने वाले हैं । हे अग्निदेव ! आप अन्य अग्नियों के सहित प्रज्वलित होकर, सुखकर, पवित्र एवं घी की भाँति बल बढ़ाने में समर्थ, परम श्रेष्ठ स्तोत्रोंको सुनें । इन स्तोत्रों का बुद्धिमान् स्तोताओं द्वारा आत्मीयतापूर्वक उच्चारण किया जाता है ॥२ ॥

४४४६. पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।

चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३ ॥

अग्निदेव के निमित्त स्तोत्रगान सहित हवि अर्पित करने वाले मनुष्यों को अग्निदेव समृद्धि प्रदान करते हैं ।

वे अद्भुत रक्षा साधनों सहित गौओं (पोषक प्रवाहों अथवा इन्द्रियों) के समूह हेतु सहायक बनते हैं ॥३ ॥

४४४७. आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।

अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४ ॥

कृष्णमार्ग (धुएँ के साथ उत्पन्न होने) वाले अग्निदेव प्रकट होकर दूर से दिखाई देने वाली कान्ति के द्वारा द्यावा-पृथिवी को आच्छादित करते हैं । वे अग्निदेव रात्रि के गहन अन्धकार को अपने प्रकाश से दूर करते दिखाई देते हैं ॥४ ॥

४४४८. नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।

ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हम हविष्यान्न सम्पदा वालों के लिए आप प्रचुर धन एवं संरक्षण प्रदान करें । अन्न, धन, यश एवं पराक्रमी पुत्र प्रदान करें, जो अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ हो ॥५ ॥

४४४९. इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।

भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हविष्यान्न आपको प्रिय है । आपके लिए याजक जो हविष्यान्न युक्त हवि अर्पित करते हैं, आप उसे ग्रहण करें । उन यजमानो पर कृपा करके उन्हें अनेकानेक अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

४४५०. वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमसे द्वेष करने वाले हमारे शत्रुओं को दूर करें । हमारे अन्न को बढ़ायें । हम उत्तम पराक्रमी पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर सौ हेमन्त तक आनन्द से रहें ॥७ ॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४५१. यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।

आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१ ॥

हे देवगणों को बुलाने वाले तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमारे द्वारा पूजित होकर मरुद्गणों को संगठित करें तथा मित्र, वरुण, ऋतदेवों, अश्विनीकुमारों तथा द्यावा-पृथिवी को हमारे यज्ञ में आहूत करें ॥१ ॥

४४५२. त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।

पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप पूजनीय हैं, हम मनुष्यों के प्रति द्रोहरहित हैं । आप आहुतियों को ले जाने वाले एवं आनन्ददाता हैं । देवगणों के मुखरूपी हे अग्निदेव ! आप हविग्रहण करके अपने शरीर का भी पोषण करें ॥२ ॥

४४५३. धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै ।

वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुच्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! धन की इच्छुक बुद्धि आपकी भक्ति करती है । इन्द्रादि देवों की प्रसन्नता के लिए किए जाने वाले यज्ञ आपके प्रसन्न (प्रज्वलित) होने पर ही सफल होते हैं । अङ्गिरा ऋषि, सर्वोत्तम प्रकार से आपकी स्तुति करते हैं एवं विद्वान् भारद्वाज मधुर छन्दों का गान करते हैं ॥३ ॥

४४५४. अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची ।

आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४ ॥

बुद्धिमान् और आभायुक्त अग्निदेव अति विशिष्ट प्रकार से शोभायुक्त हो रहे हैं । आप विस्तृत द्युलोक एवं भूलोक का आहुतियों द्वारा पोषण करते हैं । पाँचों वर्ण के लोग अतिथि जैसे सत्कार सहित, श्रेष्ठ हवि ग्रहण करने वाले अग्निदेव को हविष्यान्न द्वारा तृप्त करें ॥४ ॥

[यज्ञ में सभी वर्ण के व्यक्तियों द्वारा आहुतियाँ देने की परम्परा ऋषिकाल से रही है ।]

४४५५. वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।

अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५ ॥

जब पृथ्वी पर यज्ञशाला में यज्ञवेदी की रचना करके श्रेष्ठ निर्दोष घृत से युक्त स्रुचा आदि साधन तैयार किये जाते हैं, तब अन्न की आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं । जैसे सूर्य से नेत्र आश्रय पाते हैं (सूर्य प्रकाश में देखते हैं) वैसे ही याजक द्वारा किये गये यजन से यज्ञदेव वृद्धि प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

४४५६. दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।

रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६ ॥

अनेकानेक अग्नि शिखाओं वाले एवं देवताओं का आवाहन करने वाले हे अग्निदेव ! आप विविध दिव्य अग्नियों सहित प्रसन्न होकर हमें धन प्रदान करें । हे बल उत्पादक अग्निदेव ! आप हम हवि प्रदानकर्ताओं को शत्रुवत् पाप से भी बचाएं ॥६ ॥

[सूक्त - १२]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४५७. मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।

अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१ ॥

देवताओं के आवाहनकर्त्ता एवं यज्ञपालक अग्निदेव द्यावा-पृथिवी को पुष्ट करने के लिए याजक के घर में प्रतिष्ठित होते हैं । वे बलोत्पादक यज्ञकर्त्ता अग्निदेव अपने तेज से सम्पूर्ण जगत को उसी तरह प्रकाशित करते हैं जिस तरह सूर्यदेव दूर से ही सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ॥१ ॥

४४५८. आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।

त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२ ॥

हे तेजस्वी पूज्य यज्ञशील अग्निदेव ! आप मनुष्यों द्वारा दिये गये हव्य पदार्थों को तीनों लोकों में तारक सूर्यदेव की तरह व्याप्त होकर देवताओं तक पहुँचाते हैं । (अतएव) हम सभी याजक श्रद्धा सहित हवि अर्पित करते हैं ॥२ ॥

४४५९. तेजिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।

अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥३ ॥

वे अग्निदेव दीप्ति के बढ़ने से सूर्यदेव के समान ही अपने मार्ग को प्रकाशित करते हैं । जो सर्वव्यापी अति-दीप्त ज्वालाओं के द्वारा वन में प्रज्वलित होते हैं, वे अमर, द्रोह रहित, न रोके जा सकें, ऐसे अग्निदेव सभी का कल्याण करते हुए समस्त जगत् को प्रकाशित करें ॥३ ॥

४४६०. **सास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।**

द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४ ॥

ये ज्ञानी अग्निदेव यज्ञकर्त्ताओं के द्वारा गाये गये गायन (स्तोत्रों) से जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं , उसी प्रकार हमारे द्वारा गाये जा रहे उत्तम स्तोत्रों से प्रसन्न होते हैं । बल में वृषभ के समान, गति में अश्व के समान तथा वृक्षों को भस्म करने वाले अग्निदेव की यजनकर्ता मनुष्य स्तुति करते हैं ॥४ ॥

४४६१. **अध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।**

सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५ ॥

जब अग्निदेव सहज ही जङ्गलों को जलाकर पृथ्वी पर विचरते हैं, पृथ्वी पर प्रकाशित होने वाले अति वेग से व बिना प्रतिबन्ध के भ्रमण करते हैं, तब उन अग्निदेव की आभा की स्तुति इस लोक के स्तोता मनुष्य करते हैं ॥५ ॥

४४६२. **स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।**

वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६ ॥

हे शत्रुनाशक अग्निदेव ! आप अपनी विविध अग्नियों सहित प्रकट होते हैं । आप निन्दाओं से हमारी रक्षा करें तथा हमें सम्पत्ति प्रदान करें । हम श्रेष्ठ योद्धा पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न होकर शत्रुओं की सेना का नाश कर, सौ हेमन्त ऋतुओं तक आनन्द सहित जीवन यापन करें ॥६ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

४४६३. **त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।**

श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ भाग्यवान् अग्निदेव ! आप समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक हैं । जैसे वृक्ष से विभिन्न शाखाएँ उत्पन्न होती हैं, वैसे ही शत्रु को जीतने वाला बल, धन एवं पर्जन्य की वर्षा आप से उत्पन्न होती है । आकाश से वर्षा के लिए पानी लाने वाले आप स्तुति करने योग्य हैं ॥१ ॥

४४६४. **त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।**

अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२ ॥

हे भाग्यवान् अग्निदेव ! आप हमें सुन्दर धन प्रदान करें । आप वायु के समान सर्वव्यापी और मित्र के समान सन्मार्ग पर ले जाने वाले हैं । हे तेजस्वी ! आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

४४६५. **स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।**

यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥३ ॥

श्रेष्ठ ज्ञान सम्पन्न, सत्पुरुषों के पालक हे अग्ने ! आप जिस ऋतजात (यज्ञ से उत्पन्न) ऐश्वर्य को जल न गिरने देने वाले मेघों से संयुक्त होने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वही पणि (वर्षा में बाधक असुर तत्व) को नष्ट करता है ॥३ ॥

[यज्ञ से उत्पन्न प्राण-पर्जन्य मेघों से सार्थक वृष्टि का माध्यम बनता है ।]

४४६६. **यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।**

विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं१ पत्यते वसव्यैः ॥४ ॥

हे बल के के पुत्र, तेजस्वी अग्निदेव ! जो यज्ञ क्रिया एवं स्तुतियों द्वारा आप (यज्ञ भगवान्) की उपासना करते हुए आपके तेज (दर्शन एवं विज्ञान) को धारण करता है, वह अन्न, धन तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥४ ॥

४४६७. ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।

कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥५ ॥

हे बल के पुत्र अग्निदेव ! आपने जो पशु और अन्न क्रूर, द्वेषकर्त्ता शत्रुओं (यज्ञ के विरोधी) को प्रदान किया है । हे अग्निदेव ! वह सब हम श्रेष्ठ शौर्यवानों के निमित्त प्रदान करें ॥५ ॥

४४६८. वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।

विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६ ॥

हे बल के पुत्र एवं ज्ञानी अग्निदेव ! आप हमें हितकारी उपदेश करें । हमारी उत्तम कामनाओं की पूर्ति होती रहे । हम धन, अन्न, तथा ऐश्वर्य युक्त पुत्र-पौत्रादि सहित सौ हेमन्त पर्यन्त जीवनयापन करें ॥६ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- अनुष्टुप्; ६ शक्वरी ।]

४४६९. अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः । भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥

जो मनुष्य स्तुति सहित यज्ञ करता है एवं सद्बुद्धि प्रेरित कर्म करता है, वह अग्रणी-यशस्वी होता है और सुरक्षा के निमित्त पर्याप्त धन-धान्य प्राप्त करता है ॥१ ॥

४४७०. अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः । अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः

अग्निदेव ही श्रेष्ठ ज्ञानी एवं सत्कर्म प्रेरक सर्वद्रष्टा हैं । मनुष्य पुत्रादि सहित यज्ञ में इन्हीं की स्तुति करते हैं

४४७१.नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः । तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम्

हे अग्निदेव ! जो आपका यजन करता है, वह यज्ञ न करने वालों को पराजित करता है एवं शत्रुओं का धन, ऐश्वर्य उनसे पृथक् होकर (याजक) स्तुतिकर्त्ता को प्राप्त होता है ॥३ ॥

४४७२. अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।

यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥४ ॥

अग्निदेव स्तुति करने वाले स्तोताओं के लिए सन्मार्गगामी, सत्कर्म रक्षक (यज्ञ की रक्षा करने वाले), शत्रुजयी, श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करते हैं, जिससे शत्रु भी भयभीत रहते हैं ॥४ ॥

४४७३. अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति । सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥

अग्निदेव ही अपने तेजस्वी ज्ञान, बल के द्वारा निन्दा से याजक की रक्षा करते हैं एवं युद्धकाल में धन को सुरक्षित करते हैं ॥५ ॥

४४७४. अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः । वीहि स्वस्तिं

सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥६ ॥

हे मित्र के समान रक्षा करने वाले, तेजस्वी, गुण-सम्पन्न अग्निदेव ! आप द्यावा-पृथिवी में संव्याप्त होकर स्तोताओं द्वारा की जाने वाली स्तुति को देवगणों तक पहुँचाते हैं । आप ही अपने रक्षा साधनों से, पापों से, कष्टों से एवं शत्रुओं से हमारी रक्षा करते हैं । हमें उत्तम आवासादि प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - १५]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य अथवा वीतहव्य आङ्गिरस । देवता - अग्नि । छन्द - जगती; ३,१५; ६- अतिशक्वरी; १०, १४, १६, १९ त्रिष्टुप् ; १६ अनुष्टुप् ; १८ - बृहती ।]

४४७५. इममू षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥१ ॥

जो अग्निदेव अतिथि जैसे पूज्य, प्रजापालक स्वभावतः पवित्र एवं उषाकाल में प्रज्वलित होने वाले हैं, वे - द्युलोक से उत्पन्न होकर द्यावा-पृथिवी के मध्य विचरते हुए निवेदित हवि को ग्रहण करते हैं । हे विज्ञजन ! ऐसे अग्निदेव की स्तुति कर आप उन्हें प्रसन्न करें ॥१ ॥

४४७६. मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२ ॥

हे अरणियों में व्याप्त, स्तुति योग्य, मित्रवत् अग्निदेव ! आपको भृगु आदि ऋषियों ने भी स्थापित किया है । हे अद्‌भुत अग्निदेव ! आप ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं वाले हैं । विज्ञजन प्रतिदिन उत्तम स्तोत्रों से आपकी स्तुति करते हैं । हे अग्निदेव ! आप कृपा करने वाले हैं ॥२ ॥

४४७७. स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप दयालु होकर चतुर मनुष्यों की सुरक्षा करते हैं । हे अग्निदेव ! आप महान् हैं । हे बल पुत्र ! आप भारद्वाज वंशीय को धन, अन्न एवं निवास प्रदान करें ॥३ ॥

४४७८. द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥४ ॥

हे विज्ञजनो ! आप देदीप्यमान, दिव्य-गुणयुक्त, हविवाहक, अतिथि के समान पूज्य, मनुष्य यज्ञ में देवगणों को बुलाने वाले, स्वर्ग तक पहुँचाने वाले, उत्तम यज्ञ करने वाले, विद्वानों जैसे कान्तिवान् अग्निदेव को श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा प्रसन्न करें ॥४ ॥

४४७९. पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५ ॥

उषा के प्रकाश की भाँति अग्निदेव पृथिवी को पवित्रता एवं चेतना से युक्त करते हुए अपनी तेजस्विता से शोभायमान होते हैं । हे वीतहव्य ! आप उन अग्निदेव की अर्चना करें जो ऐतश ऋषि के रक्षार्थ रणभूमि में शीघ्र चैतन्य होने वाले, सर्वभक्षी तथा अजर हैं ॥५ ॥

४४८०. अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि । उप वो
गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥६ ॥

हे स्तोताओ ! आप अतिथि के समान पूज्य एवं अत्यन्त प्रिय अग्निदेव की समिधाओं द्वारा सेवा करें । वे अमर अग्निदेव, देवों में वरणीय सम्पत्ति धारण करते हैं और हमारी अर्चना स्वीकार करते हैं । अस्तु उन अविनाशी अग्निदेव की सेवा वाणी (स्तोत्रों) द्वारा करें ॥६ ॥

४४८१. समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥७ ॥

समिधाओं द्वारा प्रकट अग्निदेव की हम वाणी (स्तुतियों) से अर्चना करते हैं । शुद्ध स्थिर और पावन बनाने वाले अग्निदेव को यज्ञ में अग्रिम स्थान पर प्रतिष्ठित करते हैं । (विप्र) विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न तथा हविदाता सभी द्वारा धारण करने योग्य, द्रोह मुक्त, ज्ञानवान् और सर्वज्ञाता अग्निदेव की ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए हम स्तुति करते हैं ॥७ ॥

४४८२. त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! अमर देवता और मनुष्य प्रत्येक शुभ यज्ञ में, हविदाता, रक्षक और स्तुति योग्य आपको दूतरूप में नियुक्त करते हैं तथा जागृति प्रधान, विस्तारशील और प्रजाजनों की रक्षा में सहायक मानकर मनुष्यगण आप को प्रणाम करते हुए उपासना करते हैं ॥८ ॥

४४८३. विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९ ॥

देव एवं मनुष्य दोनों को महिमा-मण्डित करते हुए अनुशासन प्रिय व्रतशील देवों के दूत बनकर दिव्यलोक एवं इस लोक में हवि ले जाने वाले हे अग्निदेव ! हम आपकी स्तुतियाँ करते हैं । तीनों स्थानों (पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक) में विचरणशील आप हमें सुख प्रदान करें ॥९ ॥

४४८४. तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१० ॥

मनोहर रूप वाले, गमनशील, सर्वज्ञ एवं शोभनाङ्ग अग्निदेव का हम अल्पज्ञ मानव यजन करें । वे सर्वकर्म ज्ञाता हमारी हवियों का वर्णन देवताओं से करें एवं देवगणों के निमित्त यज्ञ सम्पन्न करें ॥१० ॥

४४८५. तमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥११ ॥

हे शौर्यवान् अग्निदेव ! जो बुद्धिमान मनुष्य आपके निमित्त कर्म करते हैं, आप उनकी रक्षा करते हुए उनकी श्रेष्ठ कामनाओं की पूर्ति करें । जो याजक संस्कारवान् रहकर प्रगति करते हुए यज्ञ करते हैं, उन्हें आप प्रचुर बल प्रदान करें ॥११ ॥

४४८६. त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात्।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१२ ॥

हे पराक्रमी अग्निदेव ! आप हमारी शत्रुओं एवं पापों से रक्षा करें, हमारे द्वारा अर्पित हवि को ग्रहण करें एवं स्तुति करने वालों को स्पृहा करने योग्य सहस्र प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१२ ॥

४४८७. अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥१३ ॥

तेजस्वी, सर्वज्ञ, देवगणों का आवाहन करने वाले , सब प्राणियों के ज्ञाता अग्निदेव हमारे घरों के स्वामी हैं । जो अग्निदेव मनुष्यों और देवताओं में श्रेष्ठ याजक हैं , वे सत्यवान् अग्निदेव सविधि यज्ञ करें ॥१३ ॥

४४८८. अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥१४ ॥

हे पावन ज्वालाओं वाले यज्ञकर्त्ता अग्निदेव ! आप देवताओं के निमित्त यज्ञ करने वाले हैं । आप इस यज्ञ में देवताओं का यज्ञ करें एवं इस समय याजक जिस इच्छा से यज्ञ करता है उसकी इच्छा पूर्ण करें । हे चिरयुवा अग्निदेव ! आप स्वयं की महानता के कारण ही महान् हैं । आप हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥१४ ॥

४४८९. अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै । अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! याजक ने द्यावा-पृथिवी के निमित्त यज्ञ करने के लिए आपको प्रतिष्ठित किया है । आप वेदी पर अच्छी तरह से रखे गये हवि को देखें । हे अग्निदेव ! संग्राम में आप हमारी रक्षा करें ताकि समस्त दु:खों से हम बच जायें ॥१५ ॥

४४९०. अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६ ॥

ये अग्निदेव समस्त देवगणों में अग्रणी हैं । हे सुन्दर ज्वालाओं वाले अग्निदेव ! आप ऊन के आसन एवं घृतयुक्त यज्ञ वेदी पर विराजमान होकर हवि देने वाले यजमान के यज्ञ को उत्तम प्रकार से देवताओं तक पहुँचाएँ ॥१६ ॥

४४९१. इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥१७ ॥

कर्म (यज्ञ) कर्त्ता, ज्ञानी, ऋत्विग्गण अथर्वा ऋषि के जैसा मंथन करके अग्नि को उत्पन्न करते हैं । इधर-उधर भ्रमणशील ज्ञानी अग्निदेव को उस अंधेरे स्थान से लाकर, यहाँ (यज्ञवेदी) पर स्थापित करते हैं ॥१७ ॥

४४९२. जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥१८ ॥

हे अग्निदेव ! आप अरणिमंथन द्वारा प्रकट होकर देवताओं की कामना वाले यजमान के कल्याण को सुस्थिर करें । आप यज्ञवर्धक अमर देवगणों का यज्ञ में आवाहन करें और हमारे यज्ञ को देवताओं तक पहुँचाएँ ॥१८ ॥

४४९३. वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९ ॥

हे यज्ञरक्षक अग्निदेव ! हम समिधाओं द्वारा प्राणियों के मध्य आपको प्रदीप्त करते हैं । गार्हपत्य अग्निदेव हमें पुत्र, पशु और अनेक ऐश्वर्य प्रदान करें । आप हमें तेजस्विता प्रदान करें ॥१९ ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - गायत्री; १, ६ वर्धमाना; २७, ४७-४८ अनुष्टुप्; ४६ त्रिष्टुप् ।]

४४९४. त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप होता और देवगणों के आवाहनकर्त्ता हैं । आप मनुष्यों के यज्ञ में देवताओं द्वारा होता निर्धारित किये गये हैं ॥१ ॥

४४९५. स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी महान् ज्वालाओं सहित इस यज्ञ में देवगणों की स्तुति करें एवं इन्द्रादि देवताओं का आवाहन करके उन्हें हवि प्रदान करें ॥२ ॥

४४९६. वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥३ ॥

हे नियन्ता, श्रेष्ठकर्मा अग्निदेव ! आप यज्ञ के निकटस्थ एवं दूरस्थ (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष) सभी मार्गों के ज्ञाता हैं । आप याजकों का उचित मार्गदर्शन करें ॥३ ॥

४४९७. त्वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥४ ॥

हे तेजरूप अग्निदेव ! भरत अनेक ऋत्विजों के साथ मिलकर लौकिक एवं अलौकिक दोनों प्रकार के सुख प्राप्त करने के लिए आपकी स्तुति करते हैं । हे यजनीय ! आपके द्वारा ही अनिष्टों का शमन एवं इच्छाओं की पूर्ति होती है । हम आपकी स्तुति और यज्ञ करते हैं ॥४ ॥

४४९८. त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आपने सोम सिद्धकर्त्ता 'दिवोदास' को बहुत सा ऐश्वर्य प्रदान किया था; उसी प्रकार 'भरद्वाज' (हवि देने वाले को) भी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५ ॥

४४९९. त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अमर हैं, आप दूत हैं ; (अतः) विद्वान् भरद्वाज द्वारा की जा रही स्तुति को सुनने के लिए देवगणों का हमारे यज्ञ में आवाहन करें ॥६ ॥

४५००. त्वामग्ने स्वाध्यो३ मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥७ ॥

बल अर्थात् घर्षण से प्रकट होने वाले सौन्दर्यवान् हे अग्निदेव ! हम याजकगण धन-धान्य एवं आपका सान्निध्य प्राप्त करने की कामना से वन्दना करते हैं ॥७ ॥

४५०१. तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥८ ॥

स्वर्ण सदृश जाज्वल्यमान हे अग्निदेव ! छाया में मिलने वाली शीतलता की तरह हम आपके संरक्षण में रहकर सुख प्राप्त करें ॥८ ॥

४५०२. त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥९ ॥

बैल के सींग की भाँति तेजस्वी ज्वालाओं वाले, वीर धनुर्धर के समान पराक्रमी हे अग्निदेव ! आपने दुष्टों के आश्रय-स्थलों को नष्ट किया है ॥९ ॥

४५०३. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! हे प्रकाशक एवं सर्वव्यापक देव ! हवि को गति देने (वीति) के लिए आप पधारें । सब आपकी स्तुति करते हैं । यज्ञ में हम आपका आवाहन करते हैं; क्योंकि आप सब पदार्थों को प्रदान करने वाले हैं ॥१० ॥

४५०४. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११ ॥

हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! हम आपको समिधाओं तथा घृत द्वारा प्रदीप्त करते हैं । अतः हे सामर्थ्यवान् ! आप अधिक प्रखर हों ॥११ ॥

४५०५. स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हम महान् पराक्रम और श्रेष्ठ यशस्वी सामर्थ्य प्राप्त हो ॥१२ ॥

४५०६. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥१३ ॥

परम श्रेष्ठ, अखिल विश्व के धारणकर्ता हे अग्निदेव ! अथर्वा (विज्ञानवेत्ता अथवा प्रधान पुरोहित) ने आपको विश्व के महानतम आधार के रूप में अरणि मन्थन द्वारा प्रकट किया ॥१३ ॥

४५०७. तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! 'अथर्वा' के पुत्र 'दध्यङ्' ऋषि ने आपको प्रथम प्रदीप्त किया । आप शत्रुसंहारक एवं उनके नगरों को नष्ट करने वाले हैं ॥१४ ॥

४५०८. तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् । धनञ्जयं रणेरणे ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! "पाथ्य वृषा" (इस नाम के ऋषि अथवा सन्मार्गगामी बलवान) ने आपको प्रदीप्त किया । आप असुर संहारक तथा युद्ध में जीतने वाले हैं ॥१५ ॥

४५०९. एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥१६ ॥

हम आपके लिए ही स्तुति करते हैं । आप इन्हें सुनकर प्रकट हों और इस सोमरस से अपनी महानता का विस्तार करें ॥१६ ॥

४५१०. यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥१७ ॥

हे अग्निदेव ! आप जिस क्षेत्र एवं याजक से प्रसन्न होते हैं, वहाँ अधिकाधिक बल धारण कराते हैं और वहीं आवास भी बनाते हैं ॥१७ ॥

४५११. नहि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥१८ ॥

हे अग्निदेव ! आपका तेज चक्षुओं के लिए हानिकारक नहीं है । हे व्रतपालक मानवों के स्वामी ! आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें ॥१८ ॥

[सामान्य मान्यता यह है कि गर्मी से आँखों को हानि पहुँचती है; किन्तु यज्ञीय ऊर्जा नेत्रों के लिए भी हितकारी है ।]

४५१२. आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९ ॥

वे अग्निदेव आहुतियों के अधिपति और वे ही दिवोदास के शत्रुओं के संहारक हैं । हे याजको ! वे अग्निदेव रक्षक एवं सर्वज्ञ हैं । हम स्तुतियों द्वारा अग्निदेव का आवाहन करते हैं ॥१९ ॥

४५१३. स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना । वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥२० ॥

जो अग्निदेव अपराजित, शत्रुनाशक और अहिंसित हैं । वे अग्निदेव ही अपनी सामर्थ्य से हमें पृथ्वी पर श्रेष्ठ धन-ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥२० ॥

४५१४. स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥२१ ॥

हे अग्निदेव ! आप इस विस्तार वाले अन्तरिक्ष को अपने संयमित एवं नवीन तेज से वैसे ही प्रकाशित कर रहे हैं, जैसे कि पहले प्रकाशित करते थे ॥२१ ॥

४५१५. प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया । अर्च गाय च वेधसे ॥२२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप ईश्वर के समान शक्तिमान् और शत्रुविनाशक अग्निदेव को आहुतियों एवं उत्तम स्तुतियां द्वारा प्रसन्न करें ॥२२ ॥

४५१६. स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः । दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३ ॥

जो अग्निदेव मेधावी, हविवाहक एवं यज्ञकर्म में देवदूत और देवों का आवाहन करते हैं, वे अग्निदेव हमारे इस यज्ञ में कुशाओं पर प्रतिष्ठित हों ॥२३ ॥

४५१७. ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥२४ ॥

हे अग्निदेव ! आप इस यज्ञ में आएँ और प्रसिद्ध, शुभकर्म करने वाले मित्रावरुण, मरुत् एवं द्यावा-पृथिवी के लिए यजन करें । आप श्रेष्ठ निवास प्रदान करते हैं ॥२४ ॥

४५१८. वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अमर एवं बलशाली हैं । आप की सतेज दृष्टि (कृपा) अन्न की इच्छा वाले याजकों को अन्न-धन प्रदान कराती है ॥२५ ॥

४५१९. क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः । मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥२६ ॥

हे अग्निदेव ! आज याजक आपकी सेवा (यज्ञ) करने वाले एवं श्रेष्ठकर्म करने वाले बनें । वे सदैव ही उत्तम सम्भाषण करें ॥२६ ॥

४५२०. ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी स्तुति करने वाले आपकी सुरक्षा में रहकर, शत्रुओं की सेना को जीतकर , शत्रुओं का नाश करते हैं एवं पूर्ण आयु तक अन्नादि सहित सुखों से पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं ॥२७ ॥

४५२१. अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् । अग्निर्नो वनते रयिम् ॥२८ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी प्रज्वलित , तीक्ष्ण ज्वालाओं से विघ्नकारक तत्त्वों (शत्रुओं) को नष्ट करें और जो आपकी उपासना तथा स्तुति करते हैं, उनको बल एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२८ ॥

४५२२. सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥२९ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप दुष्टों का संहारकर , हमें श्रेष्ठ सन्तानयुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२९ ॥

४५२३. त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः । रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥३० ॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप ज्ञान के द्रष्टा हैं । आप पाप और पापी शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥३० ॥

४५२४. यो नो अग्ने दुरेव आ मर्तो वधाय दाशति । तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें उस मनुष्य से बचाएँ, जो दुर्भावनापूर्वक हमें मारने के लिए प्रयत्न करता है । पापों से भी हमारी रक्षा करें ॥३१ ॥

४५२५. त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । मर्तो यो नो जिघांसति ॥३२ ॥

हे अग्निदेव !आप अपनी तेजस्विता बढ़ाकर उनका संहार करें, जो दुष्ट हमें मारने का अभिप्राय रखते हैं ॥३२

४५२६. भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३ ॥

हे अग्निदेव !आप तेजस्वी हैं, आप भरद्वाज को सब प्रकार का यशस्वी निवास प्रदान करें तथा श्रेष्ठ धन दें ॥३३॥

४५२७. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥३४ ॥

सत्प्रयासों से प्रसन्न होकर याजकों को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हे प्रदीप्त अग्निदेव ! हमें बन्धन में रखने वाली दुष्ट वृत्तियों का विनाश करें ॥३४ ॥

४५२८. गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे । सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५ ॥

पृथ्वी माता के गर्भ में विशेष रूप से देदीप्यमान एवं अन्तरिक्ष में संरक्षक की भूमिका में नियुक्त अग्निदेव यज्ञवेदी पर विराजमान हैं ॥३५ ॥

४५२९. ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि ॥३६ ॥

सब जानने वाले दिव्य-द्रष्टा, हे अग्निदेव ! अन्तरिक्षलोक में देवों को प्राप्त सुख , ऐश्वर्य एवं सन्तान आदि से हमें भी सम्पन्न करें ॥३६ ॥

४५३०. उप त्वा रण्वसन्दृशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७ ॥

हे बल-पुत्र अग्निदेव !आप रमणीय दिखाई देते हैं । हम हविष्यान्न अर्पित करते हुए आपकी स्तुति करते हैं ॥३७ ॥

४५३१. उपच्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् । अग्ने हिरण्यऽसन्दृशः ॥३८ ॥

हे अग्निदेव ! आप स्वर्णमयी आभा वाले हैं । आपके सामीप्य से हमें वैसा ही सुख मिलता है, जैसा कि थके हुए प्राणियों को छाया में मिलता है ॥३८ ॥

४५३२. य उग्र इव शर्यहा तिग्मशृङ्गो न वंसगः । अग्ने पुरो रुरोजिथ ॥३९ ॥

हे अग्निदेव ! आप महान योद्धा के बाणों एवं बैल के तीक्ष्ण सींगों के समान शत्रुओं का संहार करते हैं । हे देव ! आपने ही असुरों के तीन नगरों को नष्ट किया है ॥३९ ॥

४५३३. आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति । विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४० ॥

(अरणि मन्थन से उत्पन्न) अग्नि को अध्वर्युगण नवजात शिशु की तरह (प्रेमभाव से) हाथ में धारण करते हैं । हे ऋत्विजो ! आप हिंसक पशु की भाँति सावधानी से अग्नि की परिचर्या करें ॥४० ॥

४५३४. प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१ ॥

हे अध्वर्यो ! आप देवगणों के निमित्त, इन तेजस्वी एवं ऐश्वर्यवान् अग्निदेव को यज्ञवेदी पर स्थापित करते हुए हव्य अर्पित करें ॥४१ ॥

४५३५. आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥४२ ॥

हे अध्वर्यो ! आप अतिथि जैसे पूज्य , गृहपति अग्निदेव को यज्ञवेदी पर स्थापित कर , ज्ञानी , सुखकर अग्निदेव को उत्तम हवि अर्पित करें ॥४२ ॥

४५३६. अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३ ॥

हे ज्योतिर्मान् अग्निदेव ! आप उन समस्त श्रेष्ठ एवं कुशल अश्वों (ऊर्जा धाराओं) को नियोजित करें, जो आपको यज्ञ हेतु वहन करते हैं ॥४३ ॥

४५३७. अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥४४ ॥

हे अग्निदेव ! हवि ग्रहण करने और सोमपान करने के निमित्त आप हमारी ओर उन्मुख हों और देवों को भी प्रकट करें ॥४४ ॥

४५३८. उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥४५ ॥

संसार का भरण-पोषण करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रज्वलित होकर उन्नत हों, कभी क्षीण न होने वाले अपने तेज से प्रकाशित हों और जगत् में प्रकाश फैलाएँ ॥४५ ॥

४५३९. वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान्।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥४६ ॥

हव्य पदार्थ से युक्त इन अग्निदेव को हवि अर्पित कर इष्ट (किसी भी) देव का यजन करते हैं, जो अग्निदेव सत्य रूप हवि से यजन करने योग्य , द्युलोक एवं भूलोक के देवगणों का आवाहन करने वाले हैं, याजक उन अग्निदेव की हाथ उठाकर नमस्कारपूर्वक सेवा करें ॥४६ ॥

४५४०. आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि। ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७ ॥

हे अग्निदेव ! हम मन्त्रों सहित संस्कारित हवि को आपके निमित्त हृदय से अर्पित करते हैं । यह (हवि) समर्थ बैल, गौ के रूप में प्राप्त हो ॥४७ ॥

४५४१. अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम्।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८ ॥

जो अग्निदेव, यज्ञ में बाधक राक्षसों को मारने वाले, दुष्टों के धन का हरण करने वाले हैं, उन वृत्रासुर संहारक अग्निदेव को मेधावीजन प्रदीप्त करें ॥४८ ॥

[मन्त्रयुक्त हवि प्रकृति के घटकों को बैल की तरह पुष्ट तथा गाय की तरह पोषण प्रदायक सामर्थ्य दे, ऐसा भाव है ।]

[सूक्त - १७]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्, १५ द्विपदा त्रिष्टुप् ।]

४५४२. पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥१ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपने पराक्रम द्वारा शत्रुओं का संहार किया । हे वज्रिन् ! आपने चोरी गई गौओं को खोज लिया । अंगिरा ने आपकी स्तुति की एवं सोम प्रेषित किया । हे इन्द्रदेव ! आप सोमपान करें ॥१ ॥

४५४३. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम्।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पहाड़ों को तोड़ने वाले तथा अश्वों के संयोजक हैं । आप शत्रुओं से रक्षा करने वाले हैं । हे सोमपान करने वाले देव ! आप सोमपान करें एवं स्तुति करने वालों को श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥२ ॥

४५४४. एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तुति सुनकर हमारी वृद्धि करें आपने जैसे पहले सोमपान किया था, वैसे ही सोमरस का पान करें । यह आपको पुष्ट करे । आप सूर्यदेव को प्रकट करके हमें अन्न प्रदान करें । पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को खोजें एवं शत्रुओं का नाश करें ॥३ ॥

४५४५. ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप तेजस्वी एवं अन्न से युक्त हैं; सोमरस पान कर आप आनन्दित हों । आप अत्यन्त गुणवान् एवं महान् हैं । आप हमारे शत्रुओं का नाश करें ॥४ ॥

४५४६. येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥५ ॥

सोमरस से तृप्त हुए हे इन्द्रदेव ! आपने सूर्य और उषा के द्वारा अन्धकार का नाश किया । आपने अति स्थिर रक्षक गिरि को तोड़कर पणियों द्वारा चुराई गई गौएँ पायी ॥५ ॥

४५४७. तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने बुद्धि-कौशल, कर्म-कौशल एवं पराक्रम से गौओं को निकलने के लिए मार्ग बनाया है । आपने ही उन्हें दुग्धवती बनाया । अंगिराओं के सहयोग से आपने ही गौओं को छुड़ाया ॥६ ॥

४५४८. पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव !आप महान् हैं ।आपने कर्म करके पृथ्वी के विस्तृत क्षेत्र को और विस्तृत किया । आपने दिव्यलोक को गिरने से बचाने के लिए स्तब्ध किया ।देवता जिनके पुत्र हैं, उन द्यावा-पृथिवी को आपने धारण किया ॥७ ॥

४५४९. अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मरुद्गणों की युद्ध के समय सहायता की थी । वृत्रासुर से जब युद्ध हुआ था, तब आप ही देवगणों में नायक थे । आप महान् पराक्रमी हैं ॥८ ॥

४५५०. अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्‌द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥९ ॥

जब इन्द्रदेव ने सब शक्तियों से सम्पन्न होकर, वृत्रासुर को सोई अवस्था में ही पूर्णतः नष्ट कर दिया, तब इन्द्रदेव के क्रोध, वज्रयुक्त पराक्रम को देखकर द्युलोक भी भय से स्तब्ध रह गया ॥९ ॥

४५५१. अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥१० ॥

हे सोमपायी पराक्रमी इन्द्रदेव ! त्वष्टादेव द्वारा निर्मित शत सन्धि एवं सहस्रधारयुक्त वज्र से ही आपने वृत्रासुर का संहार किया ॥१० ॥

४५५२. वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी वृद्धि के लिए, मरुद्गण श्रेष्ठ स्तुति करते हैं । पूषादेव आपके लिए बलवर्धक अन्न पकाते हैं एवं विष्णुदेव तीन पात्रों में वृत्रासुर के मारने की शक्ति बढ़ाने वाला सोमरस भरते हैं ॥११ ॥

४५५३. आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उन नदियों के जल को प्रवाहित किया, जिनको वृत्रासुर अवरुद्ध किये था । समुद्र की ओर जाकर मिलने वाली नदियों के वेगवान् जल की तरङ्गों को स्वतन्त्र किया ॥१२ ॥

४५५४. एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम्।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥

हे इन्द्रदेव ! आप चिर युवा, बलशाली, ऐश्वर्यवान् , ओजस्वी, श्रेष्ठ कर्म के सम्पादक एवं वज्रधारी हैं । हमारे नवीन स्तोत्र से प्रसन्न होकर प्रवर्धमान हों और हमारी रक्षा करें ॥१३॥

४५५५. स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान्।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निमित्त अन्न, बल एवं धन को धारण करें; ताकि हमें अन्न, बल एवं धन प्राप्त हो । हमें सेवकों से युक्त करें । हम ज्ञानी हैं; हमें भविष्य में भी पुत्र-पौत्रादि सहित सुख-सम्पन्न बनायें ॥१४॥

४५५६. अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥

हे इन्द्रदेव ! आप हम स्तोताओं को अन्नादि से युक्त करें । हम वीर पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर शतायु हों तथा सुखमय जीवनयापन करें ॥१५॥

[सूक्त - १८]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्; १५ द्विपदा त्रिष्टुप् । **]**

४५५७. तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः।
अषाळहमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१॥

हे भरद्वाज ! आप शत्रुनाशक, तेजस्वी एवं आहूत इन्द्रदेव की श्रेष्ठ स्तुति करें । आप उन इन्द्रदेव को बढ़ायें, जो स्तुति से प्रसन्न होकर मनुष्यों की इच्छा को पूर्ण करते हैं ॥१॥

४५५८. स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥२॥

बलशाली, दानी, सोमरस पान करने वाले, सहयोगी एवं सदैव युद्ध कर्म करने वाले इन्द्रदेव मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥२॥

४५५९. त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप याजकों को पुत्र एवं सेवक प्रदान करते हैं । जो यज्ञ नहीं करते उन्हें जीत लें । हे इन्द्रदेव ! अपने बल का परिचय देने के लिए कभी-कभी अपना पराक्रम प्रकट करें ॥३॥

४५६०. सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप पराक्रमी, ओजस्वी, बली, अजेय तथा शत्रुहन्ता हैं । आप अनेक यज्ञों में उपस्थित हुए हैं । आप हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥४॥

४५६१. तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपने स्तुतिकर्त्ता अंगिराओं के शत्रु 'बल' नामक असुर का संहार किया और नगरों के द्वारों को खोल दिया था। हे इन्द्रदेव ! हमारा सखा भाव सुदृढ़ बने ॥५ ॥

४५६२. स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६ ॥

स्तुति करने वालों ने, सामर्थ्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का स्तुति द्वारा आवाहन किया । उनका आवाहन पुत्र प्राप्ति के लिए किया जाता है, वे वज्रधारी इन्द्रदेव रणभूमि में नमस्कार के योग्य है ॥६ ॥

४५६३. स मज्मना जनिम मानुषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्येण नृतमः समोकाः ॥७ ॥

वे इन्द्रदेव शत्रुओं को बल से झुकाने वाले, यश, धन, बल और वीर्य में सर्वश्रेष्ठ हैं । वे मनुष्यों में श्रेष्ठ और सर्वोत्तम पद तथा स्थान को प्राप्त करें ॥७ ॥

४५६४. स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च ।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८ ॥

जो व्यर्थ की वस्तुओं को पैदा नहीं करते, वे सुमन्त नाम वाले वीर इन्द्रदेव युद्ध क्षेत्र में कुशल योद्धा के रूप में प्रसिद्ध हैं । वे इन्द्रदेव, उन राक्षसों का संहार करने को सदैव तत्पर रह कर क्रियाशील होते हैं, जो राक्षस सर्वभक्षी, सबके धन का हरण करने वाले, जल को रोकने वाले तथा शोषण करने वाले हैं ॥८ ॥

४५६५. उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ ।
धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऊर्ध्वगति वाले हैं । रक्षक एवं शत्रुओं का संहार करने वाले हैं । आप शत्रु के संहार के लिए प्रशंसनीय बलयुक्त अपने रथ पर आरूढ़ होते हैं ॥९ ॥

४५६६. अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा ।
गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का वैसे ही संहार करें, जैसे कि अग्नि शुष्क वनों को भस्म करती है । गर्जन करने वाले, दुष्टों को छिन्न-भिन्न करने वाले, हे इन्द्रदेव ! आप वज्र से, बिजली की तरह राक्षसों को जलायें (नष्ट करें) ॥१०॥

४५६७. आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको असुर बलहीन नहीं कर सकते हैं । आपका, अनेकों द्वारा आवाहन किया जाता है । आप सहस्त्रों प्रकार के मार्गों से ऐश्वर्ययुक्त होकर हमारे समक्ष आएँ ॥११ ॥

४५६८. प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२ ॥

इन्द्रदेव की महिमा द्युलोक और भूलोक से भी बड़ी है । वे इन्द्रदेव अति तेजोमय , धनवान , श्रेष्ठ एवं शत्रु का नाश करने वाले हैं । प्रज्ञावान् एवं शान्ति, सुखदायक, पराक्रमी इन्द्रदेव का कोई शत्रु नहीं है । इनकी बराबरी का भी अन्य कोई नहीं है ॥१२ ॥

४५६९. प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।

पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने वज्र के द्वारा 'शम्बर' का वध करके, 'शम्बर' का बहुत-सा धन "अतिथिग्व" को प्रदान किया । 'कुत्स' की 'शुष्ण' से रक्षा की तथा शत्रुओं से 'आयु' और 'दिवोदास' की रक्षा की । भूमि पर तीव्रगामी 'दिवोदास' को कष्टों से सुरक्षित किया ॥१३ ॥

४५७०. अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।

करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥१४ ॥

हे प्रकाशमान इन्द्रदेव ! 'अहि' असुर को मारने वाले सभी देवगण आज आपके अनुकूल हैं एवं प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं । आप सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हैं । आप स्तोताओं से प्रसन्न होकर तेजस्वी यजमानों एवं पुत्रों को धन आदि देकर सुखी बनाएँ ॥१४ ॥

४५७१. अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।

कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके बल का अमर देवगण तथा द्यावा-पृथिवी अनुसरण करते हैं । हे कर्मवीर इन्द्रदेव ! आप नवीन यज्ञ कर्म करें तथा अभिनव स्तोत्रों को प्रकट करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १९]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४५७२. महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।

अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१ ॥

स्तोताओं एवं प्रजाओं का पालन करने वाले हे महान् इन्द्रदेव ! आप हमारे पास आएँ । दोनों लोकों में अनेक शक्तियों के कारण अहिंसित पराक्रमी, वीरता के कार्य करके बड़ी सामर्थ्य वाले इन्द्रदेव हमारे सामने आएँ । विशाल शरीर एवं उत्तम गुण-सम्पन्न इन्द्रदेव कर्म करने की अपनी सामर्थ्य के कारण ही पूजनीय हैं ॥१ ॥

४५७३. इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।

अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२ ॥

जो प्रगतिशील, महान् दाता, अजर, चिरयुवा तथा अपरिमित बलशाली हैं एवं जो इन्द्रदेव तत्काल प्रवर्धमान होने वाले (सामर्थ्य को शीघ्र बढ़ाने वाले) हैं; ऐसे इन्द्रदेव को हमारी बुद्धि धारण करती है ॥२ ॥

४५७४. पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ।

यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शान्त मन वाले हैं । आप उत्तम कर्म में कुशल एवं बहुत दान देने वाले अपने हाथों को, हमारे कल्याण के लिए (अभय मुद्रा में) , हमारे सामने लाएँ । जिस प्रकार पशु पालन करने वाला पशुओं को प्रेरित करता है, वैसे ही संग्राम में आप हमें प्रेरित करें ॥३ ॥

४५७५. तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।

यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४ ॥

अन्न के इच्छुक हम स्तोता, शत्रुहन्ता इन्द्रदेव का इस यज्ञ में सहायक मरुद्‌गणों सहित आवाहन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! जैसे पुरातन काल मे स्तोतागण, पापमुक्त, अनिन्द्य और अहिंसित स्थिति में थे, वैसे ही हम भी बनें ॥४ ॥

४५७६. धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५ ॥

स्तुतिकर्त्ताओं का अन्न एवं धन इन्द्रदेव के निमित्त वैसे ही पहुँचता है, जैसे नदियों का जल समुद्र में गिरता है । वे इन्द्रदेव सोमपायी, ऐश्वर्यवान् एवं कर्म कुशल हैं ॥५ ॥

४५७७. शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं । आप हमें उत्तम बल एवं तेजस्विता प्रदान करें । हमें शक्ति, तेज एवं मनुष्योपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥६ ॥

४५७८. यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम्
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को जीतने वाला बल हमें प्रदान करें, ताकि आपके द्वारा प्रदत्त रक्षा साधनों से हम शत्रु को जीतें । जीतने पर हमें वही सुख प्राप्त हो, जो पुत्र-प्राप्ति पर मिलता है ॥७ ॥

४५७९. आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें बल बढ़ाने वाला, धन देने वाला कुशल पराक्रम प्रदान करें । आपकी सुरक्षा से सुरक्षित हम युद्ध स्थल में उसी बल से शत्रुओं का नाश करें ॥८ ॥

४५८०. आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें सामर्थ्य बढ़ाने वाला बल, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर से प्रदान करें । हे इन्द्रदेव ! आप हमें सुखयुक्त धन प्रदान करें ॥९ ॥

४५८१. नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! यशस्वी, प्रशंसनीय वीरों से युक्त धन का आपके आश्रय में हम उपयोग करें । दोनों (लौकिक एवं पारलौकिक) धनों के स्वामी हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रचुर धन प्रदान करें ॥१० ॥

४५८२. मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११ ॥

इस यज्ञ में हम याजक अभिनव रक्षा के निमित्त इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । वे इन्द्रदेव मरुद्‌गणों के सहयोग से अतिबलशाली, तेजस्वी, वर्धमान, शत्रुजयी और दिव्य शासक हैं ॥११ ॥

४५८३. जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२ ॥

हे वज्रिन् ! हम मनुष्यों में से मिथ्याभिमानी (अपने को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले मनुष्य) को आप वश में करें । हम संग्राम काल में तथा पशु , पुत्र एवं जल प्राप्ति के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१२ ॥

४५८४. वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आपके आश्रय में रहकर हम धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न एवं सुखी हों । हे इन्द्रदेव ! आप अनेकों द्वारा आहूत हैं । हम स्तुति जैसे मित्रतापूर्ण कार्य सम्पादित करके आपकी सहायता से शत्रुओं का नाश करें । हम शत्रुओं से अधिक बल-सम्पन्न बनें ॥१३ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ; ७ विराट् ।]

४५८५. द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥१ ॥

हे संघर्ष के लिए विख्यात इन्द्रदेव ! आप हमें सूर्यदेव की तरह कान्तियुक्त , शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, डटकर मुकाबला करने वाला, सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्य (धन) वाला एवं भूमि को उर्वरक बनाने वाला पुत्र प्रदान करें ॥१ ॥

४५८६. दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥२ ॥

हे सोमपायी ! आपने विष्णुदेव के साथ मिलकर जल अवरोधक असुर 'वृत्र' का नाश किया था । हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं ने प्राणशक्ति एवं बल बढ़ाने वाले स्तोत्रों को आपके निमित्त भेंट किया ॥२ ॥

४५८७. तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥३ ॥

जब इन्द्रदेव ने समस्त पुरों को नष्ट करने वाला वज्र पाया, तभी उन्होंने मधुर सोमरस भी प्राप्त किया था । वे इन्द्रदेव हिंसकों के हिंसक, पराक्रमी, अन्नदाता, ओजस्वी एवं तेजस्वी हैं ॥३ ॥

४५८८. शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सहायक, अन्नदाता 'कुत्स' से युद्ध में भयभीत होकर 'पणि' सेनाओं सहित भाग गया । आपने शुष्ण की (आसुरी) माया को नष्ट कर उसके अन्न का हरण किया ॥४ ॥

४५८९. महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५ ॥

जब 'शुष्ण' वज्र गिरने से मर गया, तब द्रोही 'शुष्ण' के समस्त बलों को नष्ट करने वाले इन्द्रदेव ने सूर्योपासना के निमित्त सारथिरूप कुत्स को रथारूढ़ होने के लिए कहा ॥५ ॥

४५९०. प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥६ ॥

श्येन पक्षी द्वारा लाये गये, सोम को पीकर तृप्त हुए इन्द्रदेव ने दुष्ट नमुचि के सिर को काट डाला। उन्होंने सोये हुए साप्य (सप के पुत्र अथवा संधि-सहमतिपूर्वक रहने वालों) की रक्षा करके उन्हें पशु, धन एवं अन्न प्रदान किया ॥६॥

४५९१. वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥७॥

हे वज्रिन्! आपने मायावी 'पिप्रु' के किले को ध्वस्त किया। हे उत्तम दानदाता! 'ऋजिश्वा' को आपने धन प्रदान किया। उन्होंने हविरन्न अर्पित किया था ॥७॥

४५९२. स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥८॥

इष्ट सुखदाता इन्द्रदेव ने वेतसु आदि असुरों को 'द्योतमान' के पास जाने के लिए एवं सदा उन्हीं के अधीन रहने के लिए उसी तरह विवश किया, जिस तरह माता पुत्र को वश में करती है ॥८॥

४५९३. स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥९॥

शत्रु-विनाशक, वज्र को हाथ में धारण करने वाले इन्द्रदेव स्पर्धा करने वाले शत्रुओं का संहार करते हैं। वे शूरवीर रथ पर चढ़ते हैं। उनके अश्व वचन मात्र से जुत जाने वाले एवं संकेत मात्र से इन्द्रदेव को गन्तव्य तक ले जाने वाले हैं ॥९॥

४५९४. सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

हे इन्द्रदेव! हम उपासक आपके द्वारा सुरक्षित होकर नवीन धन पाने के लिए उपासना करते हैं। यज्ञ करते समय याजक आपकी स्तुतियाँ करते हैं ॥१०॥

४५९५. त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥११॥

हे इन्द्रदेव! धन के इच्छुक 'उशना' का आप कल्याण करें। आपने 'नववास्त्व' नामक असुर का संहार किया था और शक्ति-सम्पन्न 'उशना' के समक्ष देयपुत्र को उपस्थित किया था ॥११॥

४५९६. त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥१२॥

हे इन्द्रदेव! आप शत्रुओं को भयभीत करते हैं। रुके जल को प्रवाहित करते हैं। हे पराक्रमी! जब आप समुद्र को पार करते हैं, तब 'तुर्वश' तथा 'यदु' को कल्याणपूर्वक पार कर दें ॥१२॥

४५९७. तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः ॥१३॥

हे इन्द्रदेव! आपने 'धुनी' और 'चुमुरी' नाम के असुरों को युद्ध में मार गिराया। यह सब युद्ध में करना आपकी ही सामर्थ्य से सम्भव है। आपके निमित्त अन्न को पकाने वाले, सोमरस बनाने वाले एवं समिधावान् 'दभीति' ने हवि प्रदान कर आपका सत्कार किया था ॥१३॥

[सूक्त - २१]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता- इन्द्र; ९, ११ विश्वेदेवा। छन्द- त्रिष्टुप्।]

४५९८. **इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते।**
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥१॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप रथारूढ़, अजर और नूतन स्वरूप वाले हैं। हवियाँ आपको प्राप्त होती हैं। बहुत कार्य करने की इच्छा वाले भरद्वाज की उत्तम स्तुतियाँ आपका आवाहन करती हैं ॥१॥

४५९९. **तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम्।**
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

प्रज्ञावान् इन्द्रदेव की महिमा द्युलोक एवं पृथ्वी से भी महान् है। वे सर्वज्ञ और यज्ञ से विवर्धमान हैं, ऐसे स्तुति द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव की हम वन्दना करते हैं ॥२॥

४६००. **स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार।**
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

इन्द्रदेव ने सघन अन्धकार को सूर्यदेव के प्रकाश से दूर किया। हे स्वधारक शक्तियुक्त इन्द्रदेव ! आपके अमर स्थान की कामना करने वाले मनुष्य अवध्य (सुरक्षित) रहते हैं ॥३॥

४६०१. **यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु।**
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

जिन्होंने वृत्रादि असुरों का संहार किया, वे इन्द्रदेव अभी कहाँ हैं ? किस लोक और किन प्रजाओं के बीच वे विचरण करते हैं ? आपके लिए सुखदायी यज्ञ कौन सा है ? आपको वरण करने हेतु समर्थ मन्त्र कौन सा है ? कौन सा होता आपको बुलाने में समर्थ है ? ॥४॥

४६०२. **इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः।**
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥५॥

बहुकर्मा एवं अनेकों द्वारा प्रार्थित हे इन्द्रदेव !प्राचीन काल तथा वर्तमान काल में उत्पन्न साधक आपके मित्र बनकर रहें। मध्यकाल में भी आपके स्तोता उत्पन्न हुए परन्तु हे इन्द्रदेव ! आप हमारी इस समय की स्तुति को सुनें ॥५॥

४६०३. **तं पृच्छन्तोऽवरासः पराणि प्रत्ना त इन्द्र श्रुत्यानु येमुः।**
अर्चामसि वीर ब्रह्मवाहो यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम् ॥६॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आज के मनुष्य आपसे ही पूछते हैं। आपके पूर्व के श्रेष्ठ कार्यों को सुनकर उनका वर्णन करते हैं। जितना हमें विदित है, उसी आधार पर ही हम आपका सत्कार करते हैं ॥६॥

४६०४. **अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ।**
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥७॥

हे शत्रुओं के उत्पीड़क इन्द्रदेव ! आप अपने पुराने, सुयोग्य, सदा सहायक वज्र से शत्रु सेना को दूर करें। हे इन्द्रदेव ! असुरों का बल चारों ओर बढ़ता हुआ आपके समक्ष है, आप भी शत्रु के बल का अनुमान करके उससे अधिक बल से प्रतिरोध करें ॥७॥

४६०५. **स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।**

त्वं ह्या३ पिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद्बभूथ सुहव एष्टौ ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन, श्रेष्ठ आवाहनकर्त्ता अंगिराओं के मित्र हैं। आप स्तोताओं के पालक हैं। हम आज के स्तोतागण नवीन स्तोत्र के इच्छुक हैं। आप हम लोगों की प्रार्थना सुनें ॥८॥

४६०६. **प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।**

प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरन्धिं सवितारमोषधीः पर्वतांश्च ॥९॥

हे भरद्वाज ! आप हम सबकी रक्षा एवं इच्छापूर्ति के लिए वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत्, पूषा, विष्णु, अग्नि, सविता, ओषधियों और पर्वतादि देवों की स्तुति करें ॥९॥

४६०७. **इम उ त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।**

श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥१०॥

हे अति पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप जैसा अन्य कोई देव नहीं है, अतः हम स्तोता श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं। आप हमारी स्तुति को सुनें ॥१०॥

४६०८. **नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।**

ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥

हे बल पुत्र इन्द्रदेव ! आप सर्वज्ञ हैं। जो देवगण अग्निरूपी जिह्वा वाले सत्य के उपासक हैं, और जो यज्ञाहुति ग्रहण करते हैं, शत्रुओं का नाश करने के निमित्त राजर्षि मनु ने, जिन्हें सर्वोपरि स्थापित किया था, आप उन्हीं के साथ यहाँ पधारें ॥११॥

४६०९. **स नो बोधि पुरएता सुगेषूत दुर्गेषु पथिकृद्विदानः ।**

ये अश्रमास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षि वाजम् ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! आप मेधावी हैं। आप मार्ग नियन्ता हैं। अतः सुगम एवं दुर्गम मार्गों में हमारे मार्गदर्शक बनें। आप अपने न थकने वाले एवं तीव्रगामी घोड़ों के द्वारा हमारे लिए बल बढ़ाने वाला अन्न लाएँ ॥१२॥

[सूक्त- २२]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् । **]**

४६१०. **य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।**

यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

इन्द्रदेव संकट काल में मनुष्यों द्वारा आवाहन करने योग्य हैं। वे स्तुतियाँ करने पर आते हैं। इच्छा पूर्ति करने वाले पराक्रमी, ज्ञानी, सत्यवादी एवं शत्रुओं को पीड़ा देने वाले इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१॥

४६११. **तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।**

नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥

अङ्गिरा आदि प्राचीन ऋषियों ने इन्द्रदेव को पराक्रमी और प्रवर्द्धमान बनाने के लिए नौ मासीय यज्ञानुष्ठान किया तथा स्तुति की। वे इन्द्रदेव सभी के शासक, तीव्रगामी एवं शत्रुओं के संहारकर्त्ता हैं ॥२॥

४६१२. तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३ ॥

हे अश्वपति इन्द्रदेव ! हम पुत्र-पौत्रादि स्वजनों, सेवकों, पशुओं एवं प्रसन्नतादायक धन की आप से याचना करते हैं । आप हमें सुखकारी ऐश्वर्य प्रदान करने यहाँ आएँ ॥३ ॥

४६१३. तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४ ॥

हे शत्रुजयी, पराक्रमी अनेकों द्वारा आहूत ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दुष्ट असुरों का नाश करने की सामर्थ्य वाले हैं । आपको यज्ञ मे कौन सा भाग मिला है ? हे इन्द्रदेव ! आप हमें वही सुख प्रदान करें, जो आपने पहले भी स्तोताओं को दिया है ॥४ ॥

४६१४. तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५ ॥

हाथ में वज्र धारण करने वाले, रथारूढ़, बहुकर्मा, अनेक शत्रुओं को एक साथ पकड़ने वाले इन्द्रदेव की गुण-गाथा का गान करते हुए, जो यजमान् यज्ञकर्म और स्तुति करता है, वह शत्रुओं को हराने वाला एवं सुख प्राप्त करने वाला होता है ॥५ ॥

४६१५. अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वयं के बल से युक्त हैं । आपने अपने मनोवेगी वज्र से उस बढ़ते हुए मायावी वृत्रासुर का संहार किया है । हे तेजस्वी इन्द्रदेव ! आपने अचल, सुदृढ़ एवं शक्तिशाली पुरियों को नष्ट किया है ॥६ ॥

४६१६. तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन एवं पराक्रमी हैं । प्राचीनकालीन ऋषियों के समान हम भी नवीन स्तोत्रों से आपको प्रवर्धमान करते हैं - ऐसे शोभनीय इन्द्रदेव हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

४६१७. आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट की वर्षा करने वाले हैं । द्युलोक, पृथ्वी एवं अंतरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त होकर अपने तीव्र तेज से तृप्त करके सज्जनों के शत्रुओं (दुष्टों) को भस्म करें ॥८ ॥

४६१८. भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९ ॥

हे तेजस्वी, अजर इन्द्रदेव ! आप देवलोकवासी एवं पृथ्वीवासी सभी लोगों के राजा हैं । आप दाहिने हाथ में वज्र को धारण करके विश्व के मायावियों का नाश करें ॥९ ॥

४६१९. आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१० ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने के लिए अक्षुण्ण, संयमित एवं कल्याणकारी धन प्रचुर मात्रा में हमें प्रदान करें । जिससे दासों (इन्द्रियों के दास, कुमार्गगामियों) को आर्य (श्रेष्ठ मार्गगामी) बनाया जा सके और मनुष्य के शत्रुओं का नाश हो सके ॥१० ॥

४६२०. स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पूजनीय एवं अनेकों द्वारा आहूत हैं । आप सभी लोगों द्वारा प्रशंसा किये गये घोड़ों से हमारे पास आएं । जिन अश्वों की गति को देवता एवं असुर भी नहीं रोक सकते हैं, उन अश्वों के साथ आप हमारे पास आएँ ॥११ ॥

[सूक्त - २३]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६२१. सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरस निकालने पर, उत्तम स्तोत्रों का ज्ञान होने पर, स्तुतियाँ सुनकर आप अश्वों को (रथ में) नियोजित करते हैं । आप हाथ में वज्र धारण करके आगमन करते हैं ॥१ ॥

४६२२. यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भयभीत यजमानों के कर्म (यज्ञ) विरोधी असुरों को जीतकर एवं युद्ध क्षेत्र में स्तोता-याजक के सहयोगी होकर, उनकी रक्षा करके उन्हें धैर्यवान् बनाएँ ॥२ ॥

४६२३. पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव सोमरस पीकर, सोमरस तैयार करने वाले को अच्छा निवास (गृह प्रदान) करते हैं । वे ही इन्द्रदेव स्तोताओं से प्रसन्न होकर, उन्हें सहज मार्ग एवं धन प्रदान करते हैं ॥३ ॥

४६२४. गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव वज्र को धारण करते हैं । वे अभिषुत सोमरस का पान करते हैं । वे इन्द्रदेव दोनों अश्वों के साथ तीनों सवनों में पहुंचते हैं । वे गोदानकर्ता को पुत्र प्रदान करते हैं तथा स्तोताओं की स्तुति का श्रवण करते हैं ॥४ ॥

४६२५. अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५ ॥

हम उन प्राचीन इन्द्रदेव को प्रिय लगने वाले स्तोत्रों का गायन करते हैं, वे हमारी रक्षा करें । सोमरस अभिषवण के पश्चात् हम इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं । स्तुति करते हुए याजक इन्द्रदेव को प्रवृद्ध करने के लिए हवि प्रदान करें ॥५॥

४६२६. ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६ ॥

हे सोमपायी इन्द्रदेव ! आपके लिए सोम तैयार करने के पश्चात् अब हम हवियों सहित स्तुति करते हैं । आपके निमित्त हम उन स्तोत्रों को मनोयोगपूर्वक अर्पित करते हैं । ये स्तोत्र इन्द्रदेव के उत्कर्ष के कारक हैं ॥६ ॥

४६२७. स नो बोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उ लोकम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप आनन्दित होकर हमारे द्वारा प्रेषित पुरोडाश को ग्रहण करें । गौ के दूध-दही मिले सोमरस का पान करें । यजमान द्वारा बिछाये गए आसन पर आप विराजें एवं आपके अनुगामी हम लोगों के स्थान का विस्तार करें ॥७ ॥

४६२८. स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥८ ॥

हे उग्र बल-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप निज इच्छानुसार प्रसन्न होकर सोमरस का पान करें । आप बहुतों द्वारा बुलाये गये हैं । हमारे द्वारा की जाने वाली स्तुति आप तक पहुँचे । इससे प्रसन्न होकर आप हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

४६२९. तं वः सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥९ ॥

हे मित्रो ! सोमरस अभिषुत करके, अन्नदाता इन्द्रदेव को सोमरस से तृप्त करें । उन इन्द्रदेव को अपनी सहायता के लिए प्रसन्न करने का यह अच्छा साधन है । वे इन्द्रदेव हमारा पोषण करें एवं हमारी सुरक्षा करें ॥९ ॥

४६३०. एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥१० ॥

हविरन्न युक्त यजमान के स्वामी इन्द्रदेव सोमरस के तैयार होने से (प्रसन्न होकर) सर्वाधिक प्रशंसा के योग्य धन प्रदान करते हैं । जो स्तोताओं को ज्ञानी बनाते हैं, ऐसे इन्द्रदेव की भरद्वाजों द्वारा स्तुति की गई है ॥१० ॥

[सूक्त- २४]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६३१. वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥१ ॥

सोमपान के पश्चात् हर्षित होने से इन्द्रदेव का बल बढ़ता है । सोमपान के समय सामगान से वे इन्द्रदेव प्रसन्न होते हैं । सोमपायी, धनवान् एवं तीव्रगामी इन्द्रदेव मनुष्यों द्वारा स्तुतिपूर्वक अर्चना करने योग्य हैं । ये द्युलोक निवासी स्तुतियों के स्वामी इन्द्रदेव सदैव (याजकों की) रक्षा करते हैं ॥१ ॥

४६३२. ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२ ॥

वे ज्ञानी, बलशाली, शत्रु-संहारक, भक्त की प्रार्थना सुनने वाले, अच्छे निवास देने वाले, स्तोताओं के संरक्षक, शिल्पकलाविदों के पोषक एवं यशस्वी अन्नदाता इन्द्रदेव हमें प्रसन्न होकर अन्न प्रदान करें ॥२ ॥

४६३३. अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३ तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बहुतों द्वारा आहूत हैं । चक्कों (पहियों, चक्रों) की धुरी जिस प्रकार चक्कों को सुस्थिर किये रहती है, उसी प्रकार आपकी महिमा से द्युलोक एवं भूलोक स्थिर हैं । वृक्ष की अनेक शाखाओं की तरह आपकी रक्षक शक्तियाँ फैलती हैं ॥३ ॥

४६३४. शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! सर्व संचारी गो-मार्ग की तरह आपकी शक्तियाँ भी सर्वत्र कर्म करने में समर्थ हैं । हे उत्तम दानदाता इन्द्रदेव ! आपकी शक्तियाँ बछड़ों की (बाँधने वाली) डोरियों की भाँति अनेक शत्रुओं को बाँध लेती हैं ॥४ ॥

४६३५. अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५ ॥

इन्द्रदेव प्रतिदिन, उत्तरोत्तर नवीन अद्‌भुत कार्य करते हैं । वे सत् एवं असत् (स्थायी और अस्थायी कर्मों) को बार-बार करते हैं । इन्द्र, वरुण, मित्र, पूषा एवं सवितादेव हमारे मनोरथों को पूर्ण करें ॥५ ॥

४६३६. वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! पर्वत के पृष्ठभाग से जिस प्रकार जल प्रवाहित होता है, वैसे ही यज्ञ कर्म एवं स्तुति करने से मनुष्यों को आपके द्वारा मनोवांछित फल प्राप्त होता है । हे स्तुतियों से पूजनीय इन्द्रदेव ! जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में अश्व तीव्र वेग से जाते हैं, उसी प्रकार अन्न प्राप्ति की इच्छा वाले भरद्वाज आदि आपके पास पहुँचते हैं ॥६ ॥

४६३७. न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७ ॥

जो इन्द्रदेव संवत्सर, महीनों एवं दिनों के द्वारा क्षीण नहीं होते । ऐसे इन्द्रदेव की काया स्तुतियों द्वारा पूजित होकर विकसित हो ॥७ ॥

४६३८. न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।
अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८ ॥

स्तुति किये जाने पर भी इन्द्रदेव दस्युओं (क्रूर पुरुषों) के वशीभूत नहीं होते । सुदृढ़ शरीर वाले इन्द्रदेव जब गमन करते हैं, तो ऊँचे-ऊँचे पहाड़ भी सुगम हो जाते हैं । अगाध (गहरे) स्थान भी सहज हो जाते हैं ॥८ ॥

४६३९. गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९ ॥

हे सोमपायी एवं पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप गम्भीर और महान् हृदय से बल एवं अन्न प्रदान करें । हे इन्द्रदेव ! आप दिन-रात तत्पर रहकर हमारी सुरक्षा करें ॥९ ॥

४६४०. सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप पास रहें या दूर रहें । यहाँ या वहाँ, जहाँ भी रहें, वहाँ से स्तुति करने वालों की रक्षा रण क्षेत्र में, घर में, जंगल में सब जगह करें । हमें वीर पुत्रादि प्रदान करके शतायु बनायें ॥१० ॥

[सूक्त- २५]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६४१. या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव !आपके पास जो भी सुरक्षा के उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ साधन हैं, उन सभी रक्षा साधनों से संग्राम में हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करें । आप स्वयं महान् होकर हमें भी महान् बनाएँ एवं अन्न प्रदान करें ॥१॥

४६४२. आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इनसे (उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ रक्षा साधनों के द्वारा) शत्रु सेना का संहार करने वाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए शत्रु की सेना के मन्यु को नष्ट करें एवं यज्ञ जैसे श्रेष्ठ कर्म करने वाले मनुष्यों के शत्रुओं को भी नष्ट करें ॥२ ॥

४६४३. इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे उन शत्रुओं का संहार करें, जो सम्मुख प्रकट होकर, निकट या दूर रहकर हमें मारना चाहते हैं । अपने बल से इनके बल को पराजित करके, इन्हें हमसे दूर हटा दें ॥३ ॥

४६४४. शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥४ ॥

जब पुत्र, पौत्र, गौ, जल एवं उर्वर भूमि के लिए परस्पर विवाद हो जाता है और युद्ध होते हैं, तब युद्धरत उन योद्धाओं में से आपके कृपा पात्र की विजय होती है ॥४ ॥

४६४५. नहि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
इन्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥५ ॥

आज तक जो भी, जितने भी सामर्थ्यशाली पैदा हुए हैं, उन्हें युद्ध में इन्द्रदेव ने जीता है; अतः कोई भी धर्षक एवं घमण्डी, शूरवीर जिसने भले ही शत्रुओं का नाश किया हो, आपसे युद्ध नहीं करता । आप सर्वश्रेष्ठ योद्धा हैं ॥५ ॥

४६४६. स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६ ॥

शत्रुओं को रोकने वाले, युद्ध या दास युक्त उत्तम घर के लिए युद्ध में परस्पर दो योद्धाओं में वही विजयी होगा, जिसके लिए ऋत्विग्गणों ने यज्ञ में इन्द्रदेव के निमित्त आहुति प्रदान की हो ॥६ ॥

४६४७. अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी भयभीत प्रजा की आप रक्षा करें । हे इन्द्रदेव ! आप उन उत्तम व्यक्तियों की दुःखों से रक्षा करें, जो आपको प्राप्त करते हैं । हे देव ! जिन स्तोताओं ने हमें अग्रिम स्थान प्रदान किया है; आप उन सबकी भी रक्षा करें ॥७ ॥

४६४८. अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् वीर हैं । शत्रुनाशक समस्त सामर्थ्य आप में स्थित है । हे इन्द्रदेव ! देवगणों ने आपको उत्तम बल प्रदान किया है, जिसके द्वारा आप संसार में शत्रुओं को पराजित कर सकें ॥८ ॥

४६४९. एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस प्रकार आप शत्रु-सेना का नाश करने की प्रेरणा हमारी सेना को प्रदान करें एवं हमारे हित साधन के निमित्त दुष्ट हिंसक आसुरी सेना का नाश करें । हे इन्द्रदेव !हम (भरद्वाज) स्तोता अन्न सहित आवास प्राप्त करें ॥९ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि-** भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

४६५०. श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! (सोम से) सिंचन करते हुए बहुत अन्न की कामना वाले हम आपका आवाहन करते हैं, आप हम सबकी इस प्रार्थना को सुनें । जब वीर योद्धा संग्राम क्षेत्रों में जाते हैं, तब उन निर्णायक दिनों में उन्हें संरक्षण एवं शक्ति प्रदान करें, जिससे शत्रु भयभीत हो जाएं ॥१ ॥

४६५१.त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप दुर्जनों के नाशक एवं सज्जनों के पोषक हैं । हे देव ! श्रेष्ठ अन्न प्राप्ति के निमित्त, अन्नवान् भरद्वाज, स्तुतियों द्वारा आपका आवाहन करते हैं । गौओं के लिए युद्ध करते समय आपकी कृपा (शक्ति) से वे मुष्टिका से ही शत्रु का विनाश कर देते हैं ॥२ ॥

४६५२.त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्न की कामना के लिये 'भार्गव ऋषि' को आप प्रेरणा दें । आपने हविदाता 'कुत्स' के लिए 'शुष्ण' असुर का संहार किया तथा 'अतिथिग्व' को सुख देने हेतु इस 'शम्बरासुर' का शिरच्छेद किया, जो अपने को अमर मानता था ॥३ ॥

४६५३ .त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने राजा 'वृषभ' को युद्ध-सिद्धि में परम उपयोगी रथ देकर, दस दिन तक होने वाले युद्ध में शत्रुओं से उनकी रक्षा की । 'वेतस' की सहायता करते हुए 'तुग्रासुर' को मार डाला । 'तुजि' नामक राजा को स्तुति करने पर प्रवृद्ध किया ॥४ ॥

४६५४. त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुनाशक हैं । हे वीर इन्द्रदेव ! आपने 'शम्बर' असुर की सौ-सौ एवं सहस्रों सेनाओं को नष्ट किया । यज्ञ के दुश्मन 'शम्बरासुर' को मार करके तथा 'दिवोदास' की रक्षा करके आपने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया ॥५ ॥

४६५५. त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रद्धा सहित यज्ञानुष्ठान करके प्राप्त सोमपान से प्रसन्न होकर, आपने राजा 'दभीति' की सुरक्षा के लिए 'चुमुरि' का नाश किया । हे इन्द्रदेव ! आपने वीर 'पिठीनस' को राज्य देकर शत्रु के साठ हजार वीरों को युद्ध- कौशल से मार डाला ॥६ ॥

४६५६.अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप शत्रुजयी एवं त्रिलोक के रक्षक हैं । स्तोतागण सुख एवं सामर्थ्य के निमित्त आपसे प्रार्थना करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त सुख-सामर्थ्य को स्तोताओं के साथ हम (भरद्वाज) भी प्राप्त करें ॥७ ॥

४६५७.वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८ ॥

हे पूजनीय इन्द्रदेव ! हम सखा भाव से आपकी स्तुति करते हैं । धन-प्राप्ति के निमित्त की जा रही इन स्तुतियों के कारण हम आपके प्रिय पात्र बनें । "प्रातर्दन" के पुत्र 'क्षत्रश्री' को सर्वाधिक ऐश्वर्य प्रदान करें । वे शत्रुओं को मारकर धन प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - २७]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र, ८ अभ्यावर्ती चायमान (दान स्तुति) । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६५८.किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥१ ॥

सोम से हर्षित इन्द्रदेव ने क्या किया ? सोमरस पीकर क्या किया ? सोमरस से मित्रता करके क्या किया ? प्राचीन एवं नये स्तुति करने वालों ने आपसे क्या प्राप्त किया ? ॥१ ॥

४६५९.सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥२ ॥

सोमपान से हर्षित हुए इन्द्रदेव ने श्रेष्ठ कर्म किए । सोमपान के बाद सत्कार्य । इसके साथ मित्रता करने पर भी सत्कार्य ही किए ।जो प्राचीन और नवीन स्तुति करने वाले हैं, उन्होंने आपके द्वारा सत्कार्य ही प्राप्त किया॥२ ॥

४६६०.नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥३ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! हम यह नहीं जानते कि आपसे बड़ा अन्य कोई महिमा वाला या ऐश्वर्यशाली होगा । आपकी सम्पूर्ण प्रशंसनीय सिद्धि और सामर्थ्य को भी हम नहीं जानते हैं ॥३ ॥

४६६१. एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके उस पराक्रम को क्या हम नहीं जानते, जिसके द्वारा आपने 'वरशिख' नामक असुर के पुत्रों का संहार किया था ? हे इन्द्रदेव ! उसी पराक्रम से प्रहार के निमित्त उद्यत वज्र की घोर ध्वनि से ही शत्रु ('वरशिख' के पुत्र) विदीर्ण हो गये थे ॥४ ॥

[ध्वनि तरंगों का उपयोग कठोर पदार्थों को तोड़ने तथा रोगों को नष्ट करने के लिए वर्तमान विज्ञानवेत्ता भी करने लगे हैं । वज्र की ध्वनि से असुर पुत्रों के विदीर्ण होने के पीछे ध्वनि के ऐसे ही विशिष्ट प्रयोग का संकेत मिलता है ।]

४६६२. वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५ ॥

इन्द्रदेव ने चायमान (चय की क्रिया में संलग्न रहने वाले के सहयोगी) के पुत्र अभ्यावर्ती (सतत आवर्तनशील) को उपयुक्त शिक्षा (परामर्श-कौशल) प्रदान करके 'वरशिख' (तेजस्वी) असुर के पुत्रों का वध किया । जब उन्होंने हरियूपिया (नगर या क्षेत्र) के पूर्व भाग में वृचीवान् (अवरोध उत्पन्न करने वाले) को मारा, तो दूसरा (असुर पुत्र) भय से विदीर्ण हो गया ॥५ ॥

[शरीर में जीव कोषों के निर्माण की प्रक्रिया को चय (एनाबॉलिज्म) तथा कोषों के विकारों को नष्ट करके बाहर निकालने की क्रिया को अपचय (कैटाबॉलिज्म) कहते हैं । चय की प्रक्रिया में लगे हुए (प्राणों) के पुत्र शरीर में सतत घूमने वाले प्रवाहों को इन्द्रदेव ने शक्ति दी, तो 'वरशिख' (श्रेष्ठ असुर रूप विषाणुओं) के पुत्रों (रोगों) का नाश हुआ । जब हरियूपिया (हरि-अश्व जैसे शक्तिशाली कण जहाँ से सम्बद्ध हैं, ऐसे) क्षेत्र (शरीर के अन्दर के हृदय, यकृत्, फेफड़े जैसे अंतरंग अवयवों) में रुकावट डालने वाले (वृचीवान्) का वध हुआ, तो अन्य भागों में सक्रिय विकार स्वतः ही विदीर्ण हो गये । यह शोध का विषय है कि शरीर में वरशिख (तुर्रेवाले) असुर कण या विषाणु कौन से हैं ? उनसे कौन से वृचीवान् (अवरोधक विकार) पैदा होते हैं ? दूसरी दृष्टि से यह मंत्र प्रकृति में सक्रिय चय-अपचय क्रिया के ऊपर भी घटित हो सकता है । अभ्यावर्ती (सतत आवर्तनशील-इलेक्ट्रॉन्स) को विशेष गति देकर प्रकृति में व्यापचय की क्रिया में अवरोधक-हानिकारक पदार्थों को नष्ट करने का भाव भी प्रकट होता है । इस आशय का संकेत अगले मंत्र क्र० ७ में मिलता है ।]

४६६३.त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दानान्यर्थान्यायन् ॥६ ॥

हे बहुतों द्वारा आहूत इन्द्रदेव ! यश एवं अन्न प्राप्त करने के लिए आपसे युद्ध करने वाले, यज्ञ के पात्रों को नष्ट करने वाले एवं कवचधारी 'वरशिख' के एक सौ तीस पुत्रों को आपने युद्ध में एक समय ही मार डाला ॥६ ॥

४६६४.यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७ ॥

घास खोजती गौओं की तरह जिन इन्द्रदेव के दो कान्तिवान् अश्व अन्तरिक्ष में विचरते हैं । उन्हीं इन्द्रदेव ने 'वृचीवान' के पुत्र 'दैववात' को प्रसन्न करते हुए 'तुर्वश' को 'सृञ्जय' के अधीन कर दिया ॥७ ॥

[इन्द्रदेव के दो कान्तिवान् अश्व (धन एवं ऋण विद्युत् प्रभार युक्त शक्तिशाली उपकण सब एटॉमिक पार्टिकल्स) अंतरिक्ष में भ्रमणशील हैं । उन्हीं के माध्यम से इन्द्रदेव ने दैववात (देवों के अनुकूल वात-प्रवाहों) को हर्षित कर तुर्वश (हिंसाशील कणों) को सृञ्जय (सृजनशील कणों) के अधीन (अनुकूल) कर दिया ।]

४६६५.द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।

अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! राजसूय यज्ञ करने वाले, बहुत दान देने वाले, 'चायमान' के पुत्र 'अभ्यावर्ती' ने हमें बीस गौएँ एवं रथ के साथ अनेक सेविकायें प्रदान की थीं । पृथु वंश के राजा 'अभ्यावर्ती ' की यह दक्षिणा अनश्वर है ॥८ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - गौएँ; २, ८ इन्द्र अथवा गौएँ ।**छन्द**- त्रिष्टुप्; २-४ जगती; ८ अनुष्टुप् ।]

४६६६. आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।

प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१ ॥

गौएं हमारे घर आकर हमारा कल्याण करें । वे (गौएँ) गोशाला में रहकर हमें आनन्दित करें । इन गौओं में अनेक रंग-रूप वाली गौएं बछड़ों से युक्त होकर, उषाकाल में इन्द्रदेव के निमित्त दुग्ध प्रदान करें ॥१ ॥

४६६७.इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।

भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप याजक एवं स्तोताओं के लिए अभिलषित अन्न-धन प्रदान करते हैं । उनके धन का कभी हरण नहीं करते; वरन् उसे निरन्तर बढ़ाते हैं । देवत्व को प्राप्त करने की इच्छा वालों को अखण्डित एवं सुरक्षित निवास देते हैं ॥२ ॥

आगे की कुछ ऋचाएँ गौओं को लक्ष्य करके कही गयी हैं । इनके अर्थ लौकिक गौओं के साथ ही इन्द्र या यज्ञ के पोषक प्रवाहों के ऊपर भी घटित होते हैं । ऋचा क्र० ५ में तो स्पष्ट गौओं को इन्द्ररूप कहा है, शक्ति प्रवाहों (किरणों) को ही यह संज्ञा दी जा सकती है -

४६६८. न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।

देवाँश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३ ॥

वे गौएँ नष्ट नहीं होतीं, तस्कर उन्हें हानि नहीं पहुँचा पाते । शत्रु के अस्त्र उन गौओं को क्षति नहीं पहुँचा पाते । गौओं के पालक जिन गौओं से देवों का यजन करते हैं, उन्हीं गौओं के साथ चिरकाल तक सुखी रहें ॥३ ॥

४६६९.न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।

उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४ ॥

रेणुका (धूल) उड़ाने वाले द्रुतगामी अश्व भी उन गौओं को नहीं पा सकेंगे । इन गौओं पर वध करने के लिए आघात न करें । याजक की वे गौएँ विस्तृत क्षेत्र में निर्भय होकर विचरण करें ॥ ४ ॥

४६७०.गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।

इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५ ॥

गौएँ हमें धन देने वाली हों । हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौएँ प्रदान करें । गोदुग्ध प्रथम सोमरस में मिलाया जाता है । हे मनुष्यो ! ये गौएँ ही इन्द्र रूप हैं । उन्हीं इन्द्रदेव को हम श्रद्धा के साथ पाना चाहते हैं ॥५ ॥

['ये गौएँ ही इन्द्र हैं' - रहस्यात्मक वचन है । इन्द्रदेव संगठक शक्ति वाले देवता हैं । परमाणुओं में घूमने वाले इलेक्ट्रॉन्स को न्यूक्लियस से बाँधे रहना उन्हीं का कार्य है । यह बन्धन शक्ति किरणों का ही है । ये गौएँ-शक्ति किरणें ही इन्द्रदेव का वास्तविक रूप हैं ।]

४६७१.यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६ ॥

हे गौओ !आप हमें बलवान् बनाएँ । आप हमारे रुग्ण एवं कृश शरीरों को सुन्दर-स्वस्थ बनाएँ ।आप अपनी कल्याणकारी ध्वनि से हमारे घरों को पवित्र करें । यज्ञ मण्डप में आपके द्वारा प्राप्त अन्न का ही यशोगान होता है ॥६ ॥

४६७२.प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७ ॥

हे गौओ ! आप बछड़ों से युक्त हों । उत्तम घास एवं सुखकारक स्वच्छ जल का पान करें । आपका पालक चोरी करने वाला न हो । हिंसक पशु आपको कष्ट न दें । परमेश्वर का कालरूप अस्त्र आपके पास ही न आए ॥७ ॥

४६७३.उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम्। उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके वीर्य (पराक्रम) में बलशाली का ओज संयुक्त हो । इन गौओं के उत्पादक (किरणों के प्रवाहों) के साथ उत्प्रेरक (केटेलेटिक एजेन्ट या शक्तिवर्धक तत्त्व) संयुक्त हों ॥८ ॥

[इन्द्रदेव का पराक्रम उनकी शक्ति किरणों-गौओं के माध्यम से ही प्रकट होता है । जिस प्रकार पदार्थजनित किरणों (एक्सरे, लेजर आदि) को उपकरणों के द्वारा प्रभावशाली बनाया जाता है, उसी प्रकार ऋषिगण प्रकृतिगत किरण-प्रवाहों को मंत्रों एवं यज्ञीय प्रयोगों द्वारा प्रभावशाली बनाते रहे हैं ।]

[सूक्त - २९]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६७४. इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! आपके नेता (यज्ञ के ऋत्विक् अथवा समाज के अग्रणी) श्रेष्ठ बुद्धि वाले एवं उदार हैं । वे स्तोत्रों का गायन करते हुए, सखा भाव से इन्द्रदेव की सेवा करते हैं । वज्रधारी इन्द्रदेव बहुत धन देते हैं; अतएव रमणीय एवं महान् इन्द्रदेव का, अपनी रक्षा के लिए पूजन करें ॥१ ॥

४६७५. आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२ ॥

जिन इन्द्रदेव के पास मनुष्यों का हितकारी धन है, जो स्वर्ण-रथ पर चढ़ते हैं एवं जिनके पुष्ट हाथों में घोड़ों की (नियंत्रक) लगाम है, जिन्हें रथ में जुते हुए अश्व मार्ग पर ले जाते हैं; ऐसे इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥२ ॥

४६७६. श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्व१र्ण नृतविषिरो बभूथ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वज्रधारण करके शत्रुओं को परास्त करते हैं । ऐश्वर्य की कामना से हम (भरद्वाज) आपके चरणों में सेवा समर्पित करते हैं । हे सर्वप्रधान इन्द्रदेव ! आप सुरभित आवरण धारण करते हैं । सबके लिए दर्शनीय आप सूर्यदेव की तरह सबका उत्साह बढ़ाते हैं ॥३ ॥

४६७७. स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४ ॥

इस समय पकाने योग्य पुरोडाश पकाये जाते हैं । लाजा तैयार किया जाता है । ऋत्विग्गण इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं । सोमरस निकालकर उसमें दुग्धादि श्रेष्ठ पदार्थ मिलाये जाते हैं । वे स्तुति करते हुए इन्द्रदेव का सामीप्य प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

४६७८. न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका बल अनन्त है । द्यावा-पृथिवी आपके बल से भयभीत हो काँपते हैं । जिस तरह गो पालक गौओं को तृप्त करता है, वैसे ही हम, स्तुति करते हुए इस यज्ञ में, आपको तृप्त करने के लिए उत्तम आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥५ ॥

४६७९. एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६ ॥

श्रेष्ठ नासिका अथवा सुन्दर मुकुट धारण करने वाले महान् इन्द्रदेव सुखपूर्वक आहूत किये जा सकते हैं । वे स्वयं आयें अथवा न आयें, स्तोताओं को धन प्रदान करते ही हैं । इस प्रकार पराक्रमी महावीर इन्द्रदेव अनुपम तेज एवं बल से बहुत से वृत्रासुर जैसे असुरों तथा शत्रुओं का नाश करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

४६८०. भूय इद्वावृधे वीर्यायँ एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१ ॥

पराक्रम करने के लिए पुनः ये महावीर (इन्द्रदेव) तत्पर हैं । वे श्रेष्ठ एवं अजर इन्द्रदेव धन देते हैं । वे द्यावा-पृथिवी से भी बड़े हैं । द्यावा-पृथिवी इन्द्रदेव के आधे भाग के तुल्य हैं ॥१ ॥

४६८१. अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥२ ॥

इन इन्द्रदेव के बल के महत्त्व को हम मानते हैं । जो कार्य इन्द्रदेव करते हैं, उनको नष्ट करने में कोई समर्थ नहीं है । उत्तम कर्म करने वाले इन्द्रदेव ने भुवनों का विस्तार किया है । इन्द्रदेव के प्रभाव से ही सूर्यदेव प्रतिदिन उदित होते हैं ॥२ ॥

४६८२. अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने ही आज भी और पहले भी नदियों के जल को प्रवाहित होने के लिए मार्गों का निर्माण किया । जिस तरह भोजन के निमित्त बैठा मनुष्य स्थिर होकर बैठता है, वैसे ही ये पर्वत आपने स्थिर किये हैं । हे श्रेष्ठ कर्म करने वाले इन्द्रदेव ! आपने सब लोक सुदृढ़ किए हैं ॥३ ॥

४६८३. सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके समान अन्य कोई देव नहीं है, यह सत्य ही है । आपके समान मनुष्य भी नहीं है । मनुष्यों

में तथा देवगणों में आपसे बढ़कर कोई नहीं है । जल को ढंककर सोने वाले वृत्रासुर का आपने ही नाश किया था और समुद्र की ओर जल प्रवाहित किया था ॥४ ॥

४६८४.त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जलराशि के मार्ग चारों ओर खोलकर जल प्रवाहित किया । आपने मेघ के बन्धन खोल दिए । सूर्य , उषा एवं स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी बनें ॥५ ॥

[सूक्त - ३१]

[ऋषि- सुहोत्र भारद्वाज । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप्; ४ शक्वरी । **]**

४६८५.अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१ ॥

हे धनपति इन्द्रदेव ! आप ही सम्पूर्ण धनों के स्वामी हैं । आप ही स्वयं अपने बाहुबल से प्रजाओं को धारण करते हैं । मनुष्यगण शत्रुओं को परास्त करने तथा पुत्र-पौत्रादि एवं वर्षा के निमित्त आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

४६८६.त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळहं भयते अज्मन्ना ते ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष में उत्पन्न मेघ, गिराने योग्य जल न होने पर भी आपके भय से जल बरसाने लगते हैं । अन्तरिक्ष, भूलोक, पर्वत, वन तथा समस्त चराचर जगत् आपके आगमन से भयभीत हो जाते हैं ॥२ ॥

४६८७.त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उस अति बलवान् , उग्रवीर असुर "शुष्ण" को पराजित किया । गौओं को बचाने के लिए संग्राम में कुयव का संहार किया । आपने सूर्यदेव के रथ का चक्र हर लिया और पापी राक्षसों का नाश किया ॥३ ॥

४६८८.त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः । अशिक्षो यत्र शच्या
शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४ ॥

हे बुद्धिमान इन्द्रदेव ! आपने सोमरस अर्पित करने वाले 'दिवोदास' को एवं स्तोता 'भरद्वाज' को प्रज्ञा सहित धन प्रदान किया । आपने 'शम्बर' असुर की सौ पुरियों को ध्वस्त किया ॥४ ॥

४६८९.स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५ ॥

हे अक्षुण्ण सत्य-बल के धनी इन्द्रदेव ! आप महायुद्ध के लिए अपने भयंकर रथ पर चढ़ें । हे सन्मार्गगामी इन्द्रदेव ! आप अपने रक्षा-साधनों सहित हमारे पास आकर, हमें यशस्वी बनायें ॥५ ॥

[सूक्त - ३२]

[ऋषि- सुहोत्र भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६९०. अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१ ॥

शत्रुनाशक, तीव्रगामी, वज्रधारी, स्तुति के योग्य, महान् इन्द्रदेव के लिए हमने अपने मुख से अपूर्व, सुखदायी एवं विस्तृत स्तोत्रों का उच्चारण किया ॥१ ॥

४६९१. स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रिणामसृजन्निदानम् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव, ज्ञानवानों अथवा माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) के हित के लिए मेघों को छिन्न-भिन्न करके द्यावा-पृथिवी को सूर्यदेव से प्रकाशित करते हैं । स्तुति किए जाने पर वे गौओं (किरणों) को मेघों से मुक्त करते हैं ॥२ ॥

४६९२. स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥३ ॥

उन बहुकर्मा इन्द्रदेव ने, यज्ञकर्ता एवं स्तुति करने वाले ऋषिगणों (अंगिराओं) के सहयोग से गौओं की प्राप्ति के निमित्त राक्षसों को पराजित किया । कवियों (दूरदर्शियों) के साथ मिलकर शत्रुओं के नगरों को ध्वस्त किया ॥३ ॥

४६९३. स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥४ ॥

स्तुति द्वारा उपासना के योग्य हे बलवान् इन्द्रदेव ! आप महान् अन्नों और बलों से युक्त होकर, नवीन बल बढ़ाने वाले सखाओं के साथ, सुख प्राप्ति के निमित्त आयें ॥४ ॥

४६९४. स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट्।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५ ॥

हिंसकों को वश में करने वाले इन्द्रदेव सदा ही अपने स्वयं के बलों से निरन्तर गमनशील तेजस्वी घोड़ों से युक्त होकर, जल-राशि को क्षोभरहित समुद्र की ओर प्रवाहित होने के लिए प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ३३]

[ऋषि- शुनहोत्र भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४६९५. य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान्।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! आप हमें अति बलशाली, स्तुति करने वाला, यज्ञ करने वाला एवं हव्यदाता पुत्र दें । वह पुत्र घोड़े पर बैठकर युद्ध में सुन्दर अश्वों वाले विरुद्धाचारी शत्रुओं को पराजित करे ॥१ ॥

४६९६. **त्वां ही३ न्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।**
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! विभिन्न प्रकार से स्तुति करने वाले मनुष्य, संग्राम में रक्षा के लिए आपको आहूत करते हैं । आपने अङ्गिराओं के साथ मिलकर पणियों को मारा था । आपकी उपासना करने वाला आपकी सुरक्षा में रहता हुआ अन्न प्राप्त करता है ॥२ ॥

४६९७. **त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।**
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! दस्युओं एवं आर्यों दोनों में जो शत्रु थे, उनका आपने वृत्रासुर की तरह वध किया । जिस प्रकार कुल्हाड़ी वृक्षों को काटती है, उसी प्रकार संग्राम में तीक्ष्ण आयुधों से आपने शत्रुओं को काटा ॥३ ॥

४६९८. **स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।**
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सर्वत्र गमन करने वाले हैं । हम, धन पाने की अभिलाषा से आपका आवाहन करते हैं । आप मित्ररूप होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें । वीरपुरुषों सहित संग्राम करने वाले हम रक्षा साधनों के लिए आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

४६९९. **नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।**
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आज और अन्य किसी समय भी आप हम सबके ही रहें । हमारे पास आकर हर समय आप हमें सुख देने वाले हों । गोसेवा की इच्छा वाले, स्तुति करने वाले, हमारा (याजक का), सुख और दुःख दोनों स्थितियों में आपसे सम्बन्ध बना रहे ॥५ ॥

[सूक्त - ३४]

[ऋषि- शुनहोत्र भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७००. **सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।**
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी प्राचीन काल में भी अगणित स्तोत्रों से स्तुति की जा चुकी है । आपके स्तोताओं की प्रशंसा होती है । (प्राचीन एवं नूतन) ऋषियों की स्तुतियाँ परस्पर मानो स्पर्धा सी करती हैं ॥१ ॥

४७०१. **पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।**
रथो न महे शवसे युजानो३ स्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव बहुतों द्वारा आवाहित किये गये, अद्वितीय, बहुतों से प्रशंसित, महान् एवं यजमानों द्वारा पूजित हैं । रथ (इच्छित वस्तुएं लाने वाले) की तरह बल लाभ के निमित्त इन्द्रदेव हम सबके लिए स्तुत्य हैं ॥२ ॥

४७०२. **न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।**
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥३ ॥

जिन इन्द्रदेव के कार्यों में, यज्ञ कर्म एवं स्तोत्रादि बाधक नहीं है, वे इन्द्रदेव (की सामर्थ्य व कर्मों) को बढ़ाते

हैं । स्तुति द्वारा सेवा के योग्य इन्द्रदेव की सैकड़ों एवं हजारों लोग वन्दना करते हैं । ये स्तोत्र इन्द्रदेव के लिए सुखकर होते हैं ॥३ ॥

४७०३. अस्मा एतद्दिव्य१ र्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।

जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥४ ॥

इस यज्ञ के दिन, अर्चना सहित, स्तोत्रों के समान (प्रिय) यह मिश्रित सोमरस इन्द्रदेव के लिए प्रस्तुत किया जाता है । जैसे मरुस्थल में प्रवाहित जल मनुष्यों को आनन्दित करता है, वैसे ही हवियों के साथ अर्पित स्तोत्र भी इन्द्रदेव को आनन्दित करते हैं ॥४ ॥

४७०४. अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।

असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥५ ॥

सब जगह जाने वाले इन्द्रदेव बड़े युद्ध में हम सबके रक्षक एवं हमें बढ़ाने वाले हैं, इसीलिए स्तोतागण इन्द्रदेव के लिए ही आग्रहपूर्वक स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि**- नर भारद्वाज । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

४७०५. कदा भुवन्रथक्षयाणि ब्रह्म कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः ।

कदा स्तोमं वासयोऽस्य राया कदा धियः करसि वाजरत्नाः ॥१ ॥

हे रथारूढ़ इन्द्रदेव ! हमारे स्तोत्र कब आप तक पहुँचने योग्य होंगे ? कब आप कृपा करके सैकड़ों लोगों का पोषण करने वाला पुत्र एवं धन हमें देंगे ? हमारे यज्ञ कर्मों को अन्न से रमणीय कब बनायेंगे ? ॥१ ॥

४७०६. कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।

त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे वीर पुरुषों से शत्रुओं के वीर पुरुषों को एवं हमारे वीर पुत्रों से शत्रुओं के वीर पुत्रों को (संग्राम-क्षेत्र में) कब मिलायेंगे ? आप भगोड़े शत्रुओं से दूध-दही और घी देने वाली गौएँ कब जीतेंगे ? हे इन्द्रदेव ! हमें धन की प्राप्ति कब करायेंगे ? ॥२ ॥

४७०७. कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।

कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं को कब अनेकों प्रकार के अन्न प्रदान करेंगे ? आप स्तोताओं को गौएं कब प्रदान करेंगे ? और आप कब हमारे कर्मों (यज्ञों) और स्तुतियों को अपने से संयुक्त करेंगे ? ॥३ ॥

४७०८. स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।

पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तुति करने वालों को गौएँ, घोड़े एवं बल देने वाला प्रसिद्ध अन्न प्रदान करें । आप अन्न और सुन्दर दुग्ध देने वाली गौओं को पुष्टि प्रदान करें । ये गौएँ और अन्न कान्तियुक्त हों, आप ऐसी कृपा करें ॥४ ॥

४७०९. तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।

मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान्ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव !आप अत्यन्त पराक्रमी हैं । आप विभिन्न योजनाएँ बनाकर शत्रु का संहार करें । हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ पदार्थों के देने वाले हैं ।हम स्तोता उत्तम स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । हे देव !अङ्गिराओं को अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥

[सूक्त - ३६]

[ऋषि- नर भारद्वाज । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७१०. सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः सत्रा रायोऽध ये पार्थिवासः ।
सत्रा वाजानामभवो विभक्ता यद्देवेषु धारयथा असुर्यम् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोम पीकर आपका हर्षित होना हम लोगों का हित करने वाला होता है । देवों के मध्य आप सर्वाधिक बलसम्पन्न हैं । आप अन्नदाता हैं । हे इन्द्रदेव ! पृथ्वी आदि में आपके समस्त धन वास्तव में सबके हित करने वाले हैं ॥१ ॥

४७११.अनु प्र येजे जन ओजो अस्य सत्रा दधिरे अनु वीर्याय ।
स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च क्रतुं वृञ्जन्त्यपि वृत्रहत्ये ॥२ ॥

इन्द्रदेव के बल के कारण यजमान हमेशा इन्द्रदेव को पहले पूजते हैं । वे इन्द्रदेव शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, उन्हें पकड़ने वाले और उनको मारने वाले हैं । शुभकर्मकर्त्ता इन्द्रदेव वृत्र का वध करने वाले हैं; इसी कारण याजक इन्द्रदेव की सेवा करते हैं ॥२ ॥

४७१२.तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३ ॥

बल एवं शौर्य-पराक्रमयुक्त संरक्षक मरुद्गण और रथ में जुतने वाले घोड़े आदि इन्द्रदेव की सेवा करते हैं । जैसे समस्त नदियाँ अन्ततः सहज ही समुद्र में पहुँचती (गिरती) हैं, वैसे समस्त बलयुक्त स्तुतियाँ इन्द्रदेव तक पहुँचती हैं ॥३ ॥

४७१३.स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तुति से प्रसन्न होकर, आप बहुतों को अन्न सहित घर देने वाले हैं । हमें भी अन्न प्रदान करें । आप समस्त श्रेष्ठ प्राणियों के स्वामी हैं, सभी भुवनों के आप अधिपति हैं ॥४ ॥

४७१४.स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे श्रेष्ठ प्रशंसनीय स्तोत्रों को सुनें । हमारे द्वारा पूजा कराने के इच्छुक आप सूर्यदेव के समान शत्रुओं को जीतकर, हमारे लिए पहले के समान ही (हितकारी) रहें ॥५ ॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७१५.अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके रथ मे जुते हुए घोड़े हमारे पास आएं । वे विश्ववन्द्य रथ साथ लाएं । आत्मज्ञानी ऋषि आपकी स्तुति करते हैं । वे आपकी कृपा से आनन्द प्राप्त करते हुए सिद्धि प्राप्त करें ॥१ ॥

४७१६.प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।

इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद्द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥२ ॥

हमारे यज्ञ में प्रवाहित होने वाला सोमरस, द्रोण कलशों में भरा जाता है । आनन्द के स्वामी इन्द्रदेव इस सोम का पान करें ॥२ ॥

४७१७.आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।

अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥३ ॥

सर्वत्रगामी रथ में जुते घोड़े ऋजुमार्गगामी हैं । वे सुन्दर रथ में बलशाली इन्द्रदेव को यज्ञ में लाएँ । इस अमृत रस (सोम) को वायु विकृत न करे ॥३ ॥

४७१८.वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।

यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४ ॥

अति शीघ्र श्रेष्ठ कर्म करने वाले इन्द्रदेव, हविदाता यजमान को धनवानों में श्रेष्ठ धनवान् बनाते हैं । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप पापनाशक एवं पापियों को दण्डित करने वाले हैं । यह धन ज्ञानियों के लिए विशेषतः कल्याणकारी होता है ॥४ ॥

४७१९.इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।

इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५ ॥

इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों के द्वारा प्रवृद्ध होकर हमें उत्तम बल और अन्न प्रदान करें । शत्रु संहारक इन्द्रदेव शत्रुओं का नाश करके हमें जल्दी ही उन धनों को दें ॥५ ॥

[सूक्त - ३८]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता**- इन्द्र । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

४७२०.अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।

पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥१ ॥

आश्चर्यजनक इन्द्रदेव इस पात्र से सोमरस का पान करें । महान् तेजस्वी इन्द्रदेव इस आवाहन का श्रवण करें । सुबुद्धिपूर्वक की गई याजक की दिव्य स्तुतियों और आहुतियों को ग्रहण करें ॥१ ॥

४७२१. दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।

एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१ गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२ ॥

इन इन्द्रदेव के श्रोत्र, अति दूर से भी किये जाने वाले स्तोत्रों को सुनने में समर्थ हैं । स्तोता उच्च स्वर से स्तुति करते हैं । ये स्तुतियाँ इन्द्रदेव को आकर्षित करके हमारे समीप लाएँ ॥२ ॥

४७२२. तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।

ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महाँश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अजर, पुरातन हैं । हम आपकी उपासना करते हैं । इन्द्रदेव में ही स्तुतियाँ और आहुतियाँ लीन होती हैं । यह महान् यज्ञ भी इनके द्वारा ही बढ़ता है ॥३ ॥

४७२३. **वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।**
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४ ॥

जिन इन्द्रदेव को यज्ञ, सोम वर्धित करते हैं, (उन्हें ही) ज्ञान, स्तोत्र, प्रहर, उषा, रात्रि, दिवस, मास एवं संवत्सर आदि भी बढ़ाते हैं ॥४ ॥

४७२४. **एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।**
महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥५ ॥

हे अति महान् बलशाली इन्द्रदेव ! धन, यश, सुरक्षा (की प्राप्ति) एवं शत्रुओं को पराजित करने के लिए हम आपकी सेवा करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ३९]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७२५. **मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः ।**
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस, फलदायक, हर्षित करने वाला, दिव्य ज्ञान बढ़ाने वाला और मधुर है, आप इसका पान करें । हे देव ! स्तोताओं को आप गो दुग्धादि एवं अन्न प्रदान करें ॥१ ॥

४७२६. **अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः ।**
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणींर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥२ ॥

इन्द्रदेव ने गौओं को मुक्त कराने के निमित्त अङ्गिराओं के सहयोग से पणियों को पराजित किया ॥२ ॥

४७२७. **अयं द्योतयदद्युतो व्य१क्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।**
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस दिन-रात और वर्ष को प्रकाशित करता है । देवगणों ने इसी सोमरस को दिवसों के ध्वज रूप में स्थापित किया है । सोम ने ही उषाओं को तेजस्वी बनाया है ॥३ ॥

४७२८. **अयं रोचयदरुचो रुचानो३यं वासयद्व्यृ१ तेन पूर्वीः ।**
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४ ॥

ये इन्द्रदेव याजकों को वाञ्छित फल प्रदान करते हैं । इन्हीं इन्द्रदेव ने अश्वों वाले रथ पर धनयुक्त होकर गमन किया । सूर्यदेव के समान तेजस्वी इन्द्रदेव ने अपने प्रकाश से अन्धकार युक्त लोकों और उषा को प्रकाशित किया ॥४ ॥

४७२९. **नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः ।**
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं से स्तुत्य होकर उन्हें उत्तम धन एवं अन्न दें । उपासकों को आप जल, अन्न, बिना विष वाले वृक्ष, गौएँ, अश्व, बल एवं जनशक्ति प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ४०]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७३०. इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके आनन्द के निमित्त है । आप अपने मित्रवत् अश्वों को रथ से खोलकर छोड़ दें और हम सबको स्तुति गान की प्रेरणा दें । स्तोताओं को अन्न प्रदान करें ॥१॥

४७३१. अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन्।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपने उत्पन्न होते ही हर्षित होकर वीरता के कार्य करने के लिए जिस सोमरस का पान किया था. उसी प्रकार अब भी इसका पान करें । गौएँ (दुग्ध के लिए), ऋत्विज (कूटने वाले), पहाड़ के पत्थर (कूटने-पीसने के उपरकण), जल (मिलाने के लिए) की सहायता से यह सोमरस बनाया गया है ॥२॥

४७३२. समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! अग्नि प्रदीप्त है एवं सोमरस तैयार है । अब आपके रथ में युक्त घोड़े आपको यज्ञशाला में लाएँ । हम मनोयोगपूर्वक आपका आवाहन करते हैं । आप आएँ और हमारा कल्याण करें ॥३॥

४७३३. आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम्।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमरस पीने के लिए बार-बार आये हैं । आप हमारी स्तुति को सुनकर यज्ञ में पधारें । याजक आपको पुष्ट करने के लिए यह सोम अर्पित करता है । आप सोम ग्रहण करें ॥४॥

४७३४. यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं । आप दूरस्थ द्युलोक में हों अथवा घर में या जहाँ कहीं भी हों, वहीं से हमारी स्तुति को सुनकर मरुद्गणों सहित पधारकर हमारी रक्षा करें ॥५॥

[सूक्त - ४१]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

४७३५. अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! शान्त होकर हमारे यज्ञ में पधारें । यह सोमरस आपके निमित्त है । जैसे गौएँ गोष्ठों में जाती हैं, वैसे ही यह सोमरस कलशों में जाता है । यजनीय देवगणों में प्रमुख हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निकट आएँ ॥१॥

४७३६. या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम्।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप उत्तम जिह्वा से मधुर रस की तरंगों को सदैव ग्रहण करते हैं । उसी से इस सोमरस का पान कर हमारी रक्षा करें । अध्वर्यु आपके निकट उपस्थित हो रहे हैं । गौओं के रक्षक हे इन्द्रदेव ! आप वज्र से शत्रुओं का संहार करें ॥२ ॥

४७३७. एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३ ॥

इन्द्रदेव के निमित्त यह द्रवरूप, बलवर्धक तथा सभी प्रकार से अभीष्ट-वर्षक सोमरस तैयार है । हे पराक्रमी, युद्धजयी इन्द्रदेव ! जिसके आप स्वामी हैं, जो आपका अन्न है, उस सोमरस का आप पान करें ॥३ ॥

४७३८. सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! शोधित सोम अशोधित सोम से श्रेष्ठ है । यह आपको आनन्द देने वाला है । आप सोमरस के समीप पधारें । हे शत्रु का संहार करने वाले इन्द्रदेव ! आप इसका पान कर समस्त बलों का विकास करें ॥४ ॥

४७३९. ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपका आवाहन करते हैं, यह सोमरस आपके लिए पुष्टिकारक है । आप यहाँ पधारें । आप इस सोमरस का पान कर आनन्दित हों तथा संग्राम में हमारी एवं प्रजाओं की रक्षा करें ॥५ ॥

[सूक्त - ४२]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- अनुष्टुप् ; ४ - बृहती ।]

४७४०. प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर । अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दघ्वने नरे ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! इन्द्रदेव के लिए सोमरस प्रेषित करें । वे इन्द्रदेव सर्वत्र गमन करने वाले, सर्वज्ञ एवं यज्ञ के प्रधान हैं ॥१ ॥

४७४१. एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् । अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

हे ऋत्विजो ! आप सोम के पात्रों सहित संस्कारित , रसयुक्त, दीप्तिमान् सोमरस को रुचिपूर्वक पीने वाले इन इन्द्रदेव के पास जाकर प्रार्थना करें ॥२ ॥

४७४२. यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ । वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३ ॥

हे ऋत्विजो ! रसयुक्त , दीप्तिमान् सोम को लेकर मनोरथों को जानने वाले इन्द्रदेव की शरण में जाने पर वे विघ्नों को दूर करते हुए आपकी सभी इच्छाओं को पूर्ण कर देंगे ॥३ ॥

४७४३. अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४ ॥

हे अध्वर्यो ! इन इन्द्रदेव के लिए प्राणरूप सोमरस भरपूर मात्रा में प्रदान करें । वे इन्द्रदेव स्पर्धा योग्य तथा जीतने योग्य शत्रुओं को विनष्ट करके आपकी रक्षा करेंगे ॥४ ॥

[सूक्त - ४३]

[ऋषि- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता- इन्द्र । छन्द- उष्णिक् ।]

४७४४. यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस को पी करके मदोन्मत्त आपने दिवोदास के कल्याण के लिए शम्बरासुर का हनन किया, उस शोधित सोमरस का आप पुनः सेवन करें ॥१ ॥

४७४५. यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अति उत्साहवर्धक सोमरस , प्रातः, मध्याह्न और सायं-तीनों कालों में तैयार होता है, उसे आप ही ग्रहण करते हैं । इस अभिषुत सोमरस का आप पान करें ॥२ ॥

४७४६. यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळहा अवासृजः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस का पान करके आपने गौओं को मुक्त कराया था । तैयार किये गये उसी प्रकार के इस सोमरस का आप पान करें ॥३ ॥

४७४७. यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः । अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अन्नरूप से जिस सोमरस को पीकर हर्षित होते हैं एवं विशिष्ट बल युक्त होते हैं, वैसा ही सोमरस आपके लिए तैयार है । आप इसे ग्रहण करें ॥४ ॥

[सूक्त - ४४]

[ऋषि- शंयु बार्हस्पत्य । देवता - इन्द्र. छन्द- त्रिष्टुप् , १-६ अनुष्टुप्; ७-९ विराट्; ८ त्रिष्टुप् अथवा विराट् ।]

४७४८. यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१ ॥

हे शक्ति - सम्पन्न इन्द्रदेव ! शोभायमान, अति देदीप्यमान उपासकों को धन देने वाला यह सोमरस आपको आनन्द देने वाला है ॥१ ॥

४७४९. यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल को बढ़ाने वाले सोम के रक्षक हैं । आपको हर्ष प्रदान करने वाला यह सोम, स्तुति करने वालों को वैभव प्रदान करता है ॥२ ॥

४७५०. येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अन्नरूप सोम की रक्षा करते हैं । उसी सोमरस का पान करके आप मरुद्गणों के सहयोग से शत्रुओं का संहार करते हैं । वह सोमरस आपको आनन्दित करता है ॥३ ॥

४७५१. त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् । इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥४ ॥

यजमानों के हित के लिए कल्याणकारी बल एवं अन्न के अधिपति, शत्रुओं को पराजित करने वाले, यज्ञ के नायक, श्रेष्ठ दाता, सर्वज्ञ इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं ॥४ ॥

४७५२. यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः । तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥५॥

हमारे द्वारा की जा रही स्तुतियों से इन्द्रदेव का वह बल विवर्धमान होता है, जिसके द्वारा वे शत्रुओं को पराजित करके धन प्राप्त करते हैं । इन्द्रदेव के उस बल की सराहना द्यावा-पृथिवी भी करते हैं ॥५ ॥

४७५३. तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि । विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥६ ॥

हे स्तोताओ ! आप इन्द्रदेव की स्तुति के लिए स्तोत्रों को प्रसारित करें । बुद्धिमानों के समान सामर्थ्ययुक्त इन्द्रदेव हमारे रक्षक हैं ॥६ ॥

४७५४. अविदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिधौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७ ॥

यज्ञकर्म करने में कुशल याजकों को वे इन्द्रदेव जानते हैं । सोमरसपायी इन्द्रदेव स्तुति करने वालों को उत्तम धन प्रदान करते हैं । द्यावा-पृथिवी को कम्पित करने वाले अश्वों के साथ इन्द्रदेव सखा भाव वालों की रक्षा करते हैं ॥७ ॥

४७५५. ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥८ ॥

ऋत्विग्गण इन्द्रदेव का आवाहन उसी सोमरस के लिए करते हैं, जो यज्ञ में पिया जाता है । वे विशाल शरीर वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव हम स्तोताओं के स्तोत्रों को सुनकर हमारे पास आएँ ॥८ ॥

४७५६. द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें तेज, बल एवं प्रचुर अन्न प्रदान करें । अपने शत्रुओं को भगाएँ एवं हमारी रक्षा करें; ताकि हम सब धन और अन्न के सहित सुख से रह सकें ॥९ ॥

४७५७. इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।
नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमसे अप्रसन्न न हों, इसीलिए हम आपको आहुति प्रदान करते हैं । आपसे श्रेष्ठ अन्य कोई हमारा मित्र नहीं है । यदि आपकी ऐसी महिमा न होती, तो आप रत्नों (श्रेष्ठ सम्पदाओं) के प्रेरक न कहलाते ॥१० ॥

[देवशक्तियों द्वारा श्रेष्ठ विभूतियाँ किन्हीं श्रेष्ठ उद्देश्यों के लिए दी जाती हैं । उन्हें हीन उद्देश्यों से लगाना देवशक्तियों को कष्ट देकर, उनको क्रोधित करने जैसा ही है ।]

४७५८. मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् बलवान् हैं, हमें हिंसक असुरों से बचाएँ । आप धनवान् हैं । हम आपके मित्र बनकर रहें एवं दुःख न पायें । आपके निमित्त जो सोमरस तैयार नहीं करते एवं हवि प्रदान नहीं करते तथा आपके कार्यों में उत्पात मचाने वाले शत्रु हैं, आप उनका विनाश करें ॥११ ॥

४७५९. उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२ ॥

मेघ जिस तरह गर्जना (ध्वनि) उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव स्तुतिकर्ताओं के लिए घोड़े, गौएँ उत्पन्न करते हैं । धनवान् (धन का दुरुपयोग करके) आपको कष्ट न पहुँचाएँ ॥१२ ॥

४७६०. अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।

यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३ ॥

हे ऋत्विजो ! आप महत्त्वपूर्ण कर्म करने वाले इन्द्रदेव के लिए सोमरस तैयार करें । वे इन्द्रदेव ही सोमाधिपति हैं । ये इन्द्रदेव पुरातन एवं नवीन स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१३ ॥

४७६१. अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।

तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥१४ ॥

सोमरस पान कर उत्साहित ज्ञानी इन्द्रदेव ने विपरीत योजना बनाने वाले शत्रुओं का संहार किया था । इन वीर इन्द्रदेव के लिए सोमरस प्रस्तुत करें । सोमपान करके वे इन्द्रदेव, कपटपूर्ण ढंग से घेरकर कष्ट देने वाले शत्रुओं का संहार करें ॥१४ ॥

४७६२. पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।

गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥१५ ॥

इस तैयार सोमरस का पान करके वे रक्षक, निवास दाता इन्द्रदेव वज्र द्वारा वृत्रासुर का वध करें । वे इन्द्रदेव दूर हों , तो भी इस यज्ञ में आएँ ॥१५ ॥

४७६३. इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।

मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद्द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६ ॥

यह सोमरस इन्द्रदेव का अति प्रिय पेय पदार्थ है । वे योग्य पात्र से इसका पान कर प्रसन्न और हर्षित हों । उनकी कृपा से शत्रु और पाप हमसे दूर हों ॥१६ ॥

४७६४. एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।

अभिषेणाँ अभ्या३ देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७ ॥

हे शूरवीर, धनवान् इन्द्रदेव ! सोमरस का पान कर आप हमारे विरोधी शत्रुओं का आयुधों सहित विनाश करें तथा उन्हें पराजित करके हमसे दूर भगायें ॥१७ ॥

४७६५. आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१ स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।

अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥१८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप धनवान् हैं । इन संग्रामों में हमें सुखदायी बहुत सा धन प्राप्त कराएँ । आप हमें विजय प्राप्ति के योग्य सामर्थ्य प्रदान करें तथा पुत्र-पौत्रों एवं जल-वृष्टि से हमें समृद्ध बनाएँ ॥१८ ॥

४७६६. आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।

अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अश्व बलवान् , कामनाओं की पूर्ति में सहायक, रथ में स्वयं युक्त होने वाले, वेगवान् , तथा प्रचुर वज्र जैसे तीक्ष्ण भार वहन करने वाले हैं । वे सोमपान करके आनन्दित होने के लिए आपको इस यज्ञ में लाएँ ॥१९ ॥

४७६७. आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं । समुद्र की लहरों के समान आनन्दित करने वाला यह सोमरस आपके पात्र में है । ऋत्विग्गण आपके लिए अभिषुत सोमरस प्रेषित करते हैं ॥२० ॥

४७६८. वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥२१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह मधुर, सरस सोम आपके लिए प्रस्तुत है । आप ही नदियों के जल को प्रवाहित करने वाले एवं प्राणियों को अभीष्ट प्राप्ति हेतु बलवान् बनाने वाले हैं ॥२१ ॥

४७६९. अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२ ॥

इस तेजस्वी सोम ने इन्द्रदेव से युक्त होकर 'पणि' असुर को बल से रोका । इसी सोम ने धनों के पालक के अशिव (अकल्याणकारी) आयुधों एवं माया (प्रपंचों) को नष्ट किया ॥२२ ॥

४७७०. अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३ ॥

इसी (तेजस्वी सोम) ने उषाकाल को सूर्य से युक्त किया । इसी ने सूर्यदेव को तेजस्वी बनाया । तीन प्रकार (तीनों सवनों) वाले इसी (सोम) ने तीसरे स्थान पर छिपे अमृत को प्राप्त किया ॥२३ ॥

४७७१. अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४ ॥

इसी (सोम) ने द्यावा-पृथिवी को सुस्थिर किया है । इसी ने सूर्यदेव के रथ में सात किरणों को युक्त किया है । इसी ने गौओं में परिपक्व दुग्ध को स्थापित किया है । इसी सोम ने दुग्ध को शक्ति से भरपूर किया है, जो इस दस इन्द्रियों वाले शरीर को पुष्ट करता है ॥२४ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि**- शंयु बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र; ३१- ३३ बृबुतक्षा । **छन्द**- गायत्री , २९ अतिनिचृत् , ३१ पाद निचृत् (गायत्री), ३३ अनुष्टुप् ।]

४७७२. य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् । इन्द्रः स नो युवा सखा ॥१ ॥

शत्रुओं के द्वारा तुर्वश और यदु (पराक्रमी राजाओं) को बहुत दूर फेंका गया था । वहां से इन्द्रदेव ही उन्हें उत्तम नीति से सरलतापूर्वक लौटाकर लाए थे । वे युवा (स्फूर्तिवान्) इन्द्रदेव हमारे मित्र हैं ॥१ ॥

४७७३. अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२ ॥

इन्द्रदेव अज्ञानी को अन्न प्रदान करते हैं । धीरे-धीरे चलने वाले अश्वों से भी शत्रुओं को परास्त कर उनका धन हर लेते हैं ॥२ ॥

४७७४. महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३ ॥

इन्द्रदेव की संचालक शक्तियाँ अनेक हैं । इन्द्रदेव की स्तुतियाँ भी अनेक प्रकार की हैं । उनकी रक्षा करने वाली शक्ति भी कमजोर नहीं पड़ती ॥३ ॥

४७७५. सखायो ब्रह्मवाहसेऽर्चत प्र च गायत । स हि नः प्रमतिर्मही ॥४ ॥

हे मित्रो ! आप सब इन्द्रदेव की प्रार्थना करें । आप उन्हीं का पूजन करें, वे इन्द्रदेव ही हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

४७७६. त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि । उतेदृशे यथा वयम् ॥५ ॥

हे वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्रदेव ! आप स्तुति करने वालों के रक्षक हैं । आप हम सबकी रक्षा करें ॥५ ॥

४७७७. नयसीद्वति द्विषः कृणोष्युक्थशंसिनः । नृभिः सुवीर उच्यसे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं को हमसे दूर भगाते हैं । हम आपकी प्रशंसा करते हैं । आप श्रेष्ठ वीर कहलाते हैं ॥६ ॥

४७७८. ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ॥७ ॥

इन्द्रदेव ज्ञानी हैं, अतः ज्ञानपूर्वक स्तुत्य हैं । वे मित्र हैं; प्रशंसा के योग्य हैं, ऐसे इन्द्रदेव को हम स्तुति करके वैसे ही बुलाते हैं, जैसे दोहन के लिए गौओं को बुलाया जाता है ॥७ ॥

४७७९. यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनाषहः ॥८ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव के दोनों हाथों में दोनों प्रकार की (दिव्य एवं पार्थिव सम्पत्तियाँ) हैं, ऐसा ऋषियों ने कहा है ॥८ ॥

४७८०. वि दृळहानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥९ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप सर्वशक्तिमान् हैं । आप शत्रुओं के किलो, नगरों एवं बलों को ध्वस्त करने वाले हैं । हे अनानत् (न झुकने वाले) इन्द्रदेव ! आप उनकी माया को नष्ट करें ॥९ ॥

४७८१. तमु त्वा सत्य सोमपा इन्द्र वाजानां पते । अहूमहि श्रवस्यवः ॥१० ॥

हे सोमरस पीकर आनन्दित हुए इन्द्रदेव ! हम अन्न प्राप्ति की इच्छा से आपका आवाहन करते हैं ॥१० ॥

४७८२. तमु त्वा यः पुरासिथ यो वा नूनं हिते धने । हव्यः स श्रुधी हवम् ॥११ ॥

युद्ध में सहायता के लिए प्राचीनकाल में आपको ही बुलाया गया था, भविष्य में भी आपको ही बुलाया जायेगा । जो संग्राम के समय बुलाए जाते हैं । जिनकी सहायता से शत्रु द्वारा धन प्राप्त होता है । उन इन्द्रदेव को हम बुलाते हैं । वे हमारे आवाहन को सुनें ॥११ ॥

४७८३. धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् । त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव !आप हमारी स्तुति से प्रसन्न हों । हम आपके अनुकूल होकर, शत्रु को जीतकर धन प्राप्त करें ॥१२ ॥

४७८४. अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव !आप वीर एवं स्तुति के योग्य हैं । आपने शत्रुओं के धन को प्राप्त करने के लिए उन्हें जीता ॥१३ ॥

४७८५. या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव !आप तीव्रगामी हैं । शत्रु को जीतने के लिए आप उसी वेग से हमारे रथ को चलने की प्रेरणा दें ॥१४ ॥

४७८६. स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना । जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महारथी हैं । आप अपने शत्रुओं को जीतने वाले रथ से शत्रुओं की सम्पत्ति को जीते ॥१५ ॥

४७८७. य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६ ॥

जो इन्द्रदेव प्रजाओं के स्वामी हैं, बल से होने वाले कार्यों को करने वाले एवं सबको विशेष दृष्टि से देखने वाले हैं, उन इन्द्रदेव की स्तुति करें ॥१६ ॥

४७८८. यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा । स त्वं न इन्द्र मृळय ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सबकी रक्षा करने वाले मित्र रूप हैं । आप सुखदाता एवं स्तोताओं के बन्धु सदृश हैं । आप हमें सुख प्रदान करें ॥१७ ॥

४७८९. धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः । सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप असुरों का संहार करने के लिए वज्र को धारण करें और स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को पराजित करें ॥१८ ॥

४७९०. प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९ ॥

जो इन्द्रदेव मित्ररूप, स्तुति करने वालों के प्रेरक, धन देने वाले एवं आवाहन करने योग्य हैं । हम उन इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१९ ॥

४७९१. स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते । गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥२० ॥

जो इन्द्रदेव अतिशय स्तुत्य एवं तीव्रगामी हैं, वे इन्द्रदेव समस्त पार्थिव धनों के एक मात्र स्वामी हैं ॥२० ॥

४७९२. स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः । गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥२१ ॥

हे गोपते इन्द्रदेव ! आप बहुत सी गौएँ एवं घोड़े प्रदान करके हमारी इच्छाओं की पूर्ति करें ॥२१ ॥

४७९३. तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥२२ ॥

हे स्तुतिरत स्तोताओ ! आप शत्रु को जीतने वाले इन्द्रदेव का यशोगान करें । जैसे गाय उत्तम घास से प्रसन्न होती है, वैसे ही तैयार सोम सहित स्तुति से इन्द्रदेव सुख पाते हैं ॥२२ ॥

४७९४. न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥२३ ॥

सभी के आश्रयदाता वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को सुनने के बाद हमें धन-धान्य के रूप में अपार वैभव देने से नहीं रुकते हैं ॥२३ ॥

४७९५. कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हिंसा करने वालों, गोशाला से गौएँ चुराने और उन्हें छिपा देने वालों को आप शीघ्रता से ढूँढ़ कर दण्डित करें और गौओं को मुक्त कराएँ ॥२४ ॥

४७९६. इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः । इन्द्र वत्सं न मातरः ॥२५ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौएँ जिस तरह बछड़ों की पुकार पर उनकी ओर भागती हैं, वैसे ही ये स्तुतियाँ आपकी ओर ही गमन करती हैं ॥२५ ॥

४७९७. दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप गाय एवं घोड़ों की इच्छा करने वालों की इच्छा को पूर्ण करते हैं । आपकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती है ॥२६ ॥

४७९८. स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७ ॥

हे इन्द्रदेव !आप अपने लिए प्रदत्त अन्नरूप सोम से हृष्ट-पुष्ट हों । स्तोताओं को निन्दक के अधीन न होने दें ॥२७ ॥

४७९९. इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥२८ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! जिस प्रकार दुधारू गौएँ बछड़ों के पास स्वयं ही जा पहुँचती हैं, उसी प्रकार सोम निष्पादन के समय स्तुतियाँ आपके पास स्वतः पहुँचती हैं ॥२८ ॥

४८००. पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥२९ ॥

हमारी श्रेष्ठतम स्तुतियाँ आपको प्राप्त होती हैं । हविष्यान्न के साथ (संयुक्त होकर) वे आपको बलवान् बनायें ॥२९ ॥

४८०१. अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । अस्मान्राये महे हिनु ॥३० ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे स्तोत्र आप तक पहुँचें, उनसे प्रसन्न होकर आप हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥३० ॥

४८०२. अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१ ॥

'बृबु' ने पणियों (व्यापारियों अथवा असुरों) के बीच ऊँचा स्थान प्राप्त किया । गंगा के ऊँचे तटों के समान वे महान् हुए ॥३१ ॥

४८०३. यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी । सद्यो दानाय मंहते ॥३२ ॥

वायु की तरह शीघ्रगामी बृबु की हजारों दान देने की कल्याणकारिणी प्रवृत्ति, धन की कामना से स्तुति करने वाले मुझ स्तोता को अपेक्षित धन प्रदान करती है ॥३२ ॥

४८०४. तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३ ॥

सहस्रों गौओं के दान करने वाले दानी बृबु की प्रशंसा के लिए हम उनकी स्तुति करते हैं ॥३३ ॥

[हीनकर्मा व्यक्तियों के बीच से उभरकर यदि कोई व्यक्ति श्रेष्ठ कर्म करता है, तो वन्दनीय होता है ।]

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि-** शंयु बार्हस्पत्य । **देवता -** इन्द्र । **छन्द-** बार्हत प्रगाथ- (विषमा बृहती, समासतो बृहती) ।]

४८०५. त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोतागण आपका आवाहन अन्न प्राप्ति की इच्छा से करते हैं । आप सज्जनों के रक्षक हैं । शत्रु को जीतने के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४८०६. स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महः स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२ ॥

विपुल पराक्रमी, वज्रधारी, बलधारक, हे इन्द्रदेव ! अपनी असुरजयी शक्ति से महान् हुए आप हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर , हम साधकों को पशुधन तथा ऐश्वर्य प्रदान करें ॥२ ॥

४८०७. यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३ ॥

जो इन्द्रदेव एक साथ शत्रुनाशक तथा सर्वद्रष्टा हैं, उन इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं। मन्यु से युक्त, धन-सम्पन्न, सज्जनों के प्रतिपालक हे इन्द्रदेव ! आप रणक्षेत्र (जीवन-संग्राम) में तथा ऐश्वर्य की वृद्धि में हमारे सहायक बनें ॥३ ॥

४८०८. बाधसे जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।

अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऋचा में कहे अनुसार कर्म करने वाले हैं। आप संग्राम में शत्रुओं पर वृषभ की तरह आक्रमण करें। महान् धन प्राप्ति के संग्राम में आप हमारी रक्षा करें। ताकि हम शरीर उदक और सूर्य का भोग करते रहें अर्थात् दीर्घायु: हों ॥४ ॥

४८०९. इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५ ॥

हे वज्रपाणि देवेन्द्र ! हमें ओज एवं बल प्रदान करने वाले अन्न (पोषक तत्व) प्रदान करें। जो पोषक अन्न द्युलोक एवं पृथ्वी दोनों को पोषण देते हैं, उन्हें हम अपने पास रखने की कामना करते हैं ॥५ ॥

४८१०. त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अपनी रक्षा के लिए आपका आवाहन करते हैं। आप महाबलशाली और शत्रुओं के विजेता हैं। आप सभी असुरों से हमारी रक्षा करें। संग्राम में हम जीत सकें, आप ऐसी कृपा करें ॥६ ॥

४८११. यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।

यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! संगठित प्रजा में जो पराक्रम है, पाँच जनों (समाज के पाँच वर्गों, पंचतत्वों अथवा पंचवर्गों) में जो धन है वैसा ही ऐश्वर्य आप हमेंप्रदान करें। एकता से उत्पन्न होने वाली शक्ति हमें प्राप्त हो ॥७ ॥

४८१२. यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।

अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें तक्षु (समर्थों) द्राह्य (द्रोह करने वालों) एवं पुरु (पालन करने वालों) का समग्र बल प्रदान करें। बलवान् होकर युद्ध में शत्रुओं पर हम विजय प्राप्त करें ॥८ ॥

४८१३. इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य सम्पन्नो जैसा त्रिधातुयुक्त तीनों ऋतुओं में हितकारी आश्रय (घर या शरीर) हमें भी प्रदान करें। इससे चमक (भ्रामक, चकाचौंध) दूर करें ॥९ ॥

४८१४. ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।

अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! जो शत्रु गौओं को छीनने के लिए आते है उन पर आप घर्षण शक्ति से प्रहार करते हैं। हे धनवान् प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आप समीपवर्ती शत्रुओं से हमारी रक्षा करें। हमारे शरीर की रक्षा करें ॥१० ॥

४८१५. अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि।

यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे सम्वर्धन करने वाले हैं। युद्ध में शत्रुओं द्वारा छोड़े गये पंख वाले पैने और तेजस्वी बाण अन्तरिक्ष मार्ग से जब हमारे ऊपर बरसते हैं, तब उनसे आप हमारी रक्षा करते हैं ॥११॥

४८१६. यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितृणाम्।

अध स्मा यच्छ तन्वे३ तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥

जिस समय अनीति प्रतिरोध के लिए शूरवीर अपना शरीर अर्पित करते हैं, तब पितरों को परमप्रिय सुख (सन्तोष) होता है। ऐसे समय में हे इन्द्रदेव ! आप हमारे शरीर और पुत्रों की रक्षा के लिए सुरक्षित निवास दें तथा शत्रुओं को मार भगायें ॥१२॥

४८१७. यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने।

असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥१३॥

हे इन्द्रदेव ! जब युद्ध हो, तब आप हमारे घोड़ों को तीव्रगामी श्येन पक्षी की तरह, विषम मार्गों से भी होते हुए रणक्षेत्र में ले जाने की प्रेरणा प्रदान करें ॥१३॥

४८१८. सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि।

आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥

युद्ध के समय घोड़े भय से हिनहिनाते हैं, किन्तु वीरों के घोड़े ऊपर से नीचे की ओर तीव्र गति से बहने वाली नदियों की तरह एवं बाज पक्षी के झपट्टे की तरह अति वेगपूर्वक दौड़ते हैं और विजय प्राप्त करते हैं ॥१४॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि** - गर्ग भारद्वाज। **देवता** - इन्द्र, १ - ५ सोम, २० देवभूमि, बृहस्पति - इन्द्र, २२ - २५ सार्ञ्जय प्रस्तोक (दान स्तुति) २६ - २८ रथ, २९ - ३० दुंदुभि, ३१ दुंदुभि और इन्द्र। **छन्द** - त्रिष्टुप् १९ बृहती, २३ अनुष्टुप्, २४ गायत्री, २५ द्विपदा त्रिष्टुप्, २७ - जगती।]

४८१९. स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्।

उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

सोमरस तीक्ष्ण, मधुर एवं रुचिकर स्वाद वाला होता है। इस सोम के पीने वाले इन्द्रदेव को युद्ध में कोई जीत नहीं सकता ॥१॥

४८२०. अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।

पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥२॥

यह सोम हर्षित करने वाला है, अतः इसको पीकर इन्द्रदेव ने 'वृत्रासुर' का नाश किया तथा शम्बर के अनेक किलों को ध्वस्त किया ॥२॥

४८२१. अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः।

अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥

सोमरस बुद्धि और वाणी को तेजस्वी और गम्भीर बनाता है । इसी सोम ने स्वर्ग, पृथ्वी, जल, ओषधि, दिन एवं रात्रि बनाये हैं ॥३ ॥

४८२२. अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥४ ॥

इस सोम ने ही अन्तरिक्ष, पृथ्वी, और द्युलोक को सुविस्तृत एवं सुदृढ़ किया है । इसी ने जल, ओषधियों एवं गो- दुग्ध में अमृत स्थापित किया है ॥४ ॥

४८२३. अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥५ ॥

अन्तरिक्ष में स्थित विभिन्न उषाएँ सोम की विचित्र ज्योति से ज्योतित हैं । यह सोम बहुत बलशाली, महान् और उत्साहयुक्त द्युलोक में स्थित है ॥५ ॥

४८२४. धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप धन प्राप्ति हेतु हो रहे संग्रामों में, सोमरस पीकर शत्रुओं का संहार करें । हे धन के स्वामी ! आप हमें धन प्रदान करें ॥६ ॥

४८२५. इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप नीति - निपुण हैं । आप हमारे मार्गदर्शक बनें, श्रेष्ठ धनवान् आप हमें सुगमतापूर्वक धन प्राप्त कराकर दुःखों एवं शत्रुओं से बचाएँ ॥७ ॥

४८२६. उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानवान् हैं, सर्वज्ञ हैं, अतः आप हमें इस बड़े क्षेत्र की बाधाओं से निकाल कर सरलता-पूर्वक लक्ष्य तक ले चलें । आपका अभय, सुखद, कल्याणकारी तेज, हमें आपके वरदहस्त के आश्रय में मिले ॥८ ॥

४८२७. वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।
इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें उत्तम, तीव्रगामी अश्वों से युक्त विशाल रथ पर बिठाएँ । आप हमें अन्नों में श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें । आपकी कृपा से शत्रु हमारा धन क्षीण न कर सकें ॥९ ॥

४८२८. इन्द्र मृळ मह्यं जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें श्रेष्ठ कर्म करने वाली तीक्ष्ण बुद्धि एवं सुखमय दीर्घजीवन प्रदान करें । इस प्रार्थना को सुनकर आपकी कृपा से देवगण हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

४८२९. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥

हम कल्याणकारी कामना से संरक्षक , सहायक, युद्ध में आवाहन योग्य, पराक्रमी, सक्षम तथा अनेक स्तोताओं द्वारा स्तुत्य इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव हमारा कल्याण करें ॥११ ॥

४८३०. इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।

बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२ ॥

वे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव स्वयं की रक्षणशक्ति के द्वारा हमारी रक्षा कर, हमें सुखी बनाएँ । वे इन्द्रदेव ही हमारे शत्रुओं का संहार कर, हमें अभय करते हैं । वे देव हमसे प्रसन्न हों , हमें बलवान् बनाएँ ॥१२ ॥

४८३१. तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥१३ ॥

वे इन्द्रदेव पूज्य हैं, वे हमें बुद्धि और पालन करने वाला धन देकर हमारा कल्याण करें । वे दूरस्थ छिपे हुए (अप्रकट) शत्रुओं को हमसे दूर ले जाएँ ॥१३ ॥

४८३२. अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।

उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥१४ ॥

जैसे जल-प्रवाह नीचे की ओर तीव्रगति से प्रवाहित होता है, वैसे ही ये स्तोत्र एवं सोम वज्रधारी इन्द्रदेव की ओर गमन करते हैं । वे इन्द्रदेव (सोम में) जल, गाय का दूध, दही आदि मिश्रित करते हैं ॥१४ ॥

४८३३. क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।

पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५ ॥

इन्द्रदेव को यजन एवं स्तुति द्वारा प्रसन्न करने में कौन मनुष्य समर्थ है ? वे इन्द्रदेव सदा अपनी शक्ति को जानते हैं । वे सदैव हमारी रक्षा एवं उन्नति करें । वे उसी प्रकार एक के बाद दूसरी उन्नति प्रदान करते हैं, जैसे राहगीर एक के बाद दूसरा कदम बढ़ाता चलता है ॥१५ ॥

४८३४. शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।

एधमानद् विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६ ॥

इन्द्रदेव शत्रुओं का दमन करते और स्तोताओं का स्थान बदलते हुए उन्हें आगे बढ़ाते हैं । इन्द्रदेव का पराक्रम सर्वविदित है । ये सबके राजा इन्द्रदेव याजकों का सब प्रकार से संरक्षण करते हैं ॥१६ ॥

४८३५. परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।

अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७ ॥

जो पहले मित्रवत् रहकर अनुभवी एवं पुराने हो गये हैं, उनकी अपेक्षा इन्द्रदेव नवीन याजकों का अधिक ध्यान रखते हैं । इन्द्रदेव उपासना न करने वालों का त्याग कर, उपासकों का कल्याण करते हैं ॥१७ ॥

४८३६. रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८ ॥

इन्द्रदेव विभिन्न शक्तियों द्वारा अनेक रूप बनाकर यजमान के पास प्रकट होते हैं । इन्द्रदेव के रथ में उनकी अनेक शक्तियों के रूप में सहस्रों घोड़े जुते हैं ॥१८ ॥

४८३७. युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति।
को विश्वाहा द्विषत: पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९ ॥

इन्द्रदेव स्वर्णिम आभायुक्त अश्वों को अपने रथ में जोड़कर त्रिलोक में प्रकाशित होते हैं। स्तोताओं के बीच पहुँचकर अन्य कौन उनकी रक्षा करता है ? ॥१९ ॥

४८३८. अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत्।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥२० ॥

हे इन्द्रदेव ! गौओं से हीन इस क्षेत्र में हम आ गये हैं। इस विस्तृत भूमण्डल में दस्यु भी निवास करते हैं। हे बृहस्पते !आप हमें गौएँ खोजने की प्रेरणा दें। हे इन्द्रदेव ! पथ से भटके मनुष्यों को आप श्रेष्ठ मार्ग पर लाएँ ॥२

४८३९. दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जा:।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ॥२१ ॥

इन्द्रदेव सूर्यरूप से प्रकट होकर अन्धकार को समाप्त करते हैं। इन्द्रदेव ने ही शम्बर (शक्तिनाशक) तथा वर्ची (तेजस्वी) असुरों का अपने तेज से नाश किया था ॥२१ ॥

४८४०. प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध: शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्रस्तोक ने स्तोताओं को सोने के खजाने एवं दस घोड़े प्रदान किए। शम्बर के धन को 'अतिथिग्व' ने जीता था और उसी धन को 'दिवोदास' द्वारा हमने प्राप्त किया ॥२२ ॥

४८४१. दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥२३ ॥

दिवोदास ने दस अश्व, दस खजाने, वस्त्र, भोजन एवं सोने के दस पिण्ड हमें प्रदान किये ॥२३ ॥

४८४२. दश रथान्प्रष्टिमत: शतं गा अथर्वभ्य: । अश्वथ: पायवेऽदात् ॥२४ ॥

अश्वत्थ ने पायु के लिए घोड़ों सहित दस रथ एवं सौ गौएँ अथर्वाओं को प्रदान कीं ॥२४ ॥

४८४३. महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान्त्सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५ ॥

भरद्वाज के पुत्र ने मनुष्यों के हितकारी धन को ग्रहण किया।सृञ्जय के पुत्र ने धन प्रदान कर सबका सत्कार किया ॥२५ ॥

४८४४. वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरण: सुवीर:।
गोभि: सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६ ॥

वनस्पति-काष्ठ निर्मित हे रथ ! आप हमारे मित्र होकर मजबूत अंग तथा श्रेष्ठ योद्धाओं से सम्पन्न होकर संकटों से हमें पार लगाएँ। आप श्रेष्ठकर्म द्वारा बँधे हुए हैं, इसलिए वीरतापूर्ण कार्य करें। हे रथ ! आपका सवार जीतने योग्य समस्त वैभव को जीतने में समर्थ हो ॥२६ ॥

४८४५. दिवस्पृथिव्या: पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्य: पर्याभृतं सह: ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज ॥२७ ॥

हे अध्वर्यो ! आप पृथ्वी और सूर्यलोक से ग्रहण किये गये तेज को, वनस्पतियों से प्राप्त बल को, जल

से प्राप्त पराक्रम वाले रस को सब तरफ से नियोजित करें । सूर्य किरणों से आलोकित वज्र के समान सुदृढ़ रथ को यजन कार्य में समर्पित करें ॥२७ ॥

४८४६. इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः ।
सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ॥२८ ॥

हे दिव्य रथ ! आप इन्द्रदेव के वज्र तथा मरुतों की सैन्य शक्ति के समान सुदृढ़ एवं मित्रदेव के गर्भरूप आत्मा तथा वरुणदेव की नाभि के समान है । हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्न को प्राप्त कर तृप्त हो ॥२८ ॥

४८४७. उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् ।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ॥२९ ॥

हे दुंदुभे !आप अपनी ध्वनि से भू तथा द्युलोक को गुंजायमान करें, जिससे जंगम तथा स्थावर जगत् के प्राणी आपको जानें ।आप इन्द्र तथा दूसरे देवगणों से प्रेम करने वाले हैं, अत: हमारे रिपुओं को हमसे दूर हटाएँ ॥२९

४८४८. आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः ।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीळयस्व ॥३० ॥

हे दुंदुभे ! आपकी आवाज को सुनकर शत्रु-सैनिक रोने लगें । आप हमें तेज प्रदान करके हमारे पापों को नष्ट करें । आप इन्द्रदेव की मुष्टि के समान सुदृढ़ होकर हमें मजबूत करें तथा हमारी सेना के समीप स्थित दुष्ट शत्रुओं का पूर्णरूपेण विनाश करें ॥३० ॥

४८४९. आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१ ॥

हे इन्द्रदेव ! उद्घोष करके आप दुष्टों की सेनाओं को भली प्रकार दूर भगाएं । हमारी सेना विजय उद्घोष करती हुई लौटे । हमारे द्रुतगामी अश्वों के साथ वीर रथारोही घूमते हैं , वे सब विजयश्री का वरण करें ॥३१ ॥

[सूक्त - ४८]

[**ऋषि** - शंयु बार्हस्पत्य । **देवता** - १ - १० अग्नि, ११ - १५, २० - २१ मरुद्गण अथवा (१३-१५ लिंगोक्त देवता, १६-१९ पूषा देवता) २२ पृश्नि, द्यावाभूमि अथवा मरुद्गण । **छन्द** - प्रगाथ - १, ३, ५, ९, १४, १९, २० बृहती; २, ४, १०, १२ , १७ सतोबृहती; ६, ८ महासतो बृहती, ७, २१ महाबृहती, ११ , १६ ककुप् , १३ , १८ पुरउष्णिक् , १५ अतिजगती, २२ अनुष्टुप् ।]

४८५०. यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१ ॥

हम सर्वज्ञ, अमर, हितकारी, मित्रवत् अग्निदेव की प्रशंसा करते हैं । हे उद्गाताओ ! आप भी प्रत्येक स्तुति एवं यज्ञायोजन में उन बलशाली अग्निदेव की स्तुति करें ॥१ ॥

४८५१. ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२ ॥

ऊर्जा को सतत बनाये रखने वाले अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । वे निश्चय ही हमारे लिए हितकारी हैं । उन हव्यवाहक को हम हव्य प्रदान करते हैं । वे हमारी रक्षा करें, हमारे पुत्रों की रक्षा करें ॥२ ॥

४८५२. वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।

अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप तेजस्वी हैं, महान् हैं । आप हमारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । आप अतिदीप्तिमान् हैं, हमें भी श्रेष्ठ कान्ति से कान्तिमान् बनायें ॥३ ॥

४८५३. महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।

अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप महान् देवगणों का यजन करते हैं । आप हमारे यज्ञ में भी देवों के निमित्त यजन करें । आप हमारे द्वारा अर्पित आहुतियों को ग्रहण करें और हमें अन्न प्रदान करें । अपनी बुद्धि और कर्म से रक्षक देवताओं को हमारे अनुकूल करें ॥४ ॥

४८५४. यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।

सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५ ॥

हे अग्निदेव !अरणि, अभिषवण प्रस्तर एवं जल मिलाया हुआ सोमरस आपको पुष्ट करता है ।ऋत्विजों ने अरणि मन्थन से आपको उत्पन्न किया ।पृथ्वी के स्थल यज्ञ में आप प्रतिष्ठित होते हैं ।यज्ञ के गर्भरूप आप ही हैं॥ ५ ॥

४८५५. आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।

तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६ ॥

जो अग्निदेव, अपनी कान्ति से सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी को एवं अन्तरिक्ष को धूम्र से परिपूर्ण कर देते हैं; वे तेजस्वी अग्निदेव, काली रात्रि के घोर अन्धकार को दूर करते हैं । वे कामनानुसार वर्षा करने वाले हैं ॥६ ॥

४८५६. बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।

भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥७ ॥

हे बड़ी ज्वालाओं से युक्त तरुण अग्ने ! सम्पन्नता एवं पवित्रता प्रदान करने वाले आप महान् हैं ।आप अपने प्रखर तेज से भरद्वाज (पूर्ण ज्ञानी ऋषि) के लिये अत्यन्त तेजस्वीरूप में प्रज्वलित हों और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥७ ॥

४८५७. विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।

शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप सभी मानवी प्रजाओं के घर के स्वामीरूप हैं, हम आपको सौ वर्षों के लिए प्रदीप्त करेंगे । आप सैकड़ों उपायों द्वारा पापों एवं शत्रुओं से हमारी रक्षा करें तथा उस यजमान की भी रक्षा करें, जो आपके स्तोता को अन्न प्रदान करता है ॥८ ॥

४८५८. त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।

अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९ ॥

हे सबके आश्रयदाता अग्निदेव ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अपार है । आप अपनी क्षमता से वैभव लाने में समर्थ हैं । आप समृद्धि को हमारे पास आने दें तथा हमारी सन्तानों को भी प्रतिष्ठा प्रदान करें ॥९ ॥

४८५९. पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।

अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! विरोधमुक्त, सहयोगयुक्त, पराभूत न होने वाले आप अपने संरक्षण-साधनों से हमारे पुत्र-पौत्रों का पालन करें । दैवी प्रकोपों से हमें बचायें, मानुषी-राक्षसी वृत्तियों से भी हमारी रक्षा करें ॥१०॥

४८६०. आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः । सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११॥

हे मित्रो !नवीन स्तुति द्वारा पोषक दुग्ध देने वाली गौ को ले आएँ ।बिना हानि पहुँचाए, उसे बन्धन-मुक्त करें ॥११॥

४८६१. या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।

या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२॥

जिस गौ ने बलयुक्त स्वप्रकाशित मरुद्गणों को अमर अन्नरूपी दुग्ध प्रदान किया; जो द्रुतगामी मरुतों को सुख प्रदान करती है, वह (दिव्य गौ) श्रेष्ठ कार्यों द्वारा ही प्राप्त होती है ॥१२॥

४८६२. भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥१३॥

हे मरुद्गणो ! भरद्वाजों को आपने दो वस्तुएँ प्रदान कीं, विश्वदोहस (सबके निमित्त दुही जाने वाली) गौ, तथा विश्वभोजस (सबको भोजन देने वाला) अन्न ॥१३॥

[उक्त तीन मंत्रों में गौ को लक्ष्य करके जो बातें कही गई हैं, वे किसी पशुरूप गौ पर नहीं , पृथ्वी के पर्यावरणरूपी विराट् गौ पर ही घटित होती हैं । विश्वदोहस एवं विश्वभोजस संज्ञाएँ उसी के लिए सटीक बैठती हैं ।]

४८६३. तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।

अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४॥

हे मरुद्गण ! आप वरुण के समान स्तुति-योग्य हैं । इन्द्रदेव के कार्यों में सहयोग करने वाले हैं । विष्णुदेव की तरह सुखदायी, उत्तम भोजन देने वाले हैं । धन के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१४॥

४८६४. त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।

सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो वसू करत् ॥१५॥

तेजस्वी, बहुशः प्रशंसित, पोषण करने वाले, बलवान् मरुद्गण गुप्त धन प्रकट करके हमें सुखपूर्वक उपलब्ध कराएँ ॥१५॥

४८६५. आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे । अघा अर्यो अरातयः ॥१६॥

हे पूषन्देव ! हम आपका यशोगान करते हैं । हम गुप्तरूप से यह प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी रक्षा के लिए हमारे पास आयें, ताकि कंजूस, पापी शत्रु हमसे दूर रहें ॥१६॥

४८६६. मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।

मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७॥

हे पूषन्देव ! आप हमारी निन्दा करने वालों को मारें । जैसे व्याध और शिकारी पक्षियों को पकड़ कर उनका हरण करते हैं, वैसे शत्रु हमारा हरण न कर सकें । हे देव ! आप "काकम्बीर" वनस्पति को नष्ट न होने दें ॥१७॥

४८६७. दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥

हे पूषन्देव ! आप से हमारी मित्रता छिद्ररहित दधि पात्र के समान निर्बाध एवं अविच्छिन्न बनी रहे ॥१८॥

४८६८. परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।

अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९॥

हे पूषादेव ! आप मानवों से श्रेष्ठ एवं अन्य देवों के समान धनवान् हैं । आप हमारी प्राचीनकाल की तरह ही रक्षा करें ॥१९ ॥

४८६९. वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।

देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२० ॥

हे शत्रु को कम्पित करने वाले, पूजनीय मरुद्‌गणो ! आपकी तरह वाणी की सत्यता, हमें भी प्राप्त हो । यज्ञ करने वाले देव अथवा मनुष्यों की वाणी प्रशंसनीय एवं इच्छित धन देने वाली हो ॥२० ॥

४८७०. सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः ।

त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥ २१ ॥

मरुद्‌गण शत्रुओं को नष्ट करने की सामर्थ्य वाले हैं । वे पूजनीय हैं । वे अपने कर्म-कौशल से सूर्यदेव की तरह अन्तरिक्ष में एवं सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं ॥२१ ॥

४८७१. सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत । पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२ ॥

द्युलोक एक ही उत्पन्न हुआ, पृथ्वी भी एक ही उत्पन्न हुई है, गो-दुग्ध भी एक ही उत्पन्न हुआ है । अन्य कोई पदार्थ उत्पन्न नहीं हुए ॥२२ ॥

[सूक्त - ४९]

[ऋषि - ऋजिश्वा भारद्वाज । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप्, १५ शक्वरी ।]

४८७२. स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।

त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१ ॥

श्रेष्ठ कर्म करने वाले मित्रावरुणदेव की हम नये स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं । वे हमारा सुख बढ़ायें । श्रेष्ठ, पराक्रमी मित्रावरुणदेव और अग्निदेव यहाँ आकर हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

४८७३. विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।

दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२ ॥

ये तेजस्वी अग्निदेव सभी यज्ञों में प्रजाओं द्वारा स्तुति करने योग्य हैं । ये निरहंकारी कर्म करने वाले हैं । स्वर्ग और पृथ्वी में गमन करने वाले, बल के पुत्र अग्निदेव यज्ञ की ध्वजारूप हैं । ऐसे तेजस्वी अग्निदेव की हम यज्ञ करने के लिए स्तुति करते हैं ॥२ ॥

४८७४. अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।

मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३ ॥

एक दूसरे से विपरीत रूप वाली सूर्य की दो पुत्रियाँ, कृष्ण रात्रि और शुक्ल दिवसरूपा हैं ।नक्षत्रों के साथ रात्रि एवं सूर्य के साथ दिवस रूपा रहती है ।सतत गतिशील, पवित्र बनाने वाली ये दोनों हमारे स्तोत्रों को सुनें ॥३ ॥

४८७५. प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।

द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४ ॥

हे अध्वर्यो ! आप व्यापक बुद्धि से सम्पन्न यज्ञादि कार्यों में नियुक्त हो । महान् ऐश्वर्य - सम्पन्न, क्रान्तदर्शी, सबमें व्याप्त, रथों से सम्पन्न, तेजस्वी अग्नि को आप प्रज्वलित करें तथा उत्तम बुद्धि द्वारा वायुदेव की स्तुति करें ॥४ ॥

४८७६. स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५ ॥

दोनों अश्विनीकुमारों का रथ उत्तम दीप्ति वाला है, उसमें मन के इशारे से ही अश्व नियोजित होते हैं, (हे अश्विनीकुमारो !) आप, ऐसे रथ पर चढ़कर, पर्याप्त धन भरकर स्तोताओं और उनके पुत्रों कीइच्छाओं की पूर्ति हेतु पधारें ॥५ ॥

४८७७. पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६ ॥

हे पर्जन्य और वायुदेव ! आप पृथ्वी के अन्न की वृद्धि के लिए अन्तरिक्ष से जल वृष्टि करें । हे मरुद्‌गणो ! हम सब आपकी स्तुति करते हैं । आपकी कृपा से समस्त प्रजा समृद्ध होती है ॥६ ॥

४८७८. पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७ ॥

जो सरस्वती देवी, सुन्दर, उत्तम अन्न देने वाली, वीरों का पालन करने वाली, पवित्र करने वाली हैं, वे हमारे यज्ञ अनुष्ठान को धारण करें । देवांगनाओं सहित प्रसन्न होकर वे स्तोताओं को छिद्ररहित निवास प्रदान करें तथा उनका कल्याण करें ॥७ ॥

४८७९. पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८ ॥

उत्तम स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो पूषा देवता हमें सत्यमार्ग की प्रेरणा प्रदान करते हैं, वही हमें आह्लादप्रद और संतापनाशक साधनों को प्रदान करें ।वे हमारी बुद्धियों को सिद्धि प्रदान करें-सत्प्रयोजनों में लगायें॥८

४८८०. प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९ ॥

तेजस्वी अग्निदेव उन त्वष्टादेव का यजन करें, जो त्वष्टादेव देवताओं में प्रथम भजनीय, यशस्वी, सुन्दर हाथ एवं भुजाओं वाले, महान् और आवाहन करने योग्य हैं ॥९ ॥

४८८१. भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१० ॥

इन उत्तम स्तुतियों से दिन एवं रात्रि में भुवन के पिता रुद्रदेव का यशोगान करें । हम दर्शनीय, जरारहित, सुखदाता, प्रभु की सदैव स्तुति करते हैं ॥१० ॥

४८८२. आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११ ॥

हे युवा, ज्ञानी, यजनीय, मरुद्‌गणो ! आप स्तोताओं के पास आयें । आप अग्नि के सहयोग से अन्तरिक्ष में वृद्धि को प्राप्त होकर जल वृष्टि करते हैं । आप ओषधियों से रहित देशों को भी तृप्त करते हैं ॥११ ॥

४८८३. प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२ ॥

पालक जिस प्रकार गौओं के झुण्ड को घर की ओर तीव्र गति से चलने को प्रेरित करता है, वैसे ही स्तोतागण मरुद्‌गण की ओर जाने के लिए अपने स्तोत्रों को प्रेरित करें । स्तोताओं की स्तुतियाँ मरुद्‌गणों के मन एवं शरीर को स्पर्श करती हैं और उनकी वैसे ही शोभा बढ़ाती हैं, जैसे नक्षत्रों से अन्तरिक्ष सुशोभित होता है ॥१२ ॥

४८८४. यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥१३ ॥

विष्णुदेव ने मनुदेव के दुःख को दूर करने के लिए तीन चरणों मे पराक्रम किया । हे देव ! आपके द्वारा दिये गये घर, धन, शरीर और पुत्रों सहित हम आनन्द से रहें ॥१३ ॥

[विष्णु पोषणकर्ता हैं । उनका पराक्रम तीन चरणों में होता है । वे द्युलोक, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी तीनों में पोषणचक्र का संचालन करते हैं ।]

४८८५. तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४ ॥

हमारे अनेक प्रकार के स्तोत्रों द्वारा स्तुत अहिर्बुध्न्य (मेघ) , पर्वत और सवितादेव हमें अन्न तथा जल दें, भगदेव हमें धन दें तथा विश्वदेवा हमें अन्न प्रदान करें ॥१४ ॥

४८८६. नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् । क्षयं दाताजरं येन
जनान्त्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश आदेवीरभ्य१ श्नवाम ॥१५ ॥

हे विश्वदेवा ! आप हमें न टूटने वाला रथ एवं घर, मानवों को तृप्ति देने वाला अन्न, पुत्र तथा अनुचर प्रदान करें, ताकि हम शत्रुओं को आक्रमण करके जीत सकें । आप देवताओं के उपासकों को संरक्षण दें ॥१५ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि - ऋजिश्वा भारद्वाज । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

४८८७. हुवे वो देवीमदितिं नमोभिर्मृळीकाय वरुणं मित्रमग्निम् ।
अभिक्षदामर्यमणं सुशेवं त्रातॄन्देवान्त्सवितारं भगं च ॥१ ॥

हे देवगणो ! सुख की कामना से हम देवमाता अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, शत्रु संहारक एवं सेवनीय अर्यमा, सविता, भग तथा रक्षा करने वाले समस्त देवगणों के प्रति नमन करते हुए इन सबकी उपासना करते हैं ॥१ ॥

४८८८. सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२ ॥

हे सर्वप्रेरक सूर्यदेव ! श्रेष्ठ कान्ति वाले देवों को आप हमारे अनुकूल बनाएँ । जो द्विज सदाचारी, सत्यवादी, आत्मवान् तथा पूजनीय हैं, ऐसे अग्नि रूपी जिह्वा वाले देवों को हमारे अनुकूल करें ॥२ ॥

४८८९. उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमें व्यापक क्षेत्र वाला विशाल निवास दें । हम बलवान् एवं ऐश्वर्यवान् हों । हमें निष्पाप घर मिले ॥३ ॥

४८९०. आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥ ४ ॥

सबको निवास देने वाले, रुद्र के पुत्र, हे अहिंसक मरुद्गण ! हम आपका आवाहन करते हैं । आप छोटे या बड़े संग्राम में हमारा कल्याण करें ॥४ ॥

४८९१. मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५ ॥

तेजस्वी द्यावा-पृथिवी जिनके साथ हैं, उपासकों को समृद्ध करने वाले पूषन्देव जिनकी सेवा करते हैं, उन मरुद्गणों का हम आवाहन करते हैं । उनके आगमन पर उनके वेग से सभी प्राणी काँपने लगते हैं ॥५ ॥

४८९२. अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६ ॥

हे स्तोतागण ! आप उन पराक्रमी प्रशंसनीय इन्द्रदेव की अभिनव स्तोत्रों द्वारा स्तुति करें । हमारी स्तुति सुनकर प्रसन्न हुए वे इन्द्रदेव हमें बल और अन्न प्रदान करें ॥६ ॥

४८९३. ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७ ॥

हे जल देवता ! आप समस्त स्थावर-जंगम को उत्पन्न करने वाले हैं । आप मनुष्यों के हितैषी हैं । आप हमारे पुत्र - पौत्रादि की रक्षा के निमित्त अन्न प्रदान करें । आप माताओं से भी श्रेष्ठ चिकित्सक हैं , अतएव आप हमारे समस्त विकारों को नष्ट करें ॥७ ॥

४८९४. आ नो देवः सविता त्रायमाणो हिरण्यपाणिर्यजतो जगम्यात् ।
यो दत्रवाँ उषसो न प्रतीकं व्यूर्णुते दाशुषे वार्याणि ॥८ ॥

जो सवितादेव, रक्षक, स्वर्णिमरश्मियों वाले, उषा के समान प्रकाशमान , पूजनीय, धनवान् एवं मनुष्यों को अभीष्ट धन देते हैं, वे सवितादेव हमारे पास आएँ ॥८ ॥

४८९५. उत त्वं सूनो सहसो नो अद्या देवाँ अस्मिन्नध्वरे ववृत्याः ।
स्यामहं ते सदमिद्रातौ तव स्यामग्नेऽवसा सुवीरः ॥९ ॥

हे बल पुत्र अग्निदेव ! आज आप हमारे इस यज्ञ में देवगणों को लाएँ । हम आपकी अनुकूलता को सदैव याद रखें और पुत्र-पौत्रादि सहित आपकी कृपा से सुरक्षित रहकर आनन्द से रहें ॥९ ॥

४८९६. उत त्या मे हवमा जग्म्यातं नासत्या धीभिर्युवमङ्ग विप्रा ।
अत्रिं न महस्तमसोऽमुमुक्तं तूर्वतं नरा दुरितादभीके ॥१० ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आप बुद्धिमान् हैं । आप अपने श्रेष्ठ कर्मों सहित हमारे पास आएँ । जिस प्रकार आपने अत्रि ऋषि को अन्धकार से छुड़ाया था, वैसे ही हमें भी इस (जीवन) संग्राम में पापों से बचाएँ ॥१० ॥

४८९७. ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११ ॥

हे देवगणो ! आप पुत्रादि से युक्त धन देने वाले हैं । आदित्य, वसु, मरुद्‌गण आदि देव हमारी इच्छाओं की पूर्ति करें एवं हमें सुखी बनाएँ ॥११ ॥

४८९८. ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२ ॥

रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, दिव्य अन्न और विधाता हमें सुखी बनायें । पर्जन्य एवं वायुदेव हमें अन्न प्रदान करें ॥१२ ॥

४८९९. उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३ ॥

वे प्रसिद्ध सवितादेव, भगदेव एवं पर्याप्त धन दान करने वाले अग्निदेव हमारी रक्षा करें । सबसे प्रेम करने वाले त्वष्टा देव, द्युलोक और समुद्र सहित पृथ्वी आदि हमारी रक्षा करें ॥१३ ॥

४९००. उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४ ॥

अहिर्बुध्न्य, अज, एकपाद, पृथ्वी एवं समुद्र आदि देव हमारी प्रार्थना सुनें । यज्ञ को बढ़ाने वाले स्तोत्रों एवं ऋषियों द्वारा स्तुत देवता हमारी रक्षा करें ॥१४ ॥

४९०१. एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५ ॥

हे देवगणो ! आप शत्रुओं द्वारा अहिंसित हैं, आप सबको निवास देने वाले हैं । आप अपनी शक्तियों (देव-पत्नियों) सहित सर्वत्र पूजनीय हैं । हम भरद्वाज वंशीय ऋषि आप सब देवगणों की स्तुति करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ५१]

[ऋषि - ऋजिश्वा भारद्वाज । देवता - विश्वेदेवा । छन्द - त्रिष्टुप्; १३-१५ उष्णिक्; १६ अनुष्टुप् ।]

४९०२. उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१ ॥

महान् मित्रावरुण की प्रिय, निर्मल, दर्शनीय, अदम्य, तेजयुक्त ऋत की सेना (प्रकाश किरणें) प्रकट होकर दृष्टिगोचर हो रही है । प्रकाशित होकर यह तेज द्युलोक के अलंकार की तरह शोभा पाता है ॥१ ॥

४९०३. वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२ ॥

ज्ञानवान्, तीनों भुवनों के ज्ञाता, दुर्जय देवों के जन्म के भी जानकार सूर्यदेव मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों को देखते हैं । वे स्वामी (मनुष्यों के) अर्थों (सार्थक प्रयोजनों) की पूर्ति करते हैं ॥२ ॥

४९०४. स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३ ॥

अदिति, मित्र, वरुण, भग एवं अर्यमा आदि यज्ञ की रक्षा करने वाले देवों की हम स्तुति करते हैं । देवगणों के कर्म से यह सब पवित्र होता है ॥३ ॥

४९०५. रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन्।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४॥

हे अदिति पुत्र देवगणो ! आप दयालु, चिरयुवा, महाराजा एवं महाबली हैं । आप दुष्टों का नाश करने वाले हैं ।आप ऐश्वर्यवान् एवं श्रेष्ठ निवास देने वाले हैं । (हे अदिति पुत्रो !) हम माता अदिति के आश्रय में जाते हैं ॥४॥

४९०६. द्यौ३ष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५॥

हे वसुगण ! द्यावा-पृथिवी एवं अग्निदेव सहित आप हमारा कल्याण करें । हे अदिति एवं समस्त आदित्यो ! आप सब परस्पर प्रीतिपूर्वक रहकर हमें और अधिक सुख प्रदान करें ॥५॥

४९०७. मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६॥

हे पूजनीय देवताओ ! आप हमें वृक (भेड़िया या क्रूरकर्मी) तथा वृक्य (क्रूरता-कुटिलता) से बचाएँ । आप हमारे शरीर, बल एवं वाक् को श्रेष्ठता की ओर बढ़ने की प्रेरणा दें ॥६॥

४९०८. मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७॥

हे देवताओ ! दूसरों के द्वारा किए गये पाप-कर्मों का दुष्परिणाम हमें भोगना न पड़े । हम दण्डनीय पाप कर्म न करें । हे विश्व के स्वामी देव ! आपकी कृपा से शत्रु अपने शरीर को स्वयं ही नष्ट कर लें ॥७॥

४९०९. नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

नमन वास्तव में ही महान् है, इसलिए हम उसका सेवन करते (उसे व्यवहार में लाते) हैं । नमन ही द्युलोक एवं पृथ्वी का धारणकर्ता है । हम देवगणों को नमन करते हैं, नमन ही उन्हें प्रभावित करने वाला है । किये गये (कर्मों के भोगों) को नष्ट करने के लिए हम नमन करते हैं ॥८॥

[नमन-स्रष्टा के अनुशासन को स्वीकार करने का प्रतीक है । उसके अनुशासन को स्वीकार करके ही द्यावा-पृथिवी का अस्तित्व बना है । इसी क्रम से देवगण प्रभावित होते हैं । उनकी शक्तियाँ नमनशीलों-अनुशासन स्वीकार करने वालों को ही प्राप्त होती हैं । कुकर्मजनित पापों तथा श्रेष्ठ कर्मजनित अहंकार के नाश के लिए भी नमन उपयोगी है ।]

४९१०. ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९॥

हे देवगण ! आप यज्ञ के नेतृत्व करने वाले, बलवान् यज्ञशाला में निवास करने वाले, अपराजित एवं महिमावान् हैं । हम नमस्कारों द्वारा आपको नमन करते हैं ॥९॥

४९११. ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥

वे देवता हमारे पापों को दूर करने वाले तथा तेजस्वी हैं । सत्यवादी, सदाचारी एवं सत्यबल वाले (साधक), वरुण, मित्र एवं अग्नि आदि सभी देवों के आश्रय में रहते हैं ॥१०॥

४९१२. ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्च जनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११ ॥

बढ़ने वाले इन्द्रदेव, पूषा, भग, अदिति और पञ्चजन हमारे उत्तम घरों की रक्षा करें । वे अन्न प्रदान करने वाले, सुखदायक, आश्रय प्रदान करने वाले देव हमारी रक्षा करें ॥११ ॥

४९१३. नू सद्मानं दिव्यं नंशि देवा भारद्वाजः सुमतिं याति होता ।
आसानेभिर्यजमानो मियेधैर्देवानां जन्म वसूयुर्ववन्द ॥१२ ॥

आहुति अर्पित करने वाले ऋषि एवं यजमान धन प्राप्ति की इच्छा से देवताओं की स्तुति करते हैं । वे देवता प्रसन्न होकर हम भारद्वाजों को भव्य निवास प्रदान करें ॥१२ ॥

४९१४. अप त्यं वृजिनं रिपुं स्तेनमग्ने दुराध्यम् । दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! आप उन दुष्ट शत्रुओं को दूर भगायें, जो चोर एवं पापी हैं । इनके स्वभाव को बदलें । इनसे हमारी रक्षा करें एवं हमारा सर्वतोभावेन मंगल करें ॥१३ ॥

४९१५. ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः ।
जही न्य१त्रिणं पणिं वृको हि षः ॥१४ ॥

हे सोम ! आप भेड़िये की तरह स्वभाव वाले दण्डनीय 'पणि' का संहार करें । आपकी मित्रता की इच्छा से हम इस ग्राव (सोमवल्ली कूटने के पत्थर अथवा दमन की सामर्थ्य) सहित प्रस्तुत हैं ॥१४ ॥

४९१६. यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥१५ ॥

हे देवगणो ! आप उत्तम दानवीरों में श्रेष्ठ, तेजस्वी इन्द्रदेव सहित हमारे मार्ग को सुगम करें एवं हमारी रक्षा करें ॥१५ ॥

४९१७. अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥१६ ॥

जिस मार्ग पर गमन करने से शत्रु दूर रहते हैं एवं पर्याप्त धन लाभ होता है, हम उसी निष्पाप-सुखद मार्ग से गमन करें ॥१६ ॥

[सूक्त - ५२]

[**ऋषि** - ऋजिश्वा भारद्वाज । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ; ७-१२ गायत्री; १४ जगती ।]

४९१८. न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्व१: पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१ ॥

(ऋषि कहते हैं) हमारी सुनिश्चित मान्यता है कि वह अतियाज(यज्ञीय मर्यादाओं के अनुशासन का अतिक्रमण करने वाला यजनपरक कर्मकाण्ड) न तो द्युलोक के अनुकूल है और न पृथ्वी के । न (कर्मकाण्ड परक) यज्ञीय परिपाटी के अनुरूप है और न शान्तिपूर्ण कर्मानुष्ठानों के अनुकूल है । अस्तु , महान् पर्वत उसे प्रताड़ित करें और उसके ऋत्विग्गण हीनता को प्राप्त हों ॥१ ॥

४९१९. अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात्।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

हे मरुद्गणो ! जो हमारे मन्त्रपाठ का अतिक्रमण अथवा अनादर करे, उसको अग्नि की ज्वालाएँ जलाने वाली हों । स्वर्ग लोक भी उस ज्ञान से द्वेष करने वाले को संतप्त करे ॥२॥

४९२०. किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३॥

हे सोमदेव ! आपको मन्त्र की रक्षा करने वाला क्यों कहते हैं ? हे प्रिय सोमदेव ! आपको निन्दा से बचाने वाला क्यों कहा जाता है ? आप निन्दा करने वाले को देखते हैं । ज्ञान से द्वेष करने वाले को आप अपने आयुध द्वारा व्यथित करें ॥३॥

४९२१. अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥

जल से भरी नदियाँ, उषाएँ, दृढ़ पर्वत, पितर, यज्ञ में आहूत-उपस्थित देवशक्तियाँ हमारी रक्षा करें ॥४॥

४९२२. विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥

हम सदैव उत्तम विचार करें । हम सदैव सूर्यदेव का दर्शन करें । देवताओं के निमित्त आहुति को वहन करने वाले एवं धनों के अधिपति अग्निदेव हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥५॥

४९२३. इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

इन्द्रदेव अपने रक्षण साधनों सहित हमारी रक्षा करें । जल से उमड़ती सरस्वती हमारी रक्षा करें । पर्जन्य से उत्पन्न ओषधियों एवं पिता के समान अग्निदेव को हम रक्षा के लिए आवाहित करते हैं ॥६॥

४९२४. विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम्। एदं बर्हिर्नि षीदत ॥७॥

हे विश्वेदेव ! आप हमारी प्रार्थना सुनकर आएँ और बिछाये हुए कुशाओं पर विराजमान हों ॥७॥

४९२५. यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८॥

हे देवगणो ! जो याजक घृत सहित आपके निमित्त आहुतियाँ अर्पित करते हैं । आप उनका कल्याण करने के निमित्त उनके पास आएँ ॥८॥

४९२६. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृळीका भवन्तु नः ॥९॥

जो अमरपुत्र देव हैं, वे हमारी इस प्रार्थना को सुनकर हमारे पास आएँ एवं हमें सुख प्रदान करें ॥९॥

४९२७. विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१०॥

आप समस्त देवगण सत्य (यज्ञीय) मार्ग को बढ़ाते हैं । आप ऋतुओं के अनुसार हवन करने के लिए सर्वविदित हैं । आप योग्य दुग्ध को स्वीकार करें ॥१०॥

४९२८. स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान् मित्रो अर्यमा। इमा हव्या जुषन्त नः ॥११॥

मरुद्गण के साथ इन्द्रदेव त्वष्टादेव, मित्र, अर्यमा आदि सब देव हमारी आहुतियों को एवं स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥११ ॥

४९२९. इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२ ॥

हे होता अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में प्रमुख देवताओं के लिए उनके अनुरूप यजन करें ॥१२ ॥

४९३०. विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३ ॥

हे विश्वेदेवगणो ! आप अन्तरिक्ष में अथवा द्युलोक में (जहाँ भी) हैं, हमारी प्रार्थना सुनकर आएँ और इन कुशाओं पर बैठकर सोम का पान करके आनन्दित हों ॥१३ ॥

४९३१. विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४ ॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं अग्नि सहित समस्त देवशक्तियाँ हमारे द्वारा प्रस्तुत, श्रेष्ठ स्तोत्रों का श्रवण करें । हम कभी भी देवों को अप्रिय लगने वाले वचन न बोलें एवं देवों द्वारा प्रदत्त अनुदानों से ही प्रमुदित हों ॥१४ ॥

४९३२. ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष में अपने महान् कर्मकौशल से युक्त देव प्रकट हों और हमारे पुत्रादि को अन्न एवं पूर्ण आयुष्य प्रदान करें ॥१५ ॥

४९३३. अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥ १६ ॥

हे अग्निदेव और पर्जन्य ! आप हमारी बुद्धि की सुरक्षा करें । हे आवाहन करने योग्य ! आप स्तुति सहित हमारा आवाहन सुनें । आप में से एक अन्नदाता और दूसरे सन्तानदाता हैं । आप प्रसन्न होकर हमें अन्न सहित सन्तान प्रदान करें ॥१६ ॥

४९३४. स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७ ॥

हे देवताओ ! हम कुश के आसन बिछाते हैं और अग्नि प्रदीप्त करते हैं । जब हम मनोयोगपूर्वक मंत्र पाठ करें , तब आप सब देव हमारी आहुतियों एवं नमस्कारों से तृप्त हों ॥१७ ॥

[सूक्त - ५३]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता -पूषा । छन्द - गायत्री; ८ - अनुष्टुप् ।]

४९३५. वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें मार्ग में सुरक्षित करें । जैसे अन्न के लिए रथ नियोजित करते हैं, वैसे ही हम बुद्धि-पूर्वक कर्म करने के लिए आपके सम्मुख उपस्थित होते हैं ॥१ ॥

४९३६. अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें मनुष्यों के हितैषी, पर्याप्त धन दान करने वाले दानवीर और प्रशंसनीय गृहस्थ के समीप ले चलें ॥२ ॥

४९३७. अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय । पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३ ॥

हे प्रकाशमान पूषन्देव ! आप कंजूस को दान देने की प्रेरणा दें । (कृपण) व्यापारी के कठोर हृदय को कोमल बनाएँ ॥३ ॥

४९३८. वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि । साधन्तामुग्र नो धियः ॥४ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारे घातक शत्रुओं का नाश करें । हमें धन प्राप्त करने का मार्ग बताएँ ॥४ ॥

४९३९. परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५ ॥

हे पूषन्देव ! आप ज्ञानी हैं । आप (ज्ञानरूपी) शस्त्र से इन प्राणियों के कठोर हृदयों को चीर कर (परिवर्तित कर) हमारे अनुकूल कर दें ॥५ ॥

४९४०. वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥६ ॥

हे पूषन्देव ! आप आरे से प्राणियों के हृदय को चीरकर (परिवर्तित कर) उनके हृदय में प्रिय भाव भरें और हमारे वशीभूत कर दें ॥६ ॥

४९४१. आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७ ॥

हे पूषन्देव ! आप प्राणियों के हृदयों की कठोरता को खाली करें और उन्हें हमारे अधीन करें ॥७ ॥

४९४२. यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे । तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८ ॥

हे पूषन्देव ! आप ज्ञान से प्रेरित आरे से कृपणों के हृदयों को अच्छी तरह खाली कर समभाव से भरें ॥८ ॥

४९४३. या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९ ॥

हे तेजस्वी वीर पूषन्देव ! आप अपने जिस अस्त्र से पशुओं को प्रेरित कर सही मार्ग में चलाते हैं; उसी से हम भी अपने कल्याण की कामना करते हैं ॥९ ॥

४९४४. उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत । नृवत् कृणुहि वीतये ॥१० ॥

हे पूषन् देव ! आप हमारे यज्ञादि कार्य की सफलता के लिए गौ, अश्व, सेवक एवं अन्न प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - ५४]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता -पूषा । छन्द - गायत्री ।]

४९४५. सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति । य एवेदमिति ब्रवत् ॥१ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें ऐसे श्रेष्ठ मार्गदर्शक के पास पहुँचाएँ, जो हमें उत्तम मार्ग एवं धन प्राप्त करने का मार्ग बताएँ ॥१ ॥

४९४६. समु पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति । इम एवेति च ब्रवत् ॥२ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमें ऐसे पुरुष से मिलाएँ, जो घर को अनुशासित रखने का मार्गदर्शन दे ॥२ ॥

४९४७. पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते । नो अस्य व्यथते पविः ॥३ ॥

पूषन्देव का चक्र कभी भी दूषित नहीं होता है । इसकी धार सदैव तीक्ष्ण रहती है ॥३ ॥

४९४८. यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥४ ॥

जो याजक ऐसे पूषन्देव के लिए आहुति प्रदान करता है । उसे कोई कष्ट नहीं होता है एवं उसे पूषादेव कृपा करके प्रथम (श्रेष्ठ) धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

४९४९. पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५ ॥

पूषन्देव हमारी गौओं की, घोड़ों की रक्षा करें एवं हमें अन्न एवं धन प्रदान करें ॥५ ॥

४९५०. पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥६ ॥

हे पूषन्देव ! यज्ञ कर्म करने वालों को तथा हम स्तोताओं को अनुकूल गौएँ प्राप्त हों ॥६ ॥

४९५१. माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे । अथारिष्टाभिरा गहि ॥७ ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारी गौओं को नष्ट न करें, कुएं में गिरकर या अन्य प्रकार से नष्ट न होने दें । आपसे सुरक्षित गौएँ सायंकाल हमारे पास लौट आएँ ॥७ ॥

४९५२. शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८ ॥

जिनका धन अविनाशी है, ऐसे पूषन्देव से हम धन की याचना करते हैं । वे प्रार्थना सुनकर हमारी दरिद्रता को दूर कर दें ॥८ ॥

४९५३. पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९ ॥

हे पूषन्देव ! आपका यजन करते हुए, आपकी स्तुति करने वाले हम सब कभी नष्ट न हों, प्रत्युत पहले की तरह ही सुरक्षित रहें ॥९ ॥

४९५४. परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१० ॥

हे पूषन्देव ! आप हमारे गो-धन को कुमार्गगामी होकर नष्ट होने से बचाएँ और अपहृत हुए गो-धन को पुनः प्राप्त कराएँ ॥१० ॥

[सूक्त - ५५]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता -पूषा । छन्द - गायत्री ।]

४९५५. एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१ ॥

हे पूषन्देव ! आपकी स्तुति करने वाले स्तोता और आपका यजन करने वाले हम, दोनों मिलकर रहेंगे । आप हमारे पास आएँ और यज्ञ कर्म का नेतृत्व करें ॥१ ॥

४९५६. रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२ ॥

मस्तक पर केश हैं जिनके, ऐसे महारथी योद्धा, धन के स्वामी, जो हमारे सखा हैं, उन पूषन्देव से हम धन की याचना करते हैं ॥२ ॥

४९५७. रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥३ ॥

हे अजरूपी अश्व वाले देव ! आप धन के प्रवाह एवं ऐश्वर्य की राशि हैं । आप स्तुति करने वाले स्तोताओं के मित्र हैं ॥३ ॥

४९५८. पूषणं न्व१जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४ ॥

अश्व एवं छाग (बकरी) जिनके वाहन हैं, उन पूषादेव की हम स्तुति करते हैं । वे पूषादेव उषा के स्वामी कहलाते हैं ॥४ ॥

४९५९. मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५ ॥

वे पूषादेव, जो उषा के पति सूर्यदेव एवं इन्द्रदेव के भाई और हमारे सखा हैं, उन रात्रि माता के सहचर की हम स्तुति करते हैं ॥५ ॥

४९६०. आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् । देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥६ ॥

लोगों को वैभवशाली बनाने वाले पूषादेव को, रथ में जुते छाग, रथ को खींचकर यहाँ (यज्ञशाला में) लाएँ ॥६ ॥

[सूक्त - ५६]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** -पूषा । **छन्द** - गायत्री, ६ अनुष्टुप् ।]

४९६१. य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१ ॥

जो करम्भ (दही, घृतयुक्त अन्न विशेष अथवा करों-किरणों से जल) का सेवन करने वाले पूषादेव की स्तुति करता है, उसे अन्य देवताओं की स्तुति करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है ॥१ ॥

४९६२. उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२ ॥

वास्तव में जो श्रेष्ठ रथी हैं, उन पूषादेव की मित्रवत् सहायता से सज्जनों के रक्षक इन्द्रदेव शत्रुओं का संहार करते हैं ॥२ ॥

४९६३. उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३ ॥

वे श्रेष्ठ रथी पूषादेव सूर्यदेव के हिरण्यमय रथ चक्र को उत्तम रीति से घुमाते हैं ॥३ ॥

४९६४. यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४ ॥

हे पूषादेव ! आप बहुतों द्वारा प्रशंसित, दर्शनीय और माननीय हैं । हम जिस धन की इच्छा से आपकी स्तुति करते हैं, वह आप हमें दिलाएँ ॥४ ॥

४९६५. इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥५ ॥

हे पूषन्देव ! आप समीप से और दूर से भी प्रसिद्ध हैं, अर्थात् आप सर्वव्यापक हैं । आप गौओं के खोजने वालों को धन प्रदान करें ॥५ ॥

४९६६. आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् । अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६ ॥

हे पूषन्देव ! हम आपकी स्तुति करते हैं, जिससे हमारा आज और कल (सर्वदा) कल्याणकारी हो । आप हमें धन प्रदान करें और पाप से बचाएँ ॥६ ॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र पूषा । **छन्द** -त्रिष्टुप्, २ जगती ।]

४९६७. इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥१ ॥

हम अन्न प्राप्ति की कामना से, अपने कल्याण के लिए मित्रस्वरूप इन्द्र और पूषा देवताओं को स्तुतियों के द्वारा बुलाते हैं ॥१ ॥

४९६८. सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥२ ॥

आसन पर बैठे देवों में इन्द्रदेव अभिषुत सोमरस को पीने की इच्छा करते हैं एवं पूषादेव करम्भ (सत्तू युक्त खाद्य पदार्थ) की इच्छा करते हैं ॥२ ॥

४९६९. अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता । ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३ ॥

इन्द्रदेव के रथ में घोड़े एवं पूषादेव के रथ में छाग (बकरी) युक्त (जुते) हैं । ये दोनों मिलकर वृत्रों (शत्रुओं) का नाश करते हैं ॥३ ॥

४९७०. यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥४ ॥

जब महाबली इन्द्रदेव घनघोर जलवृष्टि के रूप में जल को प्रवाहित करते हैं, तब पोषण करने में समर्थ (पूषा) भी उनके सहयोगी होते हैं ॥४ ॥

[वर्षा के जल में पोषक तत्त्व संयुक्त हो जाते हैं ।]

४९७१. तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५ ॥

हम सुदृढ़ वृक्ष की शाखा की तरह इन्द्रदेव और पूषन्देव के आश्रय में सुरक्षित रह सकते हैं ॥५ ॥

४९७२. उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६ ॥

जैसे लगाम को सारथी पकड़कर (रथ को बिना क्षति के) ले चलता है, वैसे अपने महान् कल्याण के लिए हम पूषन्देव और इन्द्रदेव को पकड़कर (जीवन पथ पर) आगे बढ़ते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ५८]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - पूषा । छन्द -त्रिष्टुप्, २ जगती ।]

४९७३. शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१ ॥

हे पूषादेव ! आपका एक शुभ्ररूप , दिन है तथा अन्यरूप रात्रि है । यह दोनों आपकी महिमा से ही भासित होते हैं । हे पोषणकर्ता पूषन्देवता ! द्युलोक के समान आभामय आप सम्पूर्ण जीव-जगत् की रक्षा करने वाले हैं । आपका कल्याणकारी अनुदान हमें प्राप्त हो ॥१ ॥

४९७४. अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२ ॥

जो छाग वाहन वाले पूषन्देव पशुओं के पोषक हैं एवं अन्नदाता, बुद्धि को प्रखर बनाने वाले, ज्ञानी, समस्त भुवनों में स्थित हैं, वे पूषादेव सूर्यरूप से समस्त प्राणियों को प्राण-प्रकाश देते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥२ ॥

४९७५. यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥३ ॥

हे पूषन्देव ! अन्तरिक्षरूपी समुद्र में (सूर्य रश्मिरूपी) आपकी सुनहरी नौकाएँ चल रही हैं । आप स्वेच्छा से यशस्वी कर्म करते हैं । आप सूर्यदेव के दूत हैं । हम आपकी प्रसन्नता के लिए स्तुति करते हैं ॥३ ॥

४९७६. पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४ ॥

द्युलोक से पृथ्वीलोक तक के समस्त प्राणियों के उत्तम बन्धुरूप पूषादेव अन्न-धन के स्वामी हैं । वे पूषादेव, ऐश्वर्यवान् हैं । वे ही उषा को प्रकट करने वाले हैं । वे समस्त विश्व को प्रकाशित करते हुए गमन करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ५९]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - इन्द्राग्नी । छन्द - बृहती, ७-१० अनुष्टुप् ।]

४९७७. प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३ यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१ ॥

हे इन्द्राग्निदेव ! आप अमर हैं । आप रक्षक हैं; आपने देवों से द्वेष करने वाले असुरों को अपने पराक्रम से नष्ट किया है । सोम तैयार करके हम आपके पराक्रम का गान करते हैं ॥१ ॥

४९७८. बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२ ॥

हे इन्द्राग्निदेव ! आपकी महिमा वास्तव में सत्य है । आप दोनों के एक ही पिता हैं, आप दोनों जुड़वा भाई हैं और यहीं आपकी एक माता (अदिति) हैं ॥२ ॥

४९७९. ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३ ॥

हे इन्द्राग्ने ! घोड़ा जिस प्रकार घास मिलने पर हर्षित होता है, उसी प्रकार तैयार सोमरस से युक्त होकर आप आनन्दित होते हैं । इस यज्ञ में हम अपनी रक्षा के निमित्त आपका आवाहन करते हैं ॥३ ॥

४९८०. य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥४ ॥

हे ऋत वृध (सत्य के उन्नायक) इन्द्राग्ने ! सोम तैयार होने पर जो लोग कुत्सित भावों या स्नेहरहित स्तोत्रों का प्रयोग करते हैं, आप उनका सोम नहीं पीते हैं ॥४ ॥

४९८१. इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५ ॥

हे इन्द्राग्निदेव ! जब आप एक ही रथ पर आरूढ़ हो, घोड़ों को जोतकर, विभिन्न दिशाओं को जाते हैं, तब कौन ऐसा मानव है, जो आपके इस कार्य के रहस्य को पूर्णतया समझ सके ? ॥५ ॥

४९८२. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! बिना पैर की उषा, पैर वाली प्रजा से पूर्व ही आती है और शिर न होते हुए भी जीभ से (जाग्रत् जीवों की वाणी से) प्रेरणा देती हुई, एक दिन में तीस कदम (मुहूर्त) चलती है ॥६ ॥

[कदम = मुहूर्त = ४८ मिनट; २४ घण्टे = ३० मुहूर्त]

४९८३. इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७ ॥

हे इन्द्राग्ने ! वीर पुरुष अपने हाथ धनुष पर रखते हैं अर्थात् युद्ध के लिए सदा ही तत्पर रहते हैं । ऐसे वीर गौओं को खोजने में हमारा सहयोग करें ॥७ ॥

४९८४. इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः । अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८ ॥

हे इन्द्राग्ने ! जो शत्रु हमें दुःख दे रहे हैं; उन्हें आप हमसे दूर रखें । उन दुष्टों को सूर्य के प्रकाश से वंचित करके दण्डित करें ॥८ ॥

४९८५. इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! जो भी धन स्वर्ग और पृथ्वी पर है, वह सब आपके अधीन है । जिस धन से सबका पोषण हो, ऐसा धन आप हमें प्रदान करें ॥९ ॥

४९८६. इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आप सामगान एवं स्तोत्रों को सुनकर प्रसन्न होने वाले हैं । आप हमारी स्तुतियों को सुनकर इस सोमरस का पान करने के लिए आएँ ॥१० ॥

[सूक्त - ६०]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्राग्नी । **छन्द** -गायत्री, १-३, १३ त्रिष्टुप्; १४बृहती,१५ अनुष्टुप् ।]

४९८७. श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१ ॥

सूर्योदय के समय जो साधक इन्द्र और अग्निदेवों की उपासना करते हैं, वे इन दोनों सामर्थ्यवान् देवों की कृपा से शत्रु का नाश करके अन्न और धन प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

४९८८. ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२ ॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप गौओं, जल प्रवाह, प्रकाश एवं उषा को उठाकर दूर ले जाने वालों से संग्राम करके उन्हें नष्ट करें । आप अपने भक्तों को, श्रेष्ठ प्रकाश, गौएँ एवं उत्तम प्रकार का जल प्रदान करें ॥२ ॥

४९८९. आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र और अग्निदेवो ! शत्रु को नष्ट करने वाले सामर्थ्य के साथ अन्न लेकर आप हमारे निकट आएँ । आप दोनों अनिन्द्य एवं श्रेष्ठ धन सहित हमारे पास पधारें ॥३ ॥

४९९०. ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥४ ॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव का विश्व निर्माण में पहले से सहयोग रहा है । इस कारण उनकी प्रशंसा करते हुए हम उनका आवाहन करते हैं । वे इन्द्र और अग्निदेव स्तोता और याजकों की रक्षा करते हैं ॥४ ॥

४९९१. उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥५ ॥

उग्र शत्रु को संग्राम में विदीर्ण करने वाले, जो इन्द्र और अग्निदेव हैं, उनका हम आवाहन करते हैं। वे दोनों देव हमें सफल और सुखी बनाएँ ॥५॥

४९९२. हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अप द्विषः ॥६॥

जो इन्द्रदेव और अग्निदेव दुष्ट असुरों की दुष्टता का संहार करते हैं एवं सज्जनों की रक्षा करते हैं, उन्हीं देवों ने सब शत्रुओं का विनाश किया है ॥६॥

४९९३. इन्द्राग्नी युवामिमे३भि स्तोमा अनूषत। पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७॥

हे सुखप्रदाता इन्द्रदेव और अग्निदेव ! ये स्तोतागण आप दोनों की वन्दना करते हैं। आप दोनों सोमरस का पान करें ॥७॥

४९९४. या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा। इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥८॥

जगत् के नायक हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! याजकों द्वारा प्रशंसा किये जाते हुए, आप दोनों उनसे प्रदत्त हविष्यान्न के लिए यज्ञशाला में अपने द्रुतगामी वाहन (अश्व) की सहायता से पधारें तथा दानदाताओं की सहायता करें ॥८॥

४९९५. ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९॥

हे सृष्टि के नायक इन्द्रदेव और अग्निदेव ! विधिपूर्वक पवित्रता को प्राप्त, इस सोमरस के पास, इसका पान करने के लिए अपने वाहनों के साथ पधारें ॥९॥

४९९६. तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत्। कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०॥

जिन अग्निदेव की प्रचण्ड ज्वालाएँ सब वनों को अपनी चपेट में लेकर ज्वालारूप जिह्वा से काला कर देती हैं; उन शक्तिशाली अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१०॥

४९९७. य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः। द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥

जो मनुष्य प्रज्वलित अग्नि में इन्द्रदेव के लिए आनन्दप्रद आहुति अर्पित करते हैं, उनकी तेजस्विता एवं अन्न वृद्धि के लिए इन्द्रदेव जल - वर्षा करते हैं ॥११॥

४९९८. ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः। इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप दोनों (यजमान की) उन्नति के लिए शक्तिवर्धक अन्न और शीघ्र गतिशील अश्व प्रदान करें ॥१२॥

४९९९. उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥

हे इन्द्राग्ने ! हम, आप दोनों का (यज्ञ में) आवाहन करते हैं। आपको (हविष्यान्नरूपी) धन प्रदान करके प्रसन्न करते हैं। अन्न एवं धन प्राप्ति के लिए हम आप दोनों को यज्ञ में आवाहित करते हैं ॥१३॥

५०००. आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै३ रुप गच्छतम्।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! हम मित्रता के लिए आपका आवाहन करते हैं। आप दोनों मित्ररूप में हमारे पास गौएँ, घोड़े और धन सहित आएँ ॥१४॥

५००१. इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः। वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥१५॥

हे इन्द्र और अग्निदेवो ! आप सोमरस तैयार करने वाले एवं यज्ञकर्त्ता की स्तुति सुनकर हवि की इच्छा से आएँ और सोमरस का पान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ६१]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - सरस्वती । **छन्द** -गायत्री; १-३, १३ जगती, १४ त्रिष्टुप् ।]

५००२. **इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।**
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१ ॥

सरस्वती देवी ने आहुति देने वाले 'वध्र्यश्व' को, धैर्यवान्, ऋणमुक्त होने वाला पुत्र 'दिवोदास' प्रदान किया, जिसने 'पणि' नामक कष्ट देने वाले कंजूस का नाश किया । हे सरस्वती देवि ! आपके दान महान् हैं ॥१ ॥

५००३. **इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।**
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२ ॥

जो सरस्वती देवी अपने बलवान् वेग से कमलनाल की तरह पर्वत के तटों को तोड़ देती हैं, हम उन सरस्वती देवी की भक्ति और सेवा करते हैं, वे हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

५००४. **सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।**
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३ ॥

हे सरस्वती देवि ! आपने देवताओं की निन्दा करने वाले को नष्ट किया । आप उसी तरह कपटी-दुष्टों का नाश करें । मानवों के लाभ के लिए आपने संरक्षित भू-भाग प्रदान किए हैं । हे वाजिनीवति ! आपने ही मनुष्यों के लिए जल प्रवाहित किया है ॥३ ॥

५००५. **प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥४ ॥**

सरस्वती देवी अनेक प्रकार के अन्न देने से अन्नवाली कहलाती हैं । वे रक्षा करती हैं । वे देवि हमें उत्तम प्रकार से तृप्त करें ॥४ ॥

५००६. **यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५ ॥**

जिस प्रकार इन्द्रदेव को युद्ध में शत्रुओं से रक्षा करने के निमित्त बुलाते हैं, उसी प्रकार युद्ध के प्रारम्भ के समय जो आपका आवाहन करता है, आप उसकी रक्षा करती हैं ॥५ ॥

५००७. **त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६ ॥**

हे सरस्वती देवि ! आप बल से युक्त हैं । आप संग्राम के समय हमारी रक्षा करें एवं पूषन्देव की तरह हमें धन प्रदान करें ॥६ ॥

५००८. **उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७ ॥**

स्वर्णिम रथ पर आरूढ़, प्रचण्ड वीरता धारण करने वाली देवी सरस्वती शत्रुओं का नाश करती हैं और स्तोताओं की रक्षा करती हैं ॥७ ॥

५००९. **यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८ ॥**

उन (सरस्वती) का निरन्तर प्रवाहित जल, वेग से गमन करता हुआ, गर्जन (शब्द) करता है ॥८ ॥

५०१०. **सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९ ॥**

जिस प्रकार सूर्यदेव प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही देवी सरस्वती शत्रुओं को परास्त करती हुई बहिनों सहित आती है ॥९ ॥

५०११. उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१० ॥

प्रियजनों में अतिप्रिय, सप्त बहिनों (सात छन्दों अथवा सहायक धाराओं) से युक्त देवी सरस्वती हमारे लिए स्तुत्य हैं ॥१० ॥

५०१२. आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११ ॥

जिन देवी सरस्वती ने स्वर्ग और पृथ्वी को अपने तेज से भर दिया है, वे हमें निन्दा करने वालों से बचाएँ ॥११ ॥

५०१३. त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२ ॥

जो देवी सरस्वती तीन स्थानों (प्रदेशों) में रहने वाली (बहने वाली), सप्त धारक शक्तियों से युक्त, पाँचों वर्ण के मनुष्यों को बढ़ाने वाली हैं, वे संग्राम के समय आवाहन करने योग्य हैं ॥१२ ॥

५०१४. प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३ ॥

जो देवी सरस्वती अपने महत्त्व और तेज के प्रभाव के कारण अन्य नदियों में श्रेष्ठ है । अन्य नदियों के प्रवाहों की अपेक्षा इनका प्रवाह अधिक तीव्र गति वाले रथ के वेग के समान है; वे गुणवती देवी सरस्वती विद्वान् स्तोताओं द्वारा स्तुत्य हैं ॥१३ ॥

५०१५. सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४ ॥

हे सरस्वती देवि ! आप हमें उत्तम धन प्रदान करें । हमें आपके प्रवाह कष्ट न दें । आप हमारे बन्धुत्व को स्वीकार करें । हम निकृष्ट स्थान को न जाएँ ॥१४ ॥

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** -अश्विनीकुमार । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५०१६. स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥१ ॥

हम उन दोनों अश्विनीकुमारों की उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, जो अश्विनीकुमार इस दृश्य जगत् को प्रकाशित करते हैं । वे बलवान् शत्रुओं का नाश करते हैं ॥१ ॥

५०१७. ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥२ ॥

जब दोनों अश्विनीकुमार अपने तेज को बढ़ाते हुए यज्ञशाला में आते हैं, उस समय उनके तेज से रथ भी प्रदीप्त हो उठता है । वे मरुभूमि को छोड़कर अपने अश्वों को जल के निकट ले जाते हैं ॥२ ॥

५०१८. ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप मन जैसे तीव्रगामी, इशारे पर चलने वाले अश्वों के द्वारा अपने स्तोताओं को स्वर्ग तक पहुँचाते हैं । आहुति देने वाले याजक को कष्ट पहुँचाने वाले को चिर निद्रा (मृत्यु) में सुला देते हैं ॥३ ॥

५०१९. ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।

शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥४ ॥

अद्रोही होकर प्राचीन होता अग्निदेव तथा दोनों अश्विनीकुमारों के लिए हवि अर्पित करते हैं । वे दोनों अश्विनीकुमार स्तोताओं के नवीन, मनन करने योग्य स्तोत्रों को सुनकर पुष्टिकारक एवं बलवर्धक उत्तम अन्न को, अश्वों के द्वारा लेकर स्तोताओं के समीप पहुँचें ॥४ ॥

५०२०. ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।

या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५ ॥

विस्तृत स्तुति करने वाले स्तोताओं को जो धन एवं सुख देते हैं, ऐसे सुन्दर, शत्रुनाशक, सामर्थ्यवान् पुरातन अश्विनीकुमारों की हम नवीन स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥५ ॥

५०२१. ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।

अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥६ ॥

रक्षा करने वाले वे (दोनों अश्विनीकुमार) तुग्र (इस नाम के राजा अथवा लेन-देन करने वाले) के पुत्र भुज्यु (नामक व्यक्ति अथवा भोज्य-उपयोगी) को पक्षी के समान वेगवान् रथ (यान) द्वारा जल की गोद से उठाकर धूल रहित मार्ग से समुद्र (सागर अथवा आकाश) के पार लाने में समर्थ हुए ॥६ ॥

[सामान्य रूप से यह ऋचा तुग्र के पुत्र भुज्यु के उद्धार पर घटित होती है । तत्त्वदृष्टि से (तुग्र) लेन-देन वाले समुद्र के पुत्र (भुज्यु), उपयोगी जल को उठाकर उसे उपयोग के स्थान तक पहुँचाने की प्रक्रिया का भी संकेत इसमें मिलता है । तुग्र (लेन-देन वाले) आकाश से उपयोगी (भुज्यु) पोषक कणों को प्राणियों तक पहुँचाने का भाव भी इससे प्रकट होता है ।]

५०२२. वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।

दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७ ॥

बलवान् दोनों अश्विनीकुमार विजय रथ पर आरूढ़ होकर, पर्वतों (या मेघों) को भी लाँघ जाते हैं । आप उत्तम मति वाले की प्रार्थना को सुनें एवं शयु के लिए गौ को पयस्विनी बनाएँ ॥७ ॥

[शयु नामक राजा के अतिरिक्त इसका अर्थ सोया हुआ भी होता है । प्रकृति की सुप्त क्षमताओं को जाग्रत् करने के लिए गौओं का पयस्विनी अर्थात् किरणों को प्रभावोत्पादक बनाने की प्रार्थना, इस मंत्र में समाविष्ट है ।]

५०२३. यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।

तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८ ॥

द्यावा-पृथिवी, आदित्यगण, मरुद्गण, दोनों अश्विनीकुमारों, वसुओं आदि देवगणों एवं मनुष्यों में जो भीषण रोष है, वह असुरों का संहार करने में प्रयुक्त हो ॥८ ॥

[रोष को अनीति प्रतिरोध के लिये ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए ।]

५०२४. य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।

गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९ ॥

जो याजक इन अश्विनीकुमारों की स्तुति करते हैं, उनके ऐसे पावन यज्ञ कर्म को मित्रावरुणदेव जानते हैं । ऐसे याजक असुरों का , अपने अस्त्रों द्वारा संहार करने में समर्थ होते हैं ॥९ ॥

५०२५. अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१० ॥

हे देव अश्विनीकुमारो ! आप रथ पर चढ़ कर सन्तान को सुख देने के लिए घर आएँ। मानवों को कष्ट पहुँचाने वाले दुष्टों का सिर, अपने उग्र क्रोध के द्वारा तिरस्कार करते हुए काट डालें ॥१० ॥

५०२६. आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक्।
दृळहस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥११ ॥

हे देव अश्विनीकुमारो ! हम आपकी स्तुति करते हैं। आप स्तुति सुनकर हमारे पास आएँ। हमें गौओं से भरा गोष्ठ एवं दिव्य धन प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - ६३]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता -अश्विनीकुमार। छन्द - त्रिष्टुप्; ११ एकपदा त्रिष्टुप्।]

५०२७. क्व१त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥१ ॥

दोनों अश्विनीकुमार देव जहाँ भी हों, वहीं यह आहुति सहित हमारे आकर्षक स्तोत्र, उन्हें दूत की तरह बुलाने के लिए पहुँचें। वे दोनों स्तुत्यदेव हमारी ओर आएँ एवं स्तुति से आनन्दित हों ॥१ ॥

५०२८. अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारदेवो ! आप हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमारे घर आएँ एवं सोमपान करें। समीपस्थ एवं दूरस्थ शत्रुओं से हमारे इस घर की रक्षा करें ॥२ ॥

५०२९. अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३ ॥

हे अश्विद्वय !सोमरस तैयार है।कुश के आसन बिछे हुए हैं। हम स्तोतागण आपको स्तुति करके बुलाते हैं॥ ३ ॥

५०३०. ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारदेवो ! यज्ञशाला में अग्नि आपके निमित्त प्रदीप्त है। घृत से भरा पात्र आगे स्थित है। अनेकों विशेष कार्य करने में समर्थ, दानी होता मनोयोगपूर्वक आपके लिए आहुति अर्पित करते हैं ॥४ ॥

५०३१. अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम्।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५ ॥

हे आजानुबाहु अश्विद्वय ! सूर्यपुत्री अर्थात् उषा आपके अनेक प्रकार से सुरक्षित रथ पर आरूढ़ होती हैं। आप देवों की प्रजाओं का नेतृत्व करें ॥५ ॥

५०३२. युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सूर्या (उषा) की शोभा के लिए पुष्ट हों । आप अपनी एवं उनकी शोभा और कल्याण के लिए रथ पर पुष्टिकारक अन्न रखते हैं । आप तक हमारी उत्तम स्तुतियाँ पहुँचें ॥६ ॥

५०३३. आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपका तीव्रगामी रथ अन्न के लिए गमन करता है । मन की गति वाले आपके अश्व आप दोनों को अन्न के साथ हमारे निकट लाएँ ॥७ ॥

५०३४. पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं नइषं पिन्वतमसक्राम् ।

स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८ ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आप बड़ी भुजाओं वाले हैं । आपके पास अपरिमित धन है । आप हमें स्थिर मन वाली गौएँ एवं अन्न दें । आपके लिए मधुर सोमरस तैयार है । स्तोतागण आपकी स्तुति करते हैं ॥८ ॥

५०३५. उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।

शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९ ॥

'पुरय' (नगर के नियन्ता) की दो द्रुतगामी अश्वाएँ, 'सुमीळ्ह' (धन-धान्य युक्त अथवा सेचनकर्त्ता) की सौ गौएँ तथा 'पेरुक' (आदित्य) द्वारा पकाये गये फल (पदार्थ) हमें प्राप्त हैं । 'शाण्ड' (शान्ति या कल्याणप्रद) द्वारा प्रदत्त स्वर्णालंकृत, दर्शनीय, शत्रुजयी दस रथ हमारे पास हैं ॥९ ॥

[पौराणिक सन्दर्भ में पुरय, सुमीळ्ह आदि नाम वाले दाताओं के अनुदान प्राप्त होने की बात के अतिरिक्त इस ऋचा से काया में अवस्थित दिव्य विभूतियों का अर्थ भी सिद्ध होता है । काया को 'पुरी' कहा ही जाता है । पुरी का नियन्ता जीवात्मा है । उसकी दो अश्वाएँ चय-अपचय-(एनाबॉलिज्म एवं कैटाबॉलिज्म) संचालित करने वाली शक्ति धाराएँ अश्वाएँ कही जा सकती हैं । सुमीळ्ह की गौएँ शरीरस्थ पोषक प्रवाह हैं तथा आदित्य द्वारा परिपक्व पदार्थ या जीवनरस भी हमें उपलब्ध हैं । दस इन्द्रियों को दस रथों की संज्ञा सदैव से दी जाती है । ये शाण्ड के दर्शनीय शत्रुजयी रथ हैं ।]

५०३६. सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।

भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१० ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारदेवो ! आपके स्तोता को 'पुरुपन्था' राजा ने सैकड़ों-हजारों घोड़े दिये । हे देवो ! यह सब आप भरद्वाज को भी प्रदान करें और असुरों का नाश करें ॥१० ॥

[अश्विनीकुमार आरोग्य के देवता हैं । 'पुरुपन्था' का अर्थ होता है - प्रगति पथ पर बढ़ाने वाले । आरोग्य के साधक को 'पुरुपन्था' - प्राणों ने हजारों अश्व अर्थात् शक्ति प्रवाह दिये; यह कथन युक्तिसंगत सिद्ध होता है ।]

५०३७. आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥११ ॥

हे दोनों अश्विनीकुमारो ! आपकी कृपा से हम श्रेष्ठ विद्वानों के साथ सुखपूर्वक रहें ॥११ ॥

[सूक्त - ६४]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता -उषा । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

५०३८. उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।

कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१ ॥

उषाएं धवल वर्ण वाली हैं, ये जल की लहरों के समान चमक के साथ ऊपर को आ रही हैं। ये उषाएँ धन-ऐश्वर्यवान् हैं। ये सभी मार्गों को प्रकाशित करके सरलता से गमन करने योग्य बनाती हैं ॥१ ॥

५०३९. भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन्।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२ ॥

हे उषा देवि ! आप कल्याणकारी दीखती हैं। आपकी किरणें आभामय होती हैं। हे दिव्य उषा देवि ! आप चमकती किरणों से सुशोभित अपने अन्तः स्थल को प्रकट कर, प्रकाश प्रदान कर सबका कल्याण करती हैं ॥२ ॥

५०४०. वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम्।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥३ ॥

हे उषादेवि ! लाल आभायुक्त तेजस्वी रश्मियाँ आपको वहन कर ऊपर लाती हैं। जैसे घोड़े पर सवार अचूक बाण चलाने वाला शूरवीर, शत्रु को दूर भगाता है, वैसे ही आप भी अन्धकार को दूर कर देती हैं ॥३ ॥

५०४१. सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४ ॥

हे उषादेवि ! आप स्वयं प्रकाशित होकर अन्तरिक्ष में विचरण करती हैं, तब आपके लिए मार्ग विहीन पर्वतीय प्रदेश भी सुगम हो जाते हैं। हे स्वर्गलोक की कन्या ! आप बड़े रथ में हमारे लिए धन लाएँ ॥४ ॥

५०४२. सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५ ॥

हे स्वर्ग की कन्या उषादेवि ! आप प्रथम हवन के समय दर्शनीय एवं पूजनीय हैं। आप तीव्रगामी, इच्छानुसार चलने वाले बैलों द्वारा खींचने वाले रथ में हमारे लिए श्रेष्ठ धन लाएँ ॥५ ॥

५०४३. उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६ ॥

हे उषादेवि ! आपके प्रकाशित होने पर पक्षी अपने निवास से बाहर आते हैं एवं अन्नोपार्जन करने वाले भी जाग कर कर्म में उद्यत होते हैं। हे उषादेवि ! जो मनुष्य आपके प्राकट्य के साथ रहता है। (कर्म को उद्यत होता है) उसे पर्याप्त धन प्राप्त होता है ॥६ ॥

[सूक्त - ६५]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य। देवता -उषा। । छन्द - त्रिष्टुप्।]

५०४४. एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥१ ॥

यह स्वर्ग में उत्पन्न हुई दिव्य कन्या अर्थात् देवी उषा अपनी तेजस्वी- प्रकाशित रश्मियों के द्वारा अन्धकार को दूर करतीं एवं मानवों की प्रजा को जगाती हैं ॥१ ॥

५०४५. वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२ ॥

अरुण वर्ण के अश्वों वाले विशाल चन्द्ररथ पर बैठी देवी उषा यज्ञ के पहले ही विशेष गति से अन्तरिक्ष में विचरण करती हैं। वे अपने विलक्षण प्रकाश से अन्धकार को नष्ट कर रही हैं ॥२ ॥

५०४६. श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३ ॥

धनवान् एवं उत्तम प्रकार से गमन करने वाली उषाएँ, हव्य दान करने वाले को अन्न, बल, यश और रस प्रदान करती हैं। हे उषाओ ! आप हमें भी अन्न और सेवा करने वाले वीर पुत्रों से युक्त रत्न आज ही प्रदान करें ॥३ ॥

५०४७. इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४ ॥

हे उषाओ ! जैसे आपने अपने स्तोताओं को पहले धन प्रदान किया है, वैसे ही इस समय भी आप हविदाता एवं स्तोताओं को वे रत्न प्रदान करें, जो आपके पास हैं ॥४ ॥

५०४८. इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥५ ॥

हे पर्वत शिखरों पर दर्शनीय उषादेवि ! आपकी कृपा से ही अंगिराओं ने गौओं के समूह को खोला है। मनुष्यों की ईश - प्रार्थना अब फलवती हुई है ॥५ ॥

५०४९. उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६ ॥

हे सूर्य पुत्री उषा ! आप पूर्व की तरह अब भी अन्धकार को मिटाएँ। जैसे आपने भरद्वाज को धन दिया है, वैसे ही हम स्तोताओं को भी सुपुत्र सहित अन्न एवं धन प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ६६]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य। **देवता** - मरुद्गण । **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

५०५०. वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१ ॥

ज्ञानी जन उसे (भिन्न होते हुए भी) समान धेनु (धारण करने वाले) नाम से जानते हैं। एक को मनुष्यों के लिए दुहा जाता है तथा दूसरा तेजस्वी रूप अन्तरिक्ष से दूध की भाँति ही क्षरित होता है ॥ १ ॥

[इस ऋचा में पोषक प्रकृति प्रवाह को स्पष्ट शब्दों में गौ के समान कहा गया है। अनेक वेद मन्त्रों के अर्थ गौ या धेनु शब्द के इसी भाव से स्पष्ट होते हैं।]

५०५१. ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२ ॥

जो इच्छा से बढ़ने वाले, अग्निदेव जैसे तेजस्वी एवं स्वर्णाभूषणों से अलंकृत मरुद्गण हैं, वे धन एवं बल के साथ प्रकट होते हैं ॥२ ॥

५०५२. रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥३ ॥

अन्तरिक्ष में रहने वाले मरुद्‌गणों के पिता रुद्र और माता महामहिमामयी पृथ्वी हैं । ये पृथ्वी ही सबके कल्याण के लिए जल, अन्न को अपने गर्भ में धारण करती हैं ॥३ ॥

५०५३. न य ईषन्ते जनुषोऽया न्व१न्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥४ ॥

जो लोगों से दूर न जाकर उनके अन्तःकरण में निवास करते हैं और दोष को दूर कर पवित्र बनाते हैं, जो अपने तेज से इच्छानुसार शरीर को बलवान् बनाते हैं, वे पवित्र, वीर मरुत् इच्छानुकूल जल - वृष्टि करते हैं ॥४ ॥

५०५४. मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५ ॥

जिन शूरवीरों का नाम मरुद्‌गण है, वे स्तोताओं के पोषण के लिए उत्तम धन प्रदान करते हैं । वे अपने उग्र क्रोध से चोरों और दस्युओं को परास्त कर नष्ट करते हैं ॥५ ॥

५०५५. त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥६ ॥

वे मरुद्‌गण महान् वीर हैं । द्यावा-पृथिवी में उनकी साहसी सेना सुसज्जित रहती है । ये स्वदीप्ति से तेजस्वी हैं । इनके मार्ग में कोई बाधा नहीं डाल सकता ॥६ ॥

५०५६. अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७ ॥

हे मरुद्‌गणो ! अश्वरहित , बिना सारथी वाला, बिना लगाम (रास) वाला (होकर भी), दोषरहित जल प्रदान करने वाला, आपका रथ द्यावा-पृथिवी एवं अन्तरिक्ष में विचरता है ॥७ ॥

५०५७. नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥८ ॥

हे मरुद्‌गणो ! संग्राम में जिनके आप रक्षक हैं, उन्हें कोई नहीं मार सकता । पुत्रों सहित जिसके आप रक्षक हैं, वह शत्रुओं की गौओं को भी जीत सकता है ॥८ ॥

५०५८. प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! जो मरुद्‌गण अपने बल-पराक्रम से शत्रुओं को परास्त करते हैं; उनकी हलचल से पृथ्वी भी काँपने लगती है । उन्हीं तीव्रगामी, बलवान्, वीर मरुद्‌गणों के लिए ही स्तोता अद्‌भुत स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥९ ॥

५०५९. त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१० ॥

अग्नि सदृश प्रदीप्त रहने वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले एवं यज्ञ के समान तेजस्वी ये मरुद्‌गण कभी पराभूत नहीं होते ॥१० ॥

५०६०. तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११ ॥

हम शस्त्रधारी, पराक्रमी, रुद्र पुत्र मरुद्‌गणों की स्तुति करते हैं । ये स्तुतियाँ बलवान् होकर मरुद्‌गणों को और अधिक बल प्रदान करती हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ६७]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - मित्रावरुण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५०६१. विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१ ॥

हे अतिश्रेष्ठ मित्रावरुणदेवो ! आपकी हम स्तुति करते हैं । आप अपने बाहुबल से सभी मनुष्यों को अनुशासित करते हैं ॥१ ॥

५०६२. इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥२ ॥

हे मित्रावरुणदेवो ! हम स्तोताओं द्वारा की जाने वाली ये स्तुतियाँ आपको प्रवृद्ध करती हैं । आपके लिए हमने कुश का आसन बिछाया है । आप प्रसन्न होकर हमें ऐसा निवास दें, जिससे हमारी रक्षा हो सके ॥२ ॥

५०६३. आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नः स्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३ ॥

हे मित्रावरुणदेवो ! आपका हम नमस्कारपूर्वक आवाहन करते हैं एवं आपकी स्तुति करते हैं । आप आएँ और जिस तरह आप सत्कर्मों में प्रवृत्त हैं, उसी तरह हमें भी धन एवं अन्न प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील करें और हमें सन्तुष्ट करें ॥३ ॥

५०६४. अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४ ॥

माता अदिति ने गर्भ में धारण करके सत्य स्वरूप, बलवान्, पवित्र भाइयों के रूप में आपको पोषित किया है । इसलिए आप उत्पन्न होते ही शत्रुओं का संहार करने वाले एवं श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ बन गए ॥४ ॥

५०६५. विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५ ॥

जब आपकी महानता के कारण आनन्दित होकर सभी देवगण प्रीतिपूर्वक क्षात्रबल धारण करते हैं, तब आप सब ओर से आकाश एवं पृथ्वी को घेर लेते हैं । आप किसी के द्वारा दमित नहीं होते हैं ॥५ ॥

५०६६. ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥६ ॥

वे (दोनों मित्रावरुण देव) अन्तरिक्ष को, सूर्य को एवं नक्षत्रों को दृढ़ता से धारण किये हैं । वे देव प्रतिदिन क्षात्र तेज को बढ़ाते हैं । मानवों को पर्याप्त अन्न मिले, इसलिए द्यावा-पृथिवी का विस्तार करते हैं ॥६ ॥

५०६७. ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

हे मित्रावरुण देवो ! जब याजक यज्ञशाला (की तैयारी) पूर्ण कर लेते हैं, तब आप उदर पूर्ति के लिए ही आदरपूर्वक प्रेषित अन्न रूप सोम को धारण (ग्रहण) करते हैं। प्रसन्न होकर आप स्वभावतः ही नदियों को जल से भर देते हैं, जिससे धूल नहीं उड़ती है ॥७॥

५०६८. ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत्।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥८॥

मेधावी जन वाणी द्वारा (स्तुति द्वारा) आपसे जल की कामना करते हैं, जैसे आपके यजनकर्त्ता सत्य मार्ग पर आरूढ़ होते हैं, वैसे ही आप महिमावान् हवि देने वालों के पापों का नाश करें ॥८॥

५०६९. प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९॥

जो आपके प्रिय धाम एवं नियम में बाधा उत्पन्न करते हैं एवं यज्ञ न करके द्वेष करते हैं; ऐसे स्तुति न करने वाले एवं यज्ञ न करने वाले लोग न तो मानव हैं, न देव हैं; उनका आप संहार करें ॥९॥

५०७०. वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥१०॥

कोई स्तोता वाणी द्वारा, कोई विद्वान् मन द्वारा आपको प्रसन्न करते हैं। वास्तव में हम यह सत्य ही कहते हैं कि आप की महिमा अतुलनीय है ॥१०॥

५०७१. अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११॥

हे मित्रावरुण देवो ! जब हम स्तोतागण आपकी स्तुति करके आपके लिए सोमरस प्रस्तुत करते हैं, तब आप अपने आश्रय में रहने वाले भक्तों को गौओं से भरा गोष्ठ एवं सुरक्षित निवास प्रदान करते हैं ॥११॥

[सूक्त - ६८]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य। **देवता** - इन्द्रावरुण। । **छन्द** - त्रिष्टुप्, ९-१० जगती।]

५०७२. श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥१॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! जो यज्ञ उद्यमी मानवों द्वारा, बहुत से आसन बिछाकर महान् सुख की पूर्ति के लिये किया जाता है; उसी तरह की इच्छापूर्ति के लिए आज यह यज्ञ उत्साहपूर्वक आपके निमित्त किया जा रहा है ॥१॥

५०७३. ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम्।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥२॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! आप यज्ञ करने वाले देवों में श्रेष्ठ हैं। आप बल और महान् धन से युक्त हैं। आप सेनाओं एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। आप दाताओं में श्रेष्ठ एवं शत्रु का संहार करने वाले हैं ॥२॥

LIST OF THINGS FOR THE YATRA :

- Back pack (water proof)
- Duffel bag
- Money belt

CLOTHING :

Clothing should be normally light capable of providing enough warmth preferably dark colors so that dirt is not easily remarkable.

- Track shouts - 2
- Shirts long sleeved made of wool of flannel
- Salwar sets - 3
- Towels - 2
- Eight pairs of cotton and two pairs of woolen Socks
- Muffler - 1
- One pair woolen and one pair cotton gloves
- Pair of sandal with back strap - 1
- One pair of hiking boots and one pair of sports shoes
- Under garments - 12
- Skirt for lady (good for open toilet) - 1
- Shawl - 1
- Woolen sweater with high neck - 1
- Monkey cap (Balaclava) - 1
- Wind sheeter with a hood (water proof) - 1
- Pants loose fitting - 2
- Thermals - 2 (two legging and two vests)
- Night wears - 2
- T-shirts - 2

TOILETRY :

- Sun block cream
- Tooth paste and brush
- Soap
- Skin moisturizer
- Toilet tissue rolls & detergined
- Hand mirror
- Wide tooth comb
- Lip balm

MISCELLANEOUS

- Alarm clock.
- Video and steel camera with extra batteries.
- Torch with batteries.
- Music cassettes.
- Nylon ropes.
- Note book.
- Water can with m-seal for bringing the Manas Holy water.
- Related books.
- Sun glass with retainer (thread/chain) - 1.
- Whistle to hang around neck while doing Parikrama/Kora.
- Cigarette lighter - 1.
- 500 ml thermos flask Holder with mug cover.
- One liter water bottle.
- Swiss army knife.
- Sewing kit

FIRST AID MEDICAL KITS :

We highly recommend you to consult your own doctor before you start the trip and bring the medications as per his/her advice. However following items are worth full to bring.

- Daimox - 20 Tablets
- Paracetamol (crocin)
- Pain killer
- Eye drops for burning eyes
- Multivitamin pills
- Muscle relaxant
- Antibiotic
- Motion sickness and high altitude sickness medicine
- Vicks vaporub
- Water purification tablet
- Neosporin ointment
- Band aid
- [illegible]
- [illegible]
- Electral [illegible]
- Thermometer

EATABLES :

Bringing your favorite snacks are highly recommended like biscuits, khasras, dry Indian sweets, dry fruits, precooked foods etc.
Puja Samagri - As per your tradition

HEALTH CONSIDERATIONS :

All participants must provide health certificate given by a reputed doctor confirming that the participant is fit to travel at an altitudes of 5700 meters.

FITNESS :

Please start to get in shape NOW!!! A good 30 minute walk, jogging daily, stretching and regular exercise should put you in a right shape (Concentrate on your heart & legs - Aerobics).

५०७४. ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना।

वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! आप इन्द्र और वरुण दोनों देवों की नमस्कारपूर्वक, बल-वर्धक स्तोत्रों से स्तुति करें । इन्द्रदेव वज्र फेंककर वृत्रासुर को मारने वाले हैं एवं वरुणदेव संकट के समय बल के द्वारा रक्षा करते हैं ॥३ ॥

५०७५. ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः।

प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥४ ॥

समस्त स्त्रियाँ, पुरुष, देवगण एवं द्यावा-पृथिवी अपने उद्यम से कितने भी बढ़ गये हों, परन्तु इन्द्र और वरुण दोनों देव इन सबसे श्रेष्ठ हैं ॥४ ॥

५०७६. स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन्।

इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आपको हविप्रदान करने वाला याजक, दानदाता और धनवान् होता है । वह यज्ञकर्म करने वाला आपकी कृपा से सुरक्षित रहकर, धन एवं ऐश्वर्ययुक्त पुत्र प्राप्त करता है ॥५ ॥

५०७७. यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।

अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! जैसा धन आप हविदाता को देते है; जो धन आपसे सुरक्षित है; वैसा ही धन सुरक्षा के लिए हमें प्रदान करें, जिससे हम अपने निन्दकों को दूर कर सकें ॥६ ॥

५०७८. उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात्।

येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७ ॥

हे इन्द्र और वरुण देवो ! हम आपकी स्तुति करने वाले स्तोतागण हैं । आपका देवों द्वारा रक्षित धन हमें भी प्राप्त हो । हम उस सुरक्षित धन-बल से शत्रुओं को तिरस्कृत करके उन्हें जीत लें ॥७ ॥

५०७९. नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा।

इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप दोनों महान् बलवान् हैं । हम आपकी स्तुति करते हैं । आप हमें यश प्राप्त कराने वाला धन प्रदान करें । जैसे नौका द्वारा जल राशि को पार किया जाता है, वैसे ही हम आपकी कृपा से पापों से तर जायें ॥८ ॥

५०८०. प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः।

अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! वरुणदेव महान्, तेजस्वी, अजर और बड़े कार्य करने वाले हैं ; जो वरुणदेव इस पृथ्वी को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं, उनकी मननीय स्तोत्रों द्वारा स्तुति करो ॥९ ॥

५०८१. इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता।

युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१० ॥

सोमपायी हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप दोनों इस हर्षित करने वाले सोमरस का पान करें । आपका रथ सोमपान एवं देवों की तुष्टि के लिए प्रत्येक यज्ञ में जाता है ॥१० ॥

५०८२. इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।

इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥११ ॥

हे बलवान् इन्द्र और वरुणदेवो ! आप इस बलयुक्त अति मधुर आनन्दवर्धक सोमरस का पान करें । आप दोनों इस कुश के आसन पर बैठकर अपने लिए तैयार सोमरस को ग्रहण कर हर्षित हों ॥११ ॥

[सूक्त - ६९]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र-विष्णु । । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५०८३. सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।

जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! हम आपके निमित्त हवि और उत्तम स्तोत्र प्रेषित करते हैं । आप प्रसन्न होकर यज्ञ में आएँ एवं हमें धन प्रदान करें ॥१ ॥

५०८४. या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।

प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप समस्त विश्व में सुमति के प्रेरक हैं । आपके लिए यह सोमरस से भरे पात्र रखे हैं । आपके लिए की गई स्तुतियाँ आपको प्रसन्न करें । आप हमारी र[illegible] करें ॥२ ॥

५०८५. इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।

सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों सोम के स्वामी हैं । आप हमारे लिए धन लेकर इस यज्ञ में आएँ । उक्थों (उच्चारित वचनों) सहित स्तोत्र आपको बढ़ाने वाले हों ॥३ ॥

५०८६. आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।

जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! हिंसकों को परास्त करने वाले घोड़े आपको ले आएँ । आप हमारी स्तुति को सुनकर, हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें ॥४ ॥

५०८७. इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।

अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! सोमपान से हर्षित होकर आपने इस विस्तृत विश्व को आवृत किया और हमारे जीवन के लिए लोकों को प्रकाशित किया है ॥५ ॥

५०८८. इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।

घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप सोम पान से बढ़ते हैं । यजमान आपके लिए नमस्कार सहित हवि प्रदान

करते हैं । आप हमें धन प्रदान करें । आप समुद्रवत् गंभीर हैं । जैसे यह कलश सोम से परिपूर्ण है, वैसे ही आप भी परिपूर्ण हों ॥६ ॥

५०८९. इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों तृप्त होने तक इस सोमरस को उदरस्थ करें । यह हर्षित करने वाला सोम आपके पास तक पहुँचे । आप हमारी प्रार्थना एवं स्तोत्रों को ध्यानपूर्वक सुनें ॥७ ॥

५०९०. उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव और विष्णुदेव ! आप दोनों कभी पराजित न होने वाले अजेय हैं; परन्तु जब आप आपस में ही स्पर्धा करते हैं, तो सारे भुवन भय से काँपने लगते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ७०]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - द्यावा-पृथिवी । । छन्द - जगती ।]

५०९१. घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१ ॥

हे द्युलोक और पृथ्वीलोक ! आप जलयुक्त सुन्दर रूप वाले और भुवनों को आश्रय देने वाले, मधुर अन्न-रस देने वाले, अमर एवं बलवान् हैं । आप दोनों वरुणदेव द्वारा धारण किये गये हैं ॥१ ॥

५०९२. असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥२ ॥

ये द्यावा-पृथिवी बहुत से जल प्रवाहों से युक्त हैं । ये दोनो उत्तम कर्म करने वालों को तेजस्वी जल प्रदान करते हैं । हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनो इन भुवनों की अधिष्ठाता हैं । आप प्रसन्न होकर हमें हितकारी जल प्रदान करें ॥२ ॥

५०९३. यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥३ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आपके निमित्त यजन कर्म करने वालों के सभी कार्य सफल-सिद्ध होते हैं । आपकी कृपा से धर्मारूढ़ मानवों को श्रेष्ठ सन्तान प्राप्त होती है ॥३ ॥

५०९४. घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४ ॥

द्यावा और पृथिवी दोनों जल से युक्त हैं । वे जल से सुशोभित एवं जल वृष्टि करने वाले हैं । यज्ञ में यजमान उनकी स्तुति करते हुए सुख प्राप्ति की कामना करते हैं ॥४ ॥

५०९५. मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५ ॥

हे मधुरता की वृष्टि करने वाले द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों हमें मधुरता प्रदान करें । मधुरता आपका स्वभाव है । यज्ञ, धन एवं देवत्व धारण करने वाले आप हमें यश, बल और धन प्रदान करें ॥५ ॥

५०९६. ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥६ ॥

हे सबका कल्याण करने वाले द्यावा-पृथिवि ! आप हमारे माता-पिता हैं । आप सर्वज्ञ, तेजस्वी, ज्ञानी एवं सत्कर्म करने वाले हैं । आप हमें पुत्र-पौत्र युक्त, अन्न, बल, यश और धन प्रदान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ७१]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - सविता । **छन्द** - जगती, ४-६ त्रिष्टुप् ।]

५०९७. उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१ ॥

श्रेष्ठ कर्म करने वाले सवितादेव सुदक्ष, तरुण, पवित्र और यज्ञरूप हैं । वे देव अपनी स्वर्णिम बाहुओं को ऊपर उठाकर जगत् का सब प्रकार से कल्याण करते हैं ॥१ ॥

५०९८. देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२ ॥

सवितादेव द्वारा सत्प्रेरणा और धन दान के समय हम उपस्थित हों । हे सवितादेव ! आप समस्त पशुओं और मनुष्यों को विश्राम तथा कर्म में नियोजित करने वाले हैं ॥२ ॥

५०९९. अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥३ ॥

हे सवितादेव ! आप न दबने वाले कल्याणकारी तेज से हमारे घरों की रक्षा करें । स्वर्ण जिह्वा वाले देव आप हमें नये-नये सुख देते हुए, हमारी रक्षा करें । हम पापियों के अधीन न हों ॥३ ॥

५१००. उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४ ॥

जो सवितादेव शान्त मन वाले, स्वर्णमयी बाहुओं वाले और यशस्वी हैं, वे रात्रि के समाप्त होने पर विधिपूर्वक आहुति प्रदान करने वाले को उत्तम अन्न-धन प्रदान करते हैं ॥४ ॥

५१०१. उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥५ ॥

जैसे वक्ता हाथ ऊपर उठाकर भाषण करता है, वैसे ही सविता देवता अपनी स्वर्णिम किरणों रूपी हाथों को ऊपर की ओर फैलाकर उदित होते हैं । उदित होकर पृथ्वी से उठकर स्वर्ग के शिखर पर स्थित होकर, सभी को पुष्ट और आनन्दित करते हैं ॥५ ॥

५१०२. वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६ ॥

हे सर्व उत्पादक सवितादेव ! आज हमारे लिए श्रेष्ठ सुखों को प्रदान करें । अगला दिवस भी श्रेष्ठ सुख प्रदायक हो, इस प्रकार आप प्रतिदिन हमें उत्तम सुखों को प्रदान करें । आप विपुल धन एवं आश्रयों के अधिपति हैं । इस भावना के अनुसार हम श्रेष्ठ धनादि प्राप्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - ७२]

[**ऋषि** - भरद्वाज बार्हस्पत्य । **देवता** - इन्द्र-सोम । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५१०३. इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आप अत्यन्त महिमावान् हैं । आप दोनों ने श्रेष्ठ कर्म किये हैं । आपने सूर्य तथा जल को प्राप्त किया है । आपने अन्धकार और निन्दकों को दूर किया है ॥१ ॥

५१०४. इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आपने उषा को बसाया एवं प्रकाशित सूर्य को ऊपर उठाया है । आपने आधार प्रदान कर द्युलोक को स्थिर किया एवं पृथ्वी माता को विस्तृत किया है ॥२ ॥

५१०५. इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आपने जल प्रवाह को रोकने वाले वृत्र को नष्ट किया । द्युलोक ने आपको प्रवृद्ध किया । आपने नदियों की जल राशि को प्रवाहित कर समुद्र को भर दिया है ॥३ ॥

५१०६. इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आपने कम आयु वाली गौओं के (थनों) दुग्धाशय में परिपक्व दूध को स्थापित किया है । उसी तरह विचित्र वर्ण वाली गौओं में आपने श्वेत वर्ण का दुग्ध धारण कराया है ॥४ ॥

५१०७. इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव और सोमदेव ! आप दोनों हमें ऐसा धन प्रदान करें; जिससे हमारा कल्याण हो । आप हमें शत्रु सेना का पराभव करने वाला उग्र बल प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - ७३]

[**ऋषि**- भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - बृहस्पति । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

५१०८. यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१ ॥

जो बृहस्पति देव सबसे प्रथम उत्पन्न हुए, उन्होंने पर्वत को ध्वस्त किया । जो अङ्गिरसों में हविष्यान्न से युक्त हैं, जो स्वयं के तेज से तेजस्वी हैं, वे उत्तम गुणों से भूमि की सुरक्षा करने वाले, बलवान् , हमारे पालक बृहस्पति

देव द्युलोक और भूलोक में गर्जना करते हैं ॥१ ॥

५१०९. जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२ ॥

जो बृहस्पतिदेव स्तोताओं को स्थान देते हैं, वे बृहस्पतिदेव शत्रुओं को मारने वाले और शत्रुजयी हैं । वे शत्रुओं को परास्त करके उनके नगरों को ध्वस्त करते हैं ॥२ ॥

५११०. बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१ रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३ ॥

बृहस्पतिदेव ने असुरों को परास्त करके गोधन जीता है । वे बृहस्पतिदेव स्वर्ग के शत्रुओं का मन्त्र द्वारा विनाश करते हैं ॥३ ॥

[सूक्त - ७४]

[ऋषि - भरद्वाज बार्हस्पत्य । देवता - सोम-रुद्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

५१११. सोमारुद्रा धारयेथामसुर्य१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१ ॥

हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप दोनों सामर्थ्यवान् हैं । हमारे समस्त यज्ञ आप तक पूर्णता से पहुँचे । प्रत्येक घर में सात रत्न (प्रत्येक शरीर में सप्त धातु) स्थापित कर, आप हमारा मंगल करें । हमारे द्विपादों (मानवों) एवं चतुष्पादों (पशुओं) को सुख प्रदान करें ॥१ ॥

५११२. सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२ ॥

हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप दोनों हमारे घरों में प्रविष्ट रोगों का विनाश करें । दरिद्रता हमसे दूर रहे । हम अन्नसहित सुख से रहें ॥२ ॥

५११३. सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३ ॥

हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप दोनों हमारे शरीर में सभी ओषधियाँ धारण करा दें । हमारे बन्धन खोलें और हमें मुक्त कर दें ॥३ ॥

५११४. तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४ ॥

तीक्ष्ण आयुधधारी, उत्तम विचारवान्, सुसेव्य, हे सोमदेव और रुद्रदेव ! आप हमें वरुण पाश से मुक्त करके, उत्तम प्रकार का सुख प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त - ७५]

[ऋषि - पायु भारद्वाज । देवता - (संग्राम के अंग) १ वर्म, २ धनु, ३ ज्या, ४ आर्त्नी, ५ इषुधि, ६ पूर्वा० सारथी, उत्त० रश्मियाँ, ७ अनेक अश्व, ८ रथ, ९ रथ गोप, १० ब्राह्मण, पितृ , सोम, द्यावा-पृथिवी, पूषा, ११-१२,

१५-१६ इषु समूह, १३ प्रतोद, १४ हस्तघ्न, १७ युद्धभूमि, ब्रह्मणस्पति और अदिति, १८ वर्म-सोम -वरुण, १९ देव-ब्रह्म । छन्द - त्रिष्टुप्, ६, १० जगती; १२, १३, १५, १६, १९ अनुष्टुप् ; १७ पंक्ति ।]

इस सूक्त के अन्तर्गत युद्ध में प्रयुक्त संसाधनों को लक्ष्य करके ये ऋचाएँ कही गई है, जो स्थूल दृष्टि से लौकिक युद्ध पर घटित की जाती हैं; किन्तु वस्तुतः ये जीवन समर के लिए कही गयी प्रतीत होती हैं । जीवन एक समर है, जीवात्मा उसका रथी है, शरीर रथ है, यह उपमाएँ आर्ष एवं लौकिक साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलती हैं । कठोपनिषद् में "आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु" आदि कहकर तथा रामचरितमानस में विजय-रथ प्रसंग में "सौरज-धीरज तेहि रथ चाका" आदि कहकर इसी जीवन-समर में विजेता बनने के लिए सूत्र प्रकट किये गये हैं । यहाँ मंत्रों के भावों से भी यही तथ्य प्रकट होता है । जैसे :- रथ द्वारा ढोया जाने वाला धन, रथ को प्रवृद्ध करे (मंत्र ८) अथवा बाण हमें संवर्धित करे (मंत्र १२) आदि भाव यह स्पष्ट करते हैं कि रथ एवं बाण मात्र निर्जीव उपकरण नहीं हैं । मंत्र ११ में बाण को 'गोभिः सन्नद्धः' कहा है, अर्थात् गौओं से जिसका संधान किया जाता है । गौ का अर्थ-गौ चर्म अथवा ताँत करना उतना युक्ति संगत नहीं लगता । गौ-'इन्द्रियों से संधान किया गया कर्म' इस रथ में अधिक सटीक बैठता है । अन्त में (मंत्र १९) तो स्पष्ट कहा भी है कि ब्रह्म (मंत्र) ही हमारा कवच है । अस्तु, सुधी पाठक इसी दृष्टि से मन्त्रार्थों का अध्ययन करें; तो अच्छा होगा -

५११५. जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१ ॥

कवच को धारण करके जब शूरवीर योद्धा संग्राम-स्थल के लिए जाते हैं, तब सेना का स्वरूप बादल के सदृश होता है । हे वीर पुरुष ! आप बिना आहत हुए विजय को प्राप्त करें; उस कवच की महान् शक्ति आपकी रक्षा करे ॥१ ॥

[कवच शत्रु के आघातों से आत्मरक्षा के लिए होता है । जीवन-समर में गुरुजनों द्वारा निर्दिष्ट अनुशासन कवच का कार्य करता है ।]

५११६. धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२ ॥

धनुष की शक्ति से युद्ध जीतकर गौएँ प्राप्त करेंगे । भीषण संग्राम में धनुष से शत्रु की कामनाएँ ध्वस्त करेंगे । हमारा धनुष शत्रु को पराजित करता है, ऐसे धनुष की महिमा से सभी दिशाओं को विजित करेंगे ॥२ ॥

[धनुष दूरस्थ शत्रुओं पर भी आघात कर सकता है । 'विज्ञान' जीवन-समर का धनुष कहलाने योग्य है ।]

५११७. वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३ ॥

संग्राम में विजय दिलाने वाली, धनुष पर चढ़कर अव्यक्त ध्वनि करती हुई (प्रत्यंचा) प्रिय बाणरूप मित्र से मिलती है । वह योद्धा के कानों तक खिंचती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो कुछ कहना चाहती है । यह प्रत्यंचा संकटों से पार करने वाली है ॥३ ॥

[ज्या-प्रत्यंचा मजबूत सूत्र-डोरी को कहते है, जो धनुष के दोनों सिरों (कोटियों) को खींचती है । विज्ञान के सूत्र (फार्मूले) प्रत्यंचा कहे जा सकते हैं ।]

५११८. ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४ ॥

ये दोनों (कोटियाँ) समान मन वाली स्त्रियों की तरह (एक ही प्रयोजन के लिए) आचरण करती हैं । माता की भाँति पुत्र (बाण) को गोद में लेकर एक साथ रहने वाली ये, शत्रुओं का वेधन करतीं तथा अमित्रों को बिखेर देती हैं ॥४ ॥

[धनु कोटियाँ - धनुष के दोनों छोर । यह विज्ञान रूप धनुष के दो किनारे (१) सैद्धान्तिक (थ्योरेटिकल) तथा प्रायोगिक (प्रैक्टिकल) कहे जा सकते हैं । प्रत्यञ्चा रूप सूत्र (फार्मूले) इन्हें खींचकर प्रयुक्त करते हैं ।]

५११९. बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।

इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५ ॥

यह बहुतों का पिता है, इसके पुत्र बहुत हैं । समर में पहुँचकर यह चीं-चीं ध्वनि करता है । योद्धा के पृष्ठ भाग में आबद्ध यह अपने द्वारा प्रसूत (बाणों) से सभी संगठित शत्रुओं को जीत लेता है ॥५ ॥

[तूणीर में बाण रखे रहते हैं; किन्तु मंत्र में उसे बाणों का पिता एवं प्रसव करने वाला (जन्म देने वाला) कहा है । संकल्प अथवा कर्मरूप बाणों का प्रसवकर्ता तूणीर 'मन' कहा जा सकता है ।]

५१२०. रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।

अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६ ॥

उत्तम सारथी रथ पर स्थित होकर अश्वों को यहाँ-वहाँ इच्छानुसार आगे ले जाता है । हे स्तोताओ ! आप लगामों की महिमा का बखान करें । ये मन के अनुकूल (अश्वों को गति देने के लिए) प्रवृत्त होती हैं ॥६ ॥

[जीवन-समर में सारथी बुद्धि को तथा चित्त-वृत्तियों को लगाम कहा जाना समीचीन है ।]

५१२१. तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।

अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥७ ॥

रथ के साथ गतिमान्, वृषभों से भी अधिक शक्तिशाली अश्व अमित्रों (शत्रुओं) को अपने पदों (चरणों) से आक्रान्त करते हैं । अपव्यय से बचकर शत्रुओं को नष्ट करते हैं ॥७ ॥

[अश्व - शरीर (रथ) से जुड़ा पुरुषार्थ-पराक्रम को अश्व कहा जा सकता है ।]

५१२२. रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।

तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८ ॥

जहाँ इस रथ को बढ़ाने वाले हव्य, (रथी के) अस्त्र-शस्त्र एवं कवच आदि रखे होते हैं, हम प्रसन्न मन से उस रथ पर सदैव स्थित रहेंगे ॥८ ॥

[वेद ने वहन करने वाले (कैरियर) को रथ कहा है । प्रकृति में देवों के रथों के अनेक रूप बनते हैं । जीवन-संग्राम का यह रथ इन्द्रिययुक्त शरीर ही कहा गया है ।]

५१२३. स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।

चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९ ॥

(यह रक्षक) वयोधा (अवस्थाओं अथवा बल को धारण करने वाले), शत्रु के अन्नों को नष्ट करने वाले तथा स्वपक्ष को अन्न देने वाले हैं । संकट के समय आश्रय देने वाले, गंभीर, विचित्र सेना से युक्त यह महान् वीर स्वयं अहिंसित रहकर शत्रुसेना को नष्ट करने में समर्थ है ॥९ ॥

[रथगोपा - रथ रक्षक शरीरस्थ विभिन्न प्राण एवं उप प्राण हैं ।]

५१२४. ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।

पूषा नः पातु दुरिताद् ऋतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१० ॥

ब्राह्मण, पितर, ऋत (सत्य या यज्ञ) संवर्धक तथा सोम सिद्ध करने वाले-यह सब हमारी रक्षा करें । कल्याणप्रद द्यावा-पृथिवी एवं पूषादेव हमें पापों से बचाएँ । पापी-दुराचारी व्यक्ति हम पर शासन न करने पाएँ ॥१० ॥

[इस मंत्र में देवों, भूसुरों, सोम आदि से रक्षा की प्रार्थना की गई है। ये भाव भी जीवन-संग्राम पर घटित होते हैं।]

५१२५. सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥

यह सुपर्णयुक्त (पक्षी की तरह) गतिशील, तीक्ष्ण दाँत (नोंक) वाले मन की तरह यह बाण गो (इन्द्रियों) द्वारा संधान किया गया, प्रसूत होते (प्रकट होते-छूटते) ही प्रहार करता है। जहाँ मनुष्य एकत्रित होकर या बिखर कर गतिशील होते हैं, वहाँ ये बाण हमारे शरणदाता या सुख प्रदायक हों ॥११॥

[इस ग्यारहवें मन्त्र के अतिरिक्त मंत्र क्र० १२, १५ एवं १६ बाणों को लक्ष्य करके कहे गये हैं। उन्हें विभिन्न सम्बोधन दिये गये हैं। मन रूप तूणीर से उत्पन्न यह बाण ' संकल्प-अथवा कर्म ' ही कहे जा सकते हैं।]

५१२६. ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

हे ऋजुगामी (बाण) आप सब ओर से हमें संवर्धित करें। हमारे शरीर पत्थर जैसे (मजबूत) हों। सोमदेव हमें उत्साहित करें तथा माता अदिति हमें सुख प्रदान करें ॥१२॥

[यहाँ बाण को 'ऋजीते' - ऋजु (सीधे या सरल) मार्गगामी कहा गया है।]

५१२७. आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उपजिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥१३॥

हे अश्व चलाने वाली कशा ! आप संग्राम में जागरूक अश्वों को प्रेरित-उत्तेजित करें। इनके उभरे हुए भागों पर अथवा निचले अंगों पर समीप से प्रहार करें ॥१३॥

[कशा-अश्व प्रेरक चाबुक को लक्ष्य करके यह मंत्र है। वेद ने शब्द शक्ति को अश्व प्रेरक कशा की संज्ञा दी है।]

५१२८. अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥

सर्प की तरह लिपट कर प्रत्यंचा के आघात से यह (हस्तबन्ध) हाथ की रक्षा करता है। यह सभी कुशलताओं के ज्ञाता पुरुषों का सब ओर से संरक्षण करे ॥१४॥

[हस्तबन्ध - हाथ को प्रत्यंचा के आघात से बचाने वाले आवरण को लक्ष्य करके यह मंत्र है। हस्त कौशल से इसकी संगति बैठती है।]

५१२९. आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥

जो विषयुक्त, लोहे के फल लगा, हिंसक अग्रभाग वाला यह बाण है, पर्जन्य से जिनका पराक्रम बढ़ता है, उन बाण देवता को हमारा नमस्कार है ॥१५॥

५१३०. अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥

हे बाण रूपी अस्त्र ! मन्त्रों के प्रयोग से तीक्ष्ण किये हुए आप हमारे द्वारा छोड़े जाते हुए शत्रु सेना पर एक साथ प्रहार करें और उन्हें संतप्त करें। उनके शरीरों में प्रविष्ट होकर सभी का विनाश करें तथा किसी भी दुष्ट को जीवित न बचने दें ॥१६॥

५१३१. यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाइव।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

जहाँ शिखारहित-बालकों (चंचल बालकों) के समान बाण गिरते हों, वहाँ ब्रह्मणस्पति और अदिति हमें सुख प्रदान करें और हमारा सदा कल्याण करें ॥१७ ॥

५१३२. **मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।**
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१८ ॥

हे रथी ! आपके मर्मस्थलों को हम कवच से युक्त करते हैं । सोमदेव आपको अमृत से युक्त करें । वरुणदेव आपको सुख प्रदान करें । आपकी विजय से देवगण आनन्दित हों ॥१८ ॥

५१३३. **यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।**
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९ ॥

जो हमारे बन्धु होकर द्वेष करते हैं, गुप्त रूप से हमारे संहार की इच्छा रखते हैं, उन्हें सब देवगण नष्ट कर दें । वेदमन्त्र ही हमारे कवचरूप हैं; वे हमारा कल्याण करें ॥१९ ॥

॥ इति षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥